

## प्रस्तावना.

हम ईश्वरका बारबार धन्यवाद करते हैं कि अपने सङ्कल्पानुसार "श्रुतिबोध" का पहला अङ्क अपने पाठको के हाथों में सादर समर्पित करनेका सौभाग्य आज हमको प्राप्त हुआ। कोई भी देश हो उसके जीवित्व का मुख्य चिन्ह उसके धर्म की उन्नति ही है। कोई भी जाति हो उसका धर्म जितना सोज्ज्वल, जितना उच्च, युक्तिग्राह्य और सत्यमूलक होता है, उतना ही उसके मन और बुद्धि के परिपक्व होनेका पूर्ण विश्वास होता है। हम हिन्दुधर्मावलम्बियों का विश्वास है कि अन्य सब धर्मों की अपेक्षा हिन्दुधर्म अति श्रेष्ठ है। इसका प्रमाण यही है कि भारत की वर्तमान स्थिति में भी श्रीमद्विवेकानन्द जैसे संन्यासी सुधार और सभ्यताके शिखरपर चढ़े हुए अमेरिका समान देशों में गये और वहाँ अपनी विजयपताका सहज ही फहरा सके। पूर्वोक्त गुण जिस प्रमाण से धर्म में हो उसीपर उसकी श्रेष्ठता अबलम्बित है। हिन्दुधर्म की परिष्ठा भी उसी कसौटी से करना होगी।

वर्तमान समय में ऐसी परीक्षा करनेमें हिन्दुधर्मावलम्बियों के लिये बहुतसी अडचने हैं। एक तो यह कि आज भारतवासियों का बहुतसा समय जीविका उपार्जन करनेमें ही व्यतीत हो जाता है। धर्मविषयक विचार करनेके लिये समय नहीं मिलता। यह ऐसा काम नहीं है जो थोड़े बहुत अवकाश के समय में हो सके। धर्मविचार करनेमें धर्म के सर्वव्याप्य अङ्गों और उपाङ्गों की चर्चा सब दिशाओं और दृष्टियों से होना चाहिये। उसमें नृष्टि और महाकारण, जीव और परमेश्वर, अचिर और सनातन, असन् और शाश्वतिक, जड और चिन् उत्पत्ति और संहार ऐसे बड़े बड़े अनेकानेक गहन प्रश्नों का उद्घापोह करना होता है। इनमें से किसी भी प्रश्नका विचार करनेमें बड़े बड़े विद्वानों का आयुपर्यन्त परिश्रम करना होता है। ऐसी दशा में पाठक समझ सकते हैं कि इन सब और ऐसेही अन्य असंख्य प्रश्नों का विचार करके धर्मतत्व निकालने में कितना परिश्रम पड़ सकता है। दिनका मुख्य भाग जीविकोपार्जन में व्यतीत करने पर बड़े बड़े तैलबुद्धि विद्वानों के मस्तिष्क में भी धर्मविचार के गूढ प्रश्नों का प्रवेशित होना अत्यन्त कठीन है। जब यह बात है, तब सामान्य जनसमूह का तो कहना ही क्या।

हिन्दुधर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेमें दूसरी एक और अडचन है। वह यह कि सनन्त धर्मग्रन्थ संस्कृतभाषा में है। संस्कृत और देशी भाषाओं का अन्तर्गाढ हुए सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। हिन्दुओं की धर्मरूपी निधि अबतक मन्वृत भाषा के दुर्गम कोट में बन्द पड़ी है। इन्हीं आज हमारी दहत मोचनीय दशा हो गयी हैं। यों तो

हमने अपने अन्य समस्त व्यवहारों की शब्दसामुग्री उम कोट अर्थान् संस्कृत भाषामें से बाहर निकाली है, किन्तु अपने धार्मिक ज्ञानभण्डार को अभी तक नहीं निकाल सके। वह अभी तक वहीं पड़ा है। हमारी दशा ठीक उसी धनवानकीसी है जो कोश की कुंजी खो जानेके कारण बहुमूल्य वस्त्राभरण न धारण करके कंगालों की तरह फिरता हो। यों ही संस्कृत भाषारूपी कोश में हमारे धर्मज्ञान की अनन्त निधि भी भरी पड़ी है, पर उसकी कुंजी मिलना हमको कठीण हो रहा है, इसीसे हम संसार की दृष्टि में दीन और दरिद्री मालूम हो रहे हैं। इसीसे कहते हैं कि जब तक हम संस्कृत कोश में से धर्मरूपी आभरण निकाल लाकर अपनी नैसर्गिक श्रेष्ठता से मंडित न हो जायेंगे, तब तक हमारी गति नहीं है।

इसके सिवाय एक और बड़ी अड़चन है। वह यह कि हिन्दुधर्म का विवेचन करनेवाली इतनी दीर्घ ग्रन्थमाला है कि उसका मन्थन करना बड़े ही प्रयास का काम है। इसाई, मुसलमान, पारसी आदि का अपना अपना केवल एक धर्मग्रन्थ है, पर हिन्दुधर्म की यह बात नहीं। हिन्दुधर्म में अनेकानेक ऋषि, महर्षि और आचार्य हुए हैं। वे अपने अनुभव और अपनी स्फूर्ति से जनसमुदाय को सुमार्ग दिखलाने के लिये इतने ग्रन्थ रचे गये हैं कि अब उनका अवलोकन मात्र बड़े परिश्रम का काम हो गया है। यह प्रश्न दूसरा है कि वायव्य की भांति एक ही ग्रन्थ में धर्म का तत्व भरा हो अथवा इसके लिये अनेक ग्रन्थों की रचना होनी चाहिये। हर्ष की बात है कि हिन्दुधर्म में दोनों ही बातों का सुभीता है। जो लोग एक ही ग्रन्थ में धर्म के सब तत्वों का होना चाहते हैं उनके लिये वैसा ग्रन्थ है, और जो अनेक ग्रन्थों को चाहते हैं उनके लिये भी सुभीता है। वेदों के प्रमाण अत्यन्त प्राचीन काल से अबाधितरूप से लिये जा रहे हैं। अनेकानेक धर्मज्ञानियों ने जो असंख्य ग्रन्थभण्डार लिखा उसका सबसे उत्कृष्टसार वेदों ही में उपस्थित है। यहाँ नहीं, बल्कि उसमें से कितनों ही का विस्तार वेदों में अत्यन्त हृदयंगम पद्धति से किया हुआ है। “श्रुतिबोध” में यह सम्पूर्ण अमूल्य निधि हम पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे। यहाँ उसका विशेष विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि वेदों का साम्राज्य सहस्रों वर्षों से चल रहा है। यह कुछ मिथ्या आदरचुद्धि या अज्ञानजन्य श्रद्धापर अवलम्बित नहीं है, बल्कि उच्चतम की प्रखर सामर्थ्यपर ही उसका अवलम्बन है।

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् आदि अङ्गोपाङ्गों से वेदों का विस्तार बहुत है। उतना ही उनमें विषयवैचित्र्य भी

है। ऋग्वेद में प्रार्थना, यजुर्वेद में यज्ञसंबंधी उपयुक्त मंत्र, सामवेद में परमेश्वर का यशोगायन और अथर्ववेद में धर्मज्ञान का विवेचन किया है।

फ्रान्स या जर्मनी का हिन्दुस्थान से कोई संबंध नहीं है। उन देशों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे भारत के आचार विचार साहित्य और विद्वानों की प्रशंसा करें। उसके अतिरिक्त भारत को वर्तमान काल में प्रमुखत्व भी नहीं प्राप्त है। इससे यह संभव है कि अन्य देशवासी हिन्दुओं को तिरस्कारदृष्टि से देखें। किन्तु ऐसी दशा होने पर भी उन देशों के विचारवान् पुरुषों ने हिन्दुओं के अनेक ग्रन्थों का बहुत आदर किया है। इससे स्पष्ट है और यह प्रत्येक निपक्षपाती मनुष्य को मानना होगा कि उन ग्रंथों में अवश्य कोई विलक्षण ओज और विशेषता है। वेदों का पता जब जर्मन पंडितों को लगा और उनकी दृष्टि इन पर पड़ी, तो वेदों के निसर्गसौन्दर्य को देख वे मुग्ध हो गये। उनमें से कितने ही तो यहां तक मोहित हुए कि उन्होंने आद्योपान्त वेदों का अध्ययन कर डाला। किसीको वेदों की भाषा पसंद आई, किसीको उनकी सादी और सरल रचना भाई, उनके काव्य पर कोई लट्टु हो गया, कोई उनमें तत्त्वज्ञान पाकर आनंदित हुआ। इन सबमें रोट नामक विद्वान् ने बहुत परिश्रम पूर्वक वेदों का परिशीलन किया और वेदविषयक साहित्य चिरस्थायी करनेके अभिप्रायसे उन्होंने अन्य कई विद्वानों की सहायता से अपना सुप्रसिद्ध कोश बना डाला। हो सकता है कि अर्थविषयमें कुछ मत भेद हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह कोश बड़ी आस्था और अत्यन्त परिश्रम में तैयार किया गया।

अर्वाचीन शोधकों का मत है कि वेद कम से कम दस हजार वर्ष पुराने हैं। इतने प्राचीन कालके ग्रंथ की भाषा अवश्य ही अव्यवस्थित, बेजोड और भद्दी होनी चाहिये, परन्तु वेदों में यह बात नहीं है। बल्कि उनका काव्य सरल, सुबोध और मधुर है। कविताका सम्पूर्ण सौन्दर्य वेदों में कूट कूट कर भरा हुआ है।

वेदों में अक्षरों के ऊपर और नीचे रेखा मारकर कुछ स्वर दिखाये हैं। उन्हींके अनुसर वेदपाठी लोग अपनी गर्दन या हाथ हिलाकर मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। वेदों की यह बात भी ध्यान देने योग्य है। भाषण करनेमें शब्दों के कुछ विवक्षित अक्षरों पर जोर देकर उच्चारण करनेका प्रचार बहुतसी भाषाओं में है। अक्षरों की ध्वनि की इस विशेषता को ही स्वर कहते हैं। जब तक वेदों का अधिक प्रचार था तब तक उनके अनुसार स्वर्गोच्चारण के नियम मालूम थे। किन्तु संस्कृत का प्रचार बन्द होनेके बाद उनके स्वर्गों का भी लोप हो गया। वेदों में स्वर तीन प्रकार के हैं—उदात्त, अनुदात्त और न्युम्नि।

उदात्त स्वर दिखानेके लिये अक्षर पर कोई चिन्ह नहीं लगाते। अनुदात्त स्वर में अक्षर के नीचे एक आड़ी रेखा खींच देते हैं और स्वरित स्वर दिखानेके लिये अक्षरकी ऊपर खड़ी लकीर खींचते हैं। स्वरित अक्षरके आगे जितने अनुदात्त अक्षर आते हैं उन पर कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता। वेदों का स्वरूप शुद्ध रखने और उनका मूल्मार्थ और मत्यार्थ निश्चित करनेमें स्वरों का बहुत उपयोग किया गया है।

वेदों के विषय में एक बात विशेषरूप से ध्यान देने की है। वह यह कि उनमें पाठान्तर नाम मात्र को भी नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षिओं ने ऐसे परिश्रम से उनकी रक्षा की, कि उनमें अपपाठ या भिन्नपाठ को घुसने को अवसर ही न मिला इसके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है। यों तो वेदों के अर्थसंबंध में बहुत कुछ मतभेद है, परन्तु जो कहीं ब्राह्मणों की अपेक्षा के कारण वेदों का पाठ भी शुद्ध न होता, तो आज तत्त्वार्थज्ञान का लोप ही हो जाता।

वेदों के अर्थसंबंध में यहां कुछ कहना आवश्यक है। भगवान् यास्काचार्य ने ऐसे लोगों की निन्दा की है, जो विना अर्थ समझे वेदों का पाठ करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके समय में भी ऐसे लोग थे जो अर्थ की अपेक्षा शब्दों का विशेष महत्त्व समझते थे। पीछे सायणाचार्य ने अपना सुप्रसिद्ध भाष्य तैयार किया। उसमें जनसाधारण को वेदों का अर्थ कैसा सुलभ हो गया यह सभी जानते हैं। उनके इसी प्रशंसनीय प्रयत्न के फलस्वरूप आज वेदों का अर्थ समझने में सबको सहायता मिलती है। किन्तु कालचक्र के प्रभाव से दशा यहां तक बदल गई है कि अब आङ्ग्रेजी भाषा देशी भाषा के समान हो रही है। इस लिये यह आवश्यक है कि वेदों का भाषान्तर आङ्ग्रेजी या किसी भाषा में किया जाय। यह स्थिति अच्छी है अथवा बुरी, या संस्कृत भाषा का इतना न्हास होने देना योग्य है अथवा नहीं, यह प्रश्न अलग है। परन्तु धर्म के पुनर्जीवित करनेका कैसा भी प्रयत्न काल देश वर्तमान के अनुसार करना ही चाहिये। इसी लिये हमने वेदों का भाषान्तर आङ्ग्रेजी, मराठी, हिन्दी और गुजराती इन चार प्रचलित भाषाओं में करना आरंभ किया है। हिन्दी भाषा का प्रसार भारत में सबसे अधिक है। तो भी जो उसको न समझे लिये हमने आङ्ग्रेजी भाषान्तर रखा है। इससे वे अपनी तृप्ता बुझा सकते हैं।

प्रकार हमें आशा है कि इन चार भाषाओं के योग से हम वेदों का ज्ञान भारत कोने कोने में फैला सकते हैं। आजपर्यन्त देश की किसी किसी भाषा में वेदों का अनुवाद करने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया जा चुका है,



किन्तु समस्त देशवासियों के सुभीते की दृष्टि से और विस्तृत प्रमाण पर वेदों का अनुवाद करनेका यह पहिला ही प्रयत्न है। हम आशा करते हैं कि इसको यशस्वी करनेमें हमारे देशबन्धु अपनी सहानुभूति से हमको कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे। आजतक वेदों के जितने भाषान्तर हुए हैं उनकी अपेक्षा यह भाषान्तर कुछ अलग दृष्टि से किया गया है। मनुष्य प्रायः समाज, मत, कुटुंब आदि के पाश में फंसा ही रहता है। इस लिये प्रत्येक विषय में उसका कोई अपना विशेष मत हुआ करता है। ऐसा मनुष्य जब किसी वेद समान धर्मग्रन्थ का अनुवाद करता है, तो अनुवाद मूल का प्रतिबिम्ब प्रायः नहीं होता, वह अनुवाद खास उसीके मत का चित्रपट होता है। ऐसा न होने पावे और वेदों का कथन ज्यों का त्यों अपने देशवासियों के सामने धर सके, इस अभिप्राय से अपने निज के विचारों को अलग रखकर केवल सत्यबुद्धि से हम वेदों का भाषान्तर करना चाहते हैं। इस भाषान्तर में कहीं कहीं हम पौराणिक और पाश्चात्य इन दोनों ही विद्वानों को छोड़कर कोई तीसरा ही भिन्न अर्थ करेंगे, परन्तु उससे हमारे पाठकों को यह कदापि न समझना चाहिये कि वह अर्थ हमने किसी पक्ष, पंथ अथवा मतविशेष को पुष्ट करनेके अभिप्राय से किया है। ऐसा कभी न होगा। जो अर्थ हम स्वीकार नहीं करेंगे उसका उल्लेख स्वतन्त्र अङ्क में किया जायगा। उससे पाठकों को आप ही विदित होगा कि कौनसा अर्थ उचित है और कौन नहीं। भाषान्तर में जहाँ बहुत ही आवश्यक जचेगा वहाँ हम कुछ नोट देंगे। किसी किसी जगह देवता अथवा पदपाठ की बड़ी गड़बड़ देखनेमें आती है, परन्तु वहाँ भी अभी हम कुछ नोट नहीं देंगे। अभी केवल सरल भाषान्तर किया जावेगा। जहाँ कहीं बहुत विवाद होगा, या व्याकरण संबन्धी कोई विशेष कठिनता समझानेकी आवश्यकता होगी, या जहाँ अर्थ संबन्ध में टीकाकारों का तीव्र मतभेद होगा अथवा पदपाठ या देवता के संबन्ध में जहाँ विशेषरूपसे स्पष्टीकरण करना आवश्यक होगा, इन सबका सविस्तर विचार करनेके लिये माधक बाधक प्रमाणों के साथ हम प्रसंगानुसार विशेष अङ्क निकाला करेंगे। सामान्यपाठक लोग इतनी टीका टिप्पणी के बखेड़े में नहीं पडना चाहते। उनको तो केवल सरल भाषान्तर चाहिये। भाषान्तर में किसी प्रकार विच्छेद न हो, इस कारण से हम अलग ही एक विशेष अंक छापना अच्छा समझते हैं। आशा है कि इनमें माध्याम्य पाठक और तार्किक विद्वान भी सतोष प्राप्त कर सकेंगे।

भाषान्तर शुद्ध हिन्दी भाषा में हो, इसकी ओर हमारा विशेष लक्ष्य रहेगा। वेद यदि हिन्दी भाषा में होते तो जैसी उनकी भाषा होती, हमारी राय में टीका केर्ना ही भाषान्तर की भाषा होनी चाहिये। अच्छा भाषान्तर बढी है जो पठने में मनो-

रंजक हो। जिस भाषान्तर में केवल मूल शब्द के समर्थकशब्द मात्र रख दिये गये हों वह भाषान्तर नहीं कहा जा सकता—वह केवल बेगार का काम है। भाषान्तर पढ़ कर यह न मालूम होना चाहिये कि यह भाषान्तर है।

मूल के शब्द ज्यों के त्यों उठाकर अनुवाद में रख देनेमें भी अनुवाद होना नहीं कहा जा सकता। मूल के सब शब्द और सब अर्थ भाषान्तर में प्रतिबिम्बित होना चाहिये। कभी कभी मूल के शब्दार्थ की अपेक्षा मूलका मकल्पित अर्थ और भी अधिक होता है। ऐसी जगह भाषान्तर में अधिक शब्दों का व्यवहार करके अर्थ समझाना आवश्यक है। कहीं कहीं मूल में कोई अर्थभरित गहन शब्द या प्रयोजनगर्भ वाक्यरचना आ जाती है ऐसे स्थानपर भी बिना अधिक शब्दों के व्यवहार के काम नहीं चलता। इससे भाषान्तर में कोई दोष नहीं आता, क्योंकि ऐसा किये बिना अच्छा भाषान्तर हो सकता ही नहीं। उदाहरणार्थ

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विष्पतिषु ॥ ऋ. १ १२. २

इस ऋचा में जिस क्रम से शब्द रखे हुए हैं उसके देखते ही अर्थ की विशेषता का आभास होता है। इस सूक्त को गानेवाले मानो भक्ति में इतने लीन हो गये हैं कि सदा की वाक्यरीति छोड़ कर “अग्निमग्नि” कहने लगे। मूल का यह भाव जिस तरह हिंदीभाषा में आ सके उसी रीति से भाषान्तर करना चाहिये। ऐसे स्थान में एक एक मूल शब्द की टक्कर के लिये एक एक हिन्दी शब्द रखेनेसे भाषान्तर को सत्यानास करना है। शब्दों की गणना न करके मूल का भाव भाषान्तर में होना चाहिये। इसी पर दृष्टि रखकर सरल हिंदीभाषा में यह भाषान्तर किया गया है। यदि ऐसा न करके “मक्षिकास्थाने मक्षिका” का अवलम्बन किया जाता तो कौन ऐसे पाठक है जो भाषान्तर द्वारा मूलके अर्थ को समझ सकते ?

ऋचा, वर्ग, अध्याय और अष्टक इन्हीं चारों में ऋग्वेद विभक्त किया गया है। ऋचा, एक मंत्र या एक श्लोक को कहते हैं। कई ऋचाएँ मिलकर एक वर्ग और बहुतसे वर्ग मिलकर एक अध्याय होता है। प्रथमाध्याय में ३७ वर्ग हैं। आठ अध्यायों का एक अष्टक होता है। ऋग्वेद ऐसे ही आठ अष्टकों में पूरा हुआ है। इसको विभक्त करनेकी और भी पद्धति है। उसके अनुसार कुछ ऋचाओं का एक सूक्त, कई सूक्तों का एक अनुवाक और बहुतसे अनुवाक मिलकर एक मंडल होता है।

रीति से ऋग्वेद के दस मंडल हैं। अष्टक केवल अङ्कगणित की दृष्टि से ऋग्वेद के भाग करनेसे बने हैं, विषय की भिन्नता के ध्यान से ऐसा नहीं किया। यही बात आयों में है। वे भी केवल हिसाब बराबर रखने के लिये प्रत्येक अष्टक में आठ आठ गये हैं। किन्तु मंडल और सूक्त में यह बात नहीं है। उनका विभाग कुछ तो

विषय और कुछ ऋषिसंबंध की दृष्टि से किया गया है। इस लिये अष्टक विभाग की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी और उचित है। साथ ही सुभीते की दृष्टि से देखिये तो अष्टको का भी कुछ महत्व है। इस लिये हमने दोनों ही विभाग प्रत्येक पृष्ठ के सिरे पर लिख दिये हैं।

“श्रुतिबोध” प्रकाशित करनेकी विज्ञप्ति किये आज प्रायः तीन मास हुए। हमको यह लिखते बड़ा हर्ष होता है कि इस बीच में सैकड़ों सज्जनों ने ग्राहकों की सूची में अपने नाम लिखा कर अपनी धार्मिकता का परिचय दिया और दिखा दिया है कि भारत में धर्मजिज्ञासुओं का अब भी हास नहीं हुआ। इससे और भी उत्साहित होकर हम आज “श्रुतिबोध” का यह प्रथमांक सुविज्ञ पाठक महाशयों की सेवा में समर्पित करते हैं। हिन्दी भाषा के पाठकों को प्रतिमास ६४ पृष्ठ और बड़े आकार की ऐसी पुस्तक डाक सहस्र सहित मात्र ४) रु. वार्षिक में भेट की जायगी। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि सालभर में मूल वेद और भाषान्तर का लगभग ८०० पृष्ठ का भारी ग्रंथ हम कुल ४) में दे देने को तैयार हैं। यही नहीं, यदि हमारे देशवासियों ने हमारे इस परिश्रम को सार्थक किया तो हम मूल्य और भी कम कर देंगे। नारांश यह कि हर तरह से इसमें रिश्तायत की जायगी, जिससे देशभर में इसका प्रचार बढे। ईसाइयों के धर्मग्रंथ बायबल देखिये, करोड़ों की संख्या में प्रति वर्ष छपती है। इस पर भी यह हालत, कि एक वर्ष की आवृत्ति की कोई प्रति दूसरे वर्ष के लिये नहीं बचती ! ऐसी ही दशा यदि हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में हिन्दुओं के वेदों को न हो, तो बस, यह कहना होगा कि हममें जीवन्त मनुष्य अब रहे ही नहीं।

इस काम में हमने किसीसे धन की सहायता नहीं मांगी, और न आप ही किसीने दी। अपने ही धन, अपने ही श्रम और अपने देशबन्धुओं की गुणज्ञता पर ही भरोसा करके हमने यह भारी काम अपने स्वर पर उठाया है। होना तो यह चाहिये था कि वेदों का भाषान्तर देश के गरीब से गरीब मनुष्य के हाथों में पहुँचाया जाना परन्तु यह भरपूर धन साहाय्य के बिना हो नहीं सकता। ऐसी दशा में यही बहूत है कि पाँच सात वर्षों के अन्दर चारों वेद, मूल और अर्थ सहित, अत्यन्त अल्प मूल्य में देशवासियों को देवे। यही हमारा उद्देश है आशा है पूर्ण होगा।

“श्रुतिबोध” में मूल वेद और भाषान्तर की पुरतके अलग अलग वाली जा मंगे, इस अभिप्राय में दोनों अलग छापे गये हैं। उत्तम कागज सुन्दर छपाई और नफाई के विषय में भी हमने अपने हिसाब कोई कसर बाकी नहीं रखी। “सुत्रोपनिषद्” ग्रंथ के उद्धार स्वामी और चतुर सँनेजर ने हमारे इस कार्य का महत्व समझकर नवा नन्दर नन्दर, हिन्दी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी के नवीन दर्शकों द्वारा तथा अन्य

रीति से पत्र के मनोहर बनानेमें अत्यन्त परिश्रम किया है । यदि उन महाशयों में ऐसी सहायता न मिलती, तो ' श्रुतिबोध ' ऐसे चित्ताकर्षक रूप में पाठकों के सामने उपस्थित हो सकता, इसमें सन्देह है ।

अनेक महाशयों ने हमको लिखा कि ' श्रुतिबोध ' में मायणाचार्य की टीका और भाषान्तर भी दिया जाना चाहिये, परन्तु कार्य शीघ्र सम्पूर्ण होना चाहिये, अतः हम उनकी इस सूचना को स्वीकार नहीं कर सके । इसके सिवाय और भी बहुतसे मित्रों, शुभचिन्तकों और वेदभिमानी सज्जनों ने हमको कई प्रकारकी सूचनाएं दीं । ग्राह्य मालूम हुई हमने उन्हें स्वीकार किया । इनके अतिरिक्त कुछ महाशयों ने ऐसा भी लिखा कि मूल वेद देवनागरी लिपी में छापकर गुजराती में छापो किसीने तामिल अथवा तेलगू अक्षरों में छापने की सलाह दी । किसीने कहा मराठी आदि में भाषान्तर न करके केवल सरल संस्कृत भाषा में कीजिये, किसीने लिखा सम्पूर्ण वेद भाषान्तर सहित छापकर ६०-७० अङ्क साथ भेज देना, किसी किसीने ऐसी इच्छा भी प्रकट की कि हम यजुर्वेदी हैं, इससे पहले उसी वेद का भाषान्तर होना चाहिये, किसीने कहा कि कृष्णयजुर्वेद का भाषान्तर मत करे तो हम ग्राहक होंगे इत्यादि । ऐसी ही अनेकानेक सूचनाएं हमको मिलीं । पर यह ग्राह्य नहीं है, यह स्पष्ट है । जो हो इस सब पत्रव्यवहार से देशवासियों की वेदविषयक निष्ठा और " श्रुतिबोध " के प्रति उनका उत्साह भली भाँति प्रकट होता है ।

अन्तमें हम उन सज्जनों का धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने इस काम में हमारी सहायता की, सहानुभूति दिखाई अथवा प्रोत्साहित किया । इसके अतिरिक्त हम उन विद्वानों का भी आभार मानते हैं जो इस आधुनिक समय में वेदार्थ प्रगट करनेका प्रयत्न करचूके हैं । ये चाहे किसी भी दृष्टि से किये गये हो और हमसे चाहे कितने भी भिन्न हो, तो भी हम अपनी कृतज्ञता उन ग्रंथकारों के प्रति प्रकट करते हैं । यदि वेदों का समग्र प्रकाशन-कार्य हम समाप्ति तक पहुंचा सके और उसके द्वारा हिन्दूधर्म और भी पवित्र हो तथा उमपर लोगों का प्रेम और भी बढ़ सके तो हम इसको परमोपयोगी मानेंगे और अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे । किन्तु इसके लिये ईश्वर की कृपा होना चाहिये । इसके प्राप्त करनेकी अभिलाषा में वेदों के निम्न लिखित मंत्र द्वारा ईश्वरपूजा करके, उस प्रस्तावना को समाप्त करते हैं—

सख्ये ते इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ १. ११. २.

प्रथमोऽष्टकः

प्रथमं मण्डलम्

## ॥ ऋग्वेदः ॥

[ प्रथमोऽध्यायः ]

[ प्रथमोऽनुवाकः ]

॥ १ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज. स्वरः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवा एह वक्षति ॥ २ ॥

अग्निना रयिमश्रवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्वेषु गच्छति ॥ ४ ॥

अग्निर्होता कृविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवोभिरा गमत् ॥ ५ ॥ १ ॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयं । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

अग्नि । ईळे । पुरःऽहितं । यज्ञस्य । देवं । ऋत्विजं । होतारं । रत्नऽधातमं ॥ १ ॥

अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । आ ।

इह । वक्षति ॥ २ ॥ अग्निना । रयिं । अश्रवत् । पोषं । एव । दिवेऽदिवे । यशसं ।

वीरवत्तमं ॥ ३ ॥ अग्ने । यं । यज्ञं । अध्वरं । विश्वतः । परिऽभूः । असिं । सः । इत् ।

देवेषु । गच्छति ॥ ४ ॥ अग्निः । होता । कृविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवऽस्तमः । देवः ।

देवोभिः । आ । गमत् ॥ ५ ॥ १ ॥ यत् । अङ्ग । दाशुषे । त्वं । अग्ने । भद्रं । करिष्यसि ।

तव । इत् । तत् । सत्यं । अङ्गिरः ॥ ६ ॥ उप । त्वा । अग्ने । दिवेऽदिवे ।

दोषाऽवस्तः । धिया । वयं । नमः । भरन्तः । आ । इमसि ॥ ७ ॥ राजन्तं ।

अध्वराणां । गोपां । ऋतस्य । दीदिवि । वर्धमानं । स्वे । दमे ॥ ८ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ १ ॥ २ ॥

॥ २ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता-१-३ वायु । ४-६ इन्द्रवायु । ७-९ मित्रावरुणौ ॥  
छन्दः-१,२ पिपीलिकामन्या निचुद्रायत्री ॥ पङ्कजः स्वरः ॥

( २ ) वायुवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥  
वायु उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छां जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥  
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरुची सोमपीतये ॥ ३ ॥  
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्द्रवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥  
वायुविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥  
वायुविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्व इत्था धिया नरा ॥ ६ ॥  
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥  
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

सः । नः । पिताऽइव । सूनवे । अग्ने । सुऽउपायनः । भव । सचस्वा । नः । स्वस्तये ॥ १ ॥ २ ॥  
वायो इति । आ । याहि । दर्शते । इमे । सोमाः । अरंकृताः । तेषां । पाहि । श्रुधि ।  
हवम् ॥ १ ॥ वायो इति । उक्थेभिः । जरन्ते । त्वां । अच्छ । जरितारः । सुतऽसोमाः ।  
अहःऽविदः ॥ २ ॥ वायो इति । तव । प्रपृञ्चती । धेना । जिगाति । दाशुषे । उरुची ।  
सोमऽपीतये ॥ ३ ॥ इन्द्रवायू इति । इमे । सुताः । उप । प्रयोऽभिः । आ । गतं । इन्द्रवः । वां ।  
उशन्ति । हि ॥ ४ ॥ वायो इति । इन्द्रः । च । चेतथः । सुतानां । वाजिनीवसू इति वाजि-  
नीवसू । तौ । आ । यातं । उप । द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥ वायो इति । इन्द्रः । च । सुन्वतः ।  
आ । यातं । उप । निऽकृतं । मक्षु । इत्था । धिया । नरा ॥ ६ ॥ मित्रं । हुवे । पूतदक्षं । वरुणं ।  
। रिशादसं । धियं । घृताचीं । साधन्ता ॥ ७ ॥ ऋतेन । मित्रावरुणौ । ऋतऽवृधौ ।  
। स्पृशा । क्रतुं । बृहन्तं । आशाथे इति ॥ ८ ॥ कवी इति । नः । मित्रावरुणा ।

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥९॥ ४ ॥

॥ ३ ॥ १—१२ मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता—१-३ अश्विनो । ४—६ इन्द्र । ७—९

विश्वे देवाः । १०—१२ सरस्वती ॥ छन्दः—२ निचृद्गायत्री । ४, ११ पिपीलिकामध्या निचृद्गा-  
यत्री । १, ३, ५-१०, १२ गायत्री ॥ षड्ज. स्वर. ॥

( ३ ) अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१॥

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्यया वनतं गिरः ॥ २ ॥

दस्त्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तवर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजृतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६॥५॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वासो दाशुषः सुतम् ॥७॥

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्त्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥

तुविजातौ । उरुक्षया । दक्षं । दधाते इति । अपसं ॥९॥४॥ अश्विना । यज्वरीः ।

इषः । द्रवत्पाणी इति द्रवत्पाणी । शुभः । पती इति । पुरुभुजा । चनस्यतं ॥१॥

अश्विना । पुरुदंससा । नरा । शवीरया । धिया । धिष्यया । वनतं । गिरः ॥२॥ दस्त्रा ॥

युवाकवः । सुताः । नासत्या । वृक्तवर्हिषः । आ । यातं । रुद्रवर्तनी इति रुद्रवर्तनी ॥३॥

इन्द्रं । आ । याहि । चि भानो इति चित्रभानो । सुताः । इमे । त्वायवः । अण्वी-

भिः । तना । पूतासः ॥ ४ ॥ इन्द्रं । आ । याहि । धिया । इषितः । विप्रजृतः ।

सुतवतः । उप । ब्रह्माणि । वाघतः ॥ ५ ॥ इन्द्रं । आ । याहि । तूतुजानः । उप ।

ब्रह्माणि । हरिष्व । सुते । दधिष्व । नः । चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥ ओमासः । चर्षणि-

धृतः । विश्वे । देवासः । आ । गत । दाश्वासः । दाशुषः । सुतं ॥ ७ ॥ विश्वे ।

देवासः । अप्तुरः । सुतं । आ । गत । तूर्णयः । उस्त्राः इव । स्वसराणि ।

विश्वे देवासो अस्मिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥  
 पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥  
 चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥  
 महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ।  
 ॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

### ॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ ४ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः-३ विगङ् गायत्री । १० निवृद्धा यत्री । १, २, ४-९ गायत्री ॥ पङ्क्तः स्वरः ॥

( ४ ) सुरूपकृत्नुमृतये सुदुधामिव गोदुहे । जुहुमसि यवियवि ॥ १ ॥  
 उप नः सर्वना गहि सोमस्य सोमपाः पिव । गोदा इदेवतो मदः ॥ २ ॥  
 अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥  
 परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सविभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥  
 उत ब्रुवन्तु नो निद्रो निरन्यतश्चिदारत । दर्धाना इन्द्र इहुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥

विश्वे । देवासः । अस्मिधः । एहिमायासः । अद्रुहः । मेधं । जुषन्त ।  
 वह्नयः ॥ ९ ॥ पावका । नः । सरस्वती । वाजेभिः । वाजिनीवती । यज्ञं । वष्टु । धिया-  
 वसुः ॥ १० ॥ चोदयित्री । सूनृतानां । चेतन्ती । सुसमतीनां । यज्ञं । दधे । सरस्वती ।  
 ॥ ११ ॥ महः । अर्णः । सरस्वती । प्र । चेतयति । केतुना । धियः । विश्वाः । वि । राजति ।  
 ॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

### ॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सुरूपकृत्नुं । ऊतये । सुदुधामिव । गोदुहे । जुहुमसि । यवियवि ॥ १ ॥  
 उप । नः । सर्वना । आ । गहि । सोमस्य । सोमपाः । पिव । गोदाः । इन्द्र । देवतः ।  
 मदः ॥ २ ॥ अथा । ते । अन्तमानां । विद्याम । सुसमतीनां । मा । नः । अति ।  
 ख्यः । आ । गहि ॥ ३ ॥ परा । इहि । विग्रं । अस्तृतं । इन्द्रं । पृच्छ । विपःश्चितं ।  
 यः । ते । सविभ्यः । आ । वरं ॥ ४ ॥ उत । ब्रुवन्तु । नः । निद्रः । निः । अ-  
 न्यतः । चिद्र । आरत । दर्धानाः । इन्द्रे । इव । इहुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥ उत । नः । सुसभ-



उत नः सुभगाँ अरिवोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥  
 एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्संखम् ॥ ७ ॥  
 अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥  
 तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्रसातये ॥ ९ ॥  
 यो रायोऽवनिर्महान्तसुपारः सुन्वतः सर्वा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥ १-१० मधुच्छन्द ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १ त्रिराङ् गायत्री । ३ पिपीलिका  
 मध्या निचृद्गायत्री । ५-७, ९ निचृद्गायत्री । ८ पादानिचृद्गायत्री । आच्युष्णिक् ४, १० गायत्री ।  
 ऋषभ स्वरः ॥

( ५ ) आत्वेता नि षीदतेन्द्रमभिप्र गायत । सर्वायः स्तोमंवाहसः ॥ १ ॥  
 पुरुष्तमं पुरुषामशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥  
 स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम् । गमद्वाजेभिरास नः ॥ ३ ॥  
 यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

गान् । अरिः । वोचेयुः । दस्म । कृष्टयः । स्याम । इत् । इंद्रस्य । शर्मणि ॥ ६ ॥ आ ।  
 ई । आशुं । आशवे । भर । यज्ञश्रियं । नृमादनं । पतयत् । मन्दयत्संख ॥ ७ ॥  
 अस्य । पीत्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । घनः । वृत्राणां । अभवः । प्र । आवः । वाजे-  
 षु । वाजिनं ॥ ८ ॥ तं । त्वा । वाजेषु । वाजिनं । वाजयामः । शतक्रतो इति शतऽ-  
 क्रतो । धनानां । इंद्र । सातये ॥ ९ ॥ यः । रायः । अविनिः । महान् । सुपारः ।  
 सुन्वतः । सर्वा । तस्मै । इंद्राय । गायत ॥ १० ॥ ८ ॥ आ । तु । आ । इत् । नि ।  
 सीदत् । इंद्रं । अभि । प्र । गायत् । सर्वायः । स्तोमंवाहसः ॥ १ ॥ पुरुष्तमं । पुरुषां ।  
 ईशान । वार्याणां । इंद्रं । सोमे । सचा । सुते ॥ २ ॥ सः । घः । नः । योगे । आ ।  
 भुवत् । सः । राये । सः । पुरन्ध्यां । गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥ ३ ॥ यस्य ।  
 संस्थे । न । वृण्वते । हरी इति । समत्सु । शत्रवः । तस्मै । इंद्राय । गायत् ॥ ४ ॥

सुतपात्रे सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥५॥ ९ ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६॥

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शन्ते सन्तु प्रचेतसे ॥७॥

त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥९॥

मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥१०॥

॥ ६ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ द्रवता-१-३ इन्द्र । ४ ६, ८, ९ मरुतः । ५, ७

मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्र ॥ छन्दः-२ विराड् गायत्री ४, ८ निचृदायत्री । १, ३, ५-७, ९, १०

गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

( ६ ) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्विरजायथाः ॥ ३ ॥

सुतपात्रे । सुताः । इमे । शुचयः । यन्ति । वीतये । सोमासः । दधिऽआ-

शिरः ॥ ५ ॥९॥ त्वं । सुतस्य । पीतये । सद्यः । वृद्धः । अजायथाः । इन्द्र । ज्यैष्ठ्याय ।

सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥६॥ आ । त्वा । विशन्तु । आशवः । सोमासः । इन्द्र । गिर्वणः ।

शं । ते । सन्तु । प्रऽचेतसे ॥ ७ ॥ त्वां । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वां । उक्था ।

शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वां । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ८ ॥ अक्षितऽऽतिः । मनेत् ।

इमं । वाजं । इन्द्रः । सहस्रिणं । यस्मिन् । विश्वानि । पौंस्या ॥ ९ ॥ मा । नः ।

मर्ताः । अभि । द्रुहन् । तनूनां । इन्द्र । गिर्वणः । ईशानः । यवय । वधं ॥१०॥१० ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नं । अरुषं । चरन्तं । परि । तस्थुषः । रोचन्ते । रोचना । दिवि ॥ १ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपक्षसा । रथे । शोणा । धृष्णू इति ।

नृवाहसा ॥ २ ॥ केतुं । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे । सं ।

पत्थिः । अजायथाः ॥ ३ ॥ आत् । अहं । स्वधां । अनुं । पुनः । गर्भऽत्वं ।

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भित्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥  
 वीलु चिंदाखजत्नुभिर्गुहां चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥५॥११॥  
 देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥  
 इन्द्रेण सं हि दक्षसे सञ्जग्मानो अविभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥  
 अनवद्यैरभियुभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥  
 अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्वृजते गिरः ॥ ९ ॥  
 इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥१२॥

॥ ७ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—२ ४ निचृद्गायत्री । ८ १०  
 पिपीलिकामया निचृद्गायत्री । ९ पादनिचुद्गायत्री । १ ३, ५-७ गायत्री ॥ पङ्कः स्वर ॥

( ७ ) इन्द्रमिन्द्राथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥  
 इन्द्र इद्वर्योः सचा समिंश्च आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥  
 इन्द्रो दीर्वाय चक्षस आसूर्यं रोहयदिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

आडर्गिरे । दधानाः । नाम । यज्ञियं ॥ ४ ॥ वीलु । चित् । आखजत्नुभिः । गुहां ।  
 चित् । इन्द्र । वह्निभिः । अविन्दः । उस्त्रियाः । अनु ॥५॥११॥ देवयन्तः । यथा ।  
 मतिं । अच्छ । विदद्वसुं । गिरः । महं । अनूषत । श्रुतं ॥ ६ ॥ इन्द्रेण । सं । हि ।  
 दक्षसे । संजग्मान । अविभ्युषा । मन्दू इति । समानवर्चसा ॥७॥ अनवद्यैः । अभि-  
 व्युभि । मख । सहस्वत् । अर्चति । गणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ ८ ॥ अतः ।  
 परिज्मन् । आ । गहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि । सं । अस्मिन् । वृजते ।  
 गिरः ॥९॥ इतः । वा । साति । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि । इन्द्रं । महः ।  
 वा । रजसः ॥१०॥१२॥ इन्द्रं । इत् । गायिनः । बृहत् । इन्द्रं । अर्केभिः । अर्किणः ।  
 इन्द्रं । वाणीः । अनूषत ॥ १ ॥ इन्द्रः । इत् । ह्योः । मचा । संजमिंश्चः । आ । वचः-  
 युजा । इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ २ ॥ इन्द्रः । दीर्वाय । चक्षमे । आ । मूर्यं । रोह-  
 यत् । दिवि । वि । गोभिः । अद्रिं । ऐरयत् ॥ ३ ॥

इन्द्रं वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरुतिभिः ॥ ४ ॥  
 इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥ १३ ॥  
 स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥  
 तुंजेतुंजे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विंधे अस्य सुष्ठुतिं ॥ ७ ॥  
 वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियत्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ८ ॥  
 य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पंच क्षितीनां ॥ ९ ॥  
 इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

### ॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ ८ ॥ १—१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निवृद् गायत्री । २ प्रतिष्ठा गायत्री । १० वर्धमाना गायत्री । ३-५, ६, ७-९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

( ८ ) इन्द्रं सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

इन्द्रं । वाजेषु । नः । अव । सहस्रप्रधनेषु । च । उग्रः  
 उग्राभिः । उतिभिः ॥ ४ ॥ इन्द्रं । वयं । महाधने । इन्द्रं । अर्भे । हवामहे । युजं । वृत्रेषु । वज्रिणं । ॥ ५ ॥ १३ ॥ सः । नः । वृषन् । अमुं । चरुं । सत्रादावन् ।  
 अप । वृधि । अस्मभ्यं । अप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥ तुंजेतुंजे । ये । उत्तरे । स्तोमाः ।  
 इन्द्रस्य । वज्रिणः । न । विंधे । अस्य । सुष्ठुतिं ॥ ७ ॥ वृषा । यूथाऽव । वंसगः ।  
 कृष्टीः । इयति । ओजसा । ईशानः । अप्रतिष्कृतः ॥ ८ ॥ यः । एकः । चर्षणीनां ।  
 वसूनां । इरज्यति । इन्द्रः । पंच । क्षितीनां ॥ ९ ॥ इन्द्रं । वः । विश्वतः । परिं ।  
 हवामहे । जनेभ्यः । अस्माकं । अस्तु । केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

### ॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

आ । इन्द्रं । सानसिं । रयिं । सजित्वानं । सदासहं । वर्षिष्ठं । उतये । भर ॥ १ ॥

नि येन मुष्टिहृत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥  
 इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥  
 वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥  
 महो इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिनां शवः ॥५॥ १५ ॥  
 समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रांसो वा धियायवः ॥६॥  
 यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥  
 एवा ह्यस्य सनृता विरप्शी गोमती मही । पका शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥  
 एवा हि ते विभृतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्नि दाशुषे ॥ ९ ॥  
 एवा ह्यस्य काम्या स्तोमं उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥१०॥१६॥

नि । येन । मुष्टिहृत्यया । नि । वृत्रा । रुणधामहै । त्वाऽऊतासः । नि । अर्वता ॥२॥  
 इंद्रं । त्वाऽऊतासः । आ । वयं । वज्रं । घना । ददीमहि । जयेम । सं । युधि । स्पृधः ॥३॥  
 वयं । शूरेभिः । अस्तृभिः । इंद्रं । त्वया । युजा । वयं । सासह्याम । पृतन्यतः ॥४॥  
 महान् । इंद्रः । परः । च । नु । महित्वम् । अस्तु । वज्रिणे । द्यौः । न । प्रथिना ।  
 शवः ॥ ५ ॥ १५ ॥ संऽओहे । वा । ये । आशत । नरः । तोकस्य । सनितौ ।  
 विप्रामः । वा । धियायवः ॥ ६ ॥ यः । कुक्षिः । सोमपातमः । समुद्रऽव ।  
 पिन्वते । उर्वीः । आपः । न । काकुदः ॥ ७ ॥ एव । हि । अस्य । सनृता । विर-  
 ण्शी । गोमती । मही । पका । शाखा । न । दाशुषे ॥ ८ ॥ एव । हि । ते ।  
 विभृतय । ऊतयः । इंद्र । मावते । सद्यः । चित् । सन्नि । दाशुषे ॥ ९ ॥ एव ।  
 हि । अस्य । काम्या । स्तोमः । उक्थं । च । शंस्या । इन्द्राय । सोमपीतये ॥१०॥१६॥

॥ ९ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १. ३. ७, १० निचृद्गायत्री । ५, ६  
पिपीलिकामन्या निचृद्गायत्री । २, ८, ८, ९ गायत्री ॥ पञ्ज स्वर ॥

(९) इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महो अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥  
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥  
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सर्वनेषुवा ॥ ३ ॥  
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वासुदहासत । अजोपा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥  
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्तं विभु प्रभु ॥ ५ ॥ १७ ॥  
अस्मान्तसु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥  
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥  
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

इंद्र । आ । इहि । मत्सि । अंधसः । विश्वेभिः । सोमपर्वभिः । महान् । अभिष्टिः ।  
ओजसा ॥ १ ॥ आ । इं । एनं । सृजत । सुते । मंदिं । इंद्राय । मंदिने । चक्रिं ।  
विश्वानि । चक्रये ॥ २ ॥ मत्स्व । सुशिप्र । मंदिभिः । स्तोमेभिः । विश्वचर्षणे ।  
सचा । एषु । सर्वनेषु । आ ॥ ३ ॥ असृग्रं । इंद्र । ते । गिरः । प्रति । त्वां । उत् ।  
अहासत । अजोपाः । वृषभं । पतिं ॥ ४ ॥ सं । चोदय । चित्रं । अर्वाक् । राधः ।  
इद्र । वरेण्यं । असत् । इत् । ते । विभु । प्रभु ॥ ५ ॥ १७ ॥ अस्मान् । सु । तत्रं ।  
चोदय । इंद्रं । राये । रभस्वतः । तुविद्युम्न । यशस्वतः ॥ ६ ॥ सं । गोमत् । इंद्रं ।  
वाजं वत् । अस्मे इति । पृथु । श्रवः । बृहत् । विश्वआयुः । धेहि । अक्षितं ॥ ७ ॥  
अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । द्युम्नं । सहस्रसातमं । इंद्रं । ताः । रथिनीः ।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गणन्तं ऋग्मियम् । होमं गन्तारमूनये ॥ ९ ॥  
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहते एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ १० ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द, -१-३, ५, ६ विराडनुष्टुप् । ८

निचुडनुष्टुप् । ५ भृग्गुणिक । ७ ५-१० अनुष्टुप् ॥ गान्धार स्वर । ४ ऋषभः स्वर ॥

( १० ) गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतु उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्धस्पर्ष्ट कर्त्वम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

युध्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

इषः ॥ ८ ॥ वसोः । इन्द्रं । वसुऽपतिं । गीःऽभिः । गृणतः । ऋग्मियं । होमं । गन्तारं ।  
ऊतये ॥ ९ ॥ सुतेऽसुते । निऽओकमे । बृहते । बृहते । आ । इत् । अरिः । इन्द्राय ।  
शूष । अर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

गायन्ति । त्वा । गायत्रिणः । अर्चति । अर्कं । अर्किणः । ब्रह्माणः । त्वा ।  
शतक्रतो इति शतऽक्रतो । उत् । उद्वंशमिव । येमिरे ॥ १ ॥ यत् । सानोः । सानुं ।  
आ । अरुहत् । भृरिं । अस्पर्ष्ट । कर्त्वम् । तत् । इन्द्रः । अर्थं । चेतति । यूथेन ।  
वृष्णिः । एजति ॥ २ ॥ युध्वा । हि । केशिना । हरी इति । वृषणा । कक्ष्यप्रा ।  
अथा । नः । इन्द्रं । सोमऽपाः । गिरां । उपऽश्रुतिं । चर ॥ ३ ॥

एहि स्तोमाँ अ॒भि स्व॑राभि गृणी॒ह्या रु॑व ।

ब्रह्म॑ चनो वसो स॒चेन्द्र॑ य॒ज्ञं च॑ वर्धय ॥ ४ ॥

उ॒क्थमिन्द्रा॑य शंस्यं वर्ध॑नं पु॒रुनि॒ष्पिधे॑ ।

श॒क्रो यथा॑ सु॒तेषु॑ णो रारण॑त्स॒ख्येषु॑ च ॥ ५ ॥

तामि॒त्सां॒खित्व॑ ई॒महे॒ तं रा॑ये तं सु॒वीर्ये॑ ।

स श॒क्र उ॒त नः॑ श॒क्रदिन्द्रो॑ वसु॒ दय॑मानः ॥ ६ ॥ १९ ॥

सु॒विवृ॑तं सु॒निर॒जमिन्द्र॑ त्वादा॑तमि॒द्यशः॑ ।

ग॒वामप॑ व्र॒जं वृ॑धि कृ॒णुष्व॑ राधो॑ अ॒द्रि॒वः ॥ ७ ॥

न॒हि त्वा॑ रोद॑सी उ॒भे ऋ॒घ्राय॑मा॒णमि॒न्वतः॑ ।

जे॒षः स्व॑र्वतीर॒पः सं गा॑ अ॒स्मभ्यं॑ धू॒नुहि॑ ॥ ८ ॥

आ । इ॒हि । स्तोमा॑न् । अ॒भि । स्व॑र । अ॒भि । गृ॒णी॒हि । आ । रु॑व । ब्रह्म॑ । च॒ । नः॑ ।  
वसो॑ इति । सचा॑ । इंद्र॑ । य॒ज्ञं । च॒ । वर्ध॑य ॥ ४ ॥ उ॒क्थं । इंद्रा॑य । शंस्यं॑ । वर्ध॑नं ।  
पु॒रु॒नि॒ष्पि॒धे । श॒क्रः । यथा॑ । सु॒तेषु॑ । नः॑ । रार॑णत् । स॒ख्येषु॑ । च ॥ ५ ॥ तम् । इत् ।  
सा॒खि॒त्वे । ई॒महे॒ । तं । रा॑ये । तं । सु॒वीर्ये॑ । सः । श॒क्रः । उ॒त । नः॑ । श॒क्रत् ।  
इन्द्रः॑ । वसु॑ । दय॑मानः ॥ ६ ॥ १९ ॥ सु॒विवृ॑तं । सु॒निः॒अजं॑ । इंद्र॑ । त्वा॒दा॑तं । इत् ।  
यश॑ । ग॒वां । अप॑ । व्र॒जं । वृ॑धि । कृ॒णुष्व॑ । राधो॑ । अ॒द्रि॒वः ॥ ७ ॥ न॒हि । त्वा॑ ।  
रोद॑सी इति । उ॒भे इति॑ । ऋ॒घ्राय॑मा॒णं । इन्व॑तः । जे॒षः । स्व॑र्वतीः । अ॒पः । सं ।  
गाः । अ॒स्मभ्यं॑ । धू॒नुहि॑ ॥ ८ ॥ आश्रु॑त्स॒कर्णं । श्रु॒धि । हव॑ं । नु । चि॒त् । दृ॒धि॒ष्व ।



आश्रुत्कर्णं श्रुधी हवं नू चिदधिष्व मे गिरः ।

इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

विद्वा हि त्वा वृषंतमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।

वृषंतमस्य हूमह ऊनिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिव ।

नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

परि त्वा गिर्विणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।

वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ १-८ जेता सावुन्मन्दस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥ गान्धार स्वरः ॥

( ११ ) इंद्रं विश्वां अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

रथितमं रथिनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

मे । गिरः । इंद्रं । स्तोमं । इमं । मम । कृष्व । युजः । चित् । अंतरं ॥९॥ विद्वा ।

हि । त्वा । वृषन्तमं । वाजेषु । हवनश्रुतं । वृषन्तमस्य । हूमहे । ऊनिं । सहस्र-

सातमां ॥ १० ॥ आ । तु । नः । इंद्रं । कौशिक । मन्दसानः । सुतं । पिव ।

नव्यं । आयुः । प्र । सु । तिर । कृधी । सहस्रसां । ऋषिं ॥ ११ ॥ परि । त्वा ।

गिर्विणः । गिरः । इमाः । भवन्तु । विश्वतः । वृद्धायुः । अनु । वृद्धयः । जुष्टाः ।

भवन्तु । जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

इंद्रं । विश्वाः । अवीवृधन् । समुद्रव्यचसं । गिरः । रथितमं ।

रथिनां । वाजानां । सत्पतिं । पतिं ॥ १ ॥

सख्ये तं इन्द्रं वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्युतयः ।

यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

पुरां भिन्दुर्युवां कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्विवो विलम् ।

त्वां देवा अविभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।

विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

सख्ये । ते । इन्द्रं । वाजिनः । मा । भेम । शवसः । स्पते । त्वां । अभि । प्र । नोनुमः ।

जेतारं । अपराऽजितं ॥ २ ॥ पूर्वीः । इन्द्रस्य । रातयः । न । वि । दस्यन्ति । ऊतयः ।

यदि । वाजस्य । गोऽमतः । स्तोतृऽभ्यः । मंहते । मघं ॥ ३ ॥ पुरां । भिन्दुः । युवां ।

कविः । अमितऽओजाः । अजायत । इन्द्रः । विश्वस्य । कर्मणः । धर्ता । वज्री ।

पुरुऽस्तुतः ॥ ४ ॥ त्वं । वलस्य । गोऽमतः । अप । अवः । अद्विषुः । विलं ।

त्वां । देवाः । अविभ्युषः । तुज्यमानासः । आविषुः ॥ ५ ॥ तव । अहं । शूर ।

रातिभिः । प्रति । आयं । सिन्धुं । आऽवदन् । उप । अतिष्ठन्त । गिर्वणः । विदुः ।

। तस्य । कारवः ॥ ६ ॥ मायाभिः । इन्द्रं । मायिनं । त्वं । शुष्णं । अव । अ-

० । विदुः । ते । तस्य । मेधिराः । तेषां । श्रवांसि । उत् । त्तिर ॥७॥ इन्द्रं । ईशानं ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमां अनूषत ।

सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥ २१ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ १२ ॥ १-१२ मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज स्वरः ॥

( १२ ) अग्निं द्रुतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्वपतिम् ।

हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तवहिषे ।

अस्मि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

ओजसा । अभि । स्तोमाः । अनूषत । सहस्रं । यस्य । रातयः । उत । वा । मन्ति ।  
भूयसीः ॥ ८ ॥ २१ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अग्नि । द्रुतं । वृणीमहे । होतारं । विश्ववेदसम् । अस्य । यज्ञस्य । सुक्रतुम् ॥ १ ॥  
अग्निऽअग्नि । हवीमऽभिः । सदा । हवन्त । विश्वपति । हव्यवाहं । पुरुऽप्रियं ॥ २ ॥  
अग्ने । देवान् । इहा । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तवहिषे । अस्मि । होता ।  
नः । ईड्यः ॥ ३ ॥

तां उ॒श॒तो वि बो॒धय॒ यद॒ग्ने यासि॑ दू॒त्यंम ।

दे॒वैरा सं॒त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥

घृता॑ह॒वन दी॒दिवः॑ प्र॒ति स्म॑ रिष॒तो द॒ह ।

अ॒ग्ने त्वं र॒क्षस्वि॑नः ॥ ५ ॥

अ॒ग्निना॒ग्निः संमि॑ध्यते क॒विर्गृ॒हप॑तिर्युवा॑ ।

ह॒व्यवा॒द् जु॒ह्वास्यः॑ ॥ ६ ॥ २२ ॥

क॒विम॒ग्निमु॑प॒ स्तुहि॑ स॒त्यध॑र्माणम॒ध्वरे॑ ।

दे॒वम॑मीव॒चात॑नम् ॥ ७ ॥

यस्त्वा॑म॒ग्ने ह॒विष्प॑तिर्दू॒तं दे॒व स॒पर्य॑ति ।

तस्य॑ स्म प्रा॒विता॑ भ॒व ॥ ८ ॥

यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्मा॑ अ॒विवा॑सति ।

तस्मै॑ पा॒वक॑ मृ॒ळय॑ ॥ ९ ॥

स नः॑ पा॒वक॑ दी॒दिवो॑ग्ने॒ देवाँ॑ इ॒हा व॑ह ।

उ॒प॑ य॒ज्ञं ह॒विश्च॑ नः ॥ १० ॥

तान् । उ॒श॒तः । वि । बो॒धय॒ । यत् । अ॒ग्ने । यासि॑ । दू॒त्यं । दे॒वैः  
 आ । सं॒त्सि । ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥ घृ॒तऽआ॒ह॒वन । दी॒दि॒वः । प्र॒ति । स्म । रिष॒तः  
 द॒ह । अ॒ग्ने । त्वं । र॒क्षस्वि॑नः ॥ ५ ॥ अ॒ग्निना॑ । अ॒ग्निः । सं । इ॒ध्यते॑ । क॒विः  
 गृ॒हऽप॑तिः । युवा॑ । ह॒व्य॒वा॒द् । जु॒हुऽआ॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥ क॒विं । अ॒ग्निं । उ॒प॑  
 स्तु॒हि । स॒त्यध॑र्माणं । अ॒ध्वरे॑ । दे॒व । अ॒मीव॑ऽचा॒त॑नम् ॥ ७ ॥ यः । त्वां । अ॒ग्ने  
 ह॒विःऽप॑तिः । दू॒तं । दे॒व । स॒पर्य॑ति । तस्य॑ । स्म । प्रऽअ॒वि॒ता । भ॒व ॥ ८ ॥  
 यः । अ॒ग्निं । दे॒वऽवी॑तये । ह॒विष्मा॑न् । अ॒ज॒विवा॑सति । तस्मै॑ । पा॒वक॑ । मृ॒ळय॑  
 ॥ ९ ॥ सः । नः । पा॒वक॑ । दी॒दि॒वः । अ॒ग्ने । दे॒वान् । इ॒हा । आ । व॒ह । उ॒प॑

स नः स्तवान् आ भर गायत्रेण नवीयसा ।

रधिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

अग्ने शुक्लेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहृतिभिः ।

इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

॥ १३ ॥ मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ १ ॥ देवता-इध्म. समिद्धो वाभि । २ तनूनपात् । ३ नराशस । ४ इच्छ । ५ बहिः । ६ देवीद्वरि । ७ उपासानत्ता । ८ देव्यो होतारौ प्रचेतसौ । ९ तिस्रो देव्य सरस्वतीका-भारत्य । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतयः ॥ गायत्री छन्द ॥ षड्ज स्वरः ॥

( १३ ) सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।

होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

मधुमन्तं तनूनपायज्ञं देवेषु नः कवे ।

अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।

मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह ।

असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

यज्ञं । हविः । च । न ॥ १० ॥ सः । नः । स्तवानः । आ । भर । गायत्रेण । नवीयसा । रधिं । वीरवतीं । इषं ॥ ११ ॥ अग्ने । शुक्लेण । शोचिषा । विश्वाभिः । देवहृतिभिः । इमं । स्तोमं । जुषस्व । नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

सुसमिद्धः । नः । आ । वह । देवान् । अग्ने । हविष्मते । होतरिति । पावक । यक्षि । च ॥ १ ॥ मधुमन्तं । तनूनपात् । यज्ञं । देवेषु । नः । कवे । अद्य । कृणुहि । वीतये ॥ २ ॥ नराशंसं । इह । प्रियं । अस्मिन् । यज्ञे । उप । ह्वये । मधुजिह्वं । हविष्कृतं ॥ ३ ॥ अग्ने । सुखतमे । रथे । देवान् । ईळितः । आ । वह । अभि । होता । मनुर्हितः ॥ ४ ॥

स्तृणीत ब॒र्हिरानु॑ष॒घृत॑पृ॒ष्ठं मनी॑षिणः ।

यत्रामृत॑स्य च॒क्षणम् ॥ ५ ॥

वि श्र॑यन्तामृतावृ॒धो द्वारो॑ दे॒वीरस॑श्चतः ।

अ॒द्या नूनं॑ च॒ यष्ट॑वे ॥ ६ ॥ २४ ॥

नक्तो॑षसा॒ सुपेश॑सास्मि॒न्यज्ञ॑ उप॒ ह्ये ।

इ॒दं नो॑ ब॒र्हिरा॑सदे॒ ॥ ७ ॥

ता सु॑जि॒ह्वा उप॑ ह्ये॒ होतार॑ा दै॒व्या क॒वी ।

य॒ज्ञं नो॑ य॒क्षता॑मिमम् ॥ ८ ॥

इ॒ळा सर॑स्वती म॒ही तिस्रो॑ दे॒वीर्मयो॑भूवः ।

ब॒र्हिः सी॑दन्त्व॒स्रिधः॑ ॥ ९ ॥

इ॒ह त्वष्टा॑रम॒ग्रियं॑ वि॒श्वरूप॑मुप॒ ह्ये ।

अ॒स्माकं॑मस्तु॒ केवलः॑ ॥ १० ॥

स्तृणीत । ब॒र्हिः । आ॒नु॒षक् । घृ॒तऽपृ॒ष्ठं । म॒नी॒षि॒णः । यत्र । अ॒मृत॑स्य । च॒क्षणम् ॥५॥  
 वि । श्र॑यन्तां । ऋ॒तऽवृ॒धः । द्वा॒रः । दे॒वीः । अ॒स॒श्चतः॑ । अ॒द्य । नून॑ । च॒ । यष्ट॑वे ॥६॥२४॥  
 नक्तो॑षसा । सु॒पेश॑सा । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । उप॑ । ह्ये । इ॒दं । नः । ब॒र्हिः । आ॒स॒दे॑ ।  
 ॥७॥ ता । सु॑जि॒ह्वौ । उप॑ ह्ये । होतार॑ा । दै॒व्या । क॒वी इति॑ । य॒ज्ञं । नः । य॒क्षतां॑ ।  
 इ॒मं ॥ ८ ॥ इ॒ळा । सर॑स्वती । म॒ही । तिस्रः॑ । दे॒वीः । म॒यःऽभू॑वः । ब॒र्हिः ।  
 सी॑दन्तु । अ॒स्रिधः॑ ॥ ९ ॥ इ॒ह । त्वष्टा॑रं । अ॒ग्रियं॑ । वि॒श्वरूपं॑ । उप॑ । ह्ये ।  
 अ॒स्माकं॑ । अ॒स्तु । के॒वलः॑ ॥ १० ॥ अ॒व । सृ॒ज । व॒नस्प॑ते । दे॒व । दे॒वेभ्यः॑ ।

अव॑ सृजा वनस्पते॑ देव॑ देवेभ्यो॑ ह॒विः ।

प्र दातुर॑स्तु चेत॑नम् ॥ ११ ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॒णोत॑नेन्द्रा॒य यज्व॑नो गृहे ।

तत्र॑ देवा॑ उप॑ ह्ये ॥ १२ ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ १-१२ मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ पङ्क्त्यं स्वरः ॥

( १४ ) ऐभिर॑ग्ने दु॒वो गि॒रो विश्वे॑भिः सोम॑पीतये ।

दे॒वेभि॑र्या॒हि यक्षि॑ च ॥ १ ॥

आ त्वा॑ क॒र्णा अ॒हूष॑त गृ॒णान्ति॑ विप्र॒ ते धि॑र्यः ।

दे॒वेभि॑र॒ग्न आ ग॑हि ॥ २ ॥

इन्द्र॑वा॒यू बृ॒हस्प॑ति॑ मि॒त्राग्निं॑ पू॒षणं॑ भ॒गम् ।

आदि॑त्यान्मा॒रुतं॑ ग॒णम् ॥ ३ ॥

प्र वो॑ भ्रियन्त॒ इन्द्र॑वो मत्स॒रा मा॑दयि॒ष्णवः॑ ।

द्र॒प्सा म॑ध्व॒श्चमू॑षदः ॥ ४ ॥

ह॒विः । प्र । दा॒तुः । अ॒स्तु । चेत॑नं ॥ ११ ॥ स्वाहा॑ । य॒ज्ञं । कृ॒णोत॑न । इं॒द्राय॑ । यज्व॑नः । गृ॒हे । तत्र॑ । दे॒वान् । उप॑ । ह्ये ॥ १२ ॥ २५ ॥

आ । ए॒भिः । अ॒ग्ने । दु॒वः । गि॒रः । विश्वे॑भि । सोम॑पीतये । दे॒वेभिः । या॒हि । यक्षि॑ । च ॥ १ ॥ आ । त्वा॑ । क॒र्णाः । अ॒हूष॑त । गृ॒णान्ति॑ । विप्र॒ ते । धि॑र्यः । दे॒वेभिः । अ॒ग्ने । आ । ग॑हि ॥ २ ॥ इं॒द्रवा॒यू इति॑ । बृ॒हस्प॑ति॑ । मि॒त्रा । अ॒ग्निं । पू॒षणं॑ । भ॒गं । आदि॑त्यान् । मा॒रुतं॑ । ग॒ण ॥ ३ ॥ प्र । वः । भ्रि॒यन्ते । इन्द्र॑वः । मत्स॒राः । मा॑दयि॒ष्णवः॑ । द्र॒प्साः । म॑ध्वः । च॒मू॒षदः॑ ॥ ४ ॥

ईळते त्वांसवस्यवः कर्णासो वृक्तर्षर्हिषः ।

हृविष्मन्तो अरुडतः ॥५॥

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः ।

आ देवान्त्सोमपीतये ॥६॥२६॥

तान्यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि ।

मध्वः सुजिह पायय ॥ ७ ॥

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिवन्तु जिहयाँ ।

मधोरग्ने वर्षत्कृति ॥ ८ ॥

आकीँ सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उष्वुधः ।

विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्ने इन्द्रेण वायुनाँ ।

पिवाँ मित्रस्य धामाभिः ॥१०॥

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषुँ सीदसि ।

सेमं नोँ अध्वरं यज ॥ ११ ॥

ईळते । त्वाँ । अ॒व॒स्य॒वः । कर्णा॑सः । वृ॒क्त॒र्ष॒र्हिषः । हृ॒विष्म॑न्तः । अ॒रु॒ड॒तः ॥ ५ ॥ घृ॒त॒पृ॒ष्ठाः । म॒नो॒यु॒जः । ये । त्वा । वह॑न्ति । वह॒न॒यः । आ । दे॒वान् । सोम॑पीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥ तान् । यज॑त्रान् । ऋ॒ता॒वृ॒धोऽग्ने॑ । प॒त्नी॑वतस्कृधि । मध्वः । सु॒जि॒ह । पा॒य॒य ॥७॥ ये । यज॑त्राः । ये । ई॒ड्याः । ते । ते । पि॒व॒न्तु । जि॒ह॒याँ । मधोः । अ॒ग्ने । वर्ष॑त्कृति ॥८॥ आ॒कीँ । सूर्य॑स्य । रो॒च॒ना॒त् । विश्वान् । दे॒वान् । उ॒षः॒वु॒धः । वि॒प्रः । हो॒ता । इ॒ह । व॒क्ष॒ति ॥९॥ विश्वे॑भिः । सो॒म्यं । मधुँ । अ॒ग्ने । इ॒न्द्रे॑ण । वा॒यु॒नाँ । पि॒वाँ । मि॒त्र॒स्य । धा॒म॒ाभिः ॥१०॥ त्वं । हो॒ता । मनु॑ःहितः । अ॒ग्ने । य॒ज्ञे॒षु । सी॒द॒सि । सः । इ॒मं । नः । अध्व॑रं ।



युक्ष्वा अरुषी रथे हरितां देव रोहितः ।

ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

॥ १५ ॥ १-१२ मेधातिपि काण्व ऋषिः ॥ देवता-ऋतव । १ इन्द्र । २ मरुतः । ३ त्वष्टा ।  
४ अभि । ५ इन्द्रः । ६ मित्रावरुणो । ७-१० द्रविणोदाः । ११ अश्विनो । १२ अग्नि ॥ गायत्री इन्द्रः ॥  
पङ्क, स्वः ॥

( १५ ) इन्द्र सोमं पिबं ऋतुना त्वा विशन्तिवन्दवः ।

मत्स्रामस्तदोकसः ॥ १ ॥

मरुतः पिबन्त ऋतुना पोत्रायज्ञं पुनीतन ।

युयं हि ष्टा सुदानवः ॥ २ ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबं ऋतुना ।

त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु ।

परि भूष पिबं ऋतुना ॥ ४ ॥

यज्ञ ॥ ११ ॥ युक्ष्वा । हि । अरुषीः । रथे । हरिताः । देव । रोहितः । ताभिः ।  
देवान् । इहा । आ । वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

इन्द्रं । सोमं । पिबं । ऋतुना । आ । त्वा । विशन्तु । इन्द्रवः । मत्स्रामः ।  
तनऽओकसः ॥ १ ॥ मरुतः । पिबन्त । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञं । पुनीतन ।  
युयं । हि । ष्ट । सुदानवः ॥ २ ॥ अभि । यज्ञं । गृणीहि । नः । ग्नावः । नेष्टरिति ।  
पिबं । ऋतुना । त्वं । हि । रत्नधाः । असि ॥ ३ ॥ अग्ने । देवान् । इहा ।  
आ । वह । सादया । योनिषु । त्रिषु । परि । भूष । पिबं । ऋतुना ॥ ४ ॥

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिवा सोममृत्तूरनु ।

तवेहि सख्यमस्तृतम ॥ ५ ॥

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम ।

ऋतुना यज्ञमांशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।

यज्ञेषु देवमीळने ॥ ७ ॥

द्रविणोदा ददानु नो वसन्ति यानि शृण्वरे ।

देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।

नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

यत्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे ।

अधं स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

ब्राह्मणाव । इन्द्र । राधसः । पिवा । सोमं । ऋतून् । अनु ।  
 त्वं । इत् । हि । सख्यं । अस्तृतं ॥ ५ ॥ युवं । दक्षं । धृतव्रता ।  
 मित्रावरुणा । दुःसदभं । ऋतुना । यज्ञं । आंशाथे इति ॥ ६ ॥ २८ ॥ द्रविणःसदाः ।  
 द्रविणसः । ग्रावहस्तासः । अध्वरे । यज्ञेषु । देवं । ईळते ॥ ७ ॥ द्रविणःसदाः । ददातु ।  
 नः । वसन्ति । यानि । शृण्वरे । देवेषु । ता । वनामहे ॥ ८ ॥ द्रविणःसदाः । पिपी-  
 षति । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत । नेष्ट्राव । ऋतुभिः । इष्यत ॥ ९ ॥ यत् । त्वा ।  
 । ऋतुभिः । द्रविणःसदः । यजामहे । अधं । स्म । नः । ददिः । भव ॥ १० ॥  
 अश्विना । पिवंतं । मधु । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी । शुचिऽव्रता । ऋतुना । यज्ञऽ-

अश्विना पिबंतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।

ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।

देवान्देवयते यज्ञ ॥ १२ ॥ २९ ॥

॥ १६ ॥ १-९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

( १६ ) आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।

इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः ।

इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

इन्द्रं प्रातर्हवामहे इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

उप नः सुतमा गृहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।

सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

वाहसा ॥ ११ ॥ गार्हपत्येन । संत्य । ऋतुना । यज्ञनीः । असि । देवान् । देवयते । यज्ञ ॥ १२ ॥ २९ ॥

आ । त्वा । वहन्तु । हरयः । वृषणं । सोमपीतये । इन्द्रं । त्वा । सूरचक्षसः ॥ १ ॥  
 इमाः । धानाः । घृतस्नुवः । हरी इति । इह । उप । वक्षतः । इन्द्रं । सुखतमे । रथे ॥ २ ॥  
 इन्द्रं । प्रातः । हवामहे । इन्द्रं । प्रयति । अध्वरे । इन्द्रं । सोमस्य । पीतये ॥ ३ ॥  
 उप । नः । सुतं । आ । गृहि । हरिभिः । इन्द्रं । केशिभिः । सुते । हि । त्वा । हवामहे ॥ ४ ॥

सेमं नः स्तोममा गृह्यपेदं सर्वनं सुतम् ।

गौरो न तृषितः पिव ॥५॥ ३० ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि वर्हिषि ।

तां इन्द्र सहसे पिव ॥ ६ ॥

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्नमः ।

अथा सोमं सुतं पिव ॥ ७ ॥

विश्वमित्सर्वनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति ।

वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।

स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

॥ १७ ॥ १-९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः-२ यवमभ्या विराङ् गायत्री ।  
४ पादनिचृद् गायत्री । ५ भुरिगाचि गायत्री । ६ निचृद्गायत्री । ८ पिपीलिकामभ्या निचृद्गायत्री । ९, ३  
७, ९, गायत्री ॥ पङ्क्तयः स्वः ॥

सः । इमं । नः । स्तोमं । आ । गृह्ये । उप । इदं । सर्वनं । सुतं । गौरः । न । तृषितः । पिव  
॥ ५ ॥ ३० ॥ इमे । सोमासः । इन्दवः । सुतासः । अधि । वर्हिषि । तान् । इन्द्र ।  
सहसे । पिव ॥ ६ ॥ अयं । ते । स्तोमः । अग्रियः । हृदिस्पृक् । अस्तु । शन्नमः ।  
अर्थ । सोमं । सुतं । पिव ॥ ७ ॥ विश्वं । इत् । सर्वनं । सुतं । इन्द्रः । मदाय ।  
गच्छति । वृत्रहा । सोमपीतये ॥ ८ ॥ सः । इमं । नः । कामं । आ । पृण । गोभिः ।  
श्वैः । शतक्रतो इति शतः क्रतो । स्तवाम । त्वा । सुऽस्वाध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

( १७ ) इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।

ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।

धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

अनुक्रामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।

ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनां ।

भूयाम वाज्रदाव्नाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।

ऋतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।

स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

इन्द्रावरुण वामहं हवे चित्राय राधसे ।

अस्मान्तसु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्व ।

अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

इन्द्रावरुणयोः । अहं । सम्राजोः । अवः । आ । वृणे । ता । नः । मृळातः । ईदृशे  
 ॥ १ ॥ गन्तारा । हि । स्थः । अवसे । हवं । विप्रस्य । मावतः । धर्तारा । चर्षणीनां  
 ॥ २ ॥ अनुक्रामं । तर्पयेथां । इन्द्रावरुणा । रायः । आ । ता । वां । नेदिष्ठं ।  
 ईमहे ॥ ३ ॥ युवाकु । हि । शचीनां । युवाकु । सुमतीनां । भूयाम । वाज्रदाव्नां ।  
 ॥ ४ ॥ इन्द्रः । सहस्रदाव्नां । वरुणः । शंस्यानां । ऋतुः । भवति । उक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥  
 तयो । इत् । अवसा । वयं । सनेम । नि । च । धीमहि । स्यात् । उत । प्ररेचनं  
 ॥ ६ ॥ इन्द्रावरुणा । वां । अहं । हवे । चित्राय । राधसे । अस्मान् । मु । जिग्युषः ।  
 कृतं ॥ ७ ॥ इन्द्रावरुणा । नू । नु । वां । सिषासन्तीषु । धीषु । आ । अस्मभ्यं ।  
 शर्म । यच्छतं ॥ ८ ॥

प्रवा॑मश्रोतु मुष्टु॒तिरिन्द्रा॑वरुण॒ यां हुवे ।

यामृ॒धार्थे॑ स॒धस्तु॑तिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ १८ ॥ १-९. मेवातिथि काण्व ऋषिः ॥ देवता १-३ ब्रह्मणस्पति । ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सामथ्र ।  
५ बृहस्पतिदक्षिणे । ६-८ सदसस्पतिः । ९ सदसस्पतिर्नारागसो वा ॥ छन्दः-१ विराट् गायत्री । ३, ९ ८  
पिपीलिकामभ्या निचृद्गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ पादनिचृद्गायत्री । २, ७, ९ गायत्री ॥ पट्जः स्व

( १८ ) सोमानं॑ स्वरणं॑ कृणुहि॑ ब्रह्मणस्पते ।

कक्षी॑वन्तं॑ य औशि॒जः ॥ १ ॥

यो रे॒वान्यो॑ अ॒मीव॒हा वसु॑वित्पु॒ष्टिव॑र्धनः ।

स नः॑ सिषक्त॒ यस्तुरः॑ ॥ २ ॥

मा नः॑ शंसो॒ अर॑रूपो धूर्तिः॑ प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य ।

रक्षा॑णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

स वा॑ वीरो न रिष्यति॒ यमिन्द्रो॑ ब्रह्मण॒स्पतिः॑ ।

सोमो॑ हिनोति॒ मर्त्यम् ॥ ४ ॥

त्वं तं॑ ब्रह्मणस्पते॒ सोम॑ इन्द्रश्च॒ मर्त्यम् ।

दक्षिणा॑ पा॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

प्र । वां । अ॒श्रोतु । सु॒स्तुतिः । इंद्रा॑वरुणा । यां । हुवे । यां । ऋ॒धार्थे॑ इति ।  
स॒धस्तु॑तिं ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सोमानं॑ स्वरणं॑ कृणुहि । ब्रह्मणः॑ । पते । कक्षी॑वन्तं । यः । औशि॒जः ॥ १ ॥ यः ।  
रेवान् । यः । अ॒मीव॒हा । वसु॑वित् । पु॒ष्टिव॑र्धनः । सः । नः । मिसक्तु । यः । तुरः  
॥ २ ॥ मा । नः । शंसः । अर॑रूपः । धूर्तिः । प्रण॒ङ् । मर्त्य॑स्य । रक्षा॑णः । नः । ब्रह्मणः॑ । पते ।  
॥ ३ ॥ सः । वा॑ । वीरः । न । रिष्यति॒ । यं । इंद्रः॑ । ब्रह्मणः॑ । पतिः । सोमः॑ । हिनोति॒ ।  
मर्त्यं ॥ ४ ॥ त्वं । तं । ब्रह्मणः॑ । पते । सोमः॑ । इंद्रः॑ । च । मर्त्यं । दक्षिणा॑ । पा॒तु ।  
अंह॑सः ॥ ५ ॥ ३४ ॥ सद॑सः । पतिः । अ॒द्भुतं । प्रियं । इंद्र॑स्य । काम्यं । स॒नि ।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य कास्यम् ।

सुनिं मेधामंघासिषम् ॥ ६ ॥

यस्माद्भुते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥

आद्भोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् ।

होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् ।

दिवो न सन्नमखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

॥ १९ ॥ १-९ मेधातिपि काण्व ऋषिः ॥ देवता अग्निर्मरुतश्च ॥ छन्दः-रनिचृद्रायत्री । ९ पिपीलि-  
कामभ्या निचृद्रायत्री । १, ३-८ गायत्री ॥ षड्ज. स्वर. ॥

( १९ ) प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र ह्यसे ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ १ ॥

नृहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ २ ॥

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्भुहः ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ३ ॥

मेधां । अयासिषं ॥ ६ ॥ यस्मात् । ऋते । न । सिध्यति । यज्ञः । विपश्चितः ।  
चन । सः । धीनां । योगं । इन्वति ॥ ७ ॥ आत् । ऋद्भोति । हविःकृतिं । प्राञ्चं ।  
कृणोति । अध्वरं । होत्रा । देवेषु । गच्छति ॥ ८ ॥ नराशंसं । सुधृष्टमं । अपश्यं ।  
सप्रथःस्तमं । दिवः । न । सन्नमखसं ॥ ९ ॥ ३५ ॥

प्रति । त्यं । चारुं । अध्वरं । गोपीथाय । प्र । ह्यसे । मरुत्सभिः । अग्ने ।  
आ । गृहि ॥ १ ॥ नृहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुं । परः । मरुत्सभिः ।  
अग्ने । आ । गृहि ॥ २ ॥ ये । महः । रजसः । विदुः । विश्वे । देवामः । अद्भुहं ।  
मरुत्सभिः । अग्ने । आ । गृहि ॥ ३ ॥

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ४ ॥

ये शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ६ ॥

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ७ ॥

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ८ ॥

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।

मरुद्भिरग्न आ गृहि ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये । उग्राः । अर्क । आनृचुः । अनाधृष्टास । ओजसा । मरुत्-  
 ऽभिः । अग्ने । आ । गृहि ॥ ४ ॥ ये । शुभ्राः । घोरवर्षसः ।  
 सुक्षत्रासः । रिशादस । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गृहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥ ये ।  
 नाकस्य । अधि । रोचने । दिवि । देवासः । आसते । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गृहि  
 ॥ ६ ॥ ये । ईङ्खयन्ति । पर्वतान् । तिरः । समुद्रं । अर्णवं । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ ।  
 गृहि ॥ ७ ॥ आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिभिः । तिरः । समुद्रं । ओजसा । मरुत्ऽभिः ।  
 अग्ने । आ । गृहि ॥ ८ ॥ अभि । त्वा । पूर्वपीतये । सृजामि । सोम्यं । मधु ।  
 मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गृहि ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



## ॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥



॥ २० ॥ १-८ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता-ऋभवः ॥ छन्दः- ३ विराड् गायत्री । ४ निचृ-

द्वायत्री । ५ ८ पिपीलिका मन्था निचृद्वायत्री । १, २, ६, ७ गायत्री ॥ षड्ज स्वर ॥

( २० ) अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।

अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरीं ।

शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं ।

तक्षन्धेनुं सबर्दुवाम् ॥ ३ ॥

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः

ऋभवो विष्टयक्रत ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अयं । देवाय । जन्मने । स्तोमः । विप्रेभिः । आसया । अकारि । रत्नधातमः

॥ १ ॥ ये । इन्द्राय । वचःऽयुजा । ततक्षुः । मनसा । हरीं इति । शमीभिः । यज्ञं ।

आशत ॥२॥ तक्षन् । नासत्याभ्यां । परिज्मान । सुखं । रथं । तक्षन् । धेनुं ।

सबर्दुवाम् ॥ ३ ॥ युवाना । पितरा । पुनरिति । सत्यमन्त्राः । ऋजूयवः । ऋभवः ।

विष्टी । अक्रत ॥ ४ ॥

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।

आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १

उत त्वं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।

अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६

ते नो रत्नानि धत्तन् त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।

एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७

अधारयन्त वह्योऽभजन्त सुकृत्या ।

भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २

॥ २१ ॥ १-६ मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ देवते-इन्द्राग्नी ॥ छन्द -२ पिपीलिकामभ्या निचृद्गाय  
५ निचृद्गायत्री । १, ३, ४, ६, गायत्री ॥ पङ्कः स्वर ॥

( २१ ) इहेन्द्राग्नी उप ह्ये तयोरिस्तोममुश्मसि ।

ता सोमं सोमपातमा ॥ १

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुभता नरः ।

ता गायत्रेषु गायत ॥ २

सं । वो । मदासः । अग्मत । इन्द्रेण । च । मरुत्वता । आदित्येभिः । च  
राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥ उत । त्वं । चमसं । नवं । त्वष्टुः । देवस्य । निःस्कृतं  
अकर्त । चतुरः । पुनरिति ॥ ६ ॥ ते । नः । रत्नानि । धत्तन् । त्रिः । आ  
साप्तानि । सुन्वते । एकं एकं । सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥ अधारयन्त । वह्यः  
अभजन्त । सुकृत्या । भागं । देवेषु । यज्ञियं ॥ ८ ॥ २ ॥

इह । इन्द्राग्नी इति । उप । ह्ये । तयोः । इत् । स्तोमं । उश्मसि । ता । सोमं । सोम  
पातमा ॥ १ ॥ ता । यज्ञेषु । प्र । शंसत । इन्द्राग्नी इति । शुभत । नरः । ता । गायत्रेषु

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।

सोमपा सोमपोतये ॥ ३ ॥

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सर्वनं सूतम् ।

इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उव्वजतम् ।

अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे ।

इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ १-२१ मेधातिथि काण्ड ऋषि ॥ देवता-१-४ अश्विनी ५-८ सविता । ९. १० अग्नि ।  
११ देव्यः । १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाग्न्यः । १३, १४, यावापृथिव्यौ । १५ पृथिवी । १६ विष्णुर्देवो दा । १७-  
२१ विष्णु ॥ छन्द - १-३ ८, १२, १७ १८, पिपीलिकामान्यानिचूद्रायत्री । ९, १९ निचूद्रायत्री । १५  
विराट् गायत्री । ४, ५, ७, ९-११, १३, १४, १६, २०, २१. गायत्री ॥ षड्ज स्वरः ॥

( २२ ) प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

गायत ॥ २ ॥ ता । मित्रस्य । प्रशस्तये । इन्द्राग्नी इति । ता । हवामहे । सोमपा ।

सोमपोतये ॥ ३ ॥ उग्रा । सन्ता । हवामहे । उपे । इदं । सर्वनं । सूतं । इन्द्राग्नी

इति । आ । इह । गच्छतां ॥ ४ ॥ ता । महान्ता । सदस्पती इति । इन्द्राग्नी इति ।

रक्षः । उव्वजतं । अप्रजाः । संतु । अत्रिणः ॥ ५ ॥ तेन । सत्येन । जागृतं । अधि । प्र-

चेतुने । पदे । इन्द्राग्नी इति । शर्म । यच्छतं ॥ ६ ॥ ३ ॥

प्रातःस्युजा । वि । बोधय । अश्विनौ । आ । इह । गच्छतां । अम्य । सोमस्य ।

पीतये ॥ १ ॥

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा ।

अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ।

तया यज्ञं भिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः ।

अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

हिरण्यपाणिमृतये सवितारमुप ह्ये ।

स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि ।

तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।

सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।

दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

या । सु०रथा । रथि०त०मा । उ०भा । दे०वा । दि०वि०स्पृ०शा । अ०श्वि०ना । ता । ह०वा०  
म०हे ॥२॥ या । वां । क०शा । म०धु०म०त०य०श्वि०ना । स०नृ०ता०व०ती । त०या । य०ज्ञं । भि०मि०  
क्ष०तं ॥३॥ न०हि । वां । अ०स्ति । दू०र०के । य०त्र । रथे०न । ग०च्छ०थः । अ०श्वि०ना । सो०मि०नः ।  
गृ०हं ॥४॥ हि०र०ण्य०पा०णि । मृ०त०ये । स०वि०ता०रं । उ०प । ह्ये । सः । चे०त्ता । दे०व०ता । प०दं ।  
॥५॥ ४ ॥ अ०पां । न०पा०तं । अ०व०से । स०वि०ता०रं । उ०प । स्तु०हि । त०स्य । व्र०ता०नि । उ०श्म०सि  
॥ ६ ॥ वि०भ०क्ता०रं । ह०वा०म०हे । व०सोः । चि०त्र०स्य । रा०ध०सः । स०वि०ता०रं । नृ०  
च०क्ष०सं ॥ ७ ॥ स०खा०यः । आ । नि । षी०द०त । स०वि०ता । स्तो०म्यः । नु । नः । दा०ता ।  
रा०धा०ंसि । शु०म्भ०ति ॥ ८ ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।

त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

आ ग्रा अग्न इहावसे होत्रां यविष्ट भारतीम् ।

वरुत्रीं ध्रिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये ।

अग्रार्थीं सोमपीतये ॥ १२ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥

तयोरिद्धृतवत्पयो विप्रां रिहन्ति धीतिभिः ।

गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

अग्ने । पत्नीः । इहा । आ । वह । देवानां । उशतीः । उप । त्वष्टारं ।  
सोमपीतये ॥ ९ ॥ आ । ग्राः । अग्ने । इहा । अवसे । होत्रां । यविष्ट । भारती ।  
वरुत्रीं । ध्रिषणां । वह ॥ १० ॥ ५ ॥ अभि । नः । देवीः । अवसा । महः । शर्मणा ।  
नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः । । सचन्तां ॥ ११ ॥ इहा । इन्द्राणीं । उप । ह्वये ।  
वरुणानीं । स्वस्तये । अग्रार्थीं । सोमपीतये । ॥ १२ ॥ मही । द्यौः । पृथिवी । च ।  
नः । इमं । यज्ञं । मिमिक्षतां । पिपृतां । नः । भरीमभिः ॥ १३ ॥ तयोः । इत ।  
घृतवत् । पयः । विप्राः । रिहन्ति । धीतिभिः । गन्धर्वस्य । ध्रुवे । पदे ॥ १४ ॥

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।

यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

अनो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूङ्कमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सर्वा ॥ १९ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुरान्तम् ॥ २० ॥

तद्विप्रांसो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

स्योना । पृथिवि । भव । अनृक्षरा । निऽवेशनी । यच्छ । नः । शर्म । सऽप्रथः ।

॥१५॥६॥ अतः । देवाः । अवंतु । नः । यतः । विष्णुः । विऽचक्रमे । पृथिव्याः । सप्त ।

धामभिः ॥१६॥ इदं । विष्णुः । वि । चक्रमे । त्रेधा । नि । दधे । पदं । संऽङ्कम् ।

अस्य । पांसुरे ॥ १७ ॥ त्रीणि । पदा । वि । चक्रमे । विष्णुः । गोपा । अदाभ्यः ।

अतः । धर्माणि । धारयन् ॥१८॥ विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि ।

पस्पशे । इन्द्रस्य । युज्यः । सर्वा ॥ १९ ॥ तत् । विष्णोः । परमं । पदं । सदा ।

श्यन्ति । सूरयः । दिविऽव । चक्षुः । आऽन्तम् ॥२०॥ तत् । विप्रांसः । विपन्यवः ।

गृवांसः । सं । इधते । विष्णोः । यत् । परमं । पदं ॥ २१ ॥ ७ ॥

॥ २३ ॥ १—२४ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१ वायु । २, ३ इन्द्रवायू । ४—६ मिश्रावरुणौ । ७—९ इन्द्रो मरुत्वान् । १०—१२ विश्वेदेवाः । १३—१५ पूषा । १६—२२ आपः । २३—२४ अभिः ॥ छन्दः—१—१८ गायत्री । १९ पुरजिष्णिक् । २० अनुष्टुप् । २१ प्रतिष्ठा । २२—२४ अनुष्टुप् ॥ स्वर—१—१८, २१ षड्ज । १९ ऋषभः । २०, २२—२४ गान्धार ॥

( २३ ) तीव्राः सोमांस आ गङ्गाशीर्विन्तः सुता इमे ।

वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये ।

सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।

जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।

ता मिश्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

तीव्राः । सोमांसः । आ । गङ्गा । आशीः । स्वन्तः । सुताः । इमे । वायो इति । तान् । प्रस्थितान् । पिब ॥ १ ॥ उभा । देवा । दिविस्पृशा । इन्द्रवायू इति । हवामहे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥ इन्द्रवायू इति । मनः । जुवा । विप्राः । हवन्ते । ऊतये । सहस्रस्रक्ष्णा । धियः । पती इति ॥ ३ ॥ मित्रं । वयं । हवामहे । वरुणं । सोमपीतये । जज्ञाना । पूतदक्षसा ॥ ४ ॥ ऋतेन । यौ । ऋतस्य । ज्योतिषः । पती इति । ता । मिश्रावरुणा । हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरुतिभिः ।

करतां नः सुरार्धसः ॥ ६ ॥

मरुत्वन्तं हवामहे इन्द्रमा सोमपीतये ।

सजूर्गणेनं तृम्पतु ॥ ७ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूर्षरातयः ।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।

मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये ।

उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥ ९ ॥

जयतामिव तन्यतुमरुतामेति धृष्णुया ।

यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥

हस्काराद्द्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।

मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

वरुणं । प्रऽअविता । भुवत् । मित्रः । विश्वाभिः । ऊतिभिः ।  
करतां । नः । सुऽरार्धसः ॥ ६ ॥ मरुत्वन्तं । हवामहे । इन्द्रं । आ ।  
सोमपीतये । सऽजूर्गणेनं । तृम्पतु ॥७॥ इन्द्रंऽज्येष्ठाः । मरुत्ऽगणाः । देवासः ।  
पूर्षरातयः । विश्वे । मम । श्रुत । हवम् ॥ ८ ॥ हत । वृत्रं । सुऽदानवः । इन्द्रेण । सहसा ।  
युजा । मा । नः । दुःशंसः । ईशत ॥ ९ ॥ विश्वान् । देवान् । हवामहे । मरुतः ।  
सोमऽपीतये । उग्राः । हि । पृश्निऽमातरः ॥ १० ॥ ११ ॥ जयतांऽइव । तन्यतुः । मरुतां ।  
णति । धृष्णुऽया । यत् । शुभं । याथना । नरः ॥ ११ ॥ हस्कारात् । द्विऽद्युतः ।  
परि । अतः । जाताः । अवन्तु । नः । मरुतः । मृळयन्तु । नः ॥ १२ ॥



आ पूषञ्चित्रवर्हिषमावृणे धरुणं दिवः ।

आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

पूषा राजानमावृणिरपगृह्णं गुहां हितम् ।

अविन्दच्चित्रवर्हिषम् ॥ १४ ॥

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ता अनुसेषिधत् ।

गोभिर्यवं न चकृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।

पृञ्चतीर्मधुना पर्यः ॥ १६ ॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।

तानो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

अपो देविरुषं हये यत्र गावः पिबन्ति नः ।

सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।

देवा भवन्त वाजिनः ॥ १९ ॥

आ । पूषन् । चित्रवर्हिषं । आवृणे । धरुणं । दिवः । आ । अज । नष्टं । यथा । पशुं  
 ॥ १३ ॥ पूषा । राजानं । आवृणिः । अपंगृह्णं । गुहां । हितं । अविन्दत् ।  
 चित्रवर्हिषं ॥ १४ ॥ उतो इति । सः । मह्यं । इन्दुभिः । षट् । युक्तान् । अनुसेषिधत् ।  
 गोभिः । यवं । न । चकृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥ अंबयः । यन्ति । अध्वंभिः । जामयः ।  
 अध्वरिष्यतां । पृञ्चतीः । मधुना । पर्यः ॥ १६ ॥ अमूः । याः । उप । सूर्ये । याभिः ।  
 वा । सूर्यः । सह । ताः । नः । हिन्वन्तु । अध्वरं ॥ १७ ॥ अपः । देवीः । उप ।  
 हये । यत्र । गावः । पिबन्ति । नः । सिन्धुभ्यः । कर्त्वं । हविः ॥ १८ ॥ अप्सु । अंतः ।  
 अमृतं । अप्सु । भेषजं । अपां । उत । प्रशस्तये । देवाः । भवन्त । वाजिनः ॥ १९ ॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।

अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥  
आपः पृणति भेषजं वरूथं तन्वेमम ।

ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।

यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम् ॥ २२ ॥  
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।

पयस्वानग्न आ गृहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥  
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मै अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥१२॥५॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ २४ ॥ १-१५ शुन.शेष आजीर्गतिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः । देवता--१ प्रजापति ।  
२ अग्निः । ३-५ रुचिता भगो वा । ६-१५ वरुण. ॥ छन्द.-१ २. ६-१५ त्रिष्टुप् । ३-५ गायत्री ॥  
स्वर-१, २, ६-१५ धैवत. । ३-५ षड्जः ॥

( २४ ) कस्य नूनं कृतमस्यामृतानां मनामहे चारुं देवस्य नाम ।

अप्सु । मे । सोमः । अब्रवीत् । अंतः । विश्वानि । भेषजा । अग्निं ।  
च । विश्वशम्भुवं । आपः । च । विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥ आपः ।  
पृणति । भेषजं । वरूथं । तन्वेमम । ज्योक् । च । सूर्यं । दृशे ॥२१॥ इदं । आपः ।  
प्र । वहत । यत् । किं । च । दुःइतं । मयि । यत् । वा । अहं । अभिदुद्रोहं ।  
यत् । वा । शेषे । उत । अनृतं ॥ २२ ॥ आपः । अद्य । अनु । अचारिषं ।  
रसेन । सं । अगस्महि । पयस्वान् । अग्ने । आ । गृहि । तं । मा । सं । सृज ।  
वर्चसा ॥ २३ ॥ सं । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सं । प्रजया । सं । आयुषा ।  
विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इंद्रः । विद्यात् । सह । ऋषिभिः ॥२४॥१२॥ ५॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

कस्य । नूनं । कृतमस्य । अमृतानां । मनामहे । चारुं । देवस्य । नाम । कः । नः ।

को नो म॒ह्या अ॒दित॒ये पुन॑र्दा॒त्पित॑रं च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ १ ॥  
अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां मना॒महे॑ चारु॑ दे॒वस्य॑ नाम ।

स नो म॒ह्या अ॒दित॒ये पुन॑र्दा॒त्पित॑रं च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ २ ॥  
अ॒भि त्वा॑ दे॒व स॒वित॒रीशा॑नं वा॒र्याणा॑म् ।  
सदा॑वन्भा॒गमी॑महे ॥ ३ ॥

यश्चि॒द्धि तं॑ इ॒त्था भगः॑ शश॒मानः॑ पु॒रा नि॒दः ।  
अ॒द्वेषो॑ हस्त॒योर्द॒धे ॥ ४ ॥  
भग॑भक्तस्य ते व॒यमु॒दशे॑म॒ तवा॑वसा ।

मूर्धा॑नं रा॒य आ॒रभे॑ ॥ ५ ॥ १३ ॥

न॒हि ते॑ क्ष॒त्रं न स॒हो न म॒न्युं व॒यश्च॒नामी॑ प॒तय॑न्त आ॒पुः ।

नेमा॑ आपो॑ अनि॒मिषं॑ चर॒न्तीर्न॑ ये वा॒तस्य॑ प्र॒मिन॑न्त्य॒भ्वम् ॥६॥

म॒ह्यै । अ॒दित॒ये । पुनः॑ । दा॒त् । पि॒तरं॑ । च । दृ॒शेयं॑ । मा॒तरं॑ । च ॥१॥ अ॒ग्नेः । व॒यं ।  
प्र॑थ॒मस्य॑ । अ॒मृता॑नां । मना॒महे॑ । चारु॑ । दे॒वस्य॑ । नाम । सः । नः । म॒ह्यै । अ॒दित॒ये ।  
पुनः॑ । दा॒त् । पि॒तरं॑ । च । दृ॒शेयं॑ । मा॒तरं॑ । च ॥२॥ अ॒भि । त्वा । दे॒व । स॒वितः॑ ।  
ईशा॑नं । वा॒र्याणां॑ । सदा॑ । अ॒वन् । भा॒गं । ई॒महे॑ ॥ ३ ॥ यः । चि॒त् । हि । ते ।  
इ॒त्या । भगः॑ । शश॒मानः॑ । पु॒रा । नि॒दः । अ॒द्वेषः॑ । हस्त॒योः । द॒धे ॥४॥ भग॑-  
भक्तस्य । ते । व॒यं । उ॒त् । अ॒शे॒म । तव॑ । अ॒वसा॑ । मूर्धा॑नं । रा॒यः । आ॒रभे॑ ।  
॥ ५ ॥ १३ ॥ न॒हि । ते । क्ष॒त्रं । न । स॒हः । न । म॒न्युं । व॒यः । च॒न । अ॒मी इति॑ ।  
प॒तय॑न्तः । आ॒पुः । न । इ॒माः । आ॒पः । अ॒नि॒मिषं॑ । चर॑न्ती । न । ये । वा॒तस्य॑ ।  
प्र॒मिन॑न्ति । अ॒भ्वं ॥ ६ ॥

अबुध्रे राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पृतदक्षः ।

नीचीनाः स्थुरुपरिं बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।

अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुनापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८॥

शतं ते राजन्भिषजः सहस्रं मुर्वी गभीरा सुमतिष्ठे अस्तु ।

वार्यस्व दूरे निःकृतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥

अमीय ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहं चिद्विवेयुः ।

अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचारकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविभिः ।

अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११॥

अबुध्रे । राजा । वरुणः । वनस्य । उर्ध्वं । स्तूपं । ददते । पृतदक्षः । नीचीनाः । स्युः ।

उपरिं । बुध्नः । एषां । अस्मे इति । अन्तः । निऽहिताः । केतवः । स्युरिति स्युः ।

॥ ७ ॥ उरुं । हि । राजा । वरुणः । चकार । सूर्याय । पन्थां । अनुऽ-

एतवै । ऊं इति । अपदे । पादा । प्रतिऽधातवे । अकः । उत । अपऽवक्ता ।

हृदयऽविधः । चित् ॥ ८ ॥ शतं । ते । राजन् । भिषजः । सहस्रं । मुर्वी । गभीरा ।

सुऽमतिः । ते । अस्तु । वार्यस्व । दूरे । निऽकृतिं । पराचैः । कृतं । चित् । एनः ।

प्र । मुमुग्धि । अस्मत् ॥ ९ ॥ अमी इति । ये । ऋक्षाः । निऽहितासः । उच्चा ।

नक्तं । ददृश्रे । कुहं । चित् । दिवा । ईयुः । अदब्धानि । वरुणस्य । व्रतानि ।

विऽचारकशत् । चन्द्रमाः । नक्तं । एति ॥ १० ॥१४॥ तत् । त्वा । यामि । ब्रह्मणा ।

वन्दमानः । तत् । आ । शास्ते । यजमानः । हविऽभिः । अहेळमानः । वरुण । इह ।

बोधि । उरुऽशंस । मा । नः । आयुः । प्र । मोषीः ॥ ११ ॥

तदिन्नक्तं तद्दिवा मर्त्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।

शुनःशेषो यमहृद्भूतिः सो अस्मान्नाजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥

शुनःशेषो ह्यहृद्भूतान्निष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अवेनं राजा वरुणः समृज्याद्विद्राँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविभिः ।

क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशंस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथय ।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

॥ २५ ॥ १-२१ शुन शेष अजीगतिर्कृपिः ॥ वरुणो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

( २५ ) यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।

मिनीमसि यविद्यवि ॥ १ ॥

तत् । इत् । नक्तं । तद् । दिवा । मर्त्यं । आहुः । तत् । अयं । केतः । हृदः । आ । वि । चष्टे ।  
 शुनःशेषः । यं । अहृत् । गृभीतः । सः । अस्मान् । राजा । वरुणः । मुमोक्तु ॥ १२ ॥ शुनः-  
 शेषः । हि । अहृत् । गृभीतः । त्रिषु आदित्यं । द्रुपदेषु । बद्धः । अव । एनं । राजा ।  
 वरुणः । समृज्यात् । विद्वान् । अदब्धः । वि । मुमोक्तु । पाशान् ॥ १३ ॥ अव । ते । हेळः ।  
 वरुण । नमःऽभिः । अव । यज्ञेभिः । ईमहे । हविःऽभिः । क्षयन् । अस्मभ्यं । असुर ।  
 प्रचेत इति प्रचेतः । राजन् । एनांसि । शिश्रथः । कृतानि ॥ १४ ॥ उत् । उदुत्तमं ।  
 वरुण । पाशं । अस्मद । अव । अधमं । वि । मध्यमं । श्रथय । अर्थ । वयं ।  
 आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

यत् । चिद । हि । ते । विशः । यथा । प्र । देव । वरुण । व्रत । मिनीमसि ।  
 यविद्यवि ॥ १ ॥

मा नो वधाय हृत्नवे जिहीलानस्य रीरधः ।

मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् ।

गीभिर्वीरुण सीमहि ॥ ३ ॥

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्येऽष्टये ।

वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।

मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।

धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।

वेदं नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

वेदं मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।

वेदाय उपजायते ॥ ८ ॥

मा । नः । वधाय । हृत्नवे । जिहीलानस्य । रीरधः । मा । हृणानस्य ।  
मन्यवे ॥ २ ॥ वि । मृळीकाय । ते । मनः । रथीः । अश्वं । न । संदितं ।  
गीऽभिः । वरुण । सीमहि ॥ ३ ॥ परा । हि । मे । विमन्यवः । पतन्ति । वस्येऽष्ट-  
ष्टये । वयः । न । वसतीः । रुप ॥ ४ ॥ कदा । क्षत्रश्रियं । नरं । आ ।  
वरुणं । करामहे । मृळीकाय । उरुचक्षसं ॥ ५ ॥ १६ ॥ तत् । इत् । ममानं ।  
आशाते इति । वेनन्ता । न । प्र । युच्छतः । धृतव्रताय । दाशुषे ॥ ६ ॥  
वेदं । यः । वीनां । पदं । अन्तरिक्षेण । पततां । वेदं । नावः । समुद्रियः ॥ ७ ॥  
वेदं । मासः । धृतव्रतः । द्वादश । प्रजावतः । वेदं । यः । उपजायते ॥ ८ ॥

वेदं वातस्य वर्तनिमुरोऋष्वस्य बृहतः ।

वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥

नि षसाद् धृतव्रतो वरुणः पस्त्याःस्वा ।

साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥ १७ ॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वा अभि पश्यति ।

कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।

प्र ण आयुषि तारिषत् ॥ १२ ॥

विभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।

परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न दुह्वाणो जनानाम् ।

न देवमभिमानयः ॥ १४ ॥

उत यो मानुषेष्वपि यशश्चक्रे असाम्या ।

अस्माकमुदरेष्वपि ॥ १५ ॥ १८ ॥

वेदं । वातस्य । वर्तनिं । उरोः । ऋष्वस्य । बृहतः । वेदं । ये । अध्यासते ॥ ९ ॥ नि ।  
 षसाद् । धृतव्रतः । वरुणः । पस्त्याःस्वा । आ । साम्राज्याय । सुक्रतुः ॥ १० ॥ १७ ॥  
 अतोः । विश्वानि । अद्भुता । चिकित्वा । अभि । पश्यति । कृतानि । या । च ।  
 कर्त्वा ॥ ११ ॥ सः । नः । विश्वाहा । सुक्रतुः । आदित्यः । सुपथा । करत् । प्र ।  
 ण । आयुषि । तारिषत् ॥ १२ ॥ विभ्रत् । द्रापि । हिरण्ययं । वरुणः । वस्त । निः-  
 णिजं । परि । स्पशः । नि । सेदिरे ॥ १३ ॥ न । यं । दिप्सन्ति । दिप्सवः । न ।  
 दुह्वाणः । जनानां । न । देवं । अभिमानयः ॥ १४ ॥ उत । यः । मानुषेषु । आ ।  
 यशः । चक्रे । अनामि । आ । अस्माकं । उदरेषु । आ ॥ १५ ॥ १८ ॥

परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।

इच्छन्तीरुचक्षसम् ॥ १६ ।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।

होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।

एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय ।

त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च र्गमश्च राजसि ।

स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।

अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ।

॥ २६ ॥ १-१० शुनःशेष आजीगतिर्ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्द - १, ८, ९ आर्ची उष्णिक् । २  
६, निचृद्गायत्री । ३ प्रतिष्ठा गायत्री । ४, १० गायत्री । ५, ७ विराड् गायत्री ॥ स्वरः—१, ८, ९  
ऋषभ । २, ६, ३, ४, १०, ५, ७ षड्ज ॥

परां । मे । यन्ति । धीतयः । गावः । न । गव्यूतीः । अनु । इच्छन्तीः । उरुचक्षसं ॥ १६ ॥  
सं । नु । वोचावहै । पुनः । यतः । मे । मधु । आऽभृतं । होताऽइव । क्षदसे । प्रियं  
॥ १७ ॥ दर्शं । नु । विश्वदर्शतं । दर्शं । रथं । अधि । क्षमि । एताः । जुषत । मे । गिरः  
॥ १८ ॥ इमं । मे । वरुण । श्रुधि । हवं । अद्य । च । मृलय । त्वां । अवस्युः । आ ।  
चके ॥ १९ ॥ त्वं । विश्वस्य । मेधिर । दिवः । च । र्गमः । च । राजसि । सः ।  
यामनि । प्रति । श्रुधि ॥ २० ॥ उत् । उदुत्तमं । मुमुग्धि । नः । वि । पाशं । मध्यमं ।  
चृत । अत्र । अधमानि । जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥



( २६ ) वासि॑ष्वा हि मि॒ये॒ध्व॒ वस्त्रा॑ण्यूर्जा॑ पते ।

सेमं॑ नो॑ अध्व॒रं य॑ज ॥ १ ॥

नि नो॑ होता॒ वरे॑ण्यः सदा॑ यविष्ट॒ मन्म॑भिः ।

अग्ने॑ दि॒वित्म॑ता वचः॑ ॥ २ ॥

आ हि॑ ष्मा॑ सूनवे॑ पि॒तापि॑र्धज॒त्याप॑ये ।

सग्वा॑ सख्ये॒ वरे॑ण्यः ॥ ३ ॥

आ नो॑ ब॒र्ही रि॒शाद॑सो वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।

सीद॑न्तु॒ मनु॑षो यथा ॥ ४ ॥

पूर्व॑ होत॒रस्य॑ नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च ।

इ॒मा उ॒ पु श्रु॑धी॒ गिरः॑ ॥ ५ ॥ २० ॥

यच्चि॑च्छि शश्व॑ता तना॑ दे॒वंदे॒वं यजा॑महे ।

त्वे इ॒ह्यते॑ ह॒विः ॥ ६ ॥

प्रि॒यो नो॑ अस्तु॒ विश॑पति॒र्होता॑ म॒न्द्रो वरे॑ण्यः ।

प्रि॒याः स्व॒ग्रयो॑ व॒यम् ॥ ७ ॥

वासि॑ष्वा । हि । मि॒ये॒ध्व॒ । वस्त्रा॑णि । ऊ॒र्जा॑ । प॒ते । नः । इ॒मं । नः । अध्व॒रं । य॑ज ॥ १ ॥ नि । नः । होता॑ । वरे॑ण्यः । सदा॑ । यविष्ट॒ । मन्म॑भिः । अग्ने॑ । दि॒वि॒त्म॑ता । वचः॑ ॥ २ ॥ आ । हि । स्म । सूनवे॑ । पि॒ता । आ॒भिः । य॒ज॑ति । आ॒प॒ये॑ । सग्वा॑ । सख्ये॒ । वरे॑ण्यः ॥ ३ ॥ आ । नः । ब॒र्ही । रि॒शाद॑सः । वरु॑णः । मि॒त्रः । अ॑र्य॒मा । सीद॑न्तु॒ । मनु॑षः । यथा ॥ ४ ॥ पूर्व॑ । होतः । अस्य । नः । म॒न्द॑स्व । स॒ख्यस्य॑ । च । इ॒माः । ऊं इति॑ । सु । श्रु॑धि । गिरः॑ ॥ ५ ॥ २० ॥ यत् । चि॒त् । हि । शश्व॑ता । तना॑ । दे॒वं॒दे॒वं । यजा॑महे । त्वे इति॑ । इन् । ह्यु॒ते । ह॒विः ॥ ६ ॥ प्रि॒यः । नः । अस्तु॒ । विश॑पतिः । होता॑ । म॒न्द्रः । वरे॑ण्यः । प्रि॒याः । सु॒ऽअ॒ग्रयो॑ । व॒यम् ॥ ७ ॥

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः ।

स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् ।

मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।

चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ।

॥ २७ ॥ १-१३ शुन.शेष आजीगतिर्ऋषिः ॥ देवता-१-१२ अग्निः । १३ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—

१-१२ गायत्री । १३ त्रिष्टुप् ॥ स्वर-१-१२ पङ्कजः । १३ वैवतः ॥

( २७ ) अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।

सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ।

स वा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।

मीड्वान् अस्माकं वभूयात् ॥ २ ॥

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादवायोः ।

प्राहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

सुऽअग्रयः । हि । वार्यं । देवामः । दधिरे । च । नः । सुऽअग्रयः । मनामहे ॥ ८ ।

अथ । नः । उभयेषां । अमृत । मर्त्यानां । मिथः । सन्तु । प्रशस्तयः ॥ ९ ॥ विश्वेभिः

अग्ने । अग्निभिः । इमं । यज्ञं । इदं । वचः । चनः । धाः । सहसः । यहो इति ॥ १० ॥ २१ ॥

अश्वं । न । त्वा । वारवन्तं । वन्दध्या । अग्निं । नमःभिः । सम्राजन्तं ।

अध्वराणां ॥ १ ॥ सः । वा । नः । सूनुः । शवसा । पृथुप्रगामा । सुशेवः ।

मीड्वान् । अस्माकं । वभूयात् ॥ २ ॥ सः । नः । दूरात् । च । आसात् । च ।

नि । मर्त्यात् । अवायोः । प्राहि । सदं । इत् । विश्वऽआयुः ॥ ३ ॥

इमम् पु त्वमस्माकं सनि गायत्रं नव्यांसम् ।

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।

सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।

स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।

वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥

स वाजं विश्वर्षणिरर्वद्विरस्तु तरुता ।

विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

जराबोध तद्विविद्धि विशेविशे यज्ञियाय ।

स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥ २३ ॥

इमं । ऊं इति । मु । त्वं । अस्माकं । सनि । गायत्रं । नव्यांसं । अग्ने । देवेषु । प्र । वोचः ॥ ४ ॥

आ । नः । भज । परमेषु । आं । वाजेषु । मध्यमेषु । शिक्ष । वस्वः । अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

विभक्ता । असि । चित्रभानो इति चित्रभानो । मियोः । उर्मो । उपाके । आ ।

सद्यः । दाशुषे । क्षरसि ॥ ६ ॥ यं । अग्ने । पृत्सु । मर्त्यं । अवाः । वाजेषु । यं ।

जुनाः । सः । यन्ता । शश्वतीः । इषः ॥ ७ ॥ नकिः । अस्य । सहन्त्य । परिणना ।

कयस्य । चित् । वाजः । अस्ति । श्रवाय्यः ॥ ८ ॥ मः । वाजं । विश्वर्षणिः । अर्वद्विः ।

अस्तु । तरुता । विप्रेभिः । अस्तु । सनिता ॥ ९ ॥ जराबोध । तत् । विविद्धि । विशेविशे

यज्ञियाय । स्तोमं । रुद्राय । दृशीकं ॥ १० ॥ २३ ॥

स नो महँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।

धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥

स रेवाँ इव विष्पतिर्देव्यः केतुः शृणोतु नः ।

उक्थैरग्निर्वृहद्भानुः ॥ १२ ॥

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आग्निनेभ्यः ।

यजाम देवान्यदि शक्रवाम मा ज्यायमः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १३ ॥ २४ ॥

॥ २८ ॥ १-९ शुन जेप आजीगतिर्कृषिः ॥ इन्द्रयज्ञमोमा देवता ॥ छन्द - १-९ अनुष्टुप् । ७-९ गायत्री ॥ स्वर — १-९ गान्धारः ७-९ पञ्च ॥

( २८ ) यत्र ग्रावा पृथुबुध ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।

उल्लखलसुतानामवेष्टिन्द्र जलगुलः ॥ १ ॥

यत्र द्वौ इव जयनाधिषवण्या कृता ।

उल्लखलसुतानामवेष्टिन्द्र जलगुलः ॥ २ ॥

सः । नः । महान् । अनिस्मानः । धूमस्केतुः । पुरुश्चन्द्रः । धिये । वाजाय । हिन्वतु ॥ ११ ॥

सः । रेवान् इव । विष्पतिः । देव्यः । केतुः । शृणोतु । नः । उक्थैः । अग्निः । वृहत्स-

भानुः ॥ १२ ॥ नमः । महद्भ्यः । नमः । अर्भकेभ्यः । नमः । युवभ्यः । नमः ।

आग्निनेभ्यः । यजाम । देवान् । यदि । शक्रवाम । मा । ज्यायमः । शंसं । आ ।

वृक्षि । देवाः ॥ १३ ॥ २४ ॥

यत्र । ग्रावा । पृथुबुधः । ऊर्ध्वः । भवति । सोतवे । उल्लखलसुतानां ।

अव । इत् । ऊं इति । इन्द्र । जलगुलः ॥ १ ॥ यत्र । द्वौ इव । जयना । अधिषवण्या ।

कृता । उल्लखलसुतानां । अव । इत् । ऊं इति । इन्द्र । जलगुलः ॥ २ ॥

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।

उत्खलसुतानामवेहिन्द्र जलगुलः ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां विवधते र्हमीन्यमित्वा इव ।

उत्खलसुतानामवेहिन्द्र जलगुलः ॥४॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृहे उत्खलक युज्यसे ।

इह वृमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

उन स्म ते वनस्पते वानो दि वान्यग्रमित् ।

अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुत्खल ॥ ६ ॥

आयजी वाजसानमा ता ह्युवा विजर्भतः ।

हरी इवान्धांसि वप्सता ॥ ७ ॥

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।

इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

यत्र । नारी । अपच्यवं । उपच्यवं । च । शिक्षते । उत्खलसुतानां । अवं । इत् । ऊं इति ।  
 इत् । जलगुलः ॥ ३ ॥ यत्र । मन्थां । विवधते । र्हमीन् । यमित्वे इव । उत्खलसुतानां ।  
 अवं । इत् । ऊं इति । इत् । जलगुलः ॥ ४ ॥ यत् । चिद् । हि । त्वं । गृहेगृहे ।  
 उत्खलक । युज्यसे । इह । वृमत्तमं । वद । जयतां इव । दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥ उन ।  
 स्प । ते । वनस्पते । वानः । दि । वानि । अग्रं । इव । अथो इति । इन्द्राय । पातवे ।  
 सुनु । सोमं । उत्खल ॥ ६ ॥ आयजी इत्यांयजी । वाजसानमा । ता । हि । उवा ।  
 विजर्भतः । हरी इवेति हरीं इव । अंधांसि । वप्सता ॥ ७ ॥ ता । नः । अद्य ।  
 वनस्पती इति । ऋष्या । ऋष्वेभिः । सोतृभिः । इन्द्राय । मधुमत् । सुनु ॥ ८ ॥

उच्छिष्टं चम्बोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।

नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥ २६ ॥

॥ २९ ॥ १-७ जुन जेष आजीगर्निर्ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ पृथिनः ॥ पञ्चम स्वर ॥

(२९) यच्चिद्धि सन्त्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मभि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

नि स्वापया मिथुदृशां मस्तामवुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥

समन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥

उत् । शिष्टं । चम्बोः । भर । सोमं । पवित्रं । आ । सृज । नि । धेहि । गोः । अधि । त्वचि ॥ ९ ॥ २६ ॥

यन् । चित्त । हि । सन्त्य । सोमऽपाः । अनाशस्ताऽइव । स्मभि । आ । तु । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविस्मघ ॥ १ ॥ शिप्रिन् । वाजानां । पते । शचीऽवः । तव । दंसना । आ । तु । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविस्मघ ॥ २ ॥ नि । स्वापय । मिथुऽदृशां । मस्तां । अवुध्यमाने इति । आ । तु । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविस्मघ ॥ ३ ॥ समन्तु । त्याः । अरातयः । बोधन्तु । शूर । रातयः । आ । तु । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविस्मघ ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

पताति कुण्डुणच्या दूरं वातो वनादधि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥

सर्व परिक्रोशं जहि जम्भया कृकटाश्वम् ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥ २७ ॥

॥ ३० ॥ १-२२ शुनःशेर आजीगतिर्ऋषिः ॥ देवता—१-१६ इन्द्र । १७-१९ अश्विनो ।

२०-२२ उषा ॥ छन्दः-१-१० १२-१५, १७-२० गायत्री । ११ पादानिचूदायत्री । १६ त्रिष्टुप् ॥

स्वर.-:—२२ षड्ज । १६ धैवतश्च ॥

( ३० ) आ व इन्द्रं क्रिवि यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।

मंहिष्टं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

सं । इंद्रं । गर्दभं । मृण । नुवन्तं । पापया । अमुया । आ । तु । नः । इंद्रं । शंसय । गोषु ।

अश्वेषु । शुभिषु । सहस्रेषु । तुविष्मद्य ॥ ५ ॥ पताति । कुण्डुणाच्या । दूरं । वातः ।

वनात् । अधि । आ । तु । नः । इंद्रं । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभिषु । सहस्रेषु ।

तुविष्मद्य ॥ ६ ॥ सर्व । परिक्रोशं । जहि । जम्भया । कृकटाश्वं । आ । तु । नः ।

इन्द्रं । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभिषु । सहस्रेषु । तुविष्मद्य ॥ ७ ॥ २७ ॥

आ । वः । इंद्रं । क्रिवि । यथा । वाजयन्तः । शतक्रतुं । मंहिष्टं । सिञ्च ।

इन्दुभिः ॥ १ ॥

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।

एदुं निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

सं यन्मदाय शुष्मिणं एना ह्यस्योदरे ।

समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

अयमुं ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वीहो वीर यस्य ते ।

विभृतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊनयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो ।

समन्येषु ब्रवावहे ॥ ६ ॥

योगयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सम्वाय इन्द्रमूनये ॥ ७ ॥

आ वा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिर्नुतिभिः ।

वाजेभिरुप नो हवाम् ॥ ८ ॥

शतं । वा । यः । शुचीनां । सहस्रं । वा । संऽआशिरां । आ । इत् ।  
 ऊं इति । निम्न । न । रीयते ॥ २ ॥ सं । यत् । मदाय । शुष्मिणे । एना । हि ।  
 अस्य । उदरे । समुद्रः । न । व्यचः । दधे ॥ ३ ॥ अय । ऊं इति । ते । सं । अतसि ।  
 कपोतःऽइव । गर्भधिं । वचः । तत् । चिन् । नः । ओहसे ॥ ४ ॥ स्तोत्रं । राधानां ।  
 पते । गिर्वीहः । वीर । यस्य । ते । विऽभृतिः । अस्तु । सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥ ऊर्ध्वः ।  
 तिष्ठ । नः । ऊनये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति शतऽकृतेः । म । अन्येषु ।  
 ब्रवावहे ॥ ६ ॥ योगयोगे । तवऽतरं । वाजेऽवाजे । हवामहे । सम्वायः । इन्द्रं ।  
 ऊनये ॥ ७ ॥ आ । वा । गमन् । यदि । श्रवत् । सहस्रिणीभिः । ऊतिभिः । वाजेभिः ।  
 उप । नः । हवाम् ॥ ८ ॥



अनुं प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।

यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

तं त्वां वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत ।

सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९ ॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपानाम् ।

सखे वज्रिन्तसखीनाम् ॥ ११ ॥

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु ।

यथा त उहमसीष्टये ॥ १२ ॥

रेवतीनः सधमाद इंद्रे सन्तु तुविवाजाः ।

क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

आ वृ त्वावान्त्मनासः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।

ऋणोरक्ष न चक्रयोः ॥ १४ ॥

अनुं । प्रत्नस्य । ओकसः । हुवे । तुविप्रतिं । नरं । यं । ते । पूर्वं ।  
 पिता । हुवे ॥ ९ ॥ तं । त्वा । वयं । विश्ववार् । आ । शास्महे । पुरुहूत ।  
 सखे । वसो इति । जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९ ॥ अस्माकं । शिप्रिणीनां । सोमपाः ।  
 सोमपानाम् । सखे । वज्रिन् । सखीनाम् ॥ ११ ॥ तथा । तत् । अस्तु । सोमपाः ।  
 सखे । वज्रिन् । तथा । कृणु । यथा । ते । उहमसि । इष्टये ॥ १२ ॥ रेवतीः । नः ।  
 सधमादे । इंद्रे । सन्तु । तुविवाजाः । क्षुमन्तः । याभिः । मदेम ॥ १३ ॥ आ । वृ ।  
 त्वावान् । त्मना । आसः । स्तोतृभ्यः । धृष्णो इति । वियानः । ऋणोः । अक्षं ।  
 न । चक्रयोः ॥ १४ ॥

आ यदुवः शतक्रतुवा कामं जरितृणाम् ।

ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

शश्वदिन्द्रः पोपुथद्विर्जिगाय नानदाद्विः शाश्वसद्विर्धनानि ।

स नो हिरण्यरथं दंसनावान्तस नः सनिता मनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

अश्विनावश्ववत्येषा यातं शवीरया ।

गोमदस्त्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्त्रावमर्त्यः ।

समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

न्यद्वन्द्वस्य मूर्धानि चक्रं रथस्य येमथुः ।

परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

कस्तं उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।

कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

आ । यत् । दुवः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । आ । कामं । जरितृणां  
 ऋणोः । अक्षं । न । शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥ शश्वत् । इन्द्रः । पोपुथद्विभिः । जिगाय  
 नानदाद्विभिः । शाश्वसद्विभिः । धनानि । सः । नः । हिरण्यरथं । दंसनावान्त  
 सः । नः । सनिता । मनये । सः । नः । अदात् ॥ १६ ॥ आ । अश्विनौ  
 अश्ववत्या । इषा । यातं । शवीरया । गोमदस्त्रा । हिरण्यवत् ॥ १७ ॥  
 समानयोजनः । हि । वां । रथः । दस्त्रौ । अमर्त्यः । समुद्रे । अश्विना । ईयते ॥ १८ ॥  
 नि । अद्वन्द्वस्य । मूर्धानि । चक्रं । रथस्य । येमथुः । परि । द्यां । अन्यत् । ईयते ॥ १९ ॥  
 कः । ते । उषः । कधप्रिये । भुजे । मर्तः । अमर्त्ये । कं । नक्षसे । विभावरि ॥ २० ॥

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् ।

अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

त्वं त्येभिरा गृहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः ।

अस्मे रयि नि धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

## ॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ ३१ ॥ १--हिरण्यस्तप अहिरम ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः-१-७, ९-१५, १७ जगति ।

८, १३ १८ त्रिप् ॥ स्वर-१-७ ९-१५, १७ निषादः । ८ १३ १८, धेवत ॥

( ३१ ) त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।

तव व्रते कवयो विद्वानापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तम कविर्देवानां परिं भूषसि व्रतम् ।

विभ्रुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

वयं । हि । ते । अमन्महि । आ । अंतात् । आ । पराकात् । अश्वे । न । चित्रे ।

अरुषि ॥ २१ ॥ त्वं । त्येभिः । आ । गृहि । वाजेभिः । दुहितः । दिवः । अस्मे

इति । रयि । नि । धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

## ॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

त्वं । अग्ने । प्रथमः । अङ्गिराः । ऋषिः । देवः । देवानां । अभवः । शिवः ।

सखा । तव । व्रते । कवयः । विद्वानापसः । अजायन्त । मरुतः । भ्राजदृष्टयः ।

॥ १ ॥ त्वं । अग्ने । प्रथमः । अङ्गिरस्तमः । कविः । देवानां । परिं । भूषसि । व्रतं ।

विभ्रुः । विश्वस्मै । भुवनाय । मेधिरः । द्विमाता । शयुः । कतिधा । चित् ।

आयवे ॥ २ ॥

त्वमग्ने प्रथमो मातरिर्श्वेन आविर्भव सुकृत्या विवस्वते ।

अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसन्नोभ्रारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥

त्वमग्ने मनवे वामवाशयः पुरुरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।

श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुनः ॥ ४ ॥

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धेन उद्यतसुचे भवसि श्रवाय्यः ।

य आहुतिं परि वेदा वर्षङ्कृतिमेकायुरग्ने विशा आविवांससि ॥५॥३२॥

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सकर्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।

यः श्रसाता परितकम्ये धने दध्रेभिश्चित्सृता हंसि भ्र्यसः ॥ ६ ॥

त्वं तमग्ने अमृतत्वे उत्तमे मते दधासि श्रवसे द्विवेदिवे ।

शरतातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूर्ये ॥ ७ ॥

त्वं । अग्ने । प्रथमः । मातरिर्श्वेने । आविः । भव । सुकृतुस्या ।

विवस्वते । अरेजेतां । रोदसी इति । होतृवूर्ये । असन्नो । भ्रारं । अयजः । महः ।

वसो इति ॥३॥ त्वं । अग्ने । मनवे । वां । अवाशयः । पुरुरवसे । सुकृते । सुकृत्स-

तरः । श्वात्रेण । यत् । पित्रोः । मुच्यसे । परि । आ । त्वा पूर्व । अनयन् । आ ।

अपरं । पुनर्गति । ४॥ त्वं । अग्ने । वृषभः । पुष्टिवर्धेनः । उद्यतसुचे । भवसि ।

श्रवाय्यः । यः । आहुतिं । परि । वेदं । वर्षङ्कृतिं । एकं आयुः । अग्ने । विशां ।

आविवांससि ॥५॥३२॥ त्वं । अग्ने । वृजिनवर्तति । नरं । सकर्मन् । पिपर्षि । विदथे ।

विचर्षणे । यः । श्रसाता । परितकम्ये । धने । दध्रेभिः । दित् । संसृता । हंसि ।

भ्र्यसः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । अग्ने । अमृतत्वे । उत्तमे । मते । दधासि । श्रवसे ।

द्विवेदिवे । यः । तृषाणः । उभयाय । जन्मने । मयः । कृणोषि । प्रयः । आ ।

च । सूर्ये ॥ ७ ॥

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।

ऋध्याम कर्मापसां नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

त्वं नो अग्ने पित्रोरूपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।

तनूकृद्वोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोषिषे ॥ ९ ॥

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।

सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥ ३३ ॥

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।

इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।

त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥

त्वं । नः । अग्ने । सनये । धनानां । यशसं । कारुं । कृणुहि । स्तवानः ।  
 ऋध्याम । कर्म । अपसां । नवेन । देवैः । द्यावापृथिवी । इति । प्र । अवतं ।  
 नः ॥ ८ ॥ त्वं । नः । अग्ने । पित्रोः । उपस्थे । आ । देवः । देवेषु । अनवद्य ।  
 जागृविः । तनूकृत् । वोधि । प्रमतिः । च । कारवे । त्वं । कल्याण । वसु ।  
 विश्वं । आ । उपिषे ॥ ९ ॥ त्वं । अग्ने । प्रमतिः । त्वं । पिता । असि । नः ।  
 त्वं । वयःकृत् । तव । जामयः । वयं । सं । त्वा । रायः । शतिनः । सं । महस्रिणः ।  
 सुवीरं । यन्ति । व्रतपां । अदाभ्य ॥ १० ॥ ३३ ॥ त्वां । अग्ने । प्रथमं । आयुं ।  
 आयवे । देवाः । अकृण्वन् । नहुषस्य । विश्पतिं । इळां । अकृण्वन् । मनुष्य ।  
 शासनीं । पितुः । यत् । पुत्रः । ममकस्य । जायते ॥ ११ ॥ त्वं । नः । अग्ने । तव ।  
 देव । पायुभिः । मघोनं । रक्ष । तन्वः । च । वन्द्य । त्राता । तोकस्य । तनये ।  
 गवां । असि । अनिमेषं । रक्षमाणः । तव । व्रते ।

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।

यो रातह्वयोऽवृकाय धार्यसे कीरेऽश्विः मंत्रं मनसा वनोषि तम् ॥१३॥

त्वमग्न उरुशंसाय वाद्यते स्पार्हं यद्रेक्वणः परमं वनोषि तत् ।

आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शारिस प्र दिशो विदुष्टरः ॥१४॥

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं । वमेव स्यूतं परिं पासि विश्वतः ।

स्वादुक्षद्या यो वसतौ स्योनकृत् जीवयाजं यजते सोऽपमा दिवः ॥१५॥३४॥

इमामग्ने शरणिं मोमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।

आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरसृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।

अच्छं याह्या वह्ना दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

त्वं । अग्ने । यज्यवे । पायुः । अन्तरः । अनिषङ्गाय । चतुःऽअक्षः । इध्यसे । यः ।

रातऽह्वयः । अवृकाय । धार्यसे । कीरेः । चित् । मंत्रः । मनसा । वनोषि । तं ॥१३॥ त्वं ।

अग्ने । उरुशंसाय । वाद्यते । स्पार्हं । यत् रेक्वणः । परमं । वनोषि । तत् । आध्रस्य ।

चित् । प्रमतिः । उच्यसे । पिता । प्र पाकं शारिस । प्र दिशः । विदुःऽतरः ॥१४॥

त्वं । अग्ने । प्रयतऽदक्षिणं । नरं । वमेव । स्यूतं । परिं । पासि । विश्वतः ।

स्वादुक्षद्या । यः । वसतौ । स्योनऽकृत् । जीवऽयाजं । यजते । सः । उपमा । दिवः

॥१५॥३४॥ इमां । अग्ने । शरणिं । ममृषः । नः । इमं । अध्वानं । यं । अगाम ।

दूरात् । आपिः । पिता । प्रमतिः । सोम्यानां । भूमिः । अस्मि । ऋषिऽकृत् ।

मर्त्यानां ॥ १६ ॥ मनुष्वत् । अग्ने । अङ्गिरस्वत् । अङ्गिरः । ययातिवत् । सदने ।

पूर्वऽवत् । शुचे । अच्छं । याह्या । आ । वह्ना । दैव्यं । जनं । आ । सादय । बर्हिषि ।

चि । च । प्रियं ॥ १७ ॥

एतेनार्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।

उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥ ३५ ॥

॥ ३२ ॥ १-१५ हिष्यन्त्प अङ्गिरस ऋषिः ॥ इष्टो देवता ॥ शिष्टप् छद्मः ॥ धैवतः ध्वरः ॥

( ३२ ) इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहन्नहिमन्वपस्तर्द्धे प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मे वज्रं स्वयं ततक्ष ।

वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरार्षः ॥ २ ॥

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यं ।

आ सायकं मघवाद्दत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनामभिनाः प्रोत मायाः ।

आत्सूर्यं जनयन्त्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

एतेन । अग्ने । ब्रह्मणा । वावृधस्व । शक्ती । वा । यत् । ते । चकृम ।

विदा । वा । उत । प्र । णेषि । अभि । वस्यः । अस्मान् । सं । नः । सृज ।

सुमत्या । वाजवत्या ॥ १८ ॥ ३५ ॥

इन्द्रस्य । नु । वीर्याणि । प्र । वोच । यानि । चकार । प्रथमानि । वज्री ।

अहन् । अहिं । अनु । अपः । तर्द्धे । प्र । वक्षणाः । अभिनत् । पर्वतानां ॥ १ ॥

अहन् । अहिं । पर्वते । शिश्रियाणं । त्वष्टा । अस्मै । वज्रं । स्वयं । ततक्ष ।

वाश्राः इव । धेनवः । स्यन्दमानाः । अञ्जः । समुद्रं । अव । जग्मुः । आर्ष ॥ २ ॥

वृषायमाणः । अवृणीत । सोमं । त्रिकद्रुकेषु । अपिवत् । सुतस्यं । आ । सायकं ।

मघवा । अद्दत्त । वज्रं । अहन् । एनं । प्रथमजाम् । अहीनां ॥ ३ ॥ यत् । इन्द्र ।

अहन् । प्रथमजाम् । अहीनां । आत् । मायिनां । अभिनाः । प्र । उत । माया ।

आत् । सूर्यं । जनयन् । यां । उषासं । तादीत्ना । शत्रुं । न । किला । विवित्से ॥ ४ ॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।

स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥३६॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुहे महावीरं तुविवाधमृजीपम ।

नातांरीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानांः पिपिप इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानो जघान ।

वृष्णो वधिः प्रतिमानं वुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।

याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्वभूव ॥ ८ ॥

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसिदानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

अहन् । वृत्रं । वत्रस्तरं । विऽअंसं इन्द्रः । वज्रेण । महता । वधेन । स्कंधांसिऽइव ।  
 कुलिशेन । विऽवृक्णा । अहिः । शयते । उपऽपृक् । पृथिव्याः ॥५॥३६॥ अयोद्धाऽइवी  
 दुःमदः । आ । हि । जुहे । महाऽवीरं । तुविऽवाधं । ऋजीप । न । अतांरीत । आस्य ।  
 संऽऋतिं । वधानां । सं । रुजानांः । पिपिपे । इन्द्रऽशत्रुः ॥६॥ अपात । अहस्तः ।  
 अपृतन्यत । इन्द्रः । आ । अस्य । वज्रं । अधि । सानो । जघान् । वृष्णः । वधिः ।  
 प्रतिऽमानं । वुभूषन् । पुरुत्रा । वृत्रः । अशयत । विऽअस्तः ॥ ७ ॥ नद । न ।  
 भिन्नं । अमुया । शयानं । मनः । रुहाणाः । अति । यन्ति । आपः । याः । चित ।  
 वृत्रः । महिना । पर्यतिष्ठत्तासामहिः । पत्सुतःऽशीः । वभूव ॥ ८ ॥  
 नीचाऽवयाः । अभवन् । वृत्रऽपुत्रा । इन्द्रः । अस्याः । अ । वधः । जभारः । उत्तरा ।  
 सूः । अर्धरः । पुत्रः । आसीत् । दानुः । शये । सहऽवत्सा न । धेनुः ॥ ९ ॥



अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।

वृत्रस्य निष्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥३७॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।

अपां विलमापिहितं यदासीद्ध्रं जघन्वाँ अप तद्वार ॥ ११ ॥

अश्वयो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।

अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरध्नादुनि च ।

इन्द्रश्च यद्युधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघनुषो भीरगच्छत् ।

नव च यन्नवति च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरे रजांसि ॥१४॥

अतिष्ठन्तीनां । अनिष्वेशनानां । काष्ठानां । मध्ये । निहितं । शरीरं । वृत्रस्य ।

निष्यं । वि । चरन्ति । आपः । दीर्घं । तमः । आ । अशयत् । इन्द्रः ।

शत्रुः ॥ १० ॥ ३७ ॥ दासपत्नीः । अहिगोपाः । अतिष्ठन् । निरुद्धाः ।

आपः । पणिनाऽव । गावः । अपां । विलं । अपिहितं । यत् । आसीत् ।

वृत्रं । जघन्वान् । अप । तत् । वार ॥ ११ ॥ अश्वयः । वारः । अभवः । तव ।

इन्द्रः । सृके । यत् । त्वा । प्रतिअहन् । देवः । एकः । अजयः । गाः । अजयः ।

शूर । सोमं । अश्वं । असृजः । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् ॥१२॥ न । अस्मै । विद्युत् ।

न । तन्यतुः । सिषेध । न । यां । मिहं । अकिरत् । द्नादुनि । च । इन्द्रः । च । यत् ।

युधाते इति । अहिः । च । उत । अपरीभ्यः । मघवा । वि । जिग्ये ॥१३॥ अहः ।

यातारं । कं । अपश्यः । इन्द्रः । हृदि । यत् । ते । जघनुषः । भीः । अगच्छत् । नव ।

च । यत् । नवति । च । स्रवन्तीः । श्येनः । न । भीतः । अतरेः । रजांसि ॥ १४ ॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रवाहुः ।  
सेदुराजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभ्रुव ॥ १५ ॥ ३८ ॥ २ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ३३ ॥ १—१५ हिरण्यस्तूप आक्षिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ८, ९, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ५, ७ ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४, १५ भुरिक् पक्तिः ॥ स्वर—१—१३ धैवतः । १४, १५ पञ्चमः ॥

( ३३ ) एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।  
अनामृणः कुविदास्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

इन्द्रः । यातः । अवसितस्य । राजा । शमस्य । च । शृङ्गिणः । वज्रवाहुः । सः ।  
इत् । ऊं इति । राजा । क्षयति । चर्षणीनां । अरान् । न । नेमिः । परि । ता ।  
बभ्रुव ॥ १५ ॥ ३८ ॥ २ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आ । इत् । अयाम् । उप । गव्यन्तः । इन्द्रं । अस्माकं । सु । प्रमतिं । वावृधाति ।  
अनामृणः । कुवित् । आत् । अस्य । रायः । गवां । केतं । परं । आस्वर्जते । न ॥ १ ॥

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।

इन्द्रं नमस्यन्नपमेभिरकैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥

नि सर्वसेन इषुधी रसक्तु समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।

चोष्क्यमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।

धनोराधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रोतिमीयुः ॥ ४ ॥

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।

प्र यद्विवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रता अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥

अयुयुत्सन्नवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।

वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवक्षिरिन्द्राक्षितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

उपे । इत् । अहं । धनदाम् । अप्रतीतम् । जुष्टां । न । श्येनः । वसतिं । पतामि ।  
 इन्द्रं । नमस्यन् । उपमेभिः । अकैः । यः । स्तोतृभ्यः । हव्यः । अस्ति । यामन् ।  
 ॥ २ ॥ नि । सर्वसेनः । इषुधीन् । असक्तु । सं । अर्यः । गाः । अजति । यस्य ।  
 वष्टि । चोष्क्यमाणः । इन्द्र । भूरि । वामं । मा । पणिः । भूः । अस्मत् । अधि ।  
 प्रवृद्ध ॥ ३ ॥ वधीः । हि । दस्युं । धनिनं । घनेन । एकः । चरन् । उपशाकेभिः ।  
 इन्द्र । धनोः । अधि । विषुणक् । ते । वि । आयन् । अयज्वानः । सनकाः । प्रोतिमीयुः ।  
 इयुः ॥ ४ ॥ परा । चित् । शीर्षा । ववृजुः । ते । इन्द्र । अयज्वानः । यज्वभिः ।  
 स्पर्धमानाः । प्र । यत् । द्विवः । हरिज्वः । स्थातः । रुग्र । निः । अव्रतान् । अधमः ।  
 रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥ अयुयुत्सन् । अनवद्यस्य । सेनां । अयातयन्त । क्षितयः ।  
 नवग्वाः । वृषायुधः । न । वध्रयः । निःअष्टाः । प्रवक्षिभिः । इन्द्रात् । क्षितयन्त ।  
 आयन् ॥ ६ ॥

त्वमेतान्द्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

चक्राणामः परिणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुभमानाः ।

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अर्बुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।

अमन्यमानां अभि मन्यमानैर्निर्व्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निज्योतिषा तमसो गा अद्भुक्षत् ॥१०॥२॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।

सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नाभि वृन् ॥ ११ ॥

त्वं । एतान् । रुदतः । जक्षतः । च । अयोधयः । रजसः । इन्द्र । पारे ।

अव । अदहः । दिवः । आ । दस्युं । उच्चा । प्र । सुन्वतः । स्तुवतः । शंसं ।

भावः ॥ ७ ॥ चक्राणामः । परिणहं । पृथिव्याः । हिरण्येन । मणिना । शुभमानाः ।

न । हिन्वानासः । तितिरुः । ते । इन्द्रं । परि । स्पशः । अदधात् । सूर्येण ॥ ८ ॥

परि । यत् । इन्द्र । रोदसी इति । उभे इति । अर्बुभोजीः । महिना । विश्वतः । सीम् ।

अमन्यमानान् । अभि । मन्यमानैः । निः । ब्रह्मभिरः । अधमः । दस्युं । इन्द्र ॥ ९ ॥

न । ये । दिवः । पृथिव्याः । अन्तं । आपुः । न । मायाभिः । धनदां । परिदभूवन् ।

युजं । वज्रं । वृषभः । चक्रे । इन्द्रः । निः । ज्योतिषा । तमसः । गाः । अद्भुक्षत् ॥१०॥२॥

अनु । स्वधां । अक्षरन् । आपः । अस्य । अवर्धत । मध्ये । आ । नाव्यानां ।

सध्रीचीनेन । मनसा । तं । इन्द्रः । ओजिष्ठेन । हन्मना । अहन् । अभि । वृन् ॥११॥

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।

यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि त्रिमेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।

सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।

शफच्युतो रेणुर्नक्षत व्यामुञ्चैत्रेयो नृषाहाय तस्थौ ॥ १४ ॥

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्विद्यं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्र्यतामधरा वेदनाकः ॥१५॥३॥

नि । अविध्यत् । इलीविशस्य । दृळ्हा । वि । शृङ्गिणं । अभिनत् । शुष्णं । इन्द्रः ।

यावत् । तरः । मघवन् । यावत् । ओजः । वज्रेण । शत्रुं । अवधीः । पृतन्युं ॥ १२ ॥

अभि । सिध्मः । अजिगात् । अस्य । शत्रून् । वि । त्रिमेन । वृषभेण । पुरः ।

अभेत् । सं । वज्रेण । असृजत् । वृत्रं । इन्द्रः । प्र । स्वां । मतिं । अतिरत् । शाशदानः

॥१३॥आवः । कुत्सं । इन्द्रः । यस्मिन् । चाकन् । प्र । आवः । युध्यन्तं । वृषभं । दशद्युं ।

शफच्युतः । रेणुः । नक्षत । व्यां । उत् । श्वैत्रेयः । नृषाहाय । तस्थौ ॥ १४ ॥

आवः । शमं । वृषभं । तुग्र्यासु । क्षेत्रजेषे । मघवन् । श्विद्यं । गां । ज्योक् ।

चित् । अत्र । तस्थिवांसः । अक्रन् । शत्रुद्यतां । अधरा । वेदना । अ-

करित्यकः ॥१५॥ ३ ॥

॥ ३४ ॥ १-१२ हिरण्यस्तूप आहिरस ऋषिः ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्द,—१. ९ विराड् जगती ।

२, ३, ७, ८ । निचृजगती । ५, १०, ११ जगती । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक् यंक्ति । ॥  
स्वर,—१-३, ५-८, १०, ११ निषाद. ४ १२, ९ पञ्चमः ॥

( ३४ ) त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वा याम उत रातिरश्विना ।

युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इष्टिदुः ।

त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिनक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२॥

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।

त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुपसश्च पिन्वतम् ॥३॥

त्रिर्वर्तियांतं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्रान्वये त्रेधाऽव शिक्षतम् ।

त्रिनान्वं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥

त्रिः । चित् । नः । अद्य । भवतं । नवेदसा विऽभुः । वां । यामः । उत ।

रातिः । अश्विना । युवोः । हि । यन्त्रं । हिम्याऽइव । वाससः । अभिऽ आयंसेन्या ।

भवतं । मनीषिभिः ॥ १ ॥ त्रयः । पवयः । मधुवाहने । रथे । सोमस्य । वेनां ।

अनु । विश्वे । इत् । विदुः । त्रयः । स्कम्भासः । स्कभितासः । आऽरभे । त्रिः ।

नक्तं । याथः । त्रिः । ऊं इति । अश्विना । दिवा ॥२॥ समाने । अहन् । त्रिः । अवद्य-

ऽगोहना । त्रिः । अद्य । यज्ञं । मधुना । मिमिक्षतं । त्रिः । वाजवतीः । इषः ।

अश्विना । युवं । दोषाः । अस्मभ्यं । उपसः । च । पिन्वतं ॥ ३ ॥ त्रिः । वर्तिः ।

। त्रिः । अनुऽव्रते । जने । त्रिः । सुप्रऽअव्ये । त्रेधाऽइव । शिक्षतं । त्रिः ।

। वहतं । अश्विना । युवं । त्रिः । पृक्षः । अस्मे इति । अक्षराऽइव । पिन्वतं ॥४॥

त्रिनो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिदेवताता त्रिहताधतं धियः ।

त्रिः सौभगत्वं त्रिहत् श्रवांसि नस्त्रिष्टं वां सूरै दुहितारुहद्रथम् ॥५॥

त्रिनो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।

ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६॥४॥

त्रिनो अश्विना यजता दिवेदिवे परिं त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।

तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७॥

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रयं आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।

तिस्रः पृथिवीरपरिं प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे शुभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

कत्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य कत्रयो बंधुरो ये सनीलाः ।

कृदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

त्रिः । नः । रयि । वहतं । अश्विना । युवं । त्रिः । देवताता । त्रिः । उत ।  
 अवत । धियः । त्रिः । सौभगत्वं । त्रिः । उत । श्रवांसि । नः । त्रिस्थं । वां । सूरै ।  
 दुहिता । आ । रुहत् । रथं ॥ ५ ॥ त्रिः । नः । अश्विना । दिव्यानि । भेषजा ।  
 त्रिः । पार्थिवानि । त्रिः । ऊं इति । दत्तं । अत्तमद्भ्यः । ओमानं । शंयोः । ममकाय ।  
 सूनवे । त्रिधातु । शर्म । वहतं । शुभः । पती इति ॥ ६ ॥ ४ ॥ त्रिः । नः । अश्विना ।  
 यजता । दिवेदिवे । परिं । त्रिधातु । पृथिवीं । अशायतं । तिस्रः । नासत्या ।  
 रथ्या । परावतः । आत्माइव । वातः । स्वसराणि । गच्छतं ॥७॥ त्रिः । अश्विना ।  
 सिन्धुभिः । सप्तमातृभिः । त्रयः । आहावाः । त्रेधा । हविः । कृतं । तिस्रः । पृथिवीः ।  
 उपरिं । प्रवा । दिवः । नाकं । रक्षेथे इति । शुभिः । अक्तुभिः । हितं ॥ ८ ॥ क ।  
 त्री । चक्रा । त्रिवृतः । रथस्य । क । त्रयः । बंधुरः । ये । सनीलाः । कृदा । योगः ।  
 वाजिनः । रासभस्य । येन । यज्ञ । नासत्या । उपयाथः ॥ ९ ॥

आनासत्या गच्छतं ह्युते हविर्मध्वः पिवतं मधुपेभिरासभिः ।  
 युवोर्हे पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ।  
 आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।  
 प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ।  
 आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रथिं वहतं सुवीरम् ।  
 शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥ ५ ॥

॥ ३५ ॥ १-११ हिरण्यस्वरूप आह्वरस ऋषिः ॥ देवता.-१ अभिभिन्नावरुणा रात्रि सविता । २-१०

सविता ॥ छन्द.-१ विराड् जगती । ९ निचृज्जगती । २, ५, १०, ११. विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, त्रिष्टुप् । ७, ८  
 भुक् पङ्क्तिः ॥ स्वर.-१, ९ निषादः । २, ५, १०, ११, ३, ४, ६ धैवतः । ७, ८ पञ्चमः ॥

( ३५ ) ह्याम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्यामि मित्रावरुणाविहावसे ।

ह्यामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्यामि देवं सवितारं मृतये ॥ १ ॥

आ। नासत्या। गच्छतं। ह्युते। हविः। मध्वः। पिवतं। मधुपेभिः। आसभिः। युवोः। हि।  
 पूर्वं। सविता। उपसः। रथं। ऋताय। चित्रं। घृतवन्तं। इष्यति ॥ १० ॥ आ। नासत्या।  
 त्रिभिः। एकादशैः। इह। देवेभिः। यातं। मधुपेयं। अश्विना। प्र। आयुः। तारिष्ट।  
 निः। रपांसि। मृक्षतं। सेधतं। द्वेषो। भवतं। सचाभुवा ॥ ११ ॥ आ। नः।  
 अश्विना। त्रिवृता। रथेन। अर्वाञ्चं। रथिं। वहतं। सुवीरं। शृण्वन्ता। वां।  
 वामे। जोहवीमि। वृधे। च। नः। भवतं। वाजसातौ ॥ १२ ॥ ५ ॥

ह्यामि। अग्निं। प्रथमं। स्वस्तये। ह्यामि। मित्रावरुणौ। इह। अवसे।

ह्यामि। रात्रीं। जगतः। निवेशनीं। ह्यामि। देवं। सवितारं। मृतये ॥ १ ॥



आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥

याति देवः प्रवता यात्युद्धता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।

आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥

अभिवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।

आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥

वि जनान् श्यावाः शितिपादो अख्यन्नथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।

शश्वद्विशः सवितुदैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाद् ।

आणि न रथममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६ ॥

आ । कृष्णेन । रजसा । वर्तमानः । निवेशयन् । अमृतं । मर्त्यं । च । हिरण्ययेन ।  
 सविता । रथेन । आ । देवः । याति । भुवनानि । पश्यन् ॥ २ ॥ याति । देवः । प्रवता ।  
 याति । उत्प्रवता । याति । शुभ्राभ्यां । यजतः । हरिभ्याम् । आ । देवः । याति ।  
 सविता । परावतः । अप । विश्वा । दुःसृता । बाधमानः ॥ ३ ॥ अभिवृतं । कृशनैः ।  
 विश्वरूपं । हिरण्यशम्यं । यजतः । बृहन्तं । आ । अस्थात् । रथं । सविता । चित्र-  
 भानुः । कृष्णा । रजांसि । तविषीं । दधानः ॥ ४ ॥ वि । जनान् । श्यावाः ।  
 शितिपादः । अख्यन् । रथं । हिरण्यप्रउगं । वहन्तः । शश्वत् । विशः । सवितुः ।  
 दैव्यस्य । उपस्थे । विश्वा । भुवनानि । तस्थुः ॥ ५ ॥ तिस्रः । द्यावः । सवितुः ।  
 द्वा । उपस्थां । एका । यमस्य । भुवने । विराषाद् । आणि । न । रथं । अमृता ।  
 अधि । तस्थुः । इह । ब्रवीतु । यः । उं इति । तन् । चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६ ॥

वि सु॒प॒र्णो अ॒न्तरि॑क्षाण्यख्यद्ग॒भीरवे॑षा असुरः सु॒नीथः ।

के॒दानीं॑ सूर्यः कश्चि॑केत क॒तमां॑ द्यां र॒श्मिर॑स्या त॒तान ॥ ७ ॥

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री ध॒न्व॒ योज॑ना स॒प्त सि॒न्धून् ।

हिर॒ण्य॒क्षः स॒वि॒ता दे॒व आ॒गाह॑द॒दत्तां॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥

हिर॑ण्यपाणिः स॒वि॒ता वि॒च॒र्षणि॑रु॒भे द्या॒वापृथि॑वी अ॒न्तरी॑यने ।

अ॒पामी॑वां वा॒धते॑ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॑ष्णेन रज॑सा द्यामृ॑णोति ॥ ९ ॥

हिर॑ण्यहस्तो असुरः सु॒नीथः॑ स॒मृ॒ळीकः॑ स्व॒र्वां या॒त्वर्वा॑ङ् ।

अ॒प॒से॒ध॒न्न॒क्षसो॑ या॒तु॒धा॒ना॒न॒स्था॒द्दे॒वः प्र॒ति॒दोषं॑ गृ॒णानः॑ ॥ १० ॥

ये ते॒ पन्थाः॑ स॒वितः॑ पू॒र्व्यासो॑ऽरेणवः सु॒कृ॒ता अ॒न्तरि॑क्षे ।

तेभि॑र्नो अ॒द्य प॒थिभिः॑ सु॒गे॒भ्यो रक्षां॑ च नो अ॒धि च॑ ब्रूहि

दे॒व ॥ ११ ॥ ७ ॥ ७ ॥

वि । सु॒प॒र्ण । अ॒न्तरि॑क्षाणि । अ॒ख्यत् । ग॒भीर॑ऽवे॒षाः । असुरः । सु॒नीथः । के॒ । इ॒दानीं॑ ।  
 सूर्यः । कः । चि॒केत । क॒तमां॑ । द्यां । र॒श्मिः । अ॒स्य । आ । त॒तान ॥ ७ ॥ अ॒ष्टौ । वि ।  
 अ॒ख्यत् । क॒कुभः॑ । पृथि॒व्याः । त्री । ध॒न्व॒ । योज॑ना । स॒प्त । सि॒न्धून् । हिर॑ण्य॒ऽअ॒क्षः ।  
 स॒वि॒ता । दे॒वः । आ । अ॒गाह॑ । द॒दत्तां॑ । दा॒शुषे॑ । वार्या॑णि ॥ ८ ॥ हिर॑ण्य॒ऽपा॒णिः ।  
 स॒वि॒ता । वि॒च॒र्षा॒णिः । उ॒भे इति॑ । द्या॒वापृथि॑वी इति । अ॒न्तः । इ॒यते॑ । अ॒प॒ ।  
 अ॒मी॒वां । वा॒धते॑ । वेति॑ । सूर्य॑ । अ॒भि । कृ॑ष्णेन । रज॑सा । द्यां । ऋ॒णोति॑ ॥ ९ ॥  
 हिर॑ण्य॒ऽह॒स्तः । अ॒सुरः । सु॒नीथः॑ । सु॒मृ॒ळीकः॑ । स्व॒र्वा॒न् । या॒तु॒ । अ॒र्वा॑ङ् । अ॒प॒से॒ध॒न्न॒ ।  
 र॒क्ष॒सः । या॒तु॒धा॒ना॒न् । अ॒स्था॒त् । दे॒वः । प्र॒ति॒दोषं॑ । गृ॒णानः॑ ॥ १० ॥ ये ।  
 ते । पन्थाः॑ । स॒वित॑रिति । पू॒र्व्यासः॑ । अ॒रेण॑वः । सु॒कृ॒ताः । अ॒न्तरि॑क्षे । तेभिः । नः ।  
 अ॒द्य । प॒थिभिः॑ । सु॒गे॒भिः । रक्षां॑ । च । नः । अ॒धि । च । ब्रूहि॑ । दे॒व ॥ ११ ॥ ७ ॥ ७ ॥

## ॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

॥ ३६ ॥ १-२० घोर ऋषिः ॥ १-२० अग्निदेवता ॥ छन्दः-१, १२ भुरिगनुष्टुप् । २ निचृत्सत पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । १०, १४ निचृद्विष्टारपङ्क्तिः । १८ विष्टारपङ्क्तिः । २० सतः पङ्क्तिः । ३, ११ निचृत्गथ्या वृहती । ५, १६ निचृद्वृहती । ६ भुरिग् वृहती । ७ वृहती । ८ स्वराड् वृहती । ९ निचृदुपरिष्टाद्वृहती । १३ उपरिष्टाद्वृहती । १५ विराट् पथ्यावृहती । १७ विराडुपरिष्टाद्वृहती । १९ पथ्याद्वृहती ॥ स्वरः-१ १२ गान्धार । २ ४, १०, १४ १८ २० पञ्चम । ३ ११, ५, १६, ६-९, १३ १५ १७, १९ मध्यमः ॥

( ३६ ) प्र वो य्हं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।

अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

जनासो अग्निं दधिरे सद्दोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।

स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं ।

महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।

विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

## ॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

प्र । वः । य्हं । पुरूणां । विशां । देवयतीनां । अग्निं । सुऽसुक्तेभिः । वचःऽ-  
भि । ईमहे । यं । सीं । इत् । अन्ये । ईळते ॥ १ ॥ जनासः । अग्निं । दधिरे ।  
सद्दोऽवृधं । हविष्मन्तः । विधेम । ते । सः । त्वं । नः । अद्य । सुऽमनाः । इह ।  
अविता । भव । वाजेषु । सन्त्य ॥ २ ॥ प्र । त्वा । दूतं । वृणीमहे । होतारं । विश्व-  
वेदसं । महः । ते । सतः । वि । चरन्ति । अर्चयः । दिवि । स्पृशन्ति । भानवः ॥ ३ ॥  
देवासः । त्वा । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । सं । दूतं । प्रत्नं । इन्धते । विश्वं । सः ।  
अग्ने । जयति । त्वया । धनं । यः । ते । ददाश । मर्त्यः ॥ ४ ॥

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।

त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ ८ ॥

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ट्य विश्वमा हूयते हविः ।

स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्सुवीर्या ॥ ६ ॥

तं येमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।

होत्राभिरग्नि मनुष्यः समिन्धते तितिर्वासो अति स्त्रिधः ॥ ७ ॥

घ्नन्तो वृत्रमंतरत्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।

भुवत्कण्वे वृषा द्युमन्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

सं सीदस्व मह्यं असि गोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुपं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

यं कण्वो मेध्यानिधिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥ ९ ॥

मन्द्रः । होता । गृहपतिः । अग्ने । दूतः । विशां । असि । त्वे इति । विश्वा । संगतानि  
 व्रता । ध्रुवा । यानि । देवाः । अकृण्वत ॥५॥८॥ त्वे इति । इत् । अग्ने । सुभगे  
 यविष्ट्य । विश्वं । आ । हूयते । हविः । सः । त्वं । नः । अद्य । सुमना । उत । अपरं  
 यक्षि । देवान् । सुवीर्या ॥ ६ ॥ तं । य । इ । इत्था । नमस्विनः । उप । स्वराजं  
 आसते । होत्राभिः । अग्नि । मनुष्यः । सं । इन्धते । तितिर्वासः । अति । स्त्रिधः ॥७॥ घ्नन्तः  
 वृत्रं । अतरन् । रोदसी इति । अपः । उरु । क्षयाय । चक्रिरे । भुवत् । कण्वे । वृषा  
 द्युमनी । आहुतः । क्रन्दत् । अश्वः । गोष्टिषु ॥८॥ सं । सीदस्व । महान् । असि  
 गोचस्व । देववीतमः । वि । धूमं । अग्ने । अरुपं । मियेध्य । सृज । प्रशस्त । दर्शतं  
 ॥ ९ ॥ यं । त्वा । देवासः । मनवे । दधुः । इह । यजिष्ठं । हव्यवाहन । यं । कण्वः

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्वं ईधे ऋतादधि ।

तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

रायस्पूधिं स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।

त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महान् असि ॥ १२ ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्विर्विह्यामहे ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वान्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराण्यः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय ॥ १५ ॥ १० ॥

मेध्यऽअतिथिः । धनऽस्पृतं । यं । वृषा । यं । उऽस्तुतः ॥ १० ॥ १॥ यं । अग्निं । मेध्यऽअतिथिः ।  
कण्वः । ईधे । ऋतात् । अधि । तस्य । प्र । इषः । दीदियु । तं । इमाः । ऋचः । तं ।  
अग्निं । वर्धयामसि ॥ ११ ॥ रायः । पूधिं । स्वधाऽवः । अस्ति । हि । ते । अग्ने । देवे-  
षु । आप्यं । त्वं । वाजस्य । श्रुत्यस्य । राजसि । सः । नः । मृळ । महान् । असि  
॥ १२ ॥ ऊर्ध्वः । ऊं इति । सु । नः । ऊतये । तिष्ठा । देवः । नः । सविता ।  
ऊर्ध्वः । वाजस्य । सनिता । यत् । अञ्जिभिः । वाघत्ऽभिः । विऽह-  
यामहे ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वः । नः । पाहि । अंहसः । नि । केतुना । विश्वं । स ।  
अत्रिणं । दह । कृधी । नः । ऊर्ध्वान् । चरथाय । जीवसे । विदा । देवेषु । नः ।  
दुवः ॥ १४ ॥ पाहि । नः । अग्ने । रक्षसं । पाहि । धूर्तेः । अराण्यः । पाहि ।  
रीषतः । उत । वा । जिघांसतः । बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो । यविष्ठय ॥ १५ ॥ १० ॥

यनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।

यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मानः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

अग्निर्वन्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।

अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।

अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

दीदेथ कण्वं ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥

त्वेषासो अग्रेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।

रक्षस्विनः सदामिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥ ११ ॥

यनाइव । विष्वक् । वि । जहि । अराव्णः । तपुःजम्भ । यः । अस्मध्रुक् । यः ।  
 मर्त्यः । शिशीते । अति । अक्तुभिः । मा । नः । सः । रिपुः । ईशत ॥ १६ ॥  
 अग्निः । वन्ने । सुवीर्यं । अग्निः । कण्वाय । सौभगं । अग्निः । प्र । आवत् । मित्रा ।  
 उत । मेध्यःअतिथिं । अग्निः । सातौ । उपस्तुतं ॥ १७ ॥ अग्निना । तुर्वशं । यदुं ।  
 परावतः । उग्रःदेवं । हवामहे । अग्निः । नयत् । नवःवास्त्वं । बृहत्ःरथं । तुर्वीति ।  
 दस्यवे । सहः ॥ १८ ॥ नि । त्वां । अग्ने । मनुः । दधे । ज्योतिः । जनाय । शश्वते ।  
 दीदेथ । कण्वं । ऋतःजातः । उक्षितः । यं । नमस्यन्ति । कृष्टयः ॥ १९ ॥ त्वेषासः ।  
 अग्नेः । अमःवन्तः । अर्चयः । भीमासः । न । प्रतिःइतये । रक्षस्विनः । सदां । इत् ।  
 यातुःमावतः । विश्वं । मं । अत्रिणं । दह ॥ २० ॥ ११ ॥

॥ ३७ ॥ १-१५ कण्वो घोर ऋषि ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्द -१, २ ४, ६-८, १२ गायत्री।  
३, ५ ११, १४, निचृद् गायत्री। ५, विराड् गायत्री। १० १५ विगीलिकामभ्या निचृद्गायत्री १३ पादनिचृद्गाय-  
त्री ॥ षड्ज स्वर ॥

( ३७ ) क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् ।

कण्वा अ॒भि प्र गा॑यत ॥ १ ॥

ये पृष॑तीभिर्ऋ॒ष्टिभिः॑ सा॒कं वाशी॑भिर्ऋ॒जिभिः॑ ।

अजा॑यन्त॒ स्वभान॑वः ॥ २ ॥

इहे॑व॒ शृण्व॑ ए॒षां कशा॑ ह॒स्तेषु॑ यद॒दान् ।

नि या॑मञ्चि॒त्रमृ॑ञ्जते ॥ ३ ॥

प्र वः॑ शर्धा॒य घृ॑ष्वये त्वेष॒शुम्ना॑य शु॒ष्मिणे॑ ।

दे॒वत्तं॑ ब्रह्म॒ गाय॑त ॥ ४ ॥

प्र शंसा॑ गोष्व॒घ्न्यं क्रीळं॑ यच्छर्धो॒ मारु॑तम् ।

जम्भे॑ रस॒स्य वावृ॑धे ॥ ५ ॥ १२ ॥

को वो॑ वर्षि॒ष्ट आ न॑रो दि॒वश्च॑ ग्मश्च॑ धू॒तयः॑ ।

यत्सी॑मन्तं॒ न धू॑नुथ ॥ ६ ॥

क्रीळं । वः । शर्धः । मारुतं । अनर्वाणं । रथेशुभं । कण्वाः । अभि । प्र । गायत  
॥१॥ ये । पृषतीभिः । ऋष्टिभिः । साक । वाशीभिः । अंजिभिः । अजायत । स्वभान-  
नवः ॥ २ ॥ इहेव । शृण्वे । एषां । कशाः । हस्तेषु । यत् । वदान् । नि । यामन् ।  
चित्रं । ऋञ्जते ॥ ३ ॥ प्र । वः । शर्धाय । घृष्वये । त्वेषशुम्नाय । शुष्मिणे । देवत्तं ।  
ब्रह्म । गायत ॥ ४ ॥ प्र । शंसा । गोषु । अघ्न्यं । क्रीळं । यत् । शर्धः । मारुतं ।  
जम्भे । रसस्य । वावृधे ॥५॥१२॥ कः । वः । वर्षिष्टः । आ । नरः । दिवः । च । ग्मः ।  
च । धूतयः । यत् । सी । अंतं । न । धूनुथ ॥ ६ ॥

नि वो यामाय मानुषो दध उग्राय मन्यवे ।

जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वा इव विश्पतिः ।

भिया यामेषु रेजते ॥ ८

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे ।

यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वलत ।

वाश्रा अभिज्जु यातवे ॥ १० ॥ १३

त्यं चिद्धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृधम् ।

प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११

मरुतो यद्द वो बलं जना अचुच्यवीतन ।

गिरीरचुच्यवीतन ॥ १२

यद्द यान्ति मरुतः सं ह व्रुवतेऽध्वन्ना ।

गृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३

नि । वः । यामाय । मानुषः । दध्रे । उग्राय । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥ ७  
 येषां । अज्मेषु । पृथिवी । जुजुर्वान्ऽइव । विश्पतिः । भिया । यामेषु । रेज  
 ॥ ८ ॥ स्थिरं । हि । जानं । एषां । वयोः । मातुः । निःऽएतवे । यत् । सी । अनु  
 द्विता । शवः ॥ ९ ॥ उदु । ऊं इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेषु । अत्तत्  
 वाश्राः । अभिऽज्जु । यातवे ॥ १० ॥ १३ ॥ त्यं । चित् । य । दीर्घं । पृथुं । मिहः । नपातं  
 अमृधं । प्र । च्यावयन्ति । यामभिः ॥ ११ ॥ मरुतः । यत् । ह । वः । बलं । जनान  
 अचुच्यवीतन । गिरीन् । अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥ यद्द । ह । यान्ति । मरुतः । सं  
 ह । व्रुवते । अध्वन् । आ । गृणोति । कः । चिद् । एषां ॥ १३ ॥



प्र यात शीर्भमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः ।

तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् ।

विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ३८ ॥ १-१५ कण्वो घोर ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्द.—१, ८, ११, १३, १५, ४, गायत्री ।

२, ६, ७, ९, १० निचृद्गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री । ५, १२ पिपीलिका मन्था निचृत् । १४ यवमन्था  
विराड् गायत्री ॥ षड्ज स्वरः ॥

( ३८ ) कद् नूनं कंधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।

दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

कं नूनं कद्दो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।

कं वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

कं वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः कं सुविता ।

कोऽविश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥

प्र । यात । शीर्भं । आशुभिः । संति । कण्वेषु । वः । दुवः । तत्रो इति । सु ।  
मादयाध्वै ॥ १४ ॥ अस्ति । हि । स्म । मदाय । वः । स्मसि । स्म । वयं । एषाम् ।  
विश्वं । चिद् । आयुः । जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

कत् । ह । नूनं । कंधप्रियः । पिता । पुत्रं । न । हस्तयोः । दधिध्वे । वृक्त-  
बर्हिषः ॥ १ ॥ कं । नूनं । कद् । वः । अर्थं । गन्तं । दिवः । न । पृथिव्याः । कं । वः ।  
गावः । न । रण्यन्ति ॥ २ ॥ कं । वः । सुम्ना । नव्यांसि । मरुतः । कं । सुविता ।  
कोऽइति । विश्वानि । सौभगा ॥ ३ ॥

यद्युयं पृश्निमातरो मतींसः स्यातन ।

स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः ।

पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥ १५ ॥

मो षु णः परापरा निऋतिर्दुर्हणा वधीत् ।

पदीष्ट तृष्ण्या सह ॥ ६ ॥

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियांसः ।

मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति ।

यदैषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन ।

यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

यत् । यूयं । पृश्निमातरः । मतींसः । स्यातन । स्तोता । वः । अमृतः ।  
 स्यात् ॥ ४ ॥ मा । वः । मृगः । न । यवसे । जरिता । भूत् ।  
 अजोष्यः । पथा । यमस्य । गात् । उप ॥ ५ ॥ १५ ॥ मो इति । सु । नः । परा-  
 परा । निऋतिः । दुःहना । वधीत् । पदीष्ट । तृष्ण्या । सह ॥ ६ ॥ सत्यं । त्वेषा  
 अमवन्तः । धन्वन् । चित् । आ । रुद्रियांसः । मिहं । कृण्वन्ति । अवातां ॥ ७  
 वाश्रेव । विद्युन्मिमाति । वत्सं । न । माता । सिषक्ति । यत् । एषां । वृष्टिः  
 असर्जि ॥ ८ ॥ दिवा । चित् । तमः । कृण्वन्ति । पर्जन्येन । उदवाहेन । यत् ।  
 पृथिवीं । व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥ अथ । स्वनात् । मरुतां । विश्वं । आ । सन्नं । पार्थिवं

अध॑ स्व॒नान्म॒रुतां॑ विश्व॒मा स॒द्म पार्थि॑वम् ।

अरे॑जन्त॒ प्र मानु॑षाः ॥ १० ॥ १६ ॥

मरु॑तो वी॒ळुपा॒णिभिश्चि॒त्रा रोध॑स्वती॒रनु॑ ।

या॒तेम॒खिद्र॒याम॒भिः ॥ ११ ॥

स्थि॒रा वः॑ सन्तु॒ नेम॒यो रथा॑ अश्वा॑स एषाम् ।

सुसं॑स्कृता॒ अभी॑शवः ॥ १२ ॥

अच्छा॑ व॒द्वा तना॑ गि॒रा ज॒रायै॑ ब्रह्म॑णस्पतिम् ।

अग्निं॑ मि॒त्रं न द॑र्शतम् ॥ १३ ॥

मिमी॑हि श्लो॒कमा॒स्ये प॒र्जन्य॑ इव ततनः ।

गाय॑ गाय॒त्रमु॒क्थ्यम् ॥ १४ ॥

वद॑स्व॒ मारु॑तं ग॒णं त्वे॒षं प॒नस्यु॑म॒र्किण॑म् ।

अ॒स्मे वृ॒द्धा अ॒सन्नि॒ह ॥ १५ ॥ १७ ॥

अरे॑जन्त । प्र । मानु॑षाः ॥ १० ॥ १६ ॥ मरु॑तः । वी॒ळुपा॒णिभिः । चि॒त्राः । रोध॑स्वतीः ।

अनु॑ । या॒त । ई॒ । अ॒खि॒द्र॒याम॒भिः ॥ ११ ॥ स्थि॒राः । वः॑ । संतु॑ । ने॒मयः॑ । रथाः॑ ।

अश्वा॑सः । ए॒षां । सुसं॑स्कृताः । अ॒भीश॑वः ॥ १२ ॥ अ॒च्छ । व॒द्वा । तना॑ । गि॒रा ।

ज॒रायै॑ । ब्रह्म॑णः । पति॑ । अ॒ग्निं । मि॒त्रं । न । द॑र्शतं ॥ १३ ॥ मिमी॑हि । श्लो॒कं ।

आ॒स्ये॑ । प॒र्जन्यः॑ इव । तत॑नः । गाय॑ । गाय॒त्र । उ॒क्थ्यं ॥ १४ ॥ वद॑स्व । मारु॑तं ।

गणं॑ । त्वे॒ष । प॒नस्यु॑ । अ॒र्किणं॑ । अ॒स्मे इति॑ । वृ॒द्धाः । अ॒सन् । इह ॥ १५ ॥ १७ ॥

॥ ३९ ॥ १—१० कण्वो घौर ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, पथ्यावृत्ती  
७ उपस्थिद्विराद् बृहती । २, ८, १०, विराद् सतः पङ्क्ति । ४, ६, निचृत्मत. पङ्क्ति । ३ अनुष्टुप  
स्वरः—१, ५, ९, ७, मध्यमः । २, ८, १०, ४, ६, पञ्चमः । ३ गान्धारः ॥

(३०) प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।

कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्षमा कं याथ कं ह धूतय ॥ १ ।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।

युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ।

परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।

वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।

युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिटाधृषे ॥ ४ ॥

प्र । यत् । इत्था । परावतः । शोचिः । न । मानं । अस्यथ । कस्य । क्रत्वा । मरुतः ।  
कस्य । वर्षमा । कं । याथ । कं । ह । धूतयः ॥१॥ स्थिरा । वः । सन्तु । आयुधा ।  
पराणुदे । वीळू । उत । प्रतिष्कभे । युष्माकं । अस्तु । तविषी । पनीयसी । मा ।  
मर्त्यस्य । मायिनः ॥२॥ परा । ह । यत् । स्थिरं । हथ । नरः । वर्तयथ । गुरु । वि ।  
याथन । वनिनः । पृथिव्याः । वि । आशाः । पर्वतानां ॥३॥ नहि । वः । शत्रुः ।  
विविदे । अधि । द्यवि । न । भूम्यां । रिशादसः । युष्माकं । अस्तु । तविषी ।  
तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आधृषे ॥४॥ प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । वि ।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विश्वन्ति वनस्पतीन् ।

प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥  
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।

आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदवीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।

गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्या कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥  
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।

वि नं युयोत् शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरुतिभिः ॥ ८ ॥

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दृढ प्रचेतसः ।

असामिभिर्मरुत आ नं ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

विचन्ति । वनस्पतीन् । प्रो इति । आरत । मरुतः । दुर्मदाः इव । देवासः । सर्वया ।  
विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥ उपो इति । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वं । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।  
आ । वः । यामाय । पृथिवी । चित् । अश्रोत् । अवीभयन्त । मानुषाः ॥ ६ ॥ आ । वः ।  
मक्षू । तनाय । कं । रुद्राः । अवः । वृणीमहे । गन्तं । नूनं । नः । अवसा । यथा ।  
पुरा । इत्या । कण्वाय । बिभ्युषे ॥ ७ ॥ युष्माऽऽषितः । मरुतः । मर्त्येऽऽषितः ।  
आ । यः । नः । अभ्वः । ईषते । वि । त । युयोत् । शवसा । वि । ओजसा । वि ।  
युष्माकाभिः । ऊतिभिः ॥ ८ ॥ असामि । हि । प्रयज्यवः । कण्वं । दृढ । प्रचे-  
तसः । असामिभिः । मरुतः । आ । नः । ऊतिभिः । गन्तं । वृष्टिं । न ।  
विद्युतः ॥ ९ ॥

असांभ्योजो विभृथा सुदानवोऽसामि धृतयः शवः ।

ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

॥ ४० ॥ १-८ कण्वो घौर ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः-२, १, ८ निचृदुपरिग्राहृहती । ५ पथ्यावृहती । ३, ७ आर्चीनिष्टुप् । ४, ६ गतःपङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्ति ॥ स्वरः-१, २, ८ ५ मध्यमः । ३, ७ वैवतः । ४, ६ पञ्चमः ॥

( ४० ) उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्रं प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

त्वामिद्वि सहसस्पुत्र मर्त्य उपव्रूते धने हिते ।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

असामि । ओजः । विभृथ । सुदानवः । असामि । धृतयः । शवः । ऋषि-  
द्विषे । मरुतः । परिमन्यवे । इषुं । न । सृजत । द्विषं ॥ १० ॥ १९ ॥

उत् । तिष्ठ । ब्रह्मणः । पते । देवयन्तः । त्वा । ईमहे । उप । प्र । यन्तु ।  
मरुतः । सुदानवः । इन्द्रं । प्राशूरः । भव । सचा ॥१॥ त्वां । इत् । हि । सहसः ।  
पुत्र । मर्त्यः । उपव्रूते । धने । हिते । सुवीर्यं । मरुतः । आ । सुश्व्यं । दधीत ।  
यः । वः । आचके ॥ २ ॥ प्र । एतु । ब्रह्मणः । पतिः । प्र । देवी । एतु ।  
सूनृता । अच्छा । वीरं । नर्यं । पङ्क्तिराधसं । देवाः । यज्ञं । नयन्तु । नः ॥३॥  
यः । वाघते । ददाति । सूनरं । वसु । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः । तस्मै । इळां ।  
सुवीरां । आ । यजामहे । सुप्रतूर्ति । अनेहसं ॥४॥ प्र । नूनं । ब्रह्मणः । पतिः ।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्नमन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥

तमिदोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।

इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्रवत् ॥ ६ ॥

को देवयन्तमश्रवजनं को वृक्तबर्हिषम् ।

प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥

उप क्षत्रं पृञ्चति हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।

नास्य वर्ता न तरुता महाधने नाभे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

॥ ४१ ॥ १-९ ऋग्वेदो घोर ऋषि ॥ देवता-१-३ ७-९ वरुणमित्रार्यमण । ४-६ आदित्याः ॥

छन्दः-१ ४ ५ ८ गायत्री । २ ३ ६ विराड् गायत्री । ७ ९ निचृद्गायत्री ॥ १-९ षड्ज स्वरः ॥

( ४१ ) यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

मन्त्रं । वदति । उक्थ्यं । यस्मिन् । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । देवाः । ओकां-  
सि । चक्रिरे ॥५॥२०॥ तं । इत् । वोचेम । विदथेषु । शम्भुवं । मन्त्रं । देवाः । अने-  
हसं । इमां । च । वाचं । प्रतिहर्यथ । नरः । विश्वा । इत् । वामा । वः । अश्रवत्

॥ ६ ॥ कः । देवयन्तं । अश्रवत् । जनं । कः । वृक्तबर्हिष । प्रप्र । दाश्वान् ।  
पस्त्याभिः । अस्थितान् । अतःवावत् । क्षयं । दधे ॥ ७ ॥ उप । क्षत्रं । पृञ्चति ।  
हन्ति । राजभिः । भये । चित् । सुक्षिति । दधे । न । अम्य । वर्ता । न । तरुता ।  
महाधने । न । अभे । अस्ति । वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

यं । रक्षन्ति । प्रचेतसः । वरुणः । मित्र । अर्यमा । नू चित् । मः । दभ्यन्ते ।  
जनः ॥ १ ॥

यं ब्राह्मतेव पिप्रति पान्ति मर्त्ये रिषः ।

अरिष्टः सर्वे एधते ॥ २ ॥

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो व्रन्ति राजान एषाम् ।

नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास कृतं यते ।

नात्रावग्वादो अस्ति वः ॥ ४ ॥

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा ।

प्र वः स धीनये नशत् ॥ ५ ॥ २२ ॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना ।

अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः ।

महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥

मा वो व्रन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ।

सुमैरिद्ध आ विवासे ॥ ८ ॥

यं । ब्राह्मताऽइव । पिप्रति । पान्ति । मर्त्ये । रिषः । अरिष्टः । सर्वैः ।  
 एधते ॥ २ ॥ वि । दुःग्णा । वि । द्विषः । पुरः । व्रन्ति । राजानः । एष  
 नयन्ति । दुःग्णता । तिरः ॥३॥ सुगः । पन्थाः । अनृक्षरः । आदित्यामः । कृत  
 यते । ना । अत्र । अवग्वादः । अस्ति । वः ॥४॥ यं । यज्ञं । नयथा । नरः । आ  
 न्याः । ऋजुना । पथा । प्र । वः । सः । धीनये । नशत् ॥ ५ ॥ २२ ॥ सः । रत्नं  
 मर्त्यैः । वसु । विश्वं । तोकं । उत । त्मना । अच्छा । गच्छति । अस्तृतः ॥६॥ कथा  
 राधाम । सखायः । स्तोमं । मित्रस्य । अर्यम्णः । महि । प्सरः । वरुणस्य ॥ ७  
 मा । वः । व्रन्तं । मा । शपन्तं । प्रति । वोचे । देवयन्तं । सुमैः । इव । वः । आ



चतुरश्रिददमानाद्विभीयादा निधातोः ।

न दुःरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

॥ ४२ ॥ १--१० कण्वो घोर ऋषिः ॥ प्रपा देवता ॥ छन्दः-१, ९ निवृत्तयत्री । २, ३, ५--८ १० गायत्री । ४ विगङ् गायत्री ॥ पङ्ज. स्वर ॥

( ४२ ) सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।

सक्ष्वा देव प्र णस्पुः ॥ १ ॥

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।

अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।

दूरमधि सुतेरज ॥ ३ ॥

त्वं तस्यं ह्याविनोऽघशंसस्य कस्यं चित् ।

पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥

आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।

येन पितृनचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

विवासे ॥ ८ ॥ चतुरः । चित् । ददमानात् । विभीयात् । आ । निधातोः । न ।  
दुःरुक्ताय । स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

सं । पूषन् । अध्वनः । तिर । वि । अंहः । विमुचः । नपात् । सक्ष्वा । देव ।  
प्र । न् । पुः ॥ १ ॥ यः । नः । पूषन् । अघः । वृकः । दुःशेवः । आदिदेशति ।  
अप । स्म । तं । पथः । जहि ॥ २ ॥ अप । त्यं । परिपन्थिनं । मुषीवाणं । हुरः । चितं ।  
दूरं । अधि । सुतेः । अज ॥ ३ ॥ त्वं । तस्यं । ह्याविनः । अघशंसस्य । कस्यं । चित् ।  
पदा । अभि । तिष्ठ । तपुषि ॥ ४ ॥ आ । तत् । ते । दस्र । मन्तुमः ।  
पूषन् । अवः । वृणीमहे । येन । पितृन् । अचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

अधा॑ नो विश्वसौ॒भग॑ हिर॑ण्यवाशीमत्तम ।

धना॑नि सु॒पणा॑ कृधि ॥ ६ ॥

अति॑ नः स॒श्रुतो॑ नय सु॒गा नः सु॒पथा॑ कृणु ।

पूर्ष॑न्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥

अ॒भि सु॒यव॑सं नय न नव॑ज्ज्वारो अध्व॑ने ।

पूर्ष॑न्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

शु॒ग्धि पू॒र्धि प्र यंसि॑ च शि॒शीहि॑ प्रास्युद॑रंम ।

पूर्ष॑न्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥

न पू॒षणं॑ मेथामसि सु॒क्तैर॑भि गृ॒णीमसि॑ ।

वसू॑नि द॒स्ममी॑महे ॥ १० ॥ २५ ॥

॥ ४३ ॥ १—९ कण्वो घोर ऋषि ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः । ३ मित्रावरुणौ । ७—९ सोम ॥ छन्द—१—४, ७, ८ गायत्री । ५ विराड्गायत्री । ६ पादनिचृद्गायत्री । ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः १—८ पद्य । ९ गान्धार ॥

(४३) कद्रुद्राय प्रचेतसे मीद्दुष्टमाय तव्यसे ।

वोचेम जन्तमं हृदे ॥ १ ॥

अधा॑ नः । विश्व॑सौ॒भग॑ । हिर॑ण्यवाशीमत्तम । धना॑नि । सु॒सना॑ । कृधि ॥ ६ ॥ अति॑ । नः । स॒श्रुतः॑ । नय । सु॒गा । नः । सु॒पथा॑ । कृणु । पूर्ष॑न् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ७ ॥ अ॒भि । सु॒यव॑सं । नय । न । नव॑ज्ज्वारः । अध्व॑ने । पूर्ष॑न् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ८ ॥ शु॒ग्धि । पू॒र्धि । प्र । यंसि॑ । च । शि॒शीहि॑ । प्रासि॑ । उद॑रं । पूर्ष॑न् । इह । क्रतुं । विदः ॥ ९ ॥ न । पू॒षणं॑ । मे॒थाम॑सि । सु॒क्तैः॑ । अ॒भि । गृ॒णीम॑सी । वसू॑नि । द॒स्मं । इ॒महे॑ ॥ १० ॥ २५ ॥

कव । रुद्राय । प्रचेतसे । मीद्दुःस्तमाय । तव्यमे । वोचेम । जन्तमं ।

यथा नो अदितिः कर्त्पश्वे नृभ्यो यथा गवे ।

यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ।

यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥

गाथर्पतिं मेधर्पतिं रुद्रं जलाषभेषजम् ।

तच्छ्रयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ।

श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥ २६ ॥

शं नः कर्त्पवते सुगं मेषाय मेष्ये ।

नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।

महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त ।

आ न इन्द्रो वाजे भज ॥ ८ ॥

हृदे ॥ १ ॥ यथा । नः । अदितिः । कर्त्प । पश्वे । नृभ्यः । यथा । गवे ।  
यथा । तोकाय । रुद्रियं ॥ २ ॥ यथा । नः । मित्रः । वरुण । यथा । रुद्रः ।  
चिकेतति । यथा । विश्वे । सजोषसः ॥ ३ ॥ गाथर्पतिं । मेधर्पतिं । रुद्रं ।  
जलाषभेषजं । तत् । श्रयोः । सुम्नं । ईमहे ॥ ४ ॥ यः । शुक्र इव । सूर्यः ।  
हिरण्यमिव । रोचते । श्रेष्ठः । देवानां । वसुः ॥ ५ ॥ २६ ॥ शं । नः ।  
कर्त्पति । अवते । सुगं । मेषाय । मेष्ये । नृभ्यः । नारिभ्यः । गवे ॥ ६ ॥  
अस्मे इति । सोम । श्रियं । अधि । नि । धेहि । शतस्य । नृणां । महि ।  
श्रवः । तुविनृम्णं ॥ ७ ॥ मा । नः । सोमपरिबाधः । मा । मारातयः ।  
जुहुरन्त । आ । नः । इन्द्रो इति । वाजे । भज ॥ ८ ॥

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।

मूर्धा नाभा सोम वेन आभ्रूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

## ॥ नवमोऽनुवाकः ॥

॥ ४४ ॥ १—१४ प्ररुण्व ऋषिः ॥ देवता १—१४ अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ उपरिष्ठाद्विराड्वृहती ।  
३ निचृदुपरिष्ठाद्वृहती । ७, ११ निचृत्पथ्यावृहती । १२ भारग्वृहती । १३ पथ्यावृहती । २, ४, ८, १४ विराट् ।  
स्त पंक्तिः । १० विराट्विस्तारपंक्तिः । ९ आची त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५, ३ ७, ११—१३ मयमः ।  
२, ४ ६ ८, १४. १० पञ्चमः । ९ धैवतः ॥

( ४४ ) अग्ने विवस्वदुषसाश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो वह्ना त्वमद्या देवा उषवुध ॥ १ ॥

जुष्टो हि दृतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्वियामुपसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

अद्या दृतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

धूमकेतुं भाकृजिकं व्युष्टिपु यजानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥

याः । ते । प्रजाः । अमृतस्य । परस्मिन् । धामन् । ऋतस्य । मूर्धा ।  
नाभा । सोम । वेनः । आभ्रूषन्तीः । सोम । वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

## ॥ नवमोऽनुवाकः ॥

अग्ने । विवस्वत् । उपसः । चित्रं । राधः । अमर्त्य । आ । दाशुषे ।  
जातवेदः । वह्ना । त्व । अद्य । देवान् । उपःऽवुधः ॥ १ ॥ जुष्टः । हि ।  
दृतः । असि । हव्यवाहनः । अग्ने । रथीः । अध्वराणां । सजूरः । अश्वि-  
भ्यां । उपसा । सुवीर्य । अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् ॥ २ ॥  
अद्य । दृतं । वृणीमहे । वसुं । अग्निं । पुरुप्रियं । धूमकेतुं । भाऽकृ-

श्रेष्ठं यविष्टमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।

अग्ने त्रानारमृतं मिथेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठय मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कण्वस्य प्रतिग्नार्युर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विशं इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

सवितारमुषसमश्विना भगमग्नि व्युष्टिषु क्षपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमामस इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

जीकं । विऽऽष्टिषु । यज्ञानां । अध्वरऽश्रियं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठं । यविष्टं । अतिथिं ।  
 सुऽआहुतं । जुष्टं । जनाय । दाशुषे । देवान् । अच्छ । यातवे । जातऽवेदसं ।  
 अग्नि । इळे । विऽऽष्टिषु ॥ ४ ॥ स्तविष्यामि । त्वां । अहं । विश्वस्य । अमृत ।  
 भोजन । अग्ने । त्रानारं । अमृतं । मिथेध्य । यजिष्ठं । हव्यऽवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥  
 सुऽशंसः । बोधि । गृणते । यविष्ठय । मधुजिह्वः । सुऽआहुतः । प्रस्कण्वस्य ।  
 प्रऽतिग्न । आयुः । जीवसे । नमस्य । दैव्यं । जनं ॥ ६ ॥ होतारं । विश्व-  
 वेदसं । सं । हि । त्वा । विशः । इन्धते । स । आ । वह । पुरुहूत ।  
 प्रचेतसः । अग्ने । देवान् । इह । द्रवत् ॥ ७ ॥ सवितारं । उषसं ।  
 अश्विना । भगं । अग्नि । विऽऽष्टिषु । क्षपः । कण्वासः । त्वा । सुतऽसोमामः ।  
 इन्धते । हव्यवाहं । सुऽअध्वर ॥ ८ ॥

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।

उषवुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वदृशः ॥ ९ ॥

अग्ने पूर्वा अनूपसां विभावसो ढीदेथ विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥

नि त्वां यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्वदेव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरं यासि दूत्यम् ।

मिन्धोरिव प्रस्वनिताम ऊर्मयोऽग्नेभ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वहिभिर्देवैरग्रे स्यावभिः ।

आ सीदन्तु वहिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

पतिः । हि । अध्वराणां । अग्ने । दूतः । विशां । अमि । उषःऽयुधः ।  
 आ । वह । सोमपीतये । देवान् । अद्य । स्वःऽदृशः ॥ ९ ॥ अग्ने । पूर्वाः ।  
 अनु । उपमः । विभावसो इति विभास्वसो । ढीदेथ । विश्वऽदर्शत । अस्मि ।  
 ग्रामेषु । अविता । पुरःऽहितः । असि । यज्ञेषु । मानुषः ॥ १० ॥ २९  
 नि । त्वा । यज्ञस्य । साधनं । अग्ने । होतारं । ऋत्विजं । मनुष्वत् । दे  
 धीमहि । प्रचेतसं । जीरं । दूतं । अमर्त्यं ॥ ११ ॥ यत् । देवान्  
 मित्रमहः । पुरःऽहितः । अंतरः । यासि । दूत्यं । मिन्धोःऽडव । प्रस्वनिताम्  
 ऊर्मयः । अग्नेः । भ्राजन्ते । अर्चयः ॥ १२ ॥ श्रुधि । श्रुत्कर्ण । वहिभि  
 देवैः । अग्ने । स्यावभिः । आ । सीदन्तु । वहिषि । मित्रः । अर्यमा । प्रात

गृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिवंतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुपसा सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

॥ ४५ ॥ १—१० प्रस्कण्व काण्व ऋषि. ॥ १—१० अग्निदेवा देवता ॥ छन्दः—१भुरिगु-  
क् । ५ उष्णक्. २, ३ ७. ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६, ९, १० त्रिराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१  
ऋषभः । २—३ ६—१० गान्धार ॥

( ४३ ) त्वमग्ने वसुरिह रुद्रां आदित्यां उत ।

यज स्वध्वरं जनं मनुजानं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।

तान्नोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिशतमा वह ॥ २ ॥

प्रियमेधवदत्रिवजातवेदो विरूपवत् ।

अगिरस्वन्महिषत् प्रस्कण्वस्य श्रुधि हवम् ॥ ३ ॥

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहृषत् ।

राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण गोचिषां ॥ ४ ॥

यावानः । अध्वरं ॥ १३ ॥ गृण्वंतु । स्तोमं । मरुतः । सुदानवः । अग्नि-  
जिह्वा । ऋतवृधः । पिवंतु । सोमं । वरुणः । धृतव्रतः । अश्विभ्यां । उपसां ।  
सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

त्वं । अग्ने । वसुन् । इह । रुद्रान् । आदित्यान् । उत । यज । सुअध्वरं ।  
जनं । मनुजानं । घृतप्रुषं ॥ १ ॥ श्रुष्टीवानं । हि । दाशुषे । देवाः । अग्ने ।  
विचेतस । तान् । रोहितऽअश्व । गिर्वणः । त्रयःऽत्रिशतं । आ । वह ॥ २ ॥  
प्रियमेधवत् । अत्रिवत् । जातवेदः । विरूपवत् । अगिरस्वन् । महिषत् ।  
प्रस्कण्वस्य । श्रुधि । हवम् ॥ ३ ॥ महिकेरवः । ऊतये । प्रियमेधाः । अहृषत् ।  
राजन्तं । अध्वराणां । अग्निं । शुक्रेण । गोचिषां ॥ ४ ॥

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।

याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ ३

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विश्व जन्तवः ।

शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोह्वे ॥ ६

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।

श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रथः ।

बृहद्भा विभ्रतो हविरग्ने मतीय दाशुषे ॥ ८

प्रातर्यावणः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।

इहाव दैव्यं जनं वहिरा सादया वसो ॥ ९

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहतिभिः ।

अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्वयम् ॥ १० ॥ ३

घृतं आहवन । संत्ये । इमाः । उं इति । सु । श्रुधि । गिरः । याभिः । कण्वस्य  
सूनवः । हवन्ते । अवसे । त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥ त्वां । चित्रश्रवःस्तम । हवन्ते  
विश्व । जन्तवः । शोचिःऽकेशं । पुरुऽप्रिय । अग्ने । हव्याय । वोह्वे ॥ ६  
नि । त्वा । होतार । ऋत्विजं । दधिरे । वसुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं । सप्रथःस्तम  
विप्राः । अग्ने । दिविष्टिषु ॥ ७ ॥ आ । त्वा । विप्राः । अचुच्यवुः । सुत  
सोमाः । अभि । प्रथः । बृहत् । भाः । विभ्रतः । हविः । अग्ने । मतीय  
दाशुषे ॥ ८ ॥ प्रातःऽयावणः । सहःऽस्कृत । सोमपेयाय । संत्ये । इहा  
अव । दैव्यं । जनं । वहिः । आ । सादय । वसो इति ॥ ९ ॥ अर्वाञ्चं  
दैव्यं । जनं । अग्ने । यक्ष्व । सहतिभिः । अयं । सोमः । सुदानव  
स्तं । पात । तिरोऽअह्वयं ॥ १० ॥ ३२ ॥



॥ ४६ ॥ १-१५ प्रस्कण्व. काण्व ऋषि ॥ अतिनो देवते ॥ छन्दः-१ १० विराङ्गायत्री ।  
३. ११. ६. १२. १४, गायत्री । ५, ७. ९. १३. १५, २. ४, ८. निरुङ्गायत्री ॥ १-१५  
पङ्क्तः स्वरः ॥

( ४६ ) एषो उवा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

या दस्त्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।

धिया देवा बसुविदा ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां कुरुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।

यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

द्विषा जारो अषां पिपति पपुर्निरा ।

पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

आदारो वां मतीनां नामत्या मतवचसा ।

पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥ ३३ ॥

एषो इति । उवाः । अपूर्व्या । वि । व्युच्छति । प्रिया । दिवः । स्तुषे ।  
वां । अश्विना । बृहत् ॥ १ ॥ या । दस्त्रा । सिन्धुमातरा । मनोतरा ।  
रयीणां । धिया । देवा । बसुविदा ॥ २ ॥ वच्यन्ते । वां । कुरुहासः । जूर्णायाम् ।  
अधि । विष्टपि । यत् । वां । रथः । विभिः । पतात् ॥ ३ ॥ द्विषा । जारः ।  
अषां । पिपति । पपुर्निः । निरा । पिता । कुटस्य । चर्षणिः ॥ ४ ॥ आ-  
दारः । वां । मतीनां । नामत्या । मतवचसा । पातं । सोमस्य । धृष्णुया  
॥ ५ ॥ ३३ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।

युजाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।

धिया युयुज्ज इन्दवः ॥ ८ ॥

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे ।

स्वं वृत्रिं कुहं धित्सथः ॥ ९ ॥

अभूद् भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।

व्यख्यजिह्वयासितः ॥ १० ॥ ३४ ॥

अभूद् पारमेतवे पन्थां ऋतस्य साधुया ।

अदंशि वि सुतिदिवः ॥ ११ ॥

या । नः । पीपरत् । अश्विना । ज्योतिष्मती । तमः ।  
 तिरः । तां । अस्मे इति । रासाथां । इषं ॥ ६ ॥ आ । नः । नावा ।  
 मतीनां । यातं । पाराय । गन्तवे । युजाथां । अश्विना । रथं ॥ ७ ॥  
 अरित्रं । वां । दिवः । पृथु । तीर्थे । सिन्धूनां । रथः । धिया । युयुज्जे ।  
 इन्दवः ॥ ८ ॥ दिवः । कण्वासः । इन्दवः । वसु । सिन्धूनां । पदे । स्वं ।  
 वृत्रिं । कुहं । धित्सथः ॥ ९ ॥ अभूत् । ऊं इति । भाः । ऊं इति । अंशवे ।  
 हिरण्यं । प्रति । सूर्यः । वि । व्यख्यत् । जिह्वया । असितः ॥ १० ॥ ३४ ॥  
 अभूत् । ऊं इति । पारं । एतवे । पन्थाः । ऋतस्य । साधुया । अदंशि ।

तत्तदिदृश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति ।  
 मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥  
 वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।  
 मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥  
 युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।  
 ऋता वन्थो अक्तुभिः ॥ १४ ॥  
 उभा पिवत्तमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।  
 अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥  
 ॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ४७ ॥ १-१० प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्द - १, ५ निचृत्वथ्या वृत्ती ।  
 ३, ७ पथ्या वृत्ती । ९ निराट् पथ्या वृत्ती । २, ६, ८ निचृत्सतः पक्तिः । ४, १० सतः पक्तिः ॥  
 स्वरः-१, ५ ३ ७ ९ मध्यमः । २, ६, ८ ४, १० पञ्चमः ॥

( ४७ ) अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।  
 तमश्विना पिवत्तं तिरोअह्वयं धृत्तं रत्नानि द्वाशुषे ॥१॥

वि । सुतिः । द्विवः ॥ ११ ॥ तत्सतत् । इत् । अश्विनोः । अवः । जरिता ।  
 प्रति । भूषति । मदे । सोमस्य । पिप्रतोः ॥ १२ ॥ वावसाना । विवस्वति ।  
 सोमस्य । पीत्या । गिरा । मनुष्वत् । शंभू इति शंभू । आ । गतं  
 ॥ १३ ॥ युवोः । उषाः । अनु । श्रियं । परिज्मनोः । उपआचरत् ।  
 ऋता । वन्थः । अक्तुभिः ॥ १४ ॥ उभा । पिवत्तं । अश्विना । उभा ।  
 नः । शर्म । यच्छतं । अविद्रियाभिः । ऊतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥  
 ॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अयं । वां । मधुमत्तमः । सुतः । सोमः । ऋतावृधा । तं । अश्विना ।  
 पिवत्तं । तिरःअह्वयं । धृत्तं । रत्नानि । द्वाशुषे ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।

कण्वांसो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु गृणुतं हवम् ॥२॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।

अथात्र दसा वसु विभ्रता रथे द्वाश्वान्समुप गच्छतम् ॥ ३ ॥

त्रिपथस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं सिमिक्षतम् ।

कण्वासो वां सुतसोमा अभिर्यवो गुवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

याभिः कण्वंसभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।

ताभिः पवस्माँ अवतं शुभरपती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

मुदासे दसा वसु विभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।

रयिं संसुद्रादुत वा दिवस्पयस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

त्रिवन्धुरेण । त्रिवृता । सुपेशसा । रथेन । आ । यातं । अश्विना ।  
 कण्वासः । वां । ब्रह्म । कृण्वन्ति । अध्वरे । तेषां । सु । गृणुतं । हवम् ॥२॥ अश्विना ।  
 मधुमत्तमं । पातं । सोमं । कृतवृधा । अर्थ । अथ । दसा । वसु । विभ्रता ।  
 रथे । द्वाश्वान्सं । उप । गच्छतं ॥ ३ ॥ त्रिपथस्थे । बर्हिषि । विश्ववेदसा ।  
 मध्वा । यज्ञं । सिमिक्षतं । कण्वासः । वां । सुतसोमाः । अभिर्यवः । गुवां ।  
 हवन्ते । अश्विना ॥ ४ ॥ याभिः । कण्वं । अभिष्टिभिः । प्र । आवतं । युवं ।  
 अश्विना । ताभिः । मु । अस्मान् । अवतं । शुभः । पती इति । पातं । सोमं ।  
 कृतवृधा ॥ ५ ॥ १ ॥ मुदासे । दसा । वसु । विभ्रता । रथे । पृक्षः । वहतं ।  
 अश्विना । रयिं । संसुद्रान् । उत । वा । दिवः । पयिं । अस्मे इति । धत्तं ।

यज्ञासत्या परावति यज्ञा स्थो अधि तुर्वशे ।

अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रुहिमभिः ॥७॥

अर्वाक्षां वां सप्तयोऽध्वराश्रियो वहन्तु सवनेवर्ष ।

इपं पृश्नन्तं सुकृते सुदानं आ बर्हिः सीदन्तं नरा ॥८॥

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यस्त्वचा ।

येन शश्वद्बृहथुर्वाशुषे वसू मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

उक्थेभिर्वावसे पुरुवसू अकेश्च नि ह्वयामहे ।

शश्वत्कण्वानां सदासि शिघ्रे हि कं सोमं पपथुराश्विना ॥१०॥२॥

॥ १८ ॥ १-१६ प्रस्फण ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः-१ ३, ७ ९ विराट् पथ्या वृत्ती ।  
१० ११ निचुन पथ्या वृत्ती । १२ वृत्ती । १५ पथ्या वृत्ती । ४, ६ १४ विराट् यत् पञ्च ।  
१०, १३ निचुन पञ्च । ८ पञ्च ॥ स्वरः-१ ३, ५, ९, ५, ११ १३ १२, १५ मयम ।  
३ ५ ३ १० १६ ८ पथम ॥

( ४८ ) सह वासेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

सह चुम्बेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥१॥

पुरु रपृहं ॥ ६ ॥ यत् । नासत्या । परावति । यत् । वा । स्थः । अधि ।  
तुर्वशे । अतः । रथेन । सुवृता । नः । आ । गतं । साकं । सूर्यस्य ।  
रुहि मभिः ॥ ७ ॥ अर्वाक्षा । वां । सप्तयोः । अध्वराश्रियोः । वहन्तु । सवनेना ।  
वर्ष । उप । इपं । पृश्नन्तं । सुकृते । सुदानं । आ । बर्हिः । सीदन्तं ।  
नरा ॥ ८ ॥ तेन । नासत्या । आ । गतं । रथेन । सूर्यस्त्वचा । येन ।  
शश्वन् । उक्थेभिः । वावसे । पुरुवसू उति पुरुवसू । अकेः । च । नि । ह्वया-  
महे । शश्वत् । कण्वानां । सदासि । शिघ्रे । हि । कं । सोमं । पपथुः ।  
अश्विना ॥ १० ॥ २ ॥

सह । वासेन । नः । उषः । नि । व्युच्छ । दुहितः । दिवः । सह ।  
चुम्बेन । बृहता । विभावरि । राया । देवि । दास्वती ॥ १ ॥

अश्वान्तर्गोमतीर्विश्वसुचिदो भूरिं च्यवन्त वस्तवे ।

उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

उवासोषा उच्छात्र नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत्कण्वं एषां कण्वतमो नाम गृणानि नृणाम् ॥ ४ ॥

आ या योषेव सूनरुपा यानि प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत् उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो नकिंष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

अश्वान्तीः । गोमतीः । विश्वसुचिदः । भूरिं । च्यवन्त । वस्तवे । उत् । उदीरय । प्रति । मा । सूनृताः । उषः । चोद । राधः । मघोनाम् ॥ २ ॥ उवास । उपाः । उच्छात्र । च । नु । देवी । जीरा । रथानाम् । ये । अस्याः । आचरणेषु । दधिरे । समुद्रे । न । श्रवस्यवः ॥ ३ ॥ उषः । ये । ते । प्र । यामेषु । युञ्जते । मनः । दानाय । सूरयः । अत्र । अह । तत् । कण्वः । एषां । कण्वतमः । नाम । गृणानि । नृणां ॥ ४ ॥ आ । या । योषां । सूनरी । उपाः । यानि । प्रभुञ्जती । जरयन्ती । वृजनं । पद्वदीयत् । उत्पातयति । पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥ वि । या । सृजति । समनं । वि । अर्थिनः । पदं । न । वेति । ओदती । वयः । नकिं । ते । पप्तिवांसः । आसते । व्युष्टौ । वाजिनी-

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।

शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्त्रियः ॥ ८ ॥

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितदिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसिं सूनरि ।

सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघ्रे हवम् ॥१०॥४॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वरां उप ये त्वा गृणन्ति वह्यः ॥ ११ ॥

वृत्ति ॥ ६ ॥ एषा । अयुक्त । परावतः । सूर्यस्य । उदऽअयनात् । अधि ।

शतं । रथेभिः । सुभगा । उषाः । इयं । वि । याति । अभि । मानुषान् ॥ ७ ॥

विश्वं । अस्याः । नानाम । चक्षसे । जगत् । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी । अप । द्वेषः ।

मघोनी । दुहिता । दिवः । उषाः । उच्छत् । अप । स्त्रियः ॥ ८ ॥ उषः । आ ।

भाहि । भानुना । चन्द्रेण । दुहितः । दिवः । आवहन्ती । भूरि । अस्मभ्यं ।

सौभगं । विऽउच्छती । दिविष्टिषु ॥ ९ ॥ विश्वस्य । हि । प्राणनं ।

जीवनं । त्वे इति । वि । यत् । उच्छसिं । सूनरि । सा । नः । रथेन । बृहता ।

विभावरि । श्रुधि । चित्रामघ्रे । हवम् ॥ १० ॥ ४ ॥ उषः । वाजं । हि । वंस्व ।

यः । चित्रः । मानुषे । जने । तेन । आ । वह । सुकृतः । अध्वरान् । उप ।

ये । त्वा । गृणन्ति । वह्यः ॥ ११ ॥

विश्वान्देवाँ आ बृह सोमपीतयेऽन्नरिक्षादुपस्त्वम् ।

सास्मास्तु धा गोसदश्वान्दुक्थ्यसुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

यस्या रुशन्ता अर्चयः प्रति भद्रा अर्क्षत ।

सा नो रयि विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥

ये चिद्धि त्वासृषयः पूर्वं ऊतये जुहुरेऽवसे महि ।

सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राशसोषः शुक्लेण गोचिषा ॥१४॥

उपो यद्व्य भानुना वि हारावृणवो दिवः ।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथु छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५॥

सं नो राया वृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।

सं जुम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजेर्वाजिनीवति ॥१६॥

विश्वान् । देवान् । आ । बृह । सोमऽपीतये । अंत-  
रिक्षात् । उपः । त्वं । सा । अस्मास्तु । धाः । गोसदत् । अश्वऽवत् । दु-  
क्थ्यं । उषः । वाजं । सुऽवीर्यं ॥ १२ ॥ यस्याः । रुशन्ताः । अर्चयः । प्रति ।  
भद्राः । अर्क्षत । सा । नः । रयि । विश्वऽवारं । सुपेशसं । उषाः । ददातु ।  
सुगम्यं ॥ १३ ॥ ये । चिद्धि । हि । त्वां । ऋषयः । पूर्वं । ऊतये । जुहुरे ।  
अवसे । महि । सा । नः । स्तोमान् । अभि । गृणीहि । राशसा । उषः ।  
शुक्लेण । गोचिषा ॥ १४ ॥ उपः । यत् । अद्य । भानुना । वि । हारो ।  
वृणवः । दिवः । प्र । नः । यच्छतात् । अवृकं । पृथु । छर्दिः । प्र । देवि ।  
गोमतीः । उषः ॥ १५ ॥ सं । नः । राया । वृहता । विश्वपेशसा ।  
मिमिक्ष्वा । सं । उळाभिः । आ । सं । जुम्नेन । विश्वतुरा ।  
उपः । महि । सं । वाजेः । वाजिनीऽवति ॥ १६ ॥ ५ ॥



॥ ४९ ॥ १—४ प्रत्कण्वः काण्व ऋषि ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्द ॥ गान्धार स्वरः ॥

( ४९ ) उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।

वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।

तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

वयश्चित्ते पत्रिणो द्विपचतुष्पदर्जुनि ।

उषः प्रारन्नतूरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।

तां त्वामुषर्वसूयवो गीभिः कर्णा अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

॥ ५० ॥ १-१३ प्रत्कण्वः काण्व ऋषि ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः-१ ६ निचृदायत्री । २, ४, ६, ९ (पौलिकामध्या निचृदायत्री । ३ गायत्री । ५ यमध्या विराड्गायत्री । १०, ११ निचृदनुष्टुप् । १२, १३ अनुष्टुप् ॥ स्वरः- १-९ षड्ज । १०-१३ गान्धारः ॥

( ५० ) उदृत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वायु सूर्यम् ॥ १ ॥

उषः । भद्रेभिः । आ । गहि । दिवः । चित् । रोचनात् । अधि । वहन्तु । अरु-  
णप्सवः । उप । त्वा । सोमिनः । गृहं ॥ १ ॥ सुपेशसं । सुखं । रथं ।  
यं । अधिऽअस्थाः । उषः । त्वं । तेन । सुश्रवसं । जनं । प्र । अत्र ।  
अथ । दुहितः । दिवः ॥ २ ॥ वयः । चित् । ते । पत्रिणः । द्विपत् ।  
चतुऽपत् । अर्जुनि । उषः । प्र । आरन् । ऋतून् । अनु । दिवः । अन्तेभ्यः । परि ॥ ३ ॥  
व्युच्छन्ती । हि । रश्मिभिः । विश्वं । आभासि । रोचनं । तां । त्वां ।  
उषः । वसुषवः । गीभिः । कर्णाः । अहूषत् ॥ ४ ॥ ६ ॥

उत् । ऊं इति । त्यं । जातवेदसं । देवं । वहन्ति । केतवः । दृशे ।  
विश्वाय । सूर्यं ॥ १ ॥

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ ।

सू॒राय॑ वि॒श्वच॑क्षसे ॥ २

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॑ वि र॒श्मयो॑ जनाँ॒ अनु॑ ।

भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ ३

तर॑णिर्वि॒श्वदर्श॑तो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य॑ ।

विश्र॑मा भा॒सि रोच॑नम् ॥ ४

प्र॒त्यङ् दे॒वानां॑ वि॒शः प्र॒त्यङ् दे॒पि मा॑नु॒षान् ।

प्र॒त्यङ् विश्वं॑ स्व॒र्दृशे॑ ॥ ५ ॥ ७

येना॑ पाव॒क च॑क्ष॒सा ध्रु॑र॒ण्यन्तं॑ जनाँ॒ अनु॑ ।

त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ ६

वि चा॑मे॒पि रज॑स्पृथ॒वहा॑ मि॒मानो॑ अ॒क्तुभिः॑ ।

पश्य॑ञ्जन्मानि सूर्य॑ ॥ ७

अप॒ । त्ये । ता॒यवोः । यथा॑ । नक्ष॑त्रा । यन्ति॑ । अ॒क्तुभिः॑ । सू॒राय॑  
वि॒श्वच॑क्षसे ॥ २ ॥ अदृ॑श्रं । अ॒स्य । के॒तवोः । वि । र॒श्म-  
जना॑न् । अनु॑ । भ्राज॑न्तः । अ॒ग्नयोः । यथा॑ ॥ ३ ॥ तर॑  
वि॒श्वदर्श॑तः । ज्योति॑ष्कृत् । अ॒सि । सूर्य॑ । विश्वं॑ । आ । भा  
रोच॑नं ॥ ४ ॥ प्र॒त्यङ् । दे॒वानां॑ । वि॒शः । प्र॒त्यङ् । उत् । ए॒पि । मा॑नु॒ष  
प्र॒त्यङ् । विश्वं॑ । स्वः । दृ॒शे ॥ ५ ॥ ७ ॥ येन॑ । पाव॒क । च॑क्ष॒मा ।  
ण्यन्तं॑ । जना॑न् । अनु॑ । त्वं । व॑रुण॒ । पश्य॑सि ॥ ६ ॥ वि । यां । ए  
रजः॑ । पृथु॑ । अहा॑ । मि॒मानः । अ॒क्तुभिः॑ । पश्य॑न् । जन्मानि॑ । सूर्य॑ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरु रथस्य नृपत्यः ।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

उद्वयं तमसपरि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

उद्यन्व्य मित्रमह आरोहन्नुतरां दिवम् ।

हृद्रोगं नम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकैषु मे हरिमाणं रोपणाकांसु दधमसि ।

अथो हरिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दधमसि ॥ १२ ॥

उदगाद्यमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।

द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥ ८॥९॥

स । त्वा । हरितः । रथे । वहन्ति । देव । सूर्य । शोचिःऽकेशं । विचक्षण

८ ॥ अयुक्त । सप्त । शुन्ध्युवः । सूरुः । रथस्य । नृपत्यः । ताभिः । याति ।

स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥ उन् । वयं । तमसः । परि । ज्योतिः । पश्यन्तः ।

उत्तरं । देवं । देवत्रा । सूर्य । अगन्म । ज्योतिः । उत्तमम् ॥ १० ॥

उद्यन् । अद्य । मित्रमहः । आरोहन् । उत्तरां । दिवम् । हृद्रोगं ।

मे । सूर्य । हरिमाणं । च । नाशय ॥ ११ ॥ शुकैषु । मे । हरिमाणं ।

रोपणाकांसु । दधमसि । अथो इति । हरिद्रवेषु । मे । हरिमाणं नि

दधमसि ॥ १२ ॥ उन् । अगात् । अयं । अद्विन्यः । विश्वेन सहसा

सह । द्विषन्तं । मह्यं । रन्धयन् । मो इति । अहं । द्विषते । रधम् ॥ १३ ॥ ८ ॥ ९ ॥

## ॥ दशमोऽनुवाकः ॥

॥ ५१ ॥ १-१५ सव्य आद्विरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द - १, ९, १० जगती  
२, ५, ८ विराड् जगती । ११-१३ निचृज्जगती । ३ ४ भुग्क् त्रिष्टुप् । ६, ७, त्रिष्टुप् ।  
१५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वर - १, २, ९, १०, ५, ११-१३, ८ निपादः । ३, ४ ६, ७, १  
१५ ऋक् ॥

( ५१ ) अ॒भि त्वं मे॒षं पु॒रु॒हू॒तमृ॒ग्मि॒यमि॒न्द्रं गी॒र्भिर्म॑द॒ता वस्वो॑ अ॒र्णव॑  
यस्य॒ द्यावो॑ न वि॒चर॑न्ति॒ मानु॑षा भुजे मं॒हिष्ठ॑म॒भि विप्र॑मर्चत ॥ १ ॥  
अ॒भीम॑वन्वन्त्स्वभि॒ष्टिमू॒तयो॑ऽन्तरि॒क्षप्रां॑ तवि॒षीभि॑रावृ॒तम् ।  
इन्द्रं॑ दक्षा॒स ऋ॒भवो॑ मद॒च्युतं॑ शत॒क्रतुं॑ ज॒वनी॑ स॒नृता॑रु॒हव ॥ २ ॥  
त्वं गो॒त्रम॑ङ्गि॒रोभ्यो॑ऽवृ॒णोर॑पो॒तात्र॑ये शत॒दु॒रेषु॑ गा॒तुवित् ।  
स॒सेन॑ चि॒द्विम॑दाय॒वहो॑ वस्वा॒जावा॑दि॒ वाव॑सानस्य॑ न॒र्तय॑न् ॥ ३ ॥

## ॥ दशमोऽनुवाकः ॥

अ॒भि । त्वं । मे॒षं । पु॒रु॒हू॒तं । ऋ॒ग्मि॒यं । इ॒न्द्रं । गी॒र्भिः ।  
म॒द॒त । वस्वो॑ । अ॒र्णव॑ । यस्य॑ । द्यावो॑ । न । वि॒चर॑न्ति । मानु॑षा ।  
भुजे॑ । मं॒हिष्ठं॑ । अ॒भि । विप्रं॑ । अ॒र्चत॑ ॥ १ ॥ अ॒भि । इ॒न्द्रं । अ॒व॒न्वन् ।  
सु॒अ॒भि॒ष्टिं । ऊ॒तयः॑ । अ॒न्तरि॑क्षप्रां । तवि॒षीभिः॑ । आ॒वृ॒तं । इ॒न्द्रं ।  
दक्षा॑सः । ऋ॒भवः॑ । म॒द॒च्युतं॑ । शत॒क्रतुं॑ । ज॒वनी॑ । स॒नृता॑ । आ॒  
रु॒हव ॥ २ ॥ त्वं । गो॒त्रं । अ॒ङ्गि॒रो॒भ्यः । अ॒वृ॒णोः । अप॑ । उ॒त ।  
अ॒त्रये॑ । शत॒दु॒रेषु॑ । गा॒तुवित् । स॒सेन॑ । चि॒द्वि॒म॒दाय॑ । अ॒वा॒जः ।  
वा॒व॑ । आ॒जा॑ । अ॒दि॑ । व॒व॑सानस्य॑ । न॒र्तय॑न् ॥ ३ ॥ त्वं । अ॒पां । अ॒भि॒ष्टिः

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥

त्वं मायाभिरपं मायिनोऽधमः स्वाधाभिर्ये अधि शुक्तावजुह्वत ।

त्वं पिप्रोऽर्चिमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहृत्येष्वाविथ ॥५॥ ९ ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहृत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्व शम्बरम् ।

महान्तं चिद्वुदं नि क्रमीः पदा मनाटेव दस्युहृत्याय जज्ञिषे ॥६॥

त्वे विश्वा तविषी सध्यग्निता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।

तव वज्राश्चिकित्ते बाहोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥

धाना । अवृणोः । अपं । आधारयः । पर्वते । दानुऽमत् । वसुं । वृत्रं ।  
यत् । इन्द्र । शवसा । अवधीः । अहिं । आव । इत् । सूर्यं । दिवि ।  
आ । अरोहयः । शे ॥ ४ ॥ त्वं । मायाभिः । अपं । मायिनः । अधमः ।  
स्वाधाभिः । ये । अधि । शुक्ता । अजुह्वत । त्वं । पिप्रोः । नृऽमनः । प्र । अरु-  
जः । पुरः । प्र । ऋजिश्वानं । दस्युहृत्येषु । आविथ ॥ ५ ॥ ९ ॥ त्वं ।  
कुत्सं । शुष्णहृत्येषु । आविथ । अरन्धयः । अतिथिऽग्वायं । शम्बरं । महान्तं ।  
चित् । अर्चिमणः । नि । क्रमीः । पदा । मनात् । एव । दस्युहृत्याय ।  
जज्ञिषे ॥ ६ ॥ त्वे इति । विश्वा । तविषी । सध्यक् । हिता । तव । राधः ।  
सोमऽपीथाय । हर्षते । तव । वज्रः । चिकित्ते । बाहोः । हितः । वृश्च ।  
शत्रोः । अव । विश्वानि । वृष्ण्या ॥ ७ ॥

वि जानीह्यार्याग्ये च दस्यवो वहिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रता नाभृभिरिन्द्रः श्रथयन्ननाभुवः ।

वृद्धस्य चिद्धर्धतो यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जयान संदिहः ॥९॥

तक्षयत्ते उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना वाधते शवः ।

आ त्वा वानस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥१०॥

मन्दिष्ट यदुगने काव्ये सचा इन्द्रो वक्कू वक्कूतराधि तिष्ठति ।

उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृज द्वि शुष्णस्य दृहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥

वि । जानीहि । आर्यान् । ये । च । दस्यवः । वहिष्मते ।  
रन्धय । शासत् । अव्रतान् । शाकी । भव । यजमानस्य । चोदिता ।  
विश्वा । इन् । ता । ते । सधमादेषु । चाकन ॥ ८ ॥ अनु-  
व्रताय । रन्धयन् । अपव्रतान् । आभृभिः । इन्द्रः । श्रथयन् ।  
अनाभुवः । वृद्धस्य । चित् । वर्धतः । द्यां । इनक्षतः । स्तवानः । वम्रः ।  
वि । जयान् । संदिहः ॥ ९ ॥ तक्षत् । यत् । ते । उशना । सहसा ।  
सहः । वि । रोदसी इति । मज्मना । वाधते । शवः । आ । त्वा ।  
वानस्य । नृमणः । मनोयुजः । आ । पूर्यमाणं । अवहन् । अभि । श्रवः  
॥ १० ॥ १० ॥ मन्दिष्ट । यत् । उगने । काव्ये । सचा । इन्द्रः । वक्कू इति ।  
वक्कूतरां । अधि । तिष्ठति । उग्रः । ययिं । निः । अपः । स्रोतसा । असृजत् ।  
शुष्णस्य । दृहिताः । ऐरयत् । पुरः ॥११॥ आ । स्म । रथं । वृष्पानेषु ।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्घातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।  
 इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥  
 अददा अर्भा महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।  
 मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सर्वनेषु प्रवाच्या ॥१३॥  
 इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।  
 अश्वयुर्गन्धू रथ्युर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥  
 इदं नमो वृषभार्य स्वराजे सत्यशुष्पाय तवसेऽवाचि ।  
 अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मेन्स्याम ॥१५॥११॥

तिष्ठसि । शार्घातस्य । प्रभृताः । येषु । मन्दसे । इन्द्र । यथा । सुतसो-  
 मेषु । चाकनः । अनर्वाणं । श्लोकं । आ । रोहमे । दिवि ॥ १२ ॥ अददाः ।  
 अर्भा । महते । वचस्यवे । कक्षीवते । वृचयां । इन्द्र । सुन्वते । मेना । अवः ।  
 वृषणश्वस्य । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । विश्वा । इत् । ता । ते । सर्वनेषु । प्र-  
 वाच्या ॥ १३ ॥ इन्द्रः । अश्रायि । सुध्यः । निरेके । पज्रेषु । स्तोम । दुर्य ।  
 न । यूपः । अश्वयुः । गन्धूः । रथ्युः । वसूयुः । इन्द्रः । इत् । रायः ।  
 क्षयति । प्रयन्ता ॥ १४ ॥ इदं । नमः । वृषभार्य । स्वराजे । सत्यशुष्पाय ।  
 तवसे । अवाचि । अस्मिन् । इन्द्र । वृजने । सर्ववीराः । स्मत् । सूरिभिः ।  
 तव । शर्मेन् । स्याम ॥ १५ ॥ ११ ॥

॥ ५२ ॥ १-१५ सव्य आदिस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप् ।  
७ त्रिष्टुप् । ९. १० स्वगट् त्रिष्टुप् । १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २-४ निचृत्जगती । ५, १४  
जगती । ६, ११ विराट् जगती ॥ स्वर—१, ७—९ १०, १२, १३, १५ धैवत । २-६, ११,  
१४ निपाट ॥

( ५२ ) त्वं सु मेपं महया स्वर्धिदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।  
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥  
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।  
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुव्वज्जनामि जहृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥  
स हि द्वारो हरिषु वव्र ऊर्धनि चन्द्रवुधो मदवृद्धो मनीषिभिः ।  
इन्द्रं तमहे स्वपस्यया धिया महिष्ठरानि स हि पाप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥  
आ यं पूणन्ति दिवि सन्नवर्हिपः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।  
तं वृत्रहृत्ये अनु तस्थुस्तयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतप्सवः ॥ ४ ॥

त्वं । सु । मेपं । महय । स्वःऽविदं । शतं । यस्य । सुऽभ्वं । साकं ।  
ईरते । अत्यं । न । वाजं । हवनऽस्यदं । रथं । आ । इन्द्रं । ववृत्यां ।  
अवसे । सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥ सः । पर्वतः । न । धरुणेषु । अच्युतः ।  
सहस्रंऽजतिः । तविषीषु । वावृधे । इन्द्रः । यत् । वृत्रं । अवधीत् । नदीऽवृतं ।  
उव्वज्जन् । अर्णामि । जहृषाणः । अन्धसा ॥ २ ॥ सः । हि । द्वारः । हरिषु ।  
वव्रः । ऊर्धनि । चन्द्रवुधः । मदऽवृद्धः । मनीषिभिः । इन्द्रं । तं । अहे । सुऽअ-  
पस्यया । धिया । महिष्ठरानि । सः । हि । पाप्रिः । अन्धसः ॥ ३ ॥ आ ।  
यं । पूणन्ति । दिवि । सन्नवर्हिपः । समुद्रं । न । सुऽभ्वः । स्वाः । अभिष्टयः ।  
तं । वृत्रहृत्ये । अनु । तस्थुः । तयः । शुष्माः । इन्द्रं । अवाताः । अहु-  
तः ॥ ४ ॥ अभि । स्वऽष्टिः । मदं । अस्य । युध्यतः । रुषीःऽव ।



अभि स्वर्षिं मदे अस्य युध्यतो रघ्नीरिव प्रवणे सस्रुतयः ।  
 इन्द्रो यद्ग्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीं रिव त्रितः ॥ ५ ॥ १२ ॥  
 परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुधमाशयत् ।  
 वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥  
 हृदं न हि त्वां न्युषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।  
 त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥  
 जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।  
 अयच्छथा बाहोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥  
 बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थयःमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।  
 यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

प्रवणे । सस्रुः ॥ ऊतयः । इंद्रः । यत् । वृत्री । धृषमाणः । अ-  
 धसा । भिनत् । वलस्य । परिधीन्ऽइव । त्रितः ॥ १२ ॥ परि । ईम ।  
 घृणा । चरति । तित्विषे । शवः । अपः । वृत्वी । रजसः । बुध्रं ।  
 आ । अशयत् । वृत्रस्ये । यत् । प्रवणे । दुःऽगृभिश्वनः । निजघ-  
 थ । हन्वोः । इंद्र । तन्यतुं ॥ ६ ॥ हृदं । न । हि । त्वा । निऽऽ-  
 पति । ऊर्मयः । ब्रह्माणि । इंद्र । तव । यानि । वर्धना । त्वष्टा ।  
 चित् । ते । युज्यं । वावृधे । शवः । ततक्ष । वज्रं । अभिभूतिऽओ-  
 जसं ॥ ७ ॥ जघन्वान् । ऊंइति । हरिऽभिः । संभृतक्रतो इति । सं-  
 भृतऽक्रतो । इंद्र । वृत्रं । मनुषे । गातुऽयन् । अपः । अयच्छथाः ।  
 बाहोः । वज्रं । आयसं । आधारयः । दिवि । आ । सूर्यं । दृशे  
 ॥ ८ ॥ बृहत् । स्वऽचंद्रं । अमवत् । यत् । उक्थयं । अकृण्वतः । भि-  
 यसा । रोहणं । दिवः । यत् । मानुषऽप्रधनाः । इंद्रं । ऊतयः । स्वः ।  
 नृऽसाचः । मरुतः । अमदन् । अनु ॥ ९ ॥

यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीङ्गियमा वज्र इन्द्र ते ।  
 वृत्रस्य यद्द्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥१३॥  
 यदिद्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।  
 अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥  
 त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।  
 चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसेऽपः स्वःपरिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥  
 त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।  
 विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥  
 न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशः ।  
 नात स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४॥

द्याः । चित् । अस्य । अमवान् । अहेः । रवनात् । अयोय-  
 वीत् । भियमा । वज्रः । इन्द्र । ते । वृत्रस्य । यत् । वृद्धधानस्य । रोदसी इति ।  
 मदे । सुतस्य । शवसा अभिनत् । शिरः । १० ॥ १३ ॥ यत् । इत् । नु । इन्द्र ।  
 पृथिवी । दशभुजिः । अहानि । विश्वा । ततनन्त । कृष्टयः । अत्र । अह । ते ।  
 मघवन् । विश्रुतं । सहः । द्यां । अनु । शवसा । बर्हणा । भुवत्  
 ॥ ११ ॥ त्वं । अस्य । पारं । रजसः । विश्वोमनः । स्वभूतिऽओजाः ।  
 अवसे । धृषत्समनः । चकृषे । भूमिं । प्रतिमानं । ओजसः । अपः ।  
 स्वःपरितस्वः । परिभूः । एषि । आ । दिवं ॥ १२ ॥ त्वं । भुवः ।  
 प्रतिमानं । पृथिव्याः । ऋष्ववीरस्य । बृहतः । पतिः । भूः । विश्वं ।  
 आ । अप्राः । अन्तरिक्षं । महित्वा । सत्यं । अद्धा । नकिः । अन्यः ।  
 त्वावान् ॥ १३ ॥ न । यस्य । द्यावापृथिवी इति । अनु । व्यचः ।  
 न । सिन्धवः । रजसः । अन्तं । आनुशः । न । उत । स्ववृष्टिं ।  
 मदे । अस्य । युध्यतः । एकः । अन्यत् । चकृषे । विश्वं । आनुषक् ॥ १४ ॥

आर्चन्नत्रं मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।  
वृत्रस्य यदृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ५३ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द-जगती १०-११ त्रिष्टुप्

( ५३ ) न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदाने विवस्वतः ।  
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुनिद्रैविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥  
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।  
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सग्वा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥  
शचीव इन्द्र पुरुकृद्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।  
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

आर्चन् । अत्र । मरुतः । सस्मिन् । आजौ । विश्वे । देवासः ।  
अमदन्न । अनु । त्वा । वृत्रस्य । यत् । भृष्टिमता । वधेन । नि । त्वं । इन्द्र ।  
प्रति । आनं । जघन्थ ॥ १५ ॥ १४ ॥

नि । ऊं इति । सु । वाचं । प्र । महे । भरामहे । गिरः । इन्द्राय । सदाने ।  
विवस्वतः । नू । चिद्धि । हि । रत्नं । ससतामिवा । अविदत् । न । दुःस्तुतिः ।  
द्रविणःऽदेषु । शस्यते ॥ १ ॥ दुरः । अश्वस्य । दुरः । इन्द्र गोः । असि । दुरः ।  
यवस्य । वसुनः । इनः । पतिः । शिक्षानरः । प्रदिवः । अकामकर्शनः ।  
सग्वा । सखिभ्यः । तं । इन्द्र । गृणीमसि ॥ २ ॥ शचीवः । इन्द्र । पुरुकृत् ।  
द्युमत्तम । तव । इत् । इदं । अभितः । चेकिते । वसु । अतः । संगृभ्या ।  
अभिभूते । आ । भर । मा । त्वायतः । जरितुः । कामं । जनयीः ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमन्ति गोभिरश्विना ।  
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥  
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिर्युभिः ।  
मं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्ववावत्या रभेमहि ॥५ ॥ १५ ॥  
ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमसो वृत्रहत्येषु सत्पते ।  
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि मह्म्राणि वर्हयः ॥६॥  
युधा युधमुप घेदेषि धृष्ण्या पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।  
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निवर्हयो नमुचि नाम मायिनम् ॥७॥  
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तोजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।  
त्वं गता वङ्गदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिष्मता ऋजिश्वना ॥८॥

एभिः । द्युभिः । सुमनाः । एभिः । इन्दुभिः । निरुन्धान । अमन्ति । गोभिः  
अश्विना । इन्द्रेण । दस्युं । दरयन्त इन्दुभिः । युतद्वेषसः । स । इषा । रभेमहि  
॥ ४ ॥ सं । इन्द्र । राया । सं । इषा । रभेमहि । सं । वाजेभिः । पुरुश्चन्द्रैः  
अभिर्युभिः । मं । देव्या । प्रमत्या । वीरशुष्मया । गोऽअग्रया । अश्वऽवत्या  
रभेमहि ॥ ५ ॥ १५ ॥ ते । त्वा । मदाः । अमदन् । तानि । वृष्ण्या । ते  
सोमसः । वृत्रहत्येषु । सत्पते । यत् । कारवे । दश । वृत्राणि । अप्रति  
वर्हिष्मते । नि । मह्म्राणि । वर्हयः ॥ ६ ॥ युधा । युधं । उप । घ । इत् । एषि  
धृष्ण्या । पुरा । पुरं । सं । इदं । हंसि । ओजसा । नम्या । यत् । इन्द्र । सख्या  
परावति निवर्हयो । नमुचि । नाम । मायिनं ॥ ७ ॥ त्वं । करंजं । उत  
पर्णयं । वधीः । तोजिष्ठया । अतिथिग्वस्य । वर्तनी । त्वं । गता । वङ्गदस्य  
अभिनत । पुरः । अननुदः । परिष्मताः । ऋजिश्वना ॥ ८ ॥ त्वं । गताः

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपज्जग्मुषः ।  
 षष्टिं सहस्रां नवतिं नवं श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥  
 त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।  
 त्वमस्मै कुत्समतिधिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥  
 य उदचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।  
 त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६॥

॥ ५८ ॥ १-१३ मन्व थाङ्गिरम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्र-जगती त्रिष्टुप्

(५४) मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहंसि नहि ते अन्तः शवसः परीणजे ।  
 अक्रन्दयो नद्यो ॥ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीभियसा समारत ॥१॥  
 अचीं शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।  
 यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभेवृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

जनराज्ञे । द्विः । दश अंबधुना । सुश्रवसा । उपज्जग्मुषः । षष्टिं । सहस्रां ।  
 नवतिं । नवं । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्या । दुःस्पदा । अवृणक् ॥ ९ ॥ त्वं ।  
 आविथ । सुश्रवसं । तवं । कुत्सिभिः । तवं । त्रामभिः । इन्द्र । तूर्वयाणं ।  
 त्वं । अस्मै । कुत्सं । अतिधिग्वं । आयुं । महे । राज्ञे । यूने । अरन्धनायः ।  
 ॥ १० ॥ ये । उदचीन्द्रि । इन्द्र । देवगोपा । सखायः । ते । शिवतमाः । अमाम  
 त्वां । स्तोषाम । त्वया । सुवीरा । द्राघीयः । आयुः । प्रतरं । दधानाः ।  
 ॥ ११ ॥ १६ ॥

मा । नः । अस्मिन् । मघवन् । पृत्सु । अंहंसि । नहि ते । अन्तः । शवसः ।  
 परिणजे । अक्रन्दयः । नद्यः । रोरुवत् वना । कथा । न । क्षोणीः । भियसा ।  
 मं । आरत ॥ १ ॥ अचीं । शक्राय । शाकिने । शचीवते । शृण्वन्तं । इन्द्रं ।  
 महयन् । अभि । स्तुहि । यः । धृष्णुना । शवसा । रोदसी इति । उभेइति । वृषा ।  
 वृषत्वा । वृषभः । निञ्जते ॥ २ ॥

अर्चां दिवे वृहते शूष्यं । वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।  
वृहच्छ्रवा असुरो वर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥  
त्वं दिवो वृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंवरं भिनत् ।  
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गर्भस्तिमशनि पृतन्यसि ॥४॥  
नि यदृणाक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवदना ।  
प्राचीनेन मनमा वर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्रा परि ॥५॥ १७ ॥  
त्वमाविथ नयं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीति वयं शतक्रतो ।  
त्वं रथमेतशं कृन्वे धने त्वं पुरो नवति दंभयो नव ॥ ६ ॥  
स वा राजा सत्पतिः शशुवज्जनो रातह्वयः प्रति यः शामिन्वति ।  
उक्था वा यो अभिगृणानि राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

अर्चे । दिवे । वृहते । शूष्यं । वचः । स्वक्षत्रं । यस्य । धृषतः । धृषत् । मनः । वृहतश्श्रवाः । असुरः । वर्हणा । कृतः । पुरः । हरिभ्यां । वृषभः रथः हि । स ॥ ३ ॥ त्वं । दिवः । वृहतः । सानु कोपयः । अव । त्मना । धृषता । शंवरं । भिनत् । यत् । मायिनः । व्रन्दिनः । मन्दिना । धृषत् । शितां । गर्भस्ति । अशनि । पृतन्यसि ॥ ४ ॥ नि । यत् । यदृणाक्षि । श्वसनस्य । मूर्धनि । शुष्णस्य । चित् । व्रन्दिनः । रोरुवत् । वना । प्राचीनेन । मनमा । वर्हणावता । यत् । अद्य । चित् । कृणवः । कः । त्वा । परि ॥ ५ ॥ १७ ॥ त्वं । आविथ । नयं । तुर्वशं । यदुं । त्वं तुर्वीति । वयं । शतक्रतो इति शतक्रतो । त्वं । रथं । एतशं । कृन्वे । धने त्वं । पुरः नवति । दंभयः । नव ॥ ६ ॥ सः । वा । राजा । सत्पति । शशुवत् । जनः । रातह्वयः । प्रति । यः । शामं । इन्वति । उक्था वा । यः । अभिगृणानि । राधसा । दानुं । अस्मै । उपरा । पिन्वते । दिवः ॥ ७ ॥ अस्मै । क्षत्रं । असमा ।

असंमं क्षत्रमसमा मनीषा प्रसोमपा अपसा सन्तु नेभे ।

ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति माहि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।

व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

अपामतिष्ठद्भ्रुणह्वरं तमोऽन्तवृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।

अभीमिन्द्रो नद्यो वत्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्रते ॥ १० ॥

स शेवृधमधि धा शुम्नस्समे माहि क्षत्र जनापाळिन्द्र तव्यम ।

रक्षा च नो मघोनः प्राहि सूरीत्राधे च नः स्वपत्या इषे धाः ॥ ११ ॥ १८ ॥

॥ ५५ ॥ १-८ सव्य आद्रिस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्र-जगती

( ५५ ) दिवाश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न महा पृथिवी च न प्रति ।  
भीमस्तुविष्मानश्चर्षणिभ्य आतपः शिशीति वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ ११ ॥

मनीषा । प्र । सोमपाः । अपसा । सन्तु । नेभे । ये । ते । इन्द्र । ददुषः । वर्धयन्ति ।  
माहि । क्षत्रं । स्थविर । वृष्ण्यं । च ॥ ८ ॥ तुभ्ये । इत् । एते । बहुलाः । अद्रि-  
दुग्धाः । चमूषदः । चमसाः । इन्द्रपानाः । वि । अश्नुहि । तर्पयं । कामं । एषां ।  
अर्थ । मनः । वसुदेयाय । कृष्व ॥ ९ ॥ अपां । अतिप्रत् । ध्रुणह्वरं । तमः ।  
अंतः । वृत्रस्य । जठरेषु । पर्वतः । अभी । ई । इन्द्रः । नद्यः । वत्रिणां । हिताः ।  
विश्वाः । अनुष्ठाः । प्रवणेषु । जिघ्रते ॥ १० ॥ सः । शेवृधं । अधि । धाः ।  
शुम्नं । अस्मे इति । माहि । क्षत्रं । जनापाट् । इन्द्र । तव्यं । रक्षं । च । नः ।  
मघोनः । प्राहि । सूरीन् । राये । च । नः । सुऽअपत्या । इषे । धाः ॥ ११ ॥ १८ ॥

दिवः । चित् । अस्य । वरिमा । वि । पप्रथे । इन्द्रं । न । महा । पृथिवी ।  
च न । प्रति । भीमः । तुविष्मान् । चर्षणिभ्यः । आतपः । शिशीते । वज्रं ।  
तेजसे । न । वंसगः ॥ १ ॥

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।  
 इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥  
 त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।  
 प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥  
 स इदने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रवृवाण इन्द्रियम् ।  
 वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥  
 स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।  
 अधा चन श्रद्धति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥१९॥  
 स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्षमया वृधान ओजसा विनाशयन् ।  
 ज्योतीपि कृण्वन्वृकाणि यज्यवेस्व सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥

सः । अर्णवः । न । नद्यः समुद्रियः । प्रति । गृभ्णाति । विश्रिताः ।  
 वरीमभिः । इन्द्रः । सोमस्य । पीतये । वृषायते । सनात् ।  
 सः । युध्मः । ओजसा । पनस्यते ॥ २ ॥ त्वं । तं । इन्द्रः । पर्वतं । न ।  
 भोजसे । महः । नृम्णस्य । धर्मणां । इरज्यसि । प्र । वीर्येण । देवता । अति ।  
 चेकिते । विश्वस्मा । उग्रः । कर्मणे । पुरोहितः ॥३॥ सः । इत । वने । नमस्युभिः ।  
 वचस्यते । चारु । जनेषु । प्रवृवाणः । इन्द्रियम् । वृषा । छन्दुः । भवति । हर्यतः ।  
 वृषा । क्षेमण । धेनां । मघवा । यत् । इन्वति ॥ ४ ॥ सः । इत । महानि ।  
 मज्मथानि । मज्मना । कृणोति । युध्मः । ओजसा । जनेभ्यः । अध । चन । श्रत् ।  
 दधति । निघनिघ्नते । इन्द्राय । वज्रं । निघनिघ्नते ॥ ५ ॥ १९ ॥ सः । हि ।  
 श्रवस्युः । सदनानि । कृत्रिमा । क्षमया । वृधानः । ओजसा । विनाशयन् ।  
 ज्योतीपि । कृण्वन् । अवृकाणि । यज्यवे । अत्र । सुक्रतुः । सर्तवा । अपः ।  
 सृजत् ॥ ६ ॥



मष्ट० १ । मध्या० ४ । व० २०-२१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ । मनु० १० । सू० ५६

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरीं वन्दनश्रुदा कृधि ।  
यमिष्टासः सारथयो ये इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्रुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥  
अप्रक्षितं वसुं विभर्षिं हस्तयोरषाळहं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।  
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥ २० ॥

॥ ५६ ॥ १-६ सत्य आदिस्ता ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती-छन्द ॥

॥ ५६ ॥ एष प्र पूर्वीरव तस्य चन्निषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भूर्वाणिः ।  
दधं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥  
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सन्निष्यवः ।  
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥  
स तुर्वणिर्महां अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न आजते तुजा शवः ।  
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥  
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषेक्त्युषसं न सूर्यः ।  
यो धृष्णुना शवसा वाधते तम इयति रेणुं बृहदंहरिष्वानिः ॥ ४ ॥

दानाय । मनः । सोमपावन् । अस्तु । ते । अर्वाचा । हरीइति । वन्दनश्रुत् ।  
आ । कृधि । यमिष्टासः । सारथयः । ये । इन्द्र । ते न । त्वा । केताः । आ । दभ्रु-  
वन्ति । भूर्णयः ॥ ७ ॥ अप्रक्षितं । वसुं । विभर्षिं । हस्तयोः । अपाळं । सहः ।  
तन्वि । श्रुतः । दधे । आवृतासः । अवतासः । न । कर्तृभिः । तनूषु । ते । क्रतवः ।  
इन्द्र । भूरयः ॥ ८ ॥ २० ॥

एषः । प्र । पूर्वीः । अव । तस्य । चन्निषः । अत्यः । न । योषां । उत् । अयंस्त ।  
भूर्वाणिः । दधं । महे । पाययते । हिरण्ययं । रथं । आवृत्य । हरिऽयोगं । मृभ्वसं ।  
॥ १ ॥ तं । गूर्तयः । नेमन्निषः । परीणसः । समुद्रं । न । संचरणे । सन्निष्यवः ।  
पतिं । दक्षस्य विदथस्य । नु । महः । गिरि । न वनाः । अधि । रोह । तेजसा ।  
॥ २ ॥ सः । तुर्वणिः । महान् । अरेणु । पौंस्ये । गिरेः । भृष्टिः । न । आजते । तुजा ।  
शवः । येन । शुष्णं । मायिनं । आयसः । मदे । दुध्रः । आभूषु । रामयन्नि । नि ।  
दामनि ॥ ३ ॥ देवी । यदि । तविषी । त्वावृधो । उत्तये । इन्द्रं । सिषेक्ति । उषसं ।  
न । सूर्यः । यः । धृष्णुना । शवसा । वाधते । तमः । इयति । रेणुं । बृहन् ।  
अरिऽस्वानिः ॥ ४ ॥

अष्ट० १ अध्या० ४ । व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ । अनु० १० । सू० ५ ]

वि यत्तिरो ध्रुवमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।  
स्वमीहे यन्मदे इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौञ्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥  
त्वं दिवो ध्रुवं धिप ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदेनेषु माहिनः ।  
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाप्यारुजः ॥ ६ ॥ २१ ॥

॥ ५७ ॥ १-६ स्व आदिरम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ५७ ॥ प्र महिष्टाय बृहते बृहद्रथे सत्यशुष्माय तनसे मतिं भरे ।  
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥  
अथ ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।  
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः अनथिता हिरण्यथः ॥ २ ॥  
अस्मै भीमाय नमसा सध्वर उपो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।  
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥  
इमे ते इन्द्र ते वयं पुरुष्टत ये त्वारभ्य चरामसिप्रभुवसो ।  
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सद्यत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

वि । यत् । तिरो । ध्रुवम् । अच्युतं । रजः । अतिस्थिपः । दिवः । आतासु ।  
बर्हणा । स्वःऽमीहे । यत् । मदे । इन्द्र । हर्ष्या । अहन् । वृत्रं । निः । अपां ।  
औञ्जः । अणव्रं ॥ ५ ॥ त्वं । दिवः । ध्रुवं । धिपे । ओजसा । पृथिव्याः ।  
इन्द्र । सदेनेषु । माहिनः । त्वं । सुतस्य । मदे । अरिणाः । अपः । वि । वृत्रस्य ।  
समया । पाप्या । अरुजः ॥ ६ ॥ २१ ॥ प्र । महिष्टाय । बृहते । बृहद्रथे ।  
सत्यशुष्माय । तनसे । मतिं । भरे । अपाऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरं । राधः ।  
विश्वऽआयु । शवसे । अपऽवृतं ॥ १ ॥ अथ । ते । विश्वं । अनु । ह । असत् । इष्टयं ।  
आपं । निम्नाऽइव । सवना । हविष्मतः । यत् । पर्वते । न सुऽअशीत । हर्यतः ।  
इन्द्रस्य । वज्रः । अनथिता । हिरण्यथः ॥ २ ॥ अस्मै । भीमाय । नमसा । सं । अध्वरे ।  
उपः । न शुभ्रं । आ । भरा । पनीयसे । यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इन्द्रियं ।  
ज्योतिः । आकारि । हरितः । न । नायसे ॥ ३ ॥ इमे । ते । इन्द्र । ते । वयं ।  
पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आऽरभ्य । चरामसि । प्रभुवसो । इति । प्रभुवसो ।  
नहि । त्वन् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सद्यत् । क्षोणीऽइव । प्रति । नः ।  
हर्य । तन् । वचः ॥ ४ ॥ भृतिं । ते । इन्द्र । वीर्यं । तत्र । स्मिन् ।

मह० १ । अध्या० ४ । व० २२, २३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड १ । अनु० ११ । सू० ५८

भूरिं त इन्द्र वीर्यं १ त्वं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकतिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥२२॥

## ॥ एकादशोऽनुवाकः ॥

॥ ५८ ॥ १-९ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः जगती ॥

(५८) नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यदूतो अभवद्विवस्वतः ।

वि साधिष्ठेभिः पृथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१॥

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।

अत्यो न पृष्टं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।

रथो न विक्षुञ्जमान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋणवति ॥ ३ ॥

वि वातज्जतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहभिः सृण्यां तुविष्वणिः ।

तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

अस्य । स्तोतुः । मघऽवन् । कामं । आ । पृण । अनु । ते । द्यौः । वृहती । वीर्यं । ममे । इयं । च । ते । पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥ त्वं । तं । इन्द्र । पर्वतं । महं । मुरुं । वज्रेण । वज्रिन् । पर्वशः । चकतिथ । अवं । असृजः । निऽवृताः । सर्तवै । अपः । सत्रा । विश्वं । दधिषे । केवलं । सह ॥ ६ ॥ २२ ॥

नु । चित् । सहऽजाः । अमृतः । नि । तुन्दते । होता । यत् । दूनः । अभवत् । विवस्वतः । वि । साधिष्ठेभिः । पृथिभिः । रजः । ममे । आ । देवऽताता । हविषा । विवासति ॥ १ ॥ आ । स्वं । अन्नं । युवमानः । अजरः । तृषु । अविष्यन् । अतसेषु । तिष्ठति । अत्यः । नः । पृष्टं । प्रुषितस्य । रोचते । दिवः । न । सानु । स्तनयन् । अचिक्रदत् ॥२॥ क्राणाः । रुद्रेभिः । वसुभिः । पुरऽहितः । होता । निऽसत्तः । रयिषाट् । अमर्त्यः । रथः । न विक्षु । ऋजमानः । आयुषु । वि आनुषक् । वार्या । देवः । ऋणवति । ३ ॥ वि । वातऽजतः । अतसेषु । तिष्ठते । वृथा । जुहभिः । सृण्यां । तुविऽस्वनिः । तृषु । यत् । अग्ने । वनिनः । वृषऽयमे । कृष्णं । ते । एम । रुशत्ऽदूर्मे । अजर ॥ ४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वान्तचोदितो यूथे न स्राह्वँ अर्चं वाति वंमंगः ।  
 अभिव्रजन्नक्षितं पाजंसा रजः स्यातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥ २३ ॥  
 दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेषु रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।  
 होतारमग्ने अतिथि वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥  
 होतारं सप्त जुहोयजिष्टं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।  
 अग्निं विश्वेषामरतिं वर्मनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥  
 अछिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।  
 अग्ने नृणन्तमहस उरुष्योजीं नपात्पूरिभिरायसीभिः ॥ ८ ॥  
 भवा वरुथं गृणते विभावे भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।  
 उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ २४ ॥

॥ ५० ॥ १ ७ नोना गंतम ऋषि ॥ अग्निंश्चानगो देवता ॥ त्रिष्टु छन्दः ॥

( ५० ) वया इदं अग्रयं अस्ते त्वे विश्वे अमृतां मादयन्ते ।  
 वैश्वानर नाभिरमि क्षितानां स्थूणेव जना उपमिन्नयन्थ ॥ १ ॥

तपुःऽजंभः । वने । आ । वान्तचोदितः । यूथे । न । स्राह्वान । अर्चं । वाति । वंमंगः ।  
 अभिऽव्रजेन् । अक्षितं । पाजंसा । रजः । स्यातुः । चरथं । भयते । पतत्रिणः ।  
 ॥ ५ ॥ २३ ॥ दधुः । त्वा । भृगवः । मानुषेषु । आ । रयिं । न चारुं । सुहवं । जनेभ्यः ।  
 होतारं । अग्ने । अतिथि । वरेण्यं । मित्रं । न । शेवं । दिव्याय । जन्मने ॥ ६ ॥  
 होतारं । सप्त । जुहोः । यजिष्टं । यं । वाघतः । वृणते । अध्वरेषु । अग्निं । विश्वेषां ।  
 अरतिं । वर्मनां । सपर्यामि । प्रयसा । यामि । रत्नं ॥ ७ ॥ अछिद्रा । सूनोइति ।  
 सहसः । नः । अद्य । स्तोतृभ्यः । मित्रमहः । शर्म । यच्छ । अग्ने । गृणन्तं । अंहसः ।  
 उरुष्य । उर्जैः । नपात् । पूऽभिः । आयसीभिः ॥ ८ ॥ भवा । वरुथं । गृणते ।  
 विभाऽवः । भवा । मघवन् । मघवद्भ्यः । शर्म । उरुष्य । अग्ने । अंहसः ।  
 गृणन्तं । प्रातः । मक्षु । धियावसुः । जगम्यात् ॥ ९ ॥ २४ ॥

वयाः । इव । अग्ने । अग्रयः । ते अन्ये । त्वइति । विश्वे । अमृतां । मादयन्ते ।  
 वैश्वानर । नाभिः । अमि । क्षितानां । स्थूणाऽइव । जनान् । उपमिन् । ययय ।  
 ॥ १ ॥ मर्द्धा । द्विवः । नाभिः । अग्निः । पृथिव्याः । अर्थ । अभवन् । अरतिः ।

मूर्धा दिवो नाभिर्गर्भिः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।  
 तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥  
 आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्रा वसूनि ।  
 या पर्वतेषु षधीष्वप्सु या मानुषेषुसि तस्य राजा ॥ ३ ॥  
 बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्योऽ न दक्षः ।  
 स्वर्वते सत्यशुष्पाय पूर्वीवैश्वानराय नृत्तमाय यहीः ॥ ४ ॥  
 दिवाश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।  
 राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकथ ॥ ५ ॥  
 प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूर्वो वृत्रहणं सचन्ते ।  
 वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वा अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥  
 वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।  
 शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुषीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

॥ ६० ॥ १-५ नोधा गौतम-ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ त्रिष्टुप्-छन्दः ॥

( ६० ) वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्रान्वयं दूतं सद्योऽर्थम् ।  
 द्विजन्मानं रथिभिर्व प्रशस्तं रातिं भरद्गवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

रोदस्योः । तं । त्वा । देवासः । अजनयन्त । देवं । वैश्वानर । ज्योतिः । इत् ।  
 आर्याय ॥ २ ॥ आ । सूर्ये । न । रश्मयः । ध्रुवासः । वैश्वानरे । दधिरे । अग्रा ।  
 वसूनि । या । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्सु । या । मानुषेषु । असि । तस्य । राजा ।  
 ॥३॥ बृहती । इवेति । बृहतीऽइव । सूनवे । रोदसी इति । गिर । होता । मनुष्य ।  
 न । दक्षः । स्वःऽवते । सत्यऽशुष्पाय । पूर्वीः । वैश्वानराय । नृत्तमाय । यहीः ।  
 ॥४॥ दिवः । चित् । ते । बृहतः । जातऽवेदः । वैश्वानर । प्र । रिरिचे । महित्वं ।  
 राजा । कृष्टीनां । अमि । मानुषीणां । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकथ ॥ ५ ॥  
 प्र । नु । महित्व । वृषभस्य । वोचं । यं । पूर्वः । वृत्रहणं । सचन्ते । वैश्वानरः ।  
 दस्युं । अग्निः जघन्वान् । अधूनोत् । काष्ठाः । अव । शम्बरं । भेत् ॥ ६ ॥  
 वैश्वानरः । महिम्ना । विश्वकृष्टिः । भरद्वाजेषु । यजतः । विभावा । शातऽ-  
 वनेये । शतिनीभिः । अग्निः । पुरुषीथे । जरते । सूनृताऽवान् ॥ ७ ॥ २५ ॥  
 वह्निं । यशसं । विदथस्य । केतुं । सुप्रऽअन्वयं । दूतं । सद्यःऽअर्थम् ।  
 द्विजन्मानं । रथिभिर्व । प्रऽशस्तं । रातिं । भरत् । भृगवे । मातरिश्वा ॥ १ ॥

मह० । अथा० ४ । व० २६ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० १ । मनु० ११ । सू० ६

अस्य शामुः । उभयासः । सचन्ते हविष्मन्त उगिजो ये च मतीः ।

दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छयो विश्वानिर्विश्वु वेधाः ॥ २ ॥

तं नव्यसी हृद् आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।

यमत्विजो वृजने मानुषामः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥

उशिकपावका वसुमानुषेषु वरेण्यो होताधायि विश्वु ।

दमना गृहपतिर्दम आ अग्निभुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥

तं त्वा वयं पतिमग्रे रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमामः ।

आशुं न वाजमभ्रमं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ३१ ॥ १-१६ नोवा गोतम-कपि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

( ६१ ) अस्मा इदु प्र तवसें तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।

ऋचीपमायाधिनव ओहमिन्द्राय ब्रह्मणि राततमा ॥ १ ॥

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराभ्याङ्गापं वाधे सुवृक्ति ।

इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रनाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

अस्य । शामुः । उभयासः । सचन्ते । हविष्मन्तः । उगिजः । ये । च । मतीः ।  
दिवः । चित् । पूर्वः । नि । असादि । होता । आस्पृच्छयः । विश्वपतिः । विश्वु ।  
वेधाः ॥ २ ॥ तं । नव्यसी । हृदः । आ । जायमानं । अस्मत् । सुकीर्तिः ।  
मधुजिह्वं । अश्याः । यं । ऋत्विजः । वृजने । मानुषामः । प्रयस्वन्तः । आयवः ।  
जीजनन्त ॥ ३ ॥ उगिक् । पावकः । वसुः । मानुषेषु । वरेण्यः । होता । अधायि ।  
विश्वु । दमनाः । गृहपतिः । दमं । आ । अग्निः । भुवत् । रयिपतिः । रयीणां ।  
॥ ४ ॥ तं । त्वा । वयं । पति । अग्रे । रयीणां । प्र । शंसामः । मतिभिः ।  
गोतमामः । आशुम् । न । वाजमभ्रम् । मर्जयन्त । प्रातः । मक्षु । धियावसुः ।  
जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

अस्मै । इत् । उम् । इति । प्र । तवसें । तुराय । प्रयः । न । हर्मि । स्तोमम् । माहि-  
नाय । ऋचीपमाय अत्रिङ्गवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्मणि । राततमा ॥ १ ॥

अस्मै । इत् । उम् । इति । प्रयः । इव । प्र यंसि । भराभि । अङ्गुपम् । वाधे । सु-  
वृक्ति । इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रनाय । पत्ये । धियः । मर्जयन्त ।

२ ॥ अस्मै । इत् । उम् । इति । त्वम् । उप्सम् । स्व् । उमाम् । भराभि । आङ्गुपम् ।  
३ । महिष्टम् । अच्छोक्तिभिः । मनीषाम् । सुवृक्तिभिः । मृग्मि ।

अस्मा इदु त्यसुपमं स्वर्षा भरोम्याङ्गूषमास्येन ।  
 महिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधधै ॥ ३ ॥  
 अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।  
 गिरश्चु गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥  
 अस्मा इदु सप्तमिच श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वांसमञ्जे ।  
 वीरं दानौकसं वन्दधै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥  
 अस्मा इदु त्वष्टां तक्षद्वजं स्वपस्तमं स्वयैरणाय ।  
 वृत्रस्य चिद्विदयेन मर्मं तुजनीशानस्तुजता क्रियेधाः ॥ ६ ॥  
 अस्पेदुं मातुः सर्वनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाश्रवन्ना ।  
 मुषायाद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरौ अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥  
 अस्मा इदु ग्राश्चिदेवपत्नीरिन्द्रायार्कमाहिहत्ये जवुः ।  
 परि यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥  
 अस्पेदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।  
 स्वराळिद्रो दम आ विश्वगूर्तं स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥

वृधधै ॥ ३ ॥ अस्मै । इत् । ऊम । इति स्तोमम् । सम । हिनोमि । रथम् । न ।  
 तष्टाञ्च । तत्सिनाय । गिरः । च । गिरः । च । गिर्वाहसे । सुवृक्ति । इन्द्राय ।  
 विश्वमऽइन्वम् । मेधिराय ॥ ४ ॥ अस्मै । इत् । ऊम् । इति । सप्तमऽइव । श्रवस्या ।  
 इन्द्राय । अर्कम् । जुह्वा । सम । अञ्जे । वीरम् । दानऽओकसम् । वन्दधै ।  
 पुराम् । गूर्तऽश्रवसम् । दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥ अस्मै । इत् । ऊम् । इति । त्वष्टां ।  
 तक्षत् । वज्रम् । स्वपऽस्तमम् । स्वयैम् । रणाय । वृत्रस्य चित् । विदत् । येन ।  
 मर्म । तुजन । ईशानः । तुजता । क्रियेधाः ॥ ६ ॥ अस्य । इत् । ऊम् । इति ।  
 मातुः । सर्वनेषु । सद्यः । महः । पितुम् । पपिवान् । चारुं । अन्ना । मुषायत् ।  
 विष्णु । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् । तिरः । अद्रिम् । अस्ता ॥ ७ ॥  
 अस्मै । इत् । ऊम् । इति । ग्राः चित् । देवऽपत्नीः । इन्द्राय । अर्कम् । आहिहत्ये ।  
 जवुरित्युवुः । परि । यावापृथिवी । इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति ।  
 महिमानम् । परि । स्तइतिस्तः ॥ ८ ॥ अस्य इत् । एव । प्र । रिरिचे । महिऽत्वम् ।  
 दिवः । पृथिव्याः । परि । अन्तरिक्षात् । स्वरात् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वगूर्तं ।  
 सुऽअरिः । अमत्रः । ववक्षे । रणाय ॥ ९ ॥

अस्येदेव श्वमा शुपन्तं वि वृश्चजेण वृत्रमिन्द्रः ।

गा न व्राणा अवनीरमुचटभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥

अस्येदु त्वेपसा रन्त सिन्धवः परि यद्वजेण सीमयच्छत् ।

ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेप्यन्तर्णास्यपां चरध्वे ॥ १२ ॥

अस्येदु प्र वृहि पृथ्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।

युधे यदिष्णान आयुधान्यवृत्रायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।

उपो वनस्य जागुवान ओणि सद्यो भुवहीयीयनोधाः ॥ १४ ॥

अस्मा इदु त्यदनु दाव्येपामेको यद्वे भरेगीशानः ।

प्रेतंशु सूर्ये पस्पृथानं सौवश्च्येसु ध्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

एवा ते हरियोजना सुवृत्तीन्द्र ब्रह्माणिगोतमासो अक्रन् ।

पेषु विश्वेपशसं धियन्धाः प्रानर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥

अस्य । इत् । एव । श्वमा । शुपन्तम् । वि । वृश्चत् । वजेण । वृत्रम् । इन्द्रः । गा ।

व्राणाः । अवनीः । अमुचचत् । अभि । श्रवः । दावने । सचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥

अस्य । इत् । ऊम इति । त्वेपसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यत् । वजेण । सीम् ।

अयच्छत् । ईशानकृत् । दाशुषे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः । कुरिति

कः ॥ ११ ॥ अस्मै । इत् । ऊम् इति । प्र । भर । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् ।

ईशानः । कियेधाः । गोः । न । पर्व वि । रद । तिरश्चः । इप्यन् अर्णामि अपाम ।

चरध्वे ॥ १२ ॥ अस्य । इत् । ऊम इति । प्र । वृहि । पृथ्याणि । तुरस्य । कर्माणि ।

नव्यैः । उक्थैः । युधे । यत् इष्णानः । आयुधानि । कुत्रायमाणः । निरिणाति ।

शत्रून् ॥ १३ ॥ अस्य । इत् । ऊम । इति । भिया । गिरयः । च । दृळ्हाः । द्यावा । च ।

भूमा । जनुषः । तुजेते । इति । उपो इति । वनस्य । जागुवानः । ओणि । सद्यः ।

भुवत् । वीयीय । नोधाः ॥ १४ ॥ अस्मै । इत् । ऊम । इति । त्यन् । अनु । दायि ।

एवाम । एकः । यत् । व्रे । भरेः । ईशानः । प्र । एतंशम् । सूर्ये । पस्पृथानम् ।

वश्च्ये । सुध्विम । आवत् । इन्द्रः ॥ १५ ॥ एव । ते । हरिः । योजन । सुवृत्ति ।

ब्रह्माणि । गोतमाम । अक्रन् । आ । एषु । विश्वेपशसम् । धियम् । ध्याः ।

ः । मक्षु । धियावसु । जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥







॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ ६२ ॥ गौतमो नोषा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

( ६२ ) प्र मन्महे शवसानाय शूषसांगूषं गिर्विणसे अंगिरस्वत् ।

सुष्टुक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय सामं ।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।

बृहस्पतिर्भिनदाद्रिं विदद्गाः ससुक्षियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वय्यो नवङ्गवैः ।

सुरप्युभिः फलिगामिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशङ्गवैः ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

५ । मन्महे । शवसानाय । शूषं । आंगूषं । गिर्विणसे । अंगिरस्वत् ।

सुष्टुक्तिभिः । स्तुवते । ऋग्मियायं । अर्चाम् । अर्कं । नरं । विश्रुताय ॥ १ ॥

६ । वः । महे । महि । नमः । भरध्वं । आंगूष्यं । शवसानाय । सामं । येना । नः ।

ह्यै । पितरः । पदज्ञाः । अर्चतः । अंगिरसः । गाः । अविन्दन् ॥ २ ॥ इन्द्रस्य ।

अंगिरसां । च । इष्टौ । विदत् । सरमा । तनयाय । धासिं । बृहस्पतिः । भिनत् ।

भद्रं । विदत् । गाः । सं । सुक्षियाभिः । वावशन्त । नरः ॥ ३ ॥ सः ।

सुष्टुभा । सः । स्तुभा । सप्त । विप्रैः । स्वरेण । अद्रिं । स्वय्यैः । नवङ्गवैः ।

सुरप्युभिः । फलिगामिन्द्र । शक्र । वलं । रवेण । दरयोः । दशङ्गवैः ॥ ४ ॥

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरूपसा सूर्येण गोभिरन्धः ।

वि भूस्यां अप्रथय इन्द्र सानुं दिवो रज उपरगस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥

तद् प्रयक्षतमस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।

उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥

द्विता वि वेत्रे सनजा सनीले अयास्यः स्तवमानेभिरकैः ।

भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥

सनादिवं परि भ्रूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।

कृष्णेभिरक्तोपा रुशङ्गिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।

आमासुं चिदधिपे पक्मन्तः पर्यः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥

गृणानः । अङ्गिरःऽभिः । दस्म । वि । वः । उपसा । सूर्येण । गोभिः । अंधः । वि । भूस्यां ।  
 अप्रथयः । इन्द्र । सानुं । दिवः । रजः । उपरं । अस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥ तत् । ऊं इति ।  
 प्रयक्षतमं । अस्य । कर्म । दस्मस्य । चारुतमं । अस्ति दंसः । उपह्वरे । यत् ।  
 उपराः । अपिन्वत् । मधुऽअर्णसः । नद्यः । चतस्रः ॥ ६ ॥ द्विता । वि । वेत्रे । सनजा ।  
 सनीले इति सनीले अयास्यः । स्तवमानेभिः । अकैः । भगः । न । मेने इति । परमे ।  
 विऽओमन् । अधारयत् । रोदसी इति । सुदंसाः ॥ ७ ॥ सनात् । दिवं । परि । भ्रूमा ।  
 विरूपे इति विरूपे । -पुनःऽभुवा । युवती इति । स्वेभिः । एवैः । कृष्णेभिः । अक्ता ।  
 उपाः । रुशङ्गिभिः । वपुःऽभिः । आ । चरतः । अन्याऽअन्या ॥ ८ ॥ सनेमि । सख्यं ।  
 सुऽअपस्यमानः । सनुः । दाधार । शवसा । सुदंसाः । आमासुं । चिन् । दधिपे  
 पक्मं । अंतरिति । पर्यः । कृष्णासुं । रुशन् । रोहिणीषु ॥ ९ ॥

स॒नात्स॒र्नीळा॑ अ॒वनी॑र॒वाता॑ व्र॒ता र॑क्षन्ते अ॒मृताः॑ स॒होभिः॑ ।

पु॒रु स॒हस्रा॑ ज॒नयो॑ न प॒त्नीर्दु॑वस्यन्ति स्व॒सारो॑ अ॒ह्न्याणम् ॥ १० ॥ २ ॥

स॒ना॒युवो॑ नम॒सा न॒व्यो अ॒कैर्वी॑सु॒यवो॑ म॒तयो॑ द॒स्म द॒दुः ।

पतिं॑ न प॒त्नीर॑श॒तीर॑शन्तं स्पृ॒शन्ति॑ त्वा श॒वसा॑वन्मनी॒धाः ॥ ११ ॥

स॒नादे॒व तथ॑ रा॒यो ग॒र्भस्तौ॑ न क्षी॒र्यन्ते॑ नोप॑ दस्यन्ति द॒स्म ।

सु॒मा अ॑सि॒ क्रतु॑र्माँ इन्द्र॒ धीरः॑ शि॒क्षा श॒चीव॑स्तव॒ नः श॒चीभिः॑ ॥ १२ ॥

स॒ना॒यते॑ गो॒र्तम॑ इन्द्र॒ नव्य॑म॒तक्ष॑द्ब्रह्म॒ हरि॑योज॒नाय॑ ।

सु॒नी॒धाय॑ नः श॒वसान॑ नो॒धाः प्रा॒तर्म॑क्षू धि॒याव॑सु॒र्जग॑म्यात् ॥ १३ ॥ ३ ॥

॥ ६३ ॥ गौतमो नोधा ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

( ६३ ) त्वं म॒हान् इन्द्र॑ यो ह॒ शुष्मै॑र्द्यावा॒ जज्ञा॑नः पृथि॒वी अमे॑ धाः ।

यद्धं॑ ते वि॒श्वा गि॒रय॑श्चि॒दभ्वा॑ भि॒या दृ॒ळ्हासः॑ कि॒रणा॑ नै॒र्जन॑ ॥ १ ॥

स॒नात् । स॒र्नीळाः । अ॒वनीः । अ॒वाताः । व्र॒ता । र॑क्षन्ते । अ॒मृताः । स॒होभिः । पु॒रु । स॒हस्राः ।

ज॒नयः । न । प॒त्नीः । दु॒वस्य॑न्ति । स्व॒सारः । अ॒ह्न्याणं ॥ १० ॥ २ ॥

स॒ना॒युवः । नम॒सा । न॒व्यः । अ॒कैः । व॒सु॒यवः । म॒तयः । द॒स्म । द॒दुः ।

पतिं॑ । न । प॒त्नीः । उ॒शतीः । उ॒शन्तं॑ । स्पृ॒शन्ति॑ । त्वा । श॒वसा॑वन् ।

मनी॒धाः ॥ ११ ॥ स॒नात् । ए॒व । तव॑ । रा॒यः । ग॒र्भस्तौ॑ । न । क्षी॒र्यन्ते॑ । न । उप॑ ।

दस्य॑न्ति । द॒स्म । सु॒ष्मान् । अ॒सि । क्रतु॑ष्मान् । इन्द्र॒ धीरः॑ । शि॒क्षा । श॒चीवः॑ ।

तव॑ । नः । श॒चीभिः॑ ॥ १२ ॥ स॒ना॒यते॑ । गो॒र्तमः॑ । इन्द्र॒ नव्यं॑ । अ॒तक्ष॑द्ब्रह्म॒

रि॒योज॑नाय । सु॒नी॒धाय॑ । नः । श॒वसान॑ । नो॒धाः प्रा॒तः । म॒क्षु । धि॒याव॑सुः ।

जग॑म्यात् ॥ १३ ॥ ३ ॥

त्वं । म॒हान् । इन्द्र॑ । यः । ह॒ । शुष्मैः॑ । द्यावा॑ । ज॒ज्ञानः॑ । पृथि॒वी इति॑ । अमे॑ ।

धाः । यद् । ते । वि॒श्वा । गि॒रयः॑ । चि॒त् । अ॒भ्वा । भि॒या । दृ॒ळ्हासः॑ । वि॒रपाः॑ ।

नै॒र्जन ॥ १ ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ४, ५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० ?? सू० ६ ]

आ यद्दरीं इन्द्र विव्रंता वेरा ते वज्रं जरिता वाहोर्धात् ।

येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुरं इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं पाद् ।

त्वं शुष्णं वृजनै पृक्ष आणौ यूने कुत्साय युमते सचाहन् ॥ ३ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मनुभनाः ।

यद्वं शूर वृषमनः पराचैर्वि दस्यूर्योनावकृतो वृथापाद् ॥ ४ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्रारिपण्यन्दृहस्यं चिन्मतीनामजुष्टौ ।

व्यस्मदा काष्ठा अर्धते वर्धनेवं वज्रिन्वृथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळहे नरं आज्ञा ह्वन्ते ।

तवं स्वभाव इयमा समर्यं जतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

आ । यत् । हरी इति । इन्द्र । विव्रंता । वेः । आ । ते । वज्रं । जरिता । वाहोः ।  
धात् । येन । अविहर्यतक्रतो इत्यविहर्यतःक्रतो । अमित्रान् । पुरः । इष्णासि । पुरुहूतः ।  
पूर्वीः ॥ २ ॥ त्वं । सत्यः । इन्द्र । धृष्णुः । एतान् । त्वं । ऋभुक्षाः । नर्यः । त्वं । पाद् ।  
त्वं । शुष्णं । वृजनै । पृक्षे । आणौ । यूने । कुत्साय । युमते । सचा । अहन् ॥ ३ ॥  
त्वं । ह । त्यत् । इन्द्र । चोदीः । सखा । वृत्रं । यत् । वज्रिन् । वृषकर्मन् । उभ्राः । यत् ।  
ह । शूर । वृषमनः । पराचैः । वि । दस्यूर्न । योनी । अकृतः । वृथापाद् ॥ ४ ॥ त्वं ।  
ह । त्यत् । इन्द्र । अरिपण्यन् । दृहस्यं । चित् । मतीना । अजुष्टौ । वि । अस्मत् । आ ।  
काष्ठाः । अर्धते । वः । यनाऽर्धे । वज्रिन् । श्रथिहि । अमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥ त्वा । ह ।  
त्यन् । इन्द्र । अर्णसातौ । स्वः । र्मीळहे । नरः । आज्ञा । ह्वन्ते । तवं । स्वभावः ।  
इयं । आ । समर्यं । जतिः । वाजेषु । अतमाय्या । भूत् ॥ ६ ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ५, ६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० ११ सू० ६४

त्वं ह॒ त्यदिन्द्र॑ स॒प्त यु॒ध्यन्पुरो॑ व॒ज्रिन्पु॒त्रकु॒त्साथ॑ दर्दः ।

व॒र्हिर्न॑ यत्सु॒दासे॑ वृथा॒ वर्ग॑हो रा॒जन्व॒रिचः॑ पू॒र्वे कः॑ ॥ ७ ॥

त्वं त्यां न॑ इन्द्र॒ देव॑ चि॒त्रामि॒षभा॒पो न॑ पी॒पयः॑ परि॒ज्मन् ।

यया॑ शूर॒ प्रत्य॒स्मभ्यं॑ यंसि॒ त्मन॒सूर्जं॑ न वि॒श्वध॑ क्षर॒ध्यै ॥ ८ ॥

अ॒कारि॑ त इन्द्र॒ गोत॑मेभि॒र्ब्रह्मा॒ण्योक्ता॑ नम॒सा हरि॑भ्यास् ।

सु॒पेश॑सं वा॒जमा॑ भ॒रा नः॑ प्रा॒तर्म॑क्षु॒ धिया॑वंसु॒र्जग॑म्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

॥ ६४ ॥ गौतमो नोधा ऋषि ॥ मस्तो देवता ॥ पञ्चदशी त्रिष्टुप् । शिष्टा जगलः ॥

(६४) वृष्णे शर्धीय सुभस्वाय वेधसे नोर्धः सुवृक्तिं प्र भरा मत्सुभ्यः ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वामुवः ॥ १ ॥

त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । सप्त । युध्यन् । पुरः । वज्रिन् । पुत्रकुत्साथ । दर्दरिति दर्दः ।

वर्हिः । न । यत् । सुदासे । वृथा । वर्गः । अंतोः । राजन् । वरिचः । पूर्वैः ।

वरिति कः ॥ ७ ॥ त्वं । त्या । नः । इंद्र । देव । चित्रां । इषं । आपः । न ।

पीपयः । परिज्मन् । यया । शूर । प्रति । अस्मभ्यं । यंसिं । त्मनं । ऊर्जं ।

न । विश्वधं । क्षरध्यै ॥ ८ ॥ अकारि । ते । इंद्र । गोतमेभिः । ब्रह्माणि ।

आजंक्ता । नमसा । हरिभ्यां । सुपेशसं । वाजं । आ । भर । नः । प्रातः ।

सुह । धियावंसुः । जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

वृष्णे । शर्धीय । सुभस्वाय । वेधसे । नोर्धः । सुवृक्तिं । प्र । भर । मत्सुभ्यः ।

अपः । न । धीरः । मनसा । सुहस्त्यः । गिरः । सं । अंजे । विदथेषु ।

आमुवः ॥ १ ॥

त जज्ञिरं दिव ऋष्वासं उक्ष्णो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।  
 पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्षसः ॥ २ ॥  
 युवानो रुद्रा अजरा अभोग्यनो ववक्षुरधिगावः पर्वता इव ।  
 दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्जना ॥ ३ ॥  
 चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्मां अधि येतिरे शुभे ।  
 असेष्वेपां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरः स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥  
 ईगानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विश्रुतस्ताविषीभिरक्रत ।  
 दुहन्त्यर्धदिव्यानि धृतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिञ्जयः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदधेष्वाभुवः ।

अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्वासः । उक्ष्णः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः । पावकासः ।  
 शुचयः । सूर्याःऽइव । सत्वानः । न । द्रप्सिनः । घोरऽवर्षसः ॥ २ ॥ युवानः । रुद्राः ।  
 अजराः । अभोःऽदहनः । ववक्षुः । अधिऽगावः । पर्वताःऽइव । दृळ्हा । चित् । विश्वा ।  
 भुवनानि । पार्थिवा । प्र । च्यावयन्ति । दिव्यानि । मज्जना ॥ ३ ॥ चित्रैः । अञ्जिभिः ।  
 वपुषे । वि । अञ्जते । वक्षःऽसु । रुक्मान् । अधि । येतिरे । शुभे । असेषु । एपां । नि ।  
 मिमृक्षुः । ऋष्टयः । साकं । जज्ञिरे । स्वधया । दिवः । नरः ॥ ४ ॥ ईगानऽकृतः ।  
 धुनयः । रिशादमः । वातान् । विश्रुतः । तविषीभिः । अक्रत । दुहन्ति । ऊर्ध्वः । दिव्यानि ।  
 न्तयः । भूमिं । पिन्वन्ति । पयसा । परिऽञ्जयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ पिन्वन्ति । अपः । मरुतः ।  
 ऽदानवः । पयः । घृतवद्वन् । विऽदधेषु । आऽभुवः । अत्यं । न । मिहे । वि । नयन्ति ।  
 जिनं । उत्सं । दुहन्ति । स्तनयन्तं । अक्षितं ॥ ६ ॥



महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतन्वसो रघुष्यदः ।

मृगा इव हरितनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुध्वम् ॥ ७ ॥

सिंहा इव नानदति प्रचैतसः पिशा इव सुपिशां विश्ववैदसः ।

क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः सभित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषांचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।

आ वन्दुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥

विश्ववैदसो रथिभिः समोकसः संमिश्रासस्तविषीभिर्विरिञ्चिनः ।

अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनंतशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥ ७ ॥

हिरण्ययेभिः पत्रिभिः पयोवृध उज्जिघ्रन्त आपथ्योर्न पर्वनान् ।

मखा अयासः स्वमृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

महिषासः । मायिनः । चित्रभानवः । गिरयः । न । स्वतन्वसः । रघुष्यदः । मृगाः इव ।

हरितनः । खादथ । वना । यत् । आरुणीषु । तविषीः । अयुध्वम् ॥ ७ ॥ सिंहाः इव ।

नानदति । प्रचैतसः । पिशाः इव । सुपिशाः । विश्ववैदसः । क्षपः । जिन्वन्तः ।

पृषतीभिः । ऋष्टिभिः । सं । इत् । सबाधः । शवसा । अहिमन्यवः ॥ ८ ॥ रोदसी

इति । आ । वदत । गणश्रियः । नृषांचः । शूराः । शवसा । अहिमन्यवः । आ ।

वन्दुरेषु । अमतिः । न । दर्शता । विद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वः ॥ ९ ॥

विश्ववैदसः । रथिभिः । संमोकसः । संमिश्रासः । तविषीभिः । विरिञ्चिनः ।

अस्तारः । इषुं । दधिरे । गभस्त्योः । अनंतशुष्माः । वृषखादयः नरः ॥ १० ॥

हिरण्ययेभिः । पत्रिभिः । पयोवृधः । उत् । जिघ्रन्ते । आपथ्यः । न । पर्वनान् । मखाः ।

अयासः । स्वमृतः । ध्रुवच्युतः । दुध्रकृतः । मरुतः । भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

घृ॒षुं पा॒व॒कं व॒नि॒नं वि॒च॒र्ष॒णिं रु॒द्रस्य॑ सृ॒तुं ह॒व॒सां गृ॒णी॒म॒सि ।

र॒ज॒स्तु॒रं त॒व॒सं मा॒रु॒तं ग॒ण॒शृ॒जी॒पि॒णं वृ॒ष॒णं स॒श्र॒त श्रि॒ये ॥ १२ ॥

प्र नृ॒ स॒ म॒र्तः श॒व॒सा॒ ज॒नाँ अ॒ति॒ त॒स्थौ व॒ ऊ॒ती म॑रु॒तो य॒था॒व॒न्त ।

अ॒र्च॒द्भि॒र्वा॒जं भ॒र॒ते ध॒ना॒ नृ॒भि॒रा॒पृ॒च्छ॒यं क॒तु॒मा क्षे॒ति पु॒ष्य॒ति ॥ १३ ॥

च॒र्कृ॒त्यं म॒रु॒तः पृ॒त्सु दु॒ष्ट॒रं शु॒भ॒न्तं शु॒ष्मं म॒घ॒व॒त्सु ध॒त्त॒न ।

ध॒न॒स्पृ॒तं सु॒क्थ्यं वि॒श्व॒च॒र्ष॒णिं तो॒कं पु॒ष्ये॒म॒ त॒न॒यं श॒तं हि॒माः ॥ १४ ॥

नृ॒ ष्ठि॒रं म॑रु॒तो वी॒र॒व॒न्त॒मृ॒ती॒वा॒हं र॒यि॒म॒स्मा॒सु ध॒त्त ।

स॒ह॒स्रि॒णं श॒ति॒नं श॒शु॒वांसं प्रा॒त॒र्म॒क्षू धि॒या॒व॒सु॒र्ज॒ग॒म्यात् ॥ १५ ॥ ८ ॥ ११ ॥

घृ॒षुं । पा॒व॒कं । व॒नि॒नं । वि॒च॒र्ष॒णिं । रु॒द्रस्य॑ । सृ॒तुं । ह॒व॒सां । गृ॒णी॒म॒सि । र॒जः॒स्तु॒रं ।

त॒व॒सं । मा॒रु॒तं । ग॒णं । ऋ॒जी॒पि॒णं । वृ॒ष॒णं । स॒श्र॒त । श्रि॒ये ॥ १२ ॥ प्र । नृ॒ सः ।

म॒र्तः । श॒व॒सा । ज॒ना॒न् । अ॒ति॒ । त॒स्थौ । वः । ऊ॒ती । म॒रु॒तः । यं । आ॒व॒न्त । अ॒र्च॒त्भिः ।

वा॒जं । भ॒र॒ते । ध॒ना॒ । नृ॒भिः । आ॒पृ॒च्छ॒यं । क॒तुं । आ । क्षे॒ति । पु॒ष्य॒ति ॥ १३ ॥

च॒र्कृ॒त्यं । म॒रु॒तः । पृ॒त्सु । दु॒ष्ट॒रं । शु॒भ॒न्तं । शु॒ष्मं । म॒घ॒व॒त्सु । ध॒त्त॒न । ध॒न॒स्पृ॒तं ।

सु॒क्थ्यं । वि॒श्व॒च॒र्ष॒णिं । तो॒कं । पु॒ष्ये॒म॒ । त॒न॒यं । श॒तं । हि॒माः ॥ १४ ॥ नृ॒ । स्थि॒रं ।

म॒रु॒तः । वी॒र॒व॒न्तं । ऋ॒त्ति॒स॒हं । र॒यि॒ । अ॒स्मा॒सु । ध॒त्त । स॒ह॒स्रि॒णं श॒ति॒नं । श॒शु॒वांसं ।

ग॒म्यात् ॥ १५ ॥ ८ ॥ ११ ॥

## ॥ द्वादशोऽनुवाकः ॥

॥ ६५ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ आग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६५ ॥ प॒श्वा न ता॒युं गुहा॒ चत॑न्तं नमो॑ युजा॒नं नमो॑ यह॑न्तम् ।

स॒जोषा॑ धी॒राः प॒दैर॑नुं ग्मन्नु॒यं त्वा सी॑दन्वि॒श्वे यज॑न्नाः ॥ १ ॥

ऋ॒तस्य॑ दे॒वा अनु॑ व्र॒ता गु॒र्भुव॑त्प॒रि॒ष्टि॒द्यौर्न भूमं॑ ।

वर्ध॑न्तीमा॒पः प॒न्वा सु॒शि॒ग्धि॒मृत॑स्य यो॒ना गर्भे॑ सु॒जा॒तम् ॥ २ ॥

पु॒ष्टिर्न र॑ष्वा क्षि॒तिर्न पृ॒थ्वी गि॒रिर्न भु॒ज्ज्म क्षो॒दो न शं॑ष्ठु ।

अत्यो॑ नाज्मन्त्सर्ग॑स्प॒तक्तः॑ सि॒न्धुर्न क्षो॒दः क ई॑ व॒रा॒ते ॥ ३ ॥

जा॒मिः सि॒न्धूनां॑ भ्रा॒त॑ेव त्वस्त्रा॑सि॒भ्यान्न॑ राजा वना॑न्यत्ति ।

यद्वा॑त॒जृतो॑ वना॒ व्यस्था॑द् अ॒ग्निर्ह दा॑ति रो॒मां पृथि॑व्याः ॥ ४ ॥

श्व॑सि॒त्यप्सु॑ हंसो न सी॒दन् क्र॑त्वा चेति॑ष्टो वि॒शासु॑ष॒र्भुत् ।

सोमो॑ न वे॒धा ऋ॒तप्र॑जातः प॒शुर्न शि॑श्वं वि॒भुर्दू॑रेभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

प॒श्वा । न । ता॒युं । गुहा॑ । च॒त॑न्तं । नमः॑ । युजा॒नं । नमः॑ । यह॑न्तं । स॒जोषा॑ः ।  
 धी॒राः । प॒दैः । अनु॑ । ग्मन् । उ॒यं । त्वा । सी॑दन् । वि॒श्वे । यज॑न्नाः ॥ १ ॥  
 ऋ॒तस्य॑ । दे॒वाः । अनु॑ । व्र॒ता । गुः । भु॒वत् । परि॑ष्टिः । द्यौः । न । भूमं । वर्ध॑ति ।  
 । मा॒पः । प॒न्वा । सु॒शि॒ग्धि॑ । ऋ॒तस्य॑ । यो॒नां । गर्भे॑ । सु॒जा॒तं ॥ २ ॥ पु॒ष्टिः ।  
 न । र॑ष्वा । क्षि॒तिः । न । पृ॒थ्वी । गि॒रिः । न । भु॒ज्ज्म । क्षो॒दः । न । शं॑ष्ठु ।  
 अत्यः॑ । न । अज्मन् । सर्ग॑स्प॒तक्तः॑ । सि॒न्धुः । न । क्षो॒दः । कः । ई॑ । व॒रा॒ते ॥ ३ ॥  
 जा॒मिः । सि॒न्धूनां॑ । भ्रा॒ता॑ऽइव । त्वस्त्रां॑ । इ॒भ्यान् । न । राजा॑ । वना॑नि । अ॒त्ति ।  
 । वा॑त॒जृतः॑ । वना॑ । वि । अस्था॑त् । अ॒ग्निः । ह । दा॑ति । रो॒मं । पृथि॑व्याः ॥ ४ ॥  
 श्व॑सि॒ति । अप्सु॑ । हंसः॑ । न । सी॑दन् । क्र॑त्वा । चेति॑ष्टः । वि॒शां । उ॒पः॑ऽभुत् । सोमः॑ ।  
 न । वे॒धाः । ऋ॒तप्र॑जातः । प॒शुः । न । शि॑श्वं । वि॒भुः । दू॑रेऽभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ ऋषिपुत्र पराजर ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६६ ॥ रयिर्न चित्रा सूर्यो न संष्टगायुर्न प्राणो नित्यो न सृनुः ।  
 तक्षा न भूर्णिर्धनां सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्धिर्भिभायां ॥ १ ॥  
 दाधार क्षेमलोको न रण्वो यवो न पक्षो जेता जगानाम् ।  
 ऋषिर्न स्तुभ्वां विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयं दधाति ॥ २ ॥  
 दुरोकशोचिः ऋतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।  
 चित्रो यदभ्राद् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥  
 सेनेषु सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्वेपप्रतीका ।  
 यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥  
 तं वंशराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इच्छम् ।  
 सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैर्नोन्नवंन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

रयिः । न । चित्रा । सूर्यः । न । संष्टक् । आयुः । न । प्राणः । नित्यः । न । सृनुः ।  
 तक्षा । न । भूर्णिः । वनां । सिषक्ति । पयः । न । धेनुः । शुचिः । विभायां ॥ १ ॥  
 दाधार । क्षेमं । ओकः । न । रण्वः । यवः । न । पक्षः । जेता । जनानां । ऋषिः । न ।  
 स्तुभ्वां । विक्षु । प्रशस्तः । वाजी । न । प्रीतः । वयः । दधाति ॥ २ ॥ दुरोकशोचिः ।  
 ऋतुः । न । नित्यः । जायाष्टव । योनौ । अरं । विश्वस्मै । चित्रः । यत् । अभ्राद् ।  
 श्वेतः । न । विक्षु । रथः । न । रुक्मी । त्वेषः । समत्सु ॥ ३ ॥ सेनाष्ट्र ।  
 सृष्टा । अमं । दधाति । अस्तुः । न । दिद्युन् । त्वेषप्रतीका । यमः । ह । जातः । यमः ।  
 जनित्वं । जारः । कनीनां । पतिः । जनीनां ॥ ४ ॥ तं । वः । चराथा । वयं ।  
 वसत्या । अस्तं । न । गावः । नक्षन्ति । इच्छं । सिन्धुः । न । क्षोदः । प्र । नीचीः ।  
 ऐनोत् । नवंन्त । गावः । स्वः । दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १२ सू० ६७

॥ ६७ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६७ ॥ वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।

क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाद् ॥ १ ॥

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमै देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।

विदन्तीमन्न नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रैभिः सत्यैः ।

प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥

य ई चिक्रेत गुहा भवन्तमा यः ससाद् धारां कृतस्य ।

वि ये वृतन्पृता सपन्त आदिद्वस्त्रानि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।

चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्यैव धीराः संसायं चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

वनेषु । जायुः । मर्तेषु । मित्रः । वृणीते । श्रुष्टिं । राजाऽइव । अजुर्यं । क्षेमः । न । साधुः ।  
क्रतुः । न । भद्रः । भुवत् । सुऽआधीः । होता । हव्यवाद् ॥ १ ॥ हस्ते । दधानः ।  
नृम्णा । विश्वानि । अमै । देवान् । धात् । गुहा । निऽसीदन् । विदन्ति । ई । अन्नं । नरः ।  
मिन्ऽधाः । हृदा । यत् । तष्टान् । मन्त्रान् । अशंसन् ॥ २ ॥ अजः । न । क्षां ।  
दाधारं । पृथिवी । तस्तम्भं । द्यां । मन्त्रैभिः । सत्यैः । प्रिया । पदानि । पश्वः । नि ।  
पाहि । विश्वायुः । अग्ने । गुहा । गुहं । गाः ॥ ३ ॥ यः । ई । चिक्रेत । गुहां ।  
भवन्तं । आ । यः । ससाद् । धारां । कृतस्य । वि । ये । वृतन्ति । कृता । सपन्तः ।  
वृत् । वृत् । वस्त्रानि । प्र । ववाच । अस्मै ॥ ४ ॥ वि । यः । वीरुत्सु । रोधन् ।  
मिन्ऽधा । उत । प्रऽजाः । उत । प्रऽसूष्वन्तः । अंतरिति । चित्तिः । अपां । दमे ।  
चित्तिरऽपां । सद्यैव । धीराः । संसायं । चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

अष्ट० १ अष्ट्या० ५ व० १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १२ सू० ६

॥ ६० ॥ शक्तिपुत्र पराशर ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६८ ॥ श्रीणन्नुषं स्यादिवं सुरण्युः स्यातुश्चरथमत्तून्धूर्णोत् ।

परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥

आदित्ते विश्वे ऋतुं जुषन्त शुष्काद्यदेव जीवो जनिष्ठाः ।

भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥

ऋतस्य प्रेषां ऋतस्य धीनिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।

यस्तुभ्यं दाशायो वां ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वात्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥

होता निदन्तो मनोरपत्ये स चिन्वासां पती रयीणां ।

इच्छन्त रेतो मिथस्तदृषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥

पितुर्न पुत्राः ऋतुं जुषन्त ओषन्थे अरय शासं तुरासं ।

वि रायं और्णोदुरं पुस्तुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दसूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

श्रीणन् । उपं । स्यात् । दिवं । सुरण्युः । स्यातुः । चरथं । अत्तून् । वि । ऊर्णोत्  
परि । यत् । एषां । एकः । विश्वेषां । भुवद् । देवः । देवानां । महित्वा ॥ १  
आत् । अत् । ते । विश्वे । ऋतुं । जुषन्त । शुष्कात् । यत् । देव । जीवः । जनिष्ठाः । भजन्त  
विश्वे । देवत्वं । नाम । ऋतं । सपन्तः । अमृतं । एवैः ॥ २ ॥ ऋतस्य । प्रेषां  
ऋतस्य । धीतिः । विश्वऽआयुः । विश्वे । अपांसि । चक्रुः । यः । तुभ्यं । दाशाय  
यः । वा । दे । शिक्षान् । तस्मै । चिकित्वात् । रयिं । दयस्व ॥ ३ ॥ होता । निदन्तः  
मनोः । अपत्ये । सः । चिन् । तु । आणां । पतिः । रयीणां । इच्छन्त । रेतः । मिथः  
तदृषु । सं । जानत । स्वैः । दक्षैः । अमूराः ॥ ४ ॥ पितुः । न । पुत्राः । ऋतुं । जुषन्त  
पितुः । वि । अरय । शासं । तुरासं । वि । रायं । और्णोत् । दुरं । पुस्तुः । पिपेश  
नाकं । स्तृभिः । दसूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

॥ ६९ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥६९॥ शुक्रः शुशुक्लौ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।

परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥

वेधा अदंसो अग्निर्विजानन्नूर्धनं गोनां स्वाहां पितृनाम् ।

जने न शेवं आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।

विशो यदहे नृभिः सनीला अग्निदेवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥

नकिंष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकथं ।

तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।

त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवंन्त विश्वे स्वर्हृशीके ॥ ५ ॥ १३ ॥

शुक्रः । शुशुक्लान् । उषः । न । जारः । पप्रा । समीची इति संज्ञीची । दिवः ।

न । ज्योतिः । परि । प्रजातः । क्रत्वा । बभूथ । भुवः । देवानां । पिता । पुत्रः ।

सन् ॥ १ ॥ वेधा । अदंसः । अग्निः । विजानन् । ऊर्ध्वः । न । गोनां । स्वाहां ।

पितृनां । जने । न । शेवं । आहूर्यः । सन् । मध्ये । निषत्तः । रण्वः । दुरोणे ॥ २ ॥

पुत्रः । न । जातः । रण्वः । दुरोणे । वाजी । न । प्रीतः । विशः । वि । तारीत् । विशः ।

यत् । अहे । नृभिः । सनीलाः । अग्निः । देवत्वा । विश्वानि । अश्याः ॥ ३ ॥

नकिंः । ते । एता । व्रता । मिनन्ति । नृभ्यः । यत् । एभ्यः । श्रुष्टिं । चकथं ।

तत् । तु । ते । दंसः । यत् । अहन् । समानैः । नृभिः । यत् । युक्तः । विवेः ।

रपांसि ॥ ४ ॥ उषः । न । जारः । विभावा । उस्रः । संज्ञातरूपः । चिकेतत् ।

अस्मै । त्मना । वहन्त । दुरः वि । ऋण्वन् । नवंत । विश्वे । स्वः । हृशीके ॥५॥१३॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० १४ ] ऋग्वेदः [ यण्ड० १ अनु० १२ सू० ७ :

॥ ७० ॥ शक्तिपुत्रः पत्न्यार ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ७० ॥ वनेमं पूर्वारयो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यज्ञयाः ।

आ देव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथांम् ।

अद्रौ चिदस्मा अन्तदुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥

स हि क्षपावां अग्नी रयीणां दाशच्यो अरमा अरं सूक्तैः ।

एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मतींश्च विद्वान् ॥ ३ ॥

वर्धान्यं पूर्वाः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथंमृतप्रवीतम् ।

अराधि होता स्वर्निपत्तः ऋग्यन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥

गोषु प्रजास्ति वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।

वि त्वा नरः पुरुत्रा संपर्यन्पितुर्न जित्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥

साधुर्न गृधुरस्तेव शूरो यातेव भीमत्त्वेपः समत्सु ॥ ६ ॥ १४ ॥

वनेमं । पूर्वाः । अर्यः । मनीषा । अग्निः । सुशोकोः । विश्वानि । अज्ञयाः । आ ।  
देव्यानि । व्रता । चिकित्वान् । आ । मानुषस्य । जनस्य । जन्म ॥ १ ॥ गर्भोः । यः ।  
अपां । गर्भोः । वनानां । गर्भोः । च । स्थातां । गर्भोः । चरथां । अद्रौ । चिदम् । अन्तः ।  
दुरोणे । विशां । न । विश्वः । अमृतः । सुशोकोः ॥ २ ॥ सः । हि । क्षपाश्वां ।  
अग्निः । रयीणां । दाशान् । यः । अस्मै । अरं । सुशोक्तैः । एता । चिकित्वः । भूमा । नि ।  
पाहि । देवानां । जन्म । मतींश्च । च । विद्वान् ॥ ३ ॥ वर्धान् । यं । पूर्वाः । क्षपः ।  
विरूपाः । स्थातुः । च । रथं । ऋतुप्रवीतं । अराधि । होता । स्वः । निःसत्तः । ऋग्यन् ।  
विश्वानि । अपांसि । सत्या ॥ ४ ॥ गोषु । प्रजास्ति । वनेषु । धिषे । भरन्त । विश्वे ।  
बलिं । स्वः । नः । वि । त्वा । नरः । पुरुत्रा । संपर्यन् । पितुः । न । जित्रेः । वि । वेदोः ।  
भरन्त ॥ ५ ॥ साधुः । न । गृधुः । अस्ताश्च । शूरोः । याताश्च । भीमः । नरः ।  
समत्सु ॥ ६ ॥ १४ ॥



॥ ५१ ॥ शक्तिपुत्रः पराशरः ऋषिः ॥ षाभिर्देवताः ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७१ ॥ उप्र प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः स्वर्नीळाः ।  
 स्वसारः श्यावीमरुपीनङ्गुश्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥  
 वीळु चिदृळ्हा पितरौ न उक्थैराद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।  
 चक्रुर्दिवो बृहतो गातुस्समे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्त्राः ॥ २ ॥  
 दधन्तं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वोऽविभृत्राः ।  
 अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥  
 अधीचदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।  
 आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दृत्यं भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥  
 महे यत्पित्र ई रसं दिवे करवं त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।  
 सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

उप । प्र । जिन्वन् । उशतीः । उशन्तं । पतिं । न । नित्यं । जनयः । स्वर्नीळाः ।  
 स्वसारः । श्यावी । अरुपी । अङ्गुपून् । चित्रं । उच्छन्ती । उपसं । न । गावः ॥ १ ॥  
 वीळु । चित् । हृळ्हा । पितरः । नः । उक्थैः । अद्रिं । रुजन् । अंगिरसः । रवेण । चक्रुः ।  
 दिवः । बृहतः । गातुं । अस्मे इति । अहरितिं । स्वः । विविदुः । केतुं । उस्त्राः ॥ २ ॥  
 दधन् । ऋतं । धनयन् । अस्य । धीतिं । आत् । इत् । अर्यः । दिधिष्वः । विऽभृत्राः । अतृ-  
 प्यन्तीः । अपसः । यन्ति । अच्छे । देवान् । जन्मं । प्रयसा । वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥ मधीत् ।  
 पत् । ई । विऽभृतः । मातरिश्वा । गृहेऽगृहे । श्येतः । जेन्यः । भूत् । आत् । ई । राज्ञे । न ।  
 तीयसे । सचा । सन् । आ । दृत्यं । भृगवाणः । विवाय ॥ ४ ॥ महे । यत् । पित्रे । ई ।  
 रसं । दिवे । कः । अवं । त्सरत् । पृशन्यः । चिकित्वान् । सृजत् । अस्ता । धृषता । दिद्युं ।  
 अस्मै । स्वायां । देवः । दुहितरिं । त्विषिं । धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु घ्नू ।  
वधो अग्ने वयो अस्य द्विवर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥  
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यहीः ।  
न जामिभिर्वि चिकित्ते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥  
आ यदिषे नृपतिं तेज आनद् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीकै ।  
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्वं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥  
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरौ वस्व ईशे ।  
राजांना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥  
धो नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।  
वधो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥ १६ ॥

स्वे । आ । यः । तुभ्यं । दमे । आ । वि॒भाति । नमः । वा । दाशात् । उ॒शतः ।  
अनु॑ । घ्नू । वधो॑ इति । अग्ने॑ । वयः । अस्य॑ । द्वि॒वर्हाः । यास॑त् । रा॒या । स॒रथं । यं ।  
जु॒नासि ॥ ६ ॥ अग्निं॑ । विश्वाः । अभि॑ । पृ॒क्षः । स॒चन्ते । स॒मुद्रं । न । स॒वतः । सप्त॑ ।  
यहीः । न । जा॒मिभिः । वि । चि॒कित्ते । वयोः । नः । वि॒दाः । दे॒वेषु॑ । प्र॒मतिं ।  
चि॒कित्वा॑न् ॥ ७ ॥ आ । यत् । इ॒षे । नृ॒पतिं । तेजः । आ॒नद् । शु॒चिं । रेतः ।  
नि॒षिक्तं । द्यौः । अ॒भीकै । अ॒ग्निः । शर्ध॑ । अ॒नव॒द्यं । यु॒वानं । सु॒आ॒ध्वं । ज॒नय॑त् ।  
सू॒दय॑त् । च ॥ ८ ॥ मनः । न । यः । अ॒ध्वनः । स॒द्यः । एति॑ । एकः । स॒त्रा ।  
सूरः । वस्वः । ई॒शे । राजा॑ना । मि॒त्रावरु॑णा । सु॒पा॒णी इति॑ सु॒पा॒णी । गो॒षु ।  
प्रि॒यं । अ॒मृतं । रक्ष॑माणा ॥ ९ ॥ मा । नः । अग्ने॑ । स॒ख्या । पि॒त्र्याणि । प्र ।  
मर्षि॑ष्ठाः । अभि॑ । वि॒दुः । क॒विः । सन् । नमः । न । रूपं । ज॒रि॒मा । मि॒नाति॑ ।  
। तस्याः । अ॒भि॒शस्तेः । अग्निं॑ । इति॑ ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ७२ ॥ शक्तिपुत्र. पराशर ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द. ॥

॥ ७२ ॥ नि काव्यां वेधसः शश्वतस्करहस्ते दधानो नर्यां पुरूणि ।

अग्निभुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वां ॥ १ ॥

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।

श्रमयुवः पदव्यो धियंघारतस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचंयः सपर्यान् ।

नामानि चिदधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रियां जभ्रिरे यज्ञियांसः ।

विदन्मतीं नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

संजानाना उपं सीदन्नभिञ्जु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।

रिरिकांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सरवा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

नि । काव्यां । वेधसः । शश्वतः । कः । हस्ते । दधानः । नर्यां । पुरूणि ।

अग्निः । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां । सत्रा । चक्राणः । अमृतानि । विश्वां ॥ १ ॥

अस्मे इति । वत्सं । परि । संतं । न । विदन् । इच्छंतः । विश्वे । अमृताः । अमूराः ।

श्रमऽयुवः । पदऽव्यः । धियंऽघाः । तस्थुः । पदे । परमे । चारुं । अग्नेः ॥ २ ॥ तिस्रः ।

यत् । अग्ने । शरदः । त्वां । इत् । शुचिं । घृतेन । शुचंयः । सपर्यान् । नामानि ।

चित् । दधिरे । यज्ञियानि । असूदयन्त । तन्वः । सुऽजाताः ॥ ३ ॥ आ । रोदसी ।

इति । बृहती इति । वेविदानाः । प्र । रुद्रियां । जभ्रिरे । यज्ञियांसः । विदत् । मतीः ।

नेमऽधिता । चिकित्वान् । अग्निं । पदे । परमे । तस्थिऽवांसं ॥ ४ ॥ संऽजानानाः ।

उपं । सीदन् । अभिऽञ्जु । पत्नीऽवन्तः । नमस्यं । नमस्यन् । रिरिकांसः ।

तन्वः । कृण्वत । स्वाः । सरवां । सख्युः । तिऽमिषि । रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविद्विहिता यज्ञियांसः ।  
 तेभीं रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशून् स्यातृचरथं च पाहि ॥ ६ ॥  
 विद्राँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुपक्व गुरुधो जीवसे धाः ।  
 अन्तर्विद्राँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाद् ॥ ७ ॥  
 त्वाध्यां दिव आ सप्त यद्दी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।  
 विद्वद्भ्यं सरमां दृळ्हसूर्वे येना नु कं मानुषी भोजन्ते विद् ॥ ८ ॥  
 आ ये विश्वां स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासौ अमृतत्वार्यं गातुम् ।  
 गह्ना गहद्भिः पृथिवी वि तंरथे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥  
 अधि श्रियं नि द्युश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अचृता अकृण्वन् ।  
 अथ क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुपीरजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

त्रिः । सप्त । यद् । गुह्यानि । त्वे इति । इत् । पदा । अविदन् । निऽहिता । यज्ञियांसः ।  
 तेभिः । रक्षन्ते । अमृतं । सऽजोषाः । पशून् । च । स्यातृन् । चरथं । च । पाहि ॥ ६ ॥  
 विद्वान् । अग्ने । वयुनानि । क्षितीनां । वि । आनुपक्व । गुरुधः । जीवसे । धाः ।  
 अन्तःऽविद्वान् । अध्वनः । देवऽयानान् । अतन्द्रः । दूतः । अभवः । हविऽवाद् ॥ ७ ॥  
 सुऽआध्यः । दिवः । आ । सप्त । यद्दीः । रायः । दुरः । वि । ऋतऽज्ञाः । अजानन् ।  
 विदत् । गव्यं । सरमां । दृळ्हं । ऊर्वं । येन । नु । कं । मानुषी । भोजन्ते । विद् ॥ ८ ॥  
 आ । ये । विश्वां । सुऽअपत्यानि । तस्थुः । कृण्वानासौः । अमृतऽत्वार्यं । गातुं । मत्ता ।  
 गहन्ऽभिः । पृथिवी । वि । तंरथे । माता । पुत्रैः । अदितिः । धायसे । वेर्गिति  
 वेः ॥ ९ ॥ अधि । श्रियं । नि । द्युः । चारुं । अस्मिन् । दिवः । यत् । अक्षी इति ।  
 अचृताः । अकृण्वन् । अथ । क्षरन्ति । सिन्धवः । न । सृष्टाः । प्र । नीचीः । अग्ने  
 रूपीः । अजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ ७३ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिवृष् छन्दः ॥

॥ ७३ ॥ रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।

स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतैव सन्नं विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।

पुरुशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाच्यो भूत् ॥ २ ॥

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।

पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्रे सचन्त क्षितिषु ध्रुवास्तु ।

अधि ह्युन्नं नि दधुर्भूर्धस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥

वि पृक्षो अग्रे मघवानो अश्रुर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।

सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

रयिः । न । यः । पितृवित्तः । वयःऽधाः । सुप्रणीतिः । चिकितुषः । न ।  
शासुः । स्योनशीः । अतिथिः । न । प्रीणानः । होताऽइव । सन्नं । विधतः ।  
वि । तारीत् ॥ १ ॥ देवः । न । यः । सविता । सत्यमन्मा । क्रत्वा । निपा-  
ति । वृजनानि । विश्वा । पुरुशस्तः । अमतिः । न । सत्यः । आत्माऽइव ।  
शेवः । दिधिषाच्यः । भूत् ॥ २ ॥ देवः । न । यः । पृथिवीं । विश्वधायाः । उपक्षेति ।  
हितमित्रः । न । राजा । पुरःसदः । शर्मसदः । न । वीराः । अनवद्या । पति-  
जुष्टेव । नारी ॥ ३ ॥ तं । त्वा । नरः । दमै । आ । नित्यं । इद्धं । अग्रे ।  
सचन्त । क्षितिषु । ध्रुवास्तु । अधि । ह्युन्नं । नि । दधुः । भूर्धस्मिन् । भव ।  
विश्वमायुः । धरुणः । रयीणां ॥ ४ ॥ वि । पृक्षः । अग्रे । मघवानः । अश्रुः ।  
वि । सूरयः । ददतः । विश्वं । आयुः । सनेम । वाजं । समिथेषु । अर्यः । भागं ।  
श्रवसे । दधानाः ॥ ५ ॥ १९ ॥



## ॥ त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

॥ ७४ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७४ ॥ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।

आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

यः स्त्रीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु ।

अरक्षद्दाशुषे गर्गम् ॥ २ ॥

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्द्वृत्रहाजनि ।

धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये ।

दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो ।

जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

आ च वहांसि तां इह देवाँ उप प्रशस्तये ।

हव्या सुञ्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥

उपप्रयन्तः । अध्वरं । मन्त्रं । वोचेम । अग्नये । आरे । अस्मे इति । च ।  
 शृण्वते ॥ १ ॥ यः । स्त्रीहितीषु । पूर्व्यः । संजग्मानासु । कृष्टिषु । अरक्षत् ।  
 दाशुषे । गर्गम् ॥ २ ॥ उत । ब्रुवन्तु जन्तवः । उत् । अग्निः । द्वृत्रहा । अजनि ।  
 धनञ्जयः । रणेरणे ॥ ३ ॥ यस्य । दूतः । असि । क्षये । वेषि । हव्यानि ।  
 वीतये । दस्मत् । कृणोषि । अध्वरं ॥ ४ ॥ तं । इत् । सुहव्यं । अङ्गिरः ।  
 सुदेवं । सहसः । यहो इति । जनाः । आहुः । सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥ २१ ॥  
 आ । च । वहांसि । तान् । इह । देवान् । उप । प्रशस्तये । हव्या ।  
 सुञ्चन्द्र । वीतये ॥ ६ ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० २२, २३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ५

न योरुप॒ण्डि॒रश्व्यः॑ शृ॒ण्वे रथ॑स्य॒ क॒च॒न ।

पद॑ग्ने॒ यासि॑ दृ॒त्यम् ॥ ७

त्वोतो॑ वा॒ज्यह्र॑योऽभि॒ पूर्वे॑स्मा॒दपरः॑ ।

प्र दा॒श्वान् अग्ने॑ अ॒स्थात् ॥ ८

उ॒त सु॒मत्सु॒वीर्ये॑ वृ॒हद्ग॑ने॒ वि॒वासि॑ ।

दे॒वेभ्यो॑ दे॒व दा॒शुपे॑ ॥ ९ ॥ २२

॥ ७५ ॥ रत्नगुप्तो गौतम ऋषिः ॥ भूमिदेवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७५ ॥ जु॒पस्य॑ स॒प्रथ॑स्तमं॒ वचो॑ दे॒वप्स॑रस्तमम् ।

ह॒व्या जु॒दान॑ आ॒सनि॑ ॥ १

अ॒यां ते अ॒ग्निर॑र॒त्नमा॑ग्ने॒ वेध॑स्तम॒ प्रिय॑म् ।

वो॒चेम॑ ब्र॒ह्म सा॒नसि॑ ॥ २

न । योः । उप॒ण्डिः । अश्व्यः । शृ॒ण्वे । रथ॑स्य । क॒त् । च॒न । यत् । अग्ने॑  
यासि॑ । दृ॒त्यम् ॥ ७ ॥ त्वाऽज॑तः । वा॒जी । अ॒ह्यः । अ॒भि । पूर्वे॑स्मात् । अपरः  
प्र । दा॒श्वान् । अग्ने॑ । अ॒स्थात् ॥ ८ ॥ उ॒त । सु॒मत् । सु॒वीर्ये॑ । वृ॒हद्ग॑  
अग्ने॑ । वि॒वासि॑ । दे॒वेभ्यः॑ । दे॒व । दा॒शुपे॑ ॥ ९ ॥ २२ ॥

जु॒पस्य॑ । स॒प्रथ॑ऽस्तमं । वचो॑ । दे॒वप्स॑रऽस्तमं । ह॒व्या । जु॒दानः । आ॒सनि॑  
॥ १ ॥ अ॒यं । ते । अ॒ग्निर॑ऽस्तमं । अग्ने॑ । वे॒धः । स्तम॑ । प्रियं । वो॒चेम॑ । ब्र॒ह्म ।  
सा॒नसि॑ ॥ २ ॥



ते जा॒मि॒र्जना॑ना॒मग्ने॑ को दा॒ध्वध्वरः॑ ।

को ह॒ करि॑मन्नसि श्रि॒तः ॥ ३ ॥

जा॒मि॒र्जना॑ना॒मग्ने॑ मि॒त्रो अ॑सि श्रि॒यः ।

सखा॒ सखि॑भ्य ई॒ड्यः ॥ ४ ॥

जा॒ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ ऋ॒तं बृ॒हत् ।

अग्ने॒ यक्षि॑ स्वं द॒मम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

॥ ७६ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

॥ ७६ ॥ का त॒ उपे॑ति॒र्मन॑सो वरा॒य भुव॑दग्ने श॒तंमा॑ का म॒नीषा॑ ।

को वा॒ यज्ञैः॑ परि॒ दक्षं॑ त आप॒ केन॑ वा ते म॒नसा॑ दाशेम ॥ १ ॥

ए॒ष्यन्न॑ इ॒ह होता॑ नि षी॒दाद॑न्धः सु पु॒र॒एता॑ भ॒वा नः॑ ।

अ॒व॒तां त्वा॒ रोद॑सी वि॒श्वमि॒न्वे यजा॑ म॒हे सौ॑म॒नसा॑य दे॒वान् ॥ २ ॥

कः । ते । जा॒मिः । जना॑नां । अग्ने॑ । कः । दा॒शुऽअ॑ध्वरः । कः । ह॒ । करि॑मन् ।  
अ॒सि । श्रि॒तः ॥ ३ ॥ त्वं । जा॒मिः । जना॑नां अग्ने॑ । मि॒त्रः । अ॒सि ।  
श्रि॒यः । सखा॑ । सखि॑भ्यः । ई॒ड्यः ॥ ४ ॥ यजं । नः॑ । मि॒त्रावरु॑णा । यजं ।  
दे॒वान् । ऋ॒तं । बृ॒हत् । अग्ने॑ । यक्षि॑ । स्वं । द॒मं ॥ ५ ॥ २३ ॥

का । ते । उपे॑ति॒र्मन॑सः । वरा॒य । भुव॑त् । अग्ने॑ । श॒तंमा॑ । का ।  
म॒नीषा॑ । कः । वा॒ । यज्ञैः॑ । परि॑ । दक्षं॑ । ते । आप॒ । केन॑ । वा॒ । ते । म॒नसा॑ ।  
दा॒शेम॑ ॥ १ ॥ आ । इ॒हि । अग्ने॑ । इ॒ह । होता॑ । नि । सी॒द् । अ॒द॑न्धः । सु ।  
पु॒रः॒एता॑ । भ॒व । नः॑ । अ॒व॒तां । त्वा॒ । रोद॑सी इति । वि॒श्वमि॒न्वे इति॑ वि॒श्वं॑ऽन्वे ।  
यज्ञे॑ । म॒हे । सौ॑म॒नसा॑य । दे॒वान् ॥ २ ॥

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यंते भवा यज्ञानामभिः शस्तिपावा ।  
 अथा वह सोमपति हरिभ्यामातिथ्यसस्मै च चक्रमा सुदात्रे ॥ ३ ॥  
 प्रजावता वचसा वहिरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।  
 वेपि होत्रसुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥  
 यथा विप्रस्य मनुषो हविभिर्देवा अयजः कविभिः कविः सन् ।  
 एवा होतः सत्यतर त्वमचाग्रे मन्द्रया जुहा यजरव ॥ ५ ॥ २४ ॥

॥ ७७ ॥ रह्यगुप्तो गोतम ऋषि ॥ अग्निदेवता ॥ त्रिष्टुप् छन्द ॥

॥ ७७ ॥ कथा दाशेमाग्रये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।  
 यो मर्त्येष्वमृतं कृतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥  
 यो अध्वरेषु शंतम कृतावा होता तसू नमोभिरा कृणुध्वम् ।  
 अग्निर्यद्गर्माय देवान्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

प्र।सु। विश्वान्।रक्षसः। धक्षिं। अग्ने । भवा। यज्ञानां। अभिशस्तिऽपावां । अथे । आ।  
 वह।सो ऽपतिं।हरिऽभ्यां। आतिथ्यं । अरमै । चक्रम । सुऽदात्रे ॥ ३ ॥ प्रजाऽवता।  
 वचसा । वहिः। आसा।आ।च। हुवे । नि । च । सत्सि । इह । देवैः।वेपिं।होत्रं।  
 उतापोत्रं । यजत्र । बोधि । प्रयन्तः । जनितः । वसूनां ॥ ४ ॥ यथा । विप्रस्य ।  
 मनुषः । हविःऽभिः । देवान् । अयजः । कविऽभिः । कविः । सन् । एव । होतः-  
 रितिं । सत्यऽतर । त्वं । अद्य । अग्रे । मन्द्रयां । जुहा । यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

कथा । दाशेम । अग्रये । का अरमै । देवजुष्टा । उच्यते । भामिने । गीः ।  
 यः । मर्त्येषु अमृतः । कृताऽवा । होता । यजिष्ठः । इत् । कृणोति । देवान् ॥ १ ॥  
 यः । अध्वरेषु । शंतमः । कृताऽवा । होता । तं । कृणोति । नमोऽभि । आ ।  
 कृणुध्वम् । अग्निः । यन् । वेः । गर्माय । देवान् । सः । च । बोधाति । मनसा ।  
 यजाति ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मिनो न भूदद्वृतस्य रथीः ।

तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विशं उषं ब्रुवते दस्मन्मारीः ॥ ३ ॥

स नो नृणां नृतमो रिशादां अग्निर्मिरोऽवसा देतु धीतिम् ।

तनां च ये मघवानः शविष्ठा वाजंप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥

एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रैभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।

स एषु शुम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥ २५ ॥

॥ ७८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ आग्निदेवता गायत्री छन्द ॥

॥ ७८ ॥ अ॒भि त्वा गो॒त॒मा गि॒रा जा॒त॒वे॒दो वि॒च॒र्ष॒णे ।

शु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ १ ॥

तमु॒ त्वा गो॒त॒मो गि॒रा रा॒य॒स्का॑मो ब्रुवस्यति ।

शु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ २ ॥

सः । हि । क्रतुः । सः । मर्यः । सः । साधुः । मित्रः । न । भूत् । अद्वृतस्य ।

रथीः । तं । मेधेषु । प्रथमं । देवयन्तीः । विशः । उषं । ब्रुवते । दस्मं । मारीः ॥ ३ ॥

सः । नः । नृणां । नृतमः । रिशादाः । अग्निः । गिरः । अवसा । देतु । धीतिम् ।

तनां । च । ये । मघवानः । शविष्ठाः । वाजंप्रसूताः । इषयन्त । मन्म ॥ ४ ॥

एव । अग्निः । गोतमेभिः । ऋतवा । विप्रैभिः । अस्तोष्ट । जातवेदाः । सः । एषु ।

शुम्नं । पीपयत् । सः । वाजं । सः । पुष्टिं । याति । जोषं । आ । चिकित्वान् ॥ ५ ॥ २५ ॥

अभि । त्वा । गोतमाः । गिरा । जातवेदः । विचर्षणे । शुम्नैः । अभि । प्र ।

णोनुमः ॥ १ ॥ तं । ऊं इति । त्वा । गोतमः । गिरा । रायःस्कामः । ब्रुवस्यति ।

शुम्नैः । अभि । प्र । णोनुमः ॥ २ ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० २६, २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ७९

तसु त्वा वाजसातमसङ्गिरस्वह्वामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ३ ॥

तसु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूरवधुनुषे द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ४ ॥

अवोचाम र्हृगणा अग्रये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ७९ ॥ र्हृगणुत्त्रो गोतम ऋषि ॥ आग्निदेवता ॥ आद्यस्तृचसैष्टभः द्वितीय औष्णिः  
मिथानां गायत्री छन्द ॥

॥ ७९ ॥ हिरण्यकेशो रजंसो विसारेऽहिर्युनिर्वात इव धर्जीमान् ।

द्युचिभ्राजा उपसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥

आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २ ॥

यदीमृतस्य पर्यसा पियानो नयन्तस्य पथिभी रजिष्ठैः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृश्नन्धुपरस्य योनीं ॥ ३ ॥

तं । ऊं इति । त्वा । वाजसातमं । अंगिरस्वत् । ह्वामहे । द्युम्नैः । अभि । प्र ।  
नोनुमः ॥ ३ ॥ तं । ऊं इति । त्वा । वृत्रहन्तमं । यः । दस्यूरवधुनुषे ।  
द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ ४ ॥ अवोचाम । र्हृगणाः । अग्रये । मधुमद्वचः ।  
द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ ५ ॥ २६ ॥

हिरण्यकेशः । रजंसः । विसारे । अहिः । धुनिः । वातःऽइव । धर्जीमान् ।  
द्युचिभ्राजाः । उपसः । नवेदाः । यशस्वतीः । अपस्युवः । न । सत्याः ॥ १ ॥  
आ । ते । सुपर्णाः । अमिनन्त । एवैः । कृष्णः । नोनाव । वृषभः । यदी । इदं ।  
शिवाभिः । न । स्मयमानाभिः । आ । अगात् । पतन्ति । मिहः । स्तनयन्ति ।  
अभ्रा ॥ २ ॥ यन् । ई । ऋतम्यं । पर्यसा । पियानः । नयन् । ऋतम्यं ।  
पथिभिः । रजिष्ठैः । अर्यमा । मित्रः । वरुणः । परिज्मा । त्वचं । पृश्नन्ति ।  
५ । योनीं ॥ ३ ॥

अग्ने वाजस्य गोमंत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्वांसु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं ।

विश्वांसु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥

अग्ने । वाजस्य । गोमंतः । ईशानः । सहसः । यहो इति । अस्मे इति । धेहि ।  
जातवेदः । महि । श्रवः ॥ ४ ॥ सः । इधानः । वसुः । कविः । अग्निः ।  
रीळेन्यः । गिरा । रेवत् । अस्मभ्यं । पुरुऽअनीक । दीदिहि ॥ ५ ॥ क्षपः । राजन् ।  
उत । त्मना । अग्ने । वस्तोः । उत । उषसः । सः । तिग्मजम्भ । रक्षसः । दह ।  
प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अव । नः । अग्ने । ऊतिभिः । गायत्रस्य । प्रभर्मणि । विश्वांसु । धीषु ।  
वन्द्य ॥ ७ ॥ आ । नः । अग्ने । रयिं । भर । सत्रासाहं । वरेण्यं । विश्वांसु ।  
पृत्सु । दुष्टरं ॥ ८ ॥

अष्ट० ? अध्या० ५ व० २८, २९ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० ? अनु० ?३ सू०-८०

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।

मा॒र्डी॒कं धे॒हि जी॒वसे ॥ ९ ॥

प्र पृतारितग्भशोचिषे वाचो गोतमाग्रये ।

भर॑र॒च सु॒म्न॒यु॒गिरं ॥ १० ॥

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः ।

अ॒स्माक॒मिदृ॒चे भ॒व ॥ ११ ॥

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति ।

होता॑ गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥ २८ ॥

॥ ८० ॥ रहूगगपुत्रो गोतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ पत्तिदछन्द ।

॥ ८० ॥ इत्या हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शविष्ट वज्रिन्नोजंसा पृथिव्या निः शंशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ? ॥

आ । नः । अग्ने । सु॒चे॒तु॒ना । र॒यिं । वि॒श्वा॒यु॒ऽपो॒षसं । मा॒र्डी॒कं । धे॒हि ।

जी॒वसे ॥ ९ ॥ प्र । पृ॒ताः । ति॒ग्म॒ऽगो॒चि॒षे । वा॒चः । गो॒त॒म । अ॒ग्र॒ये । भर॑र॒च ।

सु॒म्न॒युः । गिरं ॥ १० ॥ यः । नः । अग्ने । अ॒भि॒ऽदा॒स॒न्ति । अ॒न्ति । दू॒रे । प॒दी॒ष्ट ।

सः । अ॒स्माकं । इत् । वृ॒धे । भ॒व ॥ ११ ॥ स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षः । वि॒ऽच॒र्ष॒णिः । अ॒ग्निः ।

र॒क्षांसि । से॒ध॒ति । हो॒ता । गृ॒णी॒ते । उ॒क्थ्यः ॥ १२ ॥ २८ ॥

इत्या । हि । सोमे । इन्मदे । ब्रह्मा । चकार । वर्धनं । शविष्ट । वज्रिन्न ।

नोजंसा । पृथिव्याः । निः । शंशाः । अहि । अर्चन् अनु । स्वराज्यं ॥ ? ॥

स त्वा॑मद॒दृषा॑ म॒दः सोमः॑ श्येना॒भृतः॑ सु॒तः ।

येना॑ वृ॒त्रं निर॒द्भयो॑ ज॒घन्थ॑ वज्रि॒न्नोज॒सार्च॑न्ननु॒ स्वरा॒ज्यम् ॥ २ ॥

प्रे॒क्ष॒भीहि॑ धृ॒ष्णुहि॑ न ते॒ वज्रो॑ नि यँ॒सते॑ ।

इन्द्रं॑ नृ॒म्णं हि॑ ते॒ शवो॑ ह॒नो वृ॒त्रं जया॑ अ॒पोऽर्च॑न्ननु॒ स्वरा॒ज्यम् ॥ ३ ॥

नि॒रिन्द्र॑ भू॒म्या अ॒धि वृ॒त्रं ज॒घन्थ॑ नि॒र्दिवः॑ ।

सृ॒जा म॒स्त्वती॑र॒वं जी॒वध॑न्या इ॒मा अ॒पोऽर्च॑न्ननु॒ स्वरा॒ज्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॑ दो॒धतः॑ सा॒नुं वज्रे॑ण ही॒ळितः॑ ।

अ॒भि॒क्रम्या॑व॒ जिघ्र॑ते॒ऽपः॑ स॒र्माय॑ चो॒दय॑न्न॒र्च॑न्ननु॒ स्वरा॒ज्यम् ॥ ५ ॥ २९ ॥

स । त्वा । अ॒म॒दत् । दृषा । म॒दः । सोमः । श्येनऽआ॑भृतः । सु॒तः । येन । वृ॒त्रं ।

निः । अ॒त्ऽभ्यः । ज॒घन्थ॑ । व॒ज्रिन् । ओज॑सा । अ॒र्चन् । अनु॑ । स्वऽरा॒ज्यं ॥ २ ॥

म । इ॒हि । अ॒भि । इ॒हि । धृ॒ष्णु॒हि । न । ते । वज्रः । नि । यँ॒सते॑ । इन्द्रं । नृ॒म्णं ।

हि । ते । शवः । ह॒नः । वृ॒त्रं । जयाः । अ॒पः । अ॒र्चन् । अनु॑ । स्वऽरा॒ज्यं ॥ ३ ॥

निः । इन्द्रं । भू॒म्याः । अ॒धि । वृ॒त्रं । ज॒घन्थ॑ । निः । दि॒वः । सृ॒ज । म॒स्त्वतीः ।

वं । जी॒वध॑न्याः । इ॒माः । अ॒पः । अ॒र्चन् । अनु॑ । स्वऽरा॒ज्यं ॥ ४ ॥ इन्द्रः ।

इन्द्रं । दो॒धतः॑ । सा॒नुं । वज्रे॑ण । ही॒ळितः॑ । अ॒भिऽक्रम्य॑ । अ॒व । जिघ्र॑ते ।

ऽपः । स॒र्माय॑ । चो॒दय॑न् । अ॒र्चन् । अनु॑ । स्वऽरा॒ज्यं ॥ ५ ॥ २९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ३१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ८०

अभिष्टने ते अद्रिषो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टां चित्तव मन्यव इन्द्रं वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्यां परः ।

तस्मिन्वृष्णमुत ऋतुं देवा ओजांसि सं दधुर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥

यामथर्वा मनुषिता दध्यङ् धियसन्त ।

तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्रं उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अभिऽस्तने । ते । अद्रिऽवः । यत् । स्थाः । जगत् । च । रेजते । त्वष्टां ।

चित् । तव । मन्यव । इन्द्रं । वेविज्यते । भिया । अर्चन् । अनुं । स्वऽराज्यं ॥ १४ ॥

नहि । नु । यात् । अधिऽमसि । इन्द्रं । कः । वीर्यां । परः । तस्मिन् । वृष्णं ।

उत । ऋतुं । देवाः । ओजांसि । सं । दधुः । अर्चन् । अनुं । स्वऽराज्यं ॥ १५ ॥

या । अथर्वा । मनुः । पिता । दध्यङ् । धियं । अन्त । तस्मिन् । ब्रह्माणि ।

पूर्वऽथां । इन्द्रं । उक्था । सं । अग्मत । अर्चन् । अनुं । स्वऽराज्यं ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ८१ ॥ र्हृगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ पक्तिरुच्छन्दः ॥

॥ ८१ ॥ इन्द्रो सदाय वावृधे शर्वसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषृतेसभै हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरिं पराददिः ।

असि दभ्रस्य चिद्रुधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरिं ते वसुं ॥ २ ॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।

युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥

क्रत्वा महौ अन्तुष्वयं भीम आ वावृधे शर्वः ।

श्रिय ऋष्व उपाकयोनि शिषी हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥

आ पशौ पार्थिवं रजो वद्वधे रोचना दिवि ।

न त्वावाँ इन्द्र क्रध्न न जानो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन्द्रः । सदाय । वावृधे । शर्वसे । वृत्रहा । नृभिः । तं । इत् । महत्सुं ।  
 आजिषुं । उत । ई । अर्भै । हवामहे । सः । वाजेषु । प्र । नः । अविषत् ॥ १ ॥  
 असि । हि । वीर । सेन्यः । असि । भूरिं । पराऽददिः । असि । दभ्रस्य । चिन् ।  
 रुधः । यजमानाय । शिक्षसि । सुन्वते । भूरिं । ते । वसुं ॥ २ ॥ यत् ।  
 यदुदीरते । आजयः । धृष्णवे । धीयते । धना । युक्ष्वा । मदच्युता । हरी इति ।  
 कं । वसौ । दधः । अस्मान् । इन्द्र । वसौ । दधः ॥ ३ ॥ क्रत्वा । महान् ।  
 अन्तुष्वयं । भीमः । आ । वावृधे । शर्वः । श्रिये । ऋष्वः । उपाकयोः । नि ।  
 शिषी । हरिवान् । दधे । हस्तयोः । वज्रं । आयसम् ॥ ४ ॥ आ । पशौ ।  
 पार्थिवं । रजः । वद्वधे । रोचना । दिवि । न । त्वाऽवाँ । इन्द्र । वः ।  
 न । जानः । न । जनिष्यते । अति । विश्वं । ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

अह० १ अध्या० ६ व० २, ३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ८२

यो अ॒र्यो म॒र्त॒भो॒र्जनं॑ प॒रा॒द॒दा॒ति॑ दा॒शु॒षे ।  
इन्द्रो॑ अ॒स्मभ्यं॑ शि॒क्षतु॑ वि भ॒जा भूरि॑ ते वसु॑ भ॒क्षी॒य तव॑ रा॒ध॒सः ॥ ६ ॥  
म॒दे॒म॒दे हि॑ नो॒ द॒दि॒र्य॒था गावा॑मृ॒जु॒क्तुः ।  
सं गृ॑भा॒य पु॒रु॒ श॒तो॒भ॒या॒ह॒स्त॒या वसु॑ शि॒शी॒हि रा॒य आ भ॑र ॥ ७ ॥  
मा॒द॒य॒स्व सु॒ते स॒चा श॒व॒से शूर॑ रा॒ध॒से ।  
वि॒द्म॒हि त्वा॑ पु॒रु॒व॒सु॒मु॒प॒ का॒मा॒न्त॒स॒सृ॒ज्महे॑ऽथा॒ नो॒ऽवि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥  
ए॒ते तं इन्द्र॑ ज॒न्त॒वो वि॒श्वं पु॒ष्य॒न्ति॒ वा॒र्य॑म् ।  
अ॒न्त॒र्हि॒ ख्यो॑ ज॒ना॒ना॒म॒र्यो वेदा॑ अ॒दा॒शु॒पां॒ तेषां॑ नो॒ वेद् आ भ॑र ॥ ९ ॥ २ ॥

॥ ८२ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अन्त्या जगती ॥ शिष्टा, पक्षयः ॥

॥ ८२ ॥ उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।

यदा नः सूनृतावतः कर आदर्यासे इवोजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥

यः । अ॒र्यः । म॒र्त॒भो॒र्जनं॑ । प॒रा॒द॒दा॒ति॑ । दा॒शु॒षे । इन्द्रः । अ॒स्मभ्यं॑ ।  
शि॒क्षतु॑ । वि । भ॒जा । भूरि॑ । ते । वसु॑ । भ॒क्षी॒य । तव॑ । रा॒ध॒सः ॥ ६ ॥ म॒दे॒म॒दे ।  
हि । नः । द॒दि॒र्य॒था । गावा॑ । मृ॒जु॒क्तुः । सं । गृ॑भा॒य । पु॒रु॒ श॒ता ।  
उ॒भ॒या॒ह॒स्त॒या । वसु॑ । शि॒शी॒हि । रा॒यः । आ । भ॑र ॥ ७ ॥ मा॒द॒य॒स्व । सु॒ते ।  
स॒चा । श॒व॒से । शूर॑ । रा॒ध॒से । वि॒द्म॒हि । हि । त्वा॑ । पु॒रु॒व॒सु॒म् । उ॒प॒ । का॒मा॒न्त॒ ।  
स॒सृ॒ज्महे॑ । अ॒थ । नः । अ॒वि॒ता । भ॑व ॥ ८ ॥ ए॒ते । ते । इन्द्र॑ । ज॒न्त॒वः । वि॒श्वं ।  
पु॒ष्य॒न्ति॒ । वा॒र्य॑म् । अ॒न्तः । हि । ख्यः । ज॒ना॒नां । अ॒र्यः । वेदा॑ । अ॒दा॒शु॒पा ।  
तेषां॑ । नः । वेदः । आ । भ॑र ॥ ९ ॥ २ ॥

उपो इति । सु । शृणुहि । गिरः । मघवन् । मा । अतथाऽइव । यदा ।  
सूनृतावतः । करः । आत् । अर्यासे । इत् । योज । तु । इन्द्र । ते ।

इत ॥ १ ॥

अक्षन्मीमदन्त एव प्रिया अधूषत ।

अस्तौषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥

सुसदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।

प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि दशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥

स या तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥

युक्तस्तै अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।

तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गर्भस्त्योः ।

उत्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्जिन्तसमु पत्यामदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

अक्षन् । अमीमदन्त । हि । एवं । प्रियाः । अधूषत । अस्तौषत । स्वभानवः ।

विप्राः । नविष्ठया । मती । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ २ ॥ सुसदृशं ।

त्वा । वयं । मघवन् । वन्दिषीमहि । प्र । नूनं । पूर्णवन्धुरः । स्तुतः । याहि ।

दशान । अनु । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ३ ॥ सः । य । तं ।

वृषणं । रथं । अधि । तिष्ठाति । गोविदं । यः । पात्रं । हारियोजनं । पूर्णं ।

इन्द्र । चिकेतति । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ४ ॥ युक्तः । ते । अस्तु ।

दक्षिणः । उत । सव्यः । शतक्रतो इति शतक्रतो । तेन । जाया । उप । प्रियां ।

मन्दानः । याहि । अन्धसः । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ५ ॥ युनज्मि ।

ते । ब्रह्मणा । केशिना । हरी इति । उप । प्र । याहि । दधिषे । गर्भस्त्योः । उ ।

त्वा । सुतासः । रभसाः । अमन्दिषुः । पूषण्वान् । वज्जिन् । सं । ऊं इति ।

पत्या । अमदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ ८३. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥८३॥ अश्व॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति सु॒प्रावीरिन्द्र॑ रत्न॒रतत्रोति॑रिः ।  
 तमितृ॑णक्षि वसु॒ना भवी॑यसा सिन्धु॒मापो यथा॑भितो वि॒चेतसः॑ ॥ १ ॥  
 आपो॑ न दे॒वीरुपं॑ यन्ति हो॒त्रियं॒भवः पश्य॑न्ति वि॒तत॑ यथा रजः ।  
 प्राचै॑र्दे॒वासः प्र ण॑यन्ति दे॒व्युं ब्र॒ह्म प्रियं॑ जोषयन्ते व॒रा इ॒व ॥ २ ॥  
 अधि॑ द्वयो॒रदधा॑ उक्थ्यं १ वचो॑ यतसु॒चा मिथु॑ना या संप॒र्यतः॑ ।  
 असं॑यतो व्रते ते॒ क्षेति॑ पु॒ष्यति भ॒द्रा श॒क्तिर्यज॑मानाय सु॒न्वते ॥ ३ ॥  
 आदङ्गि॑राः प्रथ॒मं दधि॑रे वयं इ॒द्धाग्र॑यः शम्या॒ ये सु॒कृत्य॑या ।  
 सर्वे॑ प॒णेः स॒मवि॑न्दन्त भो॒र्जन॑मश्व॒वन्तं गोम॑न्त॒मा पशुं॑ नरः ॥ ४ ॥  
 यज्ञै॑रथ॒र्वा प्रथ॑मः प॒थस्त॑ते ततः॒ सूर्यो॑ व्रत॒पा वेन॑ आज॒नि ।  
 आ गा॑ आज॒दुशना॑ का॒व्यः सचा॑ यमस्य॒ जात॑ममृ॒ते यजा॑महे ॥ ५ ॥

अश्व॑वति । प्रथ॒मः । गोषु॑ । गच्छति । सु॒प्रा॒वी॒रिन्द्रः । इन्द्रः । रत्न॒रतः । तत्रो॒ति॑रिः । तं । इत् । पृ॒णक्षि॑ । वसु॒ना । भवी॑यसा । रि॒तुं । आपः । यथा । अ॒भितः । वि॒चेत॑सः ॥ १ ॥ आपः । न । दे॒वीः । उ॒पं । यन्ति । हो॒त्रियं॑ । अ॒भवः । पश्य॑न्ति । वि॒ततं॑ । यथा । रजः । प्राचैः । दे॒वारः । प्र । ण॑यन्ति । दे॒व्युं । ब्र॒ह्म । प्रियं॑ । जोष॑यन्ते । व॒राः । इ॒व ॥ २ ॥ अधि॑ । द्वयोः । अ॒दधाः । उक्थ्यं॑ । वचः । यत॑सु॒चा । मिथु॑ना । या । स॒प॒र्यतः॑ । असं॑यतः । व्रते । ते । क्षेति॑ । पु॒ष्यति । भ॒द्रा । श॒क्तिः । यज॑मानाय । सु॒न्वते ॥ ३ ॥ आत् । अङ्गि॑राः । प्रथ॑मं । दधि॑रे । वयः । इ॒द्धा॒ग्र॒यः । शम्या॑ । ये । सु॒कृत्य॑या । सर्वे॑ । प॒णेः । स॒म॒वि॒दन्त॑ । गोम॑न्तं । अश्व॒वन्तं॑ । गोम॑न्तं । आ । पशुं॑ । नरः ॥ ४ ॥ यज्ञैः । अथ॒र्वा । प्रथ॑मः । प॒थः । तते॑ । ततः॑ । सूर्यः । व्रत॒पाः । वेनः । आ । अ॒ज॒नि॑ । गाः । आज॒त् । उ॒शना॑ । का॒व्यः । सचा॑ । यमस्य॒ जातं॑ । अ॒मृ॒ते॑ ।

अष्ट० १ अध्या० ६ व० ४,२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ८४

वर्हिर्वा यत्सर्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकं पाश्चोर्षं दिवि ।

ग्रावा यत्र वर्दति काऽस्य उच्यते इन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

॥ ८४ ॥ र्हृणुजुने गोतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ आदित पर् अनुदुमः ॥

॥ ८४ ॥ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्ण गहि ।

आ त्वां पृणक्तिन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥

इन्द्रमिद्धरीं बहुतोऽप्रतिधृष्टशब्दम् ।

ऋषीणां च स्तुतीर्षं यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥

आ तिष्ठ धृत्रहृत्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरीं ।

अर्वाचीनं तु ते मनो ग्रावां कृणोतु वसुनां ॥ ३ ॥

इममिन्द्र सुतं पितृ ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारां ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

इन्द्राय नूनमर्चतोऽकथानि च ब्रवीतन ।

सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

वर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकं ।  
आऽप्रोर्षते । दिवि । ग्रावां । यत्र । वर्दति । काऽस्य । उच्यते । इन्द्रो । इन्द्रः ।  
अभिऽपित्वेषु । रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

असावि । त्वांसः । इन्द्र । ते । शविष्ठ । धृष्णो इति । आ । गहि । आ ।  
त्वा । पृणक्तु । इन्द्रियं । रजः । सूर्यः । न । रश्मिऽभिः ॥ १ ॥ इन्द्रं । इन्द्र ।  
हरीं इति । बहुतः । अप्रतिधृष्टशब्दसं । ऋषीणां । च । स्तुतीः । उप । यज्ञं । च ।  
मानुषाणा ॥ २ ॥ अर्वा । तिष्ठ । धृत्रहृत्र । रथं । युक्ता । ते । ब्रह्मणा । हरी  
इति । अर्वाचीनं । तु । ते । मनः । ग्रावां । कृणोतु । वसुनां ॥ ३ ॥ इमं । इन्द्र ।  
सुतं । पितृ । ज्येष्ठं । अमर्त्यं । मदं । शुक्रस्य । त्वा । अभि । अक्षरन् । धाराः ।  
ऋतस्य । सादने ॥ ४ ॥ इन्द्राय । नूनं । अर्चन । उच्यते । च । प्र  
सुताः । अमत्सुः । इन्दवः । ज्येष्ठं । नमस्यत । सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

नकिष्णद्रधीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

नकिष्णानुं मज्जमना नकिः स्वश्वं आनरो ॥ ६

य एक इद्विदयते वसु मतीय दाशुपे ।

ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७

कदा मतीमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८

यद्विच्छि त्वा बहुभ्य आ सुतावां आविवांसति ।

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९

स्वादोरित्था विष्णुवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ १० ॥ ६

नकिः । त्वत् । रथिऽनरः । हरी इति । यत् । इन्द्र । यच्छसे । नकिः  
 त्वा । अनुं । मज्जमना । नकिः । सुऽअश्वः । आनरो ॥ ६ ॥ यः । एकः । इत्  
 विऽदयते । वसु । मतीय । दाशुपे । ईशानः । अप्रतिऽस्कृतः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ७  
 कदा । मती । अगधरां । पदा । क्षुम्पेऽव । स्फुरत् । कदा । नः । शुश्रवत्  
 गिरः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ८ ॥ यः । चित् । हि । त्वा । बहुऽभ्यः । आ । सु  
 । आऽविवांसति । उग्रं । तत् । पत्यते । शवः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ९ ॥ स्वादोः  
 इत्था । विष्णुवतः । मध्वः । पिबन्ति । गौर्यः । याः । इन्द्रेण । सयावरीः  
 वृष्णा । मदन्ति । शोभसे । वस्वीः । अनुं । स्वऽराज्यं ॥ १० ॥ ६ ॥

ता अस्य पृशनाशुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्रयः ।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सार्यकं वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

व्रतान्यस्य सश्विरे पुराणि पूर्वचित्तये वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ १२ ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कृतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून ।

आसान्पून्त्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६ ॥

क ईपते तुज्यते को विभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।

कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे इको जनाय ॥ १७ ॥

ताः । अस्व । पृशनाशुवः । सोमं । श्रीणन्ति । पृश्रयः । प्रियाः । इन्द्रस्य ।  
 धेनवः । वज्रं । हिन्वन्ति । सार्यकं । वस्वीः । अनुं । स्वराज्यं ॥ ११ ॥ ताः ।  
 अस्य । नमसा । सहः । सपर्यन्ति । प्रचेतसः । व्रतानि । अस्य । सश्विरे ।  
 पुराणि । पूर्वचित्तये । वस्वीः । अनुं । स्वराज्यं ॥ १२ ॥ इन्द्रः । दधीचः ।  
 अस्थभिः । वृत्राणि । अप्रतिष्कृतः । जघान । नवतीः । नव ॥ १३ ॥ इच्छन् ।  
 श्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपश्रितं । तत् । विदन् । शर्यणावति ॥ १४ ॥  
 अत्र । अहं । गोः । अमन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीच्यं । इत्था । चन्द्रमसः ।  
 गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥

कः । अद्य । युङ्क्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमीवतः । भामिनः ।  
 दुर्हणायून । आसान्पून्त्स्वसः । मयोभून्य । यः । एषां । भृत्यां ।  
 मृणधत् । सः । जीवात् ॥ १६ ॥ कः । ईपते । तुज्यते । कः । विभाय । कः ।  
 मंसते । सन्तं । इन्द्रं । कः । अन्ति । कः । कस्तोकाय । कः । इभाय । इत । राये ।  
 अधि । ब्रवत् । तन्वे । कः । जनाय ॥ १७ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व ८,९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ८०

को अग्निमींः हविषां घृतेन स्तुचा यजाता ऋतुभिर्भुवेभिः ।

कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्दितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥

मा ते राधांसि मा तं ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।

विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वदन्ति चर्षणिष्य आ ॥ २० ॥ ८ ॥ १३ ॥

॥ चथुर्दशोऽनुवाकः ॥

॥ ८५ ॥ रहृगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ महतो देवता ॥ पञ्चमी, द्वादश्या त्रिष्टुभौ ॥ शिष्टो जगत्

॥ ८६ ॥ प्र ये शुभ्रन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंसस ।

रोदसी हि मस्तश्चक्रिरे वृथे मर्दन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥

त उक्षितासो महिमान्माशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।

अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

कः । अग्नि । इष्टे । हविषां । घृतेन । स्तुचा । यजाते । ऋतुऽभिः ।  
भुवेभिः । कस्मै । देवाः । आ । वहान् । आशु । होम । कः । मंसते । वीति-  
होत्रः । सुदेवः ॥ १८ ॥ त्वं । अंग । प्र । शंसिषः । देवः । शविष्ठ ।  
मर्त्यम् । न । त्वत् । अन्यः । मघवन् । अस्ति । मर्दिता । इंद्र । ब्रवीमि । ते ।  
वचः ॥ १९ ॥ मा । ते । राधांसि । मा । ते । ऊतयः । वसो इति ।  
अस्मान् । कदा । चन । दभन् । विश्वा । च । नः । उपऽमिमीहि । मानुष ।  
वदन्ति । चर्षणिऽभ्यः । आ ॥ २० ॥ ८ ॥

प्र । ये । शुभ्रन्ते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः ।  
दः । रोदसी इति । हि । मस्तः । चक्रिरे । वृथे । मर्दन्ति । वीराः ।  
विदथेषु । घृष्वयः ॥ १ ॥ ते । उक्षितासः । महिमानं । आशत । दिवि । रुद्रासः ।  
अधि । चक्रिरे । सदः । अर्चतः । अर्कं । जनयन्तः । इन्द्रियं । अधि । श्रियः ।  
दधिरे । पृश्निमातरः ॥ २ ॥



गोमानरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मन्तः ।  
 यथन्ते विश्वमभिस्मातिनमप वत्सानीषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥  
 वे ये भ्राजन्ते सुमंखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।  
 मनाञ्जुवो यन्मरुतो रथेष्वामृषत्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥  
 यद्यथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।  
 स्नात्पस्य वि ष्यन्ति धाराश्चसैवोदभिर्व्युन्दन्ति भूमं ॥ ५ ॥  
 आ वो वहन्तु सप्तयो रघुप्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।  
 सीदता वहिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अंधसः ॥ ६ ॥ ९ ॥  
 तैश्वर्यन्त स्वनेवसो महित्वना नाकं तस्थुरु चक्रिरे सदः ।  
 विष्णुर्यद्वावृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधिं वहिषिं प्रिये ॥ ७ ॥

गोमानरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिभिः । तनूषु । शुभ्राः । दधिरे । विरुक्मन्तः ।  
 यथे । विश्वं । अभिस्मातिनं । अपं । वत्सानी । एषां । अनुं । रीयते ।  
 घृतं ॥ ३ ॥ वि । ये । भ्राजन्ते । सुमंखासः । ऋष्टिभिः । प्रच्यावयन्तः ।  
 अच्युता । चित् । ओजसा । मनःञ्जुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ ।  
 मनाञ्जुवः । पृषतीः । अयुग्ध्वं ॥ ४ ॥ प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वं ।  
 वाजे । अद्रिं । मरुतः । रंहयन्तः । उत । अरुपस्यं । वि । स्यन्ति । धाराः ।  
 व्युन्दन्ति । उदभिः । वि । उदन्ति । भूमं ॥ ५ ॥ आ । वः । वहन्तु । सप्तयः ।  
 रघुप्यदः । रघुपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुभिः । सीदता । आ । वहिः ।  
 उ । वः । सदः । घृतं । मादयध्वं । मरुतः । मध्वः । अंधसः ॥ ६ ॥ ९ ॥  
 तै । श्वर्यन्त । स्वनेवसः । महित्वना । आ । नाकं । तस्थुः । उरु ।  
 चक्रिरे । सदः । विष्णुः । यत् । ह । आवृषत् । वृषणं । मदच्युतं । वयः । न ।  
 सीदन् । अधिं । वहिषिं । प्रिये ॥ ७ ॥

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १४ सू० ८९

शूरां ह्वेयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।  
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंहशो नरः ॥ ८ ॥  
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।  
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामाञ्जदर्णवम् ॥ ९ ॥  
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादहाणं चिद्विभिदुर्वि पर्वतम् ।  
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥  
जिह्वं नुनुद्रेऽवतं तथा दिशासिञ्चनुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।  
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥  
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधानूनि दाशुपं यच्छताधि ।  
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयि नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥ १० ॥

शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।  
भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः । राजानःऽइव । त्वेषसंहशः । नरः ॥ ८ ॥  
त्वष्टा । यत् । वज्रं । सुऽकृतं । हिरण्ययं । सहस्रऽभृष्टिं । सुऽधपाः । अवर्तयत् ।  
धत्ते । इंद्रः । नरि । अपांसि । कर्तवे । अहन् । वृत्रं । निः । अपां । औञ्जत् ।  
अर्णवं ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । अवतं । ते । ओजसा । दादहाणं । चिद्वि ।  
विभिदुः । वि । पर्वतं । धमन्तः । वाणं । मरुतः । सुऽदानवः । मदे । सोमस्य ।  
रण्यानि । चक्रिरे ॥ १० ॥ जिह्वं । नुनुद्रे । अवतं । तथा । दिशा । असिञ्चन् ।  
नुत्सं । गोतमाय । तृष्णजे । आ । गच्छन्ति । ई । अवसा । चित्रभानवः ।  
यं । विप्रस्य । तर्पयन्त । धामऽभिः ॥ ११ ॥ या । वः । शर्म । शशमानाय ।  
सन्ति । त्रिऽधानूनि । दाशुपं । यच्छत । अधि । अस्मभ्यं । तानि । मरुतः ।  
वि । यन्त । रयि । नः । धत्त । वृषणः । सुऽवीरं ॥ १२ ॥ १० ॥

॥ ८६ ॥ र्हृगणुत्रो नोत्तम ऋषिः ॥ मस्तो देवता ॥ नायत्री छन्द ॥

॥ ८६ ॥ मरु॒तो यस्य॒ हि क्षय॑े पा॒था दि॒वो वि॒मह॑सः ।

स सु॒गो॒पात॑मो॒ जनः॑ ॥ १ ॥

प॒र्श्वो यज्ञ॑वा॒हसो॒ विप्र॑स्य वा म॒तीना॑म् ।

मरु॑तः शृ॒णुता॑ ह॒वम् ॥ २ ॥

उ॒त वा॒ यस्य॑ वा॒जिनो॑ऽनु॒ विप्र॑द॒त्क्षत॑ ।

स ग॒न्ता॒ गोम॑ति ब्र॒जे ॥ ३ ॥

अ॒स्य वी॒रस्य॑ ब॒र्हिषि॑ सु॒तः सोमो॑ दि॒विष्टि॑षु ।

उ॒क्तं म॑द॒श्च श॑स्यते ॥ ४ ॥

अ॒स्य श्रौ॑ष॒न्त्वा ध्रु॒वो वि॒श्वा य॑ज्ञ॒र्षणी॑र॒भि ।

सू॒रं चि॒त्स॒सृषी॑रिषः ॥ ५ ॥ ११ ॥

मरु॑तः । यस्य॑ । हि । क्षय॑े । पा॒थ । दि॒वः । वि॒मह॑स । सः । सु॒गो॒पा॒त॑मः । जनः॑ ॥ १ ॥ यज्ञैः । वा । य॒ज्ञ॒वा॒ह॒सः । विप्र॑स्य । वा । म॒तीनां॑ । मरु॑तः । शृ॒णुता॑ ह॒वम् ॥ २ ॥ उ॒त । वा । यस्य॑ । वा॒जिनः॑ । अनु॑ । विप्र॑ । द॒त्क्षत॑ । सः । ग॒न्ता॑ । गोम॑ति । ब्र॒जे ॥ ३ ॥ अ॒स्य । वी॒रस्य॑ । ब॒र्हिषि॑ । सु॒तः । सोमः॑ । दि॒विष्टि॑षु । उ॒क्तं । म॑दः । च । श॒स्य॒ते ॥ ४ ॥ अ॒स्य । ध्रु॑वः । वा । वि॒श्वाः । यः । य॒ज्ञ॒र्षणीः॑ । अ॒भि । सू॒रं । चि॒त् । स॒सृषीः॑ । रः ॥ ५ ॥ ११ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू ८६

पूर्वाभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ।

अर्वाभिश्चर्पणीनाम् ॥ ६ ॥

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः ।

यस्य पर्यासि पर्वथ ॥ ७ ॥

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।

विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।

विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥

गृहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणाम् ।

ज्योतिष्कर्ता यद्भ्रमसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पूर्वाभिः । हि । ददाशिम । शरत्भिः । मरुतः । वयं । अर्वाभिः । चर्पणीनां

॥ ६ ॥ सुभगः । सः । प्रयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यः । यस्य । पर्यासि ।

पर्वथ ॥ ७ ॥ शशमानस्य । वा । नरः । स्वेदस्य । सत्यशवसः । विद ।

त्य । वेनतः ॥ ८ ॥ यूयं । तत् । सत्यशवसः । आविः । कर्त । महित्वना ।

विध्यता । विद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥ गृहता । गुह्यं । तमः । वि । यात । विश्वं ।

अत्रिणं । ज्योतिः । कर्त । यत् । भ्रमसि ॥ १० ॥ १२ ॥

॥ ८७ ॥ रहृगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ८७ ॥ प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविधुरा ऋजीषिणः ।

जुष्टमासो वृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्त्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥

उपहरेषु यदचिध्वं ययिं वयं इव मरुतः केन चित्पथा ।

श्रोतन्ति कोशा उप वो रथेषु घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

प्रपामज्जेषु विधुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद् युञ्जते शुभे ।

ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूर्तयः ॥ ३ ॥

स हि स्वस्तृषः इवो युवां गणा इ या ईशानस्तविषीभिरादृतः ।

असि सत्य ऋणयावाऽनेघोऽया धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

पितुः प्रत्नस्य जग्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगानि चक्षसा ।

यदीमिन्द्रं शम्यृकाण आशतादिनामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

प्रत्वक्षसः । प्रतवसः । विरप्शिनः । अनानताः । अविधुराः । ऋजीषिणः ।

जुष्टमासः । वृतमासः । अञ्जिभिः । वि । आनज्रे । के । चित् । उस्त्राःऽव ।

स्तृभिः ॥ १ ॥ उपहरेषु । यत् । अचिध्वं । ययिं । वयंऽइव । मरुतः । केन ।

चित् । पथा । श्रोतन्ति । कोशाः । उप । वः । रथेषु । आ । घृतं । उक्षत ।

मधुवर्णं । अर्चते ॥ २ ॥ प्र । एषां । अज्जेषु । विधुराऽइव । रेजते । भूमिः ।

यामेषु । यत् । ह । युञ्जते । शुभे । ते । क्रीळयः । धुनयः । भ्राजदृष्टयः ।

स्वयं । महित्वं । पनयन्त । धूर्तयः ॥ ३ ॥ सः । हि । स्वस्तृषः । पृषाऽअथः ।

इयां । गणाः । अया । ईशानः । तविषीभिः । आऽवृत्तः । असि । सत्यः । ऋणयावा

अनेघः । अरयः । धियः । प्रऽअविता । अथ । वृषा । गणः ॥ ४ ॥ पितुः । प्रत्नस्य ।

जग्मना । वदामसि । सोमस्य । जिह्वा । प्र । जिगानि । चक्षसा । यत् । इ । इन्द्रं ।

यानि । शम्यृकाणः । आशत । आत् । इत् । नामानि । यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ८८

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्भिः सुखादयः ।  
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

॥ ८८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ प्रस्तारपत्नी । छन्दः ॥

॥ ८८ ॥ आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपणैः ।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पसता सुमायाः ॥ १ ॥

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितिवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूमं ॥ २ ॥

श्रिये कं वो अथि तनूषु वाशीमेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युन्मासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्या च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अकैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबेध्यं ॥ ४ ॥

श्रियसे । कं । भानुभिः । सं । मिमिक्षिरे । ते । रश्मिभिः । ते । ऋक्भिः ।  
सुखादयः । ते । वाशीमन्तः । इष्मिणः । अभीरवः । विद्रे । प्रियस्य । मारुतस्य  
धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

आ । विद्युन्मद्भिः । मरुतः । सुअकैः । रथेभिः । यात । ऋष्टिमद्भिः ।  
अश्वपणैः । आ । वर्षिष्ठया । नः । इषा । वयोः । न । पसत । सुमायाः ॥ १ ॥  
ते । अरुणेभिः । वरं । आ । पिशङ्गैः । शुभे । कं । यान्ति । रथतूर्भिः । अश्वैः ।  
रुक्मः । न । चित्रः । स्वधितिवान् । पव्या । रथस्य । जङ्घनन्त । भूमं ॥ २ ॥  
श्रिये । कं । वो । अथि । तनूषु । वाशीः । मेधा । वना । न । कृणवन्ते । ऊर्ध्वा ।  
भ्यं । कं । मरुतः । सुजाताः । तुविद्युन्मासः । धनयन्ते । अद्रिम् ॥ ३ ॥  
अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः । इमां । धियं । वार्कार्या । च ।  
देवी । ब्रह्म । कृण्वन्तः । गोतमासः । अकैः । ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । उत्सधिं । पिबेध्यं ॥ ४ ॥

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।

पठयन्तिरप्यचक्रानग्र्येदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।

अस्तोभयदृथांसांमनु स्वधां गर्भस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

॥ ८९ ॥ रहूणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ८९ ॥ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदन्धासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवा नो यथा सदमिदृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥

देवानां भद्रा सुमतिः ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥

तान्पूर्वया निविदां ह्रमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् ।

अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

एतत् । त्यत् । न । योजनं । अचेति । सस्वः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः ।  
 वः । पठयन् । तिरप्यचक्रान् । अयंऽदंष्ट्रान् । विऽधावतः । वराहून् ॥ ५ ॥ एषा ।  
 स्या । वो । मरुतः । अनुभर्त्री । प्रति । स्तोभति । वाघतः । न । वाणी । अस्तो-  
 भयत् । दृथां । आसां । अनु । स्वधा । गर्भस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

आ । नः । भद्राः । क्रतवः । यन्तु । विश्वतः । अदन्धासः । अपरिऽतासः ।  
 उद्भिदः । देवाः । नः । यथा । सदं । इत् । दृधे । असन् । अपरऽआयुवः ।  
 रक्षितारः । दिवेऽदिवे ॥ १ ॥ देवानां । भद्रा । सुमतिः । ऋजूयतां । देवानां ।  
 रातिः । अभि । नः । नि । वर्ततां । देवानां । सख्यं । उप । सेदिम । वयं ।  
 देवाः । नः । आयुः । प्र । तिरन्तु । जीवसे ॥ २ ॥ तान् । पूर्वया । निऽविदां ।  
 ह्रमहे । वयं । भगं । मित्रं । अदितिं । दक्षं । अस्त्रिधं । अर्यमणं । वरुणं । सोमं ।  
 अश्विना । सरस्वती । नः । सुभगा । मयः । करत् ॥ ३ ॥

तन्नो वातां मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तन्पिता द्यौः ।  
 ताङ्गवाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥  
 तमीशानं जगतस्तरुषस्पतिं धियस्त्रिन्वसवंसे हूमहे वयम् ।  
 पूषा नो यथा वेदंमामसंहृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥  
 स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।  
 स्वस्ति नस्ताक्षर्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥  
 पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंस्यावानो विदथेषु जग्मयः ।  
 अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥  
 भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।  
 स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

तत् । नः । वातः । मयःऽभु । वातु । भेषजं । तत् । माता । पृथिवी  
 तत् । पिता । द्यौः । तत् । वावाणः । सोमऽसुतः । मयःऽभुवः । तत् । अश्विना  
 शृणुतं । धिष्ण्या । युवं ॥ ४ ॥ तं । ईशानं । जगतः । तस्थुयः । पतिं । धि  
 ऽजिन्वं । अवंसे । हूमहे । वयं । पूषा । नः । यथा । वेदंसा । असत् । वृधे  
 रक्षिता । पायुः । अदब्धः । स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्वस्ति । नः । इन्द्रः । वृद्धऽश्रवाः । स्वस्ति । नः । पूषा । विश्ववेदाः  
 स्वस्ति । नः । ताक्षर्यः । अरिष्टनेमिः । स्वस्ति । नः । बृहस्पतिः । दधातु ॥ ६  
 पृषत्ऽश्वाः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । शुभंस्यावानः । विदथेषु । जग्मयः । अग्नि  
 ऽजिह्वाः । मनवः । सूरऽचक्षसः । विश्वे । नः । देवाः । अवसा । आ । गमन्  
 ॥ ७ ॥ भद्रं । कर्णेभिः । शृणुयाम । देवाः । भद्रं । पश्येम । अक्षभिः  
 यजत्राः । स्थिरैः । अङ्गैः । तुस्तुऽवांसः । तनूभिः । वि । अशेम । देवहितं  
 यत् । आयुः ॥ ८ ॥



अष्ट० १ अध्या० ६ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ९०

गतमिह शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ९० ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ गायत्री अन्त्यापुष्ट् छ दः ॥

॥ ९० ॥ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।

अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः ।

व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः ।

बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥

शतं । इत् । नु । शरदः । अन्ति । देवाः । यत्र । नः । चक्र । जरसं ।  
तनूनां । पुत्रासः । यत्र । पितरः । भवन्ति । मा । नः । मध्या । रीरिषत ।  
आयुः । गन्तोः ॥ ९ ॥ अदितिः । द्यौः । अदितिः । अन्तरिक्षं । अदितिः । माता ।  
सः । पिता । सः । पुत्रः । विश्वे । देवाः । अदितिः । पञ्च । जनाः । अदितिः ।  
जातं । अदितिः । जनित्वं ॥ १० ॥ १६ ॥

ऋजुनीती । नः । वरुणः । मित्रः । नयतु । विद्वान् । अर्यमा । देवैः ।  
सजोषाः ॥ १ ॥ ते । हि । वस्वः । वसवानाः । ते । अप्रमूराः । महोभिः ।  
व्रता । रक्षन्ते । विश्वाहा ॥ २ ॥ ते । अस्मभ्यं । शर्म । यंसन् । अमृताः ।  
मर्त्येभ्यः । बाधमानाः । अप । द्विषः ॥ ३ ॥

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १७, १८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सूक्त० ९०

वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः ।

पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥

उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेव्यावः ।

कर्तो नः स्वस्तिमर्तः ॥ ५ ॥ १७ ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।

माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्धमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्रमः ॥ ९ ॥ १८ ॥

वि । नः । पथः । सुविताय । चियन्तु । इंद्रः । मरुतः । पूषा । भगः ।  
वन्द्यासः ॥ ४ ॥ उत । नः । धियः । गोऽअग्राः । पूषन् । विष्णो इति । एवज्यावः ।  
कर्तो । नः । स्वस्तिऽमर्तः ॥ ५ ॥ १७ ॥ मधु । वाताः । ऋतऽयते । मधु ।  
क्षरन्ति । सिन्धवः । माध्वीः । नः । सन्तु । ओषधीः ॥ ६ ॥ मधु । नक्तं । उत ।  
उपसः । मधुऽमत् । पार्थिवं । रजः । मधु । द्यौः । अस्तु । नः । पिता ॥ ७ ॥  
मधुमान् । नः । वनस्पतिः । मधुमान् । अस्तु । सूर्यः । माध्वीः । गावः ।  
भवन्तु । नः ॥ ८ ॥ शं । नः । मित्रः । शं । वरुणः । शं । नः । भवतु । अर्धमा ।  
शं । नः । इंद्रः । बृहस्पतिः । शं । नः । विष्णुः । उरुऽक्रमः ॥ ९ ॥ १८ ॥

॥ ११ ॥ सृगामुत्रो नोत्तम ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ११ ॥ त्वं सोम प्र चिकित्तो मनीषा त्वं रजिष्ठं अनुं नेषि पन्थाम् ।

नव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नसंजन्त धीराः ॥ १ ॥

त्वं सोम ऋतुभिः सुऋतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विववेदाः ।

त्वं वृषा वृषत्वेभिर्गृह्णित्वा द्युम्नेभिर्दुम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम् ।

शुचिष्ठमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥

ग ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोपधीष्वप्सु ।

नेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळ्नाजन्तसोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।

त्वं भद्रो असि ऋतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

त्वं । सोम । प्र । चिकित्तः । मनीषा । त्वं । रजिष्ठं । अनुं । नेषि ।

पन्थाम् । त्वं । प्रणीती । पितरः । नः । इन्दो इति । देवेषु । रत्नं । अभजन्त ।

धीराः ॥ १ ॥ त्वं । सोम । ऋतुभिः । सुऋतुः । भूः । त्वं । दक्षैः । सुदक्षः ।

विववेदाः । त्वं । वृषा । वृषत्वेभिः । गृह्णित्वा । द्युम्नेभिः । द्युम्नी । अभवः ।

नृचक्षाः ॥ २ ॥ राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहद् । गभीरं । तव ।

सोम । धाम् । शुचिः । त्वं । असि । प्रियोः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमा-

स्य । अमि । सोम ॥ ३ ॥ या । ते । धामानि । दिवि । या । पृथिव्यां । या ।

पर्वतेषु । सोमना । अप्सु । तेभिः । नः । विश्वैः । सुमनाः । अहेळ्ना ।

राज्ञे । सोम । प्रति । हव्या । गृभाय ॥ ४ ॥ त्वं । सोम । अमि । सत्-

पतिः । त्वं । राजा । उत । वृत्रहा । त्वं । भद्रः । अमि । ऋतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २० ]

ऋग्वेदः

[ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ९१ ]

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं नमरामहे ।

प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यूनं ऋतायते ।

दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षां राजन्नघायतः ।

न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ८ ॥

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।

ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागंहि ।

सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥ ॥ २० ॥

---

त्वं । च । सोम । नः । वशः । जीवातुं । न । मरामहे । प्रियस्तोत्रः ।  
वनस्पतिः ॥ ६ ॥ त्वं । सोम । महे । भगं । त्वं । यूनं । ऋतायते । दक्षं ।

दधासि । जीवसे ॥ ७ ॥ त्वं । नः । सोम । विश्वतः । रक्षां । राजन् । अघ-  
। न । रिष्येत् । त्वावतः । सखा ॥ ८ ॥ सोम । याः । ते । मयोभुवः ।

ऊतयः । सन्ति । दाशुषे । ताभिः । नः । अविता । भव ॥ ९ ॥ इमं । यज्ञं ।

इदं । वचः । जुजुषाणः । उपआगंहि । सोम । त्वं । नः । वृधे । भव ॥ १० ॥ २० ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ९१

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।

सुमृळीको न आ विंश ॥ ११ ॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः ।

सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।

मर्यं इव स्व ओक्वये ॥ १३ ॥

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः ।

तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥

उरुप्या णो अभिशंस्तेः सोम नि पाह्यंहंसः ।

सखा सुशेवं एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

सोमं । गीःऽभि । त्वा । वयं । वर्धयामः । वचःऽविदः । सुमृळीकः ।  
नः । आ । विंश ॥ ११ ॥ गयऽस्फानः । अमीवऽहा । वसुवित् । पुष्टिवर्धनः ।  
सुमित्रः । सोम । नः । भव ॥ १२ ॥ सोमं । ररन्धि । नः । हृदि । गावः ।  
न । यवसेषु । आ । मर्यःऽइव । रवे । ओक्वये ॥ १३ ॥ यः । सोम । सख्ये ।  
तव । ररणन् । देव । मर्त्यः । तं । दक्षः । सचते । कविः ॥ १४ ॥ उरुप्य ।  
नः । अभिशंस्तेः । सोम । नि । पाहि । अंहंसः । सखा । सुशेवंः । एधि ।  
नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ११

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।

भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥

आ प्यायस्व मदिन्तस सोम विश्वेभिरंशुभिः ।

भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

सं ते पयांसि ससु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिपाहः ।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि विष्व ॥ १८ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वां परिसूरस्तु यज्ञम् ।

गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तभाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।

सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य ।  
संङ्गथे ॥ १६ ॥ आ । प्यायस्व । मदिन्तसम । सोम । विश्वेभिः । अंशुभिः ।  
भव । नः । सुश्रवःस्तमः । सखा । वृधे ॥ १७ ॥ सं । ते । पयांसि । सं ।  
जं इति । यन्तु । वाजाः । सं । वृष्ण्यानि । अभिमातिऽसहः । आप्यायमानः ।  
अमृताय । सोम । दिवि । श्रवांसि । उत्तमानि । विष्व ॥ १८ ॥ या ते  
धामानि । हविषा । यजति । ता । ते । विश्वां । परिसूरः । अस्तु । यज्ञं । गय-  
स्फानः । प्रतरणः । सुवीरः । अवीरहा । प्र । चर । सोम । दुर्यान् ॥ १९ ॥  
धेनुं । सोमः । अर्वन्तं । भाशुं । सोमः । वीरं । कर्मण्यं । ददाति ।  
सादन्यं । विदथ्यं । सभेयं । पितृश्रवणं । यः । ददाशत् । अस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

अपा॑हं॒ यु॒त्सु॒ पृ॒त॒ना॒सु॒ प॒भि॑ स्व॒र्षा॒म॒प्सां॑ वृ॒ज॒न॒स्य॑ गो॒पाम् ।

भ॒रे॒षु॒जां॑ सु॒क्षि॒तिं सु॒श्र॒व॒सं॑ ज॒य॒न्तं॑ त्वा॒मनु॑ म॒दे॒म सो॒म ॥ २१ ॥

त्वमि॒मा ओ॒ष॒धीः॑ सो॒म वि॒श्वा॒स्त्व॒म॒पो अ॒ज॒न॒य॒स्त्वं गाः॑ ।

त्व॒मा त॑त॒न्यो॒र्व॒न्त॒रि॒क्षं॑ त्वं ज्योति॑षा॒ वि त॒मो॑ व॒व॒र्थ ॥ २२ ॥

दे॒वे॒न नो॑ म॒न॒सा दे॒व सो॒म रा॒यो भा॒गं स॒ह॒सा॒व॒न्न॒भि यु॒ध्य ।

मा त्वा त॑न॒दी॒शि॒षे वी॒र्य॑स्यो॒भयै॑भ्यः प्र चि॑क्षि॒त्सा ग॒वि॒ष्टौ ॥ २३ ॥ २३ ॥

॥ ९२ ॥ रू॒ग॒ण॒पु॒त्रो गो॒त॒न ऋ॒षि ॥ उ॒पा दे॒वता ॥ ज॒गती॑ छ॒न्द ॥

॥ ९२ ॥ ए॒ता उ॒ त्या उ॒ष॒सः॑ के॒तु॒म॒क्र॒त॒ पूर्वे॑ अ॒र्द्धे॑ र॒ज॒सो भा॒नु॒म॒ञ्ज॒ते ।

नि॒ऋ॒ण्वा॒ना आ॒र्यु॑धा॒नी॒व धृ॒ष्ण॒वः॒ प्र॒ति गा॒वोऽर्षी॑र्यन्ति मा॒तरः॑ ॥ १ ॥

अपा॑हं । यु॒त्सु॒ । पृ॒त॒ना॒सु॒ । प॒भि॑ । स्वः॒ऽसां॑ । अ॒प्सां॑ । वृ॒ज॒न॒स्य॑ । गो॒पा ।

भ॒रे॒षु॒जां॑ । सु॒क्षि॒तिं । सु॒श्र॒व॒सं॑ । ज॒य॒न्तं॑ । त्वा । अ॒नु॑ । म॒दे॒म । सो॒म ॥ २१ ॥

त्वं । म॒माः । ओ॒ष॒धीः॑ । सो॒म । वि॒श्वाः॑ । त्वं । अ॒पः॑ । अ॒ज॒न॒यः॑ । त्वं । गाः॑ ।

हं । जा । त॑त॒न्य॑ । उ॒र्व॒न्त॒रि॒क्षं॑ । त्वं । ज्योति॑षा । वि । त॒मः॑ । व॒व॒र्थ

॥ २२ ॥ दे॒वे॒न । नः॑ । म॒न॒सा । दे॒व । सो॒म । रा॒योः॑ । भा॒गं । स॒ह॒सा॒व॒न् ।

भि॑ । यु॒ध्य॑ । मा । त्वा॒ । आ । त॒न॒त् । ई॒शि॒षे । वी॒र्य॑स्य । उ॒भयै॑भ्यः । प्र ।

चि॑क्षि॒त्सा । गो॒ऽऽष्टौ॑ ॥ २३ ॥ २३ ॥

ए॒ता॒ । उ॒ञ्ज॑ति । त्याः । उ॒ष॒सः॑ । के॒तुं॑ । अ॒क्र॒त॒ । पूर्वे॑ । अ॒र्द्धे॑ । र॒ज॒सः॑ ।

ऽर्द्धे॑ । अ॒ञ्ज॑ते । निःऽऋ॒ण्वा॒नाः । आ॒र्यु॑धा॒निऽऽ॒व॒ । धृ॒ष्ण॒वः॑ । प्र॒ति॑ । गा॒वः॑ ।

ऽऽऽः । प्र॒ति॑ । मा॒तरः॑ ॥ १ ॥

उदपसन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।  
 अक्रन्नुषासां वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥  
 अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।  
 इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥  
 अधि पेशांसि वपते नृत्तूरिवापोर्णुते वक्षं उस्त्रेव वर्जहम् ।  
 ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युर्षा आवर्तमः ॥ ४ ॥  
 प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।  
 स्वरं न पेशो विदथेष्यञ्जिचित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥  
 अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।  
 श्रिये छन्दो न रमयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥

उत् । अपसन् । अरुणाः । भानवः । वृथा । सुऽआयुजः । अरुषीः । गाः ।  
 अयुक्षत । अक्रन् । उपसः । वयुनानि । पूर्वऽथा । रुशन्तं । भानुं । अरुषीः ।  
 अशिश्रयुः ॥ २ ॥ अर्चन्ति । नारीः । अपसः । न । विष्टिऽभिः । समानेन ।  
 योजनेन । आ । पराऽवतः । इषं । वहन्तीः । सुऽकृते । सुऽदानवे । विश्वां ।  
 इत् । अहं । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥ अधि । पेशांसि । वपते । नृत्तूरिऽव ।  
 अपं । उर्णुते । वक्षः । उस्त्राऽव । वर्जहं । ज्योतिः । विश्वस्मै । भुवनाय ।  
 कृण्वती । गावः । न । व्रजं । वि । उषाः । आवरित्यावः । तमः ॥ ४ ॥ प्रति ।  
 अर्चिः । रुशं । अस्याः । अदर्शि । वि । तिष्ठते । बाधते । कृष्णं । अभ्वं ।  
 स्वरं । न । पेशः । विदथेषु । अंजन् । चित्रं । दिवः । दुहिता । भानुं ।  
 श्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥ अतारिष्म । तमसः । पारं । अरय । उषाः । उच्छन्ती ।  
 कृणोति । श्रिये । छन्दः । न । रमयते । विऽभाती । सुऽप्रतीका ।  
 सौमनसाय । अजीगरिति ॥ ६ ॥



भास्वती नेत्री सृष्टानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।  
 प्रजावतो नृवतो अश्वद्बुध्यान् उषो गोअग्रान् उष मासि वाजान् ॥ ७ ॥  
 उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।  
 सुदंसा अशसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥  
 विश्वानि देवी भुवनाभिक्षयं प्रतीची चक्षुर्विया वि भाति ।  
 विश्वं जीवं चरसें बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥  
 पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुभमाना ।  
 श्वघ्नीं कृत्विजं जामिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥ २५ ॥  
 व्यर्षती दिवो अन्तां अबोधयस्व स्वसारं सनुतयुयोति ।  
 प्रमिनती तनुष्यां युगानि योषां जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥

भास्वती । नेत्री । सृष्टानां । दिवः । स्तवे । दुहिता । गोतमेभिः । प्रजावतः ।  
 नृवतः । अश्वद्बुध्यान् । उषः । गोअग्रान् । उष । मासि । वाजान् ॥ ७ ॥  
 उषः । तं । अश्या । यशसं । सुवीरं । दासप्रवर्गं । रयिं । अश्वबुध्यं । सुदं-  
 सा । अशसा । या । विभासि । वाजप्रसूता । सुभगे । बृहन्तं ॥ ८ ॥  
 विश्वानि । देवी । भुवना । अभिक्षयं । प्रतीची । चक्षुः । उर्विया । वि । भाति ।  
 विश्वं । जीवं । चरसें । बोधयन्ती । विश्वस्य । वाचं । अविदत् । मनायोः ॥ ९ ॥  
 पुनःपुनः । जायमाना । पुराणी । समानं । वर्णं । अभि । शुभमाना । श्वघ्नीं ।  
 कृत्वः । विजः । जामिनाना । मर्तस्य । देवी । जरयन्ती । आयुः ॥ १० ॥ २५ ॥  
 व्यर्षती । दिवः । अन्तान् । अबोधि । अषं । स्वसारं । सनुतः । युयोति ।  
 प्रमिनती । तनुष्यां । युगानि । योषां । जारस्य । चक्षसा । वि । भाति ॥ ११ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २६, २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० १२

पशून् चित्रा सुभगां प्रथाना सिन्धुर्न क्षोदं उर्विया व्यश्वैत् ।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥

उषो अद्येह गोमत्यश्वीवति विभावरि ।

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

युक्त्वा हि वाजिनीवत्यश्वी अद्यारुणां उपः ।

अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमदस्रा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥

पशून् । न । चित्रा । सुभगां । प्रथाना । सिन्धुः । न । क्षोदं । उर्विया । वि ।

अश्वैत् । अमिनती । दैव्यानि । व्रतानि । सूर्यस्य । चेति । रश्मिभिः ।

दृशाना ॥ १२ ॥ उपः । तत् । चित्रं । आ । भर । अस्मभ्यं । वाजिनीवति ।

येन । तोकं । च । तनयं । च । धामहे ॥ १३ ॥ उपः । अद्य । इह । गोमति ।

अश्वीवति । विभावरि । रेवत् । अस्मे इति । वि । उच्छ । सूनृतावति ॥ १४ ॥

युक्त्वा । हि । वाजिनीवति । अश्वान् । अद्य । अरुणान् । उपः । अथ । नः ।

सौभगानि । आ । वह ॥ १५ ॥ २६ ॥ अश्विना । वर्तिः । अस्मत् ।

गोमत् । दस्रा । हिरण्यवत् । अर्वाक् । रथं । समनसा । नि । यच्छतं ॥ १६ ॥

गठ० १ अध्या० ६ व० २७.२८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सूक्त० ९३ ]

याचिन्धा श्लोचना दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न जजे वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

एह देवा मयोभुवा दत्ता हिरण्यवर्तनी ।

उष्वुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

॥ ९३ ॥ अग्नीषोमादिना अग्ने ॥ अग्नीषोमौ देवता ॥ आरस्तुच यातुभः ।

॥ ९३ ॥ अग्नीषोमादिसं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाह्विष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्रवत् ॥ ३ ॥

यौ । इत्था । श्लोकं । आ । दिवः । ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः । आ । नः ।

जजे । वरतं । अश्विना । युवं ॥ १७ ॥ आ । इह । देवा । मयःऽभुवा । दत्ता ।

हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । उषःऽवुधः । वहन्तु । सोमऽपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

अग्नीषोमौ । इमं । सु । मे । शृणुतं । वृषणा । हवम् । प्रति । सुऽउक्तानि ।

हर्यतं । भवतं । दाशुषे । मयः ॥ १ ॥ अग्नीषोमा । यः । अद्य । वां । इदं । वचः ।

सपर्यति । तस्मै । धत्तं । सुऽवीर्यं । गवां । पोषं । सुऽश्व्यम् ॥ २ ॥ अग्नीषोमा ।

यः । आहुतिं । यः । वां । दाशात् । ह्विःऽकृतिं । सः । प्रऽजयां । सुऽवीर्यं ।

विश्वं । आयुः । वि । अश्रवत् ॥ ३ ॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतसवसं पणिं गाः ।  
 अवातिरतं वृसंयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥  
 युवमेतानि दिवि रोचनान्वग्निश्च सोम सकृत् अयत्तम् ।  
 युवं सिन्धूरभिः शस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥  
 आन्यं दिवो सातरिष्वां जभारासंभ्रादन्धं परि श्येनो अद्रैः ।  
 अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥ २८ ॥  
 अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।  
 सुशर्माणा अवसा हि भूतमथा यत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥  
 यो अग्नीषोमां हविषां सपर्यादैवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।  
 तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय अहि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

अग्नीषोमा । चेति । तत् । वीर्यं । वा । यत् । अमुष्णीतं । अवसं । पणिं । गाः ।  
 अवं । अतिरतं । वृसंयस्य । शेषः । अविन्दतं । ज्योतिः । एकं । बहुभ्यः ॥ ४ ॥  
 युवं । एतानि । दिवि । रोचनानि । अग्निः । च । सोम । सकृत् । इति । सकृत् ।  
 अयत्तं । युवं । सिन्धून् । अभिः शस्तेः । अवद्यात् । अग्नीषोमौ । अमुञ्चतं । गृभी-  
 तान् ॥ ५ ॥ आ । अन्यं । दिवः । सातरिष्वां । जभार । अमंभ्रात् । अन्यं ।  
 परि । श्येनः । अद्रैः । अग्नीषोमा । ब्रह्मणा । वावृधाना । उरुं । यज्ञाय । चक्रथुः ।  
 ऊं इति । लोकं ॥ ६ ॥ २८ ॥ अग्नीषोमा । हविषः । प्रस्थितस्य । वीतं । हर्यतं ।  
 वृषणा । जुषेथाम् । सुशर्माणा । सुऽअवसा । हि । भूतं । अथ । यत्तं ।  
 यजमानाय । शं । योः ॥ ७ ॥ यः । अग्नीषोमां । हविषां । सपर्यात् । देवद्रीचां ।  
 मनसा । यः । घृतेन । तस्य । व्रतं । रक्षतं । पातं । अंहसः । विशे । जनाय ।  
 अहि । शर्म । यच्छतं ॥ ८ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २९, ३० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० ९४

अग्नीषोमा सवेदसा सहृती वनतं गिरं ।

सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति ।

तस्मै दीदयतं वृहत् ॥ १० ॥

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।

आ यातमुषं नः सचां ॥ ११ ॥

अग्नीषोमा पिष्टतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्त्रियां हव्यसूदः ।

अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥ २९ ॥ १४ ॥

## ॥ पञ्चदशोऽनुवाकः ॥

॥ ९४ ॥ ऋषि - कुत्स आनिरस ॥ देवता - अपि छन्द, - जगति, त्रिष्टुप् ।

॥ ९४ ॥ इमं स्तोममर्हते जातयेदसे रथंश्च सं महेसा मनीषया ।

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यन्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

अग्नीषोमा । सवेदसा । सहृती इति सहृती । वनतं । गिरं । सं । देवत्रा ।

बभूवथुः ॥ ९ ॥ अग्नीषोमौ । अनेन । वां । यः । वां । घृतेन । दाशति । तस्मै ।

दीदयतं । वृहत् ॥ १० ॥ अग्नीषोमौ । विमानि । नः । युवं । हव्या । जुजोषतं ।

आ । यातं । उषं । नः । सचां ॥ ११ ॥ अग्नीषोमा । पिष्टतं । अर्वतः । नः ।

आ । प्यायन्ता । उस्त्रियां । हव्यसूदः । अस्मे इति । बलानि । मघवत्सु ।

धत्तं । कृणुतं । नः । अध्वरं । श्रुष्टिमन्तं ॥ १२ ॥ २९ ॥ १४ ॥

इमं । स्तोमं । अर्हते । जातयेदसे । रथंश्च । सं । महेसा । मनीषया ।

भद्रा । हि । नः । प्रमतिः । अस्य । संसद्यन्नें । अनेन । सख्ये । मा । रिषामा ।

वयं । तव ॥ १ ॥

यस्मै त्वसायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुर्वीर्यम् ।  
 स तूताव नैनसश्रोत्यंहतिरग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥  
 शक्रेभ्यं त्वा समिधं साधया धियरत्वे देवा हविर्दन्त्याहुतम् ।  
 त्वमादित्याँ आ वह् तान्छुर्हसस्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥  
 भराभेधसं कृणवासा हवीषिं ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।  
 जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥  
 विजां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपञ्च यदुत चतुष्पदक्षुभिः ।  
 चित्रः प्रकेत उपसोँ सहाँ अस्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥ ३० ॥  
 त्वमध्वर्युत्त होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोतां जनुपां पुरोहितः ।  
 विश्वाँ विद्वाँ आत्विज्या धीर पुष्यस्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

यस्मै । त्वं । आऽयजसे । सः । साधति । अनर्वा । क्षेति । दधते । सुर्वीर्यं ।  
 सः । तूताव । न । एनं । अश्रोति । अंहतिः । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम । वयं ।  
 तव ॥ २ ॥ शक्रेभ्यं । त्वा । संऽमिधं । साधयं । धियः । त्वे इति । देवाः । हविः ।  
 अदन्ति । आऽहुतं । त्वं । आदित्यान् । आ । वह् । तान् । हि । उगमसि ।  
 अग्नें । सख्ये । मा रिषाम । वयं । तव ॥ ३ ॥ भराभे । अध्वं । कृणवासा ।  
 हवीषिं । ते । चितयन्तः । पर्वणाऽपर्वणा । वयं । जीवातवे । प्रऽनरं । साधय ।  
 धियः । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ४ ॥ विजां । गोपाः ।  
 अस्य । चरन्ति । जन्तवः । द्विऽपञ्च । च । यत् । उत । चतुऽष्पत् । अक्षुभिः ।  
 चित्रः । प्रऽकेतः । उपसोँ । महान् । असि । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम । वयं ।  
 तव ॥ ५ ॥ ३० ॥ त्वं । अध्वर्युः । उत्त । होता । अभि । पूर्व्यः । प्रऽशास्ता ।  
 होता । जनुपां । पुरऽहितः । विश्वाँ । विद्वान् । आत्विज्या । धीर । पुष्यसि ।  
 । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ६ ॥

आ० १ अध्या० ६ व० ३१, ३२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० ९४

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।  
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तवं ॥ ७ ॥  
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।  
तदा जानीतोत पुण्यता वचोऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तवं ॥ ८ ॥  
वर्धेदुःशंसां अपं दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।  
अथ यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तवं ॥ ९ ॥  
पदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातज्जुता वृषभस्येव ते रवः ।  
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तवं ॥ १० ॥ ३१ ॥  
अथ स्वनादुत विभ्युः पत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।  
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तवं ॥ ११ ॥

यः । विश्वतः । सुप्रतीकः । सदृङ् । असि । दूरे । चित् । सन् । तळित्ऽङ् ।  
जति । रोचसे । रात्र्याः । चित् । अंधः । अति । देव । पश्यसि । अग्नें ।  
सख्ये । मा । रिषाम् । वयं । तवं ॥ ७ ॥ पूर्वः । देवाः । भवतु । सुन्वतः ।  
रथः । अस्माकं । शंसः । अभि । अस्तु । दुःऽऽयः । तत् । आ । जानीत ।  
उत । पुण्यत । वचः । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम् । वयं । तवं ॥ ८ ॥ वर्धेः ।  
दुःऽऽशंसान् । अपं । दुःऽऽयः । जहि । दूरे । वा । ये । अति । वा । के । चित् ।  
अत्रिणः । अथ । यज्ञाय । गृणते । सुगं । कृधि । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम् ।  
वयं । तवं ॥ ९ ॥ यत् । अयुक्थाः । अरुषा । रोहिता । रथे । वातज्जुता ।  
वृषभस्येऽव । ते । रवः । आन् । इन्वसि । वनिनः । धूमकेतुना । अग्नें । सख्ये ।  
मा । रिषाम् । वयं । तवं ॥ १० ॥ ३१ ॥ अथ । स्वनात् । उत । विभ्युः ।  
पत्रिणः । द्रप्साः । यत् । ते । यवसादः । वि । अन्धिरन् । सुगं । तत् ।  
ते । तावकेभ्यः । रथेभ्यः । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम् । वयं तवं ॥ ११ ॥

अष्ट० १ अध्या० ६ व० ३२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १४

अयं मित्रस्य वरुणस्य धार्यसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।  
मृळा सु नो भूत्वेपां मनः पुनरग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥  
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुध्वरे ।  
शर्मन्तरयाम तव सप्रथरतमेऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥  
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।  
दधांसि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥  
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।  
यं भद्रेण शवसा चोदयांसि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥  
स त्वमग्ने सौभगत्वस्यं विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।  
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत ब्यौः ॥ १६ ॥ ३२ ॥ ६ ॥

अयं । मित्रस्य । वरुणस्य । धार्यसे । अवयातां । मरुतां । हेळः । अद्भुतः ।  
मृळ । सु । नः । भूत् । एपां । मनः । पुनः । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम ।  
वयं । तव ॥ १२ ॥ देवः । देवानां । असि । मित्रः । अद्भुतः । वसुः । वसूनां ।  
असि । चारुः । अध्वरे । शर्मन् । रयाम । तव । सप्रथःऽतमे । अग्नें । सख्ये ।  
मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १३ ॥ तत् । ते । भद्रं । यत् । संसिद्धः । स्वे ।  
दमे । सोमऽआहुतः । जरसे । मृळयत्तमः । दधांसि । रत्नं । द्रविणं । च ।  
दाशुषे । अग्नें । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १४ ॥ यस्मै । त्वं ।  
सुऽद्रविणः । ददाशः । अनागाःऽत्वं । अदिते । सर्वऽताता । यं । भद्रेण । शवसा ।  
चोदयांसि । प्रजाऽवता । राधसा । ते । स्याम ॥ १५ ॥ सः । त्वं । अग्ने ।  
सौभगऽत्वस्यं । विद्वान् । अस्माकं । आयुः । प्र । तिर । इह । देव । तत् । नः ।  
मित्रः । वरुणः । गमहन्तां । आदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत ।  
॥ १६ ॥ ३२ ॥ ॥ ६ ॥

इति प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ १५ ॥ ऋषि-आगिरन कुन्त । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १५ ॥ हे विश्वे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददशे सुवर्चाः ॥ १ ॥

दशेभ्यं त्वष्टृर्जनयन्त गर्भसतन्द्रासो युवतयो विभृञ्चम् ।

निगानीकं स्वयंशसं जनेषु विरोचमानं परिषीं नयन्ति ॥ २ ॥

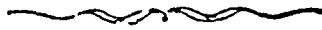
त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य ससुद्र एकं दिव्येकसप्सु ।

पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानासुतून्शासुति दधावनुष्टु ॥ ३ ॥

क इमं वो निष्पसा चिकेत वत्सो नातृजनयत स्वधाभिः ।

वहीनां गर्भो अपसांस्पदमन्वहान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



हे इति । विश्वे इति विश्वे । चरतः । स्वर्थे इति सुअर्थे । अन्याऽअन्या ।

वन्त । उप । धापयेते इति । हरिः । अन्यस्यां । भवति । स्वधाऽवान् । शुक्रः ।

अन्यस्यां । ददशे । सुवर्चाः ॥ १ ॥ दशे । इमं । त्वष्टुः । जनयन्त । गर्भे ।

अतन्द्रासः । युवतयः । विभृञ्चम् । निगनीकं । स्वयंशसं । जनेषु । विरोच-

मानं । परिषीं । नयन्ति ॥ २ ॥ त्रीणि । जानां । परिभूषन्ति । अस्य ।

सुसुद्र । एकं । दिव्ये । एकं । अप्सु । पूर्वामनु । प्र । दिशं । पार्थिवानां ।

सुत । प्रशासन् । वि । दधौ । अनुष्टु ॥ ३ ॥ कः । इमं । वः । निष्पं ।

श । चिकेत । वत्सः । नातृः । जनयत । स्वधाभिः । वहीनां । गर्भः । अपसां ।

स्पदवान् । मन्वान् । कविः । निश्चरति । स्वधाऽवान् ॥ ४ ॥

उ॒दि॒त्वां॑ ब॒र्धते॑ चा॒श्रानु॑ जि॒ह्मना॑मु॒र्ध्वः स्व॒यंशा॑ उप॒स्थे ।  
 उ॒भे॒ स्व॒ष्टुभिः॑ य॒जुर्जा॒यमाना॑ प्र॒तीची॑ सि॒ंहं प्र॒ति जोष॑येते ॥ ५ ॥ १ ॥  
 उ॒भे॒ प्र॒ति उ॒भे॒ मेने॑ न॒ मेने॑ गा॒वो न॒ वा॒श्रा उ॒प तस्थु॑रेवैः ।  
 उ॒प॒क्ष्मा॑रं॒ दश॑पति॒श्रवा॑ञ्जन्ति॒ यं दक्षि॑ण॒तो ह॒विभिः॑ ॥ ६ ॥  
 उ॒च्यते॑ वि॒तिव॑ वा॒हू उ॒भे क्षि॒त्रौ य॒तते॑ भी॒म ऋ॒जन् ।  
 उ॒च्यते॑ च॒त्वार॑णां॒ पातृ॑भ्यो॒ वस॑ना॒ जहा॑ति ॥ ७ ॥  
 त्वे॒पं रू॒पं कु॒णुत॑ उ॒रारं॑ स॒सृ॒चात् स॒दने॑ गो॒भिर॑द्भिः ।  
 क॒वि॒बुधं॑ परि॒ सृष्ट॑यते॒ भीः सा॑ दे॒वता॑ता॒ समि॑तिर्व॒भूव ॥ ८ ॥  
 उ॒र ते॑ ज॒यः प॑र्येति॒ बुधं॑ वि॒रोच॑मानं॒ गृह्ण॑तय॒ धामं॑ ।  
 वि॒श्वेभ्यः॑ स्व॒यंशो॑भिरि॒होऽद्व॑येभिः॒ पा॒युभिः॑ पा॒त्य॒स्मान् ॥ ९ ॥

उ॒दि॒त्वाः॑ । ब॒र्ध॒ते । चा॒श्रः । आ॒मु । जि॒ह्मना॑ । उ॒र्ध्वः । स्व॒यंशाः । उप॒स्थे । उ॒भे॒ इति॑ ।  
 उ॒भे॒ । प्र॒ति॒ । उ॒भे॒ । जा॒य॒मानान् । प्र॒ती॒ची॒ इति॑ । सि॒ंहं । प्र॒ति॒ । जो॒ष॒येते॒ इति॑ ॥ ५ ॥ १ ॥  
 उ॒भे॒ इति॑ । मे॒ने॒ इति॑ । जो॒ष॒येते॒ इति॑ । न । मे॒ने॒ इति॑ । गा॒वः । न । वा॒श्राः ।  
 उ॒प॒ । द॒श॒ । ए॒वैः । सः । द॒क्षा॒णा । द॒श॑पतिः । व॒भूव॑ । अ॒ञ्ज॒ति॒ । यं ।  
 उ॒च्य॑ते । वि॒तिः॒ । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते ॥ ६ ॥ उ॒न् । अ॒य॒गी॒ति॒ । स॒वि॒ता॒ऽर्ध॑व । वा॒हू इति॑ । उ॒भे॒  
 उ॒च्य॑ते । वि॒ति॒ । य॒त॒ते॒ । भी॒म । ऋ॒जन् । उ॒न् । शु॒क्रं । अ॒त्कं॑ । अ॒ज॒ते॒ ।  
 जि॒ह्मना॑ । न॒वा । पा॒तृ॒भ्यः॑ । व॒स॒ना॒ । ज॒हा॒ति ॥ ७ ॥ त्वे॒पं । रू॒पं । कु॒णु॒त॑ ।  
 उ॒र॒ारं॑ । यत् । स॒सृ॒चात् । स॒द॒ने॒ । गो॒भिः॑ । अ॒त्स॑भिः । क॒विः । बु॒धं ।  
 उ॒र॒ । ते॒ । ज॒यः॑ । प॑रि॒ । सृ॒ष्ट॑यते॒ । भीः । सा॑ । दे॒व॒ता॑ता॒ । सं॒सृ॑तिः । व॒भूव॑ ॥ ८ ॥ उ॒र॒ । ते॒ ।  
 उ॒र॒ । ते॒ । प॑रि॒ । य॒ति॒ । बु॒धं॑ । वि॒रो॒च॑मानं॒ । गृ॒ह्ण॑तय॒ । धामं॑ । वि॒श्वे॑भिः ।  
 उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते । उ॒च्य॑ते ॥ ९ ॥

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।

विद्ध्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसृषु ॥ १० ॥

एवा अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

॥ १६ ॥ ऋषिः-आङ्गिरसः कृत्स्न । देवता शुद्धोमि । त्रिष्टुप्-छन्दः ॥

॥ १६ ॥ स प्रवथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधंस विश्वा ।

आपश्च मित्रं धिषणां च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनेयन्मनूनाम् ।

विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥

तमीळन प्रथमं यज्ञसार्धं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।

ऊर्जः पुत्रं भरतं सुप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

धन्वन् । स्रोतः । कृणुते । गातुं । ऊर्मिं । शुक्रैः । ऊर्मिऽभिः । अभि । नक्षति ।  
 क्षा । विश्वा । सनानि । जठरेषु । धत्ते । अंतः । नवासु । चरति । प्रसृषु ॥ १० ॥  
 एव । नः । अग्ने । संऽर्धा । वृधानः । रेवत् । पावक । श्रवसे । वि । भाहि ।  
 तन् । नः । मित्रः । वरुणः । महन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत  
 द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

सः । प्रवऽर्धा । सहसा । जायमानः । सद्यः । काव्यानि । वद् । अधत् ।  
 विश्वा । आपः । च । मित्रं । धिषणां । च । साधन् । देवाः । अग्निं । धारयन् ।  
 द्रविणऽदा ॥ १ ॥ सः । पूर्वया । निऽविदा । कव्यता । आयोः । इमाः । प्रऽजाः ।  
 अजनेयन् । मनूना । विवस्वता । चक्षसा । द्यां । अपः । च । देवाः । अग्निं ।  
 धारयन् । द्रविणऽदां ॥ २ ॥ तं । इळत । प्रथमं । यज्ञसार्धं । विशः । आरीः ।  
 अऽर्जुं । ऋञ्जसानं । ऊर्जः । पुत्रं । भरतं । सुप्रदानुं । देवाः । अग्निं ।  
 धारयन् । द्रविणऽदां ॥ ३ ॥

अष्ट० ? अध्या० ७ व० २,४ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० ? अनु० ? सू० ९६

स मातरिश्वां पुरुवारं पुष्टिर्विदद्गतुं तनयाय स्ववित् ।  
विशां गोपा जनिता रोदस्यो देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥  
नक्तोपासा वर्णामामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।  
द्यावाक्षामां रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ५ ॥ ३ ॥  
रापो बुध्नः संगर्भनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।  
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥  
नृ च पुरा च सदनं रयीणां जातरयं च जायमानस्य च क्षाम् ।  
सतश्च गोपां भवतश्च भूरैर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥  
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्यं द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।  
द्रविणोदा वीरवती जिषं नो द्रविणोदा रांसते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

सः मातरिश्वां । पुरुवारंऽपुष्टिः । विदत् । गातुं । तनयाय । स्वऽवित् । विशा ।  
गोपाः । जनिता । रोदस्योः । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणऽदा ॥ ४ ॥  
नक्तोपसां । वर्ण । आमेम्याने इत्याऽमेम्याने । धापयेते इति । शिशुं । एकं । समीची  
इति संऽऽची । द्यावाक्षामां । रुक्मः । अन्तः । वि । भाति । देवाः । अग्निं । धारयन् ।  
द्रविणऽदा ॥ ५ ॥ ३ ॥ रायः । बुध्नः । संगर्भनः । वसूनां । यज्ञस्यं । केतुः ।  
मन्मसाधनः । वेरिति वेः । अमृतऽन्त्वं । रक्षमाणासः । एनं । देवाः । अग्निं । धारयन् ।  
द्रविणऽदा ॥ ६ ॥ नु । च । पुरा । च । सदनं । रयीणा । जातरयं । च ।  
जायमानस्य । च । क्षा । मतः । च । गोपां । भवतः । च । भूरैः । देवा । अग्निं ।  
धारयन् । द्रविणऽदा ॥ ७ ॥ द्रविणऽदाः । द्रविणसः । तुरस्यं । द्रविणऽदाः ।  
सनरस्य । प्र । यंसत् । द्रविणऽदाः । वीरवती । इषं । नः । द्रविणऽदाः ।  
। दीर्घ । आयुः ॥ ८ ॥

ए॒वा नो॑ अ॒ग्ने स॒मिधा॑ वृ॒धा॒नो रे॒वत्पा॑व॒क॒ श्रव॑से॒ वि भा॑हि ।  
 तन्नो॑ मि॒त्रो व॑रु॒णो म॑म॒हन्ता॑मादि॒तिः सि॒न्धुः पृ॒थि॒वी उ॒त द्यौः ॥ १ ॥ ४ ॥

॥ ९७ ॥ ऋषि-अजिरस कुस । देवता-शुद्धोनि । छन्द-गायत्री ।

॥ ९७ ॥ अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒म॒ग्ने शु॒शु॒ग्ध्या र॒यि॒म् ।  
 अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒मम् ॥ १ ॥

स॒क्षेत्रि॒या लु॑गा॒तु॒या व॑त्स॒या च॑ य॒जाम॑हे ।  
 अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒मम् ॥ २ ॥

प्र य॑द्दि॒ष्ट ए॒पां प्रा॒स्माका॑सश्च॒ सूर॑यः ।  
 अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒मम् ॥ ३ ॥

प्र य॑त्तं अ॒ग्ने सूर॑यो जा॒यैम॑हि॒ प्र ते॑ व॒यम् ।  
 अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒मम् ॥ ४ ॥

प्र य॑द॒ग्नेः स॑र॒स्वतो॑ वि॒द्यतो॑ य॒न्ति॒ भान॑वः ।  
 अ॒पं नः॑ शो॒शु॑च॒द्घ॒मम् ॥ ५ ॥

ए॒वा॒ नः॑ । अ॒ग्ने । सं॒स॒र्था । वृ॒धा॒नः । रे॒वत् । पा॒व॒कः । श्रव॑से । वि । भा॒हि ।  
 तन्नो॑ । मि॒त्रः । व॑रु॒णः । म॑म॒हन्ता॑ । अदि॒तिः । सि॒न्धुः । पृ॒थि॒वी । उ॒त ।  
 द्यौः ॥ १ ॥ ४ ॥

अ॒पं । नः॑ । शो॒शु॑च॒त् । अ॒यं । अ॒ग्ने । शु॒शु॒ग्धि । आ । र॒यि॒म् । अ॒पं । नः॑ ।  
 शो॒शु॑च॒त् अ॒यं ॥ १ ॥ सु॒क्षेत्रि॒या । लु॑गा॒तु॒या । व॑त्स॒या । च॒ । य॒जाम॑हे । अ॒पं ।  
 नः॑ । शो॒शु॑च॒त् । अ॒यं ॥ २ ॥ प्र । यत् । भ॑दि॒ष्टः । ए॒पा । प्र । अ॒स्माका॑सः ।  
 सूर॑यः । अ॒पं । नः॑ । शो॒शु॑च॒त् । अ॒यं ॥ ३ ॥ प्र । यत् । ते॑ । अ॒ग्ने ।  
 य॑त्तं । जा॒यैम॑हि । प्र । ते॑ । व॒यम् । अ॒पं । नः॑ । शो॒शु॑च॒त् । अ॒यं ॥ ४ ॥ प्र ।  
 य॑द॒ग्नेः । स॑र॒स्वतः । वि॒द्यतः॑ । य॒न्ति॒ । भान॑वः । अ॒पं । नः॑ । शो॒शु॑च॒त् ।  
 अ॒यं ॥ ५ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० ५,६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अतु० १५ सू० ६८

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।

अप नः शोशुचद्घम् ॥ ६ ॥

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।

अप नः शोशुचद्घम् ॥ ७ ॥

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।

अप नः शोशुचद्घम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ १८ ॥ ऋषिः-आङ्गिरसः कुत्स । देवता-अग्नि । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १८ ॥ वैश्वानरस्यं सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवन्नानामभिःश्रीः ।

इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।

वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥

त्वं । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि । अप । नः । शोशुचत् ।  
अघं ॥ ६ ॥ द्विषः । नः । विश्वतःऽमुख । अति । नावाऽइव । पारय । अप ।  
नः । शोशुचत् । अघं ॥ ७ ॥ सः । नः । सिन्धुऽइव । नावया । अति । पर्ष ।  
स्वस्तये । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ८ ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्यं । सुऽमतौ । स्याम । राजा । हि । कं । भुवन्नानां । अभिऽश्रीः ।  
इतः । जातः । विश्वं । इदं । वि । चष्टे । वैश्वानरः । यतते । सूर्येण ॥ १ ॥  
पृष्टः । दिवि । पृष्टः । अग्निः । पृथिव्यां । पृष्टः । विश्वाः । ओषधीः । आ । विवेश ।  
वैश्वानरः । सहसा । पृष्टः । अग्निः । सः । नः । दिवा । सः । रिषः । पातु ।

३ ॥

१० १ अध्या० ७ व० ६, ७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १९.

श्वानर तव तत्सत्यमस्तवस्मान्नायौ सपदानः सञ्चन्तान् ।

शो मित्रो वहणो मामहन्तासदितिः रिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥ ३ ॥ ३ ॥

॥ १९ ॥ ऋषि-नरीचिउत्र, वसवमयि । देवता-वसुदेवि. उत-त्रिष्टुप् ॥

॥ १९ ॥ जानवेदसे सुनवाप सोमसरातीयतो नि दंहाति देदः ।

नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेद लिन्धुं दुरिनासतिः ॥ १ ॥ ७ ॥

१०० ॥ ऋषय-सामिनि । देवता-वसुदेवि । उत-त्रिष्टुप् । दंहाति-दंहाति । दंहाति-दंहाति । दंहाति-दंहाति ।

॥१००॥ स यो वृषा वृष्ण्यैसिः सभोक्ता सही दिवः पृथिव्याश्च सन्तान् ।

पितृत्वा हव्यो भरेषु सस्तवाज्ञो भवत्विन्द्रं जती ॥ १ ॥

पयानासः सूर्यस्येव दानो भरेभरे वृष्रा शुष्णो भरित ।

पितृमः सखिभिः स्वेभिरैवं सस्तवाज्ञो भवत्विन्द्रं जती ॥ २ ॥

अष्ट० ? अध्या० ७ व० ८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १५ सूक्त० १०

दिवो न यस्य रेतसो दुर्घानाः पन्थासो यन्ति शत्रुसार्परीनाः ।

तरङ्घैषाः सासहिः पौंस्यैभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं जती ॥ ३ ॥

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूदृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।

ऋग्भिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं जती ॥ ४ ॥

स सनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋग्वा नृपाह्यं सासह्यं अमित्रान् ।

सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वेन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं जती ॥ ५ ॥ ८ ॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकैभिर्नृभिः सूर्ये सनत् ।

अस्मिन्नहन्तसत्पतिः पुरुद्वृतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं जती ॥ ६ ॥

तमृतयो रणयञ्छुरंसातो तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।

स विश्वस्य कर्णस्येहा एकां मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं जती ॥ ७ ॥

दिवः । न । यस्य । रेतसः । दुर्घानाः । पन्थासः । यन्ति । शत्रुसा । अपरिजृताः ।  
तरङ्घैषाः । सासहिः । पौंस्यैभिः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । जती ॥ ३ ॥  
सः । अङ्गिरःऽभिः । अङ्गिरःऽतमः । भूत् । वृषा । वृषऽभिः । सखिऽभिः । सखा  
सन् । ऋग्भिऽभिः । ऋग्मी । गातुऽभिः । ज्येष्ठः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः  
जती ॥ ४ ॥ सः । सनुऽभिः । न । रुद्रेभिः । ऋग्वा । नृऽसह्यं । समदान  
अमित्रान् । सऽनीळेभिः । श्रवस्यानि । तूर्वेन् । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ज  
॥ ५ ॥ ८ ॥ सः । मन्युऽमीः । समदनस्य । कर्ता । अस्माकैभिः । नृभिः  
सूर्ये । सनत् । अरिमन् । अहन् । सत्ऽपतिः । पुरुद्वृतः । मरुत्वान् । नः  
भवतु । इंद्रः । जती ॥ ६ ॥ तं । जतयः । रणयन् । शुरंसातो । तं क्षेमस्य  
क्षितयः । कृण्वत । त्राम् । सः । विश्वस्य । कर्णस्येहा । ईशे । एकाः । मरुत्वान्  
भवतु । इंद्रः । जती ॥ ७ ॥



तमप्सन्त शवस उन्सयेषु नरो नरसवसे तं धनाय ।

सो अन्ये चित्तमसि ज्योतिर्विदन्सस्त्वान्नो भवत्विन्द्रं जनी ॥ ८ ॥

स सन्वेनं यमनि ब्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।

स कीरिणां चित्सनिता धनानि सस्त्वान्नो भवत्विन्द्रं जनी ॥ ९ ॥

स ग्रामेभिः सनिता स रधेभिर्विदे विद्वान्भिः कृष्टिभिर्नर्व्य ।

स पांस्येभिरभिभूरशर्त्तर्त्तस्त्वान्नो भवत्विन्द्रं जनी ॥ १० ॥ ९ ॥

स जानिभिर्धत्समजानि सीद्धहेऽजामिजेर्वा पुरुहूत एधेः ।

अपां तोन्नस्य ननयत्य जेषे सस्त्वान्नो भवत्विन्द्रं जनी ॥ ११ ॥

स वज्रमृहस्युहा भीम उग्रः सहस्रयेनाः शननीय ऋम्वा ।

वर्षापो न शवसा पाञ्चजन्यो सस्त्वान्नो भवत्विन्द्रं जनी ॥ १२ ॥

तं । अप्सन्त । शवसः । उन्सयेषु । नरः । नरं । अस्वसे । तं । धनाय ।

सो । अन्ये । चित् । तमसि । ज्योतिः । विन्द्रं । सस्त्वान् । नः । भवतु । इंद्रः ।

जनी ॥ ८ ॥ नः । सन्वेनं । यमनि । ब्राधतः । चित् । नः । दक्षिणे ।

संगृभीता । कृतानि । सः । कीरिणां । चित् । सनिता । धनानि । सस्त्वान् ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १०, ११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०८

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेपो र्वथः शिमीवान् ।  
तं संचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १३ ॥  
यस्याजस्रं शर्वसा मानसुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।  
स पारिषत्कतुंभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १४ ॥  
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शर्वसो अन्तमापुः ।  
स प्ररिका त्वक्षसा क्षमो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १५ ॥ १० ।  
रोहिच्छयावा सुमदंशुर्लामीशुक्षा राय ऋज्रा श्वस्य ।  
वृषण्वन्तं विभ्रंती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विशु ॥ १६ ॥  
एतत्त्यत्तं इन्द्र वृष्णं उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।  
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुरार्धाः ॥ १७ ॥

तस्य । वज्रः । क्रन्दति । स्मत् । स्वःऽसाः । दिवः । न । त्वेपः । र्वथः ।  
शिमीज्वान् । तं । संचन्ते । सनयः । तं । धनानि । मरुत्वान् । नः । भवतु  
इन्द्रः । ऊती ॥ १३ ॥ यस्य । अजस्रं । शर्वसा । मानं । उक्थं । परिभुजत्  
रोदसी इति । विश्वतः । सीम् । सः । पारिषत् । कतुंऽभिः । मंदसानः । मरुत्वान्  
नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ॥ १४ ॥ न । यस्य । देवाः । देवता । न । मर्ताः  
आपः । चन । शर्वसः । अन्तं । आपुः । सः । प्ररिका । त्वक्षसा । क्षमः  
दिवः । च । मरुत्वान् । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ॥ १५ ॥ १० ॥ रोहित्  
श्यावा । सुमत्ऽअंशुः । ललामीः । शुक्षा । राये । ऋज्राऽअश्वस्य । वृषण्वन्तं  
विभ्रंती । धूःऽसुरथं । मन्द्रा । चिकेत । नाहुषीषु । विशु ॥ १६ ॥ एतत् । त्यः  
ते । इन्द्र । वृष्णे । उक्थं । वार्षागिराः । अभि । गृणन्ति । राधः । ऋज्राऽअश्वः  
। अम्बरीषः । सहदेवः । भयमानः । सुरार्धाः ॥ १७ ॥

अग्निम्यंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि वर्हीत् ।

नक्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्ये सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥

विश्वान्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।

द्रो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

॥ १०१ ॥ ऋषि-अग्निरस कुन्त । देवता-इन्द्र । छन्दः-जगती त्रिष्टुम् ॥

॥ १०१ ॥ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहंनृजिष्वना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ १ ॥

विश्वसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिष्टुमव्रतम् ।

द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ २ ॥

यथावापृथिवी पौंस्यं मह्यस्यं व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।

इन्द्रस्य सिन्धवः सश्र्वति व्रतं मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ ३ ॥

दस्यूत् । सिम्यूत् । च । पुरुहूतः । एवैः । हत्वा । पृथिव्यां । शर्वा ।

नि । वर्हीत् । सनत् । क्षेत्रं । सखिभिः । श्वित्न्येभिः । सनत् । सूर्ये । सनत् ।

पः । सुवज्रः ॥ १८ ॥ विश्वान् । इन्द्रः । अधिवक्ता । नः । अस्तु । अपरि-

हृताः । सनुयाम् । वाजं । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्ताम् । अदितिः ।

सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

प्र । मन्दिने । पितुमत् । अर्चत । वचः । यः । कृष्णगर्भाः । निःअहंनृ-

जिष्वना । अवस्यवः । वृषणम् । वज्रदक्षिणम् । मरुत्वन्तम् । सख्यायं ।

हवामहे ॥ १ ॥ यः । विश्वसम् । जाहृषाणेन । मन्युना । यः । शम्बरम् । यः ।

अहन् । पिष्टुम् । अव्रतम् । इन्द्रः । यः । शुष्णम् । अशुषं । नि । अवृणङ् । मरुत्वन्तम् ।

हवामहे ॥ २ ॥ यस्य । यावापृथिवी इति । पौंस्यम् । मत् ।

व्रते । वरुणः । यस्य । सूर्यः । यस्य । इन्द्रस्य । सिन्धवः । सश्र्वति ।

व्रतं । मरुत्वन्तम् । सख्यायं । हवामहे ॥ ३ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १२, १३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः ।  
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ ४ ॥  
यो विश्वस्य जगतः प्राणतरपतिर्यो ब्रह्मणो प्रथमो गा अविन्दत् ।  
इन्द्रो यो दस्यूरधरो अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ ५ ॥  
यः शूरेभिर्हृद्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हृयते यश्च जिग्युभिः ।  
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥  
रुद्राणामिति प्रदिशां विचक्षणो रुद्रेभिर्योषां तनुते पृथु जयः ।  
इन्द्रं मनीषा अर्चयति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्यायं हवामहे ॥ ७ ॥  
यदा मरुत्वः परमे सधस्थे यदावमे वृजने मादयासे ।  
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यरायः ॥ ८ ॥

यः । अश्वाना । यः । गवां । गोऽपतिः । वशी । यः । आरितः । क  
णिऽकर्मणि । स्थिरः । वीळोः । चिन् । इंद्रः । यः । असुन्वतः । वधः । मरुत्वन्तं  
सख्यायं । हवामहे ॥ ४ ॥ यः । विश्वस्य । जगतः । प्राणतः । पतिः । यः  
ब्रह्मणो । प्रथमः । गाः । अविन्दत् । इंद्रः । यः । दस्यूरन् । अधरान् । अवऽआ  
रत् । मरुत्वन्तं । सख्यायं । हवामहे ॥ ५ ॥ यः । शूरेभिः । हृद्यः । यः । च  
भीरुऽभिः । यः । धावत्ऽभिः । हृयते । यः । च । जिग्युऽभिः । इंद्रं । यं । विश्व  
भुवना । अभि । संदधुः । मरुत्वन्तं । सख्यायं । हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥ रुद्राणां  
एति । प्रऽदिशां । विऽचक्षणः । रुद्रेभिः । योषां । तनुते । पृथु । जयः । इंद्रं  
मनीषा । अभि । अर्चयति । श्रुतं । मरुत्वन्तं । सख्यायं । हवामहे ॥ ७ ॥ यन्  
वा । मरुत्वः । परमे । सधऽस्थे । यत् । वा । अवमे । वृजन । मादयासे । अतः  
आ । याहि । अध्वरं । नः । अच्छं । त्वाऽया । हविः । चकृम । सत्यरायः ॥ ८ ॥

अष्ट० ? अध्या० ७ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १५ सु० १०२

त्वायेन्द्र सोमं सुपुसा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृसा ब्रह्मवाहः ।

अयां नियुत्वः सर्गणो सरुद्धिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥

मादयस्व हरिभिर्ये तं इन्द्र वि प्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।

आ त्वां सुगिप्र हरेयो वहन्तृगन्तृव्यानि प्रति नो जुपरव ॥ १० ॥

मन्तोत्रस्य वृजनस्य गोषा वयस्मिन्द्रेण सनुयाम वाजसू ।

तन्नो मित्रो वरुणो सामहन्तासदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥ ११ ॥ १३ ॥

॥ १०२ ॥ ऋषि-पातरम इत्त । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती त्रिभु ॥

॥ १०२ ॥ इमां ते धियं प्र भरे सहो महीसरयस्तोत्रे धिपणा यत्त आनजे ।

तत्तन्वे च प्रसवे च सासहिमिन्द्र देवासः शर्वसामदन्तु ॥ १ ॥

अस्य अचो नद्यः सप्त विभ्रानि व्यावाक्षामां पृथिवी दर्शतं वपुः ।

अग्ने सूर्याचन्द्रमस्ताभिचक्षे अद्दे कसिन्द्र चरतो विवर्तुरन् ॥ २ ॥

व्याऽग्न । इन्द्र । सोमं । सुपुसम् । सुदक्ष । त्वाऽया । हविः । चकृम । ब्रह्मऽवाहः ।

अयं । नियुत्वः । सर्गणः । सरुद्धिभिः । अस्मिन् । यतो । बर्हिषि । मादयस्व ॥ ९ ॥

मादयस्व । हरिभिः । ये । ते । इन्द्र । वि । प्यस्व । शिप्रे इति । वि ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १४, १५ ] ऋग्वेदः [ षण्ठ० १ अनु० १५ सू० १०

तं स्मा रथं मघवन्प्राक् सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।  
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्मं यच्छ नः ॥ ३ ॥  
वयं जयेम त्वया युजा वृत्तमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।  
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्यां रुज ॥ ४ ॥  
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तर्वसा विपन्यवः ।  
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥ १४  
गोजितां वाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमृतिः खजङ्करः ।  
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥  
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयंस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।  
अमात्रं त्वां धिषणां तित्विषे मह्यथा वृत्राणि जिघ्रसे पुरन्दर ॥ ७ ॥

तम् । स्म । रथम् । मघवन् । प्र । अव । सातये । जैत्रम् । यम् । ते  
अनुमदाम । सम्संगमे । आजा । नः । इन्द्र । मनसा । पुरुष्टुत । त्वायद्भ्यः  
मघवन् । शर्म । यच्छ । नः ॥ ३ ॥ वयम् । जयेम । त्वया । युजा । वृत्तम्  
अस्माकम् । अंशम् । उत् । अव । भरेभरे । अस्मभ्यम् । इन्द्र । वरिवः । सुगम्  
कृधि । प्र । शत्रूणां । मघवन् । वृष्ण्यां । रुज ॥ ४ ॥ नाना । हि । न्वा  
हवमानाः । जनाः । इमे । धनानाम् । धर्तः । अवसा । विपन्यवः । अस्माकम्  
स्म । रथम् । आ । तिष्ठ । सातये । जैत्रम् । हि । इन्द्र । निभृतम् । मनः  
तव ॥ ५ ॥ १४ ॥ गोजितां । वाहू इति । अमितक्रतुः । सिमः । कर्मन्कर्म  
मृत् । शतम्स्रुतिः । खजङ्करः । अकल्पः । इन्द्रः । प्रतिमानम् । ओजसा  
अर्थ । जनाः । वि । ह्वयन्ते । सिषासवः ॥ ६ ॥ उत् । ते । शतात् । मघवन्  
उत् । च । भूयंसः । उत् । सहस्रात् । रिरिचे । कृष्टिषु । श्रवः । अमात्रम्  
१ । धिषणां । तित्विषे । मही । अर्थ । वृत्राणि । जिघ्रसे । पुरम्स्रुत् ॥ ७ ॥

त्रिविष्टिधातुं प्रतिमानमोजसस्त्रिस्तो भूमीर्नृपते श्रीणि रोचना ।  
 अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥  
 त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं वभूथ पृतनासु सासहिः ।  
 सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥  
 त्वं जिगेथ न धनां रुरोधिताभैष्वजा मघवन्महत्सु च ।  
 त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथां न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥  
 विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुवाम वाजम् ।  
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

॥ १०३ ॥ ऋषि-अङ्गिरसः कुत्स । देवता-इन्द्रः । छन्दः-जगती त्रिष्टुप् ॥  
 ॥ १०३ ॥ तत्तं इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।  
 क्षमेदमन्यद्विन्यदन्यदस्य समीं पृच्यते समनेवं केतुः ॥ १ ॥

त्रिविष्टिधातुं । प्रतिमानम् । ओजसाः । तिस्रः । भूमीः । नृपते । श्रीणि ।  
 रोचना । अति । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । ववक्षिथ । अशत्रुः । इन्द्र । जनुषां ।  
 सनात् । असि ॥ ८ ॥ त्वाम् । देवेषु । प्रथमम् । हवामहे । त्वम् । वभूथ ।  
 पृतनासु । सासहिः । सः । इमम् । नः । कारुम् । उपमन्युम् । उतमिदम् । इन्द्रः ।  
 कृणोतु । प्रसवे । रथम् । पुरः ॥ ९ ॥ त्वम् । जिगेथ । न । धनां । रुरोधित् ।  
 अभैषु । आजा । मघवन् । महत्सु । च । त्वाम् । उग्रम् । अवसे । सम् ।  
 शिशीमसि । अथ । नः । इन्द्र । हवनेषु । चोदय ॥ १० ॥ विश्वाहां । इन्द्रः ।  
 अधिवक्ता । नः । अस्तु । अपरिहृताः । सनुवाम् । वाजम् । तत् । नः । मित्रः ।  
 वरुणः । मामहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥  
 तत् । ते । इन्द्रियम् । परमम् । पराचैः । आधारयन्त । कवयः । पुरा ।  
 इदम् । क्षमा । इदम् । अन्यन् । द्विवि । अन्यत् । अन्य । नम् । इममिति ।  
 पृच्यते । समनाऽऽव । केतुः ॥ १ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०३ ]

स धारयत्पृथिवीं पप्रथञ्च वज्रेण हत्वा निरपः संसर्ज ।

अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्यसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥

स जानूभर्मा श्रद्धधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्धि दासीः ।

विद्वान्वज्जिन्दस्यवे हेतिस्यार्य सहो वर्धया युष्मन्निन्द्र ॥ ३ ॥

तद्बुधे मानुषेमा युगानि कीर्तन्यं मघवा नाम विभ्रत् ।

उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्धं सृनुः श्रवसे नाम द्ये ॥ ४ ॥

तदस्येदं पश्यता भूरिं पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्यीय ।

स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥ १६ ॥

भूरिं कर्मणे वृषभाय वृषणे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।

य आहन्यां परिपन्थीव शूरोऽयञ्जनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

सः । धारयत् । पृथिवीम् । पप्रथत् । च । वज्रेण । हत्वा । निः । अप  
ससर्ज । अहन् । अहिम् । अभिनत् । रौहिणम् । वि । अहन् । विऽअंसा  
मघऽवा । शचीभिः ॥ २ ॥ सः । जानूऽभर्मा । श्रत्ऽदधानः । ओजः । पुरं  
विऽभिन्दन् । अचरन् । वि । दासीः । विद्वान् । वज्जिन् । दस्यवे । हेतिम् । अम्  
आर्यम् । सहोः । वर्धयः । युष्मन् । इन्द्र ॥ ३ ॥ तत् । बुधे । मानुषा । इम  
युगानि । कीर्तन्यम् । मघऽवा । नाम । विभ्रत् । उपप्रयन् । दस्युऽहत्याय । वज्  
यत् । ह । सृनुः । श्रवसे । नाम । द्ये ॥ ४ ॥ तत् । अम्य । इदम् । पश्य  
भूरिं । पुष्टम् । श्रत् । इन्द्रस्य । धत्तन् । वीर्यीय । सः । गाः । अविन्दन् । स  
अविन्दन् । अश्वान् । सः । ओषधीः । नः । अपः । सः । वनानि ॥ ५ ॥ १६  
भूरिंऽकर्मणे । वृषभाय । वृषणे । सत्यऽशुष्माय । सुनवाम् । सोमम् । यः  
गऽहन्यां । परिपन्थीऽव । शूरः । अयञ्जनः । विऽभजन् । एति । वेदः ॥ ६ ॥



तदिन्द्रं प्रेवं धीर्यं चकर्थं यत्ससन्तं वज्रेणावोधयोऽहिम् ।

अनुं त्वा पत्नीर्हृषितं वयंश्च विश्वे देवासो अमदन्नुं त्वा ॥ ७ ॥

शुष्णं पिष्टुं कुयवं वृत्रमिन्द्रं यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

॥ १०४ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥ १०४ ॥ योनिंष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।

विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

ओ त्ये नर इन्द्रमृतये गुर्नु चित्तान्तसचो अध्वनो जगम्यात् ।

देवासो मन्युं दासंस्य श्रमन्ते न आ वक्षन्तसुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।

धीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥

तत् । इंद्र । प्रऽइव । धीर्यं । चकर्थं । यत् । ससन्तं । वज्रेण । अवोधयः । अहिं ।

अनुं । त्वा । पत्नीः । हृषितं । वयः । च । विश्वे । देवासः । अमदन् । अनुं ।

त्वा ॥ ७ ॥ शुष्णं । पिष्टुं । कुयवं । वृत्रं । इंद्र । यदा । अवधीः । वि । पुरः ।

शंबरस्य । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी ।

उत । यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

योनिः । ते । इंद्र । निऽसदे । अकारि । तं । आ । नि । षीद । स्वानः ।

न । नार्वा । विऽमुच्या । वयः । अवऽसायं । अश्वान् । दोषा । वस्तोः । वहीयसः ।

प्रऽपित्वे ॥ १ ॥ ओ इति । त्ये । नरः । इंद्रं । मृतये । गुः । नु । चित् ।

नन् । नयः । अध्वनः । जगम्यात् । देवासः । मन्युं । दासंस्य । श्रमन् । ते ।

नः । आ । वक्षन् । सुवितायं । वर्णं ॥ २ ॥ अव । त्मनां । भरते । केतवेदाः ।

अव । त्मनां । भरते । फेनं । उदन् । धीरेणं । स्नातः । कुयवस्य । योषे इति ।

योषे इति । ते इति । स्यातां । प्रवणे । शिफायाः ॥ ३ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १८, १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०१

युयोप॒ नाभिरु॑परस्यायोः प्र॒ पूर्वाभि॑तिरते॒ राष्ट्रि॑ शूरः ।

अंज॒सी कु॑लि॒शी वी॒रप॑त्नी॒ पर्यो॑ हिन्वा॒ना उ॒दभि॑र्भरन्ते ॥ ४ ॥

प्रति॑ यत्स्या॒ नीथा॑दर्शि॒ दस्यो॑रोको॒ नाच्छा॒ सद॑नं॒ जान॑ती गात् ।

अर्ध॑ स्मा नो मघवञ्च॒र्कृता॑दिन्सा नो॒ सवे॑द्यं नि॒प्पपी॑ परा॒ दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥

स त्वं न इन्द्र॒ सूर्ये॑ सो अ॒प्स्वना॑गास्त्व आ भ॒ज जी॒वश॑से ।

मान्तरां॑ भुज॒मा री॑रिषो नः श्रद्धि॑तं ते मह॒त इन्द्रि॑यार्थं ॥ ६ ॥

अर्धा॑ मन्ये श्र॒त्तै अ॒स्मा अ॒धायि॑ वृषा॒ चोद॑स्व मह॒ते धना॑य ।

मा नो अ॒कृते॑ पुरु॒हूत॒ योना॑विन्द्र॒ क्षु॒ध्यत्स्यो॑ वयं आ॒सुति॑ दाः ॥ ७ ॥

सा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भो॑र्जनानि प्र॒ मोषीः॑ ।

आण्डा॑ मा नो॑ मघवञ्च॒क्र नि॒र्भेन्सा॒ नः पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि ॥ ८ ॥

युयोप॒ । नाभिः॑ । उपरस्य । आयोः । प्र । पूर्वाभिः । तिरते । राष्ट्रि । शूरः ।

अंज॒सी । कु॑लि॒शी । वी॒रप॑त्नी । पर्यः । हिन्वानाः । उदभिः । भरन्ते ॥ ४ ॥

प्रति॑ । यत् । स्या । नीथा । अदर्शि । दस्योः । ओकः । न । अच्छ । सद॑नं ।

जान॑ती । गात् । अर्ध॑ । स्म । नः । मघवन् । चर्कृतात् । इत् । मा । नः । मघाऽइव ।

नि॒प्पपी॑ । परा॑ । दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥ सः । त्वं । नः । इन्द्र । सूर्ये । सः ।

अ॒प्सु । अ॒नागाः॑ऽत्वे । आ । भ॒ज । जी॒वश॑से । मा । अंतरा । भुजं । आ ।

रि॒रिषः॑ । नः । श्रद्धि॑तं । ते । मह॒ते । इन्द्रि॑यार्थं ॥ ६ ॥ अर्ध॑ । मन्ये । श्रत् ।

ते । अ॒स्मै । अ॒धायि॑ । वृषा॑ । चो॒दस्व॑ । मह॒ते । धना॑य । मा । नः । अ॒कृते॑ ।

पुरु॒हूत॑ । यो॒नौ । इन्द्र॑ । क्षु॒ध्यत्स्योः॑ । वयं । आ॒सुति॑ । दाः ॥ ७ ॥ मा । नः ।

वधीः॑ । इन्द्र॑ । मा । परा॑ । दाः । मा । नः । प्रि॒या । भो॑र्जनानि । प्र । मो॒षीः॑ ।

आण्डा॑ । मा । नः । मघवन् । श॒क्र । निः । भेत् । मा । नः । पात्रा॑ । भेत् ।

'नु ि ॥ ८ ॥

अवाडेहि सोमकामं त्वाहुर्यं सुतस्तरथं पिवा लदाय ।

उच्यचा जठर आ वृषस्व पितेवं नः शृणुहि ह्ययानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

॥ १०५ ॥ ऋषि-वाहिरसः कृत्स्न । देवता-विदेव । छद-जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०५ ॥ चन्द्रमा अप्सवन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

न दो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विस्ततो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥

अर्थमिद्वा उं अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।

तुजाते वृण्यं पर्यः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥

मो पु देवा अदः स्वर्वं पादि दिवस्पति ।

मानोम्यस्य शंभुवः शूनं भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥

पुंश्चछाम्यवमं स तदूतो वि बोचति ।

कं क्तं पूर्यं गतं कस्तद्विभक्तिं नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥

अवाडे। आ। इहि। सोमकामं। त्वा। आहुः। अयं। सुतः। तस्यं। पिवा।

लदाय। उच्यचाः। जठरं। आ। वृषस्व। पिताऽव। नः। शृणुहि। ह्य-  
यानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

मनः ॥ ९ ॥ १९ ॥

चन्द्रमाः। अप्सु। अंतः। आ। सुपर्णः। धावते। दिवि। न वः।

हिरण्यनेमयः। पदं। विन्दन्ति। विस्तृतः। वित्तं। मे। अस्य। रोदसी इति ॥ १ ॥

अर्थं। इत्। वि। उं इति। अर्थिनः। आ। जाया। युवते। पतिं। तुजाते

इति। वृण्यं। पर्यः। परिदायं। रसं। दुहे। वित्तं। मे। अस्य। रोदसी इति ॥ २ ॥

मो वते। सु। देवाः। अदः। स्वः। अर्वा। पादि। दिवः। परिं। मा। नोम्यस्यं।

शंभुवः। शूनं। भूमं। कदा। चन। वित्तं। मे। अस्य। रोदसी इति ॥ ३ ॥

पुंश्चछामि। अवमं। सः। तत्। दूतः। वि। बोचति। कं। क्तं।

पुंश्चछामि। क्तं। क्तं। तत्। विभक्तिं। नूतनः। वित्तं। मे। अस्य। रोदसी

इति ॥ ४ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

अमी ये देवा स्थनं त्रिषुवा रोचने दिवः ।

ऋतं ऋतं कदन्तं कं प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥ २० ॥

ऋतस्य धर्णसि कवरुणस्य चक्षणं ।

ऋदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दृढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।

न मा व्यत्याध्योऽवृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

षो न शिश्वा व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८ ॥

अमी ये सप्त रदस्यरतत्रा मे नाभिरातता ।

त्रितस्तद्वैदाप्यः स जामित्वायं रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

अमी इति । ये । देवाः । स्थनं । त्रिषु । आ । रोचने । दिवः । ऋतं । वः ।  
ऋतं । ऋतं । अन्तं । कं । प्रत्ना । वः । आऽहुतिः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी  
इति ॥ ५ ॥ २० ॥ ऋतं । वः । ऋतस्यं । धर्णसि । कत् । वरुणस्य । चक्षणं ।  
कत् । अर्यम्णः । महः । पथा । अति । क्रामेम । दुऽध्यः । वित्तं । मे । अस्य ।  
रोदसी इति ॥ ६ ॥ अहं । सः । अस्मि । यः । पुरा । सुते । वदामि । कानि ।  
चित् । तं । मा । व्यति । आऽध्यः । वृकः । न । तृष्णजं । मृगं । वित्तं ।  
मे । अरय । रोदसी इति ॥ ७ ॥ सं । मा । तपति । अभितः । सपत्नीऽव ।  
पर्शवः । मूषः । न । शिश्वा । वि । अदन्ति । मा । आऽध्यः । स्तोतारं । ते ।  
शतक्रतो इति शतऽक्रतो । वित्तं । मे । अरय । रोदसी इति ॥ ८ ॥ अमी इति ।  
ये । सप्त । रदस्यः । तत्र । मे । नाभिः । आऽतता । त्रितः । तत्र । वेद ।  
इयः । सः । जामित्वायं । रेभति । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

अभी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।

त्रेत्रा नु प्रदाच्यं सधीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥ २१ ॥

पर्णा एत आसते मध्ये आरोधने दिवः ।

संधन्ति पथो वृकं तरन्तं यद्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥

व्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।

तर्मपन्ति सिन्धवः सत्यं तांतात सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥

अत्रे तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।

त नः सक्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥

क्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छाँ विदुष्टरः ।

अग्निर्हव्या सुपूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥

अभी इति । ये । पंच । उक्षणः । मध्ये । तस्थुः । महः । दिवः । देवञ्चा । नु ।

प्रदाच्यं । सधीचीनाः । नि । वावृतुः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १० ॥ २१ ॥

उक्षणः । एत । आसते । मध्ये । आरोधने । दिवः । ते । संधन्ति । पथः ।

ब्रह्मं कृणोति वरुणो गालुचिदं तमीमहे ।

व्यूर्णोति हुदा मतिं नव्यो जायताकृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥ २॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।

न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥

त्रितः रूपेऽवहितो देवान्हवत उत्तये ।

तच्छुश्राव वृहरपतिः कृष्वन्नंहरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥

अरुणो मां सकृदृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।

उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥

एनाङ्गूषेण वयसिन्द्रवन्तोऽभि प्वास वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मासहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत्त यौः ॥ १९ ॥ २३ ॥ १॥

ब्रह्मं । कृणोति । वरुणः । गालुऽविदं । तं । ईमहे । वि । ऊर्णोति । हुद

मतिं । नव्यः । जायतां । कृतं । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १५ ॥ २॥

असौ । यः । पन्थाः । आदित्यः । दिवि । प्रवाच्यं । कृतः । न । सः । देवाः

अतिऽक्रमे । तं । मर्तासः । न । पश्यथ । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १६ ॥

त्रितः । रूपे । अवऽहितः । देवान् । हवते । उत्तये । तत् । शुश्राव । वृहस्पति

कृष्वन् । अंहरणात् । उरु । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १७ ॥ अरुण

मा । सकृत् । दृकः । पथा । यन्तं । ददर्श । हि । उत् । जिहीते । निचाय्या

तष्टाऽव । पृष्टिऽआमयी । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १८ ॥ एना

आङ्गूषेण । वयं । सिन्द्रवन्तः । अभि । प्वास । वृजने । सर्ववीराः । तत् । नः

मित्रः । वरुणः । मासहन्ता । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत्त । यौः ॥ १९ ॥ २३ ॥ १॥

## ॥ षोडशोऽनुवाकः ॥

॥ १०६ ॥ इन्द्रं-आदित्यं कुत । देवता-इन्द्रः । छन्द-जगती त्रिष्टुभ् ॥

॥१०६॥ इन्द्रं मित्रं वरुणञ्जित्भृतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मात्रो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥

त आदित्या आ गता सर्वज्ञातये भूत देवा वृत्रतृष्येषु गम्भ्रुवः ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मात्रो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥

अवेन्तु नः पितरः सुप्रदायना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृथा ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मात्रो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयहीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मात्रो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥

वृत्स्पते सदमित्रः सुगं कृषिं शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मात्रो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥

इन्द्रं ' मित्रम् । वरुणञ् । अग्निम् । जितये । मारुतम् । शर्धः । अदितिम् ।  
हवामहे । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः ।  
निः । निष्पिपर्तन ॥ १ ॥ ते । आदित्याः । आ । गता । सर्वज्ञातये । भूत । देवा ।  
वृत्रतृष्येषु । गम्भ्रुवः । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुदानवः । विश्वस्मात् ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २४, २५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० १०७

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निवाळ्ह ऋषिरद्वृतये ।

रथं न दुर्गाहंसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निषिपर्तन ॥ ६ ॥

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥ २४ ॥

॥ १०७ ॥ ऋषि - अङ्गिरसः कुत्स । देवता - अग्नि । छन्द - जगती त्रिष्टुप् ।

॥ १०७ ॥ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।

आ वोऽर्वाचीं सुमतिर्वृत्त्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभि स्तूयमानाः ।

इन्द्रं इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥

इन्द्रं । कुत्सः । वृत्रहणं । शचीऽपतिं । काटे । निऽवाळ्हः । ऋषिः । अद्वत् ।  
उतये । रथं । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः ।  
निः । पिपर्तन ॥ ६ ॥ देवैः । नः । देवी । अदितिः । नि । पातु । देवः । त्राता ।  
त्रायतां । अप्रयुच्छन् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः ।  
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ७ ॥

यज्ञः । देवानां । प्रति । एति । सुम्नं । आदित्यासः । भवन्त । मृळयन्तः ।  
आ । वः । अर्वाचीं । सुऽमतिः । वृत्त्यात् । अंहोः । चित् । या । वरिवोवित्तरा ।  
असत् ॥ १ ॥ उप । नः । देवाः । अवसा । आ । गमन्तु । अङ्गिरसां । सामभिः ।  
स्तूयमानाः । इन्द्रः । इन्द्रियैः । मरुतः । मरुत्सभिः । आदित्यैः । नः । अदितिः ।  
शर्म । यंसत् ॥ २ ॥ तत् । नः । इन्द्रः । तत् । वरुणः । तत् । अग्निः । तत् ।  
अर्यमा । तत् । सविता । चनः । धात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् ।  
सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥



॥ १०८ ॥ ऋषि-आदिरस' फुत्स । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-जगती त्रिष्टुम् ॥

॥१०८॥ य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।

तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ १ ॥

यावद्विदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।

तावा अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्यां ॥ २ ॥

चक्राथे हि सध्र्यं नाम भद्रं सधीचीना वृत्रहणा उत रथः ।

ताविन्द्राग्नी सध्र्यंश्चा निषद्या वृष्णाः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्तुचा वहिरुं तिस्तिराणा ।

तीत्रैः सोमैः परिषित्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसायं यातम् ॥ ४ ॥

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।

या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ५ ॥ २६ ॥

यः । इन्द्राग्नी इति । चित्रस्तमः । रथः । वां । अभि । विश्वानि । भुवनानि ।  
 चष्टे । तेन । आ । यातं । सरथं । तस्थिवांसां । अथ । सोमस्य । पिवतं ।  
 सुतस्य ॥ १ ॥ यावत् । द्दं । भुवनं । विश्वं । अस्ति । उरुव्यचां । वरिमतां ।  
 गभीरं । तावान् । अयं । पातवे । सोमः । अस्तु । अरं । इन्द्राग्नी इति । मनसे ।  
 युवभ्यां ॥ २ ॥ चक्राथे इति । हि । सध्र्यंक् । नाम । भद्रं । सधीचीना ।  
 वृत्रहणो । उत । रथः । तो । इन्द्राग्नी इति । सध्र्यंचा । निषमद्यं । वृष्णाः ।  
 सोमस्य । वृष्णा । आ । वृषेथा ॥ ३ ॥ संसिद्धेषु । अग्निषु । आनजाना ।  
 यतस्तुचा । वहिः । उं इति । तिस्तिराणा । तीत्रैः । सोमैः । परिषित्तेभिः ।  
 र्वाग् । आ । इन्द्राग्नी इति । सौमनसायं । यातं ॥ ४ ॥ यानि । इन्द्राग्नी इति ।  
 चक्रथुः । वीर्याणि । यानि । रूपाणि । उत । वृष्ण्यानि । या । वा । प्रत्नानि ।  
 सख्या । शिवानि । तेभिः । सोमस्य । पिवतं । सुतस्य ॥ ५ ॥ २६ ॥

यदब्रवँ प्रथमं वाँ वृणानोऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।  
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ६ ॥  
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।  
अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ७ ॥  
यदिन्द्राग्नी यदुपु तुर्वशेषु यद्ब्रह्मणुष्वनुषु पूरुषु स्थः ।  
अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ८ ॥  
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।  
अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ९ ॥  
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।  
अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ १० ॥

यत् । अब्रवँ । प्रथमं । वाँ । वृणानः । अयं । सोमः । असुरैः । नः । विहव्यः ।  
तां । सत्यां । श्रद्धां । अभि । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिवतं ।  
सुतस्य ॥ ६ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । मदथः । स्वे । दुरोणे । यत् । ब्रह्मणि ।  
राजनि । वा । यजत्रा । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ ।  
सोमस्य । पिवतं । सुतस्य ॥ ७ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । यदुपु । तुर्वशेषु । यत् ।  
ब्रह्मणुषु । अनुषु । पूरुषु । स्थः । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य ।  
पिवतं । सुतस्य ॥ ८ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । अवमस्यां । पृथिव्यां । मध्यमस्यां ।  
परमस्यां । उत । स्थः । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ ।  
सोमस्य । पिवतं । सुतस्य ॥ ९ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । परमस्यां । पृथिव्या ।  
मध्यमस्यां । अवमस्यां । उत । स्थः । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं ।  
अथ । सोमस्य । पिवतं । सुतस्य ॥ १० ॥

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्टो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।

अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ ११ ॥

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया सादयेथे ।

अतः परिं वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य ॥ १२ ॥

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥ २७ ॥

॥ १०९ ॥ ऋषि-आङ्गिरस इत्य । देवता-इन्द्राग्नी । छन्दः-जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०९॥ वि लख्यं मनसा वस्यं इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।

नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मयं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥

अश्रवं हि शूरिदावत्तरा वां विजांमातुरुत वा घा स्यालात् ।

अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

यत् । इन्द्राग्नी इति । दिवि । स्थः । यत् । पृथिव्यां । यत् । पर्वतेषु । ओषधीषु ।

अप्सुः । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिवतं ।

सुतस्य ॥ ११ ॥ यत् । इन्द्राग्नी इति । उद्दिता । सूर्यस्य । मध्ये । दिवः । स्वधया ।

सादयेथे इति । अतः । परिं । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य ।

पिवतं । सुतस्य ॥ १२ ॥ एव । इन्द्राग्नी इति । पपिवांसा । सुतस्य । विश्वा ।

स्मभ्यं । सं । जयतं । धनानि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्तां । अदितिः ।

मा छैन्न रश्मीरिति नार्धमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।  
 इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्रीं धिपणाया उपस्थे ॥ ३ ॥  
 युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।  
 तावश्विना भद्रहरता सुपाणी आ धावतं मथुना पृक्तमप्सु ॥ ४ ॥  
 युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहृत्ये ।  
 तावासव्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥  
 प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहृदेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।  
 प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा इन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥  
 आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्मां इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।  
 इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरं न आसन् ॥ ७ ॥

मा । छैन्न । रश्मीन् । इति । नार्धमानाः । पितॄणां । शक्तीः । अनुयच्छमानाः ।  
 इन्द्राग्निभ्यां । कं । वृषणः । मदन्ति । ता । हि । अद्री इति । धिपणायाः ।  
 उपस्थे ॥ ३ ॥ युवाभ्यां । देवी । धिपणा । मदाय । इन्द्राग्नी इति । सोमं ।  
 उशती । सुनोति । तौ । अश्विना । भद्रहस्ता । सुपाणी इति सुपाणी । आ ।  
 धावतं । मथुना । पृक्तं । अप्सु ॥ ४ ॥ युवां । इन्द्राग्नी इति । वसुनः । विभागे ।  
 तवःस्तमा । शुश्रव । वृत्रहृत्ये । तौ । आसव्यं । बर्हिषिं । यज्ञे । अस्मिन् । प्र ।  
 चर्षणी इति । मादयेथां । सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥ प्र । चर्षणिभ्यः । पृतनाहृदेषु ।  
 प्र । पृथिव्याः । रिरिचाथे इति । दिवः । च । प्र । सिन्धुभ्यः । प्र । गिरिभ्यः ।  
 महित्वा । प्र । इन्द्राग्नी इति । विश्वा । भुवना । अति । अन्या ॥ ६ ॥ आ ।  
 भरतं । शिक्षतं । वज्रबाहू इति वज्रबाहू । अस्मान् । इन्द्राग्नी इति । अवतं । शचीभिः ।  
 इमे । नु । ते । रश्मयः । सूर्यस्य । येभिः । सपित्वं । पितरं । नः । आसन् ॥ ७ ॥

शिक्षंतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरैषु ।  
 वेत्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत क्रौः ॥ ८ ॥ २९ ॥  
 ॥ ११० ॥ ऋषि-आङ्गिरस. कुत्स । देवता-ऋभव । छन्द-जगत्य, त्रिष्टुभ् ।  
 ॥ ११० ॥ ततं मे अपस्तदुं तायते पुनः स्वादिष्टा धीतिरुचथाय शस्यते ।  
 मुद्र इह विश्वदैव्यः स्वाहाकृतस्य ससुं तृष्णुत ऋभवः ॥ १ ॥  
 अयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।  
 नासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥  
 ता वाऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।  
 मसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥  
 शमी तरणित्वेन वाघतो मतीसः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।  
 नाना ऋभवः सूरचक्षसः संबत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

१ । शिक्षंतं । वज्रहस्ता । अस्मान् । इन्द्राग्नी इति । अवतं । भरैषु । तन् ।  
 मित्रः । वरुणः । मामहन्ता । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत ।  
 ८ ॥ २९ ॥  
 ततं । मे । अपः । तत् । ऊं इति । तायते । पुनरिति । स्वादिष्टा ।  
 । उचथाय । शस्यते । अयं । समुद्रः । इह । विश्वदैव्यः । स्वाहाकृतस्य ।  
 ऊं इति । तृष्णुत । ऋभवः ॥ १ ॥ आऽभोगयं । प्र । यत् । इच्छन्तः ।  
 । अपाकाः । प्राञ्चः । मम । के । चिन् । आपयः । नौयन्वनामः ।  
 त्यं । भूमना । अगच्छत । सवितुः । दाशुषः । गृहं ॥ २ ॥ तन् । सविता ।  
 आमृतत्वं । आ । असुवत् । अगोह्यं । यत् । श्रवयन्तः । ऐतन । न्यं ।  
 । समं । असुरस्य । भक्षणं । एकं । सन्तं । अकृणुत । चतुऽवयं ॥ ३ ॥  
 । शमी । तरणित्वेन । वाघतः । मतीसः । सन्तः । अमृतत्वं । आनशुः ।  
 नाना । ऋभवः । सूरचक्षसः । संबत्सरे । सं । अपृच्यन्त । धीतिभिः ॥ ४ ॥

मह० १ अध्या० ७ व० ३०, ३१ ] सुन्दरः [ मह० १ अनु० १९ वृ० ३१०

क्षेत्रमिव वि संसुरतेर्जनेन एकं पात्रं ऋभयो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपसं नार्धमाना अमर्त्येषु श्रवं इच्छमानाः ॥ ५ ॥ ३० ॥

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः सुचेवं घृतं जुह्वाम विद्वनां ।

तरणित्वा ये पितुस्य सश्चिर ऋभवो वाजसन्हन्दिषो रजः ॥ ६ ॥

ऋभुर्न इन्द्रः शवंसा नवीयान् ऋभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥

निश्चर्मण ऋभवो गार्मपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।

सौधन्वनासः स्वपस्ययां नरो जित्री युवाना पितरां हृणोतन ॥ ८ ॥

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढुभुर्मा इन्द्र चित्रा दापि राधः ।

तन्नो मित्रो बरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत यौः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

क्षेत्रं इव । वि । मसुः । तेजनेन । एकं । पात्रं । ऋभवः । जेहमानं । उपस्तुता

उपसं । नार्धमानाः । अमर्त्येषु । श्रवं । इच्छमानाः ॥ ५ ॥ ३० ॥ अ

मनीषां । अन्तरिक्षस्य । नृभ्यः । सुचा इव । घृतं । जुह्वाम । विद्वनां । तरणिज्

ये । पितुः । अस्य । सश्चिरे । ऋभवः । वाजे । अरुहन् । दिवः । रजः ॥ ६

ऋभुः । नः । इन्द्रः । शवंसा । नवीयान् । ऋभुः । वाजेभिः । वसुभ्यः । वसु

ददिः । युष्माकं । देवाः । अवसा । अहनि । प्रिये । अभि । तिष्ठेम । पृत्सुताः

असुन्वतां ॥ ७ ॥ निः । चर्मणः । ऋभवः । गां । अपिंशत । सं । वत्सेन

असृजत । मातरं । पुनरिति । सौधन्वनासः । सुअपस्ययां । नरः । जित्री इति

युवाना । पितरां । अहृणोतन ॥ ८ ॥ वाजेभिः । नः । वाजसातो । अविड्ढु

ऋभुः । इन्द्रः । चित्रः । आ । दापि । राधः । तत् । नः । मित्रः । बरुणः

ममहतां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । यौः ॥ ९ ॥ ३० ॥

॥ १११ ॥ ऋषिः-कुसुम । देवता-ऋभवः । मन्त्र-ऋग्वेदीयः ।

॥ १११ ॥ तक्षत्रथं सुष्टृतं विद्वानापसस्तक्षन्हरीं इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।  
 तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्सायं मातरं सचाभ्रुवं ॥ १ ॥  
 आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः ऋत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।  
 यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तक्षः शर्धाय घासथा सिन्ध्रियम् ॥ २ ॥  
 आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।  
 सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वर्हा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥  
 ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव जतयं ऋभून्वार्जान्मरुतः सोमपीतये ।  
 उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥  
 ऋभुराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्राजो अस्मौ अविष्टु ।  
 तसो मित्रो वरुणो सामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

१ तक्षन् । रथं । सुष्टृतं । विद्वानापसः । तक्षन् । हरी इति । इन्द्रवाहा । वृषण्वसू इति ।  
 २ वृषण्वसू । तक्षन् । पितृभ्यां । ऋभवः । युवत् । द्वयः । तक्षन् । वत्सायं । मातरं ।  
 ३ सचाभ्रुवं ॥ १ ॥ आ । नः । यज्ञाय । तक्षत । ऋभुऽमत् । द्वयः । ऋत्वे । दक्षाय ।  
 ४ सुप्रजावती । इषं । यथा । क्षयाम । सर्ववीरया । विशा । तत् । नः । शर्धाय ।  
 ५ यामय । सु । इन्द्रियं ॥ २ ॥ आ । तक्षत । सातिं । अस्मभ्यं । ऋभवः । सातिं ।  
 ६ रथाय । सातिं । अर्वते । नरः । सातिं । नः । जैत्रीं । सं । महेत । विश्वर्हा ।  
 ७ जामि । अजामि । पृतनासु । सक्षणिं ॥ ३ ॥ ऋभुक्षणं । इन्द्रं । आ । हुव । जतयं ।  
 ८ ऋभुः । वार्जान् । मरुतः । सोमऽपीतये । उभा । मित्रावरुणा । नूनं । अश्विना ।  
 ९ तः । नः । हिन्वन्तु । सातये । धिये । जिषे ॥ ४ ॥ ऋभुः । भुराय । सं । शिशातु ।  
 १० सातिं । समर्यजिद्राजः । अस्मौ । अविष्टु । तत् । नः । मित्रः । वरुणः ।  
 ११ तसो । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

अष्ट०, १ अध्या० ७ व० ३३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० ११२

॥ ११२ ॥ ऋषि - कुत्स । देवता - यावा पृथिवी, अग्नि, अश्वी। छन्द जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ ११२ ॥ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचिन्तायेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।  
याभिर्भरं कारंशांय जिन्वथस्ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥  
युवोर्दानाय सुभरा असश्चता रयमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।  
याभिर्विद्योऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥  
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्जना ।  
याभिर्धेनुस्वंपिन्वथो नरा ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥  
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्जना द्विमाता तृषु तरणिर्विभूषति ।  
याभिस्त्रिमन्तुरभवच्चक्षणरताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥  
याभीं रेभं निवृत्तं सितमद्भ्य उद्वन्दनैर्यतं स्वर्दृशे ।  
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥

ईळे । द्यावापृथिवी इति । पूर्वचिन्ताये । अग्निं । घर्मं । सुरुचं । यामन् । निष्टये ।  
याभिः । भरं । कारं । अंशांय । जिन्वथः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः ।  
अश्विना । आ । गतं ॥ १ ॥ युवोः । दानाय । सुभराः । असश्चतः । रयं ।  
आ । तस्थुः । वचसं । न । मन्तवे । याभिः । विद्यः । अवथः । कर्मन् । निष्टये । ताभिः ।  
ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २ ॥ युवं । तासां । दिव्यस्य ।  
प्रशासने । विशां । क्षयथः । अमृतस्य । मज्जना । याभिः । धेनुं । अस्वं । पिन्वथः ।  
नरा । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ३ ॥ याभिः ।  
परिज्मा । तनयस्य । मज्जना । द्विमाता । तृषु । तरणिः । विभूषति । याभिः ।  
त्रिमन्तुः । अवत् । विचक्षणः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना ।  
आ । गतं ॥ ४ ॥ याभिः । रेभं । निवृत्तं । सितं । अद्भ्यः । उत् । वन्दनं ।  
ऐर्यतं । स्वर्दृशे । याभिः । कण्वं । प्रः । सिषासन्तं । आवतं । ताभिः । ऊं इति ।  
सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ५ ॥ ३३ ॥



या॒भिर॒न्त॒कं॑ ज॒स॒मान॒मा॒र॒णे॑ भु॒ज्युं॑ या॒भिर॒व्य॒धि॒भिर्जि॒जिन्व॑थुः ।  
 या॒भिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒र्यं॑ च जिन्व॑थ॒रता॒भि॒रू॒षु॒ ऊ॒ति॒भिर॒श्वि॒ना ग॑तम् ॥ ६ ॥  
 या॒भिः॑ शु॒च॒न्ति॑ ध॒न॒सां॑ सु॒प॒स॒दं॑ त॒सं॑ घ॒र्ममो॒ष्या॒ध॒न्त॒मत्र॑ये ।  
 या॒भिः॑ पृ॒श्नि॒गुं॑ पु॒न॒हु॒त्स॒मा॒व॒तं॑ ता॒भि॒रू॒षु॒ ऊ॒नि॒भिर॒श्वि॒ना ग॑तम् ॥ ७ ॥  
 या॒भिः॑ ग॒न्धी॒भिर्वृ॑षणा॒ परा॒वृ॒जं॑ प्रा॒न्धं॑ श्रो॒णं॑ चक्ष॑स ए॒त॒वे॑ कृ॒थः॑ ।  
 या॒भिर्व॑त्तिकां॑ व॒सि॒नाम॒मु॒ञ्च॒तं॑ ता॒भि॒रू॒षु॒ ऊ॒ति॒भिर॒श्वि॒ना ग॑तम् ॥ ८ ॥  
 या॒भिः॑ सि॒न्धुं॑ न॒धु॒म॒न्त॒न्स॒ञ्च॒तं॑ व॒सि॒ष्टं॑ या॒भिर॒जरा॒व॒जिन्व॑तम् ।  
 या॒भिः॑ हु॒त्सं॑ पु॒न॒धे॒ न॒र्य॒मा॒व॒तं॑ ता॒भि॒रू॒षु॒ ऊ॒नि॒भिर॒श्वि॒ना ग॑तम् ॥ ९ ॥  
 या॒भिर्वि॑ष्पलां॑ ध॒न॒सां॒थ॒र्यं॑ स॒ह॒स्रं॑भी॒हू॒ आ॒जा॒व॒जिन्व॑तम् ।  
 या॒भिर्य॑शं॒म॒रु॒द्यं॑ प्रे॒णि॒मा॒व॒तं॑ ता॒भि॒रू॒षु॒ ऊ॒ति॒भिर॒श्वि॒ना ग॑तम् ॥ १० ॥ ३४ ॥

याभिः । अन्तकम् । जसमानम् । आऽअरणे । भुज्युम् । याभिः । अव्यधिसभिः ।  
 जिजिन्वुः । याभिः । कर्कन्धुम् । वर्यम् । च । जिन्वथः । ताभिः । ऊम् अति ।  
 सु । अतिऽभिः । श्विना । आ । गतम् ॥ ६ ॥ याभिः । शुचन्तिम् । धनऽसाम् ।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।  
 कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥  
 याभी रसां क्षोदसोदः पिपिन्वथुंरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।  
 याभिस्त्रिशोकं उस्त्रिया उदाजतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥  
 याभिः सूर्यं परिघायः परावति मन्धातारं क्षेत्रपत्येष्वावतम् ।  
 याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥  
 याभिर्महामतिधिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शस्वरहत्य आवतम् ।  
 याभिः पूभिद्यै त्रसदस्युमावतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥  
 याभिर्वन्नं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।  
 याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥ ३५

याभिः । सुदानू इति सुदानू । औशिजाय । वणिजे । दीर्घश्रवसे । मधु । कोशो  
 अक्षरत् । कक्षीवन्तम् । स्तोतारम् । याभिः । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु  
 ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम् ॥ ११ ॥ याभिः । रसाम् । क्षोदसा । उदः  
 पिपिन्वथुः । अनश्वम् । याभिः । रथम् । आवतम् । जिषे । याभिः । त्रिशोकः  
 उस्त्रियाः । उत्ऽआजत । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ  
 गतम् ॥ १२ ॥ याभिः । सूर्यम् । परिऽघायः । पराऽवति । मन्धातारम् । क्षेत्रपत्येऽ  
 आवतम् । याभिः । विप्रम् । प्र । भरत्ऽवाजम् । आवतम् । ताभिः । ऊं इति । सु  
 ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १३ ॥ याभिः । महाम् । अतिधिऽग्वम्  
 कशःऽजुवम् । दिवःऽदासम् । शस्वरऽहत्ये । आवतम् । याभिः । पूऽभिद्यै । त्रस  
 दस्युम् । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १४ ॥  
 याभिः । वन्नम् । विऽपिपानं । उपऽस्तुतं । कलिं । याभिः । वित्तऽजानिं । दुवस्यथः  
 याभिः । विऽअश्वं । उत । पृथिं । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः  
 अश्विना । आ । गतं ॥ १५ ॥ ३५ ॥

याभिर्नरा शयवे याभिरज्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।  
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥  
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्जनाग्निर्नादीदेचित इद्धो अज्मन्ना ।  
याभिः शर्यातसवंधो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥  
गशिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं मच्छथो विवरे गोर्जर्गसः ।  
गभिर्मनुं गूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १८ ॥  
याभिः पर्नीर्विमदायं न्यूहथुरा घं वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।  
याभिः सुदासं जह्युः सुदेव्यन्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥  
याभिः शन्तांती सवंधो ददाशुषे भुज्युं याभिरवंधो याभिरधिगुम् ।  
अंग्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥ ३६ ॥

याभिः । नरा । शयवे । याभिः । अज्रये । याभिः । । पुरा । मनवे । गातुं ।  
मीषथुः । याभिः । शारीः । आजतं । स्यूमरश्मये । ताभिः । ऊं उतिं । सु । ऊतिभिः  
अश्विना । आ । गतं ॥ १६ ॥ याभिः । पठर्वा । जठरस्य । मज्जना । अग्निः । न ।  
नादीदेत् । चितः । इद्धः । अज्मन् । आ । याभिः । शर्यातं । अवंधः । महाधने ।

याभिः कृशानुससने दुवरयथो जवे याभिर्दृनो अर्वन्तमावतम् ।  
 मधु प्रियं भरथो यत्सरद्भ्यस्ताभिर्ह पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥  
 याभिर्नरं गोषुयुधं नृवाले क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।  
 याभी रथां अवथो याभिरर्धतस्ताभिर्ह पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥  
 याभिः कुत्संमार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।  
 याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावतं ताभिर्ह पु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३ ॥  
 अमरवतीश्विना वाचंअरमेकृतं नो दद्या वृषणा मनीषाम् ।  
 अवृत्येऽवसे नि द्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातो ॥ २४ ॥  
 शुभ्रिर्क्तुभिः परिं पातमस्मानरिष्टैभिरश्विना सौभगेभिः ।  
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५ ॥ ३७ ॥ ७ ॥

याभिः । कृशातुं । असने । दुवरयथः । जवे । याभिः । यूनः । अर्वतं । आवतं ।  
 मधु । प्रियं । भरथः । यत् । सरद्भ्यः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः ।  
 अश्विना । आ । गतं ॥ २१ ॥ याभिः । नरं । गोषुऽयुधं । नृसखे । क्षेत्रसा ।  
 साता । तनयस्य । जिन्वथः । याभिः । रथान् । अवथः । याभिः । अर्वतः । ताभिः ।  
 ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २२ ॥ याभिः । कुत्सं । मार्जु-  
 नेयं । शतक्रतू इति । शतऽक्रतू । प्र । तुर्वीतिं । प्र । च । दभीतिं । आवतं । याभिः ।  
 ध्वसन्ति । पुरुऽसन्ति । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना ।  
 आ । गतं ॥ २३ ॥ अमरवती । अश्विना । वाचं । अरमे इति । कृतं । नः । दद्या ।  
 वृषणा । मनीषाम् । अवृत्ये । अवसे । नि । द्वये । वां । वृधे । च । नः । भवतं ।  
 वाजसातो ॥ २४ ॥ शुऽभिः । अक्तुभिः । परिं । पातं । अस्मान् । अग्निभिः ।  
 अश्विना । सौभगेभिः । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्तां । अदितिः । सिन्धुः ।  
 पृथिवी । उत । द्यौः ॥ २५ ॥ ३७ ॥

इति प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ ११३ ॥ ऋषि-अग्निम कुम्भ । देवता-उषा । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥११३॥ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाङ्घ्रिः । क्रैतो अजनिष्ट विश्वा ।

यथा प्रसूता सवितुः सवार्यं पृथा राष्ट्रपुप्से योनिपारिष् ॥ १ ॥

गर्जाहत्सा रुगती श्वेत्यागादारिंशु कृष्णा सदेनान्यरयाः ।

समानवन्धु अमृते अनृची छात्रा दर्षी चरत आलिनाने ॥ २ ॥

समानो अध्वा स्वस्त्रोरनन्तरतन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

न संधेते न तरथतुः सुमेके नक्तोपासा समनम्भा विश्वे ॥ ३ ॥

भारवती नेत्री सूनुतानामचेति चित्रा वि दुरो न आत्रः ।

प्राप्या जगहृशु नो रायो अख्यदृषा अर्जागर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

## ॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिह्वश्र्यै चरितवे मघोन्याभोग्यं इष्ट्यै राय उत्वं ।

दभ्रं पश्यङ्गय उर्विया विचक्षं उपा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ५ ॥ १ ॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्ट्यै त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।

विसदृशा जीविताभिप्रचक्षं उपा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।

विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७ ॥

परायतीनामन्वेति पार्थ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।

व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

उषो यदग्निं समिधे चक्रथ वि यदावश्रक्षसा सूर्यस्य ।

यन्मालुषान्यक्ष्यमाणौ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमम्रः ॥ ९ ॥

जिह्वश्र्यै । चरितवे । मघोनी । आभोग्यै । इष्ट्यै । राये । ऊं इति । त्वं । दभ्रं ।

पश्यत्श्र्यः । उर्विया । विचक्षं । उपाः । अजीगः । भुवनानि । विश्वा ॥ ५ ॥ १ ॥

क्षत्राय । त्वं । श्रवसे । त्वं । महीयै । इष्ट्यै । त्वं । अर्थम्इव । त्वं । इत्यै । विसदृ-  
दृशा । जीविता । अभिप्रचक्षं । उपाः । अजीगः । भुवनानि । विश्वा ॥ ६ ॥

एषा । दिवः । दुहिता । प्रति । अदर्शि । विउच्छन्ती । युवतिः । शुक्रवासाः ।

विश्वस्य । देशाना । पार्थिवस्य । वस्वः । उषः । अद्य । इह । सुभगे । वि । व्युच्छ ॥ ७ ॥

परायतीना । अनु । एति । पार्थः । आयतीनां । प्रथमा । शश्वतीनां । विउच्छन्ती ।

जीवं । उन्दीरयन्ती । उपाः । मृतं । कं । चन । बोधयन्ती ॥ ८ ॥ उषः । यत् ।

अग्निं । सदृशे । चक्रथ । वि । यत् । आवः । चक्षसा । सूर्यस्य । यत् । मालुषान् ।

यक्ष्यमाणान् । अजीगरिति । तत् । देवेषु । चकृषे । भद्रं । अम्रः ॥ ९ ॥

क्रिया॒त्या यत्स॒मया॒ भवा॑ति॒ या व्यु॑पुर्याश्च॒ नृ॒तं व्यु॑च्छान् ।  
 अनु॑ पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीभ्याना जोषंन्याभिरेति ॥ १० ॥ २ ॥  
 ह्युष्ट्रे॒ ये पूर्व॑तरामपश्यन्व्युच्छन्तीं॒ सु॒षसं॒ मर्त्या॑सः ।  
 ध॒म्नाभि॑रु॒ नु प्रति॑चक्ष्या॒भू॒दो ते य॑न्ति॒ ये अ॑परीषु पश्यान् ॥ ११ ॥  
 या॒घ॒य॒द्वेषा॑ ऋ॒तपा॑ क॒तेजाः॑ उ॒न्ना॒वरीं॑ सू॒हृता॑ ई॒रय॑न्ती ।  
 उ॒म॒द्ग॒तीर्वि॑भ्रंती दे॒ववी॑तिमि॒हाद्योषः॑ श्रे॒ष्ठत॑ना व्युच्छ ॥ १२ ॥  
 श॒श्वन्पु॑रांश व्यु॒वात्स दे॒व्यथो॑ अ॒द्येदं॒ व्या॒वो स॒घोनी॑ ।  
 अथो॑ व्युच्छादु॒त्तराँ॑ अनु॒ घृ॒न॒जरा॑मृता चरति स्व॒धार्भिः॑ ॥ १३ ॥  
 व्य॑सि॒र्गिदि॒व आ॒ता॒स्वद्यौ॒दपं॑ कृ॒ष्णां नि॒र्णिजं॑ दे॒व्या॒वः ।  
 प्र॒दा॒भग॑न्त्य॒रणे॑भि॒रभ्वै॒रोपा॑ याति सु॒युजा॒ रथे॑न ॥ १४ ॥

---

क्रियाति । आ । यत् । समया । भवाति । याः । विऽऊणुः । याः । च । नृतं । विऽऊणुः ।  
 पशान् । अनु । पूर्वाः । कृपते । वावशाना । प्रदीभ्याना । जोषं । अन्याभिः । एति ॥ १० ॥ २

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेक्षिताना ।

इयुर्पीणासुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोपा अश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरिति ।

आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्रं प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

स्यूमना वाच उदियति वह्निः स्तवानो रेभ उपसो विभातीः ।

अद्या तदुच्छ गृणते अघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥

या गोमतीरुपसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।

वायोरिदं सूततांनानुदके ता अश्वदा अश्वत्सोमसुत्वा ॥ १८ ॥

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्वृहती विभाहि ।

प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जनं जनय विश्वचारे ॥ १९ ॥

आवहन्ती । पोष्या । वार्याणि । चित्रं । केतुं । कृणुते । चेक्षिताना । इयुर्पीणां ।

उपसमा । शश्वतीना । विभातीनां । प्रथमा । उपाः । वि । अश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

उत् । इर्ध्वं । जीवः । असुः । नः । आ । अगात् । अप । प्र । अगात् । तमः । आ ।

ज्योतिः । इति । अरैक् । पन्थां । यातवे । सूर्याय । अगन्म । यत्रं । प्रतिरन्ते ।

आयुः ॥ १६ ॥ स्यूमना । वाचः । उत् । इयति । वह्निः । स्तवानः । रेभः । उपसोः ।

विभातीः । अद्या । तत् । उच्छ । गृणते । अघोनि । अस्मे इति । आयुः । नि ।

दिदीहि । प्रजावत् ॥ १७ ॥ याः । गोमतीः । उपसः । सर्ववीराः । व्युच्छन्ति ।

दाशुषे । मर्त्याय । वायोः । इदं । सूततांना । अनुदके । ताः । अश्वदाः । अश्वत्सो ।

मोमसुत्वा ॥ १८ ॥ माता । देवानां । अदितेः । अनीकं । यज्ञस्य । केतुः । वृहती ।

वि । भाहि । प्रशस्तिकृत् । ब्रह्मणे । नः । वि । उच्छ । आ । नः । जनं । जनय ।

विश्वचारे ॥ १९ ॥



प्रचि॒त्रस॒मं उ॒पसो॒ वह॑न्तीजा॒नाय॑ शश॒मानाय॑ भ॒द्रम् ।

ततो॑ मि॒त्रो वर॑णो ना॒नह॑न्ता॒ अदि॑तिः॒ सि॒न्धुः पृथि॑वी उ॒न योः ॥ २० ॥ ४ ॥

॥ ११४ ॥ अदि-अदित्य कुम्भ । देवता-रत्न । छत्र-जगती ॥

॥११४॥ इ॒मा ल॒जाय॑ त॒वसे॑ क॒पदि॑ने॒ क्षय॑त्री॒राय॑ प्र भ॒रामहे॑ स॒तीः ।

य्या॒ गज॑सु॒द्वि॒पदे॑ च॒तुष्प॑दे॒ वि॒धं पु॒ष्टं प्रा॑ने॒ अस्मि॑न्नानु॒रम् ॥ १ ॥

मु॒खा नो॑ र॒तेन॑ नो॒ नर॑स्तु॒त्रि क्षय॑त्री॒राय॑ नम॒सा वि॑धेम ते ।

द॒त्तं च॒ प्रोथ॑ र॒तुराथ॑ जे पि॒ता तद॑स्यास॒ तव॑ रु॒द्र प्र॑णी॒तियु ॥ २ ॥

भा॒यास॑ ते सु॒सति॑ दे॒वय॑ज॒त्रया॑ क्षय॒त्रीर॑य॒ तव॑ रु॒द्रसी॑द्वः ।

मु॒खाय॑ति॒दि॒नो अ॒स्ता॒ना॒ना प्र॒सारि॑ष्ठ॒वीरा॑ लु॒हदा॑स॒ ते रु॒द्रिः ॥ ३ ॥

ते॒न व॒यं रु॒द्रं द॑त्त॒साथ॑ धे॒नुं न॒दि॒सव॑से॒ नि द॑या॒नहे॑ ।

यो॒ अ॒स्मद॑य॒यं हे॒ळो अ॒र॒तु सु॒सति॑भि॒द्र॒द॒न॒स्या वृ॑णीमहे ॥ ४ ॥

---

प्रचि॒त्रं । अ॒सोः । उ॒पसोः । वह॑न्ति । इ॒जा॒नाय॑ । न॒ज॒मा॒नाय॑ । भ॒द्रं । तन् । नः ।  
मि॒त्रः । वर॑णः । ना॒नह॑न्ता । अ॒दि॒तिः । सि॒न्धुः । पृथि॑वी । उ॒न । योः ॥ २० ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि व्हयामहे ।

हस्ते विभ्रंद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।

रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मनें तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सद्वित्त्वां ह्वामहे ॥ ८ ॥

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुन्नमस्मे ।

भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥

दिवः । वराहं । अरुषं । कपर्दिनं । त्वेषं । रूपं । नमसा । नि । व्हयामहे । हस्ते ।

विभ्रत् । भेषजा । वार्याणि । शर्म । वर्म । छर्दिः । अस्मभ्यं । यंसत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

इदं । पित्रे । मरुतां । उच्यते । वचः । स्वादोः । स्वादीयः । रुद्राय । वर्धनं । रास्वं ।

च । नः । अमृत । मर्तभोजनं । त्मनें । तोकाय । तनयाय । मृळ ॥ ६ ॥ मा । नः ।

महान्तं । उत । मा । नः । अर्भकं । मा । नः । उक्षन्तं । उत । मा । नः । उक्षितं ।

मा । नः । वधीः । पितरं । मा । उत । मातरं । मा । नः । प्रियाः । तन्वः । रुद्र ।

रिषः ॥ ७ ॥ मा । नः । तोके । तनये । मा । नः । आयौ । मा । नः । गोषु ।

मा । नः । अश्वेषु । रिषः । वीरान् । मा । नः । रुद्र । भामितः । वधीः । हविष्मन्तः ।

सद्वं । इत् । त्वा । ह्वामहे ॥ ८ ॥ उप । ते । स्तोमान् । पशुपाः । इव । आ । अकरं ।

रास्वं । पितः । मरुतां । सुन्नं । अस्मे इति । भद्रा । हि । ते । सुमतिः । मृळयन्त्तमा ।

अथा । वयं । अवः । इत् । ते । वृणीमहे ॥ ९ ॥

आ॒रं॑ ते॒ गो॒म॒सु॒त पू॒रु॒ष॒घ्नं॑ क्ष॒यं॒ञ्जी॒र सु॒न्नम॒स्मे ते॑ अ॒स्तु ।

सृ॒ज्जा च॑ नो॒ अ॒धि च॑ ब्रू॒हि दे॒वाधा॑ च नः॒ शर्म॑ यच्छ॒ द्वि॒व॒हीः ॥ १० ॥

अ॒द्यो॒चास॒ नमो॑ अ॒स्मा अ॒व॒स॒य॒वः॑ नृ॒णोतु॑ नो॒ हव॑ र॒द्रो म॒रु॒त्वा॒न् ।

त॒सो॑ वि॒त्रो व॒रु॒णो म्मा॒म॒ह॒न्ता॒म॒दि॒तिः॑ लि॒धुः पृ॒थि॒वी उ॒त योः ॥ ११ ॥ ६ ॥

। ११५ ॥ वि॒दि-आ॒दि॒त् क॒त्त । दे॒वता-स्य॑ । उ॒त-वि॒द्यु ॥

॥ ११५ ॥ वि॒त्रं दे॒वाना॑मु॒द्गा॒दनी॑कं चक्षु॒र्भित्र॑स्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः ।

आ॒प्रा द्या॒वा॒पृथि॒वी अ॒न्त॒रि॒क्षं सूर्य॑ आ॒त्मा ज॒ग॒त॒स्त॒स्थु॒र्ष॒थ ॥ १ ॥

स॒यो दे॒वीसु॑प॒त्तं रो॒च॑मा॒तां स॒यो न योषा॑म॒भ्येति॑ प॒थ्यात् ।

य॒त्रा न॒रो दे॒व॒य॒न्तो॑ यु॒गा॒नि वि॒त॒न्व॒ते प्र॒ति भ॒द्रार्थ॑ भ॒द्रस् ॥ २ ॥

भ॒द्रा अ॒ग्ना॑ ह॒रि॒तः सूर्य॑स्य॒ वि॒त्रा ए॒त॒न्वा अ॒नु॒मा॒चा॒सः ।

न॒म॒स्य॒न्तो॑ दि॒व आ॑ पृ॒ष्ठ॒सं॒स्थुः॑ परि॒ द्या॒वा॒पृथि॒वी य॑न्ति स॒वः ॥ ३ ॥

आ॒रं । ते॒ । गो॒म॒सु॒त । पू॒रु॒ष॒घ्नं॑ । क्ष॒यं॒ञ्जी॒र । सु॒न्नं । अ॒रं इति॑ । ते॒ । अ॒स्तु॒ ।

सृ॒ज्जा । च॑ । नः॒ । अ॒धि । च॑ । ब्रू॒हि । दे॒व । अ॒धा॑ । च॑ । नः॒ । शर्म॑ । यच्छ॒ । द्वि॒व॒हीः

॥ १० ॥ अ॒द्यो॒चास॑ । नमो॑ । अ॒र॒मै । अ॒व॒स॒य॒वः॑ । नृ॒णोतु॑ । नः॒ । हव॑ । र॒द्रः । म॒रु॒त्वा॒न् ।

त॒सो॑ । वि॒त्रः । व॒रु॒णः । म्मा॒म॒ह॒न्ता॒म॒ । अ॒दि॒तिः॑ । लि॒धुः । पृ॒थि॒वी । उ॒त । योः

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।  
यदेदशुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥  
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योः उपस्थे ।  
अनन्तमन्यद्रुशंसस्य पाजः कृष्णमन्यहरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥  
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।  
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६॥

### ॥ सप्तदशोऽनुवाकः ॥

॥ ११६ ॥ ऋषि-कवीवन् । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ ११६ ॥ नासत्याभ्यां वहिरेव प्र वृञ्जे स्तोमां इयन्पेभ्रियेव वातः ।  
चावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवां न्यूहन् रथेन ॥ १ ॥  
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।  
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्ये प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

तत् । सूर्यस्य । देवत्वं । तत् । महित्वं । मध्या । कर्तोः । विततं । सं । जभार ।  
यदा । इत् । अशुक्त । हरितः । सधस्थात् । आत् । रात्री । वासः । तनुते ।  
सिमस्मै ॥ ४ ॥ तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिचक्षे । सूर्यः । रूपं । कृणुते ।  
द्योः । उपस्थे । अनन्तं । अन्यत् । रुशंसस्य । अस्य । पाजः । कृष्णं । अन्यत् । हरितः ।  
सं । भरन्ति ॥ ५ ॥ अद्य । देवाः । उद्विता । सूर्यस्य । निः । अंहसः । पिपृता ।  
निः । अवद्यात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्तां । अदितिः । सिन्धुः ।  
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ६ ॥ ७ ॥ १६ ॥

नासत्याभ्या । वहिरेवः । प्र । वृञ्जे । स्तोमान् । इयन्पि । अभ्रियांश्च ।  
वातः । यौ । अर्भगाय । विमदाय । जायां । सेनाजुवां । निड्रहन्तुः । रथेन ॥ १ ॥  
वीळुपत्मंभिः । आशुहेमंभिः । वा । देवानां । वा । जूतिभिः । शाशदाना । तत् ।  
रासभः । नासत्या । सहस्रं । आजा । यमस्ये । प्रधने । जिगाय ॥ २ ॥

तुग्रो ह भुज्युमभिनोदमेवे रयिं न कश्चिन्मसृवाँ अवाहाः ।

तमहधुनौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षमुद्भिरपौदकाभिः ॥ ३ ॥

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहधुः पतङ्गैः ।

समुद्रस्य धन्वन्नाद्रस्य पारे त्रिभी रथैः गतपद्भिः षळ्ळवैः ॥ ४ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।

यदभिनो जहधुभुज्युमस्तं गतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ ८ ॥

यमभिनो ददधुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।

तद्यो दात्रं महिं कीर्तन्त्यं भूत्पैद्रो वाजी सदमिहव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते पञ्जिषाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिसम् ।

कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णाः गतं कुंभाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

तुग्रो । ह । भुज्युं । अभिना । उदमेवे । रयिं । न । कः । चिन् । मसृवान् । अवाँ ।

आहा । तं । जहधुः । नौभिः । आत्मन्वतीभिः । अंतरिक्षमुद्भिः । अप-

पौदकाभिः ॥ ३ ॥ तिस्रः । क्षपः । त्रिः । अहा । अतिव्रजन्भिः । नामन्या ।

सृज्यं । जहधुः । पतंगैः । समुद्रस्य । धन्वन् । आद्रस्य । पारे । त्रिभिः । रथैः ।

गतपद्भिः । पद्अश्वैः ॥ ४ ॥ अनारंभणे । तत् । अवीरयेथां । अनास्थाने ।

अग्रभणे । समुद्रे । यत् । अभिनो । जहधुः । भुज्युं । अस्तं । गतअंग्रिया । नावम् ।

आ । तस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ ८ ॥ यं । अभिना । ददधुः । श्वेतं । अश्वं । अघाश्वाय ।

शश्वद् । इत् । स्वस्ति । तत् । वां । दात्रं । महिं । कीर्तन्त्यं । भूत् । पैद्रः । वाजी ।

सदम् । इत् । र्यः । अर्यः ॥ ६ ॥ युवं । नरा । स्तुवते । पञ्जिषाय । कक्षीवते ।

अरदतं । पुरन्धिसम् । कारोतरान् । शफान् । अश्वस्य । वृष्णाः । गतं । कुंभान् । असिञ्चतं ।

सुरायाः ॥ ७ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० ९,१० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११६

हिमेनाग्निं ग्रंसमवारयेथां पितुसतीसूर्जसस्मा अयत्तं ।  
ऋवीसे अत्रिमश्विनावनीतसुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वरित ॥ ८ ॥  
परावतं नासत्यानुदेथासुच्चावुधं चक्रथुजिह्ववारम् ।  
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृप्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥  
जुजुरुषो नासत्योत वत्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।  
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्मादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥ ९ ॥  
तद्धौ नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरुथम् ।  
यद्विद्वासां निधिमिवापगूळहसुदर्शतादुपथुर्वंदनाय ॥ ११ ॥  
तद्धौ नरा सनये दंसं उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।  
दध्यद् ह यन्मध्वाथर्वणो वासश्वस्य जीर्णा प्र यदीसुवाच ॥ १२ ॥

हिमेन । अग्निं । ग्रंसं । अवारयेथां । पितुऽमती । ऊर्ज । अस्मै । अयत्तं । ऋवीसे ।  
अत्रिं । अश्विना । अर्वऽनीतं । उत । निन्न्यथुः । सर्वऽगणं । स्वरित ॥ ८ ॥ परां ।  
अवतं । नासत्या । अनुदेथां । उच्चाऽवुधं । चक्रथुः । जिह्वऽवारं । क्षरन् । आपः ।  
न । पायनाय । राये । सहस्राय । तृप्यते । गोतमस्य ॥ ९ ॥ जुजुरुषः । नासत्या ।  
उत । वत्रिं । प्र । अमुञ्चतं । द्रापिऽइव । च्यवानात् । प्र । अतिरतं । जहितस्यं ।  
आयुः । दस्मा । आत् । इत् । पतिं । अकृणुतं । कनीनां ॥ १० ॥ ९ ॥ तत् । वां ।  
नरा । शंस्यं । राध्यं । च । अभिष्टिऽपत् । नासत्या । वरुथं । यत् । विद्वासां ।  
निधिऽइव । अपऽगूळहं । उत । दर्शतात् । उपथुः । वंदनाय ॥ ११ ॥ तत् । वां । नरा ।  
सनये । दंसं । उग्रं । आन्निः । कृणोमि । तन्यतुः । न । वृष्टिं । दध्यद् । ह । यन् ।  
मधुं । आथर्वणः । वा । अश्वस्य । जीर्णा । प्र । यत् । ईं । उवाच ॥ १२ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १०,११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११६

अजोहवीनासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः ।

तं तच्छासुरिव वधिसत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥

आसो वृकस्य वर्तिकाभिके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।

उनो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥

चरित्रं हि वेरिवाच्छंदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।

नयो जघामागंसीं विष्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥ १० ॥

गतं मेघान्मुक्त्यै चक्षदानमृज्जाद्वं तं पितान्धं चकार ।

तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दत्ता भिपजावनर्वन् ॥ १६ ॥

आ वां रथं दृहिता सूर्यस्य कार्ष्णीवातिप्रदर्वता जयन्ती ।

विश्वे देवा अन्वमन्यन्त दृद्धिः समु श्रिया नासत्या सन्धे ॥ १७ ॥

अजोहवीन् । नासत्या । करा । वां । महे । यामन् । पुरुभुजा । पुरन्धिः । श्रुतं ।

नन् । गानुःश्व । वधिसत्याः । हिरण्यहस्तं । अश्विनौ । अदत्तं ॥ १३ ॥ आसः ।

वृकस्य । वर्तिका । अभीके । युवं । नरा । नासत्या । अमुमुक्तं । उनो इति । कविं ।

पुरुभुजा । युवं । ह । कृपमाणं । अकृणुतं । विचक्षे ॥ १४ ॥ चरित्रं । हि । दे-

शंदि । अच्छंदि । पर्णं । आजा । खेलस्य । परितक्म्याया । सद्यः । जयां । आयर्मां ।

विष्पलायै । धने । हिते । सर्तवे । प्रति । अधत्तं ॥ १५ ॥ १० ॥ गतं । मेघान् ।

मुक्त्यै । चक्षदानं । मृज्जाद्वं । तं । पिता । अंधं । चकार । तस्मा । अक्षी इति ।

नासत्या । विचक्षे । आ । अधत्तं । दत्ता । भिपजा । अनर्वन् ॥ १६ ॥ आ । वां ।

रथं । दृहिता । सूर्यस्य । कार्ष्णीश्व । अतिप्रद्व । अर्वता । जयन्ती । विश्वे । देवाः ।

अन्व । अन्यन्तं । हृद्भिः । सं । जइति । श्रिया । नासत्या । सन्धे । इति ॥ १७ ॥

अहृ० १ अध्या० ८ व० ११, १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११ ]

यद्यातं दिवोदासाय वर्तिर्भरच्छाजायाश्विना ह्यन्ता ।

रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

रथिं सुक्षत्रं स्वपत्यमार्युः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।

आ जहावीं समनसोप वाजैस्त्रिरहो भागं दधतीश्वानम् ॥ १९ ॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तंमूहथू रजोभिः ।

विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयू अयातम् ॥ २० ॥ ११ ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना मनये सहस्रां ।

निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पानवे वाः ।

शयवे चित्रासत्या शचीभिर्जसुरये स्तये पिन्वथुर्गाम् ॥ २२ ॥

यत् । अयातं । दिवः । दासाय । वर्तिः । भरत्स्वाजाय । अश्विना । ह्यन्ता । रेवत् ।

उवाह । सचनः । रथः । वां । वृषभः । च । शिशुमारः । च । युक्ता ॥ १८ ॥

रथिं । सुक्षत्रं । सुअपत्यम् । आर्युः । सुवीर्यं । नामत्या । वहन्ता । आ । जहावीं ।

समनसा । उप । वाजैः । त्रिः । अहः । भागं । दधतीं । अयातं ॥ १९ ॥

परिविष्टं । जाहुषं । विश्वतः । सीं । सुगेभिः । नक्तं । ऊहथुः । रजोभिः । विभि-

न्दुना । नासत्या । रथेन । वि । पर्वतान् । अजरयू इति । अयातं ॥ २० ॥ ११ ॥

एकस्याः । वस्तोः । आवतं । रणाय । वशं । अश्विना । मनये । सहस्रां । तिः ।

अहतं । दुच्छुनाः । इन्द्रवन्ता । पृथुश्रवसः । वृषणां । अवरातीः ॥ २१ ॥ शरस्य ।

चिन् । आर्चत्कस्यं । अवतान् । आ । नीचान् । उच्चा । चक्रथुः । पानवे । वाग्निः ।

वा । शयवे । चित्रासत्या । शचीभिः । जसुरये । स्तये । पिन्वथुः । गां ॥ २२ ॥



अवत्यते स्तुवते कृष्णिषाय ऋजुयते नासत्या गर्चीभिः ।

पशुं न नष्टमिव दग्नीनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥

दश रात्रीरशिवेना नव द्यून्वन्द्धं श्रथितमप्स्वदन्तः ।

विष्टं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेणं ॥ २४ ॥

प्र वां दंतांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवंः सुवीरः ।

उत् पश्यन्नश्रुवन्दीर्घमायुरस्तमिद्वेज्जरिमाणं जगस्याम् ॥ २५ ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ ऋषि-ऋशीवान् । देवता-अश्विनौ । दन्व-विष्णुः ॥

॥ ११७ ॥ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रलो होना विद्यास्तने वां ।

वृत्तिर्मनी रानिविश्रिता गिरिषा यातं नासत्योप दाजंः ॥ १ ॥

यो वामश्विना मनसो जवीयान्नथः स्वश्वो विश आजिगानि ।

येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्निरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

अवत्यते । स्तुवते । कृष्णिषाय । ऋजुयते । नासत्या । गर्चीभिः । पशुं । न ।

नष्टमिव । दग्नीनाय । विष्णाप्वं । ददथुः । विश्वकाय ॥ २३ ॥ दश । रात्रीः

अश्विनेन । नव । द्यून् । अर्धद्वन्द्वं । श्रथितं । अप्सु । अंतरिति । विष्टं । रेभं ।

उदनि । प्रवृक्तं । उन् । निन्यथुः । सोमस्य । स्रुवेणं ॥ २४ ॥ प्र । वा । दंतांसि ।

अष्ट० ३ अध्या० ८ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११७

ऋषिं नरावहंसः पाञ्चजन्यमृवीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।

मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥

अश्वं न गूळहमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।

सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पृर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥

सुषुप्वांसं न निऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्त्रा तमसि क्षियन्तम् ।

शुभे रुक्मं न दर्शतं निःखात्सुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥

तद्रां नरा शंस्यं पञ्जियेणं कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भां असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते कृष्णिषार्यं विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।

घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तं ॥ ७ ॥

ऋषिं । नरा । अहंसः । पाञ्चजन्यं । ऋवीसात् । अत्रिं । मुञ्चथः । गणेन । मिनन्ता ।  
दस्योः । अशिवस्य । मायाः । अनुऽपूर्वं । वृषणा । चोदयन्ता ॥ ३ ॥ अश्वं । न ।

गूळहं । अश्विना । दुःऽएवैः । ऋषिं । नरा । वृषणा । रेभं । अप्ऽप्सु । सं । तं ।  
रिणीथः । विऽप्रुतं । दंसःऽभिः । न । वा । जूर्यति । पृर्व्या । कृतानि ॥ ४ ॥

सुषुप्वासं । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे । सूर्यं । न । दस्त्रा । तमसि । क्षियन्तं ।  
शुभे । रुक्मं । न । दर्शतं । निऽखात् । उत् । ऊपथुः । अश्विना । वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥

तत् । वां । नरा । शंस्यं । पञ्जियेणं । कक्षीवता । नासत्या । परिऽज्मन् । शफात् ।  
अश्वस्य । वाजिनः । जनाय । शतं । कुम्भान् । असिञ्चतं । मधूनां ॥ ६ ॥ युवं ।

नरा । स्तुवते । कृष्णिषार्यं । विष्णाप्वं । ददथुः । विश्वकाय । घोषायै । चित् ।  
पितृऽषदे । दुरोणे । पतिं । जूर्यन्त्या । अश्विनौ । अदत्तं ॥ ७ ॥

युषं श्यावाय रशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।  
 प्रजाच्यं तद्वृषणा कृतं वा यत्राषिदाय श्रवो अध्यर्धत्सम् ॥ ८ ॥  
 पुरु वपरियश्विना दधाना नि पेदव जहथुराशुमश्वम् ।  
 सहस्रमां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यशन्तरुत्रम् ॥ ९ ॥  
 एतानि वां श्रवस्या सुदान् ब्रह्माङ्गुषं सदनं रोदस्योः ।  
 यत्रां प्रजासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजं ॥ १० ॥ १४ ॥  
 एतानिनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।  
 अगत्य ब्रह्मणा वावृधाना सं विशपलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥  
 यातां सुदृति काध्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।  
 दिग्ण्यस्य कलशं निखातमुद्वृषथुर्दशमे अश्विनाहन ॥ १२ ॥

युषं । श्यावाय । रशतीं । अदत्तं । महः । क्षोणस्य । अश्विना । कण्वाय । प्रजाच्यं ।  
 वृषणा । कृतं । वा । यत् । नासिदाय । श्रवः । अर्धिऽअर्धत्तं ॥ ८ ॥ पुरु ।  
 एतानि । अश्विना । दधाना । नि । पेदव । जहथुः । आशुं । अश्वं । सहस्रमां ।  
 वाजिनं । अप्रतीत्तं । अहिऽहनं । श्रवस्यं । तरुत्रं ॥ ९ ॥ एतानि । वां । श्रवस्या ।  
 सुदान् इति सुदान् । ब्रह्मं । आङ्गुषं । सदनं । रोदस्योः । यत् । वा । प्रजासोः ।  
 यत्रां । हवन्ते । यातं । इषा । च । विदुषे । च । वाजं ॥ १० ॥ १४ ॥ एतानि ।  
 अश्विना । गृणाना । वाजं । विप्राय । भुरणा । रदन्ता । अगत्य । ब्रह्मणा ।  
 वावृधाना । सं । विशपलां । नासत्या । अरिणीतं ॥ ११ ॥ कुहं । यातां । सुदृति ।  
 दिग्ण्यं । दिवः । नपाता । वृषणा । शयुत्रा । दिग्ण्यस्यऽइव । कलशं । निखातं ।  
 उद्वृषथुः । दशमे । अश्विना । अहन ॥ १२ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० १७ ]

यु॒वं च्य॒वान॑स॒श्विना॒ ज॒रन्तं॑ पु॒नर्यु॒वानं॑ च॒क्रथुः॑ श॒चीभिः॑ ।

यु॒वो रथं॑ दु॒हिता॒ सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑स॒त्यावृ॑णीत ॥ १३ ॥

यु॒वं तु॒ग्राय॑ पृ॒र्व्येभि॒रेवैः पु॒नर्म॒न्याव॑भवतं यु॒वाना॑ ।

यु॒वं भु॒ज्यु॒मर्ण॑सो॒ निः स॑मु॒द्राद्भि॒रुह॑थु॒र्कजे॑भि॒रश्वैः॑ ॥ १४ ॥

अ॒जो॒हवी॑द॒श्विना॒ तौग्र॑यो वां प्रो॒ळ्हः स॑मु॒द्रम॒व्यथि॑र्जग॒न्वान् ।

नि॒ष्टमू॑ह॒थुः सु॒युजा॒ रथे॑न॒ मनो॑जवसा वृ॒षणा॒ स्वस्ति॑ ॥ १५ ॥ १५ ॥

अ॒जो॒हवी॑द॒श्विना॒ वर्ति॑का वा॒मस्तो॑ यत्सी॒ममु॑ञ्चतं वृ॒कस्य॑ ।

वि॒ ज॒युषा॑ य॒यथुः॑ सा॒न्वद्रै॑र्जा॒तं वि॒ष्वाचो॑ अ॒हतं॑ वि॒षेण॑ ॥ १६ ॥

श॒तं मे॒षान्वृ॑क्ये॒ माम॒हानं॑ त॒मः प्र॑णी॒तम॑शिवेन पि॒त्रा ।

आ॒क्षी ऋ॒ज्राश्वे॑ अ॒श्विना॑व॒धत्तं॑ ज्योति॒रन्धा॑यं च॒क्रथु॑र्वि॒चक्षे॑ ॥ १७ ॥

यु॒वं । च्य॒वानं॑ । अ॒श्विना॒ । ज॒रन्तं॑ । पु॒नः । यु॒वानं॑ । च॒क्रथुः॑ । श॒चीभिः॑ । यु॒वोः । र  
दु॒हिता॑ । सूर्य॑स्य । स॒ह । श्रि॒या । ना॒स॒त्या । अ॒वृ॒णीत॑ ॥ १३ ॥ यु॒वं । तु॒ग्रा

पृ॒र्व्येभिः॑ । ए॒वैः । पु॒नःऽम॒न्यौ । अ॒भव॑तं । यु॒वाना॑ । यु॒वं । भु॒ज्युं । अ॒र्णसः॑ । नि  
स॒मु॒द्रात् । वि॒ऽभिः॑ । उ॒ह॒थुः । ऋ॒जेभिः॑ । अ॒श्वैः ॥ १४ ॥ अ॒जो॒हवी॑त् । अ॒श्वि

तौग्र॑यः । वा । प्रऽऊ॒ळ्हः । स॒मु॒द्रं । अ॒व्यथिः॑ । ज॒ग॒न्वान् । निः । तं । उ॒ह॒थुः  
सु॒ऽयुजा॑ । रथे॑न । मनःऽजवसा । वृ॒षणा॑ । स्व॒स्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥ अ॒जो॒हवी॑

अ॒श्विना॒ । वर्ति॑का । वां । आ॒स्तः । यत् । सीं । अ॒मु॑ञ्चतं । वृ॒कस्य॑ । वि । ज॒युष॑  
य॒यथुः॑ । सा॒नुं । अ॒द्रेः । जा॒तं । वि॒ष्वाचः॑ । अ॒हतं॑ । वि॒षेण॑ ॥ १६ ॥ श॒तं । मे॒षान् । वृ

म॒म॒हानं॑ । त॒मः । प्र॑णी॒तं । अ॒शिवे॑न । पि॒त्रा । आ । अ॒क्षी इति॑ । ऋ॒ज्राश्वे॑ । अ॒श्विन्  
अ॒धत्तं॑ । ज्योतिः॑ । अ॒न्धायं॑ । च॒क्रथुः॑ । वि॒ऽचक्षे॑ ॥ १७ ॥

गुनमन्धाय भरमहयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।

जारः कर्नानं इव चक्षेदान ऋज्ज्वाश्वः शनमेकं च सेवान् ॥ १८ ॥

मदी वामृतिरश्विना मयोभृरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।

अथां युवामिदं हयत्पुरंन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥

अथेनुं दसा स्तर्यंन्विषंक्तामपिन्वतं शयवै अश्विना गाम् ।

युवं शचीभिर्विमदायं जार्यां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योपांस् ॥ २० ॥ १६ ॥

ययं वृषणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुपाय दसा ।

अभि दर्युं वकुरेणा धमन्तारु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

आपर्वणार्याश्विना दधीचेऽश्च्यं शिरः प्रत्येऽरयतम् ।

म वां मधु प्र वांचदतायन्त्वाप्रं यदंस्त्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

गुने । अन्धाय । भरं । अहयत् । सा । वृकीः । अश्विना । वृषणा । नरां । इति ।

जारः । कर्नानंऽइव । चक्षेदानः । ऋज्ज्वाश्वः । शतं । एकं । च । सेवान् ॥ १८ ॥

मदी । वा । वृतिः । अश्विना । मयःऽभूः । उत । स्रामं । धिष्ण्या । सं । रिणीथः ।

अथां । युवा । इत् । अहयन् । पुरंऽधिः । आ । अगच्छतं । सीं । वृषणां । अवःऽभिः ॥ १९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १७, १८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११ ]

सदां कवी सुमतिमा चक्रे वां विद्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।

अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वधिमत्या अदत्तम् ।

त्रिधां ह श्यावंमश्विना विकस्तमुज्जीवसं ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥

एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्याण्यायवोऽवोचन् ।

ब्रह्मं कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरांसो विदधमा वदेम ॥ २५ ॥ १७ ॥

॥ ११८ ॥ ऋषि - कक्षीवान् । देवता - अश्विनौ । छन्दः - त्रिष्टुप् ॥

॥ ११८ ॥ आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वा

यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वानरंहाः ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।

पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

सदां । कवी इति । सुऽमति । आ । चक्रे । वा । विश्वाः । धियः । अश्विना । प्र  
अवतं । मे । अस्मे इति । रयिं । नासत्या । बृहन्तं । अपत्यऽसाचं । श्रुत्यं । ररा  
॥ २३ ॥ हिरण्यहस्तं । अश्विना । रराणा । पुत्रं । नरा । वधिमत्याः । अदत्तं  
त्रिधां । ह । श्यावं । अश्विना । विकस्तं । उत् । जीवसं । ऐरयतं । सुदानू  
सुदानू ॥ २४ ॥ एतानि । वां । अश्विना । वीर्याणि । प्र । पूर्याणि । आयवो  
अवोचन् । ब्रह्मं । कृण्वन्तः । वृषणा । युवभ्यां । सुवीरांसः । विदधं । अ  
वदेम ॥ २५ ॥ १७ ॥

आ । वा । रथः । अश्विना । श्येनपत्वा । सुऽमृळीकः । स्वऽवान् । यात्  
अर्वाक् । यः । मर्त्यस्य । मनसः । जवीयान् । त्रिवन्धुरः । वृषणा । वान  
रंहाः ॥ १ ॥ त्रिवन्धुरेण । त्रिवृता । रथेन । त्रिचक्रेण । सुवृता । आ । या  
अर्वाक् । पिन्वतं । गाः । जिन्वतं । अर्वतः । नः । वर्धयतं । अश्विना । वी  
अस्मे इति ॥ २ ॥

प्रययांसना सुवृता रथेन दन्त्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।

किमद् वां प्रन्यथेति गमिष्टाहुविंप्रांसो अश्विना पुगजाः ॥ ३ ॥

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तासं आगवः पतङ्गाः ।

ये अप्पुरो दिव्यासो न गृध्रा अग्नि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

आ वां रथं युवतिरितष्टदत्र जुष्टी नरा इतिता त्वर्यस्य ।

पतिं यामश्वा वधुपः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुपा अभीके ॥ ५ ॥ १८ ॥

दन्तनमसं दंमनाभिमद्रेभं दन्त्रा घृषणा गर्त्राभिः ।

निष्टांघ्रं पारथथः नमुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

युवमत्रयेऽथर्नाताय तममृर्जमोमानमश्विनावधत्ताम् ।

सुर्यं वाणदायापिरिस्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

प्रययांसना । सुवृता । रथेन । दन्त्रा । विमं । शृणुतं । श्लोकं । अद्रेः । किं । अंग ।

वा । प्रति । अर्थेति । गमिष्टा । आहुः । विंप्रांसः । अश्विना । पुगजाः ॥ ३ ॥

आ । वा । श्येनासः । अश्विना । वांतु । रथे । युक्तासः । आगवः । पतङ्गाः । ये ।

अप्पुरोः । दिव्यासः । न । गृध्राः । अग्नि । प्रयोः । नासत्या । वहन्ति ॥ ४ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११८

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्याय ।

अमुञ्चतं वर्तिकासंहसो निः प्रति जङ्घां विष्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिश्रुतिसुग्रं सहस्रसां वृषणं वीळुङ्गं ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नार्धमानाः ।

आ न उप वसुमता रथेन गिरौ जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।

हवै हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उपसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥

---

युवं । धेनुं । शयवे । नाधिताय । अपिन्वतं । अश्विना । पूर्याय । अमुञ्चतं । वर्तिका ।  
असंहसः । निः । प्रति । जङ्घां । विष्पलायाः । अधत्तं ॥ ८ ॥ युवं । श्वेतं । पेदव ।  
इन्द्रजूतं । अहिहनं । अश्विना । अदत्तं । अश्वं । जोहूत्रं । अर्यः । अभिश्रुतिं । सुग्रं ।  
सहस्रसां । वृषणं । वीळुङ्गं ॥ ९ ॥ ता । वा । नरा । सु । अवसे । सुजाता ।  
हवामहे । अश्विना । नार्धमानाः । आ । नः । उप । वसुमता । रथेन । गिरः ।  
जुषाणा । सुविताय । यातं ॥ १० ॥ आ । श्येनस्य । जवसा । नूतनेन । अस्मे इति ।  
यातं । नासत्या । सजोषाः । हवै । हि । वा । अश्विना । रातहव्यः । शश्वत्त-  
मायाः । उपसः । व्युष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥



॥ ११९ ॥ ऋषिः-कधीवान् । देवता-अश्विनौ । छन्द-जगती ॥

॥११९॥ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।

सत्संकेतुं वनिनं शतद्वंसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

जुष्टां धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यभायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।

रवदानि धर्मं प्रति यन्त्युतय आ वामृजानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥

नं यन्मिधः परपृथानासो अग्मतं शुभे मग्ना अमिता जायवो रणे ।

युवोरहं प्रवणे चैकिते रथो यदश्विना वहधः नृरिमा वरं ॥ ३ ॥

युवं शुज्युं धुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।

यामिष्टं वर्तिष्टृषणा विजेत्यद्विवांदासाय महिं वेति वामवः ॥ ४ ॥

आ । वां । रथं । पुरु०ऽमायं । मनः०ऽजुवं । जीरा०ऽश्वं । य०ऽज्ञियं । जी०ऽवसे । हु०ऽवे ।

सत्सं०ऽकेतुं । वनिनं । शतद्व०ऽसुं । श्रुष्टी०ऽवानं । वरिवः०ऽश । अभि । प्रयः॥१॥

अष्ट० ? अध्या० ८ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० ? ७ सू० ११९

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणीं येमतुरस्य शर्ध्वम् ।  
आ वां पतित्वं सख्यायं जग्मुषी योषां वृणीत जेन्यां युवां पती ॥ ६ ॥ २० ॥  
युवं रेभं परिपूतेरुप्यथो हिमेन घर्मं परित्समत्रये ।  
युवं शयोर्वसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥  
युवं वन्दनं निऋतं जरण्यया रथं न दत्त्वा करणा समिन्वथः ।  
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्रं विधते दंसनां भुवत् ॥ ७ ॥  
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निवाधितम् ।  
स्वर्वतीरित उत्तीर्षुवोरहं चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥  
उत स्या वां मधुसन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।  
युवं दधीचो मन आ विवास्तथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥

युवोः । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजं । रथं । वाणी इति । येमतुः । अस्य । शर्ध्वम् ।  
आ । वां । पतित्वं । सख्यायं । जग्मुषीं । योषां । अहृणीत । जेन्यां । युवां । पती  
इति ॥ ६ ॥ २० ॥ युवं । रेभं । परिऽसूतेः । उरुप्यथः । हिमेन । घर्मं । परिऽसूतं ।  
अत्रये । युवं । शयोः । अवसं । पिप्यथुः । गविं । प्र । दीर्घेण । वन्दनः । तारि ।  
आयुषा ॥ ६ ॥ युवं । वन्दनं । निऽऋतं । जरण्यया । रथं । न । दत्त्वा । करणा ।  
सं । इन्वथः । क्षेत्रात् । आ । विप्रं । जनथः । विपन्यया । प्र । वा । अत्रं । विधते ।  
दंसनां । भुवत् ॥ ७ ॥ अगच्छतं । कृपमाणं । पराऽवति । पितुः । स्वस्यं । त्यजसा ।  
निऽवाधितं । स्वर्वतीः । इतः । उत्तीः । युवोः । अहं । चित्राः । अभीके । अभवन् ।  
अभिष्टयः ॥ ८ ॥ उत । स्या । वां । मधुसन् । मक्षिका । अरपन् । मदे । सोमस्य ।  
औशिजः । हुवन्यति । युवं । दधीचः । मनः । आ । विवास्तथः । अथ । शिरः ।  
प्रति । वां । अश्व्यं । वदत् ॥ ९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २१,२२ ] क्लीबः [ मण्ड० २ अनु० १७ सू० १२०

युवं पेदये पुनवारसध्विना सध्विना त्रितं मन्तानां दुधरय्यः ।

जयैरभिमुं पृतनारु दुधरं त्रुत्तमिन्दिदि कर्त्तुमीर्त्तु ॥ १० ॥ २१ ॥

॥ १२० ॥ मणि - कर्त्तुमी । देवता-कर्त्तुमी । हस्त-कर्त्तुमी ॥

॥ १२० ॥ का रांश्वजो-मिन्दिना दां को वां जोयं उक्तयोः ।

कथा दिशान्यप्रवेताः ॥ १ ॥

दिशान्नाविदुरः पृच्छेद्विद्वान्निव्यापरो अत्रेताः ।

तु विदु नते अन्ते ॥ २ ॥

ता दिशान्ना तयामहे यां ता ना दिशान्ना सन्तं योचन्तस्य ।

शशि-यन्तानो युराहुः ॥ ३ ॥

धि पृच्छामि पात्रया-स देवात्पर्यवृत्तस्य कर्त्तुमी ।

पात्रं च सारसो दुः च सन्दन्ता नः ॥ ४ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २२, २३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० १२०

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजन्ति पञ्चियो वाम् ।

प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

श्रुतं गायत्रं तक्वानस्याहं चिद्धि रिरिभाश्विना वाम् ।

आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरतंतंसतम् ।

ता नो वसु सुगोपा स्यातं पानं नो वृकादघ्रायोः ॥ ७ ॥

मा कस्मै धानमभ्यमित्रिणो नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।

स्तनाभुजां अशिञ्जीः ॥ ८ ॥

दुहीयन्मित्रधितये युवाकुं राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।

इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

प्र । या । घोषे । भृगवाणे । न । शोभे । यया । वाचा । यजन्ति । पञ्चियोः । वाम् ।

प्र । इषुऽयुः । न । विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥ श्रुतं । गायत्रं । तक्वानस्य । अहं । चिद्धि ।

हि । रिरिभं । अश्विना । वाम् । आ । आक्षी इति । शुभः । पती इति । दन् ॥ ६ ॥

युवं । हि । आस्तं । महः । रन् । युवं । वा । यत् । निऽअतंतंसतं । ता । नः । वसु

इति । सुऽगोपा । स्यातं । पानं । नः । वृकात् । अघऽयोः ॥ ७ ॥ मा । कस्मै । धानं ।

अभि । अमित्रिणं । नः । मा । अकुत्रं । नः । गृहेभ्यः । धेनवः । गुः । स्तनाभुजः ।

अशिञ्जीः ॥ ८ ॥ दुहीयन् । मित्रधितये । युवाकुं । राये । च । नः । मिमीतं ।

वाजवत्यै । इषे । च । नः । मिमीतं । धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १०१

अश्विनोरसनं रथमनुत्वं वाजिनीवताः ।

तेनाहं भूरिं चाकन ॥ १० ॥

अयं समह मा तनुष्याते जनां अनु ।

सोमपेयं सुत्रो रथः ॥ ११ ॥

अथ स्वमस्य निविंदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।

उभा ता वसिं नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

॥ अष्टादशोऽनुवाकः ॥

॥ १२१ ॥ ऋषिः ऋषीमान् । देवता-विदेदेव, -२३ । मन्त्र-विष्णु ॥

॥१२१॥ यदित्था नूँः पात्रं देवयतां श्रवद्भिरो अद्भिर्मां तुरण्यन् ।

प्र यदानद्विशा आ हर्म्यरथारः प्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥

रतंभीरु यार् स धरणं प्रपायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरां गोः ।

अनु र्वजां मत्तिपक्षक्षत् त्रां मेनामश्वरथ परिं मत्तरं गोः ॥ २ ॥

अश्विनोः । असनं । रथं । अनुत्वं । वाजिनीवताः । तेन । अहं । भूरिं । चाकन

॥ १० ॥ अयं । समह । मा । तनु । ष्याते । जनां । अनु । सोमपेयं । सुत्रः ।

रथः ॥ ११ ॥ अथ । स्वमस्य । निः । विदे । अभुञ्जतः । च रेवतः । उभा । ता ।

वसिं । नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २४, २५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२१

नक्षत्रवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु घ्नन् ।

तक्षद्वज्रं नियुतं तरतम्भद्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

अस्य मदे स्वयं दा ऋतायापीवृत्सुस्त्रियाणामनीकम् ।

यद्धं प्रसर्गे त्रिककुम्भिवर्तदप हुहो ज्ञानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणं शुरण्यू ।

शुचि यत्ते रेक्ण आर्यजन्त सवदुर्घायाः पयं उस्त्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममस्तु प्र रोच्यस्था उपसो न सूरः ।

इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुह्वयैः सुवेण सिञ्चञ्ज्रणाभि धाम ॥ ६ ॥

स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सुरो अध्वरे परि रोधना गोः ।

यद्धं प्रभासि कृत्व्याँ अनु घ्नन्निर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

नक्षत् । हवँ । अरुणीः । पूर्व्यं । राट् । तुरः । विशां । अंगिरसां । अनु । घ्नन् ।  
तक्षत् । वज्रं । नियुतं । तरतंभत् । द्या । चतुःस्पदे । नर्याय । द्विपादे ॥ ३ ॥  
अस्य । मदे । स्वयं । दाः । ऋताय । अपिऽवृत्तं । उस्त्रियाणा । अनीकं । यत् । हु ।  
प्रऽसर्गे । त्रिऽककुम्भं । निऽवर्तत् । अपं । हुहोः । ज्ञानुषस्य । दुरः । वरिति वः ॥ ४ ॥  
तुभ्यं । पयः । यत् । पितरौ । अनीता । राधः । सुरेतः । तुरणं । शुरण्यू इति ।  
शुचिं । यत् । ते । रेक्णः । आ । अर्यजन्त । सवःऽदुर्घायाः । पयः । उस्त्रि-  
यायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥ अधे । प्र । जज्ञे । तरणिः । ममस्तु । प्र । रोचि । अस्याः ।  
उपसः । न । सूरः । इन्दुः । येभिः । आष्ट । स्वऽइन्दुह्वयैः । सुवेण । सिञ्चन् ।  
ज्रणा । अभि । धाम ॥ ६ ॥ सुऽध्मा । यन् । वनऽधितिः । अपस्यात् । सूरः ।  
अध्वरे । परि । रोधना । गोः । यत् । हु । प्रऽभासि । कृत्व्याँ । अनु । घ्नन् । अन-  
विशे । पशुऽइषे । तुराय ॥ ७ ॥

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २५, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२ ]

अष्टा महो दिव आदो हरी इह वृन्नासाहंसभि योधान उत्सं ।

हरि यत्ते मन्दिनें वृक्षन्वृधे गोरंभसमद्रिभिर्वाताप्यस् ॥ ८ ॥

त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अहसान्नुषनीतसृभ्वां ।

धृन्वाय यत्रं पुगहृत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासिं वधैः ॥ ९ ॥

पुग यत्सुररत्नमसो अपीतिस्तमद्रिवः फलिगं हेनितस्य ।

गुष्णस्य त्रिस्परिहितं यदोजो दिवरपरि लुग्रयितं तदादः ॥ १० ॥ २५ ॥

अनु त्वा मही राजसी अचक्रे यावाक्षामां सदानामिन्द्र कर्मन् ।

त्वं पुत्रमाजयां निरास्तु महो वज्रैण सिष्वपो वराहुन् ॥ ११ ॥

मिमिन्द्र नर्यां यो अबो वृन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिंशान् ।

ये ते शाल्य उगनां मन्दिनें दाहृञ्जहणं णये तनक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

---

अष्टा । महो । दिवः । आदः । हरी इति । इह । वृन्नासाहंसं । अभि । योधानः ।  
उत्सं । हरि । यत् । ते । मन्दिनें । वृक्षन् । वृधे । गोरंभसं । मद्रिभिः ।  
वाताप्यं ॥ ८ ॥ त्वं । आयसं । प्रति । वर्तयः । गोः । दिवः । अहसानं । नुष-  
नीतसृभ्वां ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २६ । ऋग्वेदः मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२१

त्वं सूर० हरितो रामयो नृन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।

प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयंज्यून ॥ १३ ॥

त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।

प्र नो वाजान्रथ्योऽश्ववुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनुतायै ॥ १४ ॥

मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्राजप्रमहः समिषो वरन्त ।

आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्टास्ते सधमादः स्याम ॥ १५ ॥ २६ ॥ ८ ॥ १ ॥

त्वं । सूरः । हरितः । रामयः । नृन् । भरत् । चक्रं । एतशः । न । अयं । इन्द्र ।

प्रऽअस्य । पारं । नवतिं । नाव्यानां । अपि । कर्तं । अवर्तयः । अयंज्यून ॥ १३ ॥

त्वं । नः । अस्याः । इन्द्र । दुःऽहणायाः । पाहि । वज्रिवः । दुःऽतात् । अभीके । प्र ।

नः । वाजान् । रथ्यः । अश्ववुध्यान् । इषे । यन्धि । श्रवसे । सूनुतायै ॥ १४ ॥

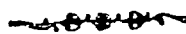
मा । सा । ते । अस्मत् । सुऽमतिः । वि । दसत् । राजऽप्रमहः । सं । श्वः । वरन्त ।

आ । नः । भज । मघवन् । गोषुं । अर्यः । मंहिष्टाः । ते । सधऽमादः । स्याम ।

॥ १५ ॥ २६ ॥ ८ ॥ १ ॥

इति प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ प्रथमाष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥





द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमं मण्डलम्

# ॥ ऋग्वेदः ॥

[ प्रथमोऽध्यायः ]

[ अष्टादशोऽनुवाकः ]

॥ १२२ ॥ ऋषि-रभीताम् । देवता-विदेव्या । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

॥१२२॥ प्र वः पान्तं रघुमन्यवाऽन्वां यज्ञं न्द्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।

दिवो अन्तोऽप्यसुरस्य वीरिंरिषुध्यैर्ध ममनो रोदस्योः ॥ १ ॥

पतीष पर्वहृतिं चाहृध्रध्या उपासानक्तां पुमथा विदानि ।

त्तर्गान्तां व्युतं वमाना त्र्यम्य त्रिया सुदृशां हिरण्यं ॥ २ ॥

ममत्तं नः परिज्मा वमर्हा ममत्तु वानां अपां पृषण्वान् ।

दिर्गानमिन्द्रापर्वना युवं नस्तज्ञां विश्वे वरियम्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥

इत त्या मे शगसां श्वेतनाथे व्यन्ता पान्तां गिजां हृदथे ।

प्र वो नपांत्तमपां तृणुध्वं प्र मानरां रास्तिनस्यायां ॥ ४ ॥

आ वाँ स्वण्युमौशिजो हुवध्वै घोषैव शंसमर्जुनस्य नंशै ।  
 प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥  
 श्रुतं मे मित्रावरुणा ह्वेसोत श्रुतं सदनै विश्वतः सीम् ।  
 श्रोतुं नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥  
 स्तुपे सा वाँ वरुण मित्र रातिर्गवाँ गता पृक्षयामेषु पञ्जे ।  
 श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टि निरुन्धानासो अगमन् ॥ ७ ॥  
 अरय स्तुषे महिषस्य राधः सर्वा सनेम नहुषः सुवीराः ।  
 जनो यः पञ्जेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मर्त्यं सूरिः ॥ ८ ॥  
 जनो यो मित्रावरुणावभिधुगपो न वाँ सुनोत्यक्षयाधुक् ।  
 स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदी होन्नाभिर्कृतावा ॥ ९ ॥

आ । वः । स्वण्यु । औशिजः । हुवध्वै । घोषाँश्च । शंसं । अर्जुनस्य । नंशै । प्र ।  
 वः । पूष्णे । दावनै । आ । अच्छे । वोचेय । वसुताति । अग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥  
 श्रुतं । मे । मित्रावरुणा । हवा । इमा । उत । श्रुतं । सदनै । विश्वतः । सीम् । श्रोतुं ।  
 नः । श्रोतुरातिः । सुश्रोतुः । सुक्षेत्रा । सिन्धुः । अत्सभिः ॥ ६ ॥  
 स्तुपे । सा । वाँ । वरुण । मित्र । रातिः । गवाँ । गता । पृक्षयामेषु । पञ्जे ।  
 श्रुतरथे । प्रियरथे । दधानाः । सद्यः । पुष्टि । निरुन्धानासः । अगमन् ॥ ७ ॥  
 अरय । स्तुषे । महिषस्य । राधः । सर्वा । सनेम । नहुषः । सुवीराः । जनः ।  
 यः । पञ्जेभ्यः । वाजिनीश्वात् । अर्धश्वतः । रथिनः । मर्त्यं । सूरिः ॥ ८ ॥  
 जनः । यः । मित्रावरुणौ । अभिधुक् । अपः । न । वा । सुनोति । अक्षयाधुक् ।  
 स्वयं । सः । यक्ष्मं । हृदये । नि । धत्ते । आप । यदी । होन्नाभिः । कृतावा ॥ ९ ॥

म व्रायतो गुरुो वंसुजतः जयस्तारो नरां नृत्तत्रयाः ।

विष्टरसिर्वीणि व्राज्जत्तया विन्वास्तु वृत्तु सृष्टिचरः ॥ १० ॥ २ ॥

अयं वनता नहुषो ह्यं नृपेः शोता राजानो अमृतस्य मन्त्राः ।

श्रोतुवो यदिरयस्य रायः प्रगस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

जं जयं धान यत्तं गयेरियवोचन्द्रगन्तयस्य नंगे ।

पुत्राणि वैशुं वृत्तुगोपी वारन्निने सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजं ॥ १२ ॥

मन्दासहे दगन्तयस्य धारोर्ध्वियज्य विभ्रतो यन्त्यतां ।

विमिद्वान्वं वृष्टरग्निरेण दैगागान्स्तनयं ऋजते वृत् ॥ १३ ॥

तिरण्यकर्णं मणिश्रीयमर्गन्ततो विश्वे वरिचरयन्तु देवाः ।

जयो गिरः स्य आ जग्मुपीरोत्ताश्रावन्तु भयंघग्मे ॥ १४ ॥

अंशु २ अथा १ व ३, ४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड १ अनु १८ सू १२३

चत्वारो मा मशर्शास्य शिष्वस्त्रयो राज्ञ आर्यवसस्य जिष्णोः ।  
रथो वा मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमंगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १२३ ॥ ऋषि-कर्शावान् । देवता-उषा । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १२३ ॥ पृथु रथो दक्षिणाया अयोज्येन देवासो अमृतांसो अस्थुः ।  
कृष्णाद्दुदस्थादर्या विहाया चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥  
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादवोधि जयन्ती वाजं वृहती सनुत्री ।  
उच्चा व्यख्यंशुवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहृतौ ॥ २ ॥  
यद्य भागं विभजासि नृभ्य उषा देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।  
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥  
गृह्णन्गृह्णन्ना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।  
सिषांसन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

चत्वारः । मा । मशर्शास्य । शिष्वः । त्रयः । राज्ञः । आर्यवसस्य । जिष्णोः । रथः ।  
वा । मित्रावरुणा । दीर्घाप्साः । स्यूमंगभस्तिः । सूरः । न । अद्यौत् ॥ ३ ॥

पृथुः । रथः । दक्षिणायाः । अयोजि । आ । एनं । देवासः । अमृतांसः ।  
अस्थुः । कृष्णात् । उत् । अस्थात् । अर्या । विहायाः । चिकित्सन्ती । मानुषाय ।  
क्षयाय ॥ १ ॥ पूर्वा । विश्वस्मात् । भुवनात् । अवोधि । जयन्ती । वाजं । वृहती ।  
सनुत्री । उच्चा । त्रि । व्यख्यत् । युवतिः । पुनःऽभूः । आ । उषाः । अगन् । प्रथमा ।  
पूर्वहृतौ ॥ २ ॥ यत् । अग्र । भागं । विभजासि । नृभ्यः । उषः । देवि ।  
मर्त्यत्रा । सुजाते । देवः । नः । अत्र सविता । दमूनाः । अनागसः । वोचति ।  
सूर्याय ॥ ३ ॥ गृह्णन्गृह्णन् । अहना । याति । अच्छ । दिवेदिवे । अधि । नाम ।  
दधाना । सिषांसन्ती । द्योतना । शश्वन् । आ । अगान् । अग्रमग्रं । इत् । भजते ।  
वसूनाम् ॥ ४ ॥

भ्रंशं॒ ग॒न्त॒न्ना॒ व॒शं॒ ग॒म्य॒ जा॒मि॒न्व॒पः॒ स॒न्नु॒ने॒ प्रथ॒मा॒ ज॒रं॒ ग॒च॒ ।  
प॒श्चा॒ स॒ दं॒श्या॒ यो॒ अ॒ग्र॒ग॒म्यं॒ धा॒ता॒ ज॒यं॒म॒ तं॒ द॒क्षि॒ण॒या॒ न्ये॒न ॥ ५ ॥ ४ ॥  
उ॒दी॒र॒तां॒ स॒न्नु॒ता॒ उ॒त्पु॒रं॒न्वा॒रु॒द॒श॒यः॒ शु॒शु॒चा॒ना॒सो॒ अ॒ग्नुः॒ ।  
स॒या॒तां॒ व॒शं॒ति॒ त॒स॒म॒पा॒रं॒गृ॒ह्णा॒धि॒ष्ठा॒ण्य॒न्पु॒ष॒सो॒ वि॒भा॒ताः ॥ ६ ॥  
अ॒पा॒न॒घ॒दे॒ग्य॒स्य॒स्य॒दं॒ति॒ वि॒षु॒स्ये॒ अ॒हं॒ती॒ स॒ं व॒शं॒ने॒ ।  
प॒रि॒क्षि॒तो॒ग॒त॒सो॒ अ॒न्या॒ सु॒तां॒सु॒गो॒दृ॒षाः॒ शो॒भु॒न्ता॒ न्ये॒न ॥ ७ ॥  
स॒त॒र्जा॒रि॒ण॒ स॒त॒र्जा॒रि॒टु॒ श्वो॒ दं॒श॒यं॒ स॒न्ने॒ व॒शं॒ ग॒म्य॒ धा॒सं॒ ।  
अ॒स॒व॒या॒ग्नि॒जा॒तं॒ यो॒ज॒ना॒न्धे॒क॒या॒ क॒रु॒ं प॒रि॒ उ॒नि॒ स॒वः ॥ ८ ॥  
जा॒न॒स॒याः॒ प्रथ॒म॒स्य॒ ना॒सं॒ शु॒क्ता॒ कृ॒ष्णा॒द॒ज॒नि॒त् वि॒वो॒दी॒ ।  
प॒त॒स्य॒ यो॒षा॒ न॒ मि॒ना॒ति॒ धा॒सा॒र॒स॒नि॒ स॒व॒या॒ न्ये॒न ॥ ९ ॥

---

अष्ट० २ अध्या० १ व० ५, ६, ७ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० १ अनु० १८ सू० १२४

कन्येव तन्वांशार्शदानाँ एषिं देवि देवभियंक्षणाणम् ।  
संस्मर्यमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥ ५ ॥  
सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योपाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।  
भद्रा त्वसुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उपसां नशन्त ॥ ११ ॥  
अर्धावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।  
परां च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उपासः ॥ १२ ॥  
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रभद्रं क्रतुमस्मासु वेहि ।  
उषो नो अत्र सुहवा व्युच्छास्मासु राघो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

॥ १२४ ॥ ऋषि - कक्षीवान । देवताः - उपा । छन्द - त्रिष्टुप् ॥

॥ १२४ ॥ उषा उच्छन्तीं समिधाने अग्रा उद्यन्तसूर्यं उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।  
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत्प्र चतुष्पदित्यं ॥ १ ॥

कन्याऽइव । तन्वां । शार्शदाना । एषिं । देवि । देवं । इयंक्षमाणं । संस्मर्यमाना ।  
युवतिः । पुरस्तात् । आविः । वक्षांसि । कृणुषे । विभाती ॥ १० ॥ ५ ॥ सुसङ्-  
काशा । मातृमृष्टेव । योपा । आविः । तन्वं । कृणुषे । दृशे । कं । भद्रा । त्वं ।  
उपः । वितरं । वि । उच्छ । न । तत् । ते । अन्याः । उपसः । नशन्त ॥ ११ ॥  
अर्धावतीः । गोमतीः । विश्ववाराः । यतमानाः । रश्मिभिः । सूर्यस्य । परा ।  
च । यन्ति । पुनः । आ । च । यन्ति । भद्रा । नाम । वहमानाः । उपासः ॥ १२ ॥  
ऋतस्य । रश्मि । अनुयच्छमाना । भद्रंभद्रं । क्रतुं । अस्मासु । वेहि । उषः । नः ।  
अत्र । सुहवा । वि । उच्छ । अस्मासु । राघोः । मघवत्सु । च । स्युरिति स्युः  
॥ १३ ॥ ६ ॥

उषाः । उच्छन्तीं । संमिधाने । अग्रा । उद्यन्त । सूर्यः । उर्विया । ज्योतिः ।  
अश्रेत् । देवः । नः । अत्र । सविता । नु । अर्थं । न । असावीद् । द्विपत् । प्र ।  
चतुऽपत् । इत्ये ॥ १ ॥



मृ० २, अ० १ व० ८, ९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२४

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्ताऽरुगिव सनये धर्नानाम् ।  
जायेव पत्य उगती मुवासा उपा हस्तेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥  
स्वसा स्वस्त्रे जायस्यै योनिः अरस् अप एति अस्याः प्रतिचक्ष्येव ।  
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याऽञ्जक्ते समनगा इव वाः ॥ ८ ॥  
आसां पूर्वीसाऽअहसु स्वर्णाणां अपरा पूर्वी अभि एति पश्चात् ।  
ताः प्रत्नऽवत् नव्यसीः नूनं अरस् इति रेवत् उच्छन्तु मृदिना उपसः ॥ ९ ॥  
प्र बोधयोः पृणतो मघोनि अशुभमानाः पणयः समन्तु रेव  
उच्छ नव्यः द्रयो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सन्तु जारयन्ती ॥ १० ॥ ८ ॥  
अवेयमऽवैद्युवतिः पुरस्तात् युक्ते गर्वाऽरुणानामनीकम् ।  
वि नूनं उच्छान् अरति प्र केतुः गृहं गृहमुप तिष्ठते अग्निः ॥ ११ ॥

अभ्राताऽइव । पुंसः । एति । प्रतीची । गर्ताऽआरुगिव । सनये । धर्नानां । जायाऽव  
पत्यं । उगती । मुऽवासाः । उपाः । हस्ताऽइव । नि । रिणीते । अप्सः ॥ ७ ॥  
स्वसा । स्वस्त्रे । जायस्यै । योनिः । अरस् । अप । एति । अस्याः । प्रतिचक्ष्येऽव  
व्युच्छन्ती । रश्मिभिः । सूर्यस्य । अंजि । अंक्ते । समनगाऽइव । वाः ॥ ८ ॥  
आसा । पूर्वीसा । अहसु । स्वर्णाणां । अपरा । पूर्वी । अभि । एति । पश्चात् । ताः  
प्रत्नऽवत् । नव्यसीः । नूनं । अरस् इति । रेवत् । उच्छन्तु । मृदिनाः । उपसः ॥ ९ ॥  
प्र । बोधयोः । पृणतोः । मघोनि । अशुभमानाः । पणयः । समन्तु । रेव  
उच्छ । मघवत्ऽमः । मघोनि । रेवत् । स्तोत्रे । सन्तु । जारयन्ती ॥ १० ॥ ८ ॥  
अवेयं । अवैद्युवतिः । पुरस्तात् । युक्ते । गर्वाः । अरुणानां । अनीकम् ।  
नूनं । उच्छान् । अरति । प्र । केतुः । गृहं गृहम् । उप । तिष्ठते । अग्निः ॥ ११ ॥



उत्तं चरंश्चिद्वस्तुनैरुपपन्नं च ये पितृभोजो व्युष्टौ ।

अमा नृते चंद्रमि भृदि चामसुरो देवि दागुपे मन्याय ॥ १२ ॥

अमोक्षं स्तोत्रां ब्रह्मणा मेऽर्वावृषध्वसुजतीक्ष्णामः ।

युष्माकं देवीरयंदा नतेम सवस्त्रिणं च जतिनं च वाजंम् ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १२५ ॥ अति १ विना १००-१०० ॥ १२-१२ ॥

॥ १२५ ॥ प्राणाग्नें प्रातस्त्रिंशो दद्यात् न चिंश्चिन्वाप्रतिगृह्या नि धत्ते ।

तेनं प्रजां प्रथमं मान आयुं शयनोपेयं नचते नृवीर्यं ॥ १ ॥

सुगुरुं सः सुतिग्णयः सवद्वो वृद्धं सभं दय इन्द्रो दद्यात् ।

यस्य वायुं यस्मिन् प्रातस्त्रिंशो सुश्राजं यत्र पतिं सुविदनात् ॥ २ ॥

आयुं यत्र सुकृतं प्रातस्त्रिंशदिष्टैः पृथं यस्मिन्नाग्नेन ।

अंशोः सतं पाथय सवसवस्यं क्षयवीरं यत्र सवुजातिः ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० १०,११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२६

उर्ष क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव इजानं च यक्ष्यमाणं च वेनवः ।

पृणन्तं च पर्पुंरिं च श्रवस्यवः घृतस्य धारा उर्ष यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥

नाकस्य पृष्टे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो घृतमर्पति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥

दक्षिणावतामिदिसानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ६ ॥

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।

अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥ १० ॥

॥ १२६ ॥ ऋषि-कधीवान् । देवता-विद्वान् । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १२६ ॥ अमन्दान्स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धाचधि क्षियतो भाव्यस्य ।

यो मे सहस्रमिमीत स्वानतूतो राजा श्रवं इच्छमानः ॥ १ ॥

उर्ष । क्षरन्ति । सिन्धवः । मयःऽभुवः । इजानं । च । यक्ष्यमाणं । च । वेनवः ।

पृणन्तं । च । पर्पुंरिं । च । श्रवस्यवः । घृतस्य । धाराः । उर्ष । यन्ति । विश्वतः ॥ ४ ॥

नाकस्य । पृष्टे । अधि । तिष्ठति । श्रितः । यः । पृणाति । सः । ह । देवेषु ।

गच्छति । तस्मै । आपः । घृतं । अर्पति । सिन्धवः । तस्मै । इयं । दक्षिणा । पिन्वते ।

सदा ॥ ५ ॥ दक्षिणावतां । इन् । इमानि । चित्रा । दक्षिणावतां । दिवि ।

सूर्यासः । दक्षिणावन्तः । अमृतं । भजन्ते । दक्षिणावन्तः । प्र । तिरन्ते । आयुः ॥ ६ ॥

मा । पृणन्तः । दुःऽदितं । एनः । आ । अरन् । मा । जारिषुः । सूरयः । सुव्रतासः ।

अन्यः । तेषां । परिधिरः । अस्तु । कः । चिन् । अपृणन्तं । अभि । सं । यन्तु ।

शोकाः ॥ ७ ॥ १० ॥

अमन्दान् । स्तोमान् । प्र । भरे । मनीषा । मिथो । अधि । क्षियतः ।

भाव्यस्य । यः । मे । सहस्रं । अमिमीत । स्वान । अतूतः । राजा । श्रवं ।

इच्छमानः ॥ १ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० ११, १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२७

उपोष मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणासिवाविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

॥ एकोनविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १२७ ॥ ऋषि-पृच्छेय. । देवता-अग्नि. । छन्दः-मत्यष्टिः ॥

॥१२७॥ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं  
विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

घृतस्य विभ्राष्टिमनुं वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्टमङ्गिरसां विप्र मन्मभिविप्रेभिः शुक्र  
मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।

शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।  
वीलु चित्स्य संसृता श्रुवन्नं व यत्स्थिरं ।

निःसहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

उप०उप । मे । परा । मृश । मा । मे । दभ्राणि । मन्यथाः । सर्वा । अहं । अस्मि ।  
रोमशा । गन्धारीणांऽइव । अविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

अग्निं । होतारं । मन्ये । दास्वन्तं । वसुं । सूनुं । सहसः । जातवेदसं । विप्रं ।  
न । जातवेदसं ॥ य । ऊर्ध्वया । सु०अध्वरः । देवः । देवाच्या । कृपा । घृतस्य ।

वि०भ्राष्टिं । अनुं । वष्टि । शोचिषा । आ०जुह्वानस्य । सर्पिषः ॥ १ ॥ यजिष्ठं ।  
त्वा । यजमानाः । हुवेम । ज्येष्टं । अंगिरसां । विप्र । मन्म०भिः । विप्रेभिः । शुक्र ।

मन्म०भिः । परिज्मानेऽइव । द्यां । होतारं । चर्षणीनां । शोचिः०केशं । वृषणं । यं ।  
इमाः । विशः । प्र । अ०वन्तु । जूतये । विशः ॥ २ ॥ सः । हि । पुरु । चित् ।

ओजसा । विरुक्मता । दीद्यानः । भवति । द्रुह०न्तरः । परशुः । न । द्रुह०न्तरः ।  
वीलु । चित् । यस्य । सं०सृता । श्रुवन् । वना०इव । यत् । स्थिरं । निः०सहमानः ।

यमते । न । अयते । धन्व०सहा । न । अयते ॥ ३ ॥

बृ० २ अ० १ व० १२, १३ ] क्रुद्धः [ मण्ड० १ अनु० १० सू० १०७

दृक्ता चिदमा अनु ह्यथा चिदं तेजिदास्मिगणिदिदाप्यवसेऽद्रये  
डाप्यवसे । प्र यः पुन्यि गार्हते तक्षकनेव जोत्रिया ।

गिरा चिदत्रा नि सिणात्योजमा नि स्थिराणि चिद्रोजसा ॥ ४ ॥

तस्यै पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः नृद्वर्जितं दिवांतराद्प्रायुषे  
दिवांतरात् । आदस्यायुर्भ्रमणवर्कात् जसं य लनवे ।

भनासभेनासवो व्यन्तो अजरा अत्रयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥ १२ ॥

स नि शार्थो न मार्तं कुडिपुणिरभ्रवर्त। पूर्वनागिः छनिरानेनास्मिद्रतिः ।  
आदंतव्यान्याददि प्रिजस्यं वेत्तुरहिणा ।

अयं स्यात्तु र्पितो र्पिषतो विश्वे लृपन्त पन्थां नः नृमे न पन्गंम ॥ ६ ॥

द्वि॒ता यदो॑ की॒स्तासो॑ अ॒भिद्य॑वो नम॒स्यन्त॑ उप॒वोच॑न्त भृ॒गवो॑ म॒थुः

दा॒शा भृ॒गवः॑ । अ॒ग्नि॒री॒शे व॒सूनां॑ शु॒चि॒र्यो ध॒र्णि॒रैवाम् ।

प्रि॒यो अ॒पि॒धी॒र्वनि॒पी॒ष्ट मे॒धि॒र आ व॑नि॒पी॒ष्ट मे॒धि॒रः ॥ ७ ॥

वि॒श्वा॑सां त्वा वि॒शां पति॑ ह॒वाम॒हे सर्वा॑सां स॒मानं॑ द॒र्स्पति॑ भु॒जे स॒त्

गि॒र्वाह॑सं भु॒जे । अति॑थि॒ मानु॑षाणां पि॒तुर्न॑ यस्या॒सया॑ ।

अ॒मी च॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑स आ व॒यो ह॒व्या दे॒वेषु॑वा व॒यः ॥ ८ ॥

त्वम॑ग्रे स॒हसा॑ स॒हन्त॑मः शु॒ष्मिन्त॑मो जा॒यसे॑ दे॒वता॑तये र॒यिर्न॑ दे॒वता॑तं

शु॒ष्मिन्त॑मो हि ते॒ मदो॑ वृ॒स्मिन्त॑म उ॒त क्रतुः॑ ।

अर्ध॑ स्मा ते॒ परि॑ चरन्त्य॒जर श्रु॒ष्टी॒वानो॑ ना॒जर ॥ ९ ॥

द्वि॒ता । यत् । ई । की॒स्तासः॑ । अ॒भिद्य॑वः । नम॒स्यन्तः॑ । उप॒वोच॑न्त । भृ॒गवः॑

म॒थुः । दा॒शा । भृ॒गवः॑ ॥ अ॒ग्निः । ई॒शे । व॒सूनां॑ । शु॒चिः । यः । ध॒र्णिः । प्रा॑

प्रि॒यान् । अ॒पि॒धी॒न् । व॒नि॒पी॒ष्ट । मे॒धि॒रः । आ । व॒नि॒पी॒ष्ट । मे॒धि॒रः ॥ ७

वि॒श्वा॑सां । त्वा । वि॒शां । पति॑ । ह॒वाम॒हे । सर्वा॑सां । स॒मानं॑ । द॒र्स्पति॑ । भु॒जे

स॒त्यऽगि॑र्वाहसं । भु॒जे ॥ अति॑थि । मानु॑षाणां । पि॒तुः । न । यस्या॑ । आ॒सया॑ । अ॒

इति॑ । च । विश्वे॑ । अ॒मृता॑मः । आ । व॒यः । ह॒व्या । दे॒वेषु॑ । आ । व॒यः ॥ ८

त्वं । अ॒ग्रे । स॒हसा॑ । स॒हन्त॑मः । शु॒ष्मिन्त॑मः । जा॒यसे॑ । दे॒वता॑तये । र॒यिः

न । दे॒वता॑तये ॥ शु॒ष्मिन्त॑मः । हि । ते॒ । मदः॑ । वृ॒स्मिन्त॑मः । उ॒त । क्रतुः॑

अर्ध॑ । स्मा । ते॒ । परि॑ । च॒रन्ति॑ । अ॒जर । श्रु॒ष्टी॒वानः॑ । न । अ॒जर ॥ ९

अष्ट० २ अध्या० १ व० १४ । ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२८

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।  
स न ऊर्जासुपामृत्यया कृपा न जूर्यति ।

यं मातरिश्वा मनवे परावतां देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं सुहृगीं रेतो वृषभः कनिकददध्रेतः कनिकदत् ।  
गतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।

सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

स सुकृतः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।  
क्रत्वा वेधा इपूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।

यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

---

तं । यज्ञसाधं । अपि । वातयामसि । ऋतस्यं । पथा । नमसा । हविष्मता । देव-  
स्ताता । हविष्मता ॥ सः । नः । ऊर्जा । उपऽआमृति । अया । कृपा । न । जूर्यति ।  
यं । मातरिश्वां । मनवे । पराऽवतः । देवं । भारिति भाः । पराऽवतः ॥ २ ॥  
एवेन । सद्यः । परिं । एति । पार्थिवं । सुहृऽगीः । रेतः । वृषभः । कनिकदत् ।  
दधत् । रेतः । कनिकदत् ॥ गतं । चक्षाणः । अक्षऽभिः । देवः । वनेषु । तुर्वणिः ।  
सदः । दधानः । उपरेषु । सानुषु । अग्निः । परेषु । सानुषु ॥ ३ ॥ सः । सुकृतः ।  
पुरऽहितः । दमेऽदमे । अग्निः । यज्ञरयं । अध्वरस्यं । चेतति । क्रत्वा । यज्ञस्यं ।  
चेतति ॥ क्रत्वा । वेधाः । इपूयते । विश्वा । जातानि । पस्पशे । यतः । घृतऽश्रीः ।  
अतिथिः । अजायत । वह्निः । वेधाः । अजायत ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२९

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतित्छमर्गतिं न्यैरिरे हव्यवाहं न्यैरिरे ।  
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।

देवासौ रण्वमवसे वसुयवो गीर्भी रण्वं वसुयवः ॥ ८ ॥ १५ ॥

॥ १२९ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-अत्यष्टि ॥

॥ १२९ ॥ यं त्वं रथमिन्द्र मेधसांतयेऽपाका सन्तमिपिर प्रणयमि  
प्रानवद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।  
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसांमिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥  
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिदक्षार्य इन्द्र भरंहृतये नृभिरमि  
प्रतूर्तये नृभिः । यः शूरै स्वर्ः सनिता यो विप्रैर्वाजं तर्हता ।  
तमीशानासं इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

अग्निं । होतारं । ईळते । वसुऽधितिं । प्रियं । चेतित्छं । अर्गतिं । नि । एरिरे ।  
हव्यऽवाहं । नि । एरिरे ॥ विश्वऽआयुं । विश्ववेदसं । होतारं । यजतं । कविं ।  
देवासः । रण्वं । अवसे । वसुऽयवः । गीऽभिः । रण्वं । वसुऽयवः ॥ ८ ॥ १५ ॥

यं । त्वं । रथं । इन्द्र । मेधऽसांतये । अपाका । संतं । इपिर । प्रऽणयसि । प्र ।  
अनवद्य । नयसि ॥ सद्यः । चित् । तं । अभिष्टये । करः । वशः । च । वाजिनं ।  
तः । अस्माकं । अनवद्य । तूतुजान । वेधसां । इमां । वाचं । न । वेधसां ॥ १ ॥  
सः । श्रुधि । यः । स्म । पृतनासु । कासु । चित् । दक्षार्यः । इन्द्र । भरंहृतये ।  
नृऽभिः । असिं । प्रऽतूर्तये । नृऽभिः ॥ यः । शूरैः । स्वर्गि तिग्मः । सनिता । यः ।  
विप्रैः । वाजं । तर्हता । तं । ईशानासः । इरधन्त । वाजिनं । पृक्षं । अन्यं । न ।  
वाजिनं ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२९

प्र तद्धोचेयं भव्यायेन्द्रे हव्यो न य इपवान्मन्स रेजति रक्षोहा मन्स रेजति ।  
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरेजेत दुर्मतिम् ।

अवं स्रवेदघशंसोऽवतरन्ध क्षुद्रंश्च स्रवेत् ॥ ६ ॥

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्यं सन्तं सुवीर्यम् ।  
दुर्मन्मानं सुनन्दुभिरेषिषा पृचीमहि ।

आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहृतिभिर्यजत्रं द्युम्नहृतिभिः ॥ ७ ॥

प्रपां वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।  
स्वयं सा रिषयधै या न उपेवे अत्रैः ।

हतेमसन्न वक्षति क्षिप्सा जूर्णिन वक्षति ॥ ८ ॥

प्र । तत् । वोवेयं । भव्याय । इंद्रे । हव्यः । न । यः । इपवान् । मन्स । रेजति ।  
रक्षःऽहा । मन्स । रेजति ॥ स्वयं । सः । अस्मत् । आ । निदः । वधैः । अजेत ।  
दुःऽमति । अवं । स्रवेत् । अघऽशंसः । अवऽतरं । अवं । क्षुद्रंश्च । स्रवेत् ॥ ६ ॥  
वनेम । तत् । होत्रया । चितन्त्या । वनेम । रयिं । रयिवः । सुवीर्यं । रण्यं । सन्तं ।  
सुवीर्यं ॥ दुःऽमन्मानं । सुनन्दुभिः । आ । ई । इषा । पृचीमहि । आ । सत्याभिः ।  
इन्द्रं । द्युम्नहृतिभिः । यजत्रं । द्युम्नहृतिभिः ॥ ७ ॥ प्रऽप । वः । अस्मे उति ।  
स्वयंशःऽभिः । उती । परिवर्गं । इन्द्रः । दुःऽमतीनां । दरीमन् । दुःऽमतीनां ॥ रण्यं ।  
सा । रिषयधै । या । नः । उपेऽपे । अत्रैः । हता । ई । असन् । न । वक्षति ।  
क्षिप्सा । जूर्णिः । न । वक्षति ॥ ८ ॥



॥ १३० ॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-इन्द्रः । छन्द-अत्यष्टिः ॥

॥१३०॥ एन्द्रं याह्युर्षं नः परावतो नायमच्छां विदथानीव सत्पति-  
रस्तं राजैव सत्पतिः । हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचां ।

पुत्रासो न पितरं वाजंसातये मंहिष्ठं वाजंसातये ॥ १ ॥

पिबो सोमसिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसंगस्तातृषाणो  
न वंसंगः । मदाय हर्यतार्थं ते तुविष्टमाय धायसे ।

आ त्वां यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

अभिन्दद्विवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिर्वीतमश्मन्त्यनन्ते अन्तरश्मनि ।  
व्रजं वज्री गवांसिव सिपांसन्नङ्गिरस्तमः ।

अपावृणोदिप इन्द्रः परीवृता द्वार इपः परीवृताः ॥ ३ ॥

आ । इंद्र । याहि । उर्षं । नः । परावतः । न । अयं । अच्छे । विदथानि-  
श्व । सत्पतिः । अस्तं । राजांश्व । सत्पतिः ॥ हवामहे । त्वा । वयं । प्रयस्वन्तः ।  
सुते । सचां । पुत्रासः । न । पितरं । वाजंसातये । मंहिष्ठं । वाजंसातये ॥ १ ॥  
पिब । सोमं । इंद्र । सुवानं । अद्रिभिः । कोशेन । सिक्तं । अवतं । न । वंसंगः ।  
ततृषाणः । न । वंसंगः ॥ मदाय । हर्यतार्थं । ते । तुविःस्तमाय । धायसे । आ ।  
त्वा । यच्छन्तु । हरितः । न । सूर्यं । अहा । विश्वांश्व । सूर्यं ॥ २ ॥ अभिन्द ।  
द्विवः । निहितं । गुहां । निधिं । वेः । न । गर्भं । परिर्वीतं । अश्मनि । अनन्ते ।  
अन्तः । अश्मनि ॥ व्रजं । वज्री । गवांश्व । सिपांसन् । अंगिरःस्तमः । अपं ।  
अवृणोत् । इपः । इंद्रः । परीवृताः । द्वारः । इपः । परीवृताः ॥ ३ ॥

भिन्तपुरां नवतिमिन्द्र पुरवे दिवांदासाय महि दाशुपे नृतो वज्रेण दाशुपे  
नृतो । अतिथिग्वाय शश्वरं गिरेन्द्रो अवाभरत् ।

सहो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रायद्विश्वेषु शतमृतिराजिषु स्वर्माळहेष्वाजिषु ।  
मनवे शासद्व्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।

दक्षत्र विश्वं तदृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

सूरश्चक्रं प्र वृहजात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुपायतीगान आ  
मुषायति । उशना यत्परायतोऽजगन्नृतयं कवे ।

सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥

स नो नव्येभिर्वृषकर्मसुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि गग्मैः ।

दिवांदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

भिन्त । पुरः । नवति । इन्द्र । पुरवे । दिवःऽदासाय । महि । दाशुपे । नृतो इति ।

वज्रेण । दाशुपे । नृतो इति ॥ अतिथिऽग्वार्यं । शश्वरं । गिरेः । उग्रः । अव । अभरत् ।

महः । धनानि । दयमानः । ओजसा । विश्वा । धनानि । ओजसा ॥ ७ ॥

इन्द्रः । समत्सु । यजमानं । आर्यं । प्र । आयन् । विश्वेषु । शतऽमृतिः । आजिषु ।

स्वःऽमीळहेषु । आजिषु ॥ मनवे । शासत् । अव्रतान् । त्वचं । कृष्णां । अरन्धयत् ।

दक्षत् । न । विश्वं । तदृषाणं । ओषति । नि । अर्शसानं । ओषति ॥ ८ ॥

सूरः । चक्रं । प्र । वृहत् । जातः । ओजसा । प्रऽपित्वे । वाचं । अरुणः । मुषायति ।

इशानः । आ । मुषायति ॥ उशना । क्व । पराऽवतः । अजगन् । नृतयं । कवे ।

सुम्नानि । विश्वा । मनुषाऽश्व । तुर्वणिः । अहा । विश्वाऽश्व । तुर्वणिः ॥ ९ ॥

सः । नः । नव्येभिः । वृषऽकर्मन् । सुक्थैः । पुरां । दर्तगितिं दर्तः । पायुऽभिः । पाहि

गग्मैः । दिवःऽदासेभिः । इन्द्र । स्तवानः । वावृधीथाः । अहोभिःऽश्व । द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारंदीर्वातिरः सासहानो अवातिरः ।  
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।

महीममुष्णाः पृथिवीमिसा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

आदित्तै अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।  
चकर्थे कारमैभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।

ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

उतो नो अस्या उपसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता  
हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रि चिकेतसि ।

आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्ये वज्रेण शूर मर्त्यम् ।  
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।

रिष्टं न यामन्नपं भूतु दुर्मतिर्विश्वापं भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पूरवः । पुरः । यत् । इंद्र । शारंदीः । अनऽअतिरः ।  
ससहानः । अवऽअतिरः ॥ शासः । तं । इंद्र । मर्त्ये । अयज्युं । शवसः । पते । मही ।  
अमुष्णाः । पृथिवी । इमाः । अपः । मन्दसानः । इमाः । अपः ॥ ४ ॥ आत् । उन् ।  
ते । अस्य । वीर्यस्य । चर्किरन् । मदेषु । वृषन् । उशिजः । यत् । आविथ ।  
सखिऽयतः । यत् । आविथ ॥ चकर्थे । कारं । एभ्यः । पृतनासु । प्रवन्तवे । ते ।  
अन्याऽअन्या । नद्यं । सनिष्णत । श्रवस्यन्तः । सनिष्णत ॥ ५ ॥ उतो इति । नः ।  
अस्याः । उपसः । जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि । हविषः । हवीमऽभिः । स्वःऽसता ।  
हवीमऽभिः ॥ यत् । इंद्र । हन्तवे । मृधः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि । आ । मे ।  
अस्य । वेधसः । नवीयसः । मन्म । श्रुधि । नवीयसः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । इंद्र ।  
वावृधानः । अस्मऽयुः । अमित्रऽयन्तं । तुविऽजात । मर्त्ये । वज्रेण । शूर । मर्त्यम् ॥  
जहि । यः । नः । अघऽयति । शृणुष्व । सुश्रवऽस्तमः । रिष्टं । न । यामन् । अपं ।  
भूतु । दुःऽमतिः । विश्वा । अपं । भूतु । दुःऽमतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

अष्ट० २ अध्या० १ सू० २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १३२

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरपं ब्रजामन्द्र शिक्षन्नपं  
ब्रजम् । ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।

सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिद्व्रतं हृणायन्तं चिद्व्रतम् ॥ ४ ॥

सं यजनान् क्रतुभिः शूरं ईक्षयन्ने हिते तरुपन्त श्रवस्यवः प्रयक्षन्त  
श्रवस्यवः । तस्मा आयुः प्रजावदिद्वाधे अर्चन्त्योजसा ।

इन्द्रं ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतर्यः ॥ ५ ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिर्द्धतं वज्रेण तन्त-  
मिर्द्धतम् । दूरे चत्तार्य छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् ।

अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो द्वा दर्पीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

नु । इत्था । ते । पूर्वथा । च । प्रवाच्यं । यत् । अङ्गिरःऽभ्यः । अवृणोः । अपं ।  
ब्रजं । इन्द्रं । शिक्षन् । अपं । ब्रजं ॥ आ । एभ्यः । समान्या । दिशा । अस्मभ्यं ।  
जेषि । योत्सि । च । सुन्वत्ऽभ्यः । रन्धय । कं । चित् । अव्रतं । हृणायन्तं । चित् ।  
अव्रतं ॥ ४ ॥ सं । यत् । जनान् । क्रतुभिः । शूरः । ईक्षयत् । धने । हिते ।  
तरुपन्त । श्रवस्यवः । प्र । यक्षन्त । श्रवस्यवः ॥ तस्मै । आयुः । प्रजाऽवत् । इत् । वाधे ।  
अर्चन्ति । ओजसा । इन्द्रं । ओक्यं । दिधिषन्त । धीतर्यः । देवान् । अच्छा । न ।  
धीतर्यः ॥ ५ ॥ युवं । तं । इन्द्रापर्वता । पुरःऽयुधा । यः । नः । पृतन्यात् । अपं ।  
तन्तं । इत् । हतं । वज्रेण । तन्तं । इत् । हतं ॥ दूरे । चत्तार्य । छन्त्सत् । गहनं ।  
यत् । इनक्षत् । अस्माकं । शत्रून् । परि । शूर । विश्वतः । द्वा । दर्पीष्ट । विश्वतः ॥ ६ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १३३

अवर्मह इन्द्र दादहि शुधी नः शुशोच हि यौः क्षा न भीषा अद्रिवो

घृणान्न भीषा अद्रिवः ॥ शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।

अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिससैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवा-

नामव द्विषः । सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवंम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

अवः । महः । इंद्र । दादहि । शुधि । नः । शुशोच । हि । यौः । क्षाः । न । भीषा ।

अद्रिवः । घृणात् । न । भीषा । अद्रिवः ॥ शुष्मिन्तमः । हि । शुष्मिभिः ।

वधैः । उग्रेभिः । ईयसे । अपूरुषघ्नः । अप्रतीत । शूर । सत्वभिः । त्रिससैः ।

शूर । सत्वभिः ॥ ६ ॥ वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयं । परीणसः । सुन्वानः ।

हि । स्म । यजति । अव । द्विषः । देवानां । अव । द्विषः ॥ सुन्वानः । इत् ।

सिसासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः । सुन्वानाय । इंद्रः । दादति । आभुवं ।

रयिं । ददाति । आभुवं ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

अष्ट० २ अध्या० १ व० २३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २० सू० १३४

तुभ्यं सुधासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसुं रश्मिषु चित्रा नव्येषु  
रश्मिषु । तुभ्यं धेनुः सवदुवा विश्वा वसनि दोहते ।

अर्जनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो नदेषुया इषणन्त सुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।  
त्वां त्सारी दसमानो भर्गसीद्रे तक्ववीर्ये ।

त्वं विश्वस्माद्भुवनत्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।  
उतो विद्वत्मतीनां विद्यां ववर्जुषीणाम् ।

विश्वा इत्ते धेनवो दुह आशिरं घृतं दुहते आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

तुभ्यं । उपसः । शुचयः । परावति । भद्रा । वस्त्रा । तन्वते । दंसुं । रश्मिषु ।  
चित्रा । नव्येषु । रश्मिषु ॥ तुभ्यं । धेनुः । सवः । दुवा । विश्वा । वसनि । दोहते ।  
अर्जनयः । मरुतः । वक्षणाभ्यः । दिवः । आ । वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥ तुभ्यं । शुक्रासः ।  
शुचयः । तुरण्यवः । नदेषु । उयाः । इषणन्त । भुर्वणि । अपां । इषन्त । भुर्वणि ॥  
त्वा । त्सारी । दसमानः । भर्ग । सीद्रे । तक्ववीर्ये । त्वं । विश्वम्पान । भुवनान ।  
पामि । धर्मणा । अभुर्याति । पासि । धर्मणा ॥ ५ ॥ त्वं । नः । वायो इति । णपा ।  
अपूर्व्यः । सोमाना । प्रथमः । पीति । अर्हसि । सुतानां । पीति । अर्हसि ॥ उतो इति ।  
विद्वत्मतीना । विद्या । ववर्जुषीणा । विश्वाः । उन् । ते । धेनवः । दोहते । आशिरम् ।  
घृतं । दुहते । आशिरं ॥ ६ ॥ २३ ॥

बृ० २ अध्या० १ व० २४, २५ ] ऋग्वेदः [ बृ० १ बृ० २० सू० १३५

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षद्वसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि  
वीतये ॥ पिवतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।

वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥

आ वां धियो वष्ट्युरध्वरां उपेमिन्दुं मर्मजन्त वाजिनमाशुमत्यं न  
वाजिनम् । तेषां पिवतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।

इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥

इमे वां सोमां अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा  
अयंसत । एते वांमभ्यसृक्षत तिरः पवित्रंमाशवंः ।

युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमांसो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

आ । वा । रथः । नियुत्वान् । वक्षत् । अद्वसे । अभि । प्रयांसि । सुधितानि ।  
वीतये । वायो इति । हव्यानि । वीतये ॥ पिवतं । मध्वः । अन्धसः । पूर्वपेयं । हि ।  
वा । हितं । वायो इति । आ । चन्द्रेण । राधसा । आ । गतं । इन्द्रः । च । राधसा ।  
आ । गतं ॥ ४ ॥ आ । वा । धियः । वष्ट्युः । अध्वरान् । उपे । इमं । इन्द्रं ।  
मर्मजन्त । वाजिनं । आशुं । अत्यं । न । वाजिनं ॥ तेषां । पिवतं । अस्मयू इत्यस्मयू ।  
आ नः । गतं । इह । उत्त्या । इन्द्रवायू इति । सुतानां । अद्रिभिः । युवं । मदाय ।  
वाजदा । युवं ॥ ५ ॥ २४ ॥ इमे । वां । सोमाः । अप्स्वम् । आ । सुताः ।  
इह । अध्वर्युभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायो इति । शुक्राः । अयंसत ॥ एते ।  
वां । अभि । असृक्षत । तिरः । पवित्रं । आशवंः । युवायवः । अति । रोमाणि ।  
अव्यया । सोमांसः । अति । अव्यया ॥ ६ ॥

॥ १३६ ॥ ऋषिः—परुच्छेप । देवता—मित्रावरुणौ । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥ १३६ ॥ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां वृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ-  
यद्भ्यां स्वादिष्टं मृळयद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयं उपस्तुता ।  
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

अदर्शि गातुरवे वरीयसी पन्थां ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चभ्रुर्भगंम्य  
रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।  
अथा दधाते वृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं वृहद्वयं ॥ २ ॥

ज्योतिष्मतीमदिति धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसां दिवे-  
दिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।  
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

प्र । सु । ज्येष्ठं । निचिराभ्यां । वृहत् । नमः । हव्यं । मतिं । भरता ।  
मृळयत्भ्यां । स्वादिष्टं । मृळयत्भ्याम् । ता । सम्राजां । घृतासुती इति घृतसां  
सुती । यज्ञेयं । उपस्तुता । अथ । एनोः । क्षत्रं । न । कुतः । चना । आधृषे ।  
देवत्वं । नू । चित् । आधृषे ॥ १ ॥ अदर्शि । गातुः । उरवे । वरीयसी । पन्थां ।  
ऋतस्य । सं । अयंस्त । रश्मिभिः । चभ्रुः । भगस्य । रश्मिभिः ॥ द्युक्षं । मित्रस्य ।  
सादनं । अर्यम्णः । वरुणस्य । च । अथ । दधाते इति । वृहत् । उक्थ्यं । वयं ।  
उपस्तुत्यं । वृहत् । वयं ॥ २ ॥ ज्योतिष्मतीं । अदितिं । धारयन्क्षितिं ।  
स्वर्वतीं । आ । सचेते इति । दिवेदिवे । जागृवामां । दिवेदिवे । ज्योतिष्मत् ।  
क्षत्रं । आशाते इति । आदित्या । दानुनः । पती इति । मित्रः । तयोः । वरुणः ।  
यातयज्जनः । अर्यमा । यातयज्जनः ॥ ३ ॥



अष्ट० २. अध्या० २. व० ? ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० २० सू० ? ३७

## ॥ अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ १३७ ॥ ऋषि-पुरुच्छेप । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-निचृच्छकरी ॥

॥ १. ३७ ॥ सु॒ष्टु॒मा या॑त॒मद्रि॑भिर्गो॒श्री॒ता म॒त्स॒रा इ॒मे सो॒मांसो॑ म॒त्स॒रा इ॒मे ।  
आ रा॑जाना दि॒विस्पृ॑शास्त्रा ग॒न्तमु॑प॒ नः ।  
इ॒मे वा॑ मि॒त्रावरु॑णा ग॒वांशि॒रः सो॒माः शु॒क्रा ग॒वांशि॒रः ॥ १ ॥  
इ॒म आ या॑त॒मिन्द्र॑वः सो॒मांसो॑ द॒ध्यांशि॒रः सु॒तासो॑ द॒ध्यांशि॒रः ।  
उ॒त वा॑मु॒पसो॑ वृ॒धि सा॒कं स॒र्यस्य॑ र॒श्मिभिः॑ ।  
सु॒तो मि॒त्राय॑ व॒रुणाय॑ पी॒तये॒ चारु॑र्क॒ताय॑ पी॒तये॑ ॥ २ ॥  
तां वा॑ धे॒नुं न वा॑म॒रामं॑शुं दृ॒हन्त्य॑द्रि॒भिः सो॒मं दृ॒हन्त्य॑द्रि॒भिः ।  
अ॒स्मत्रा॑ ग॒न्तमु॑प॒ नोऽर्वा॑ञ्चा सो॒मपी॑तये ।  
अ॒यं वा॑ मि॒त्रावरु॑णा नृ॒भिः सु॒तः सो॒म आ पी॑तये॒ सु॒तः ॥ ३ ॥ १ ॥

सु॒ष्टु॒म । आ । या॑तं । अ॒द्रि॑ऽभिः । गो॒ऽश्री॒ताः । म॒त्स॒राः । इ॒मे । सो॒मांसः ।  
म॒त्स॒राः । इ॒मे ॥ आ । रा॑जाना । दि॒विस्पृ॑शा । अ॒स्म॒ऽत्रा । ग॒न्तं । उ॒प॒ । नः । इ॒मे ।  
वा । मि॒त्रावरु॑णा । गो॒ऽश्री॒रः । सो॒माः । शु॒क्राः । गो॒ऽश्री॒रः ॥ १ ॥  
इ॒मे । आ । या॑तं । इ॒न्द्र॑वः । सो॒मांसः । द॒धि॑ऽश्री॒रः । सु॒तासः । द॒धि॑ऽश्री॒रः ।  
उ॒त । वा । उ॒प॒सः । वृ॒धि । सा॒कं । स॒र्यस्य॑ । र॒श्मि॑ऽभिः । सु॒तः । मि॒त्राय॑ ।  
व॒रुणाय॑ । पी॒तये॑ । चारु॑ः । क॒ताय॑ । पी॒तये॑ ॥ २ ॥ ता । वा । धे॒नुं । न । वा॒स॒र्गा ।  
ऽशुं । दृ॒ह॑न्ति । अ॒द्रि॑ऽभिः । सो॒मं । दृ॒ह॑न्ति । अ॒द्रि॑ऽभिः ॥ अ॒स्म॒ऽत्रा । ग॒न्तं । उ॒प॒ ।  
नः । अ॒र्वा॑ञ्चा । सो॒मपी॑तये । अ॒यं । वा । मि॒त्रावरु॑णा । नृ॒भिः । सु॒तः । सो॒मः ।

॥ १३८ ॥ ऋषि-पञ्चछेष । देवता-पूषा । छन्द-अन्वष्टि ॥

॥१३८॥ प्रप्रं पूषणस्तुविजानस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते  
 स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुमन्नयन्नहमन्त्युनि मयोभुवम् ।  
 विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥  
 प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमैभिः कृण्व कृणवो यथा मृध उष्ट्रो न  
 पीपरो मृधः ॥ हुवे यत्त्वा मयोभुव देवं सख्याय मर्त्यैः ।  
 अस्माकमागूपां शुन्निनस्कृधि वाजेषु शुन्निनस्कृधि ॥ २ ॥  
 यस्य ते पूषन्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोष्वसा बुभुजिर इति क्रत्वा  
 बुभुजिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।  
 अर्ह्वमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

प्रप्रं । पूषणः । तुविजानस्य । शस्यते । महित्वं । अस्य । तवसः । न ।  
 तन्दते । स्तोत्रं । अस्य । न । तन्दते ॥ अर्चामि । सुमन्नयन् । अहं । अतिङ्कति ।  
 मयःऽभुवम् । विश्वस्य । यः । मनः । आऽयुयुवे । मखः । देवः । आऽयुयुवे । मखः ॥१॥  
 प्र । हि । त्वा । पूषन् । अजिरं । न । यामनि । स्तोमैभिः । कृण्वे । कृणवः । यथा ।  
 मृधः । उष्ट्रः । न । पीपरः । मृधः ॥ हुवे । यत् । त्वा । मयःऽभुवम् । देवं । सख्यायम् ।  
 मर्त्यैः । अस्माकम् । आगूपान् । शुन्निनः । कृधि । वाजेषु । शुन्निनः । कृधि ॥ २ ॥  
 यस्य । ते । पूषन् । सख्ये । विपन्यवः । क्रत्वा । चित् । संतः । अश्वसा । बुभुजिरे ।  
 इति । क्रत्वा । बुभुजिरे ॥ ता । अनु । त्वा । नवीयसीम् । नियुतम् । रायः । ईमहे ।  
 अर्ह्वमानः । उरुशंस । सरी । भव । वाजेवाजे । सरी । भव ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २,३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २० सू० १३९

अस्या ऊं षु ण उ पं सा तये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामंजाश्व ।  
ओ पू त्वा ववृतीमहि स्तोमंभिर्दस्म साधुभिः ।  
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमंपहुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ १३९ ॥ ऋषिः—परुच्छेप । देवता—विश्वेदेताः । छन्द—अत्याष्टि ॥

॥ १३९ ॥ अस्तु श्रौषद् पुरो अग्निं धिया दधे आ नु तच्छर्धो दिव्यं  
वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्वा क्राणा विवस्वति नाभां सन्दायि नव्यंसी ।  
अध प्र सृ न उपं यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥  
यद्वा त्यन्मित्रावरुणाधृतादध्याददाथे अर्तुतं स्वेनं मन्युना दक्षस्य स्वेनं मन्युना ।  
युवोरित्याधि सन्नस्वपश्याम हिरण्ययं ।  
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥

अस्याः । ऊं इति । सु । नः । उपं । सातये । भुवः । अहेळमानः । ररिवान् ।  
अजऽअश्व । श्रवस्यता । अजऽअश्व ॥ ओ इति । सु । त्वा । ववृतीमहि । स्तोमंभिः ।  
दस्म । साधुभिः । नहि । त्वा । पूषन् । अतिऽमन्ये । आघृणे । न । ते । सख्यं ।  
अपऽहुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

अस्तु । श्रौषद् । पुरः । अग्निं । धिया । दधे । आ । नु । तत् । शर्धः ।  
दिव्यं । वृणीमहे । इन्द्रवायू इति । वृणीमहे ॥ यत् । ह । क्राणा । विवस्वति । नाभां ।  
सन्दायिं । नव्यंसी । अध । प्र । सु । नः । उपं । यन्तु । धीतयः । देवान् । अच्छा ।  
न । धीतयः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । मित्रावरुणां । ऋतात् । अधि । आददाथे  
इत्याऽददाथे । अर्तुतं । स्वेनं । मन्युनां । दक्षस्य । स्वेनं । मन्युनां ॥ युवोः । इत्या ।  
अधि । सन्नऽसु । अपश्याम । हिरण्ययं । धीभिः । चन । मनसा । स्वेभिः । अक्षभिः ।  
सोमस्य । स्वेभिः । अक्षभिः ॥ २ ॥

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तां अश्विनाश्रवयन्त इव श्लोकमायवो युवां

हव्याभ्याश्चयवः । युवोर्विश्वा अधि त्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।

पुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दत्ता हिरण्यये ॥ ३ ॥

अचेति दत्ता व्युनाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो

दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दत्ता हिरण्यये ।

पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।

मा वां रातिरुपं दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

युवां । स्तोमेभिः । देवयन्तः । अश्विना । आश्रवयन्तः इव । श्लोकं । आयवः ।

युवा । हव्या । अभि । आयवः ॥ युवोः । विश्वाः । अधि । त्रियः । पृक्षः । च ।

विश्ववेदसा । पुषायन्ते । वा । पवयः । हिरण्यये । रथे । दत्ता । हिरण्यये ॥ ३ ॥

अचेति । दत्ता । वि । ऊं इति । नाकं । ऋण्वथः । युञ्जते । वां । रथयुजः ।

दिविष्टिषु । अध्वस्मानः । दिविष्टिषु ॥ अधि । वां । स्थाम । वन्धुरे । रथे । दत्ता ।

हिरण्यये । पथा इव । यन्तां । अनुशासता । रजः । अञ्जसा । शासता । रजः ॥ ४ ॥

शचीभिः । नः । शचीवसू इति शर्चाऽसू । दिवा । नक्तं । दशस्यतं । मा । वां ।

रातिः । उपं । दसत् । कदा । चन । अस्मन् । रातिः । कदा । चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

अपिन्द्र वृषपाणास इन्द्रे इमे सुता अद्रिपुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतासं  
उद्भिदः । ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।

गिभिर्गिर्वाह स्तवमान आ गंहि सुशृळीको न आ गंहि ॥ ६ ॥

मो मृ णो अग्ने शृणुहि त्वनीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजेभ्यो  
यज्ञियेभ्यः । यद्वा त्यामङ्गिरोभ्यो देवुं देवा अदत्तन ।

ये तां वृहे अर्यमा कर्तरी सर्वा एष तां वेद मे सर्वा ॥ ७ ॥

मो पु वो अस्मद्भि तानि पौस्या सगा शूवन्गुन्नाजि मोत जारिषुरस्नत्पुरे  
गारिषुः । यत्र चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादभर्यम् ।

अस्मात् तन्मन्तो यत्र वृष्टं दिष्टता यत्र वृष्टरम् ॥ ८ ॥

पिन् । इन्द्र । वृषपाणासः । इन्द्रे । इमे । सुताः । अद्रिपुतासः । उद्भिदस्तुभ्यः । तुभ्यं  
सुतासः । उद्भिदः ॥ ते । त्वा । मन्दन्तु । दावने । महे । चित्राय । राधसे ।

गिःभिः । गिर्वाहः । स्तवमानः । आ । गंहि । सुशृळीको । नः । आ । गंहि ॥ ६ ॥

मो इति । मु । नः । अग्ने । शृणुहि । त्वं । इळितः । देवेभ्यः । ब्रवसि  
यज्ञियेभ्यः । राजेभ्यः । यज्ञियेभ्यः ॥ यद्वा । ह । त्या । अङ्गिरोभ्यः  
देवुं । देवाः । अदत्तन । यि । ता । वृहे । अर्यमा । कर्तरी । सर्वा । एषः । ता  
वृ । मे । सर्वा ॥ ७ ॥ मो इति । मु । वः । अस्मद्भि । अभि । तानि । पौस्या  
सगा । शूवन् । गुन्नाजि । मोत । जारिषुः । अस्नत् । पुरा । उत । जारिषुः ॥

यत् । वः । चित्रं । युगेयुगे । नव्यं । घोषात् । अमन्त्यं । अस्मात् । तत् । मन्तोः  
यत् । वः । वृष्टं । दिष्टता । यत् । वः । वृष्टरम् ॥ ८ ॥

अष्ट० २अ० २ व० ४,५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ मृ० १४०

दध्यद् हं मे जनुपं पूर्वं अङ्गिराः प्रियभेषः कण्वो अत्रिमनुर्विदुरते मे पूर्वं  
मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वार्यतिरस्माकं तेषु नाभयः ।

तेषां पदेन मया नमे गिरेन्द्राग्री आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

होतां यक्षत्रनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारैभिः उक्षभिः ।

जगृभ्मा दुरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।

अधारयदरिन्दानि सुक्रतुः पुरु सन्नानि सुक्रतुः ॥ १० ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्य पृथिव्यामध्येकादश स्य ।

अप्सुक्षितो नदिनेकादश स्य ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥४॥२०॥

॥ एकविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १०० ॥ ऋषि-दीर्घतना । देवता-अग्नि । छन्द-जगती ॥

॥१४०॥ वेदिपदे प्रियभाभाय सुद्युने धासिमिन्व प्र भरा योनिमग्रये ।

वस्त्रेणैव वाराया मन्तना शुचि ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

दध्यद् । हं । मे । जनुपं । पूर्वं । अङ्गिराः । प्रियभेषः । कण्वः । अत्रिः । मनुः ।  
विदुः । ते । मे । पूर्वं । मनुः । विदुः ॥ तेषां । देवेषु । आर्यतिः । अस्माकं । तेषु ।  
नाभयः । तेषां । पदेन । मरि । आ । नमे । गिरा । इंद्राग्री इति । आ । नमे । गिरा  
॥ ९ ॥ होतां । यक्ष् । वनिनः । वन्त । वार्यं । बृहस्पतिः । यजति । वेनः । उक्ष-  
भिः । पुरुवारैभिः । उक्षभिः ॥ जगृभ्मा । दुरेऽआदिशं । श्लोकं । अद्रेः । अयं ।  
त्मना । अधारयत् । अरिन्दानि । सुऽक्रतुः । पुरु । सन्नानि । सुऽक्रतुः ॥ १० ॥  
ये । देवासः । दिवि । एकादश । स्य । पृथिव्या । अग्नि । एकादश । स्य । अप्सु-  
क्षितः । नदिना । एकादश । स्य । ते । देवानः । यज्ञं । इमं । जुषध्वं ॥ १ ॥ ४ ॥  
वेदिऽपदे । प्रियभाभाय । सुऽद्युने । धासिमिन्व । प्र । भरा । योनिं । अग्रये ।  
वस्त्रेणैव । वाराया । मन्तना । शुचि । ज्योतिऽरथं । शुक्रवर्णं । तमोहनम् ॥ १ ॥

अट० २ अध्या० २ व० ५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४०

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।

अन्यस्याना जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥

कृष्णश्रुतां वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मात्रा शिशुम् ।

प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

मुमुक्ष्वोऽमनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।

असमना अजिरासो रघुष्पदो वार्तजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथैरते कृष्णमभवं महि वर्षः करिकृतः ।

यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्हीमदभिश्चसन्स्तनाच्चेति नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

अभि । द्विजन्मा । त्रिवृत् । जन्नं । ऋज्यते । संवत्सरे । वृधे । जग्धं । इमिति ।

पुनरिति । अन्यस्य । आसा । जिह्वया । जेन्यः । वृषा । नि । अन्येन । वनिनः ।

मृष्ट । वारणः ॥ २ ॥ कृष्णश्रुतां । वेविजे इति । अस्य । सक्षितां । उभा । तरेते

इति । अभि । मात्रा । शिशुम् । प्राचाजिह्वं । ध्वसयन्तं । तृषुच्युतं । आ । साच्यं ।

कुपयं । वर्धनं । पितुः ॥ ३ ॥ मुमुक्ष्वः । मनवे । मानवस्यते । रघुद्रुवः । कृष्ण-

सीतासः । ऊ इति । जुवः । असमनाः । अजिरासः । रघुष्पदः । वार्तजूताः ।

उप युज्यन्ते । आशवः ॥ ४ ॥ आत् । अस्य । ते । ध्वसयन्तः । वृथा । इति । कृष्णं ।

अन्यं । महि । वर्षः । करिकृतः । यत् । सीं । मर्ही । अवनिं । प्र । अभि । मर्हीमन् ।

अभिश्चसन् । स्तनयन् । इति । नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

भूप॒त्र योऽधि॑ व॒भूषु॑ न॒म्रते॑ वृ॒षेव॑ प॒त्नीर॒भ्येति॑ रो॒हवत् ।

ओ॒जाय॑मा॒नस्त॒न्वश्च॑ शु॒भते॑ भी॒मो न॑ शृ॒ङ्गा द॑विधाव॒ दुर्ग॑भिः ॥ ६ ॥

स सं॒स्तिरो॑ वि॒ष्टिरः॑ सं गृ॒भाय॑ति जा॒नन्ने॒व जा॒नती॑र्नित्य॒ आ श॑ये ।

पुन॑र्व॒र्धन्ते॑ अपि॑ यन्ति॒ देव्य॑म॒न्यद्व॑र्षः पि॒त्रोः कृ॑ण्वन्ते॒ सचा॑ ॥ ७ ॥

तम॒शुवः॑ के॒शिनीः॑ सं हि रे॑भि॒र ऊ॒र्ध्वास्त॑स्सु॒र्भसु॑षीः प्राय॑वे पुनः ।

तासां॑ ज॒रां प्र॑मुञ्चन्ते॒ति ना॒नद॑दसुं॒ परं॑ ज॒नय॑न्ती॒वम॑स्तृ॒तम् ॥ ८ ॥

अ॒धीवा॒गं परि॑ सा॒त् रि॒हन्न॑दं तु॒विश्रे॑भिः स॒त्त्वभि॑र्या॒नि वि ज॑रयः ।

वयो॑ द॒धत्प॑च्छते॒ रे॒रिह॑त्सदा॒नु द्ये॒नी स॑चते॒ वर्त॑नीरहं ॥ ९ ॥

अ॒म्नाक॑स॒त्रे म॒धव॑त्सु॒ दीदि॑त्य॒ध श्व॑सी॒वान्प्र॑प॒भो द॑म॒नाः ।

अ॒चास्या॑ शिशु॒मती॑रदी॒र्देव॑स॒व सु॑त्सु॒ परि॑ज॒र्भुरा॑णः ॥ १० ॥ ६ ॥

भूप॑त्र । न । यः । अधि॑ । व॒भूषु॑ । न॒म्रते॑ । वृ॒षाऽव॑ । प॒त्नीः । अ॒भि । ए॒ति ।  
रो॒हवत् । ओ॒जाय॑मानः । त॒न्वः । च । शु॒भते॑ । भी॒मः । न । शृ॒ङ्गा । द॑विधाव॒ ।  
दुः॒शृभिः॑ ॥ ६ ॥ सः । सं॒स्तिरः॑ । वि॒स्तिरः॑ । सं । गृ॒भाय॑ति । जा॒नन् । ए॒व ।  
जा॒नतीः॑ । नि॒त्यः । आ । श॑ये । पुनः॑ । व॒र्धते॑ । अपि॑ । य॒न्ति । दे॒व्य॑ । अ॒न्यत् ।  
व॒र्षः । पि॒त्रोः । कृ॑ण्वन्ते । सचा॑ ॥ ७ ॥ तं । अ॒शुवः॑ । के॒शिनीः॑ । सं । हि । रे॑भिरे ।  
ऊ॒र्ध्वाः । त॒स्युः । म॒सुषीः॑ । प्र । प्राय॑वे । पुन॑र्निति । तासां॑ । ज॒रा । प्र॑मुञ्चन् ।  
ए॒ति । ना॒नद॑त् । अ॒नु । परं॑ । ज॒नय॑न् । जी॒वं । म॑स्तृ॒तम् ॥ ८ ॥ अ॒धीवा॒गं । परि॑ ।  
सा॒त् । रि॒हन् । अ॒दं । तु॒विश्रे॑भिः । स॒त्त्वभिः॑ । या॒ति । वि । ज॑रयः । रयः॑ ।  
द॒धत् । प॒द॑च्छते । रे॒रिह॑त् । सदा॑ । अ॒नु । द्ये॒नी । म॑चते॒ । वर्त॑निः । अ॒हं ॥ ९ ॥  
अ॒म्नाक॑ । अ॒त्रे । म॒धव॑त्सु । दी॒दि॒ति । अ॒प । श्व॑सी॒वान् । प्र॑प॒भः । द॑म॒नाः । अ॒व॑-  
अ॒स्य॑ । शिशु॒मतीः॑ । अ॒र्दी॒देः । म॑स॒व । सु॑त्सु । परि॑ज॒र्भुरा॑णः ॥ १० ॥ ६ ॥



अष्ट० २ अध्या० २ न० ७,८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २? सू० १४?

इदमग्ने सुवितं दुधितादधि प्रियाहुं चिन्मग्नेनः प्रेषो अस्तु ते ।  
यत्तं शुक्रं तन्वोऽरोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे एतन्ना त्वम् ॥ ११ ॥  
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पृथ्वीं रास्यग्ने ।  
अस्माकं वीरां उत नो मधोन्नो जनांश्च या पारयाच्छर्म या चं ॥ १२ ॥  
अभी नो अग्र उक्यमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वर्गृताः ।  
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्वाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

॥ १४१ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि । छंद-जगती ॥

॥१४१॥ अथित्था तद्वपुषे धाधि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।  
यदीनुप हरते सार्धने मतिर्कृतस्य धेनां अनयन्त ससुतः ॥ १ ॥  
पृथो वपुः पितृमान्निय आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।  
तृतीयस्य वृषभस्य द्रोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

इदं । अग्ने । सुवितं । दुःअधितान् । अधि । प्रियात् । ऊं इति । चिन् । मग्नेनः ।  
प्रेषः । अस्तु । ते । यत् । ते । शुक्रं । तन्वः । रोचते । शुचिं । तेन । अस्मभ्यं ।  
वनसे । रत्रं । आ । त्वं ॥ ११ ॥ रथाय । नाव । उत । नः । गृहाय । नित्यारि-  
त्रा । पृथ्वीं । राशि । अग्ने । अस्माकं । वीरान् । उत । नः । मधोन्नः । जनां ।  
च । या । पारयात् । शर्म । या । च ॥ १२ ॥ अभि । नः । अग्ने । उत । अत् ।  
जुगुर्याः । द्यावाक्षामां । सिन्धवः । च । स्वर्गृताः । गव्यं । यव्यं । यन्तः । दीर्वा ।  
अहो । इषं । वरं । अरुण्यः । वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

वद् । इत्था । तत् । वपुषे । धाधि । दर्शतं । देवस्य । भर्गः । सहसः । यतो । जनि ।  
जनि । यत् । उ । उपे । हर्षते । सार्धने । प्रतिः । कृतस्य । धेनाः । अनयन्त ।  
ससुतः ॥ १ ॥ पृथः । वपुः । पितृमान् । नियः । आ । शये । द्वितीयं । ना ।  
सप्तशिवासु । मातृषु । तृतीयं । वृषभस्य । द्रोहसे । दशप्रमतिं । जनयन्त ।  
योषणः ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० ८,९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० २१ सू० १४१

निर्यदो बुधान्महिपस्य वर्षस ईशानासः शवसा क्रन्तं सूरयः ।  
यदीमनुं प्रदिवो मध्वं आध्रवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥  
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंतुं रोहति ।  
उभा यदस्य जनुपं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्दृणा शुचिः ॥ ४ ॥  
आदिन्मानुराविशद्यास्वा शुविरहिस्थमान उर्विया वि वावृधे ।  
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्वधरासु धाक्ते ॥ ५ ॥ ८ ॥  
आदिद्वोतारं वृणते दिविष्टिषु भर्गमिव एष्टचानासं कञ्जते ।  
द्वान्यत्कृत्वा मज्जनां पुरुष्टतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥  
वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो तारो न वक्ता जरणा अनाकृतः ।  
तस्य पतमन्दक्षुर्षः कृष्णजह्राः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

---

रथो न यातः शिकंभिः कृतो घामङ्गैभिररुषेभिरीयते ।  
 आदस्य ते कृष्णासौ दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेपथादीषते वयः ॥ ८ ॥  
 त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।  
 यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विशुररात्र नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥  
 त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।  
 तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्र धीमहि ॥ १० ॥  
 अस्मे रयि न स्वयं दमूनसं भगं दक्षं न पृचासि धर्णासिम् ।  
 रश्मीरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसंमृत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥  
 उत नः सुद्योत्मा जीराश्वं होता मन्द्रः शृणवचन्द्ररथः ।  
 स नो नेपत्रपतमैरमृरांसिर्वामं मुचितं वस्यो अच्छे ॥ १२ ॥

रथः । न । यातः । शिकंभिः । कृतः । घां । अंगेभिः । अरुषेभिः । ईयते । आत् ।  
 अस्य । ते । कृष्णासः । दक्षि । सूरयः । शूरस्येव । त्वेपथात् । ईपते । वयः ॥ ८ ॥  
 त्वया । हि । अग्ने । वरुणः । धृतव्रतः । मित्रः । शाशद्रे । अर्यमा । सुदानवः ।  
 यत् । सी । अनु । क्रतुना । विश्वथा । विशुः । अरात्र । न । नेमिः । परिभूः ।  
 अजायथाः ॥ ९ ॥ न्वं । अग्ने । शशमानाय । सुन्वते । रत्नं । यविष्ठ । देवताति ।  
 इन्वसि । तं । त्वा । नु । नव्यं । सहसः । युवन् । वयं । भगं । न । कारे । महिरत्र ।  
 धीमहि ॥ १० ॥ अस्मे इति । रयि । न । सुअयं । दमूनसं । भगं । दक्षं । न ।  
 पृचासि । धर्णासि । रश्मीरिव । यः । यमति । जन्मनी इति । उभे इति । देवानां ।  
 शंसं । क्रते । आ । च । सुक्रतुः ॥ ११ ॥ उत । नः । सुद्योत्मा । जीराश्वः ।  
 होता । मन्द्रः । शृणवत् । चन्द्ररथः । सः । नः । नेपत् । नेपत्रपतमैः । अमृरः । भृगिः ।  
 वामं । मुचितं । वस्यो । अच्छे ॥ १२ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० ९.१० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४२

अस्ताव्यग्निः शिमीचद्भिरकैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।

अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरौ अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १४२ ॥ ऋषि-दीर्घतमा. । देवता-अग्निः । छन्द.-अनुष्टुप् ॥

॥ १४२ ॥ समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्युचे ।

तन्तुं ननुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

घृतवन्तमुपं मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।

यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्यं दाशुषः ॥ २ ॥

शुचिः पावको अद्भुतां मध्वा यज्ञं सिभिक्षति ।

नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिदं प्रियम् ।

इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिद वच्यते ॥ ४ ॥

अस्तावि । अग्निः । शिमीचद्भिरऽभिः । अकैः । साम्राज्याय । प्रतरं । दधानः । अमी  
इति । च । ये । मघवानः । वयं । च । मिहं । न । सूरः । अति । निः ।  
ततन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

सऽःद्धः । अग्ने । आ । वह । देवान् । अद्य । यतस्युचे । तन्तु-  
पूर्व्यं । सुतसोमाय । दाशुषे ॥ १ ॥ घृतवन्तं । उपं । मासि । मधुमन्तं । तनू-  
नपात् । यज्ञं । विप्रस्य । मावतः । शशमानस्यं । दाशुषः ॥ २ ॥ शुचिः । पावकः ।  
अद्भुतः । मध्वा । यज्ञं । सिभिक्षति । नराशंसः । त्रिः । आ । दिवः । देवः । देवेषु ।  
यज्ञियः ॥ ३ ॥ ईळितः । अग्ने । आ । वह । इन्द्रं । चित्रं । मत् । प्रियं । इयं । हि ।  
त्वा । मतिः । मत् । अच्छा । सुजिद । वच्यते ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १०,११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ वृ० १४२

स्तृणानासो यतस्तुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।

वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रथे देवेभ्यो महीः ।

पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरमश्रतः ॥ ६ ॥ १० ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोपासा सुपेशसा ।

यद्दी ऋतस्य मातरा सीदता बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।

यज्ञं नो यक्षत भिमं सिध्रमथ दिविस्पृशाम् ॥ ८ ॥

शुचिर्देवेष्वपिता होत्रा मरुत्सु भारती ।

ड्या सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

तत्रस्तुरीयमर्हुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।

त्वष्टा पोषाय वि स्यन्तु राये नाभा नो अस्म्युः ॥ १० ॥

स्तृणानासः । यतस्तुचः । बर्हिः । यज्ञे । मुऽअध्वरे । वृञ्जे । देवव्यचःस्तमं । इन्द्राय ।

शर्म । मऽप्रथः ॥ ५ ॥ वि । श्रयन्ता । ऋतऽवृधः । मऽथे । देवेभ्यः । महीः ।

पावकासः । पुरुऽस्पृहः । द्वारः । देवीः । अमश्रतः ॥ ६ ॥ १० ॥ आ । भन्दमानं

इति । उपाके इति । नक्तोपमा । सुपेशसा । यद्दी इति । ऋतस्य । मातरा ।

सीदता । बर्हिः । आ । मुऽमत् ॥ ७ ॥ मन्द्रजिह्वा । जुगुर्वणी इति । होतारा ।

व्या । कवी इति । यज्ञं । नः । यक्षतां । भिमं । सिध्रं । अथ । दिविऽस्पृशाम् ॥ ८ ॥

शुचिः । देवेषु । अपिता । होत्रा । मरुत्सु । भारती । ड्या । सरस्वती । मही ।

बर्हिः । सीदन्तु । यज्ञियाः ॥ ९ ॥ तत्र । नः । तुरीयं । अर्हुतं । पुरु । वा । नः ।

पुद । त्मना । त्वष्टां । पोषाय । वि । स्यन्तु । राये । नाभा । नः । अस्म्युः ॥ १० ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० ११, १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४३

अवसृजन्नप त्मनां देवान्यक्षि वनस्पते ।

अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

पूषण्वते मस्त्वते विश्वदेवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।

इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

॥ १४३ ॥ ऋषि-दीर्घतना । देवता-अग्नि । छन्द-अनुष्टुप् ॥

॥ १४३ ॥ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।

अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होतां पृथिव्यां न्यसीदृदृत्वियः ॥ १ ॥

स जायमानः परमे व्योमन्याधिरग्निरभवन्नातरिष्वने ।

अस्य ऋत्वां सभिधानस्य मज्जना प्र यादां शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

अवसृजन् । उप । त्मनां । देवान् । यक्षि । वनस्पते । अग्निः । हव्या । सुषूदति ।  
देवः । देवेषु । मेधिरः ॥ ११ ॥ पूषण्वते । मस्त्वते । विश्वदेवाय । वायवे ।  
स्वाहा । गायत्रवेपसे । हव्यं । इन्द्राय । कर्तन ॥ १२ ॥ स्वाहाकृतानि । आ ।  
गहि । उप । हव्यानि । वीतये । इन्द्र । आ । गहि । श्रुधि । हवं । त्वां । हवन्ते ।  
अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

प्र । तव्यसीं । नव्यसीं । धीति । अग्नये । वाचः । मति । सहसः । सूनवे ।  
भरे । अपां । नपात् । यः । वसुभिः । सह । प्रियः । होतां । पृथिव्यां । नि ।  
असीदत् । दृदृत्वियः ॥ १ ॥ सः । जायमानः । परमे । व्योमनि । आविः ।  
अग्निः । अभवत् । नातरिष्वने । अस्य । ऋत्वां । सभिधानस्य । मज्जनां । प्र ।  
यादां । शोचिः । पृथिवी इति । अरोचयत् ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ य० १२ ] ऋग्वेदः [ मन्त्र० १ अनु० २१ सू० १४१ ]

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दशः सुप्रतीकस्य सुशुतः ।  
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेंजन्ते असंसन्तो अजराः ॥ ३ ॥  
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या सुवनस्य मज्जना ।  
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दसे य एको वक्ष्यो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥  
न यो वराय भरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।  
अग्निर्जम्भेस्तिगितैरत्ति भवति योधो न शत्रून्त्स वना न्युञ्जते ॥ ५ ॥  
कुवित्रो अग्रिस्त्वथस्य वीरसद्वसुंक्नुविद्वसुभिः काममावरत् ।  
चोदः कुविनुज्यात्सातये वियः शुचिप्रतीकं तमया विद्या गृणे ॥ ६ ॥  
घृतप्रतीकं य ऋतस्य धूपदमग्निं मित्रं न संमिधान कक्षते ।  
इन्धानो अक्रो विदयेषु दीद्वच्छुक्रवर्णासुद् नो संसते विदम् ॥ ७ ॥

अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुसन्दशः । सुप्रतीकस्य । सुशुतः ।  
भात्वक्षसः । अति । अक्तुः । न । सिन्धवः । अग्नेः । रेंजन्ते । असंसन्तोः । अजराः ॥ ३ ॥  
यं । आऽईरिरे । भृगवः । विश्ववेदसं । नाभा । पृथिव्याः । सुवनस्य । मज्जना ।  
अग्निं । तं । गीःऽभिः । हिनुहि । स्वे । आ । दसे । यः । एकः । वक्ष्योः । वरुणः ।  
न । राजति ॥ ४ ॥ न । यः । वराय । भरुतामिव । स्वनः । सेनाऽद्य । सृष्टा ।  
दिव्या । यथा । अशनिः । अग्निः । जम्भेः । निमित्तैः । अत्ति । भवति । योधः । न ।  
शत्रून् । सः । वना । नि । ऋञ्जते ॥ ५ ॥ कुविन् । नः । अग्निः । उच्यथस्य । वीः ।  
असन् । वसुः । कुविन् । वसुंऽभिः । कामं । आवरत् । चोदः । कुविन् । तुज्यात् ।  
सातये । वियः । शुचिप्रतीकं । तं । अया । विद्या । गृणे ॥ ६ ॥ घृतप्रतीकं ।  
वः । ऋतस्य । धूपदमं । अग्निं । मित्रं । न । संमिधानः । ऋञ्जते । इन्धानः ।  
अक्रोः । विदयेषु । दीद्वत् । शुक्रवर्णाः । उद् । ऊं इति । नः । संसते । विदम् ॥ ७ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १२, १३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४४

अप्रयुच्छन्नप्रदुच्छन्निरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।

अदग्धेभिरदग्धेभिरिष्टेऽनिमिपद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

॥ १४४ ॥ अग्नि-शीघ्रतमा । देवता-अग्नि । छद-जाती ॥

॥१४४॥ एति प्रहोता व्रतमस्य माययोऽर्वा दधानः शुचिंशेषसं धियम् ।

अभि सुचः क्रमते दक्षिणावृत्तो या अस्य धाम प्रथमं ह निसते ॥ १ ॥

अभीमृतग्यं दोहना अनूपत योना देवस्य सदेने परिश्रुताः ।

अपामुपस्थे विभ्रुता यदावसदध स्वधा अथयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

युयूपतः सव्यसा नदिष्पुः समानमर्थं वितरिंश्रता मिथः ।

आदी भगो न हव्यः सन्नस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्सअयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥

यमीं द्वा सव्यसा सपर्यतः सनाने योना मिथुना सप्रोकसा ।

दिवा न नक्तं पळितो युवाजनि पुरु चरन्नजरो मानुपा युगा ॥ ४ ॥

अप्रयुच्छन्न । अप्रयुच्छन्ऽभिः । अग्ने । शिवेभिः । नः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । अदग्धेभिः । अदग्धेभिरिष्टेऽभिः । परि । पाहि । नः । जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

एति । प्र । होता । व्रतं । अस्य । मायया । ऊर्ध्वा । दधानः । शुचिंशेषसं । धियम् । अभि । सुचः । क्रमते । दक्षिणाऽवृत्तः । याः । अस्य । धाम । प्रथमं । ह । निसते ॥ १ ॥ अभी । ई । ऋतस्य । दोहनाः । अनूपत । योना । देवस्य । सदेने । परिश्रुताः । अपा । उपस्थे । विभ्रुताः । यत् । आ । अथयत् । अथ । स्वधाः । अथयत् । याभिः । ईयते ॥ २ ॥ युयूपतः । सव्यसा । नत् । इत् । वपुः । समानं । अर्थं । वितरिंश्रता । मिथः । आत् । ई । भगोः । न । हव्यः । सं । अम्पत् । आ । वोळ्हुः । न । रश्मीन् । सं । अयंस्त । सारथिः ॥ ३ ॥ यं । ई । द्वा । सव्यसा । सपर्यतः । सनाने । योना । मिथुना । संऽअजना । दिवा । न । नक्तं । पळितः । युवा । अजनि । पुरु । चरन् । अजरोः । मानुपा । युगा ॥ ४ ॥



अष्ट० २ अध्या० २ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ नू० १४५

तर्मां हिन्वंति धीतयो दश त्रिंशो देवं मर्तांस ऊतये हवामहे ।  
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजं द्विर्युना नवाधिन ॥ ५ ॥  
त्वं अग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।  
एनी त एते बृहती अभिश्रियां हिरण्ययी वक्ररी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥  
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात मुक्रतो ।  
यो विश्वतः प्रत्यङ्गसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमा इव क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

॥ १४५ ॥ ऋषि-दीर्घतम । देवता-अग्निः । छन्द-जगती ॥

॥१४५॥ तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वा इयते सा न्वायते ।  
तस्मिन्सन्ति प्रशिपस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥  
तमितृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनैव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।  
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य कृत्वा सचते अप्रदृषितः ॥ २ ॥

तं । ई । हिन्वंति । धीतयः । दश । त्रिंशः । देवं । मर्तांसः । ऊतये । हवामहे ।  
धनोः । अधि । प्रवतः । आ । सः । ऋण्वति । अभिव्रजन्ऽभिः । युना । नवा ।  
अधित ॥ ५ ॥ त्वं । हि । अग्ने । दिव्यस्य । राजसि । त्वं । पार्थिवस्य । पशुपाऽ-  
इव । त्मना । एनी इति । ते । एते इति । बृहती इति । अभिऽश्रियां । हिरण्ययी  
इति । वक्ररी इति । बर्हिः । आशाते इति ॥ ६ ॥ अग्ने । जुषस्व । प्रति । हर्य । तन् ।  
वचः । मन्द्र । स्वधावः । ऋतऽजात । मुक्रतो इति मुऽक्रतो । वः । विश्वतः ।  
प्रत्यङ् । असि । दर्शतः । रण्वः । सन्दृष्टौ । पितुमान्ऽइव । क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

तं । पृच्छत । सः । जगाम । सः । वेद । सः । चिकित्वान् । इयते । सः ।  
नु । इयते । तस्मिन् । सति । प्रशिपः । तस्मिन् । निष्टयः । सः । वाजस्य । शवसः ।  
शुष्मिणः । पतिः ॥ १ ॥ तं । इत् । पृच्छति । न । सिमः । वि । पृच्छति । स्वेनैव-  
इव । धीरः । मनसा । यन् । अग्रभीत् । न । मृष्यते । प्रथमं । न । अपरं । वचः ।  
अस्य । कृत्वा । सचते । अप्रदृषितः ॥ २ ॥

मण्ड० २ अध्या० २ व० १४, १५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४३

अभिर्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विद्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।  
पुन्यपत्नपुरिविज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥  
उपस्थायं चरति यत्नमारंत सद्यो जानस्तत्सार युज्येभिः ।  
अभि श्वानं मृगते नायं मुदे यदी गच्छन्त्युगतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥  
स ई मृगो अप्यो वनगुणं त्वच्युपनस्यां नि धायि ।  
व्यवर्वाद्युना मत्येभ्योऽग्निर्विद्वो कृतत्रिचि सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

॥ १४५ ॥ ऋषि-दीवता । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १४६ ॥ त्रिमूर्धानं ससरंशिमं गृणीषेऽनूनमग्नि पित्रोरूपस्थं ।

निपत्तमस्य चरंतो ध्रुवस्य विन्धां दिवो रोचनापप्रिचामं ॥ १ ॥

उक्षा महो अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावित्तजंतिर्ऋष्वः ।

उर्व्याः पदो नि दधाति सानां रिहन्त्यूर्धो अरुपास्तो अस्य ॥ २ ॥

तं । इत् । गच्छन्ति । जुह्वः । तं । अर्वतीः । विश्वानि । एकः । शृणवत् । वचांसि ।  
मे । पुन्यपत्नः । तुरिः । यज्ञसाधनः । अच्छिद्रोऽजतिः । शिशुः । आ । अदत्त ।  
सं । रभः ॥ ३ ॥ उपस्थायं । चरति । यत् । संऽआरंत । सद्यः । जानः । तन्मार ।  
युज्येभिः । अभि । श्वानं । मृगते । नायं । मुदे । यत् । ई । गच्छन्ति । उगतीः ।  
अपिऽस्थितं ॥ ४ ॥ सः । ई । मृगः । अप्यः । वनगुः । उप । त्वचि । उपऽमस्यां ।  
नि । शायि । वि । अवर्वात् । वयुना । मत्येभ्यः । अग्निः । विद्वान् । कृतऽचिन् ।  
रि सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

त्रिऽमूर्धानं । ससरंशिमं । गृणीषे । अनूनं । अग्नि । पित्रोः । उपऽस्थं । निऽ-  
पत्तम् । चरंतः । ध्रुवस्यं । विन्धां । दिवः । रोचना । आपप्रिचामं ॥ १ ॥  
उक्षा । महोत्तमः । अभि । ववक्षे । एने इति । अजरः । तस्थो । इतऽजतिः । ऋष्वः ।  
उर्व्याः । पदः । नि । दधाति । सानां । रिहन्ति । ऊर्ध्वः । अरुपास्तः । अस्य ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४३

स॒मा॒नं॑ व॒त्स॒म॒भि॒ स॒ञ्च॒र॒न्ती॑ वि॒ज्व॒ग्वे॒नू॒ वि च॑रतः सु॒मे॒के ।  
अ॒न॒प॒वृ॒ज्याँ॑ अ॒ध्व॒नो॑ मि॒माने॑ वि॒श्वान्के॑नाँ॒ अधि॑ महो॒ दधाने॑ ॥ ३ ॥  
धी॒रांसः॑ प॒दं क॒वयो॑ नयन्ति॒ नानाँ॑ हृ॒दा रक्ष॑माणा अ॒जु॒र्यम् ।  
सि॒षांस॑न्तः प॒रि॒पश्य॑न्त॒ सिन्धु॑नावि॒रभ्यो॑ अ॒भवत्सूर्यो॑ नृ॒न् ॥ ४ ॥  
दि॒दृ॒क्षे॒ण्यः॑ परि॒ का॒ष्ठांसु॑ जे॒न्यं ई॒ळे॒न्यो॑ महो॒ अर्भा॑य जी॒वसे॑ ।  
पु॒रु॒घ्रा यद॑भ॒वत्सूर॑हे॒भ्यो॑ गर्भे॒भ्यो॑ म॒घवा॑ वि॒श्वदर्श॑तः ॥ ५ ॥ १५ ॥

॥ १४७ ॥ ऋषि-दीर्घतमा. । देवा-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १४७ ॥ कथा ते॑ अ॒ग्ने शु॒चय॑न्त॒ आयो॑र्दि॒दाशु॒र्वाजे॑भिराशु॒षाणाः॑ ।  
उ॒भे यत्तो॑के॒ तन॑ये॒ दधाना॑ क॒तस्य॑ सा॒मन्न॑णयन्त॒ देवाः॑ ॥ १ ॥  
वोधा॑ मे॒ अस्य॑ वच॒सो यवि॑ष्ठ॒ मंहि॑ष्ठस्य॒ प्रभृ॑तस्य स्वधावः ।  
पी॒यन्ति॑ त्वो॒ अनु॑ त्वो गृणाति॒ वन्दार॑स्ते॒ तन्न॑ वन्दे॒ अग्ने॑ ॥ २ ॥

स॒मा॒नं॑ । व॒त्सं॑ । अ॒भि । स॒ञ्च॒र॒न्ती॑ इति॒ सं॒ञ्च॒र॒ती॑ । वि॒ज्व॒क् । धे॒नू इति॑ । वि ।  
च॒रतः॑ । सु॒मे॒के इति॑ सु॒मे॒के । अ॒न॒प॒वृ॒ज्यान् । अ॒ध्व॒नः । मि॒माने॑ इति॑ । वि॒श्वान् ।  
के॒तान् । अधि॑ । महः । दधाने॑ इति॑ ॥ ३ ॥ धी॒रांसः॑ । प॒दं । क॒वयः॑ । न॒य॒न्ति॑ ।  
ना॒नाँ । हृ॒दा । रक्ष॑माणाः । अ॒जु॒र्यं । सि॒षांस॑न्तः । परि॑ । अ॒पश्य॑न्त । सिन्धु॑ । आ॒विः ।  
ए॒भ्यः॑ । अ॒भवत् । सूर्यः॑ । नृ॒न् ॥ ४ ॥ दि॒दृ॒क्षे॒ण्यः॑ । परि॑ । का॒ष्ठांसु॑ । जे॒न्यः ।  
ई॒ळे॒न्यः॑ । महः । अर्भा॑य । जी॒वसे॑ । पु॒रु॒घ्रा । यन् । अ॒भवन् । सृः । अहं॑ । ए॒भ्यः ।  
गर्भे॑भ्यः । म॒घवा॑ । वि॒श्वदर्श॑तः ॥ ५ ॥ १५ ॥

कथा । ते । अ॒ग्ने । शु॒चय॑न्तः । आयोः । द॒दाशुः । वा॒जेभिः॑ । आ॒शु॒षाणाः॑ ।  
उ॒भे इति॑ । यन् । तो॒के इति॑ । तन॑ये । दधानाः । क॒तस्य॑ । सा॒मन् । र॒णय॑न्त । दे॒वाः ।  
॥ १ ॥ वो॒धा । मे॒ । अस्य॑ । वच॒सः । यवि॑ष्ठ॒ । मंहि॑ष्ठस्य । प्र॒भृ॒तस्य॑ । स्व॒धावः॑ ।  
पी॒यन्ति॑ । त्वः । अनु॑ । त्वः । गृणा॒ति । व॒न्दारः॑ । ते । तन्न॑ । व॒न्दे॑ । अ॒ग्ने ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४८

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।  
ररक्ष तान्सुकृतां विश्ववेदा दिप्सन्त इत् रिपवो नाहं देभुः ॥ ३ ॥  
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।  
मन्त्रां गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु सृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तः ॥ ४ ॥  
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मतां गतं मर्चयति द्वयेन ।  
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ १४८ ॥ ऋषि - दीर्घतना । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ॥

॥ १४८ ॥ मर्त्याद्यदीं विष्टो नानरिश्वा होतारं विश्वाप्सु विश्वदेव्यम् ।  
नि यं दधुर्मनुष्यासु विष्टु स्वर्णं चित्रं वपुषे विभावंम् ॥ १ ॥  
ददानमिन्न ददभन्त मन्मग्निर्वह्यं मम तस्य चाकन् ।  
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मापस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

ये । पायवः । मामतेयं । ते । अग्ने । पश्यन्तः । अन्धं । दुरितात् । अरक्षन् । ररक्ष ।  
तान् । सुकृतः । विश्ववेदाः । दिप्सन्तः । इत् । रिपवः । न । अहं । देभुः ॥ ३ ॥  
योः । नः । अग्ने । अररिमान् । अघायुः । अरातीवा । मर्चयति । द्वयेन । मन्त्रः ।  
गुरुः । पुनः । अस्तु । सोः । अस्मै । अनु । सृक्षीष्ट । तन्वं । दुरुक्तः ॥ ४ ॥ उत ।  
वा । यः । सहस्य । प्रविद्वान् । गतः । गतं । मर्चयति । द्वयेन । अतः । पाहि ।  
स्तवमान । स्तुवन्तः । अग्ने । माकिः । नः । दुरिताय । धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥  
॥ १४८ ॥ मर्त्यान् । यन् । इ । विष्टः । नानरिश्वा । होतारं । विश्वदेव्यम् ।  
विश्वदेव्यं । नि । यं । दधुः । ननुष्यासु । विष्टु । स्वर्णं । न । चित्रं । वपुषे ।  
विभावं ॥ १ ॥ ददानं । इत् । न । ददभन्त । मन्म । अग्निः । वह्यं । मम । तस्य ।  
चाकन् । जुषन्तः । विश्वानि । अस्य । कर्मा । अपस्तुति । भरमाणस्य । कारोः ॥ २ ॥

नित्ये चिच्छु यं सदेने जगृभ्रे प्रजांस्तिभिर्दधिरे यज्ञियांसः ।

प्र सृ नयन्त गृभयन्त इष्ट्रायन्वांसो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

पुस्विणि दग्धो नि रिणानि जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।

आदस्य वानो अनु वानि गोधिरस्तुर्न शयीमसनामनु यून ॥ ४ ॥

न यं रिपवो न रिपण्यवो गर्भे सन्त रेवगा रेवयन्ति ।

अन्था अपइया न दम्भन्नभिख्या नित्यांस ई प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ १४३ ॥ ऋषि-दीपतना । देवता-अग्नि । छन्द-विराट् ॥

॥ १४० ॥ महः स राय एषते पतिर्दग्धिन इनस्य वसुनः पद आ ।

उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्ति ॥ १ ॥

स यो वृषा नरा न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवर्षित्सर्गः ।

प्र यः संस्त्राणः शिश्रीत योनो ॥ २ ॥

नित्ये । चिच्छु । नु । यं । सदेने । जगृभ्रे । प्रजांस्तिभिः । दधिरे । यज्ञियांसः । प्र ।

सु । नयन्त । गृभयन्तः । इष्ट्रो । अन्वांसः । न । रथ्यः । रारहाणाः ॥ ३ ॥ पुस्विणि ।

दग्धः । नि । रिणानि । जम्भैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभावा । आत् ।

अस्य । वानः । अनु । वानि । गोधिः । अस्तुः । न । शयी । असना । अनु । यून ।

॥ ४ ॥ न । यं । रिपवः । न । रिपण्यवः । गर्भे । सन्त । रेवगाः । रेवयन्ति । अन्थाः ।

ः । न । दम्भन् । अभिख्या । नित्यांसः । ई । प्रेतारः । अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

महः । सः । रायः । आ । एषते । पतिः । दन । इनः । इनस्य । वसुनः ।

आ । उप । ध्रजन्त । अद्रयोः । विधन्ति । इत् ॥ १ ॥ सः । यः । वृषा । नरा ।

। रोदस्योः । श्रवःभिः । अस्ति । जीवर्षित्सर्गः । प्र । यः । संस्त्राणः ।

शिश्रीत । योनो ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १८, १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १५०

आ यः पुरं नामिणीनदीदित्यः कविर्नभन्योऽर्वा ।

सुरो न रुक्काञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्मै सुतुको द्दश ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १५० ॥ ऋषि - दीर्घतमा । देवता - अग्निः । छन्द - उष्णिक् ॥

॥ १५० ॥ पुरु त्वां दान्धान्वाचेऽरिरेभ्रे तवं स्विदा ।

तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोपे चिदररुपः ।

कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो वार्धन्तमो दिवि ।

प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

आ । यः । पुरं । नामिणीं । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा ।

सूरः । न । रुक्कान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥ अभि । द्विजन्मां । त्री । रोचनानि

विश्वा । रजांसि । शुशुचानः । अस्थात् । होता । यजिष्ठः । अपां । सधस्थे ॥ ४ ॥

अयं । सः । होता । यः । द्विजन्मां । विश्वा । दधे । वार्याणि । श्रवस्या । मर्तः ।

यः । अस्मै । सुतुकेः । द्दश ॥ ५ ॥ १८ ॥

पुरु । त्वा । दान्धान् । वाचे । अरिः । अग्ने । तवं । स्वित् । आ । तोदस्ये-

ऽस्य । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥ वि । व्यनिनस्यं । धनिनः । प्रहोपे । चित् ।

अररुपः । कदा । चन । प्रजिगतः । अदेवयोः ॥ २ ॥ सः । चन्द्रः । विप्र । मर्त्यः ।

महः । वार्धन्तमः । दिवि । प्रप्रेत् । इत् । ते । अग्ने । वनुषः । स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १७, १८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४१

नित्ये चित्तु यं सद्ने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियांसः ।

प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावन्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

पुरूणि दुरजो नि रिणाति जम्भैराद्रांचते वन आ विभावा ।

आदस्य वातो अलु वाति शोचिरस्तुर्न शयीमसनामनु दून् ॥ ४ ॥

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेपगा रेपयन्ति ।

अन्धा अपश्या न दम्भन्नभिख्या नित्यांस ई प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ १४१ ॥ ऋषिः-दीर्घतमा । देवता-अग्नि । छन्द-विराद ॥

॥ १४० ॥ महः स राय एषते पतिर्दक्षिण इनस्य वसुनः पद आ ।

उप भ्रजन्तमद्रयो विधन्ति ॥ १ ॥

स यो वृषा नरा न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।

प्र यः संस्त्राणः शिश्रीत योनीं ॥ २ ॥

नित्ये । चित्तु । नु । यं । सद्ने । जगृभ्रे । प्रशस्तिऽभिः । दधिरे । यज्ञियांसः । प्र ।

सु । नयन्त । गृभयन्तः । इष्टौ । अन्वासः । न । रथ्यः । रारहाणाः ॥ ३ ॥ पुरूणि ।

दस्यः । नि । रिणाति । जम्भैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभाऽवा । आत् ।

अस्य । वातः । अलु । वाति । शोचिः । अस्तुः । न । शयी । असना । अनु । दून् ।

॥ ४ ॥ न । यं । रिपवः । न । रिषण्यवः । गर्भे । सन्तं । रेपगाः । रेपयन्ति । अन्धाः ।

अपश्याः । न । दम्भन् । अभिऽख्या । नित्यांसः । ई । प्रेतारः । अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

महः । सः । रायः । आ । एषते । पतिः । दन् । इनः । इनस्य । वसुनः ।

पदे । आ । उप । भ्रजन्तं । अद्रयोः । विधन् । इत् ॥ १ ॥ सः । यः । वृषा । नरा ।

न । रोदस्योः । श्रवःऽभिः । अस्ति । जीवपीतऽसर्गः । प्र । यः । संस्त्राणः ।

शिश्रीत । योनीं ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० १८, १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १५०

आ यः पुरं नामिणीमदीदेत्यः कविर्नभन्योर्नार्वा ।

नृरो न रुक्काञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

अभि द्विजन्ना त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्ना विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्नै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १५० ॥ ऋषि - दीपतमा । देवता - अग्निः । छन्द - उष्णिक् ॥

॥ १५० ॥ पुरु त्वां दाश्वान्वाञ्चेऽरिरे त्वं स्वित्वा ।

तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

व्यनिनस्यं धनिनः प्रहोषे चिदररुपः ।

कदा चन प्रजिगंतो अदेवयोः ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो वार्धन्तमो दिवि ।

प्रप्रेत्तं अग्ने वनुषः त्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

आ । यः । पुरं । नामिणीं । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा ।

सूरः । न । रुक्कान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥ अभि । द्विऽजन्मा । त्री । रोचनानि

विश्वी । रजांसि । शुशुचानः । अस्थान् । होता । यजिष्ठः । अपा । सधस्थे ॥ ४ ॥

अयं । सः । होता । यः । द्विऽजन्मा । विश्वी । दधे । वार्याणि । श्रवस्या । मर्तः ।

यः । अस्नै । सुतुकोः । ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

पुरु । त्वा । दाश्वान् । वाञ्चे । अरिः । अग्ने । त्वं । स्वित्वा । आ । तोदस्ये-

व्यं । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥ वि । अनिनस्यं । धनिनः । प्रहोषे । चित्वा ।

महस्यं । कदा । चन । प्रजिगंतः । अदेवयोः ॥ २ ॥ सः । चन्द्रः । विप्र । मर्त्यः ।

पुः । वार्धन्तमः । दिवि । प्रप्रेत्तं । अग्ने । वनुषः । त्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥



॥ १५१ ॥ ऋषि -वीर्यतमा । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-जगनी ॥

॥ १५१ ॥ मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्व्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।  
 अरजेतां रोदसीं पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥  
 यद्द त्यद्वां पुरुनीळहस्यं सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।  
 अध क्रतुं विदतं गातुमर्चते उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥  
 आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।  
 यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्र्या शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥  
 प्र सा क्षितिरेगुर या महिं प्रिय क्रतावानावृनमा घोषयो बृहत् ।  
 युवं दिवो बृहतां दक्षमाभुवं गां न धुर्युषं युजाथे अपः ॥ ४ ॥  
 मही अत्रं महिना वारंमृष्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्भन्धेनवः ।  
 स्वरन्ति ता उपरतांति सूर्यमा निभुचं उपसस्तकवीरिव ॥ ५ ॥ २० ॥

मि॒त्रं । न । यं । शि॒म्या । गो॒षु । ग॒व्यवः । सु॒ऽआ॒ध्व्यः । वि॒दथे । अ॒प्सु । जी॒ज॒नन् ।  
 अ॒र॒जे॒तां । रो॒द॒सीं इति । पा॒ज॒सा । गि॒रा । प्र॒ति । प्रि॒यं । य॒ज॒तं । ज॒नु॒षां ।  
 अ॒वः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । वां । पु॒रु॒नी॒ळ॒ह॒स्यं । सो॒मि॒नः । प्र । मि॒त्रा॒सोः । न ।  
 द॒धि॒रे । सु॒ऽआ॒भु॒वः । अ॒ध । क्र॒तुं । वि॒द॒तं । गा॒तुं । अ॒र्च॒ते । उ॒त । श्रु॒तं । वृ॒ष॒णा ।  
 प॒स्त्या॒व॒तः ॥ २ ॥ आ । वां । भू॒ष॒न् । क्षि॒त॒यः । ज॒न्म । रो॒द॒स्योः । प्र॒वा॒च्यं ।  
 वृ॒ष॒णा । द॒क्ष॒से । म॒हे । यत् । ई । क्र॒ता॒य । भर॒थः । यत् । अ॒र्व॒ते । प्र । हो॒त्र्या ।  
 शि॒म्या । वी॒थः । अ॒ध्व॒रं ॥ ३ ॥ प्र । सा । क्षि॒तिः । अ॒गु॒रा । या । महिं । प्रि॒या ।  
 क्र॒ता॒व॒ानो । क्र॒तं । आ । घो॒ष॒योः । बृ॒हत् । यु॒वं । दि॒वः । बृ॒ह॒तां । द॒क्षं । आ॒भु॒वं ।  
 गां । न । धु॒रि । उ॒षं । यु॒जा॒थे इति । अ॒पः ॥ ४ ॥ म॒ही इति । अ॒त्रं । म॒हि॒ना ।  
 वा॒रं । ऋ॒ष्व॒थः । अ॒रे॒ण॒वः । तु॒जः । आ । स॒द्भ॒न् । धे॒न॒वः । म्ब॒र॒न्ति । ताः । उ॒पर॒ऽ  
 तांति । सू॒र्यं । आ । नि॒भु॒चं । उ॒प॒सः । त॒क॒वीःऽइ॒व ॥ ५ ॥ २० ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २? ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० २? सू० १९?

आ वा॒मृ॒ताय॑ के॒शि॒र्त्वीर॑नृ॒पत॑ मि॒त्र॒ यत्र॑ व॒रुण॑ गा॒तुम॑र्च॒यः ।

अव॒ त्मना॑ सृ॒जतं॑ पि॒न्वत॑ धियो॑ यु॒वं वि॒प्रस्य॑ मन्म॑नामिर॒ज्यथः॑ ॥ ६ ॥

यो वाँ॑ य॒ज्ञैः शं॑श॒मानो॑ ह॒ दा॒शति॑ क॒वि॒र्होता॑ य॒जति॑ मन्म॑सा॒र्धनः॑ ।

उपा॒हृ तं॑ गच्छ॑स्यो दी॒यो अ॒ध्यर॑मच्छा॒ गिरः॑ सु॒मतिं॑ गन्त॑मस्म॒यू ॥ ७ ॥

यु॒वां य॒ज्ञैः प्र॑थ॒मा गो॑धि॒रश॑न्त॒ कृता॑वा॒ना मन॑सो॒ न प्र॑यु॒क्तिषु॑ ।

भर॑न्ति वाँ॑ म॒नसा॑ लं॒यता॑ गिरो॑ऽदृ॒ष्यता॑ न॒नसा॑ रे॒वदा॑शाथे ॥ ८ ॥

रे॒वद्व॑यो॑ दधाथे॒ रे॒वदा॑शाथे॒ नरा॑ आ॒याऽजि॑रि॒त॒कृति॑ मादि॒नम् ।

न वाँ॑ आ॒योऽहं॑भि॒र्नोति॑ सि॒न्धो न॑ दे॒वत्वं॑ पु॒णयो॑ नान॑नु॒र्भवन् ॥ ९ ॥ २? ॥

आ । वा । मृ॒ताय॑ । के॒शि॒र्त्वीः । नृ॒प॒त॒ । मि॒त्रं । य॒त्र॒ । व॒रु॒ण॒ । गा॒तु॒म् । अ॒र्च॒यः॒ ।

अ॒व॒ । त्म॒ना॒ । सृ॒ज॒तं॒ । पि॒न्व॒तं॒ । धि॒योः॒ । यु॒वं॒ । वि॒प्र॒स्य॒ । मन्म॑नां॒ । अ॒र॒ज्य॒थः॒ ॥ ६ ॥

यो॒ । वाँ॑ । य॒ज्ञैः॒ । शं॑श॒मा॒नः॒ । ह॒ । दा॒श॒ति॒ । क॒वि॒ः । हो॒ता॒ । य॒ज॒ति॒ । मन्म॑सा॒र्ध॒नः॒ ।

उ॒पा॒हृ॒तं॒ । गच्छ॑स्यो॒ । दी॒योः॒ । अ॒ध्य॒रं॒ । अ॒च्छा॒ । गि॒रः॒ । सु॒म॒ति॒ । गन्त॑ । म॒स्म॒यू॒ ॥ ७ ॥

यु॒वा॒ । य॒ज्ञैः॒ । प्र॑थ॒मा॒ । गो॑धि॒र॒ । अ॒श॑न्त॒ । कृ॒ता॒वा॒ना॒ । म॒न॒सो॒ । न॒ प्र॑यु॒क्ति॒षु॒ ।

भ॒र॑न्ति वाँ॑ म॒न॒सा॒ । लं॒य॒ता॒ । गि॒रो॑ऽदृ॒ष्य॒ता॒ । न॒न॒सा॒ । रे॒व॒दा॑शा॒थे॒ ॥ ८ ॥

रे॒व॒द्व॒यो॑ । द॒धा॒थे॒ । रे॒व॒दा॑शा॒थे॒ । न॒रा॑ । आ॒याः॒ । अ॒जि॑रि॒त॒कृ॒ति॒ । मा॒दि॒न॒म्॒ ।

न॒ वाँ॑ । आ॒योः॒ । अ॒हं॑भि॒र्नो॒ति॒ । सि॒न्धो॒ । न॒ दे॒व॒त्वं॑ । पु॒ण॒यो॑ । नान॑नु॒र्भ॒वन् ॥ ९ ॥ २? ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ मु० १००

॥ १५२ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१५२॥ यु॒वं व॒स्त्राणि॑ पी॒वसा॑ व॒साथे॑ यु॒वोरच्छि॑द्रा म॒न्तवो॑ ह॒ सर्गा॑

अवा॑तिरतम॒नृतानि॑ वि॒श्वं ऋ॒तेन॑ मि॒त्रावरु॑णा स॒चेथे ॥ १ ॥

ए॒तच्च॑न त्वो॒ वि चि॑केत॒देषां॑ स॒त्यो मन्त्रः॑ क॒विदा॒स्त ऋ॒धावान् ।

त्रि॒रश्रि॑ ह॒न्ति च॒तुरश्रि॑रु॒ग्रो दे॒वनि॑दो॒ ह प्रथ॑मा अ॒जूर्य॑न् ॥ २ ॥

अ॒पादे॑ति प्रथ॒मा प॒द्वती॑नां क॒स्तव्यं॑ मि॒त्रावरु॑णा चि॒केत ।

ग॒र्भो भा॑रं भ॒रत्या॑ चि॒दस्य॑ ऋ॒तं पि॒पत्य॑नृतं॒ नि ता॑रीत् ॥ ३ ॥

प्र॒यन्त॑मि॒त्परि॑ जा॒रं क॒नीनां॑ प॒श्याम॑सि नो॒पनि॑पद्यमानम् ।

अ॒नव॑पृ॒ष्णा वि॒तता॑ व॒सानं॑ प्रि॒यं मि॒त्रस्य॑ व॒रुण॑स्य धामं ॥ ४ ॥

अ॒नश्वो॑ जा॒तो अ॒नभी॑शु॒रवा॑ क॒निक॑दत्प॒तय॑र्ध्व॒सांनुः ।

अ॒चित्तं॑ ब्रह्मं जु॒जुपु॑र्यु॒वानः॑ प्र मि॒त्रे धाम॑ व॒रुणे॑ गृ॒णन्तः॑ ॥ ५ ॥

यु॒वं । व॒स्त्राणि॑ । पी॒वसा॑ । व॒साथे॑ इति । यु॒वोः । अ॒च्छि॑द्राः । म॒न्तवः॑ । ह॒ । सर्गा॑ः । अ॒व । अ॒तिर॑तं । अ॒नृतानि॑ । वि॒श्वं । ऋ॒तेन॑ । मि॒त्रावरु॑णा । स॒चेथे॑ इति । ॥ १ ॥ ए॒तत् । च॒न । त्वः । वि । चि॑केतत् । ए॒षां । स॒त्यः । मन्त्रः॑ । क॒विऽश॑स्तः । ऋ॒धावान् । त्रिःऽअ॑श्रि । ह॒न्ति । च॒तुःऽअ॑श्रिः । उ॒ग्रः । दे॒वऽनि॑दः । ह॒ । प्रथ॑माः । अ॒जूर्य॑न् ॥ २ ॥ अ॒पात् । ए॒ति । प्रथ॑मा । प॒द्वऽव॑तीनां । कः । तत् । वा । मि॒त्राव॑रुणा । आ । चि॑केत । ग॒र्भः । भा॑रं । भ॒रति॑ । आ । ति॒त् । अ॒न॒ । नृतं॑ । पि॒पति॑ । अ॒नृतं॑ । नि । ता॑रीत् ॥ ३ ॥ प्रऽय॑न्तं । इत् । परि॑ । जा॒रं । क॒नीनां॑ । प॒श्याम॑सि । न । उ॒पनि॑पद्यमानं । अ॒नव॑पृ॒ष्णा । वि॒तता॑ । व॒सानं॑ । प्रि॒यं । मि॒त्रस्य॑ । व॒रुण॑स्य । धामं ॥ ४ ॥ अ॒नश्वः॑ । जा॒तः । अ॒नभी॑शुः । अ॒वा॑ । क॒निक॑दत् । प॒तय॑न् । ऊ॒र्वाऽ॑सानुः । अ॒चित्तं॑ । ब्रह्मं । जु॒जुपुः॑ । यु॒वानः॑ । प्र । मि॒त्रे । धामं॑ । व॒रुणे॑ । गृ॒णन्तः॑ ॥ ५ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २२,२३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १५३

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्तस्मिन्नूर्धन् ।

पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्यानासाधिवोसन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

आ वा मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवावचसा ववृत्याम् ।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सव्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

॥ १५३ ॥ ऋषि-दीपकमा । देवता-मित्रावरुणो । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १५३ ॥ यजामहे वां महः सजोषां हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।

वृत्तैर्वृत्तस्तु अथ यदासगमे अंध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

प्रस्तुतिर्वा धाम न प्रथुक्तिरयामि मित्रावरुणा लुवृक्तिः ।

अनक्ति यदा विद्वेषु होता सुन्नं वां सुरिष्टीपणावियंक्षन् ॥ २ ॥

पीपाय धेनुरभितिर्कृताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दं ।

द्विजानि यदा विद्वेषु सपर्यन्तव रातः प्रयो सादुषो न होतां ॥ ३ ॥

आ । धेनवः । मामतेयं । अवन्तीः । ब्रह्मप्रियं । पीपयन् । स्मिन्नूर्धन् । पित्वः ।

अष्ट० २ अध्या० २ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १५४

उत वां विश्वु मद्यास्वन्यो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।

उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पर्यस उस्त्रियायाः ॥ ४ ॥ २३ ॥

॥ १५४ ॥ ऋषि-दीर्घतमाः । देवता-विष्णुः । छन्द-त्रिष्टुप ॥

॥१५४॥ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कंभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेथोरुगायः ॥ १ ॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिचन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षितं उरुगायाय वृष्णे ।

य हृद् दीर्घं प्रयतं सधस्थमेकौ विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।

य उं त्रिधातुं पृथिवीमुत द्यामेकौ दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

उत । वां । विश्वु । मद्यासु । अंधः । गावः । आपः । च । पीपयन्त । देवीः । उतो  
इति । नः । अस्य । पूर्व्यः । पतिः । दन् । वीतं । पातं । पर्यसः । उस्त्रियायाः ॥ २३ ॥

विष्णोः । नु । कं । वीर्याणि । प्र । वोचं । यः । पार्थिवानि । विममे ।  
रजांसि । यः । अस्कंभायत् । उत्तरं । सधस्थं । विचक्रमाणः । त्रेधा । उरुगायः  
॥ १ ॥ प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः । कुचरः ।  
गिरिष्ठाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विक्रमणेषु । अधिक्षिचन्ति । भुवनानि ।  
विश्वा ॥ २ ॥ प्र । विष्णवे । शूषं । एतु । मन्म । गिरिक्षितं । उरुगायाय । वृष्णे ।  
यः । इद् । दीर्घं । प्रयतं । सधस्थं । एकः । विममे । त्रिभिः । इत् । पदेभिः ॥ ३ ॥  
यस्य । त्री । पूर्णा । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया । मदन्ति । यः ।  
उं इति । त्रिधातुं । पृथिवीं । उत । द्यां । एकः । दाधारं । भुवनानि । विश्वा ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २४,२५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० ३१ सू० १५५

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥

ता वां वास्तुन्युश्मसि गमध्वे यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तदृग्गायस्य वृष्णः परमं पदमवं भाति भूरि ॥ ६ ॥ २४ ॥

॥ १५५ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-विष्णु । छन्दः-जगती ॥

॥१५५॥ प्र वः पान्तमन्वसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्षत ।

या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्धतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

त्वेपमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णु सुतपा वांमुरुष्यति ।

या मन्याय प्रतिधीयमानमिस्क्रुशानोरस्तुरसनामुंरुष्यथः ॥ २ ॥

ता इ वर्यन्ति मर्यस्य पोस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।

दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नामं तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

तत् । अस्य । प्रियं । अभिः । पाथः । अश्यां । नरः । यत्र । देवयवः । मदन्ति ।

उरुऽक्रमस्य । सः । हि । बन्धुः । इत्था । विष्णोः । पदे । परमे । मध्वः । उत्सः ॥५॥

ता । वां । वास्तुनि । उश्मसि । गमध्वे । यत्र । गावः । भूरिशृङ्गाः । अयासः ।

अत्रे । अहात् । तत् । उरुऽगायस्यं । वृष्णः । परमं । पदं । अवं । भाति । भूरि ॥६॥ २४ ॥

प्र । वः । पाते । अन्वसः । धियाऽयते । महे । शूराय । विष्णवे । च ।

अर्षत । या । सानुनि । पर्वतानां । अदाभ्या । महः । तस्धतुः । अर्षिताऽत्र ।

साधुना ॥ १ ॥ त्वेषं । इत्था । संऽअरणं । शिमीवतोः । इंद्राविष्णु इति । सुतथाः ।

या । उरुष्यति । सा । मन्याय । प्रतिधीयमानं । इत् । क्रुशानोः । अन्तुः । अमनां ।

उरुष्यथः ॥ २ ॥ ताः । इ । वर्यन्ति । मरि । अस्य । पोस्य । नि । मातरा । नयति ।

रेतसे । भुजे । दधाति । पुत्रः । अवरं । पर । पितुः । नाम । तृतीयं । अभि ।

रोचने । दिवः ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २५, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० २ अनु० २१ सू० १५६

तत्तदिदस्य पौंस्यै गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळहुषः ।

यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायार्थं जीवसे ॥ ४ ॥

द्वे इदस्य क्रमणे स्वदृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥

चतुर्भिः साकं नवति च नामभिरुचक्रं न वृत्तं व्यतीरवीविपत् ।

बृहच्छरीरो विमिमान् ऋकभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

॥ १५६ ॥ ऋषि-दीर्घत्वा । देवता-विष्णु । छन्द-जगती ॥

॥ १५६ ॥ भवा मित्रो न शैव्यो घृतासुतिर्विभूतशुभ्र एवया उं सप्रथाः ।

अथां ते विष्णो विदुषां चिदर्थ्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

यः पृथ्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।

यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेतु श्रवोभिर्युज्यं चिदर्थ्यसत् ॥ २ ॥

तत्सत् । इत् । अस्य । पौंस्यै । गृणीमति । इनसां । त्रातुः । अवृकस्य । मीळहुषः ।

यः । पार्थिवानि । त्रिभिः । इत् । विगामभिः । उरु । क्रमिष्ट । उरुगायार्थं ।

जीवसे ॥ ४ ॥ द्वे इति । इत् । अस्य । क्रमणे इति । स्वःऽदृशः । अभिख्याय

मर्त्यैः । भुरण्यति । तृतीयं । अस्य । नकिः । आ । दधर्षति । वयः । चन । पतयन्तः ।

पतत्रिणः ॥ ५ ॥ चतुर्भिः । साकं । नवति । च । नामभिः । चक्रं । न । वृत्तं ।

व्यतीरन् । अवीविपत् । बृहत्शरीरः । विमिमानः । ऋकभिः । युवा । अकुमारः ।

प्रति । एति । आहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

भव । मित्रः । न । शैव्यः । घृतासुतिः । विभूतशुभ्रः । एवयाः । उं

इति । सप्रथाः । अथ । ते । विष्णो इति । विदुषां । चिन् । अर्थ्यः । स्तोमः । यज्ञः

च । राध्यः । हविष्मता ॥ १ ॥ यः । पृथ्याय । वेधसे । नवीयसे । सुमज्जानये ।

विष्णवे । ददाशति । यः । जातं । अस्य । महतः । महि । ब्रवत् । सः । इत् । ऊं

इति । श्रवःभिः । युज्यं । चिन् । अभि । असत् ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० २ व० २६, २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १५७

तमुं स्तोतारः पूर्ये यथा विद ऋतस्य गर्भे जनुषां पिपतेन ।

आस्यं जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भंजामहे ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना ऋतुं सचन्त मरुतस्य वेधसः ।

दाधार दक्षसुत्तममर्हावदं व्रजं च विष्णुः सखिर्वा अयोर्गुते ॥ ४ ॥

आ यो विवार्यं सचथाय देव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।

वेधा अजिन्वत्रिषधस्य आर्यमुतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५॥२३॥२१॥

॥ द्वाविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १५७ ॥ र्वि-जपाना । वरुण-अश्विना । उन्द-विदुर् ॥

॥१५७॥ अवां अत्रिर्ध्वं उदंति सूर्यो यदुपाध्वन्त्रा सुखावो अचिषां ।

आयुक्षानामश्विना यातये स्थं प्रासावीदेयः संश्रिता जगन्मयं ॥ १ ॥



अष्ट० २ अध्या० २ व० २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १५७

युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।  
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥  
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।  
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥  
आ न ऊर्जे वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया भिमिक्षतम् ।  
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवंतं सचाभुवा ॥ ४ ॥  
युवं ह गर्भे जगतीषु धत्यो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।  
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥  
युवं हं स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्याऽराथ्येभिः ।  
अथो ह क्षत्रमधि धत्य उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा द्दाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

यत् । युञ्जाथे इति । वृषणं । अश्विना । रथं । घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रं । उक्षतं ।  
अस्माकं । ब्रह्मं । पृतनासु । जिन्वतं । वयं । धना । शूरसाता । भजेमहि ॥ २ ॥  
अर्वाङ् । त्रिचक्रः । मधुवाहनः । रथः । जीराश्वः । अश्विनोः । यातु ।  
सुष्टुतः । त्रिवन्धुरः । मघवा । विश्वसौभगः । शं । नः । आ । वक्षत् । द्विपदे ।  
ऽपदे ॥ ३ ॥ आ । नः । ऊर्जे । वहतं । अश्विना । युवं । मधुमत्या । नः ।  
कशया । भिमिक्षतं । प्र । आयुः । तारिष्टं । निः । रपांसि । मृक्षतं । सेधतं । द्वेषः ।  
भवंतं । सचाभुवा ॥ ४ ॥ युवं । ह । गर्भे । जगतीषु । धत्यः । युवं । विश्वेषु ।  
भुवनेषु । अंतरिति । युवं । अग्निं । च । वृषणा । अपः । च । वनस्पतीन् । अश्विनोः ।  
ऐरयेथां ॥ ५ ॥ युवं । ह । स्थः । भिषजा । भेषजेभिः । अथो इति । ह । स्थः ।  
रथ्यां । रथ्येभिरिति रथ्येभिः । अथो इति । ह । क्षत्रं । अग्निं । धत्यः । उग्रा । यः ।  
वां । हविष्मान् । मनसा । द्दाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाष्टके द्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके त्रितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ १५८ ॥ ऋषि-दीपतमा । देवता-अश्विना । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१५८॥ वसुं रुद्रा पुंसुमन्तू वृधन्तां दग्स्यन्तं नो वृषणावभिष्टौ ।

दस्ता ह यद्रेक्कणं औचथ्यो वां प्र यत्सस्त्राथे अकंवाभिरुती ॥ १ ॥

फो वां दाशत्सुमन्तये चिदग्भ्य वसु यद्देथे नमसा पदे गोः ।

जिगृन्तमस्मे रेचताः पुरन्थाः कामप्रेणैय मनन्मा चरन्ता ॥ २ ॥

युक्ता ह यथा तौग्रवाथं पेन्वि मध्ये अर्णसो धायि पन्नः ।

उपं वामथः शरणं गमैथ शूरो नाज्मं पन्थद्विरेवं ॥ ३ ॥

उपस्तुतिरोधथ्यमुरुष्येन्मा माभिमे पन्त्रिणां वि कुंभान् ।

मा माग्धो दशतयप्रितां धाक् प्र यथा वडस्मनि गार्दनि क्षान् ॥ ४ ॥

न मां गरन्नद्यो मातृत्तमा दासा यदीं सुसंमुब्धमवाधुः ।  
 शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्य ॥ ५ ॥  
 दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।  
 अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ १५९ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-यावापृथिव्यौ । छन्द-जगती ॥

॥१५९॥ प्र यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचंतसा ।

देवेभियं देवपुत्रे सुदंससेत्या धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

उत मन्ये पितुरद्बुहो मनो मातुर्महि स्वतंवस्तह्वीमभिः ।

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुरु प्रजायां अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

ते सूनवः स्वपंसः सुदंससो मही जंजुर्मातरां पूर्वचित्तये ।

स्थानुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥

न । मा । गरन् । नद्यः । मातृत्तमाः । दासाः । यत् । ई । सुसंमुब्धं । अवऽअधुः ।  
 शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । वितक्षत् । स्वयं । दासः । उरः । अंसा । अपि ।  
 ग्येति ग्य ॥ ५ ॥ दीर्घतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे । अपा । अर्थे ।  
 यतीनां । ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

प्र । यावा । यज्ञैः । पृथिवी इति । ऋतावृधा । मही इति । स्तुषे । विदथेषु ।  
 प्रऽचंतसा । देवेभिः । ये इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । सुदंससा । इत्या । धिया ।  
 वार्याणि । प्रऽभूषतः ॥ १ ॥ उत । मन्ये । पितुः । अद्बुहः । मनः । मातुः । महि ।  
 स्वऽतंवः । तत् । ह्वीमभिः । सुरेतसा । पितरा । भूमं । चक्रतुः । उत । प्रऽजायाः ।  
 अमृतं । वरीमभिः ॥ २ ॥ ते । सूनवः । सुऽअपंसः । सुदंससः । मही इति ।  
 जंजुः । मातरां । पूर्वचित्तये । स्थानुः । च । सत्यं । जगतः । च । धर्मणि । पुत्रस्य ।  
 पाथः । पदं । अद्वयाविनः ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ वः २,३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६०

ते मा॒यि॒नो म॒मि॒रे सु॒प्र॒च॑ंत॒सो जा॒मी स॒यो॒नी मि॒थु॒ना स॒मो॒क॒सा ।  
न॒व्य॒न्न॒व्यं त॒न्तु॒मा त॑न्वते दि॒वि सं॒सु॒द्रे अ॒न्तः क॒वयः॑ सु॒दी॒नयः॑ ॥ ४ ॥  
त॒द्रा॒धो अ॒थ सं॒वि॒तु॒र्वरे॑ण्यं व॒यं दे॒व॒न्यं प्र॒स॒वे म॑नामहे ।  
अ॒स्मभ्यं॑ द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी सु॒चे॒तु॒नां र॒यिं ध॑त्तं वसु॑म॒न्तं श॒त॒ग्वि॒नं॑म् ॥ ५ ॥ २ ॥

॥ १६० ॥ इषि-रीप्रतना । देवता-प्रागपृथिव्यो । छन्द-जगती ॥

॥१६०॥ ते हि द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी वि॒श्व॒वा॒म्भु॒व क॒ना॒व॒री र॒ज॒सो धा॒र॒य॒त्क॒वी ।  
सु॒ज॒न्म॑नी धि॒प॒णे अ॒न्त॒री॒यते॑ दे॒वो दे॒वी ध॑र्म॒णा स॒र्यः शु॒चिः ॥ १ ॥  
अ॒व्य॒च॑सा म॒हि॒नी अ॒म॒श्च॑ता पि॒ता मा॒ता च॒ भु॒व॑नानि रक्ष॒नः ।  
सु॒भृ॒ष्ट॑मे व॒पु॒ष्ये॒श्न रो॑द॒सी पि॒ता य॒न्नी॑स॒न्ति न्ये॒ष्य॑सा॒स्यन् ॥ २ ॥  
स॒ व॒न्दिः पु॒त्रः पि॒त्रोः प॒वि॒त्र॑वान्पु॒नानि॑ धी॒रो भु॒व॑तानि मा॒यया॑ ।  
पे॒तुं च॒ पु॒दिं वृ॒ष॒भं सु॒रे॒त॑सं वि॒श्व॒वा॒हो शु॒क्रं प॑यो॒ अ॒न्य इ॒क्षत ॥ ३ ॥

ते । मा॒यि॒नः । म॒मि॒रे । सु॒प्र॒च॑ंत॒सः । जा॒मी श॒नि । स॒यो॒नी श॒नि न॒दो॒नी । मि॒थु॒ना ।  
सं॒सु॒द्रे । न॒व्य॒न्न॒व्यं । त॒न्तु॒ । आ । त॑न्वते । दि॒वि । सं॒सु॒द्रे । अ॒न्त॒गि॒ति । क॒वयः॑ ।  
सु॒दी॒नयः॑ ॥ ४ ॥ तन् । रा॒धः । अ॒थ । सं॒वि॒तुः । व॒रे॑ण्यं । व॒यं । दे॒व॒न्यं । प्र॒स॒वो ।  
म॑नामहे । अ॒स्मभ्यं॑ । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी श॒नि । सु॒चे॒तु॒नां । र॒यिं । ध॑त्तं । वसु॑म॒न्तं ।  
श॒त॒ग्वि॒नं ॥ ५ ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० ३,४ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६ ]

अयं देवानामपसांमपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।

वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्तम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवंः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

॥ १६१ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-ऋभवः । छन्द-जगती ॥

॥१६१॥ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजंगन्किमीयते दृत्यङ्कयदूचिम ।

न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्दुण इद्भूतिमुदिम ॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरस्कृणोतन तद्वो देवा अद्युवन्तद्र आगमम् ।

सौर्यन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियांसो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदत्रंवीतनाथ्वः कर्त्वी रथ उतेह कर्त्वीः ।

धेनुः कर्त्वी युवशा कर्त्वी द्रा तानि भ्रातरनु वः कृत्वयेमसि ॥ ३ ॥

अयं । देवानां । अपसां । अपःस्तमः । यः । जजान । रोदसी इति । विश्वशंभुवा ।

वि । यः । ममे । रजसी इति । सुक्रतूऽयया । अजरेभिः । स्तम्भनेभिः । सं ।

आनृचे ॥ ४ ॥ ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवंः । क्षत्रं ।

द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येन । अभि । कृष्टीः । ततनाम । विश्वहा ।

पनाय्यं । ओजः । अस्मे इति । सं । इन्वतं ॥ ५ ॥ ३ ॥

किं । ऊं इति । श्रेष्ठः । किं । यविष्ठः । नः । आ । अजगन् । किं । इयने ।

दृत्यं । कत् । यत् । ऊचिम । न । निन्दिम । चमसं । यः । महाकुलः । अग्ने ।

भ्रातः । दुणः । इत् । भूतिं । उदिम ॥ १ ॥ एकं । चमसं । चतुरं । कृणोतन ।

तत् । वः । देवाः । अद्युवन् । तत् । वः । आ । अगमं । सौर्यन्वनाः । यद्वि । एव ।

करिष्यथ । साकं । देवैः । यज्ञियांसः । भविष्यथ ॥ २ ॥ अग्निं । दूतं । प्रति ।

यत् । अत्रंवीतन । अथ्वः । कर्त्वीः । रथः । उत । इत् । कर्त्वीः । धेनुः । कर्त्वी ।

युवशा । कर्त्वी । द्रा । तानि । भ्रातः । अनु । वः । कृत्वी । आ । इमसि ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० ४,९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६१ ]

च॒कृ॒वांसं॑ ऋ॒भ॒व॒स्त॒द्गु॒च्छत॑ के॒द॒नू॒घ स्य॑ दू॒तो न॒ आ॒ज॒गन् ।  
य॒दा॒वा॒न्य॒च्च॒म॒सा॒ञ्च॒नुरः॑ कृ॒ता॒ना॒दि॒त्य॒ष्टा प्रा॒स्व॒न्त॒न्या॒नजे ॥ ४ ॥  
ह॒ना॒सि॒नाँ इति॑ त्व॒ष्टा यद॒त्र॒र्वा॒च्च॒म॒सं ये दे॒व॒पा॒न॒म॒नि॒न्दि॒षुः ।  
अ॒न्या॒ ना॒मा॒नि कृ॒ण्व॒ते सु॒ते स॒चाँ अ॒न्यैर॑ना॒न्क॒न्या॒इ॒ना॒म॒भिः स्पर्त् ॥ ५ ॥ ४ ॥  
इन्द्रो॑ ह॒रीं यु॒यु॒जे अ॒श्वि॒ना रथं॑ वृ॒ह॒स्प॒ति॒वि॒श्व॒रू॒पा॒मु॒पा॒जत॑ ।  
ऋ॒भृ॒धि॒श्वा वा॒जाँ दे॒वा अ॒गच्छ॑न् स्व॒प॒सो य॒ज्ञि॒यं भा॒ग॒मे॒तन ॥ ६ ॥  
नि॒श्व॒र्म॒णो॒ गा॒म॒ग्नि॒णान॑ धी॒नि॒भिर्या॑ ज॒र॒न्ता यु॒व॒शा ता॒कृ॒णो॒तन॑ ।  
सो॒म॒न्व॒ना अ॒श्वा॒द॒श्व॑स॒तश्च॑न यु॒क्त्वा रथ॑मु॒प॒ दे॒वाँ अ॒या॒तन ॥ ७ ॥  
इ॒द॒मु॒द॒कं पि॒ब॒ते॒त्य॒न्न॒वी॒तने॒दं वा॑ वा पि॒ब॒ता सु॒ञ्जे॒ज॒नम् ।  
सो॒म॒न्व॒ना यदि॑ त॒न्नै॒व ह॒र्य॑थ॒ तृ॒तीये॑ वा स॒र्वे॒ने सा॒द॒या॒ध्वे ॥ ८ ॥

च॒कृ॒ऽवा॒ंसः । ऋ॒भ॒वः । त॒न् । अ॒प्र॒च्छ॒त॒ । के॒ । इ॒न् । अ॒न॒न॒ । यः । स्यः । दू॒तः ।  
नः । आ॒ । अ॒ज॒ग॒न् । य॒दा॒ । अ॒व॒ऽअ॒ग्न॑ । च॒म॒सा॒न॒ । च॒नुरः॑ । प्रा॒न॒ । प्रा॒न॒ ।  
इ॒त् । त्व॒ष्टा॑ । आ॒सु॑ । अ॒न्तः । नि॒ । आ॒न॒जे ॥ ४ ॥ । न॒ना॒ । न॒ना॒न॒ । इ॒ति॑ । त्व॒ष्टा॑ ।

आपो भूमिष्ठा इत्येको अत्रवीदग्निर्भूमिष्ठ इत्यन्यो अत्रवीत् ।  
 वधर्यन्ती बहुभ्यः प्रैको अत्रवीदना वदन्तश्चमसो अर्पिशत ॥ ९ ॥  
 श्रोणामेकं उदकं नामवाजति मांसमेकः पिशति सूनयामृतं ।  
 आ निशुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥ १ ॥  
 उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।  
 अगोह्यस्य यदसंस्तना गृहे तद्येदमृभवो नानुं गच्छथ ॥ ११ ॥  
 सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत कं । स्वित्तान्या पितरा व आसतुः ।  
 अर्शपत यः करस्त्वं व आददे यः प्रात्रवीत्प्रो तस्मा अत्रवीतन ॥ १२ ॥  
 सुपुष्वासं ऋभवस्तदृच्छतागोह्य क इदं नां अवृवुधत् ।  
 श्वानं वस्तो बोधयितारं अत्रवीत्संयत्सर इदमद्या व्यरूपत ॥ १३ ॥

आपः । भूमिष्ठाः । इति । एकः । अत्रवीत् । अग्निः । भूमिष्ठः । इति । अन्यः ।  
 अत्रवीत् । वधःऽर्यन्ती । बहुऽभ्यः । प्र । एकः । अत्रवीत् । ऋता । वदन्तः । चममान ।  
 अर्पिशत ॥ ९ ॥ श्रोणा । एकः । उदकं । गा । अर्धं । अजति । मांसं । एकः ।  
 पिशति । सूनया । आऽभृतं । आ । निऽशुचः । शकृन् । एकः । अपं । अमृत् । ति ।  
 स्वित् । पुत्रेभ्यः । पितरां । उपं । आवतुः ॥ १० ॥ १ ॥ उद्वत्ऽमुं । अम् ।  
 अकृणोतन । तृणं । निवत्ऽमृं । अपः । सुऽअपस्यया । नरः । अगोह्यस्य । यत् ।  
 असंस्तन । गृहे । तन् । अद्य । इदं । ऋभवः । न । अनुं । गच्छथ ॥ ११ ॥  
 संऽमील्य । यन् । भुवना । पर्यऽअसर्पत । कं । स्वित् । तान्या । पितरा । वः ।  
 आसतुः । अर्शपत । यः । करस्त्वं । वः । आऽददे । यः । प्र । अत्रवीत् । प्रो इति ।  
 तस्मै । अत्रवीतन ॥ १२ ॥ सुपुष्वासः । ऋभवः । तन् । अपृच्छत् । अगोह्य । कः । इदं ।  
 नः । अवृवुधत् । श्वानं । वस्तः । बोधयितारं । अत्रवीत् । संयत्सरे । इदं । अद्य ।  
 व्य । अरूपत ॥ १३ ॥

अष्ट० २ प्रत्या० ३ व० ६,७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६२

दिया यांन्ति मरुतां भूम्यान्निरयं वानो अंतरिक्षेण याति ।

अद्विरीति वरुणः समुद्रैर्युष्मा इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥ ६ ॥

॥ १-२ ॥ अग्नि-अपतना । द्यता-अवलुति । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१६२॥ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रं क्रमुक्षा मरुतः परिं ख्यन् ।

यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामां विदथे वीर्यीणि ॥ १ ॥

यन्निर्णिजा रेवणांसा प्राचृतस्य रानि गृभानां सुन्वतो नयन्ति ।

सुप्रादजो मेम्यश्चि उवस्वप इन्द्रापुष्णाः प्रियमप्येति पार्थः ॥ २ ॥

एष छासः पुरो अद्येन वाजिनो पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।

असिप्रियं यत्पुरोळागमर्षता स्वष्टेदं नोश्रवनाय जिन्वति ॥ ३ ॥

यद्विष्येभृत्पुणो देवयानं प्रिसालुषाः पर्येद्यं नयन्ति ।

अत्रो पूष्णः प्रथसो भाग गति भजं देवेभ्यः प्रनिवेद्यंनजः ॥ ४ ॥

दिया । यांति । मरुतः । भूम्यां । अग्निः । वानः । अंतरिक्षेण । याति ।

अद्विरीति । याति । वरुणः । समुद्रैः । युष्मा । इच्छन्तः । शवसः । नपातः ॥१४॥६

मा । नः । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । आयुः । इन्द्रः । क्रमुक्षाः । मरुतः ।



अष्ट० २ अध्या० ३ व० ७,८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६२

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।  
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन सिचष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥  
यूपवस्का उत ये यूपवाहाश्चपालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।  
ये चावृते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिर्गूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥  
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।  
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सुवन्धुन् ॥ ७ ॥  
यद्वाजिनो दामं सन्दानमर्वतो वा शीर्षण्यां रशना रज्जुरस्य ।  
यद्वा घास्य प्रभृतमास्येऽतृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥  
यदश्वस्य ऋविपो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वयितौ रिसमस्ति ।  
यद्दस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

होता । अध्वर्युः । आऽवयाः । अग्निऽमिन्धः । ग्रावऽग्राभः । उत । शंस्ता । सुऽविप्रः ।  
तेन । यज्ञेन । सुऽअरङ्कृतेन । सुऽसिचष्टेन । वक्षणाः । आ । पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥  
यूपऽवस्काः । उत । ये । यूपऽवाहाः । चपालं । ये । अश्वयूपाय । तक्षति । ये ।  
च । अवृते । पचनं । संऽभरन्ति । उतो इति । तेषां । अभिऽगूर्तिः । नः । इन्वतु ॥ ६ ॥  
उप । प्र । अगात् । सुऽमत् । मे । अधायि । मन्म । देवानां । आशाः । उप ।  
वीतऽपृष्ठः । अनु । एनं । विप्राः । ऋषयः । मदन्ति । देवानां । पुष्टे । चक्रम ।  
सुऽवन्धुं ॥ ७ ॥ यन् । वाजिनः । दामं । संऽदानं । अर्वतः । वा । शीर्षण्यां ।  
रशना । रज्जुः । अस्य । यत् । वा । घ । अस्य । प्रऽभृतं । आस्ये । तृणं । सर्वा ।  
ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ८ ॥ यत् । अश्वस्य । ऋविपः । मक्षिका ।  
आशं । यन् । वा । स्वरौ । स्वयितौ । गिप्तं । अस्ति । यन् । दस्तयोः । शमितुः ।  
यत् । नखेषु । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ९ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० ८.९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६२

यद्द्वयसुदरस्यावदाति य आनस्य ऋविषो गन्धो अस्ति ।  
सुकृता तच्छमितारः कृष्वन्तु मेधं शृतपाकं पदन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥  
यत्ते गात्राश्चिना पच्यमानाद्भि गृहं निहतस्यावधावति ।  
मा तद्भूम्यामा श्रिदन्ना तृणेषु द्वेष्यस्तद्गङ्गयो रानमस्तु ॥ ११ ॥  
ये याजिनं परिपश्यन्ति षडं य ईनाद्दुः सुरभिर्निर्हरति ।  
ये चार्थिनो नास्तिश्चानुत्तमं उतो तेषामभिनृतिर्न इत्यतु ॥ १२ ॥  
यन्नाक्षरं मास्पर्शन्त्या उग्रया वा पात्राणि युष्म आस्पर्शन्ति ।  
जामण्यापिधाना चरुगालंजाः कृताः परि शृष्वन्तश्चवन् ॥ १३ ॥  
निष्क्रमणं निषर्षं विवर्षं यच्च पद्वीशन्वितः ।  
यसं पपा यच्च घामिं जवान् सारो ता ते अविं श्रेयन्तु ॥ १४ ॥

---

अष्ट० २ अध्या० ३ व० ९,११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ मु० १६२

मा त्वाग्निध्वीनधीद्रुमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जग्धिः ।  
इष्टं वीतमभिर्गूतं वपद्कृतं तं देवासः प्रति गृज्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥ ९ ॥  
यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्मन्यस्मै ।  
सन्दानमर्वन्तं पद्वीशं प्रिया देवेष्वा घामयन्ति ॥ १६ ॥  
यत्ते सादे महंसा शूकृतस्य पाण्ण्या वा कशया वा तुतोदं ।  
सुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥  
चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्कीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।  
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुषररनुबुध्या वि शस्त ॥ १८ ॥  
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।  
या ते गात्राणामृतुधा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

धा । त्वा । अग्निः । ध्वनर्यात् । ध्रुमगन्धिः । मा । उखा । भ्राजती । अभि । विक्त ।  
जग्धिः । इष्टं । वीतं । अभिर्गूतं । वपद्कृतं । तं । देवासः । प्रति । गृभ्णन्ति ।  
अश्वं ॥ १५ ॥ ९ ॥ यत् । अश्वाय । वासः । उपस्तृणन्ति । अर्धीवासं । या ।  
हिरं । णि । अस्मै । संदानं । अर्वन्तं । पद्वीशं । प्रिया । देवेषु । आ । यमयन्ति ॥ १६ ॥  
यत् । ते । सादे । महंसा । शूकृतस्य । पाण्ण्या । वा । कशया । वा । तुतोदं । सुचा-  
इव । ता । हविषः । अध्वरेषु । सर्वा । ता । ते । ब्रह्मणा । सूदयामि ॥ १७ ॥  
चतुःस्त्रिंशत् । वाजिनः । देवबन्धोः । वङ्कीरः । अश्वस्य । स्वधितिः । सं । एति ।  
अच्छिद्रा । गात्रा । वयुना । कृणोत । परुषरः । अनुबुध्या । वि ।  
शस्त ॥ १८ ॥ एकः । त्वष्टुः । अश्वस्य । विशस्ता । द्वा । यन्तारा । भवतः ।  
तथा । ऋतुः । या । ते । गात्राणां । ऋतुधा । कृणोमि । ताता । पिण्डानां । प्र ।  
जुहोमि । अग्नौ ॥ १९ ॥

मा न्यां तपन्त्रिय आन्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्वर्वा तिष्ठिपत्ते ।

मा ते गृध्रंविशस्तानिहाय छिद्रा गात्राण्यस्तिना निधू कः ॥ २० ॥

न वा उ एतन्मियसे न रिप्यन्ति देवो इदंपि पथिभिः सुगेभिः ।

हरी ते युञ्जा पृषती अन्तानुपास्थाद्याजी धुरि रामभस्य ॥ २१ ॥

सुगन्धं नो वाजी स्वगन्धं पुंसः पुत्रो उत विद्वापुत्रं रयिन् ।

अनागान्धं नो अदितिः कुर्गातु क्षत्रं नो अयो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

॥ १२३ ॥ उरि-रिपयान् । अना-अन्तुति । उत-उत्तर ॥

॥ १६३ ॥ चदकन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्वंसुडावुत वा पुरीपात् ।

द्येनस्य पश्चा र्गिणस्य वाह उपस्तुत्यं लदि जानं ते अधिन् ॥ १ ॥

प्रथमं इत्तं प्रित एतनावुननिन्द्रे एणं प्रथमो अद्यनिष्ठत् ।

भन्धयो अंग्य रजनासंगुणात्तराद्यं प्रसरो निग्नट ॥ २ ॥

अष्ट० २. अन्या० २. व० ११, १२ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २१ म० ११८

असिं यमो अस्वा॑दित्यो अ॒र्वन्त॑सि त्रि॒तो गु॒ह्येन॑ व्र॒तेन॑ ।  
असि॑ सोमे॒न स॒मया॑ वि॒षृक्त॑ आ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि व॒न्ध॒नानि॑ ॥ ३ ॥  
त्रीणि॑ त आ॒हुर्दिवि॑ व॒न्ध॒नानि॑ त्री॒ण्यप्सु॑ त्री॒ण्यंतः॑ सं॒मुद्रे॑ ।  
ए॒तेव॑ मे व॒रुण॑श्छन्त॒स्यर्व॑न्यत्रा॒ त आ॒हुः पर॑मं ज॒नित्र॑म् ॥ ४ ॥  
इ॒मा ते॑ वाजि॒न्नव॑मा॒र्जनानी॑मा श॒फानां॑ स॒नितु॑र्नि॒धानां॑ ।  
अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना अ॒पश्य॑मृत॒स्य या अ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः ॥ ५ ॥ ११ ॥  
आ॒त्मानं॑ ते म॒नसा॑रा॒जानाम॑वो दि॒वा प॑त॒यन्तं॑ प॒तङ्ग॑म् ।  
शि॒रो अ॒पश्यं॑ प॒थिभिः॑ सु॒गेभि॑ररे॒णुभि॑र्जे॒हमानं॑ प॒तत्रि॑ ॥ ६ ॥  
अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑प॒श्यं जिगी॑षमाणमि॒ष आ प॑दे गोः ।  
प॒दा ते म॑र्ता॒ अनु॑ भो॒गमा॑न॒ळादि॑द्भ॒सिष्ट॑ ओष॒धीर॑जी॒गः ॥ ७ ॥

असिं । यमः । असिं । आ॒दि॒त्यः । अ॒र्वन् । असिं । त्रि॒तो । गु॒ह्येन॑ । व्र॒तेन॑ । असिं ।  
सोमे॒न । स॒मया॑ । वि॒षृक्तः॑ । आ॒हुः । ते । त्रीणि॑ । दि॒वि । व॒न्ध॒नानि॑ ॥ ३ ॥  
त्रीणि॑ । ते । आ॒हुः । दि॒वि । व॒न्ध॒नानि॑ । त्रीणि॑ । अ॒प्सु । त्रीणि॑ । अ॒न्तर्गि॑ति ।  
स॒मुद्रे॑ । उ॒त्त॑ऽऽव । ये । व॒रुणः॑ । छ॒न्ति॑ । अ॒र्वन् । यत्र॑ । ते । आ॒हुः । प॒रमं॑ । ज॒नित्रं॑  
॥ ४ ॥ इ॒मा । ते । वा॒जिन् । अ॒ज॒यमा॑र्जनानि । उ॒मा । श॒फानां॑ । स॒नितुः॑ । नि॒ऽ  
धानां॑ । अत्र॑ । ते । भ॒द्राः । र॑श॒नाः । अ॒पश्यं॑ । कृत॒स्य॑ । याः । अ॒भि॒रक्ष॑न्ति ।  
गो॒पाः ॥ ५ ॥ ११ ॥ आ॒त्मानं॑ । ते । म॒नसा॑ । आ॒रात् । अ॒जाना॑ । अवः । दि॒वा । प॒त॒  
यन्तं॑ । प॒त॒गं । शि॒रः । अ॒पश्यं॑ । प॒थि॒ऽभिः॑ । सु॒गेभिः॑ । अ॒रे॒णु॒भिः॑ । जे॒हमानं॑ ।  
प॒त॒त्रि ॥ ६ ॥ अत्र॑ । ते । रू॒पं । उ॒त्त॒मं । अ॒पश्यं॑ । जिगी॑षमाणं । उपः । आ । प॒दे ।  
गोः । य॒द्रा । ते । म॑र्ताः । अनु॑ । भो॒गं । आ॒र्ज॑न् । आ॒न । उ॒न् । प्र॒सि॒ष्टः । ओष॑धीः ।  
अ॒र्जी॒ग॒रि॑ति ॥ ७ ॥

अनु॑ त्वा॒ रथो॑ अनु॒ मर्यो॑ अ॒र्वन्ननु॑ गा॒वोऽनु॑ भ॒गः क॒नीनाम् ।  
 अनु॒ द्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्य॑ ते ॥ ८ ॥  
 हिर॑ण्यशृ॒ङ्गोऽयो॑ अस्य॒ पादा॑ म॒नोज॒वा अ॒वर॑ इन्द्र॒ आसीत् ।  
 दे॒वा इ॒दस्य॑ ह॒विर॒ग्रमा॑य॒न्यो अ॒र्वन्त॑ प्रथ॒मो अ॒ध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥  
 इ॒र्मान्ता॑मः॒ सिलि॑कमध्य॒मासः॑ सं श॒रणा॑सो दि॒व्यासो॑ अ॒त्याः ।  
 इ॒न्मा इ॒व श्रे॑णि॒शो य॑त॒न्ते यदा॑क्षिपु॒र्दिव्य॑म॒ज्जम॒श्वः ॥ १० ॥ १२ ॥  
 तव॑ शरी॒रं प॑तयि॒ष्णव॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वा॑तं इ॒व ध॑र्जी॒मान् ।  
 तव॑ शृ॒ङ्गाणि॑ वि॒ष्टिता॑ पु॒रुच्चार॑ण्येषु॒ जधु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥  
 उप॑ प्रागा॒च्छ॒र्मनं॑ वा॒ज्यवी॑ दे॒वद्री॑चा॒ म॒न॒मा दी॑ध्या॒नः ।  
 अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒म्यानु॑ प॒श्चान्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥ १२ ॥

अनु । त्वा । रथः । अनु । मर्यः । अर्वन । अनु । नासः । अनु । भगः । कनीना ।  
 अनु । द्रातासः । तव । सख्यं । श्युः । अनु । देवाः । ममिरे । वीर्यं । ते ॥ ८ ॥  
 हिरण्यशृङ्गः । अयः । अस्य । पादाः । मनःऽजवाः । अवरः । इन्द्रः । आसीत् ।  
 देवाः । इत् । अस्य । हविःऽग्रं । आयन । यः । अर्वन् । प्रथमः । अद्यतिष्ठत्-  
 तुत् ॥ ९ ॥ इर्मन्तासः । सिलिकऽमध्यमासः । सं । शरणासः । दिव्यासः ।  
 अत्याः । इन्माऽइव । श्रेणिशः । यतन्ते । यत् । नाक्षिपुः । दिव्यं । अज्जम ।  
 अश्वः ॥ १० ॥ १२ ॥ तव । शरीरं । पतयिष्णु । अर्वन् । तव । चित्तं । वातःऽ-  
 इव । धर्जीमान् । तव । शृङ्गाणि । विष्टिता । पुरुच्चार । जधुराणा । चरन्ति ।  
 ११ ॥ उप । प्रागात् । शर्मनं । वाज्या । देवद्रीचा । मनमा । दीध्यानः ।  
 अजः । पुरः । नीयते । नाभिः । अस्यानु । पश्चान् । कवयोः ।  
 यन्ति । रेभाः ॥ १२ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थनवी अच्छा पितरं मातरं च ।

अद्या देवान्जुष्टतमो हि गन्या अथा शास्ते दाश्रुषे वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

॥ १६४ ॥ ऋषि-दीर्घतमाः । देवता-विभेदेना । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१६४॥ अस्य वामस्यं पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्रः ।

तृतीयो भ्राता वृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्वतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभिं चक्रमजरननर्वं यत्रेसा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।

सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थनवन्तं यदनस्था विभर्ति ।

भूम्या असुरसृगात्मा कं स्वित्को विद्रांसमुपं गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

उप । प्र । अगात् । परमं । यत् । सधस्थं । अवीन् । अच्छे । पितरं । मातरं । च ।  
अद्य । देवान् । जुष्टतमः । हि । गन्याः । अथ । आ । शास्ते । दाश्रुषे ।  
वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

अस्य । वामस्यं । पलितस्यं । होतुः । तस्यं । भ्राता । मध्यमः । अस्ति ।  
अश्रः । तृतीयः । भ्राता । वृतपृष्ठः । अस्य । अत्रे । अपश्यं । विश्वतिं । सप्त-  
पुत्रं ॥ १ ॥ सप्त । युञ्जन्ति । रथं । एकचक्रं । एकः । अश्वः । वहति । सप्तनामा ।  
त्रिनाभिं । चक्रं । अजरं । अनर्वं । यत्रे । एसा । विश्वा । भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥  
इमं । रथं । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तचक्रं । सप्त । वहन्ति । अश्वाः । सप्त ।  
स्वसारः । अभि । सं । नवन्ते । यत्रे । गवां । निहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥ कः ।  
ददर्श । प्रथमं । जायमानं । अस्थनवन्तं । यत् । अनभ्या । विभर्ति । भूम्याः । अमुः ।  
असृक् । आत्मा । कं । स्वित् । कः । विद्रांसं । उपे । गात् । प्रष्टुं । एतत् ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० १४, १५ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४

पा०ः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।

यन्ते वृष्णयेऽयि सप्त तन्तृन्वि तन्निरे कथय आतवा उं ॥ ५ ॥ १४ ॥

अचिक्त्वाश्चिकितुपंदिचदत्र कर्वाण्पृच्छानि विद्मने न विद्वान् ।

यि यन्तस्तम्भ पळिमा रजास्यजस्य रूपे किमपि स्वित्केम् ॥ ६ ॥

इह प्रवृतु य उमङ्ग वेदास्य धामस्य निहितं पदं वेः ।

शाष्णीः क्षार वृते गावो अस्य वृत्रि वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

माना पितरभृत आ वंभाज धान्यत्रे मनना नं हि जग्मे ।

मा धाम्नरुगर्भमा निविद्धा नमभवन्त इदुपवाकामायुः ॥ ८ ॥

शुभा मानासीदुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्भूमौ वृजनाप्यन्तः ।

असीमेदभ्यो अनु गामपश्यच्छिष्यस्पर्ष्य त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥



अष्ट० २ अध्या० ३ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४

तिस्रो मातृन्पितृन्विभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवं ग्लापयन्ति ।  
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्यं पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥ १५ ॥  
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्धति चक्रं परि द्यामृतस्य ।  
आ पुत्रा अग्रे मिथुनासो अत्रं सप्त शतानि विशतिश्च तस्युः ॥ ११ ॥  
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।  
अधेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे पठर आहुरपितम् ॥ १२ ॥  
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्युर्भुवनानि विश्वा ।  
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥  
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दशं युक्ता वहन्ति ।  
सूर्यस्य चक्षू रजसत्यावृतं तस्मिन्नापिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

तिस्रः । मातृः । त्रीन् । पितृन् । विभ्रत । एकः । ऊर्ध्वः । तस्थौ । न । उ । अवं ।  
ग्लपयन्ति । मन्त्रयन्ते । दिवः । अमुष्यं । पृष्ठे । विश्वविदं । वाचं । अविश्व  
मिन्वां ॥ १० ॥ १५ ॥ द्वादशऽअरं । नहि । तत् । जराय । वर्धति । चक्रं । परिं ।  
। ऋतस्यं । आ । पुत्राः । अग्रे । मिथुनासः । अत्रं । सप्त । शतानि । विशतिः ।  
च । तस्युः ॥ ११ ॥ पंचऽपादं । पितरं । द्वादशऽआकृतिं । दिवः । आहुः । परे ।  
अर्धे । पुरीषिणं । अधे । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणं । सप्तऽचक्रं । पदऽअरे ।  
आहुः । अपितं ॥ १२ ॥ पंचऽअरे । चक्रे । परिऽवर्तमाने । तस्मिन् । आ । तस्युः ।  
भुवनानि । विश्वा । तस्यं । न । अक्षः । तप्यते । भूरिऽभारः । सनात् । एव । न ।  
शीर्यते । सऽनाभिः ॥ १३ ॥ सऽनेमि । चक्रं । अजरं । वि । ववृते । उत्तानायां ।  
दशं । युक्ताः । वहन्ति । सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतं । तस्मिन् ।  
आपिता । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

अष्ट० २ अ.या० ३ व० १६, १७ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २२ मृ० १६४

सा॒क्र॒ध्ना॒ना॒ म॒स॒ध॒ना॒हु॒रे॒क॒जं॒ प॒च्छि॒द्य॒मा॒ ऋ॒ष॒यो॒ दे॒व॒जा॒ इति॑ ।

ते॒षा॒मि॒ष्टा॒नि॒ वि॒हि॒ता॒नि॒ ध्या॒म॒शः॒ स्या॒त्रे॒ रं॒ज॒न्ते॒ वि॒कृ॒ता॒नि॒ रू॒प॒शः॑ ॥ १५ ॥ १६ ॥

स्त्रि॒यः॒ सु॒ना॒स्तां॑ उ॒ मे॒ पुं॒स आ॒हुः॒ प॒श्य॑द॒क्ष॒ण्वा॒न्न वि॒ चेंत॑द॒न्धः॑ ।

क॒चि॒र्यः॒ पु॒त्रः॒ स ई॒मा चि॑क्रे॒त य॒स्ता वि॑जा॒ना॒त्स पि॒तु॒ष्पि॒ता॒स॒त् ॥ १६ ॥

अ॒वः॒ परे॑ण॒ पर॒ ए॒ना॒वरे॑ण॒ प॒दा व॒त्सं॑ वि॒ध्रं॒ती गौ॒त॒द॒स्था॒त् ।

सा॒ क॒र्त्री॒चा॒ कं॒ स्त्रि॒द॒धे॒ परा॑गा॒त्कं॒ स्वित्त्वे॑ने॒ नहि॑ यू॒ये अ॒न्तः॑ ॥ १७ ॥

अ॒यः॒ परे॑ण॒ पि॒तरं॑ यो॒ अ॒स्या॒नु॒वे॒द् पर॒ ए॒ना॒वरे॑ण ।

क॒र्वा॒य॒मा॒नः॒ क इ॒ह प्र॒ वा॒चं॒द॒धे॒ मनः॑ कु॒तो॒ अ॒धि प्र॒जा॒न॒म् ॥ १८ ॥

ये अ॒र्वा॒ञ्च॒न्तो॑ उ॒ परा॑च आ॒हु॒र्ये॒ परा॑ञ्च॒स्तो॑ उ॒ अ॒र्वा॒च आ॒हुः॑ ।

इ॒न्द्रे॒थ॒ या च॒क्रथुः॑ सो॒म ता॒नि धु॒रा न यु॒क्ता र॒ज॒सो॒ वह॑न्ति ॥ १९ ॥

द्वा सु॒पर्णा॑ स॒युजा॑ सखा॒या स॒मानं॑ वृ॒क्षं परि॑ षस्वजाते ।  
 तयो॑रन्यः पि॒र्षलं॑ स्वा॒द्वये॑ अ॒नश्न॑न् अन्यो अ॒भि चा॑कशीति ॥ २० ॥ १७ ॥  
 यत्रां सु॒पर्णा॑ अ॒मृत॑स्य भा॒गम॑नि॒मेषं॑ वि॒दथा॑भिस्वर॒न्ति ।  
 इ॒नो विश्व॑स्य भु॒व॑नस्य गो॒पाः स मा॑ धी॒रः पा॑कमत्रा वि॒वेश ॥ २१ ॥  
 यस्मि॑न्वृ॒क्षे म॒ध्वदः॑ सु॒पर्णा॑ नि॒विश॑न्ते सु॒व॑ते चाधि॒ विश्वे॑ ।  
 तस्ये॑दाहुः पि॒र्षलं॑ स्वा॒द्वये॑ तन्नो॒न्नश्चः॑ पि॒तरं॑ न वेद ॥ २२ ॥  
 यद्गा॑यत्रे अ॒धि गाय॑त्रमा॒हितं॑ त्रैष्टु॒भाद्वा त्रैष्टु॑भं नि॒रत॑क्षत ।  
 यद्वा॑ जग॒ज्जग॑त्या॒हितं॑ प॒दं य इ॑त्तद्वि॒दुस्ते अ॑मृतत्व॒मानशुः॑ ॥ २३ ॥  
 गा॒यत्रेण॑ प्रति॒ मिमी॑ते अ॒क्रेम॑के॒ण सा॒म त्रैष्टु॑भेन वा॒कम् ।  
 वा॒केन॑ वा॒कं द्वि॒पदा॑ चतु॒ष्पदा॑क्षरे॒ण मि॑मते स॒प्त वा॑र्णाः ॥ २४ ॥

द्वा । सु॒पर्णा॑ । स॒युजा॑ । सखा॒या । स॒मानं॑ । वृ॒क्षं । परि॑ । सस्वजाते इति । तयोः ।  
 अन्यः । पि॒र्षलं॑ । स्नादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः । अभि । चाकशीति ॥ २० ॥ १७ ॥  
 यत्रं । सु॒पर्णाः । अ॒मृत॑स्य । भा॒गं । अनि॒मेषं॑ । वि॒दथा॑ । अ॒भिस्वर॑न्ति । इनः ।  
 ष्वस्य । भु॒व॑नस्य । गो॒पाः । सः । मा॑ । धी॒रः । पा॑कं । अत्रं । आ । वि॒वेश ॥ २१ ॥  
 वृ॒क्षे । म॒ध्वदः॑ । सु॒पर्णाः । नि॒विश॑न्ते । सु॒व॑ते । च । अधि॑ । विश्वे॑ ।  
 तस्यं । इत् । आहुः । पि॒र्षलं॑ । स्वा॒द्वये॑ । अत्रे॑ । तत् । न । उत् । नश्चत् । यः । पि॒तरं॑ ।  
 नः । वेद ॥ २२ ॥ यत् । गा॒यत्रे॑ । अधि॑ । गा॒यत्रं॑ । आ॒हितं॑ । त्रैष्टु॒भान् । मा॑ ।  
 त्रैष्टु॒भं । निः॒रत॑क्षत । यत् । वा । जग॑न् । जग॑ति । आ॒हितं॑ । प॒दं । मे । अत् ।  
 तत् । वि॒दुः । ते । अ॒मृत॑स्त्वं । आ॒नशुः॑ ॥ २३ ॥ गा॒यत्रेण॑ । प्रति॑ । मि॒मते॑ ।  
 अ॒क्रे॑ । अ॒क्रेण॑ । सा॒म । त्रैष्टु॒भेन॑ । वा॒कं । वा॒केन॑ । वा॒कं । द्वि॒पदा॑ । चतु॒ष्पदा॑ ।  
 अ॒क्षरे॑ण । मि॒मते॑ । स॒प्त । वा॑र्णाः ॥ २४ ॥

प्रष्ट० २ अध्या० ३ व० १८, १९.] ऋषेः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४

जगता॒ मिन्यु॑ दि॒व्यस्त॒भाय॒द्रथ॒न्तरे॑ सूर्ये॒ पर्य॑पश्यत् ।

गा॒यत्र॒स्य॑ स॒न्धिर्य॑स्मिन्त्र आ॒हु॒स्ततो॑ म॒हा प्र रि॑रिचे स॒ह्नि॒त्वा ॥ २५ ॥ १८ ॥

उ॒षं द॒ये सु॒दृषां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हर॑तां गो॒धु॒गुत॑ दा॒ह॒दे॒नाम् ।

श्रे॒ष्ठं स॒वं स॒वि॒ता ना॒वि॒प॒त्तोऽर्भी॑हो य॒र्मन्त॑तु पु॒ प्र वो॑चन् ॥ २६ ॥

हि॒ड॒कृ॒ण्य॒ती व॑सु॒प॒ती य॒सूनां॑ द॒त्त॒भि॒च्छ॒न्ती॑ स॒ने॒सा॒भ्यागा॑त् ।

दु॒हाम॒न्वि॒भ्यां॑ प॒यो अ॒न्येयं॑ सा व॒र्ध॒तां स॒हते॑ सौ॒भ॒गाय ॥ २७ ॥

गौ॒र्भामे॒दु॒ द॒त्तं मि॒प॒न्त॑ सु॒र्धानं॑ हि॒ड॒कृ॒गो॒न्ना॒त्वा डे ।

सृ॒ष्टाणं॑ य॒र्म॒सि वा॒च॒जा॒ता नि॒जा॒ति॑ स्या॒युं प॒र्वते॑ प॒यो॒भिः ॥ २८ ॥

अ॒यं स जि॒र॒न्त॑ येन॒ गो॒र्भा॒वृ॒ता नि॒जा॒ति॑ स्या॒युं ध॒न्व॒ता॒वधिं॑ श्रि॒ता ।

सा वि॒जि॒भिनि॑ हि॒ व॒त्ता॒ स॒र्यं वि॒द्यु॒श्च॒र॒ती॑ प्र॒ति व॒त्रि॒ना॒हत ॥ २९ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० १९, २० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २० सू० १६४

अ॒न॒च्छ॒ये तुर॒गा॒तु जी॒व॒मे॒ज॒द्भु॒वं म॒थ्य आ प॒स्त्या॒नाम् ।  
जी॒वो मृ॒तस्य॑ च॒रति॑ स्व॒धाभि॒रम॑र्त्यो॒ मर्त्ये॑ना॒ सयो॑निः ॥ ३० ॥ १९ ॥  
अ॒प॒श्यं गो॒पा॒ग्नि॑पद्यमान॒मा च॒ परा॑ च प॒थिभि॑श्चरन्तम् ।  
स स॒ध्रीचीः॑ स वि॒धूची॑र्वसान॒ आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्वन्तः ॥ ३१ ॥  
य ई च॒कार॑ न सो अ॒स्य वे॒द य ई द॒दर्श॑ हिरु॒गि॒द्भु तस्मा॑त् ।  
स मा॒तुर्यो॑ना॒ परि॑वीतो अ॒न्तर्व॑द्भु॒प्रजा॑ नि॒र्क॑ति॒मा वि॑वेश ॥ ३२ ॥  
द्यौ॒र्मे पि॒ता ज॑निता नाभि॒रत्र॑ व॒न्धु॒र्मे मा॒ता पृ॑थि॒वी म॒हीय॑म् ।  
उ॒त्ता॒नयो॑श्च॒म्बो॒श्र्योनि॑रन्तरत्रा॒ पिता॑ दु॒हितु॑र्गर्भ॒माधा॑त् ॥ ३३ ॥  
पृ॒च्छामि॑ त्वा पर॒मन्तं॑ पृथि॒व्याः पृ॒च्छामि॑ यत्र॒ भुव॑नस्य॒ नाभिः॑ ।  
पृ॒च्छामि॑ त्वा वृ॒ष्णो अ॒श्व॑स्य॒ रेतः॑ पृ॒च्छामि॑ वा॒चः पर॑मं॒ व्यो॑म ॥ ३४ ॥

अ॒नत् । ग॒ये । तुर॒गा॒तु । जी॒वं । ए॒जत् । ध्रु॒वं । म॒थ्ये । आ । प॒स्त्या॒ना । जी॒वः ।  
मृ॒तस्य॑ । च॒रति॑ । स्व॒धाभिः॑ । अ॒म॑र्त्यः । म॒र्त्ये॑न । स॒यो॑निः ॥ ३० ॥ १९ ॥  
अ॒प॒श्यं । गो॒पां । अ॒ग्नि॑पद्यमानं । आ । च । परा॑ । च । प॒थिभिः॑ । च॒रन्तं॑ । मः ।  
स॒ध्रीचीः॑ । सः । वि॒धूचीः॑ । व॒सानः॑ । आ । व॑रीवर्ति॒ । भुव॑नेषु । अ॒न्तरि॑ति ॥ ३१ ॥  
यः । ई । च॒कारं॑ । न । सः । अ॒स्य । वे॒द । यः । ई । द॒दर्शं॑ । हिरु॒गि॒द्भु । त् । तु ।  
तस्मा॑त् । सः । मा॒तुः । यो॒नां । परि॑वीतः । अ॒न्तः । व॒द्भु॒प्रजाः॑ । निः॒र्क॑ति ।  
आ । वि॒वेश ॥ ३२ ॥ द्यौः । मे । पि॒ता । ज॑निता । नाभिः॑ । अत्र॑ । व॒न्धुः । मे ।  
मा॒ता । पृ॑थि॒वी । म॒ही । इ॒यं । उ॒त्ता॒नयोः॑ । च॒म्बोः॑ । यो॒निः॑ । अ॒न्तः । अत्र॑ । पि॒ता ।  
दु॒हितुः॑ । गर्भे॑ । आ । अ॒धात् ॥ ३३ ॥ पृ॒च्छामि॑ । त्वा । प॒रं । अ॒न्तं । पृ॒थि॒व्याः ।  
पृ॒च्छामि॑ । यत्र॑ । भुव॑नस्य । नाभिः॑ । पृ॒च्छामि॑ । त्वा । वृ॒ष्णः॑ । अ॒श्व॑स्य । रेतः॑ ।  
पृ॒च्छामि॑ । वा॒चः । पर॑मं । वि॒श्रामं॑ ॥ ३४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अतु० ३२ सू० १६४

अयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥ २० ॥

सप्तार्थगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्मिष्टन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीनिभिर्मनना ते विपश्चिनः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निष्णयः सन्नद्धो मनसा चरामि ।

यदा मार्गन्प्रथमजा ऋतम्यादिद्वाचो अशुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥

अपाठ प्राडति स्वधया गृभानोऽमन्यो मन्येना सयानिः ।

ता अश्वन्ता विप्रचीना विपन्ता न्यर्न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥

पुत्रो अक्षरं परमे व्यामन्यमिन्देवा अधि विद्वे निषेदुः ।

पस्तस्य प्रदु किमुचा कृमिष्यति य उच्चद्विद्वन् एमे समामने ॥ ३९ ॥

---

अयं । वेदिः । परोः । अन्तः । पृथिव्याः । अयं । यज्ञः । भुवनस्य । नाभिः । अयं ।

सु॒य॒व॒सा॒द्भ॒र्ग॒वती॒ हि भू॒या अ॒थो व॒यं भ॒र्ग॒वन्तः॒ स्याम॑ ।

अ॒द्धि तृ॒णो॒द॒घ्न्ये वि॒श्व॒दानीं॒ पिवं॑ शु॒द्धं॒मु॒द॒क॒मा॒चर॑न्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥

गौ॒री॒मि॒माय॑ स॒लिलानि॒ तक्ष॑त्येक॒पदी॒ द्वि॒पदी॒ सा चतु॑ष्पदी ।

अ॒ष्टा॒र्प॒दी न॒व॒पदी॒ वभ्रु॑वुषीं स॒हस्रा॑क्षरा पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४१ ॥

तस्याः॑ स॒मु॒द्रा अ॒धि वि॒ क्षर॑न्ति तेन॒ जीव॑न्ति प्र॒दि॒शश्च॑तस्रः ।

ततः॑ क्ष॒रत्य॑क्षरं तद्वि॒श्वमु॒पं जीव॑ति ॥ ४२ ॥

श॒क॒मयं॑ धूम॒मारा॑द॒पश्यं॑ वि॒षु॒वतां॑ पर॒ एना॑वरेण ।

उ॒क्षाणं॑ पृ॒श्निम॑प॒चन्त॒ वी॒रास्ता॒नि ध॒र्माणि॑ प्रथ॒मान्या॑सन् ॥ ४३ ॥

त्रयः॑ के॒शिनं॑ ऋतु॒था वि च॑क्षते संवत्स॒रे व॒पत॑ एकं ए॒षाम् ।

वि॒श्वमे॒को अ॒भि च॑ष्टे श॒चीभि॒र्त्राजि॑रेकस्य द॒दृशे॑ न रू॒पम् ॥ ४४ ॥

सु॒य॒व॒सऽअत् । भ॒र्ग॒वती॒ । हि । भू॒याः । अ॒थो इति॑ । व॒यं । भ॒र्ग॒वन्तः । स्या॒म॑ ।

अ॒द्धि । तृ॒णं । अ॒घ्न्ये । वि॒श्वऽदानीं॑ । पिवं॑ । शु॒द्धं । उ॒द॒कं । आ॒चर॑न्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥

गौ॒रीः । मि॒माय॑ । स॒लिलानि॑ । तक्ष॑ती । एक॒ऽपदी॑ । द्वि॒ऽपदी॑ । सा । चतु॑ऽपदी ।

अ॒ष्टा॒ऽपदी॑ । न॒व॒ऽपदी॑ । वभ्रु॑वुषीं । स॒हस्रा॑ऽअक्षरा । पर॒मे । वि॒ऽव्यो॑मन् ॥ ४१ ॥

तस्याः॑ । स॒मु॒द्राः । अ॒धि । वि । क्ष॒र॒न्ति॑ । तेन॑ । जीव॑न्ति । प्र॒दि॒शः । च॒त॒स्रः ।

ततः॑ । क्ष॒र॒न्ति॑ । अ॒क्षरं॑ । तत् । वि॒श्वं । उ॒पं । जीव॑ति ॥ ४२ ॥ श॒क॒ऽमयं॑ । न॒मं ।

आ॒रात् । अ॒प॒श्यं॑ । वि॒षु॒व॒तां । परः॑ । ए॒ना । अ॒व॒रेण॑ । उ॒क्षा॒णं । पृ॒श्नि । अ॒प॒च॒न्त॑ ।

वी॒राः । ता॒नि॑ । ध॒र्मा॒णि॑ । प्रथ॒मा॒नि॑ । आ॒सन् ॥ ४३ ॥ त्रयः॑ । के॒शि॒नः । ऋ॒तु॒ऽथा॑ ।

वि । च॒क्ष॒ते॑ । सं॒व॒त्स॒रे॑ । व॒प॒ते॑ । एकः॑ । ए॒षा । वि॒श्वं । एकः॑ । अ॒भि । च॑ष्टे ।

श॒ची॒भिः । त्रा॒जि॒नः॑ । एक॑स्य । द॒दृ॒शे॑ । न । रू॒पं ॥ ४४ ॥

प्रष्ट० २ प्र.वा० ३ व० २२,२३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४

पन्थारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।

गुह्यं त्रीणि निहितानि नेद्वयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुर्गन्धो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्धिप्रो बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिर्वानमाहुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥

कृष्णं नियानं हर्यः सुपर्णो अपो वसाना दिव्यनुत्पतन्ति ।

त आर्यवृत्रन्मदनाहतस्यादिद्वृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥

डादश प्रथमंश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।

नभिसन्मसाकं त्रिंशता न शंक्रवांसर्पिताः पृष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥

यमेन गतमः शशयो यो मयोभृयेन विश्वा पुष्यमि वार्याणि ।

या रक्षथा वंसुषिवाः सुदत्रः सरग्वति तमिह धानवे कः ॥ ४९ ॥



अष्ट० २ अध्या० ३ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १३६

यज्ञेन यज्ञभयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानं सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५० ॥

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहंभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शनमोषधीनाम् ।

अभीषतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोह्वीमि ॥ ५२ ॥ २३ ॥ २२ ॥

॥ त्रयोविंशोऽनुवाकः ॥

॥ ५६५ ॥ ऋषि-मरुत । देवता-इन्द्र । उ३-त्रिष्टुप् ॥

॥१६५॥ कया शुभा सर्वयसः सनीलाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।

कया मर्ता कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसुधा ॥ १ ॥

यज्ञेन । यज्ञं । अयजन्त । देवाः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि । आसन् । ते । ह ।

कं । महिमानं । सचन्त । यत्र । पूर्वं । साध्याः । सन्ति । देवाः ॥ ५० ॥ समानं ।

एतत् । उदकं । उन् । च । एति । अत्र । च । अहंभिः । भूमिं । पर्जन्याः ।

जिन्वन्ति । दिवं । जिन्वन्ति । अग्नयः ॥ ५१ ॥ दिव्यं । सुपर्णं । वायसं । बृहन्तं ।

अपा । गर्भं । दर्शनं । ओषधीनाम् । अभीषतः । वृष्टिभिः । तर्पयन्तं । सरस्वन्तं ।

अवसे । जोह्वीमि ॥ ५२ ॥ २३ ॥

कया । शुभा । सर्वयसः । सनीलाः । समान्या । मरुतः । सं । मिमिक्षुः ।

कया । मर्ता । कुतः । आ-इतासः । एते । अर्चन्ति । शुष्मं । वृषणः । वसुधा ॥ १ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १६६

कस्य ब्रह्माणि जुजुपुर्वुवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।

श्येना इव भ्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिः सन्नको यामि सत्वने किं न इत्था ।

सं पृच्छसे समराणः गुथनैर्वोचिन्तन्नो हरिवो यत्तं अस्मे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणि मे मनयः शं तुतासुः शष्मं इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आ शोभते पति त्व्यन्वृत्तया हरी यदनुमता नो अच्छं ॥ ४ ॥

अतो ययमन्तमभिर्बुजानाः परक्षेत्रेभिस्तव्यैः शुभमानाः ।

मयाभिरता उपे युजमहे न्विन्द्रे रयधामनु हि नो वारुयं ॥ ५ ॥ २४ ॥

---

अष्ट० २ अध्या० ३ व० २५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ मू० १६५

क॑ स्या॒ वो॑ मरुतः॒ स्वधा॑सी॒द्यन्मामेकं॑ स॒मध॑त्ताहि॒हत्ये॑ ।

अ॒हं ह्य॑ प्र॒स्तं वि॒पस्तु॒विष्म॑न्विश्व॒स्य शत्रो॑र॒नमं॑ व॒धत्तैः॑ ॥ ६ ॥

भूरिं॑ च॒कथं॑ यु॒ज्यैभिर॒स्मे सं॒माने॑भिर्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः ।

शू॒रीणि॑ हि कृ॒णवा॑मा श॒विष्टेन्द्र॑ क्र॒त्वा मरु॑तो यद्वशा॑म ॥ ७ ॥

व॒धी वृ॒त्रं मरु॑त इन्द्रि॒येण॑ स्वे॒न भा॑मे॒न त॒विषो॑ व॒भूवान् ।

अ॒हमे॒ता म॒नवे॑ वि॒श्वश्चन्द्राः॑ सु॒गा अ॒पश्च॑कर॒ वज्र॑वाहुः ॥ ८ ॥

अ॒नु॒त्त॒मा ते॑ मघ॒वन्नकि॑नु॒ न त्वावाँ॑ अ॒स्ति दे॒वता॑ वि॒दानः॑ ।

न जा॑य॒मानो॑ न॒शते॑ न जा॒तो या॒निं क॒रिष्या॑ कृ॒णुहि॑ प्र॒वृद्ध॑ ॥ ९ ॥

कं । स्या । वो । मरुतः । स्वधा । आर्सात् । यत् । मां । एकं । संऽअधत्त । अहिऽ-  
हत्ये । अहं । हि । उग्रः । तविषः । तुविष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमं । वधऽत्तैः ॥ ६ ॥

रं । चकथं । युज्यैभिः । अस्मे इति । समानेभिः । वृषभ । पौंस्यैभिः । शूरीणि

ह । कृणवाम । शविष्ट । इंद्र । क्रत्वा । मरुतः । यत् । वशाम ॥ ७ ॥ वधी । वृत्रं ।

मरुतः । इंद्रियेण । स्वेन । भामेन । तविषः । वभूवान् । अहं । एताः । मनवे ।

विश्वश्चन्द्राः । सुगाः । अपः । चकर । वज्रस्वाहुः ॥ ८ ॥ अनुत्त । मा । ते ।

मघवन् । नकिः । नु । न । त्वावान् । अस्ति । देवता । विदानः । न । जायमानः

नशते । न । जातः । यानिं । करिष्या । कृणुहि । प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० २०, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सु० १६५

एकाम्य चिन्ने विभ्व १ स्वो॒जो॒ या नु॒ दधु॒ष्वान्कृ॒णवं॑ मनी॒षा ।

अ॒हं ह्य १ घो॒ म॒रुतो॒ विदा॑नो॒ यानि॒ च्यव॑मिन्द्र॒ इदी॑श ए॒षान् ॥१० ॥२५॥

अम॑न्द॒न्मा म॒रुतः॒ स्तोमो॒ अत्र॒ यन्नं॑ नरः॒ श्रुत्यं॒ ब्रह्मं॒ चक्र॑ ।

इन्द्रा॑य॒ वृष्णे॒ तुङ्गवा॑य॒ मत्स्यं॒ सव्ये॒ सव्या॑वस्त॒न्वे त॒नृभिः॑ ॥ ११ ॥

ए॒न्द्रे॒ने॒ प्रति॑ मा॒ रोच्य॑माना॒ अन॑द्यः॒ अथ॒ एषो॒ दधा॑नाः ।

स॒श्र॒क्ष्या॑ म॒रुत॑श्चन्द्र॒क्षणा॑ अ॒च्छान्त॑ मे॒ छद्या॑था च॒ नृ॒तम् ॥ १२ ॥

यो न्य॑त्र॒ यस्तो॑ मा॒लहे॒ यः प्र॒ या॒त॒न॒ सर्वा॑र॒च्छा॑ स॒न्वायः॑ ।

अ॒र्मानि॑ पि॒त्रा अ॒पि॒ या॒त॒यन्त॑ ए॒षां भ॑न्त॒ नवे॑दा म॒ क॒नाना॑न् ॥ १३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ३ व० २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १६२

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न काररस्माञ्चके मान्यस्य मेधा ।

ओ पु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेधं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ २३ ॥ ३ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके त्रितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥



आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारः । अस्मान् । चके । मान्यस्य । मेधा ।

ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रं । अच्छे । उमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः ।

अर्चत् ॥ १४ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य ।

कारोः । आ । एषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्यामेधं । उपं । वृजनं । जीरः ।

दानुम् ॥ १५ ॥ २३ ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥



## ॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ १६६ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुतः । छन्दः-जगती ॥

॥१६६॥ तन्न वींचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।

मेधेय यामन्मरुतस्तुविष्यणो युधेवं शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

निन्यं न सनुं मधु विधन्त उप कीळन्ति कीळा विदधेषु घृष्वयः ।

नक्षन्ति रुद्रा अयमा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतंसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

यमा क्रमासो अमृता अगमन गायम्पोष च हविषा ददाशुषे ।

उक्षन्त्यर्धे मरुतो हिता हव पुन रजामि पर्यमा मयोभुवः ॥ ३ ॥

आ ये रजांसि तविषाभिरव्यन् प्र च ण्यांसः स्वयन्तासो अप्रजन् ।

भयन्तो विश्वा भुयनानि हस्या चित्रो वो नामः प्रयन्तान्मृष्टिपुं ॥ ४ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० १, २ ] ऋग्वेदः [मण्ड०-१ अनु०-२३ सू०-२३३]

यत्त्वेपयामा नदयन्त पर्वतान्द्वो वां पृष्ठं नर्या अर्चुच्यवुः ।

विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथियन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टप्राभाः सुमतिं पिपर्तन ।

यत्रां वो दिद्युदंनि क्रिदिर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव वर्हणां ॥ ६ ॥

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधरेऽलातृणासो विदधेवु सुष्टुताः ।

अर्चन्त्यर्कं मन्दिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौस्यां ॥ ७ ॥

शतभुजिभिस्तमभिद्धृतेरघान्पृथी रक्षता मरुतो यमावन्त ।

जनं यमुग्रास्तवसो विरश्चिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥

विद्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृथ्यैव तविषाण्याहिता ।

अंसेष्वो वः प्रपथेषु स्यादयोऽक्षो वक्ष्का समया वि वृते ॥ ९ ॥

यत् । त्वेपयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । द्वो । वा । पृष्ठं । नर्या । अर्चुच्यवुः ।

विश्वः । वो । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽइव । प्र । जिहीते । ओषधिः

॥ ५ ॥ १ ॥ यूयं । नः । उग्राः । मरुतः । सुचेतुना । रिष्टप्राभाः । सुमतिं ।

पिपर्तन । यत्रां । वो । दिद्युन् । रदति । क्रिदिऽदती । रिणाति । पश्वः । सुधिताऽ-

इव । वर्हणां ॥ ६ ॥ प्र । स्कम्भदेष्णाः । अनवभ्रराधराः । अलातृणासः । विद-

धेवुः । सुष्टुताः । अर्चन्ति । अर्कं । मन्दिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि ।

॥ ७ ॥ शतभुजिभिः । तं । अभिद्धृते । अघान् । पृऽभिः । रक्षता ।

मरुतः । यं । आवन्त । जनं । यं । उग्राः । तवसः । विरश्चिनः । पाथनं । शंसात् ।

तनयस्य । पुष्टिषु ॥ ८ ॥ विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वो । मिथस्पृथ्याऽ-

इव । तविषाण्याः । आऽहिता । अंसेषु । आ । वः । प्रपथेषु । स्यादयोः । अक्षोः ।

वः । वक्ष्का । समया । वि । वृते ॥ ९ ॥

मद्र० २ प्र.या० ४ व० २,३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अत० २३ सू० १६६ ]

भर्गणि भद्रा नयैषु वाहृषु वक्षःसु स्वसा रंननामो अशयः ।

अंभेभ्येताः पविषु धुरा अधि वयो न एक्षान्वयनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥ २ ॥

मदानो मद्वा विभ्वोः विभ्वतो हरेदृजो ये दिव्या इव स्तुभिः ।

मन्वाः मुजिषाः स्वरितार आसन्ति, नंसिष्ठा इन्द्रे मन्तः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

नदः गुजाता मन्तो महित्वनं दीर्घे चो दात्रमदिनेरिष व्रतम् ।

उन्द्रेधन न्यजसा वि हृणानि तज्जनाय यस्मै नृकृते अरोध्वम् ॥ १२ ॥

नदां जामित्वं संस्तः परं युगे पुरु यच्छंसममृताम् आवंत ।

अथा विद्या मन्वे अष्टिमाव्या साकं नरो दंसनेग चिक्रिधरे ॥ १३ ॥

येन दीर्घे मन्तः शृजचास युष्माकेन परीणना तुगसः ।

आ यज्ञानंनृजेने जनाय णमियजेतिग्नवर्भाष्टिनश्याम् ॥ १४ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० ३,४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १६७ ]

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १६७ ॥ ऋषि-अगस्त्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १६७ ॥ सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।

सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उपं नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्विष्वैः सुमायाः ।

अथ यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

मिम्यक्ष येषु सुधिता वृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावेती विद्वथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो भिभिष्टुः ।

न रोदसी अपं नुदन्त वीरा जुपन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ ।

एषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्यामेषं । इपं । वृजनं । जीरदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

सहस्रं । ते । इन्द्र । उतयः । नः । सहस्रं । इषः । हरिष्वः । गूर्ततमाः । सहस्रं ।

। मादयध्यै । सहस्रिणः । उपं । नः । यन्तु । वाजाः ॥ १ ॥ आ । नः ।

।ऽभिः । मरुतः । यान्तु । अच्छ । ज्येष्ठेभिः । वा । बृहद्विष्वैः । सुमायाः ।

अथ । यत् । एषां । निऽयुतः । परमाः । समुद्रस्य । चिन् । धनयन्त । पारे ॥ २ ॥

मिम्यक्ष । येषु । सुधिता । वृताची । हिरण्यनिर्निगुपरा । न । ऋष्टिः । गुहा ।

चरन्ती । मनुषः । न । योषा । सभावेती । विद्वथ्याऽव । सं । वाक् ॥ ३ ॥ परा ।

शुभ्राः । अयासः । यव्या । साधारण्याऽव । मरुतः । भिभिष्टुः । न । रोदसी इति ।

अपं । नुदन्त । वीराः । जुपन्त । वृधं । सख्याय । देवाः ॥ ४ ॥

जोषयदीमसुर्या सचध्वं विपिनन्दुका रोदन्ती नृमणाः ।

आ सूर्यं प्र विधतो रथं गाक्षेपथर्ताका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिठलां विद्वेषु पञ्चान् ।

अशो यदा मरुतो हविष्मान्नायंद्वायं सूनसोतो दुवस्यन् ॥ ३ ॥

प्र तं विप्राम् वक्रभ्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।

सत्या यदा वृषमणा अह्युः स्थिरा चिज्जर्नविहते सुभामाः ॥ ७ ॥

पान्त मिध्राप्रमणावप्रयात्रयन् विसर्यसो अप्रमस्तान् ।

एत व्ययन्ते अच्युता प्रयाणि वावृध ई मरुतो दानिवारः ॥ ८ ॥

नदी नु या मरुतां प्रन्वयधे आरात्तां चिच्छदन्तो अन्वन्तारुः ।

न धृष्णुना जयसा अशुवांसोऽर्णा न वेपां प्रपुता यान् दुः ॥ ९ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० ५,६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १६८

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठां वयं श्वो वोचेमहि समयं ।

वयं पुरा महिं च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनुं स्यात् ॥ १० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

॥ १६८ ॥ ऋषिः-अगस्त्य । देवता-मरुत । छन्द-जगती ॥

॥१६८॥ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिधियंन्धियं वो देव्या उं दधिध्वे ।

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे वदृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

वत्रासो न ये स्वजाः स्वतंस इषं स्वरभिजायंत धृतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मयं आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

सोमासो न ये सुतास्तृसांशवो हत्सु पीतासो दुवसो नासते ।

एषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥

वयं । अद्य । इंद्रस्य । प्रेष्ठाः । वयं । श्वः । वोचेमहि । समयं । वयं । पुरा । महिं ।

च । नः । अनुं । द्यून् । तत् । नः । ऋभुक्षाः । नरां । अनुं । स्यात् ॥ १० ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ ।

इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्यामेषं । वृजनं । जीरदानुं ॥ ११ ॥ ५ ॥

यज्ञायज्ञा । वः । समना । तुतुर्वणिः । धियंन्धियं । वः । देव्याः । उं ।

इति । दधिध्वे । आ । वः । अर्वाचः । सुविताय । रोदस्योः । महे । वदृत्या ।

अवसे । सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥ वत्रासः । न । ये । स्वजाः । स्वतंसः । यः ।

स्वः । अभिजायंत । धृतयः । सहस्रियासः । अपा । न । ऊर्मयः । आसा । गावः ।

वन्द्यासः । न । उक्षणः ॥ २ ॥ सोमासः । न । ये । सुताः । तृसांशवः । हत्सु ।

पीतासः । दुवसः । न । आसते । आ । एषां । अंसेषु । रम्भिणीव । रारभे ।

हस्तेषु । खादिः । च । कृतिः । च । सं । दधे ॥ ३ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० ७,८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १६९

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिधिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वै वयां विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ ७ ॥

॥ १६९ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्रः । छ १-त्रिष्टुप् ॥

॥१६९॥ महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरुता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्तमुन्ना वनुष्य तव हि प्रैष्टा ॥ १ ॥

अयुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टीविदानासो निधिवधो मर्त्यत्रा ।

मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वमीळहस्य प्रधनस्य सातो ॥ २ ॥

अम्यक्सा तं इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतां जुनन्ति ।

अग्निश्चिद्धि एमातसे शुशुकानापो न द्वीपं दधन्ति प्रयांसि ॥ ३ ॥

असूत । पृश्निः । महते । रणाय । त्वेषं । अयासां । मरुतां । अनीकं । ते । सप्सरासोः ।

अजनयन्त । अभ्वं । आत् । इत् । स्वधां । इधिरां । परिं । अपश्यन् ॥ ९ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ ।

इषा । यासीष्ट । तन्वै । वयां । विद्यामे । इषं । वृजनं । जीरदानुं ॥ १० ॥ ७ ॥

महः । चित् । त्वं । इन्द्र । यतः । एतान् । महः । चित् । असि । त्यजसः ।

वरुता । सः । नः । वेधः । मरुतां । चिकित्वान् । मुन्ना । वनुष्य । तव । हि ।

प्रेष्टा ॥ १ ॥ अयुञ्जन् । ते । इन्द्र । विश्वकृष्टीः । विदानासः । निःसमिधः । मर्त्यत्रा ।

मरुतां । पृत्सुतिः । हासमाना । स्वःसमीळहस्य । प्रधनस्य । सातो ॥ २ ॥

अम्यक् । सा । ते । इन्द्र । ऋष्टिः । अस्मे इति । सनेमि । अभ्वं । मरुतः । जुनन्ति ।

अग्निः । चित् । हि । एमा । अतसे । शुशुकान् । आपः । न । द्वीपं । दधन्ति ।

प्रयांसि ॥ ३ ॥

अष्ट० २ प्र०या० ४ व० ८,९ ] ऋग्वेदः [ मन्त्र० ? अनु० २३ वृ० १६९

त्वं नृ भं इन्द्रं नं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रतिम् ।

स्तुतंश्च यान्ते चरुनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥

त्वं रायं इन्द्रं तोगतंसाः प्रयेतारः कस्यं चिद्वतायोः ।

ने पृ णां मरुतो मृळयन्तु ये स्मां पुग गांतृयन्तांश्च देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥

प्रति प्र यांशंन्द्र सोळ्हुपां नृन्महः पारिष्वे मर्देन यतस्व ।

अथ यदंषा पृथु पुत्रान् पनाम्नोर्भे नायैः पान्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥

प्रति घोरागाभेनां नामघामां मरुता शृण्व आयतासुपदिः

ये मय्य पृननायन्तस्रभर्कणावान न पतयन्त सगः ॥ ७ ॥

य मानंय इन्द्रं विश्वजंसा रतां मन्दिः जुन् ये नोअजाः ।

अथानेतिः सवसे देव देयं प्रियांषेप पुजनम जाग मनुम् ॥ ८ ॥ ९ ॥

अष्ट० २ अ.या० ४ व० १० ] ऋग्वेदः [ षण्ड० १ अनु० २३ सू० १७३

॥ १७० ॥ ऋषिः-अगस्त्यः- । देवता-इन्द्रः । उद्-अनुशु ॥

॥ १७० ॥ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तर्द्धेद् यदद्भुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि संञ्चरेण्यमुतार्थीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरौ मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥

किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्महि ते यथा मनोऽस्मभ्यभिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

अरं कृष्वन्तु वेदिं सभग्निमिन्धतां पुरः ।

तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहे ॥ ४ ॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्टः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवीधि ॥ ५ ॥ १० ॥

न । नूनं । अस्ति । नो इति । श्वः । कः । तत् । वेद् । यत् । अद्भुतं ।  
अन्यस्य । चित्तं । अभि । संञ्चरेण्यं । उत । आऽर्थीतं । वि । नश्यति ॥ १ ॥  
किं । नः । इन्द्र । जिघांससि । भ्रातरः । मरुतः । तव । तेभिः । कल्पस्व । साधुया ।  
नः । संऽअरणे । वधीः ॥ २ ॥ किं । नः । भ्रातः । अगस्त्य । सखा ।  
। अति । मन्यसे । विद्महि । हि । ते । यथा । मनः । अस्मभ्यं । ज्ञं । न ।  
दित्ससि ॥ ३ ॥ अरं । कृष्वन्तु । वेदिं । सं । अग्निं । इन्धतां । पुरः । तव । अमृत-  
तस्य । चेतनं । यज्ञं । ते । तनवावहे ॥ ४ ॥ त्वं । इशिषे । वसुपते । मित्राणां ।  
त्वं । मित्राणां । मित्रपते । धेष्टः । इन्द्रं । त्वं । मरुद्भिः । सं । वदस्व । प्राशानं ।  
प्र । अशानं । ऋतुथा । हवीधि ॥ ५ ॥ १० ॥

अष्ट० २ प्रथ्या० ४ व० ११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७१

॥ १११ ॥ ऋषि-अगम्य । देवता-मन्त । छन्द-त्रिजु ॥

॥१७१॥ प्रति व ण्ना नमन्नाहमेमि सृक्तमं निक्षे सुमतिं तुराणान् ।

रराणनां मरुतो वेद्याभिर्नि हेळां धन वि मुचध्वमश्वात् ॥ १ ॥

ण्य वः स्तोमां मरुतां नमस्यान्तुडा तृष्टां मरुता धायि देवाः ।

उपेमा वात मरुता जुपाणा युवं हि ष्ठा नमन् इहृथासः ॥ २ ॥

स्तुतामां नो मरुतां सृक्तवन्तुत न्तुतो मयवा शम्भंविष्टः ।

ऊर्वा नः सन्तु क्रोम्या वनान्प्रहानि विष्टवां मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

अस्मादह नंदिपार्थाप्रेथाण टन्त्रांष्टिवा मरुतो रेजमानः ।

युधम्यं त्वया निर्जनात् तान्मत्तान्यां चकृमा सृक्तता नः ॥ ४ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० ११,१२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ तु० १०२ ]

येन मानांसश्चितयन्त उत्सा व्युष्टिषु शर्वसा शश्वतीनाम् ।

स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।

सुप्रकेतेभिः सामहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

॥ १०२ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत । छन्द-गायी ॥

॥ १०२ ॥ चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।

मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।

आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृक्तः सुदानवः ।

ऊर्ध्वानः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

येन । मानांसः । चितयन्ते । उत्साः । विऽउष्टिषु । शर्वसा । शश्वतीनां । सः । नः ।

मरुत्ऽभिः । वृषभ । श्रवः । धाः । उग्रः । उग्रेभिः । स्थविरः । सहऽदाः ॥ ५ ॥

पाहि । इन्द्र । सहीयसः । नृन् । भवा । मरुत्ऽभिः । अवयातऽहेळाः । सुप्रके-

तेभिः । सामहिः । दधानः । विद्यामे । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ ११ ॥

चित्रः । वः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुदानवः । मरुतः । अहि-

भानवः ॥ १ ॥ आरे । सा । वः । सुदानवः । मरुतः । ऋञ्जती । शरुः । आरे ।

अश्मा । यं । अस्यथ ॥ २ ॥ तृणऽस्कन्दस्यं । नु । विशः । परि । वृक्तः । सुदान-

वः । ऊर्ध्वान् । नः । कर्त । जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

अष्ट० २ प्रथ्या० ४ व० १३ ] ऋग्वेदः [ ५-ड० १ अनु० २३ सू० १७३

॥ १७३ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-उरु । उरु-विद्युत् ॥

॥१७३॥ गाय॒त्मान॑सं न॒भ॒स्य॑ऽथ॒या वे॒र॒चा॑स॒ तडा॑वृ॒धा॒नं॒ स्व॑र्व॒त् ।

गा॒यो धे॒न॒वो॑ वृ॒द्धि॒ष्य॒दं॒ध्या आ॒ यत्त॒ज्जा॒तं दि॒व्यं वि॒वा॑न्ना॒न् ॥ १ ॥

अ॒र्च॒य॒ष्या॒ वृ॒ध॒भिः॒ स्व॑दृ॒ह्यै॒र्मु॒गो ना॒रु॒नो अ॒ति॒ य॒जु॑गु॒यीत् ।

प्र॒ सं॒दु॒यु॒र्म॒नां ग॒ते॒ हो॒ता भ॑र॒न्ते॒ स॒यो॑ नि॒धु॒ना य॑ज॒त्रः ॥ २ ॥

न॒क्ष॒त्रो॒ता प॒णि॒ स॒न्न॑ मि॒ना य॒न्म॒रु॒द्भ॒र्म्ना॒ श॒र॒दः॑ वृ॒ध्नि॒व्याः ।

ऋ॒द॒द॒ध्या॒ न॒थ॑मा॒नो॒ स॒प॒द्मो॒रु॒न्त॒र्नो॒ न॒ रो॒द॑सो॒ च॒र॒द्वा॒रु ॥ ३ ॥

ना॒ क॒र्मा॑प॒त॒रा॒सु॑ प्र॒ व्या॒ला॒नि॑ दे॒व॒प॒न्ता॑ अ॒रु॒न्ते ।

उ॒जा॑प॒दि॒न्डा॑ अ॒थ॒ प्र॑या॒ जा॒ग॑न्वे॒द॒ स॒या॒ सं॒स॒ताः ॥ ४ ॥



अष्ट० २. अथ्या० ४ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ नृ० १७३

तमुं पृहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्टाः ।  
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववृषं चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥  
प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कश्ये इनास्मै ।  
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावा ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥  
समत्सुं त्वा शूर सतासुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।  
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः मृरिं चिये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥  
एवा हि ते शं सर्वना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।  
विश्वो ते अनु जोष्या भृङ्गोः मृरींश्चिद्यदि विषा वेपि जनान् ॥ ८ ॥  
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरा न शंसैः ।  
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्टास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

तं । ऊं इति । स्तुति । इंद्रं । यः । ह । सत्वा । यः । शूरः । मघवा । यः ।  
रथेष्टाः । प्रतीचः । चित् । योधीयान् । वृषण्वान् । ववृषः । चित् । तमसः ।  
विहन्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥ प्र । यत् । इत्था । महिना । नृभ्यः । अस्ति । अरं ।  
रोदसी इति । कश्ये इति । न । अस्मै । सं । विव्ये । इंद्रः । वृजनं । न । भूमै ।  
। स्वधावान् । ओपशंसिव । द्यां ॥ ६ ॥ समत्सुं । त्वा । शूर । सता ।  
। णं । प्रपथिन्तमं । परितंसयध्यै । सजोषसः । इंद्रं । मदे । क्षोणीः । मृरिं ।  
चित् । ये । अनुमदन्ति । वाजैः ॥ ७ ॥ एवा । हि । ते । शं । सर्वना । समुद्र ।  
आपो । यत् । ते । आसु । मदन्ति । देवीः । विश्वो । ते । अनु । जोष्या । भृङ्ग ।  
गोः । मृरीन् । चित् । यदि । विषा । वेपि । जनान् ॥ ८ ॥ असाम । यथा ।  
सुषखायः । एन । सुअभिष्टयः । नरा । न । शंसैः । नरा । यथा । नः । इंद्रः ।  
वन्दनेस्थाः । तुरः । नः । कर्म । नयमानः । उक्था ॥ ९ ॥

अष्ट० २ प्र.या० ४ व० १४,१५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७३

वि॒प॒थि॒मो न॒गं न शंस॑र॒न्माका॑न॒दिन्द्रो॑ वज्र॒हस्तः

मि॒त्रा॒यु॒यो न प्र॑पि॒न्ति॒ स्रु॒ति॒ष्टौ म॒ध्या॒यु॒व उ॒प जि॑क्षन्ति॒ यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥

य॒ज्ञो हि ए॒मेन्द्रं॑ कश्चि॒द्व॒न्ध॒र्षु॒दु॒गण॑श्चि॒न्मन॑सा प॒ग्वि॒न् ।

नी॒य ना॑च्छा॒ नानृ॑षाण॒मोक्तो॑ दी॒वो न मि॒थ्म॒मा कु॑गो॒न्यध्वा॑ ॥ ११ ॥

भो॒ प्र णं॑ द॒न्द्रा॒त्रं पु॒न्मु दे॒वैर॑न्ति॒ हि ए॒मां ते॒ शु॒ष्मि॒न्न॒व॒याः ।

भ॒ह॒श्चि॒थ॒स्य॑ भी॒ळ॒रु॒षो य॒व्या द॒वि॒ष्म॑तो॒ म॒न्तो व॒न्द॑न्ते॒ गीः ॥ १२ ॥

ए॒षः ए॒वाम॑ द॒ष्ट॒ तु॒न्य॑स॒स्यं ए॒तेन॑ गा॒नुं दे॒वि॒षो वि॒दो नः ।

आ॒ नो॑ व॒नु॒याः सृ॒ष्टि॒ता॒थ दे॒व त्रि॒या॒से॒षं वृ॒ज॒न जी॑र॒दानु॑म् ॥ १३ ॥ १५ ॥

॥ १७४ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७४॥ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पाद्यसुर त्वमस्मान् ।  
 त्वं सत्पतिर्मघवां नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥  
 दनो विशा इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदोर्दत् ।  
 ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥  
 अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीद्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।  
 रक्षो अग्निमशुषं तृवीयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥  
 शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मद्वा ।  
 सृजदणांस्यव यशुधा गास्तिष्ठद्दरीं धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

त्वं । राजा । इन्द्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नृन् । पादि । अमुर । त्वं ।  
 अस्मान् । त्वं । सत्पतिः । मघवा । नः । तरुत्रः । त्वं । सत्यः । वसवानः ।  
 सहोदाः ॥ १ ॥ दनः । विशाः । इन्द्र । मृध्रवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म ।  
 शारदीः । दत् । ऋणोः । अपः । अनवद्य । अर्णाः । यूने । वृत्रं । पुरुकुत्साय ।  
 रन्धीः ॥ २ ॥ अजा । वृतः । इन्द्र । शूरपत्नीः । द्यां । च । येभिः । पुरुहूत ।  
 नूनम् । रक्षो इति । अग्नि । अशुषं । तृवीयाणं । सिंहः । न । दमे । अपांसि ।  
 वस्तोः ॥ ३ ॥ शेषन् । नु । ते । इन्द्र । सस्मिन् । योनौ । प्रशस्तये । पवीरवस्य ।  
 मद्वा । सृजन् । अणांसि । अव । यत् । युधा । गाः । तिष्ठद् । दरीं इति । धृषता ।  
 मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सु० १७१

॥ १७४ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्रः । छंद-त्रिष्टुप् ॥

॥१७४॥ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पात्यसुर त्वमस्मान् ।

त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

दनो विशा इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दत् ।

ऋणोरपो अनवघाणा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥

अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीद्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।

रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मद्वा ।

सृजदर्णास्यव यशुधा गास्तिष्ठहरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

त्वं । राजा । इंद्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नृन् । पाति । असुर । त्वं ।  
अस्मान् । त्वं । सत्पतिः । मघवा । नः । तरुत्रः । त्वं । सत्यः । वसवानः ।  
सहोदाः ॥ १ ॥ दनः । विशाः । इंद्र । मृध्रवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म ।  
शारदीः । दत् । ऋणोः । अपः । अनवघ । अर्णाः । यूने । वृत्रं । पुरुकुत्साय ।  
रन्धीः ॥ २ ॥ अजा । वृतः । इंद्र । शूरपत्नीः । द्यां । च । येभिः । पुरुहूत ।  
नूनं । रक्षो इति । अग्नि । अशुषं । तूर्वयाणं । सिंहः । न । दमे । अपांसि ।  
वस्तोः ॥ ३ ॥ शेषन् । नु । ते । इंद्र । सस्मिन् । योनौ । प्रशस्तये । पवीरवस्य ।  
मद्वा । सृजन् । अर्णांसि । अशुषं । यत् । यशुधा । गाः । तिष्ठन् । हरी इति । मद्वा ।  
मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७४ ]

वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋजा वातस्याश्वा ।

प्र सूरश्चक्रं बृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषत् वज्रंवाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेऽरुदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।

प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपवर्हेणीं कः ।

करन्तिस्त्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुर्यवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।

भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमतिं शूर पषिं पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

वह । कुत्सं । इन्द्र । यस्मिन् । चाकन् । स्यूमन्यू इति । ऋजा । वातस्य । अश्वा । प्र ।  
सूरः । चक्रं । बृहतात् । अभीके । अभि । स्पृधोः । यासिषत् । वज्रंवाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥  
जघन्वान् । इन्द्र । मित्रेऽरुन् । चोदऽप्रवृद्धः । हरिऽवः । अदाशून् । प्र । ये । पश्यन् ।  
अर्यमणं । सचा । आयोः । त्वया । शूर्ताः । वहमानाः । अपत्यं ॥ ६ ॥ रपत् ।  
कविः । इन्द्र । अर्कऽसातौ । क्षां । दासाय । उपऽवर्हेणीं । करिति कः । करत् । तिस्रः ।  
मघवा । दानुऽचित्राः । नि । दुर्योणे । कुर्यवाचं । मृधि । श्रेत् ॥ ७ ॥ सना । ता ।  
ते । इन्द्र । नव्याः । आ । अगुः । सहः । नभः । अविरणाय । पूर्वीः । भिनत् ।  
पुरः । न । भिदः । अदेवीः । ननमः । वधः । अदेवस्य । पीयोः ॥ ८ ॥ त्वं ।  
धुनिः । इन्द्र । धुनिऽमतीः । ऋणोः । अपः । सीराः । न । स्रवन्तीः । प्र । यत् ।  
समुद्रं । अतिं । शूर । पषिं । पारय । तुर्वशं । यदुं । स्वस्ति ॥ ९ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० १७;१८] ऋग्वेदः [मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७२]

त्वभरमार्कमिन्द्र विश्वध स्या अवृकृतमो नरां नृपाता ।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

॥ १७५ ॥ ऋषिः-भगवतः । देवता-इन्द्रः । उन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७५॥ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषां ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसाननमः ॥ १ ॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनापाळनर्त्यः ॥ २ ॥

त्वं हि जूरः सन्निता चोदयो मनुषो रथम् ।

सहावाँ दक्षुमन्नतमोषः पात्रं न गोचिषा ॥ ३ ॥

त्वं । अस्माकं । इन्द्र । विश्वध । स्याः । अवृकृतमः । नरां । वृष्पाता । सः । न  
विश्वासा । स्पृधां । सहोदाः । विद्यामे । रूपं । वृजनं । जीरदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

हरिवो । अपायि । ते । महः । पात्रस्येव । इन्द्रः । मत्सरोः । मदः ।  
वृषां । ते । वृष्णे । इन्दुः । वाजी । सहस्रसाननमः ॥ १ ॥ आ । नः । ते । गन्तु ।  
मत्सरोः । वृषां । मदः । वरेण्यः । सहस्रान् । इन्द्र । सानसिः । पृतनापाद ।  
अनर्त्यः ॥ २ ॥ त्वं । हि । जूरः । सन्निता । चोदयोः । मनुषः । रथं । सहस्रान् ।  
दक्षुम् । अन्नतं । गोषः । पात्रं । न । गोचिषा ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० १८, १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७६

मुपाय सूर्ये कवे चक्रमीशान ओर्जसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो शुष्मिन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदां मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

यथा पूर्वोभ्यो जरितृभ्यं इन्द्र मयं इवापो न तृष्यते वभूर्थ ।

तामनुं त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

॥ १७६ ॥ ऋषि-अगस्त्यः । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप् ॥

॥ १७६ ॥ मत्सि नो वस्यंइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

मुपाय । सूर्ये । कवे । चक्रं । ईशानः । ओर्जसा । वह । शुष्णाय । वधं । कुत्सं ।  
वातस्य । अश्वैः ॥ ४ ॥ शुष्मिन्तमः । हि । ते । मदः । शुष्मिन्तमः । उत ।  
क्रतुः । वृत्रघ्ना । वरिवःविदा । मंसीष्ठाः । अश्वसातमः ॥ ५ ॥  
यथा । पूर्वोभ्यः । जरितृभ्यः । इन्द्र । मयं इव । आपः । न । तृष्यते । वभूर्थ ।  
तां । अनुं । त्वा । निविदं । जोहवीमि । विद्यामेषं । इपं । वृजनं । जीरदानुं  
॥ ६ ॥ १८ ॥

मत्सि । नः । वस्यःइष्टये । इन्द्रं । इन्दो इति । वृषां । आ । विश । ऋघाय-  
माणः । इन्वसि । शत्रुं । अन्ति । न । विन्दसि ॥ १ ॥

अ० २ अध्या० ४ व० १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १०१

तस्मिन्ना वेश्या गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कूपदृषां ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसुं ।

स्पाशयस्व यो अस्मधुग्दिन्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं समं जहि दृणाशं यो न ते मयः ।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोदते ॥ ४ ॥

आवो यस्य द्विवर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।

आजाविंद्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

यथा पूर्वैभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृप्यते वभ्रथं ।

तामनुं त्वा निविदं जोह्वीमि विद्याभेधं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १९ ॥

तस्मिन् । आ । वेश्या । गिरः । यः । एकः । चर्षणीना । अनुं । स्वधा । यं ।

उप्यते । यवं । न । चर्कूपत् । दृषां । ॥ २ ॥ यस्य । विश्वानि । हस्तयोः । पञ्च ।

क्षितीनां । वसुं । स्पाशयस्व । यः । अस्मधुग् । दिन्ये । वाशनिः । जहि ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं । समं । जहि । दृः । नशं । यः । न । ते । मयः । अस्मभ्यं । अम्यं ।

वेदनं । दद्धि । सूरिः । चित् । ओदते ॥ ४ ॥ आवोः । यस्यं । द्विवर्हसः ।

अर्केषु । सानुषक् । असत् । आजोः । इंद्रस्य । उदो इति । म । प्रावोः । वाजेषु ।

वाजिनं ॥ ५ ॥ यथा । पूर्वैभ्यः । जरितृभ्यः । इन्द्र । मयः । इवापोः । न । तृप्यते ।

वभ्रथं । ता । अनुं । त्वा । निविदं । जोह्वीमि । विद्याभेधं । वृजं । वृजनं ।

जीरदानुं ॥ ६ ॥ १९ ॥

॥ १७७ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७७॥ आ चर्षणि॒प्रा वृष॒भो जना॑नां॒ राजा॑ कृ॒ष्टीनां॑ पु॒रु॒हू॒त इन्द्रः॑ ।

स्तु॒तः श्र॑व॒स्यन्न॒व॒सोपं॑ म॒द्रि॒ग्यु॒क्त्वा ह॒री वृ॒षणा॑ या॒स्य॒र्वाङ् ॥ १ ॥

ये ते॒ वृष॑णो वृष॒भासं॑ इन्द्र॒ ब्रह्म॒युजो॑ वृष॒रथा॑सो अ॒त्याः ।

ताँ आ तिष्ठ॑ तेभि॒रा या॑स्य॒र्वाङ् ह॒वा॑महे॒ त्वा सु॒त इन्द्र॑ सोमै॒ ॥ २ ॥

आ तिष्ठ॑ रथं वृष॑णं वृषा॒ ते सु॒तः सोमः॑ परि॒षि॒क्त्वा म॒धूनि॑ ।

यु॒क्त्वा वृष॑भ्यां वृष॒भ क्षि॒तीनां॑ हरि॒भ्यां या॒हि प्र॒वतो॑पं म॒द्रिक् ॥ ३ ॥

अ॒यं य॒ज्ञो दे॒वया॑ अ॒यं मि॒येधं॑ इ॒मा ब्रह्मा॑ण्य॒यमिन्द्र॑ सोमः ।

स्ती॒र्णं व॒र्हि॒रा तु श॒क्र प्र या॑हि॒ पिवा॑ नि॒षद्य॑ वि मु॒चा ह॒री इ॒ह ॥ ४ ॥

आ । चर्षणि॒प्राः । वृष॒भः । जना॑नां । राजा॑ । कृ॒ष्टीनां॑ । पु॒रु॒हू॒तः । इन्द्रः॑ ।  
 स्तु॒तः । श्र॑व॒स्यन् । अ॒वसा॑ । उपं । म॒द्रिक् । यु॒क्त्वा । ह॒री इति॑ । वृष॑णा । आ ।  
 या॒हि । अ॒र्वाङ् ॥ १ ॥ ये । ते । वृष॑णः । वृष॒भासः॑ । इन्द्र॑ । ब्रह्म॒युजः॑ । वृष॑ण-  
 रथासः । अत्याः । तान् । आ । तिष्ठ॑ । तेभिः । आ । या॒हि । अ॒र्वाङ् । ह॒वा॑महे ।  
 त्वा । सु॒ते । इन्द्र॑ । सोमै॒ ॥ २ ॥ आ । तिष्ठ॑ । रथं । वृष॑णं । वृषा॒ । ते । सु॒तः ।  
 सोमः॑ । परि॒षि॒क्त्वा । म॒धूनि॑ । यु॒क्त्वा । वृष॑भ्यां । वृष॒भ । क्षि॒तीनां॑ । हरि॑भ्यां ।  
 या॒हि । प्र॒वता॑ । उपं । म॒द्रिक् ॥ ३ ॥ अ॒यं । य॒ज्ञः । दे॒वयाः॑ । अ॒यं । मि॒येधः॑ ।  
 इ॒मा । ब्रह्मा॑णि । अ॒यं । इन्द्र॑ । सोमः॑ । स्ती॒र्णं । व॒र्हिः । आ । तु । श॒क्र । ऽ ।  
 या॒हि । पि॒व । नि॒षद्य॑ । वि । मु॒च । ह॒री इति॑ । इ॒ह ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७८

ओ सुष्टु॑त इन्द्र॒ याह्य॑र्वाहु॒प ब्रह्मा॑णि मान्य॒स्य॑ का॒रोः ।

विद्या॑म॒ वस्तो॑रव॒सा गृण॑न्तो॒ विद्या॑मे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

१ ॥ १७८ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७८॥ यद्द॒ स्या॑ तं इन्द्र॒ शुष्टि॑रस्ति॒ यया॑ व॒भूथं॑ ज॒रितृ॑भ्यं॒ ऊ॒ती ।

मा॒ नः॒ कामं॑ म॒हय॑न्त॒मा ध॒ग्विश्वा॑ ते अ॒श्यां॒ पर्या॑दं आ॒योः ॥ १ ॥

न वा॒ राजेन्द्र॑ आ द॒भन्नो॒ या नु॑ स्वसा॒रा कृ॒णव॑न्त॒ योनीं॑ ।

आ॒र्पश्चि॑द॒स्मै सु॒तुका॑ अ॒वे॒षन्म॑न्त्र॒ इन्द्रः॑ स॒ख्या व॑यंश्च ॥ २ ॥

जेता॒ नृभि॑रिन्द्रः॑ पृ॒त्सु शू॒रः श्रो॒ता ह॒वं ना॑ध॒मान॑स्य॒ कारोः॑ ।

प्र॒भ॒र्ता रथं॑ दा॒शुषं॑ उपा॒क उच्य॑न्ता॒ गिरो॑ यदि॒ च त्म॑ना॒ भूत् ॥ ३ ॥

ओ इति । सुऽस्तुतः । इन्द्र । याहि । अर्वाद् । उ । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः ।

विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणन्तः । विद्यामे । षं । वृजनं । जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

यत् । ह । स्या । ते । इन्द्र । शुष्टिः । अस्ति । यया । वभूथं । जरितृभ्यः ।

ऊती । मा । नः । कामं । महयन्तं । आ । धक् । विश्वा । ते । अश्या । पर्या ।

आपः । आयोः ॥ १ ॥ न । वा । राजा । इन्द्रः । आ । दभन्न । नः । या । नु ।

स्वसारा । कृणवन्त । योनीं । आर्पः । चित् । अस्मै । सुस्तुकाः । अवेष्ण । मन्त्र ।

नः । इन्द्रः । सख्या । वयः । च ॥ २ ॥ जेता । नृभिः । इन्द्रः । पृत्सु । शूराः ।

श्रोता । हवं । नाधमानस्य । कारोः । प्रभर्ता । रथं । दाशुषः । उपाक । उच्यन्ता ।

गिरः । यदि । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७१

ए॒षा नृ॒भि॒रिन्द्रः॑ सु॒श्र॒व॒स्या प्र॒खा॒दः॑ पृ॒क्षो अ॒भि मि॒त्रिणो॑ भूत् ।

स॒म॒र्य इ॒पः स्त॒व॒ते वि॒वा॒चि स॒त्रा॒क॒रो य॒ज॒मान॑स्य शंसः ॥ ४ ॥

त्वया॑ व॒यं म॒घ॒व॒न्निन्द्र॑ श॒त्रू॒न॒भि ष्याम॑ मह॒तो म॒न्य॑मानान् ।

त्वं त्रा॒ता त्व॒सुं नो वृ॒धे भू॑र्वि॒द्यामे॒षं वृ॒ज॒नं जी॒र॒दा॒नुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ १७९ ॥ ऋषि.-अगस्त्य । देवता-रति । छन्द-त्रिगुप् ॥

॥ १७९ ॥ पूर्वा॒र॒हं श॒र॒दः॑ श॒श्र॒मा॒णा दो॒षा व॒स्तो॑रु॒षसो॑ ज॒र॒य॑न्तीः ।

मि॒नाति॑ श्रियं ज॒रि॒मा त॒नू॒ना॒म॒प्यु नु प॒त्नी॒वृ॒ष॒णो जग॑म्युः ॥ १ ॥

ये चि॒द्धि पूर्वं॑ ऋ॒त॒सा॒प आ॒स॒न्त्सा॒कं दे॒वेभि॑र॒व॒द॒वृ॒तानि॑ ।

ते चि॒द॒वा॒सु॒र्न॒ह्य॒न्त॒मा॒पुः स॒सू नु प॒त्नी॒वृ॒ष॒भिर्ज॑गम्युः ॥ २ ॥

ए॒ष । नृ॒भिः । इ॒न्द्रः । सु॒श्र॒व॒स्या । प्र॒खा॒दः । पृ॒क्षः । अ॒भि । मि॒त्रि॒णः । भू॒त् ।  
स॒म॒र्ये । इ॒पः । स्त॒व॒ते । वि॒वा॒चि । स॒त्रा॒क॒रः । य॒ज॒मा॒न॑स्य । शंसः ॥ ४ ॥  
त्वया॑ । व॒यं । म॒घ॒व॒न् । इ॒न्द्र । श॒त्रू॒न् । अ॒भि । स्या॒म । मह॒तः । म॒न्य॑मानान् । त्वं ।  
त्रा॒ता । त्वं । ऊं इति॑ । नः । वृ॒धे । भूः । वि॒द्या॒म॒ । इ॒षं । वृ॒ज॒नं । जी॒र॒दा॒नुं ॥ ५ ॥ २१ ॥

पूर्वाः । अ॒हं । श॒र॒दः । श॒श्र॒मा॒णा । दो॒षाः । व॒स्तोः । उ॒षसः । ज॒र॒य॑तीः ।  
मि॒नाति॑ । श्रियं । ज॒रि॒मा । त॒नू॒नां । अपि॑ । ऊं इति॑ । नु । प॒त्नीः । वृ॒ष॒णः ।  
जग॑म्युः ॥ १ ॥ ये । चि॒त् । हि । पूर्वं । ऋ॒त॒सा॒पः । आ॒स॒न् । सा॒कं । दे॒वेभिः ।  
अ॒व॒द॒न् । ऋ॒तानि॑ । ते । चि॒त् । अ॒व॒ । अ॒सुः । न॒हि । अ॒न्तं । आ॒पुः । सं । ऊं  
इति॑ । नु । प॒त्नीः । वृ॒ष॒भिः । जग॑म्युः ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ म० १७८

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाडुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।

विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

॥ १७८ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१७८॥ यद्वा स्या तं इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया वभूयं जरितृभ्यं जती ।

मा नः कामं मह्यन्तमा धग्विश्वां ते अश्यां पर्यादं आयोः ॥ १ ॥

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनीं ।

आर्षश्चिदस्मै सुस्तुकां अवेपन्गमन्त इन्द्रः सख्या वयंश्च ॥ २ ॥

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नार्धमानस्य कारोः ।

प्रभर्ता रथं दाशुषं उपाक उद्यन्ता गिरो यदिं च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

ओ इति । सुस्तुतः । इन्द्र । याहि । अर्वाङ् । उप । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः ।

विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणन्तः । विद्याम । इपं । वृजनं । जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

यत् । ह । स्या । ते । इन्द्र । श्रुष्टिः । अस्ति । यया । वभूयं । जरितृभ्यः ।

जती । मा । नः । कामं । मह्यन्तं । आ । धक् । विश्वां । ते । अश्यां । परिं ।

आर्षः । आयोः ॥ १ ॥ न । घ । राजा । इन्द्रः । आ । दभन् । नः । या । नु ।

स्वसारा । कृणवन्त । योनीं । आर्षः । चित् । अस्मै । सुस्तुकाः । अवेपन् । गमन् ।

नः । इन्द्रः । सख्या । वयं । च ॥ २ ॥ जेता । नृभिः । इन्द्रः । पृत्सु । शूरः ।

श्रोता । हवं । नार्धमानस्य । कारोः । प्रभर्ता । रथं । दाशुषः । उपाके । उद्यन्ता ।

गिरः । यदिं । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७१ ]

ए॒वा नृ॒भि॒रिन्द्रः॑ सु॒श्र॒व॒स्या प्र॒खा॒दः पृ॒क्षो अ॒भि मि॒त्रिणो॑ भूत् ।  
स॒म॒र्ये इ॒पः स्त॑व॒ते वि॒वाचि॑ स॒त्रा॒क॒रो य॒ज॑मानस्य शंसः ॥ ४ ॥  
त्वया॑ व॒यं म॒घ॒व॒न्निन्द्र॑ शत्रू॒न॒भि ध्या॑मं मह॒तो म॒न्य॑मानान् ।  
त्वं त्रा॒ता त्व॑सुं नो वृ॒धे भू॑र्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑सुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ १७९ ॥ ऋषि.-अगस्त्य । देवता-रति । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥ १७९ ॥ पूर्वा॒र॒हं श॒रदः॑ श॒श्र॒मा॒णा दो॒षा व॒स्तो॑रु॒षसो॑ ज॒रय॑न्तीः ।  
मि॒नाति॑ श्रियं ज॒रि॒मा त॒नूना॑म॒प्यु नु॑ पत्नी॒वृष॑णो जग॒म्युः ॥ १ ॥  
ये चि॒द्धि पूर्वं॑ ऋ॒त॒त्ताप॑ आ॒सन्त्सा॒कं दे॒वेभि॑र॒वद॑न्वृ॒तानि॑ ।  
ते चि॒दवा॑सु॒र्नह्य॑न्तं॒मा॒पुः समू॑ नु॒ पत्नी॑वृष॒भिर्ज॑ग॒म्युः ॥ २ ॥

ए॒व । नृ॒भिः । इन्द्रः॑ । सु॒श्र॒व॒स्या । प्र॒खा॒दः । पृ॒क्षः । अ॒भि । मि॒त्रिणः॑ । भूत् ।  
स॒म॒र्ये । इ॒पः । स्त॑व॒ते । वि॒वाचि॑ । स॒त्रा॒क॒रः । य॒ज॑मानस्य । शंसः ॥ ४ ॥  
त्वया॑ । व॒यं । म॒घ॒व॒न् । इन्द्र॑ । शत्रू॒न् । अ॒भि । स्या॑म । मह॒तः । म॒न्य॑मानान् । त्वं ।  
त्रा॒ता । त्वं । ऊं इति॑ । नः । वृ॒धे । भूः । वि॒द्यामे॑ । इ॒षं । वृ॒जनं॑ । जी॒रदा॑सुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

पूर्वाः । अ॒हं । श॒रदः॑ । श॒श्र॒मा॒णा । दो॒षाः । व॒स्तोः । उ॒पसः॑ । ज॒रय॑न्तीः ।  
मि॒नाति॑ । श्रियं । ज॒रि॒मा । त॒नूना॑ । अपि॑ । ऊं इति॑ । नु । पत्नीः । वृष॑णः ।  
जग॒म्युः ॥ १ ॥ ये । चि॒त् । हि । पूर्वं॑ । ऋ॒त॒त्तापः॑ । आ॒सन् । सा॒कं । दे॒वेभिः॑ ।  
अ॒वद॑न् । ऋ॒तानि॑ । ते । चि॒त् । अ॒व । अ॒सुः । न॒हि । अ॒न्तं । आ॒पुः । सं । ऊं  
इति॑ । नु । पत्नीः । वृष॑भिः । जग॒म्युः ॥ २ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७९

न मृषां श्रान्तं यद्वन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।

जयावेदत्रं शतनीथमाजिं यत्सस्यश्वा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

नदस्यं मा रुधतः काम आगन्वित आजान्तो अमुतः कुतश्चित् ।

लोषामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुषं व्रुवे ।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यैः ॥ ५ ॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं वलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुषोष सत्या देवेष्वशिषो जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

न । मृषां । श्रान्तं । यत् । अवन्ति । देवाः । विश्वाः । इत् । स्पृधः । अभि । अश्न-

वाव । जयाव । इत् । अत्रं । शतऽनीथं । आजिं । यत् । सम्यंचा । मिथुनौ । अभि ।

अजाव ॥ ३ ॥ नदस्यं । मा । रुधतः । कामः । आ । अगन् । इतः । आऽजातः ।

अमुतः । कुतः । चित् । लोषामुद्रा । वृषणं । निः । रिणाति । धीरं । अधीरा ।

धयति । श्वसन्तं ॥ ४ ॥ इमं । नु । सोमं । अन्तितः । हृत्सु । पीतं । उषं । व्रुवे ।

यत् । सीं । आगः । चकृम । तत् । सु । मृळतु । पुलुऽकामः । हि । मर्त्यैः ॥ ५ ॥

अगस्त्यः । खनमानः । खनित्रैः । प्रऽजां । अपत्यं । वलं । इच्छमानः । उभौ ।

वर्णौ । ऋषिः । उग्रः । पुषोष । सत्याः । देवेषु । आऽशिषः । जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

## ॥ चतुर्विंशोऽनुवाकः ॥

॥ १८० ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ।

॥१८०॥ यु॒वो रजाँ॑सि सु॒यमाँ॑सो अ॒श्वा रथो॑ य॒द्रां पर्य॑णी॑सि दी॒यत् ।  
हिर॒ण्ययां॑ वां प॒वयः॑ प्रु॒षाय॑न्मध्वः॒ पिव॑न्ता उ॒पसः॑ स॒चेथे ॥ १ ॥  
यु॒वमत्य॑स्याव॒ नक्ष॑थो य॒द्विप॑त्मनो न॒र्यस्य॑ प्र॒यज्योः॑ ।  
स्वसा॒ यद्वाँ॑ वि॒श्वगृ॑तीं भ॒राति॑ वाजा॒येद्रे॑ मधु॒पावि॑षे च ॥ २ ॥  
यु॒वं पय॑ उ॒स्त्रिया॑यामध॒त्तं प॒क्वमा॑माया॒भव॑ पू॒र्व्यं गोः॑ ।  
अ॒न्तर्य॑द्व॒निनो॑ वा॒मृत॑प्सू व्हा॒रो न शु॒चि॒र्यज॑न्ते ह॒विष्मा॑न् ॥ ३ ॥  
यु॒वं ह॒ घर्म॑ मधु॒मन्त॑म॒त्रये॑ऽपो न क्षो॒दोऽवृ॑णीत॒सेषे॑ ।  
तद्वाँ॑ न॒राव॑श्विना प॒श्वेऽइ॒ष्टो रथ्ये॑व च॒क्रा प्रति॑ यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥

युवोः । रजाँसि । सुयमांसः । अश्वाः । रथः । यत् । वां । परिं । अणींसि ।  
दीयत् । हिरण्ययाः । वां । पवयः । प्रुषायन् । मध्वः । पिवन्तौ । उपसः । सचेथे  
इति ॥ १ ॥ युवं । अत्यस्य । अवं । नक्षथः । यत् । विपत्मनः । नर्यस्य । प्रयज्यो-  
ज्योः । स्वसा । यत् । वां । विश्वगृतीं इति विश्वऽगृतीं । भराति । वाजाय । इद्रे ।  
मधुऽपौ । इषे । च ॥ २ ॥ युवं । पयः । उस्त्रियायां । अधत्तं । पक्वं । आमायां ।  
अवं । पूर्व्यं । गोः । अंतः । यत् । वनिनः । वां । ऋतप्सू इत्यृतऽप्सू । व्हारः । न ।  
शुचिः । यजन्ते । हविष्मान् ॥ ३ ॥ युवं । ह । घर्म । मधुऽमन्तं । अत्रये । अपः । न ।  
क्षोदः । अवृणीतं । एषे । तत् । वां । नरो । अश्विना । पश्वेऽइष्टिः । रथ्याऽइव ।  
चक्रा । प्रति । यन्ति । मध्वः ॥ ४ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २३,२४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८०

आ वां दानाय वृत्तीय दस्त्रा गोरोहेण तौग्रयो न जित्रिः ।

अपः क्षोणी संचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।

प्रेषद्वेषद्रातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिहितावान् ।

अधा चिद्धि प्माश्विनावनिद्या पाथो हि प्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥

युवां चिद्धि प्माश्विनावनु द्यून्विर्द्वस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।

अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

आ । वां । दानाय । वृत्तीय । दस्त्रा । गोः । ओहेन । तौग्रयः । न । जित्रिः ।

अपः । क्षोणी इति । संचते । माहिना । वां । जूर्णः । वां । अक्षुः । अंहसः ।

यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥ नि । यत् । युवेथे इति । निऽयुतः । सुदानू इति सुदानू ।

उप । स्वधाभिः । सृजथः । पुरंऽधि । प्रेषत् । वेषत् । वातः । न । सूरिः । आ ।

महे । ददे । सुव्रतः । न । वाजं ॥ ६ ॥ वयं । चित् । हि । वां । जरितारः ।

सत्याः । विपन्यामहे । वि । पणिः । हितऽवान् । अधे । चित् । हि । स्म । अश्विनौ ।

अनिद्या । पाथः । हि । स्म । वृषणौ । अन्तिऽदेवं ॥ ७ ॥ युवां । चित् । हि । स्म ।

अश्विनौ । अनु । द्यून् । विऽर्द्वस्य । प्रऽस्रवणस्य । सातौ । अगस्त्यः । नरां । नृषु ।

प्रशस्तः । काराधुनीऽइव । चितयत् । सहस्रैः ॥ ८ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २४,२५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८?

प्र यद्दहे॑थे म॒हि॒ना रथ॑स्य प्र स्य॑न्द्रा या॒थो मनु॑षो न होता॑ ।  
ध॒त्तं सू॒रिभ्य॑ उ॒त वा स्व॑श्व्यं नास॑त्या र॒धिपा॑चः स्याम ॥ ९ ॥  
तं वां रथं॑ व॒यम॑द्या हु॒वेम॑ स्तोमै॑रश्विना सु॒वि॒ताय॑ नव्यं ।  
अ॒रि॒ष्टने॑मिं परि॑ द्यामि॒द्यानं॑ वि॒द्यामे॑षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १० ॥ २४ ॥

॥ १८१ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१८१॥ कद्दु॑ प्रे॒ष्टावि॑षां र॒थीणा॑म॒ध्व॒र्यन्ता॒ यदु॑न्नि॒नीथो॑ अ॒पाम् ।  
अ॒यं वां य॒ज्ञो अ॑कृत प्र॒शस्तिं॑ वसु॒धिति॑ अ॒वितारा॑ जनानाम् ॥ १ ॥  
आ वा॒मश्वा॑सः शु॒चयः॑ पय॒स्पा वा॑त॒रंह॑सो दि॒व्यासो॑ अ॒त्याः ।  
म॒नोजु॑वो वृ॒षणो॑ वी॒तपृ॑ष्ठा ए॒ह स्व॑राजो अ॒श्विना॑ वहन्तु ॥ २ ॥  
आ वां रथो॑ऽवनिर्न प्र॒वत्वा॑न्त॒सृप्र॑व॒न्धुरः॑ सु॒वि॒ताय॑ ग॒म्याः ।  
वृ॒ष्णः स्था॑तारा॒ मन॑सो ज॒वी॒द्यान॑ह॒म्पूर्वो॑ य॒जतो॑ धि॒ष्ण्या॑ यः ॥ ३ ॥

प्र । यत् । वहे॑थे इति । म॒हि॒ना । रथ॑स्य । प्र । स्य॑न्द्रा । या॒थः । मनु॑षः । न । होता॑ ।  
ध॒त्तं । सू॒रिभ्यः॑ । उ॒त । वा । सु॒श्व्यं । नास॑त्या । र॒धिपा॑चः । स्या॒म ॥ ९ ॥  
तं । वां । रथं॑ । व॒यं । अ॒द्य । हु॒वेम॑ । स्तोमैः॑ । अ॒श्विना॑ । सु॒वि॒ताय॑ । नव्यं॑ ।  
अ॒रि॒ष्टने॑मिं । परि॑ । द्यां । इ॒द्यानं॑ । वि॒द्याम॑ । इ॒षं । वृ॒जनं॑ । जी॒रदा॑नुं ॥ १० ॥ २४ ॥

कत् । ऊं इति । प्रे॒ष्टौ । इ॒षां । र॒थीणां॑ । अ॒ध्व॒र्यन्ता॑ । यत् । उ॒त्ऽनि॒नीथः॑ ।  
अ॒पां । अ॒यं । वां । य॒ज्ञः । अ॒कृत॑ । प्र॒शस्ति॑ । वसु॒धिति॑ इति वसु॑ऽधिति॑ । अ॒वितारा॑ ।  
ज॒नानां॑ ॥ १ ॥ आ । वां । अ॒श्वा॑सः । शु॒चयः॑ । पयः॑ऽपाः । वा॑त॒रंह॑सः । दि॒व्यासः॑ ।  
अ॒त्याः । म॒नः॑जु॒वः । वृ॒षणः॑ । वी॒तऽपृ॑ष्ठाः । आ । इ॒ह । स्व॑राजः । अ॒श्विना॑ ।  
व॒हन्तु॑ ॥ २ ॥ आ । वा । रथः॑ । अ॒वनिः॑ । न । प्र॒वत्वा॑न् । सृ॒प्रव॑न्धुरः । सु॒वि॒ताय॑ ।  
ग॒म्याः । वृ॒ष्णः । स्था॑तारा॒ । मन॑सः । ज॒वी॒द्यान् । अ॒हं॑ऽपूर्वः । य॒जतः॑ । धि॒ष्ण्या॑ ।  
यः ॥ ३ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २५, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८१

इहेहं जाता समवावशीतामरेपसां तन्वाङ्नामभिः स्वैः ।

जिष्णुवाँमन्यः सुमंखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥

प्र वाँ निचेरुः ककुहो वशाँ अनुं पिशाङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।

हरीँ अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥

प्र वाँ शरद्वान्वृषभो न निष्पाद् पूर्वीरिषश्चरति मध्वं हृष्णन् ।

एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरुध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

असंजि वाँ स्थविरा वेधसा गीर्वाळहे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।

उपस्तुताववतं नाधमानं याम्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

इहेहं । जा॒ता । सं । अ॒वा॒व॒शी॒तां । अ॒रे॒प॒सां । त॒न्वां । ना॒म॒भिः । स्वैः । जि॒ष्णुः ।

वा । अ॒न्यः । सु॒मं॒ख॒स्य । सू॒रिः । दि॒वः । अ॒न्यः । सु॒भ॒गः । पु॒त्रः । ऊ॒हे ॥ ४ ॥

। वां । नि॒चे॒रुः । क॒कु॒हः । व॒शां । अनुं । पि॒शा॒ङ्ग॒रूपः । स॒द॒ना॒नि । ग॒म्याः ।

इति । अ॒न्य॒स्य । पी॒प॒य॑न्त । वा॒जैः । म॒थ्रा । रजांसि । अ॒श्वि॒ना । वि ।

घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥ प्र । वां । श॒र॒द्वान् । वृ॒ष॒भः । न नि॒ष्पाद् । पूर्वीः । इ॒षः ।

च॒र॒ति । म॒ध्वं । हृ॒ष्ण॒न् । ए॒वैः । अ॒न्य॒स्य । पी॒प॒य॑न्त । वा॒जैः । वे॒ष॒न्तीः । ऊ॒ध्वाः ।

न॒द्योः । नः । आ । अ॒गुः ॥ ६ ॥ अ॒सं॒जि । वां । स्थ॒वि॒रा । वे॒ध॒सा । गीः ।

वा॒ळ॒हे । अ॒श्वि॒ना । त्रे॒धा । क्ष॒र॑न्ती । उ॒प॒स्तु॒ता॒व॒व॒तं । अ॒व॒तं । ना॒ध॒मा॒नं । या॒म॒न् । अ॒था

म॒न् । शृ॒णु॒तं । ह॒वं । मे ॥ ७ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २६, २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८२

उत स्या वां र्शतो वप्ससो गीर्त्रिर्बर्हिषि सदसि पिन्वते नृन् ।

वृषां वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेवं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

। १८२ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विनौ । छ द-जगती ॥

॥१८२॥ अमूर्दिदं वयुनमो षु भूपता रथो वृषण्शान्मदता मनीषिणः ।

धियञ्जिन्वा धिष्ण्यां विष्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिंश्रता ॥ १ ॥

इन्द्रंतमा हि धिष्ण्यां मरुत्तमा दत्ता दंसिष्ठा रथ्यां रथीतमा ।

पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥

उत । स्या । वा । र्शतः । वप्ससः । गीः । त्रिर्बर्हिषि । सदसि । पिन्वते । नृन् ।  
वृषां । वां । मेघः । वृषणा । पीपाय । गोः । न । सेके । मनुषः । दशस्यन् ॥ ८ ॥  
युवां । पूषाश्वि । अश्विना । पुरंधिः । अग्निः । उषां । न । जरते । हविष्मान् ।  
हुवे । यत् । वां । वरिवस्या । गृणानः । विद्यामं । इपं । वृजनं । जीरद-  
दानुं ॥ ९ ॥ २६ ॥

अमूर्त् । इदं । वयुनं । ओ इति । सु । भूपत् । रथः । वृषण्शान् । मदत्त ।  
मनीषिणः । धियञ्जिन्वा । धिष्ण्यां । विष्पलावसू इति । दिवः । नपाता । सुकृते ।  
शुचिंश्रता ॥ १ ॥ इन्द्रंतमा । हि । धिष्ण्यां । मरुत्तमा । दत्ता । दंसिष्ठा ।  
रथ्यां । रथीतमा । पूर्णं । रथं । वहेथे इति । मध्वः । आचितं । तेन । दश्वांसं ।  
उपं । याथः । अश्विना ॥ २ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २७, २८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० २४ सू० ? ८२

किमत्र दत्ता कृणुथः क्रिमासाथे जनो यः कश्चिदहंविर्महीयते ।

अतिं क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

जम्भयंतमभितो रायंतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरित् रत्निनी कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु सुवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्रयाय कम् ।

येन देवत्रा मनसा निरुहथुः सुपसनी पैतथुः क्षोदंसो महः ॥ ५ ॥ २७ ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्सवःतरंनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

किं । अत्र । दत्ता । कृणुथः । किं । आसाथे इति । जनः । यः । कः । चित् ।  
अहंविः । महीयते । अतिं । क्रमिष्टं । जुरतं । पणेः । असुं । ज्योतिः । विप्राय ।  
णुतं । वचस्यवे ॥ ३ ॥ जम्भयंतं । अभितः । रायंतः । शुनः । हतं । मृधः ।  
विदथुः । तानिं । अश्विना । वाचंवाचं । जरितुः । रत्निनी । कृतं । उभा । शंसं ।  
नासत्या । अवतं । मम ॥ ४ ॥ युवं । एतं । चक्रथुः । सिन्धुषु । सुवं । आत्मन्स्वंतं ।  
पक्षिणं । तौग्रयाय । कं । येन । देवत्रा । मनसा । निःऽऊहथुः । सुऽपसनि । पैतथु  
क्षोदंसः । महः ॥ ५ ॥ २७ ॥ अवऽविद्धं । तौग्र्यं । अप्सु । अंतः । अनारंभणे ।  
तमसि । प्रऽविद्धं । चतस्रः । नावः । जठलय । जुष्टाः । उत् । अश्विऽभ्या  
इषिताः । पारयन्ति ॥ ६ ॥

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २८, २९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८३

कः स्वि॑दृक्षो निष्ठि॑तो मध्ये अर्ण॑सो यं तो॒श्रयो ना॑धितः पर्य॑षस्वजत् ।

पर्णा॑ मृ॒गस्य॑ प॒तरों॑रिवा॒रभ॑ उद॒श्विना॑ ऊ॒हथुः॑ श्रोम॑ताय॒ कम् ॥ ७ ॥

तदा॑ नरा नास॑त्या॒वन्तु॑ ष्या॒द्यद्वा॑ माना॑स उ॒चथ॑मवो॒चन् ।

अ॒स्माद्द्य॑ सद॑सः सो॒म्यादा॑ वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑न्तुम् ॥ ८ ॥ २८ ॥

॥ १८३ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप् ॥

॥१८३॥ तं यु॑ञ्जाथां मन॑सो यो जवी॑यान् त्रि॒वन्धुरो॑ वृष॒णा यस्त्रि॑च॒क्रः ।

येनो॑पया॒थः सु॒कृतो॑ दुरो॒णं त्रि॒धातु॑ना प॒तथो॑ वि॒न्न पर्णेः॑ ॥ १ ॥

सु॒वृ॒द्रथो॑ वर्त॑ते यन्न॒भि क्षां॑ यत्तिष्ठ॑थः क्र॒तुम॑न्तानु॑ पृ॒क्षे ।

अ॒पुर्व॑पु॒ष्या स॑च॒तामि॒यं गी॑र्दिवो॒ दु॒द्वि॒त्रोष॑सा॒ स॒चेथे ॥ २ ॥

कः । स्वि॑त् । वृ॒क्षः । निःऽस्थि॑तः । मध्ये॑ । अर्ण॑सः । यं । तो॒श्रयः॑ । ना॑धि॒तः ।  
परि॑ऽअसंस्वजत् । पर्णा॑ । मृ॒गस्य॑ । प॒तरोंऽइ॒व । आ॒ऽरभे॑ । उ॒त् । अ॒श्विनौ॑ । ऊ॒ह॒थुः ।  
श्रोम॑ताय । कं ॥ ७ ॥ तत् । वां । न॒रा । ना॒स॒त्यौ । अ॒न्तु । स्या॒त् । यत् । वां ।  
मा॒ना॑सः । उ॒चथं॑ । अ॒वो॒चन् । अ॒स्मात् । अ॒द्य । सद॑सः । सो॒म्यात् । आ । वि॒द्यामं॑ ।  
इ॒पं । वृ॒जनं॑ । जी॒रदा॑न्तुं ॥ ८ ॥ २८ ॥

तं । यु॑ञ्जाथां । मन॑सः । यः । जवी॑यान् । त्रि॒वन्धुरः॑ । वृ॒षणा॑ । यः ।  
त्रि॑च॒क्रः । येन॑ । उप॑ऽया॒थः । सु॒कृतः॑ । दुरो॒णं । त्रि॒धातु॑ना । प॒तथः॑ । विः । न ।  
पर्णेः॑ ॥ १ ॥ सु॒वृ॒द्रत् । रथः॑ । वर्त॑ते । यन् । न॒भि । क्षां॑ । यन् । तिष्ठ॑थः । क्र॒तुम॑न्ता ।  
अ॒न्तु । पृ॒क्षे । अपु॑र्वः । व॒पु॒ष्या । स॑च॒तां । इ॒यं । गीः॑ । दि॒वः । दु॒द्वि॒त्रा । उप॑सा॒ ।  
स॒चेथे॑ इति ॥ २ ॥



अष्ट० २ अध्या० ४ व० २९ ] ऋग्वेदः [ माह० १ अनु० २४ सु० १८ ]

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुं व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।  
येन नरा नासत्येष्वध्वै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥  
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षान्मा परिं वर्क्तमुत मातिं धक्तम् ।  
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्त्राविमे वां निधया मधूनाम् ॥ ४ ॥  
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्त्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।  
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योपं यातम् ॥ ५ ॥  
अतारिष्म तमंसस्पारमस्य प्रतिं वां स्तोमो अश्विनावधायि ।  
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ २९ ॥ ४ ॥

आ । तिष्ठतं । सुवृतं । यः । रथः । वां । अनुं । व्रतानिं । वर्तते । हविष्मान् ।  
येनं । नरा । नासत्या । इष्वध्वै । वर्तिः । याथः । तनयाय । त्मने । च ॥ ३ ॥  
मा । वां । वृकः । मा । वृकीः । आ । दधर्षान् । मा । परिं । वर्क्तम् । उत । मा ।  
अतिं । धक्तम् । अयं । वां । भागः । निहितः । इयं । गीः । दस्त्रां । इमे । वा ।  
निधयः । मधूनां ॥ ४ ॥ युवां । गोतमः । पुरुमीळ्हः । अत्रिः । दस्त्रां । हवते ।  
अवसे । हविष्मान् । दिशं । न । दिष्टां । ऋजूयाऽव । यन्ता । आ । मे । हवं ।  
नासत्या । उपं । यातं ॥ ५ ॥ अतारिष्म । तमंसः । पारं । अस्य । प्रतिं । वा ।  
स्तोमः । अश्विनौ । अघायि । आ । इह । यातं । पथिभिः । देवयानैः । विद्यामे ।  
इपं । वृजनं । जीरदानुं ॥ ६ ॥ २९ ॥

इति द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अष्ट० १ । अध्या० १ । वर्ग १,२ ]



[ मण्ड० १ । अनु० १ । सूक्त १ ]

प्रथम अष्टक ।

प्रथम मण्डल ।

प्रथम अध्याय ]

# ॥ ऋग्वेद ॥

[ प्रथम अनुवाक ]

॥ १ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषि ॥ अग्नि देवता ॥

अग्नि यज्ञ का अग्रणी है । यज्ञ का प्रमुख देव भी वही है । यज्ञ के हविर्भाग को उन देवताओं को पहुंचानेवाला सन्माननीय आचार्य भी वही है । उनके पास असंख्य रत्नों की अमूल्य निधि है । इस लिये ऐसे अग्निदेव को मैं भक्तिपुर.सर स्तवन करता हूं । १

पूर्व कालीन ऋषि प्रेम से इन अग्नि की स्तुति करते थे । और अर्वाचीन ऋषि भी उनके स्तवन को सर्वधैव योग्य समझते हैं । हमारे यज्ञ में वह समस्त देवताओं को ले आते हैं । २

इन्हीं अग्नि के कारण भक्तों को वैभव प्राप्त होता है । और वह वैभव भी कैसा, कि जो दिन प्रति दिन वृद्धिगत होता जाता है । वीरश्रेष्ठ पुरुषों को ही जो जयश्री प्राप्त हो सकती है वही जयश्री अग्नि की कृपा से पूजकों को प्राप्त होती है । ३

हे अग्निदेव, जिस यज्ञ पर चारों ओर आपकी दृष्टि रहती है उसी यज्ञ को सब देव ग्रहण करते हैं । ४

सब देवों को उनके हविर्भाग अग्निद्वारा ही प्राप्त होते हैं । बुद्धिशाली पण्डितों को ज्ञानसामर्थ्य उन्हींसे प्राप्त होता है । उनके दिये हुए वर नि.संशय सफल होते ही हैं । कोई भक्त चाहे कितने ही स्थानों पर उनसे प्रार्थना करे, उसकी प्रार्थना उनके कानों तक नहीं पहुंचे, यह असंभव है । ऐसे अग्नि देवसमुदाय के साथ यहां पधारें हुए हैं । ५ (१)

हे अग्निदेव, हे अगिरस्, अपने उपासकों को आप जो मङ्गल आशीर्वचन देंगे, वह अवश्य ही सत्य होगा । इसमें तनिक भी शङ्का नहीं । ६

हे अग्निदेव, नित्य, रात और दिन, अन्तःकरण से आपकी वंदना करता हुआ मैं आपके चरणों का आश्रय करता हूँ ।

७

क्यों कि प्रत्येक पुण्ययज्ञ मे आप विराजमान होते है। सब विधियो का रक्षण करने वाले आप ही है। आपका तेज अत्यंत देदीयमान है। आप यज्ञ मे जब स्थित होते है तभी आपको असीम आनन्द प्राप्त होता है।

८

हे अग्निदेव, हम आपके वच्चे है। हमारा लाड प्यार आप उत्तम रीति से पिता समान कीजिये। हमारे पास से दूर मत हो। इसी मे हमारा मङ्गल है। ९ (२)

## सूक्त २

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, १-३ वायु, ४-६ इंद्रवायु, ७-९ मित्रारुण ॥

हे दर्शनीय वायुदेव, आप आइये। ये सोमरस हमने आप ही के लिये तय्यार करके रखे है। इन का सेवन कीजिये और हमारी प्रार्थना सुनिये। १

यागकाल के उत्तम ज्ञानी और स्तोत्रप्रबंध करनेवाले विद्वान् सोमरस सिद्ध करके आपका महत्व सुंदर सुंदर स्तोत्रोद्वारा गाते है। २

आपका शत्रु विश्वसंचारी है। उसके सुनने से ही हमारी सब कामनाएँ परिपूर्ण हो जाती है। आपकी सोमपान की इच्छा होते ही आपका शत्रु आपके भक्तों के पास पहुँच जाता है। ३

हे इंद्रवायु, यहां सोमरस सिद्ध करके रखे हुए है। हमारे लिये वरप्रसाद आइये। इन सोमरसों की भी ऐसी इच्छा है कि आप उनका सेवन करे। ४

हे वायुदेव, वेगसामर्थ्य आपका और इन्द्र का वैभव है। आप दोनों ही शत्रुता-पूर्वक पधारिये। क्यों कि आप जानते ही है कि सोमरसों की कैसी रुचि है। ५ (३)

हे वीरश्रेष्ठ, इन सोमरसों को जिनको मैंने भक्तिपूर्वक तय्यार किया है, पान करनेके लिये आप और इन्द्र दोनों ही पधारिये। ६

पवित्र कार्यों मे जिनका सामर्थ्य का आधार है, ऐसे मित्र की मैं निमंत्रण करता हूँ। दुष्टों को नष्ट करनेवाले जो वरुण है उनको भी मैं भक्तिपूर्वक बुलाता हूँ। उन दोनों की इच्छा से ही पृथ्वी पर पर्जन्यवृष्टि होती है। ७

विश्वके नियमों का पालन मित्र और वरुण के कारण ही होता है। और वे स्वयं भी उन नियमों के पालन करनेको श्रेष्ठ मानते हैं। वे अपनी सामर्थ्य को भी धर्मनीति से काम में लाते हैं।

सर्वोपकारी और सर्वव्यापी मित्र और वरुण की बुद्धिसंपन्नता अपूर्व है। उनका बल कृतिरूपसे प्रगट होता है।

### सूक्त ३

मवुच्छन्ना ऋषि ॥ देवता, १-३ अश्वी, ४-६ इन्द्र, ७-९ विश्वेदेव, १०-१२ सोमस्वती ॥

हे अश्विन, दानकर्म से आपका हाथ आर्द्र हुआ है। जगत् में जिसको शुभ कहते हैं उसके स्वामी आपही हैं। असंख्य भक्तों को आपही का आधार है। हमारे हवी को कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये।

हे अश्विन, आपके अनेक अद्भुत काम हमको मालूम हैं। आपका शौर्य जगत्-प्रसिद्ध है और आपका धैर्य अप्रतिम है। हमारी स्तुति को आप कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये।

हे सत्यस्वरूप अश्विने, आप क्लेशनिवारक कहकर प्रसिद्ध हैं। आप भीषण पराक्रम करनेवाले हैं। आप यहां पधारिये। क्यों कि यह देखिये, हमने दर्भ के अग्र वगैरह निकाल कर और स्वादिष्ट पदार्थ मिश्रण करके, सोमरसों को तय्यार कर रखा है।

हे इन्द्र, आपकी कांति अलौकिक है। यहां आइये। ये सोमरस हमने आपके वास्ते उड़लित्थों से निचोडकर रखे हैं। ये सदा ही शुद्ध हैं।

हे इन्द्र, बड़े बड़े विद्वानों ने आपकी स्तुति की है और मैं भी आपको भक्तिपूर्वक बुलाता हूँ। इस लिये मेरी प्रार्थना स्वीकार करनेके वास्ते आप यहां आइये। मैं आपही अर्चना करनेवाला हूँ और ये सोमरस मैंने सिद्ध करके रखे हुए हैं।

पीतवर्ण के अश्व पर आरूढ होनेवाले हे इन्द्रदेव, हमारे स्तवनको अङ्गिकार करनेके लिये आप यहा शीघ्र पधारिये और हमारे इन सोमरसों से संतुष्ट हो।

हे विश्वे देवगण, आप जगत् की रक्षा करनेवाले और अखिल प्राणिमात्र का

पोषण करनेवाले है। मैं आप को हविर्भाग अर्पण करता हूँ इसलिए आप यज्ञ  
आइये। आपकी औदार्यवृद्धि सर्व प्रभिद्ध है।

हे विश्वे देवगण, जगन् की रक्षा आप ही करते है। जैसी उत्सुकतासे, गौण  
सायंकाल को घर की ओर दौड़ती है, वैसी ही उत्सुकता से आप हमारा सोम ग्रहण  
करनेके लिये यहां आइये।

सब के चिन्ता रखनेवाले विश्वदेवों ने हमारे हवीको स्वीकार किया है। उनकी  
माया अतर्क्य है। वे किसीका द्रोह नहीं करते, और उनका अहित करनेकी सामर्थ्य  
भी किसी में नहीं है।

जगन् को पावन करनेवाली सरस्वती हमारे यज्ञ के हविर्भाग की इच्छा प्रेमसे इंद्र  
का वृद्धिसामर्थ्य भी अपार है।

सत्य भाषण में माधुर्य लानेवाली यही है, और उत्तम विचारों को उत्पन्न करने-  
वाली भी यही है। यही सरस्वती हमारे यज्ञ को स्वीकार करती है।

वह अपने प्रकाश से ज्ञान के महासागर की स्पष्ट कल्पना हमको कर देती है।  
इस संसार में जहां जहां वृद्धि पाई जाती है वहां साम्राज्य करनेवाली देवी भी  
यही है।

## अनुवाक २.

### सूक्त ४

मवुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, इंद्र ॥

उत्तम प्रकार के अन्न अर्पण करनेसे जैसे गौ प्रसन्न होकर भरपूर दूध देनेको  
तय्यार होती है उसी तरह आप हमसे भी प्रसन्न हो, इस लिये हम प्रत्यही आपके  
हवि अर्पण करते हैं। यह सुंदर विश्व आप ही ने उत्पन्न किया है।

इन हमारे सोमरसों के हवि ग्रहण करनेको आप यहां आइये। आपको सोम  
रस बहुत प्रिय है, इस लिये हमारे इस सोमरस को चाखिये। आपका वैभव अपार है  
आपके प्रसन्न होनेसे गोधनादि गेश्वर्य सहज ही प्राप्त होता है।

आपका अन्त करण तो दयाशालि है ही, पर अपने अन्त.करणके अतर्भाग  
की भी हमको पहचान होने शीजिये। हमको अपनेमें दूर मत कीजिये। आप  
यहां पधारिये।

इन्द्र बुद्धिशाली, अजेय, और प्रज्ञावान है, तुम्हको अपने अत्यंत प्रिय से प्रिय मित्र से भी अधिक है, उनके पास जा कर जो मागना हो सो मांग । ४

इंद्र पर श्रद्धा रखने से कल्याण के इतर मार्ग तुम्हारे लिये बंद हो जायेंगे ऐसा हमारे निदक चाहे तो भले ही कहे, ५ (७)

अथवा आपके भक्त हमारे उपर ऐसे उद्गार ही निकालें कि आपकी भक्ति के कारण हम बड़े भाग्यवान् हैं, परंतु हे अघटित कृत्य करनेवाले इंद्रदेव, हमारा निश्चय तो यही है कि हम आपके सौख्यमय आश्रय के नचि रहेंगे । ६

सर्वव्यापी इंद्र को सोमरस अर्पण करो । सोमरसपान शरीरके सब अङ्गो मे नयी स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाला है । सोमरस ही यज्ञ की शोभा है । शूरो को पूरा संतोष इसी से होता है । इसी के कारण शरीर मे चैतन्य उत्पन्न होता है । हमारे परम प्रिय इन्द्र भी इसी से आनंदित होते हैं । ७

इन्ही सोमरसो को पान करके, हे महापराक्रमी इंद्रदेव, आप शत्रुओं को नष्ट करने वाले हुए, और शूरत्व के कृत्यों मे आप ने शूरो की रक्षा की । ८

हे महापराक्रमी इंद्रदेव, शौर्यके कामो मे आप अपना पराक्रम दिखाते हैं । वैभव प्राप्ति की इच्छा से हम आपके भय का वर्णन करते हैं । ९

जो संपत्ति का स्वामी है, जिसका महत्व अपार है, जो सहज ही संकट मे से पार कर देता है, और जो सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तो का परम सखा है, ऐसे इंद्र का यशोगान करो । १० (८)

## सूक्त ५

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता इन्द्र ॥

स्तोत्र गाने मे कुशल मित्रो, यहा आओ, बैठो, और इंद्र के लिये गान करो । १  
निचोडकर सोमरस को तय्यार करने के बाद तुम इंद्र का पाचारण करो । यह इंद्रदेव भेद्यो के शिरोमणि और स्पृहणीय संपत्ती के स्वामी है । २

आपसे हमको वैभव प्राप्त हो । हमारे उत्कृष्ट लाभों में और हमारे सन्निहारे में आप का वाम हो । आप अपने पूरे सामर्थ्य से हमारे पास आइये ।

जिन के मुमज्जित घोंडों का भी शत्रु सामना नहीं कर सकते ऐसे इंद्र ही महिमा गाओ ।

अभी अभी जिनका निचोड़ कर रखा है और जो पवित्र है, जिनमें वही मिलित किया हुआ है, ऐसे सोमरस, इस इच्छा से कि इंद्र उनको चखे, सोमप्रिय इंद्र के पाम जा रहे हैं ।

५ (६)

हे पराक्रमी इंद्रदेव, जगत् पर प्रभुत्व रखने की इच्छा में आप सोमपात करने के लिये एकदम प्रगल्भ रूप से प्रगट हुए ।

स्तुति से आनंदित होने वाले हे इंद्रदेव, शरीर के सब अङ्गों को प्रमोदित करने वाले ये सोमरस आपके मुग्ध में प्रवेश करे, और आपको आनंद दे । आप जान-मंडित हैं ।

हे प्रज्ञानशाली इंद्र, स्तुति में आपके महत्व का बखाना हुआ, स्वयं तो मैं आप की महिमा सर्वत्र विदित हुई । हमारे स्तोत्रों से आपकी श्रेष्ठता बढ़े ।

हे अखण्ड रक्षण करने वाले इंद्र, हमको एकही ऐसी सामर्थ्य दीजिये, जिस की बराबरी अन्य हजारों सामर्थ्यों भी न कर सके, और जिससे यावन पराक्रमी के काम सहज हो सके ।

हे सर्वमृत्यु इंद्रदेव, मर्त्यजन में कोई भी हमारे शरीर को हानि पहुंचाने को समर्थ न हो । सर्वत्र आपकी सत्ता होने से एकाएक हमारा सब किमी के हाथ में न हो ।

१० (१०)

### मृक्त ६

मनुचन्द्रा कृषि । देवता १-३ इंद्र, ४ ३ ८ ४ मन्त । २ मन्त आप ३३ १० ३३ १

ये तेजोगोल आकाश में चमकते हैं । ये परिचायकों की भांति हम न जानते हैं ।

ता के यात्रा पर निकलने की तय्यारी करते हैं । यह मध्यवर्ती तेज सामर्थ्यवान् उज्वल और सर्वव्यापी है । १

ये परिचारकगण उसके रथ के दोनों तरफ घोड़े जोड़ते हैं । ये घोड़े इतने सुंदर हैं कि देखतेही उनको प्राप्त करने की अभिलाषा होती है । वे कुम्भैत हैं, और इस पराक्रमी देवता की सवारी जब ले जाते हैं तब उन के अंगों का तेज दृष्टिगोचर होता है । २

अहा ! अचेतन को चेतन कर के और आकारहीन को साकार बनाकर तुम उपा के साथ साथ प्रगट हुए । ३

यज्ञकर्म के सर्व श्रेष्ठ नाम को धारण कर सृष्टिक्रम के अनुसार उनका गर्भ-वास हुआ । ४

हे इंद्रदेव, दुर्भेद्य पर्वत भेदनेवाले अशनि नामक शस्त्रद्वारा गुहा फोड़ कर आपने प्रभारूपी धेनुओं की खोज लगाई । ५ (११)

अभीष्ट वैभव देनेवाले इंद्र के लिये भक्तोंने बहुत से स्तोत्र कहे । इंद्र का महत्व और यश सभी को मालूम है । ६

निर्भीक इंद्रके साथ जब आप संचार करते दिखते हैं उस समय दोनों का तेज समान और दोनों ही आनंदित मालूम होते हैं । ७

इंद्र के अनुचर सब को प्रिय और अति तेजस्वी होते हैं । उन में हूंढने से भी कोई अवगुण नहीं मिल सकता । इन से विभूषित देवता के प्रीत्यर्थ हमारे यज्ञ में उच्च घोष से अर्चन हो रहा है । ८

इस लिये हे सर्वव्यापी देव, दुलोक से अथवा प्रकाशमान अंतरिक्ष से आप यहा आइये । इस यज्ञ में मैं आपका दास आपके स्तोत्र गा गा कर अपनी वाणी को अलंकृत करता हूँ । ९

इन्द्रदर्शन ही हमारा अभीष्ट है । वह दिव्यलोक में, नू लोक में, अथवा महान् अंतरिक्ष में, चाहे जहा हो हम को प्राप्त हो । १० (१२)



## सूक्त ७

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ।।

गाथा गाने वाले ऋषियों ने अपनी अनेक गाथाओं में इन्द्र की स्तुति की । अनेक पाठक विद्वानों ने भी अर्चन किया । ये इन्द्र की स्तुति अनेक स्तोत्रों द्वारा हो चुकी है ।

पीत वर्ण अश्वों के स्वामी केवल इन्द्र है । यह वज्रधारी इन्द्र सब अविनाशी सपत्ति के प्रभु है ।

सब को दिखे, इस रीति से इन्द्र ने आकाश में सूर्य की स्थापना की । अपने वज्र से ( मेघरूपी ) पर्वत को उस ने हिला दिया ।

हे इन्द्र, आप उग्ररूप हैं, इस लिये जहां साहस के कृत्य हो रहे हैं और जहां वीर युद्ध कर रहे हैं ऐसे स्थानों में अपने उग्र साधनों में हमारी रक्षा कीजिये ।

शत्रुओं के आनेपर हम इन्द्र को पुकारते हैं । बड़े बड़े युद्धों और छोटी छोटी लड़ाईयों में भी हम इन्द्रकी दोहाई देते हैं, क्योंकि वही वज्रधारी हमारी पूर्ण सहाय्य करने वाला है ।

वृष्टि के योग से सदा औदार्य प्रगट करने वाले हे इन्द्र, आप कुछ भी मंकोच न करके मेघपटल को दूर कर दीजिये ।

आपका पराक्रम वर्णन करनेवाली जितनी प्रार्थनाएँ हैं उनमें भी हे इन्द्र, आपके योग्य कोई स्तुति मुझ को नहीं मिलती ।

शानदार गतिवाला वृषभ जैसे वृषभसमुदाय का मार्ग प्रदर्शक बनता है, उसी प्रकार इस जगत् के स्वामी इन्द्र सर्व मानवों को सतुष्ट कर के उन को आगे बढ़ने को प्रवृत्त करते हैं ।

संपूर्ण जगत्, सर्व सपत्ति और पांचों लोक इन पर एक मात्र इन्द्रका स्वामित्व है ।

संसार के हितार्थ हम प्रत्येक स्थान में तुम्हारे प्रिय इन्द्र का पात्रागण करते हैं । वह इन्द्र केवल हमारा पक्षपाती हो ।

## अनुवाक ३.

## सूक्त ८

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

हे इन्द्र, हमारा संरक्षण करके हमको ऐसा वैभव दीजिये, कि जिससे हमको सतोप हो, जिसके द्वारा हमको प्रभुत्व प्राप्त हो, जो अविनाशी हो और जो संसार में उत्कृष्ट हो । १

वह वैभव ऐसा हो, कि जब आप अश्वारूढ होकर हमारा संरक्षण करें तो केवल मुष्टिप्रहार से हम अपने शत्रुओं का नाश कर सकें । २

आपके संरक्षण में जब हम घन भी हाथ में लें, तो वह वज्र बन जाता है, और हम युद्धस्थल में अपने शत्रुओं को जीत सकते हैं । ३

आपकी सहायता होनेसे हम अपने शत्रुओं को, चाहे वे कितने ही सग्राम-निपुण हों, शूर अन्ववेत्ताओं की मदद से परास्त कर सकते हैं । ४

यह वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ है, वल्कि इससे भी अधिक है । इन का महत्व ऐसे ही चिरकाल तक बना रहे । उनका बल आकाश की तरह अनंत है । ५ (१५)

शूर पुरुष युद्धस्थल में जो कुछ प्राप्त करते हैं, बालवचो से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, अथवा, एकाग्र बुद्धि से स्तवन करनेसे विद्वान् लोग जो कुछ संपादन करते हैं, ६

या सोमरस के पान से भक्तों का जो उदर सागर की भांति भर जाता है, अथवा जिस कठ में विशाल नदी की भांति सोमरस प्रवाहित होता है, ७

अष्ट० १। अध्या० १। व० १६.१७ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १। अनु० ३। सू० २

ये मत्र इन्द्र के आशीर्वचन के प्रभाव से होता है। आपके उनम आशीर्वचन पक्षफलयुक्त वृक्ष की भांति आपके दासों को फल देने है, और गोनादि संपत्ति और इतर अनेक सुख भी प्रदान करते है।

हे इन्द्र, आपकी सामर्थ्य और भक्तों के रक्षण करनेके मार्ग हमारे समान दासों के लिये सदा ही अनुकूल है।

इन्द्र के ये स्पृहणीय और प्रशमनीय स्तोत्र इन्द्र को सोमपान के विधि प्रवृत्त करे।

## सूक्त ०

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

हे इन्द्र आइये, और जहा जहां हम सोमयाग करते है वहा हमारे हवि को मान-पूर्वक स्वीकार कीजिये। अपनी सामर्थ्य से आप हमारे रक्षक हुए हैं

इन विश्वकर्ता आनंदी इन्द्र को यह उत्साह वर्षक और आनन्ददायक सोमपान तय्यार होते ही अर्पण करो।

हे दिव्यमुकुटधारी इन्द्र, हे सर्वद्रष्टा देव, इस प्रमोददायक स्तवन मे आप आनंदित हो, और जहा हम हवि अर्पण करते हो वहा आपका वास हो

हे इन्द्र, जब हम आपके लिये स्तवनोक्तियों का उच्चारण करने लगते है तो वे इससे पहिले ही अघोर होकर आप के पास चली जाती है। आप उनके नाश और उनकी कामनाएं पूर्ण करनेवाले स्वामी है।

अष्ट० १। अध्या० १। व० १७१८ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १। अनु० ३। सू० ९

हे इन्द्र हमको अप्रतिभ और स्पृहणीय धन प्रदान कीजिये । सचमुच आपके पास ही अत्यन्त उत्कृष्ट और विपुल धन है । ५ (१७)

हे सहस्रक्रांति इन्द्र हमको ऐसा वैभव दीजिये कि जिससे हम धनार्जन करनेको प्रवृत्त हो । इसके लिये हमारे हाथ से मन पूर्वक प्रयत्न हो, और उन्ने न्न को पसा मिले । ६

हे इन्द्र, गोधनादि वैभव हमारे पास बहुत है, हमारी सामर्थ्य बड़ी है, और हम दीर्घायुपी है, ऐसी हमारी कीर्ति का सर्वत्र प्रसार हो, और वह कभी खण्डित न हो । ७

हे इन्द्र हमारी कीर्ति बढा कर हमको अपार वैभव दीजिये, और हमको रथ प्राप्त हो ऐसी कृपा हम पर कीजिये । ८

अनेक प्रकार की स्तुतियों से अपने सरक्षणार्थ आओ, हम इन्द्रका पाचारण करे । वह इस वैभव के राजा है । उन्हीके विषय मे छंदोबद्ध कविताएं की जाती है । वह बुलाने के साथ ही आ उपस्थित होते है । ९

प्रत्येक सोमयज्ञ के स्थान मे वास करनेवाले उन श्रेष्ठ इन्द्रदेव की आराधना उनका यह भक्त उरुचस्वर से और मनकी तृप्ति होने तक करता है । १० (१८)

## सूक्त १०

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता इन्द्र ॥

गायत्री वृत्त द्वारा उपासक गण आपका यशोगान करते हैं और अर्चि नामक स्तोत्र रचनेवाले आपकी अर्चा अर्कों में करते हैं । हे बलशाली इन्द्र, जैसे वज्रा उनी खड़ी की जाती है वैसे ही विद्वानों ने आपको श्रेष्ठता दी है ।

इन्द्र के भक्तने जब एक पर्वत शिखर पर से दूसरे पर्वत शिखर पर जाकर इन्द्र के अनाथ कृत्यों को देखा तब पर्जन्याधिपति इन्द्र ने उरोके मन के भाव को समझ लिया, और अपने दल बल सहित वह वहां आने को तैयार हुए ।

हे इन्द्र, आपके अश्व वृष्टि उत्पन्न करनेवाले हैं । उनके अगाल लम्बे हैं और उनके शरीर के कारण उनके बन्धन तद्ग हो रहे हैं । हे सोमप्रिय देव, ऐसे घोड़ों को अपने रथ में जोड़िये और जहामे हमारी प्रार्थना सुनाई दे, हमारे उतने निकट आ जाइये ।

हे सम्पत्तिरूप इन्द्र, यहा आइये । हमारी प्रार्थना की वढ़ाई कीजिये, उसको उनमें बनाइये, उसके लिये प्रशंमनीय उद्गार निकाल कर उसका स्वीकार कीजिये और हमारे यज्ञ को कामप्रद बनाइये ।

जब अथे पूर्ण करनेवाले इन्द्र के लिये उत्कृष्ट स्तोत्र को गाना चाहिये । ऐसा करनेसे हमारे पुत्रपौत्रों पर और हमारे इष्टमित्रों पर इन्द्र अपनी कृपादीप्त शीमा ।

इन्हीके प्रेम की वाञ्छना करके हम उनके पास जाते हैं । सम्पत्ति के लिये

भी हम उन्हींकी शरण में जाते हैं। शौर्ध्र प्राप्ति की इच्छा से भी हम उन्हींका आश्रय लेते हैं। इस लिये वही इन्द्र हमें वैभव देकर हमको ऋतृत्व शक्ति प्रदान करे। ६ (१६)

हे इन्द्र आपकी कृपा से प्राप्त होनेवाली कीर्ति का ही सर्वत्र प्रसार होता है। वही सहज में प्राप्त हो सकती है। हे वज्रधर देव, धेनुसमुदाय को मुक्त कीजिये। यह कृपा हम पर कीजिये। ७

जब आपको क्रोध आता है तब भूलोक, और सुलोक दोनों ही आपके सामने आने का सहस्र नहीं कर सकते। स्वर्ग के जल पर स्वाभित्व स्थापन कर के धेनुओं को हमारे पास भेज दीजिये। ८

हे इन्द्र, आपके कान चहुँओर लगे रहते हैं। मेरी प्रार्थना सुनिये और स्तुति स्वीकार कीजिये। आप मेरे मित्र हैं। आप अतःकरण में मेरा यह स्तवन ग्व्य लीजिये। ९

कामना परिपूर्ण करनेवाले देवताओं में आप सब से श्रेष्ठ हैं, यह हम जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि आप ही प्रार्थना शीघ्र सुना करते हैं। पर्जन्यवृष्टि पर आपका अधिकार होने से हम आपकी कृपाकी याचना करते हैं। उस कृपा की योग्यता दूसरों से सहस्रगुणा अधिक है। १०

हे इन्द्र, हे कौशिक, सुप्रसन्न अन्तःकरण से हमारा सोमरस शीघ्र स्वीकार कीजिये। हमारी आयु की वृद्धि कीजिये और हमको दूसरों की अपेक्षा सहस्रगुणा श्रेष्ठ क्षुपित्त प्रेषण कीजिये। ११

हे सर्वस्तुत्य इन्द्र, ये हमारा स्तोत्र सर्वाश में आप ही का स्तवन करे, ये स्वीकार किये जानके योग्य हो, आपके हाथ से इतका आवरण हो और आपकी अनन्त आयु ही भाति ये स्तोत्र भी चिरकाल तक जीवित रहे। १० (२०)

जेता साधुसङ्घस्य तपि । देवता इव ।

समुद्र को भी व्याप्त करनेवाले वह ही यज्ञ विश्वसे प्रस्थित स्तुति करने के लिये द्विगुण किया है । उद्ग स्वयं के राजा है । सब सामर्थ्यों के श्रेष्ठ प्रजापति है । सब महारथी बीरो से भी वह अत्यन्त श्रेष्ठ है ।

हे सामर्थ्याधिकारी उद्ग, आप हमारे रक्षणकर्ता हैं । उन पराजितों का सामर्थ्य पर भरोसा होनेसे भयका नाम भी नहीं रहता । आप शत्रुओं के विना हैं । आपका पराजय करनेके लिये कौन समर्थ है ? तब आपका पुत्र एवं वारस करने है ।

उद्ग के पास गोवनादि भस्पर्ति अर्पाण है । भक्तों को उध पराधीनता का दार्य मदा ही वैभव अर्पण करता रहता है, तो भी उगके साकृन् अर्पाण पराधीनता शक्ति का कभी नदान नहीं होता ।

शत्रुओं के लुहट नगरों का उच्छेदक यही उद्ग है । उनकी रक्षणारथता मनावनी रहती है । वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है । यह आरम्भ में ही पराधीनता मनावनी हुण । सर्व कर्मों से इनका आवार है । वञ्च उनका शत्रु है उन उद्ग की स्तुति करने को नहीं है ।

हे वञ्चवर उद्ग गौओं का समुद्र य वृद्धने हन्तगत नग विना या प्राम्भ कोट तोड दिया । तत्र देवताओं को अत्यन्त पीड रुड, व, रे वि आश्रम से आगे ।

हे शूर इंद्र, आपके ऋद्धाच्य के इन कामों पर मोहित होकर आपकी स्तुति गाते, हुआ मैं आपके पास आया, नयो कि आप कृपासिन्धु है । इतर स्तोत्रकर्ता-गणों जों पास खड़े थे उन्होंने भी आपका वह पराक्रम अवलोकन किया । ६

शुष्म इतना हिकमत है तो भी आपने युद्धचमत्कार से उसको परास्त किया वृद्धिमान पुरुषोंने वह भी अवलोकन किया । इस लिये उनकी श्रवण करने योग्य स्तुति का तपस चारु हीजिये । ७

अपने सामर्थ्य से जगत पर सत्ता चलानेवाले इन इंद्र की आराधना अनेक स्तुतियों के योग से हुई । इंद्र के उपकारकृत्य सहनों है, बल्कि उनकी संख्या इससे भी अधिक है । ८ ( २१ )

सूक्त १०

## अनुवाक ४.

सर्व मेधातिथि ऋषि । देवता अग्नि ।

आप देवताओं के दूत है । अग्नि के हाथ से देवताओं को हवि पहुंचती है । अग्नि सवेज्ञ है । अग्नि ही हमारे इस यज्ञ के सन्धे ज्ञानसामर्थ्य है । इस लिये हम उनके आगमनकी इच्छा करते हैं । १

जिन देवता को पुन पुन बुलानेकी आवश्यकता पडती है वह यह अग्नि ही है । नयो कि यह अश्विल मानवों के राजा है । यह सर्व देवताओं को हवि पहुंचाते है । यह गव्य के प्रिय है २

हे अग्नि यह आपको मालूम ही है कि सोमरस में से दर्भ के अग्र इत्यादिक निकाल कर सब सिद्धता कर रखी है । इस लिये सब देवताओं को यहां ले आइये । आप हवि पहुंचानेवाले है इन लिये आप हमारे अत्यन्त पूज्य है । ३

हे अग्नि, जब आप दूत होकर देवताओं के पास जावे उस समय हमारे हवि के विषय में उस के मनो में इच्छा उत्पन्न करके उन को जागृत कीजिये । इस दर्भोत्पन्न पर देवताओं के साथ आप निराजमान हो । ४



घृत की हवित्रों में उज्ज्वल होनेवाले हैं अग्निदेव, हमारे शत्रुओं का नाश कीजिये । उन्होंने राक्षसों से मेल किया हुआ है । ५

अग्नि जहाँ एक बार प्रदीप्त हुई कि वह अपने मामाभ्य में ही बुद्धिगत होती जाती है । अग्नि देव की बुद्धिमत्ता अपूर्व है । गृहों के सन्ने अधिपति गही है । उन की तरुणावस्था अबाधित है । उनके द्वारा सर्व देवताओं को हवि पहुंचती है । उनका मुख ज्वालामय है । ६ (२०)

यज्ञ में अग्नि की स्तुति किये जाओ । अग्नि परम ज्ञाता है । सगही उनका नियम है । सर्व रोगों का उच्चाटन अग्निदेव करते हैं । ७

हे अग्निदेव, जो यागकर्त्ता आपको देवताओं का दूत मान कर आपका पजन करता है उस के रक्षण की चिन्ता कीजिये । ८

हे सबको पावन करनेवाले अग्निदेव, जो यागकर्त्ता देवताओं को मन्तुष्ट करने के लिये आपकी सेवा करता है उसको आप मुख में रखिये । ९

हे सबको पावन करनेवाले दीप्रिमान अग्निदेव, हमारे यज्ञ और हवि के निष्ठ देवताओं को ले आइये । १०

हे अग्निदेव, आप ऐसे ही सर्व विख्यात हैं, इस लिये हमने नवीन स्तोत्र रच कर आपकी स्तुति की है । इस लिये हमको संपत्ति प्रदान कीजिये और आपके प्रसाद में हमको वीर्यशाली मति भी प्राप्त हो । ११

हे अग्निदेव, आपका तेज अत्यन्त उज्ज्वल है । आप हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये और जो हवि हम सब देवताओं को अर्पण करते हैं, उनका स्वीकार कीजिये । १२ (२०)

## सूक्त १३

१ समिद्ध अग्नि । २ तनूनपान् । ३ नराशन । ४ इल । ५ वहि । ६ द्वाररूप देवताए ।  
७ उषा ओर नक्त । ८ दो होता । ९ सरस्वती इत्या ओर भारति । १० त्वष्टा । ११ वनस्पति ।  
१२ स्वाहा ॥

हे अग्निदेव, हमने अपने यज्ञ में हवि सिद्ध करके रखी है । इसको स्वीकार करनेके लिये आप प्रदीप्त होकर सब देवताओं को ले आइये । हे पुण्यकृत् देव, हे हवि-  
दर्ता, हमारा यज्ञ पूर्ण कीजिये । १

हे प्रज्ञानशाली अग्निदेव, आप स्वयंजात हैं । हमारा हवि देवताओं को प्राप्त हो, इस लिये उनको इस यज्ञमें ले आइये और हवि उनको अर्पण कीजिये । यहां सोमरस सिद्ध करके रखे हैं । २

इस यज्ञ में हम अग्निका पाचारण करते हैं । वह हमको बहुत प्रिय है । उनकी स्तुति करना योग्य है । उनकी जिह्वा में माधुर्य है । हवि की पूर्णता उन्हींसे होती है । ३

हे अग्निदेव, आपका स्तवन सवने किया है । आप हवि पहुंचानेवाले हैं । आप मनुष्यजाति के हितकर्ता हैं । अत्यन्त सुखदायक रथ में बैठकर आप सब देवताओं को ले आइये । ४

१. इस सूक्त को आप्री सूक्त कहते हैं ।

२. हविष्मते । ३. सुसमिद्ध । ४. होतः ॥

५. तनूनपान् । ६. वृणुहि । ७. मधुमन्तम् ॥

८. नराशंसम् । ९. मधुजिह्वम् । १०. हविष्कृतम् ॥

११. शंडितः । १२. मनुर्हितः । १३. सुखतमे ॥

हे सुज ऋत्विज, जिनके घृष्टभाग चमकते हैं ऐसे दर्भासनो को पाम पाम विद्याओं, उन्हीपर हमको अविनाशी रूप का दर्शन होगा । १

यज्ञ की सिद्धि के लिये आज यज्ञ मंडप के पवित्र द्वार शीघ्र खोलो । यहाँ याग विधियोंका उत्तम परिपालन होता है । यह यज्ञमंडप इतना विशाल है कि उसमें प्रवेश करनेवालो को तनिक भी अड़चन नहीं होती । ३ (२५)

नक्त और उपम इन दोनों स्वरूपवान् देवताओं का मैं इस यज्ञ में निम्नान्न करता हूँ । उनके बैठनेके लिये यहाँ दर्भ विद्यायें<sup>६</sup> हुए हैं । ७

उन दोनों दिव्य प्रजायुक्त और मधुरभाषो होताओं को मैं बुलाता हूँ । वे हमारा यज्ञ सिद्ध करें । ८

इला सरस्वती और मही ये तीनों सौख्यदायिनीं अमर देवियां इस दर्भ पर विराजमान हो । ९

उम सर्वदर्शी और सर्वश्रेष्ठ त्वष्ट्र देवता का हम इस यज्ञ में आमंत्रण करते हैं । उनका प्रेम केवल हम पर हो । १०

हे वनस्पतिदेव, देवताओं को हवि का दान कौजिये और यज्ञकर्ता को ज्ञानप्राप्ति कराइये । ११

यागकर्ता के घर में इन्द्र को यज्ञ अर्पण करो । इस यज्ञ में मैं सब देवताओं को आमंत्रण करता हूँ । १० (२५)

- |                  |                 |
|------------------|-----------------|
| १. स्तृणीत ।     | २. चक्षणम् ॥    |
| ३. असश्नतः ।     | ४. ऋतावृधा ॥    |
| ५. सुपेशसा ।     | ६. आसदे ॥       |
| ७. सुजिहा ।      | ८. यक्षनाम् ॥   |
| ९. मयोभुवः ।     | १०. अस्त्रियः ॥ |
| ११. विश्वरूपम् । | १२. आग्नेयम् ॥  |
| १३. सृज ।        | १४. चेतनम् ॥    |
| १५. कृणोतन ।     | १६. ह्वये ॥     |

## सूक्त १४

ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता-विश्वेदेवा ।

हे अग्निदेव, सोमपान की इच्छा से और हमारे स्तवन तथा उपासना स्वीकार करनेके लिये सब देवताओं सहित यहां पधारिये और हमारा याग सफल कीजिये । १

कण्वोने आपका आमंत्रण किया था । हे तीव्रशाली अग्निदेव, ये मतोत्र भी आपकी स्तुति गाते हैं । सब देवताओं को लेकर यहां आइये । २

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आवित्य और मरुद्गण, ३

इन सब देवताओं के लिये यह सोमरस यहां भरकर रखा हुआ है इसको चखनेसे बहुत सुख प्राप्त होता है । इससे चित्त बहुत आल्लाहित होता है । यह बड़ा मधुर है, और पात्रों के किनारे तक भरा होनेसे बाहर गिरता मालूम होता है । ४

सोमवल्ली की जडे निकाल कर सुन्दर हवि तैयार करके यह कण्व आपका पूजन करनेके लिये बैठा है । उसकी इच्छा ऐसी है कि आप उसकी रक्षा करे । ५

जो अश्व को और सब देवताओं को सोमपान के लिये ले आते हैं, जिनकी पीठ चर्मकती है और जो आपके रथ में अपनी प्रेरणा से ही जुड़ जाते हैं, ६ (२६)

१ दुवः ॥

२ अहूपत ॥

३ भ्रियन्त । ४ मत्तराः ५ चमृद्दः । ६ द्रप्साः ॥

७ वृक्तवर्हिषः । ८ अवस्यवः ॥

९ घृतपृष्ठाः । १० मनोयुजः ॥

ऐसे पुण्यकारी अश्वों की भेट उनकी महँचरियों में कराइये । इन अश्वों के कारण सब विधि यथायोग्य चलती है, इस लिये, हे मधुरभायी देव, इन अश्वों को सोमरस भी चखाइये ।

हे अग्निदेव, जिन देवताओं को यज्ञ समर्पण करना उचित है और जो देवता स्तवन करने योग्य हैं, उन सबकी जिह्वाएँ इस यज्ञ में मधुर सोमरस का आनादन करें ।

यह विद्वान् होता उप काल में जागृत होनेवाले देवताओं को सुप्रकाशित सूर्यलोक में ले आता है ।

हे अग्नि, भूतलपर जब मित्र की किरणें पड़े, उसी समय आप इन्द्र और वायु सहित पधार कर इस मधुर सोमरस का पान कीजिये ।

अग्ने, आप हव्यवाहक हैं । मनुष्यजाति के हितकर्ता भी हैं । प्रत्येक यज्ञ में आप ही विराजमान होते हैं । आप हमारा यज्ञ सिद्ध कीजिये ।

हे देव, आप अपने रक्तवर्ण और चपल घोड़ों को रथ में जोड़िये और उनके द्वारा देवताओं को यहां ले आइये ।

१. यजत्रान् । २ ऋतावृधः ॥

३ वषट्कृति ॥

४. विप्रः । ५ आर्की-सूर्यस्य रोचनात् ॥

६. धामभिः ॥

७ सीदसि । ८ यज्ञ ॥

९ अरुषीः । १० हरितः ॥

## सूक्त १५

ऋषि मेधातिथि ऋषि ॥ देवता-ऋतु । १ इन्द्र । २ मरुत । ३ त्वष्टा । ४ अग्नि । ५ इन्द्र । ६ मित्रा-  
वरुण । ७-९ द्रविणोदा । ११ अश्विन । १२ अग्नि ॥

हे इन्द्र, ऋतुओं सहित सोमपान कीजिये । ये सोमरस के उछलनेवाले विन्दु  
आपके उदर में प्रवेश करें । इनका प्राशन करनेसे आपको हर्ष होगा । आपका उदर ही  
उनके लिये योग्य स्थान है । १

हे मरुत, ऋतुओं सहित इन पाँत्रों से सोमपान कीजिये । आपके हाथ से ही  
हमारा यज्ञ पवित्र हो । दानेशूरीता के लिये आप ही बहुत प्रसिद्ध हैं । २

हे सपत्नीक नेष्टुदेव, हमारे यज्ञ की प्रशंसा कीजिये और ऋतुओं सहित  
पधारकर सोमपान कीजिये । उत्कृष्ट रत्नों की निधि आप ही के पास है । ३

हे अग्निदेव, देवताओं को यहां ले आइये और तीनेनो आसनो पर उनको यहां  
विराजित कीजिये । उनको विविधरूप से अलंकृत कीजिये और ऋतुओं सहित सोम-  
पान कीजिये । ४

हे इन्द्र, ऋतुओं के सोमपान कर लेनेके बाद आप इन सुन्दर पाँत्रों में सोमरस को  
चखिये । आपकी मित्रता चिरकाल तक टिकनेवाली है । ५

हे विधिपरिपालक मित्र वरुण, आप दोनों ऋतुओं सहित पधारकर इस यज्ञका  
अङ्गीकार करते हैं । यहां सर्व सिद्धता उत्तम रीति से की हुई है और विर्त्र डालनेके लिये  
कोई भी समर्थ नहीं है । ६ ( २८ )

१ इन्द्रवः ।	२ मत्सरासः ॥
३ पात्रात् ।	४ सुदानवः ॥
५ रत्नधा ॥	
६ सादय ।	७ भूष ॥
८ राधसः ।	९ अस्तृतम् ॥
१० आशाथे ।	११ धृतवता ॥

द्रविणोद के लिये इस यज्ञ में सोमरस निकालनेके अभिप्राय से वैभवकी उन्ना रखनेवाले ऋत्विज हाथों में प्रावा लिये बैठे हैं । इस देवताका पूजन प्रत्येक यज्ञ में करते हैं । ७

जिस वैभव का महत्व दूर दूर तक प्रसिद्ध हो ऐसा वैभव हमको यह द्रविणोद प्रदान करे । उसकी प्राप्ति के लिये हम सब देवताओं से प्रार्थना करते हैं । ८

अब नेष्टा और ऋतु के स्थान से आगे चलो । सोमरस की हवितैयार करो, त्यों कि इन द्रविणोदस को सोमरस की इच्छा हुई है । ९

हे द्रविणोदम् देव, आप अनुक्रम में चौथे हैं । हम ऋतुओं सहित आपको हवि अर्पण करते हैं । इस लिये मन पूर्वक हमको प्रसाद दीजिये । १०

हे देदीर्घ्यमान और पुण्यवन् अश्विन, यज्ञको सिद्ध करनेवाले इन ऋतुओं सहित आप मधुर सोमरस का सेवन कीजिये । ११

हे उदार देव, सच्चे गृहस्वामी आप ही हैं, इस लिये ऋतु प्रमाण में यज्ञ का धैर्युत्सव आपको मिला है । हमारी विनती का आदर करके इस यज्ञमें सब देवताओं को पहंचाइये । १२ (२४)

१ द्रविणसः ॥

२ वनामहे ॥

३ जुहोत । ४ पिपीषति ॥

५ यजामहे । ६ ददिः ॥

७ दीवशी । ८ यज्ञवाहसा ॥

९ सन्त्य । १० यज्ञनीः ।

## सूक्त १६

ऋषि-वाप्य । देवता इन्द्र ।

हे इंद्रदेव, आप वृष्टि करनेवाले हैं । आपके लिये सोमरस तैयार करके रखा है । उसके लिये आपके हरिद्वर्ण अश्व सूर्य का दर्शन करते करते आपको यहां ले आये । १

इन लौनों में इतना घी लगाया है कि टपका पड़ता है । उनका सेवन करनेके लिये मर्वा सुव्यन्नामयी से सुसज्जित रथ में बैठे हुए इन्द्र को हरिद्वर्ण अश्व लिये आते हैं । २

प्रातःकाल में हम इंद्र को बुलाते हैं । यज्ञ प्रारंभ करके हम इंद्र का पाचारण करते हैं । सोमरस का पान करानेके लिये हम इंद्र का आव्हान करते हैं । ३

देवों, इंद्र के घोड़ों की अयाल कैसी दीर्घ है । हे इंद्र, ऐसे अश्वों को जोड़कर हमारे सोमरस का पान करनेके लिये आइये । सोमरस निचोड़कर रखते ही हम आपको बुलाते हैं । ४

हम री प्रार्थना सुननेके लिये आप यहां आइये । हमारे सोमरस के स्वीकार करनेके लिये आप यहा पधारिये । प्यासे हरिर्ण की भांति उत्सुकतापूर्वक इस सोमरस को पीजिये । ५ (३०)

१ वृषणम् । २ हरयः । ३ मृचक्षसः ॥

४ धाना । ५ घृतम्बुवः ॥

६ गौर ॥



अष्ट० १ । अध्या० १ । व० ३? ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ । अनु० ४ । सू० २३

दर्भ पर रखे हुए पात्रो में सोमरस के विन्दु रखे हुए है। हे इंद्र, आप भ्रम-  
परिहार करनेके लिये इनको चखिये। ३

हमारी इस स्तुति से आप सन्तुष्ट हो। यह अति सुन्दर है। यह आपके  
अन्तःकरण में प्रवेश करे। हमारे तैयार किये हुए सोमरस को आप पीजिये। ७

जिस जिस यज्ञ में सोमरस निकालकर रखा होता है, वही यह शत्रुओं के  
संहारक इंद्र उसको चखनेके लिये जाते है। इंद्र को उसमेंही बड़ा आनन्द प्राप्त  
होता है। ८

हे सामर्थ्यवान इंद्र, हमको धेनु अश्व इत्यादि वैभव प्राप्त हो, वस यही  
हमारी इच्छा है। उसे आप परिपूर्ण कीजिये। हम एकाग्र बुद्धि से आपका स्तवन

६ (३?)

१ सहस्र ॥

२ मदाय ॥

३ स्वाध्यः ॥

ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—इन्द्र वरुण ।

जगत् पर साम्राज्य करनेवाले इन्द्र वरुण से मैं करुणा का प्रार्थी हूँ । उनकी शरण में जानेसे ही वे हमको सुखी करते हैं । १

हे इन्द्र वरुण हमारे सरीखे भाविकों के पुकारते ही आप हमारा रक्षण करनेको तैयार रहते हैं । अखिल प्राणी मंत्रके पोषणकर्ता आप ही हैं । २

हे इन्द्र वरुण, हमको इतनी सम्पत्ति दीजिये, कि हम वृत्त हो जायं । आप दोनों ही उदार देवता हमारे अत्यन्त निकट रहे यही हमारी इच्छा है । ३

सामर्थ्य लाभ करनेवाली आपकी कृपा में हम भी शरीक हैं और उत्कृष्ट कार्यक्षमता के भी हमी पात्र हैं । ४

सहस्रावधि दानकर्म करनेवालों में इन्द्र ही श्रेष्ठ हैं । जो अत्यन्त स्तुत्य हैं । उनमें वरुण ही का मान सबसे बड़ा है । इन दोनों की सामर्थ्य प्रशंसनीय है । ५ ( ३२ )

हम उनकी कृपा से सम्पत्ति प्राप्त करते हैं और अपनी पूर्ण इच्छानुसार उसे सम्रोहित करते हैं तो भी उनके पास सम्पत्ति ज्यों की त्यों भँरपूर बनी रहती है । ६

हे इन्द्र वरुण, अपूर्व सुखप्राप्ति की इच्छा से हम आपको बुलाते हैं । हमको सर्वत्र विजयशैली कीजिये । ७

१ अथ । २ ईदृशे ॥

३ गन्तारा । ४ चर्षणीनाम् ॥

५ ईप्रहे ॥

६ वाजदात्राम् । ७ युवाकु ॥

८ सहस्रदात्राम् ॥

९ नि-धीमहि । १० प्रसरेचनम् ॥

११ सु-जिग्युषः ॥

हे इन्द्र वरुण, हमारा मन अत्यन्त आनुर होकर सर्वदा आप ही का चिन्तन करता है, उस लिये आप हमारा कल्याण कीजिये ।

हे इन्द्र वरुण, आप दोनों ही के लिये मैं एक ही मुन्द्रर मृत्ति अर्पण करता हूँ । आप ही उसको उत्तेजित करते हैं । उस लिये वह आप दोनों को सर्वथा मान्य होगी ।

६ / ३३ ।

## अनुवाक ५.

### सूक्त १८.

ऋषि मेवातिथि काण्व । देवता १-३ ब्रह्मणस्पति । ४ ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, गोम । ५ ब्रह्मणस्पति, ब्रह्मणस्पति । ६-७ मरुतस्पति । ८ मरुतस्पति अथवा नराशत ॥

हे ब्रह्मणस्पति, उशिजा के पुत्र कक्षिवान ने आपको सोम अर्पण किया है । उसको आप तेजस्विता अर्पण कीजिये ।

जो वैभवशाली और व्याधियों के हरनेवाले है, जिनके पास भरे हुए ऋषय के कोप है जो जगन् का पालनपोषण करनेवाले हैं और भक्तों के लिये शीघ्रतापूर्वक आते हैं, ऐसे ब्रह्मणस्पति हम पर अनुग्रह करे ।

हे ब्रह्मणस्पति, शत्रु के शोष अथवा किसी भी मनुष्य के कष्ट से हमको काई वार्धा न पड़े । आप हमारी रक्षा कीजिये ।

१ सिषासतीषु ॥

२ सधस्तुतिम् ॥

३ सोमानम् । ४ स्वरणम् ॥

५ तुरः । ६ सिसक्तु ॥

७ शसः । ८ मा-प्रणक्तु ॥

इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम जिस दुर्बल की रक्षा करनेका अभिमान करते हैं वह वीर्यवान हो जाता है और कभी भी उसका नाश नहीं होता । ४

हे ब्रह्मणस्पति, इन्द्र और दक्षिणा से मिलकर उस गरीब की रक्षा पातको मे कीजिये । ५ ( ३४ )

अद्भुत पराक्रम करनेवाले प्रज्ञारूप सदसस्पति के पास मैं गया हू । वह उदार है, भक्ति करनेके योग्य है और उनका मित्रत्व अगाध है । ६

जिनको सहायता बिना ज्ञानी मनुष्यों के यज्ञ की भी सिद्धि होना अशक्य है, उन्हींसे हमको बुद्धिमत्ता की प्राप्ति<sup>३</sup> होती है । ७

हवि अर्पण करनेके कामों को वह सफल करते हैं और यदि उसमें कोई त्रुटि रह जाती है तो उसको सभाल लेते हैं इसी लिये हमारा हविर्भाग देवताओं के पास पहुँच जाता है । ८

नराशम का आज मुझे दर्शन हुआ । वह बड़े पराक्रमी है और उनकी कीर्ति अत्यन्त विशाल है । उनकी कान्ति प्रत्यक्ष दुलोक की भांति चमकती है । ९ ( ३५ )

## सूक्त १०.

ऋषि-मेवातिथि ऋषि । देवता-अग्नि, मरुत् ।

हे अग्निदेव, इस मनोहर यज्ञ में सोम अर्पण करनेके लिये आपका निमंत्रण किया जाता है । इस लिये मरुद्गण सहित आप यहाँ आइये । १

१ हिनोति ।

२ सनि ॥

३ योग ॥

४ हविष्कृतिम् । ५ ऋध्नोति । ६ प्राञ्चं कृणोति ॥

७ सन्नमससम् ॥

८ गोर्पाथाय ॥

आप इतने श्रेष्ठ हैं कि आपकी सामर्थ्य के सामने देवता या मनुष्य किसी भी गति नहीं है । इस लिये हे अग्निदेव, आप मरुद्गण सहित यहां आइये । ०

द्वेषविकार में मदा रहित रहनेवाले और रजोलोक के अगाध जानी मरुद्गणों सहित हे अग्निदेव, आप यहां पधारिये । ३

जो उग्रकृति मरुद्गण अपने तेज में किसी के पराक्रम की भी परवाह न करते अर्ध की याचना करते हैं, उनके सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये । ४

जिनका अत्यन्त शुभ्र वर्ण है और शरीर बहुत दीर्घाकर है, जो महा पराक्रमी प्रसिद्ध हैं और दुष्टों का उन्मूलन करनेवाले हैं, ऐसे मरुद्गणों सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये । ५ ( ३३ )

स्वर्ग के ऊपर देवीयमान तुलोक में वास करनेवाले मरुद्गणों सहित, हे अग्निदेव, आप यहां आइये । ६

ऊंची ऊंची तरंगवाले समुद्रों में जो पर्वतों को उलट पलट कर देता है ऐसे मरुद्गणों के सहित हे अग्निदेव, आप यहां पधारिये । ७

जो अपनी सामर्थ्य में सम्पूर्ण समुद्र पर अपनी किरणों को व्याप्त कर देते हैं ऐसे मरुद्गणों के साथ हे अग्निदेव, यहां आइये । ८

यह मधुर सोमरस मैं आपको अर्पण करता हूं । मेरी इच्छा है कि सबके पहिले आप उसका प्राशन कीजिये । इस लिये हे अग्निदेव, मरुद्गणों के साथ आप यहां आइये । ९ ( ३४ )

१ परः ॥

२ घोरवर्षस । ३ सुशत्रास । ४ रिशादस ॥

५ रोचने ॥

६ अर्णवम् । ७ तिरः । ८ ईष्यति ॥

९ तन्वन्ति ॥

१० पूर्वपीतये ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

## दूसरा अध्याय.

### सूक्त २०.

ऋषि—नेधातेय ऋष्व । देवता ऋभु ।

जर्विनमरण के बंधनों से जिन देवों का छुटकारा नहीं हुआ उनके लिये यह मृत्ति विद्वान उपासकों ने स्वमुख से गाई थी । इसके योग से उत्कृष्ट वैभव की प्राप्ति होती है ।

१

आज्ञा होते ही अपने आप रथ में जुड़ जानेवाले दोनों अश्व देवताओं ने अपनी कल्पना से इन्द्रके लिये निर्मित किये, जिन्होंने अपने अद्भुत कृत्यों से यज्ञों में अपने को सम्मान का पात्र बनाया.

२

जिन्होंने अश्वी देवताओं के लिये सर्वत्र विचरनेवाला सुखकारक रथ बनाया और जिन्होंने दूध देनेवाली गौ को भी उत्पन्न किया,

३

उन ऋभुओं के लिये जो प्रार्थना की जाती है वह निःसंशय सफल होती है । उनकी वृत्ति बड़ी सरल है । उन्होंने अपने सामर्थ्य से मातापिता को पुनः तरुण बनाया ।

४

१ मूल मन्त्रमें यह शब्द एभुवचनही है । परन्तु यहाँ बहुवचन का उपयोग करना चाहिये । २ जन्मने ॥

३ शमीभिः ॥

४ परिज्मानम् ॥

५ विष्टी ॥

मरुद्गण से मंडित इन्द्र और राजर्षी से विभूषित आदित्य के पास ऋषु तुमारे लिये गये है । वे मूर्तिमान आनन्द है । ५ ( १ )

इसके अतिरिक्त त्वष्टा देवता के वताये प्रसिद्ध चमसे के पुन चार चमसे इन्हींने वनाये । ३

आप ऐसे पराक्रमी है, इस लिये अपना उत्तम आशीर्वाद और उद्दमि प्रहार के रत्न हम भक्तों से प्रत्येक को दीजिये । ७

अन्य देवताओं को जैसा यज्ञ का भाग मिलना है तैना ही इन्होंने अपने लिये भी प्राप्त किया हुआ है । यह श्रेष्ठ है । इन्होंने यज्ञ हवी को स्वीकार किया । ८ ( २ )

### सूक्त २१.

ऋषि मेधातिथि ऋषि । देवता इन्द्र, आर आग्नि ।

इन्द्र और अग्नि इन दोनों को मैं यहाँ बुलाता हूँ । उन्हींकी स्तुति करनेकी मारी इच्छा है । वे सोमरस का प्राशन करें । उनको सोमरस भाता है । १

हे मनुष्य, यज्ञ में इन्द्र और अग्नि का स्तवन कर । उनको स्तुतियों में अग्रद्वार कर । गीतों में उनका गायन कर । ७

१ मदासः ॥

२ एकमेकम् ॥

३ अभजन्त ॥

४ उद्दमसि ।

५ शुम्भत ॥

मित्र के गौरव के लिये मैं सोमपानार्थ सोमप्रिय इन्द्र और अग्नि का पाचारण करता हूँ । ३

तैयार करके रखे हुए हवि के पास मैं उन उग्र परन्तु उदार देवताओं को बुलाता हूँ । वह इन्द्र और अग्नि यहाँ पधारें । ४

हे सर्वश्रेष्ठ इन्द्राग्नि देव आप सर्व लोकसमुदाय का रक्षण करनेवाले हैं । राजसों का शासन कीजिये । दुष्ट नि सन्तान हों । ५

चेतन्य—तेज में अतिशय उज्ज्वल स्थान में विराज कर हे इन्द्राग्निदेव, आप अपने सुप्रसिद्ध सत्यत्व का ध्यान रखें और हमको सौख्य अर्पण करें । ६ ( ३ )

### सूक्त २२.

ऋषि मेधातिथि ऋषि । देवता १-५ अश्वी । ५-८ सविता । ९-१० अग्नि । ११ देवी । १२ इन्द्राणी वरुणानी, अग्नाथी । १३-१४ शवा पृथ्वी । १६ विष्णु अथवा देव । १७-२१ विष्णु ।

प्रातः काल में रथ जोड़कर सिद्ध होनेवाले अश्वी देवताओं के पास जाकर उनको जताओ । वे सोमरस का प्राशन करने के लिये यहाँ पधारें । १

जिनका रथ उत्कृष्ट है, जो महारथी योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं और जो दुलोक पर्यन्त जाते हैं, उन्हें देना अश्वि देवों का मैं पाचारण करता हूँ । २

१ प्रशस्तये ॥

२ सन्ता ॥

३ सदसस्पती ॥

४ प्रचेतुने पदे ॥

५ युजा ॥

६ हवामहे ॥



आपके रथ के चावुक की ध्वनि सुनते ही यज्ञकर्ताओं में आपके सम्मानार्थ मधुर सोमरस तैयार करनेकी उतावली पड़ जाती है और सत्य तत्व का मनोहर लाभ होने की सबको आशा होने लगती है । उसके योग में हमारे यज्ञ में सुखममृष्टि ही द्वारा प्रवाहित कीजिये । ३

हे अश्विन, सोमरस अर्पण करनेवाले जिम भक्त के घर अपने रथ द्वारा जानेके लिये जब आप तैयार हो जाते हैं तो वह घर आपके लिये कुछ भी दूर नहीं है । ४

स्वर्ण की भांति कान्तिमान हाथवाले सविता देवता का आमन्त्रण मैं अपने मरुत्ता के लिये करता हूँ । सविता देवता परम पद के ज्ञाता है । ५ ( ४ )

जल में मे अर्चनीय होनेवाले सविता देवता की स्तुति अपने मरुत्ता के लिये करो । उन्हींकी आज्ञा हमको मान्य है । ६

सविता देवता को हम भक्तिपूर्वक बुलाते हैं । सब मनुष्योंपर उनकी दृष्टि रहती है । यह आश्चर्यकारक और मन को आल्हादित करनेवाली सम्पत्ति मांगें वांटते हैं । ७

आओ मित्रो, बैठो, क्या हमको सविता की स्तुति नहीं करना है ? वह दार्ढ्य है । मनोरम ऐश्वर्य को शोभायुक्त करते हैं । ८

हे अग्निदेव, सन्तोषपूर्वक यहाँ आनेके लिये तैयार बैठो । तुम्हें देवपत्नी तथा त्वष्टा देवता को सोमपानार्थ लेकर यहाँ आइये । ९

१ मिमिक्षतम् ॥

२ सोमिनः ॥

३ वेत्ता ॥

४ उश्मसि ॥

५ राधस ॥

६ राधांसि ॥

७ उशतीः ॥

होत्रा, भारती, वरुत्री और धिपणा इन अत्यन्त तरुण देवस्त्रियों को, हे अग्नि-  
देव, हमारे सरक्षण के लिये यहाँ ले आइये । १० (५)

वीरपत्नी के मार्ग में कहीं भी विघ्न न पड़े, वह हमारे पास आकर हमको  
कृपा, मौख्य और आनन्द की प्राप्ति करावे । ११

अपने जैमके लिये हम इन्द्राणी, वरुणानी और अग्रायी को सोमपानार्थ  
बुलाते हैं । १२

मही, शौ और पृथ्वी हमारे यज्ञ पर सुखसमृद्धि की धारा प्रवाहित करे । वह  
हमारी भरपूर उन्नति करे । १३

उनके घृत परिपूर्ण दुग्ध की प्रशंसा गधर्वों के लोक में विद्वान् पुरुष अपने  
स्तोत्रों द्वारा करते हैं । १४

हे पृथ्वी आप हम पर मन्तुष्ट्र हो । आप किसी का नाश नहीं होने देती  
आपमें सबका समावेश होता है । हमको अतिशय सौख्य प्रदान कीजिये । १५ (६)

पृथ्वी के सप्त प्रदेशों सहित समस्त जग में विष्णु ने जहाँ जहाँ आक्रमण  
किया, देवगण उन स्थानों परसे हमारी रक्षा करे । १६

१ गता ॥

२ सचन्ताम ॥

३ स्वस्तये ॥

४ भरीमाभिः ॥

५ रिहन्ति ॥

६ स्याता ॥

७ अत ॥

विष्णु ने सब स्थानों पर आक्रमण किया। उनमें से तीन पग गये। उनमें पदरज में ही सब व्याप्त हो गये। १३

अजेय और जगत् संरक्षक विष्णु ने उन स्थानों में वर्म निश्चम स्थापित करके तीन पग से आक्रमण किया। १४

जिन अलौकिक पराक्रमी कृत्यों के योग से विष्णु ने जगत् में अमिल हर्म अंबलोकन किये उन कृत्यों पर तनिक दृष्टि डालो। विष्णु इन्द्र का सहायता ओग मित्र है। १६

जाता लोक विष्णु के परम पद का सदा निरीक्षण करते रहते हैं। ऐसे समय आकाश की ओर टक टकी लगी रहने की भांति उनकी दृष्टि विस्तीर्ण होती है। २०

सदा जागकर परम भक्ति से विष्णु के परम पद का स्तवन करनेवाले बुद्धिमान पुरुष सर्वत्र उसको प्रसिद्ध करते हैं। २१ ( १ )

१ समृ ह्यम् ॥

२ अदाभ्य ॥

३ पम्पशो ॥

४ दिवीव ॥

५ विपन्यव ॥

## सूक्त २३.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देवता १ वायु । २. ३ इन्द्र वायु । ४, ५ मित्र, वरुण । ७-९

मन्त्वान् । १०-१२ विन्देदेवा । १३-१५ पृषा । १६-२२ आप । २३ २४ आग्नि

यह सोम तीव्र है । आप आइये । वहीं मिलाकर इनको तैयार करके रखा है

हे वायुदेव, इनको चखिये वे आपहीके वास्ते रखे हुए है । १

इस सोमरसका प्राशन करनेके लिये मैं इन्द्र और वायुका आव्हान करता हू । ये

दोनो दुलोक पर्यन्त चल जा सकते है । २

विद्वानोने अपने गरज्जणार्थ इन्द्र और वायु का ही पाचारण किया । मन की गति-

की भाति इनकी गति भी शीघ्र है । उनके हजारो नेत्र है । वे सर्व बुद्धिमता के अधिपति है । ३

हम मित्र और वरुणको सोमपानार्थ निमंत्रित करते है । वे बडे जानी है और

पवित्र कार्योमे अपने सामर्थ्य का उपयोग करते है । ४

नीति मार्गसे नीति नियमनका ज्ञान वृद्धिगत करनेवाले, तेजके अधिष्ठाता मित्र

वरुणको मैं हवि अर्पण करता हू । ५ ( = )

१ आग्नीर्वन्त ॥

२ दिविरुष्टशा ॥

३ मनोजुवा ॥

४ पृतवक्षसा ॥

५ ज्योतिषस्पती ॥

हमारा रक्षण करने के जितने मार्ग हैं, उन सबमें मित्र हमारी रक्षा करे और वरुणभी हमारे संरक्षक हो। वे दोनों हमको बहुत सुखी करेंगे। ३

इन्द्रको मरुदेवों सहित हम सोमपानार्थ बुलाने हैं। हमारे पास आकर उन हो सन्तोष हो। ७

हे इन्द्रको प्रमुख रखनेवाले मरुदेव, आप पूपाके स्नेही हैं। आप सब हमारा पुकारको सुनिये। ८

हे अति उदार देव, अपने मित्र इन्द्रके पराक्रमकी सहायता लेकर वृत्रका वी कीजिये। वह अर्भद्रभाषी हमारा स्वामी न हो। ९

हम सोमपानार्थ सब मरुदेवों का निमंत्रण करते हैं। वास्तवमें वे प्रक्षीके पुत्र बड़े उम्र हैं। १० ( १ )

विजय पाकर आये दृग वीरोंकी भांति मरुदेवोंको गर्जना बड़े जोरमें सुन पडती है। हे शूर जिस मार्गमें हमारा कल्याण है उसका अवलम्बन कीजिये। ११

विद्युत्-लताके प्रचंड तोंस्यमें से अवतीर्ण होनेवाले मरुदेव हमारी रक्षा करे। १२ हमको सुखी रखे। १३

१ करताम् ॥

२ मरुन्वन्तम् ॥

३ विश्वे ॥

४ दुःशंसः ॥

५ पृश्निमातर ॥

६ याथना ॥

७ हस्कारात् ॥

हे अत्यंत देदीप्यमान् पूषन् चित्रविचित्र रंगके मयूरपंखोंसे सुसज्जित आका-  
शके बालकको भटके हुए बछड़ेकी भांति दूढ़कर ले आइये । १३

रंगवरगो मयूरपंखोंसे सुसज्जित, परंतु गुहामे छिपाये जानके कारण अदृष्ट, ऐसे  
हमारे राजा पुन देदीप्यमान् पूषणसे मिले । १४

जिस तरह कृषक बैलोंके योगसे धानको उत्पन्न करके घर ले आता है, उसी  
तरह यह पूषण छ ऋतुओंको सोमरस पानार्थ हमारे पास ले<sup>३</sup> आव. १५ ( १० )

अपने जलोको माधुर्यसे परिपूरित करके भाविक यज्ञ कर्ताओंकी ये प्रेममयी  
माताएँ अपने मागोंसे वहती है । १६

जो सूर्यके पास है, अथवा सूर्य जिनके समीप है, वह सब यज्ञको  
यशस्वी करे । १७

जहां हमारे धेनु जल पीते है उन जलदेवताओंका मैं आमंत्रण करता हूं  
इन नदीयोंको हवि अर्पण करना योग्य है । १८

आराधना बादक मोन हे यह मूलमे स्पष्ट रीतिमे लिखा हुआ नही हे ।

१ धरुणम् ॥

२ अपगूहम् ॥

३ अनुसेषिधत् ॥

४ जामय ॥ यह नचा नदीके विषयमे हे ।

५ हिन्वन्ति ॥

६ कर्त्वष ॥

जल के बीच में अमृत है जल के बीच में औषधिके गुण हैं, जल का स्नान करनेके लिये हे देव शीघ्रता कीजिये, १६

सोमने हमको कहा है कि, जल के अंदर सब औषधियां वास करती हैं, औषधिदेव सब लोगों का कल्याणकर्ता है । जल सब रोगों का नाश करनेवाला है । २० ( ११ )

हे जलदेवताओं, हमारा शरीर प्रतिदिन स्वस्थ रहनेके लिये तथा हमको मृत्युका दर्शन होनेके लिये आप हमको अत्युत्कृष्ट औषध दीजिये । २१

हे जलदेवताओं हमारे शरीरमें यदि कोई दुष्टता वास करती हो, अथवा किमीके साथ हमने शत्रुत्व किया हो, अथवा किमीके साथ खराब बर्ताव किया हो, अथवा अमृत्य भाषण किया हो तो सब हमारे दुष्ट आचरण का नाश करो । २२

हे जल देवताओं, मैं अभी आपके पास आया हूं और मैं आपके मांस रसमें सम्मिलित हुआ हूँ, हे जलमें रहनेवाले अग्निदेव, आप यहाँ पशारियें और हमारा मिलाप तेज के साथ कर दीजिये, २३

हे अग्निदेव, आप तेज, सन्तति और आयुष्य हमको दीजिये, वैसा करनेमें हमारा वैभव परमेश्वर को मालूम होगा, और ऋषी तथा इंद्र को भी मालूम पड़ेगा । २४ ( १२ )

१ वाजिनः ॥

२ विश्वशम्भुवर्म ॥

३ वरुथम् ॥

४ शोपे ॥

५ पयत्त्वान् ॥

६ संसृज ॥

## अनुवाक ६.

### सूक्त २४.

र्त्नाप-शुन शेष आजोगति, ऋत्रिम, विश्वामित्र देवरात, १ देवता-१ प्रजापति, २ अग्नि, ३-५ सविता अथवा भग, ५-१५ वरुण

वह कौन सा सुन्दर नाम है—सर्व अमर देवताओं में वह किस देवता का मनो-हर नाम है—जिसके हम स्मरण करें ? अदिती से पुनः मेरी कौन भेट करायेगा, जिससे मैं जनक और जननी को देख सकूँ । १

सब अमर देवताओं में प्रमुख जो अग्निदेव है उन्हींके मोहक नामका मैं स्मरण करता हूँ । वह अदिती से पुनः मेरी भेट करायेगा, जिससे मैं जनक और जननी को देख सकूँगा । २

हे हमारा निरन्तर रक्षण करनेवाले सविता—देवता आप समस्त स्पृहणीय वस्तुओं के स्वामी हैं । हम अपने योग्य सम्पत्ति का भाग आपसे मांगते हैं । ३

इसी प्रकार वह प्रशसनीय भाग भी आपके हाथमें है, जिसकी निंदा करनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है और जिसे दुष्ट जनभी कोई आघात नहीं पहुँचा सकते । ४

ऐसा भाग्य आपही की कृपा से हमको प्राप्त हो और सम्पत्ति के सर्वोच्च शिखर पर हम सुस्थिर होकर बैठें । सब मनुष्यों को भाग्य वाटनेवाले आप ही हैं । ५ ( १३ )

१ मनापहे ॥

२ अमृतानाम् ॥

३ ईमहे ॥

४ शशमान् ॥

५ उदशेम ॥



ये अत्यंत ऊंचे उड़नेवाले पक्षी, ये एक निमिष भी स्थिर न रहनेवाले जंगल जो वायुका दर्प हरेण करते हैं वे सब ही आपके पराक्रम, बल अथवा क्रोध की बगवरी नहीं कर सकते ।

भला, आकाश का भी कोई आधार है ? पर वहांभी पवित्र पराक्रम करनेवाले राजा वरुण वृक्षका स्तंभ खड़ाकर देते हैं । खड़ा करते ही वृक्षही जड़ ऊपर और शाखाएं नीचे हो गयीं । इन्हींके आन्दर आवश्यक ही हमारा निवासस्थान होगा ।

सूर्यको दैनिक प्रवास करनेके लिये वरुणराजाने उनका मार्ग विस्तृत किया । जहां पग धरनेका स्थान नहीं था वहां उन्हींने चलने योग्य पथ बना दिया । ऋतु नचन बोलनेवालों का वरुण अत्यंत तिरस्कार करते हैं ।

हे राजा वरुण, आपकी औपधियां मैंकड़ो क्या, महत्त्वावधि है । आपकी कृपा असीम और अविच्छिन्न हो । हमारे नाशकारक दुःखोको मिटाकर उनका उन्मूलन कीजिये और हमारे हाथमे जो पाप हुए हो उनको दूर कीजिये,

जो नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं वे केवल रात्रिमें दृष्टिगोचर होते हैं । दिनमें वे कहीं चले जाते हैं । वरुण की आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं हो सकती । चन्द्रमा रात को उदय होकर उदय होता है ।

१० ( १४ )

१ हिंसन्ति ॥

२ स्तूपम् ॥ यद् नगद्वीप उदसा वर्षत वेगा ।

३ हृदयाविध ॥

४ प्रमुमुग्धि ॥

५ विचाकशत् ॥

इसी कारणसे स्तुति स्तोत्रों द्वारा आपको नमस्कार करनेके लिये मैं आपके पास आता हूँ, इसी कारणसे याग करनेवाले भक्त हवि अर्पण करके आपसे याचना करते हैं । हे वरुण, कोप न करके यहां जागृत अवस्थ में रहिये और हमारी आयु कम न कीजिये । आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

११

रात-दिन सब लोक मुझसे यही बात कहते हैं और मेरे हृदयका भी ऐसाही स्पष्ट उपदेश है कि बधनोंसे जखड़े हुए शुन शेषने भक्तिपूर्वक जिन वरुण राजाका आवाहन किया था वही हमको बधनोंसे मुक्त करेगा ।

१२

तीन खम्भोंसे जखड़कर बांधे हुए शुन शेषने आदित्यकी पुकार की । भला, ज्ञानवान वरुण-राजाको कौन ह नि पटुं चा सकता है ? वही शुन शेषके बंधन शिथिल करे और उसको मुक्त करे ।

१३

नमस्कारसे, यागसे और हविसे आपका कोप शांत करनेके लिये हे वरुण, हम आपकी प्रार्थना करते हैं । आप शत्रु का नाश करनेवाले हो, और अत्यंत ज्ञानवान हो, आप हमारे लिये यहां वास कीजिये, हे वरुण आप हमारे पातकका नाश कीजिये.

१४

हे वरुण आप हमारे ऊपरके वाजूपर तथा पीछेके वाजूपर बंधे हुए पाश शिथिल करेंगे, ते आदित्य, आपका आश्रय करके हम पापसे मुक्त होकर अदिती का आश्रय करनेके लिये योग्य होंगे ।

१५ ( १५ )

१ अहेळमान ॥

२ अह्वत् ॥

३ हुपटेषु ॥

४ शिश्रथः ॥

५ अनागतः ॥

## सूक्त २५.

ऋषि-शुन जेप आज्ञागति । देवता-वरुण ॥

हे वरुण, हम आपकी प्रजा है, यदि आपकी किसी आज्ञा का उल्लंघन करते हो,

उसके बदले आप कोपायमान होकर यदि वरुण का दंड नियत किया हो, तो कृपया वह दण्ड हमको मत दीजिये । हमपर मन्त्र होकर हमको अपने कोरा हावली न दीजिये ।

हे वरुण, जैसे कोई महारथी घोड़े को डोरीसे मजबूत बांध रखता है ( जिसमें थोड़ा भाग न जाय ) वैसेही आपसे सुखप्राप्ति की इच्छामें अनेक स्तोत्रों द्वारा अपना मन आपके चरणोंमें बद्ध रखते हैं ।

जिस प्रकार पत्नी अपने निवास स्थान को लौटते हैं उसी तरह हमारी या उच्चतम मन कल्पनाएँ सुखलाभार्थ आपकी ओर दौड़ती हैं ।

पराक्रम ही जिनका अलंकार है ऐसे सर्व सान्नी वरुण को अपनी गुण गर्भों के लिये भला हम कब ले आयेगे ।

वास्तवमें ये दोनों ही अत्यन्त कृपा से उमका स्तोत्र एकमात्र स्वीकार करत हैं । आज्ञाधारक यागकर्ताओं को वे कभी निराश नहीं करते ।

जो अन्तरिक्षमें परिश्रम करनेवाले पत्नीयों के मार्ग जानता है, तो समुद्र निर्माण होनेके कारण जहाजों के पथ से परिचित है,

१ व्रतम् ॥

२ हन्तवे ॥

३ सदितम् ॥

४ विमन्यव ॥

५ शत्रुश्चि यम ॥

जो अपनी आज्ञा का पालन सबसे कराते है जिनको वारह मासका—जिनमे प्रत्येकमे मनुष्योंकी लगातार वृद्धि होती है—ज्ञान है, और जिसको अधिक मास की भी स्मरण रहती है, ८

जो सर्व संचारी उत्तुगर्वासी सामर्थ्यवान् वायु की गति जानते है और वायुलोक के ऊपर जो कुछ है उससे भी जो परिचित है, ९

ऐसे सामर्थ्यवान् वरुण, अपनी आज्ञाओं का पालन कराते हुए अपने साम्राज्य को जगप्रामिद्ध करनेके लिये सर्व लोकोमे आकर विराजमान हुए है । १० ( १७ )

इस लिये वह ज्ञानवान् देव उन सब आश्रयों का—जो उसने उत्पन्न किये है और जो वैसे ही अभी और उत्पन्न करनेवाला है—अवलोकन करता रहता है । ११

वह सर्व सामर्थ्यवान् आदित्य हमको सुपथपर ले जावे । वह हमारी आयुष्य की वृद्धि करे । १२

अपना स्वर्णमय कंबुच पहनकर उन्हीने वेदीप्यमान् वस्त्र धारण किये है । चारों ओर उनके दृढ बैठे है । १३

इनको दुष्ट लोक डरा नहीं सकते, मनुष्य जाति के शत्रु इनको भयभीत नहीं कर सकते, पापी खल भी इनको भयचकित करनेमे समर्थ नहीं है । १४

१ उपजायते ॥

२ ऋष्वस्य ॥

३ पस्त्या ॥

४ चिकित्वान् ॥

५ तारिषत् ॥

६ द्रापि ॥

७ दिप्सव ॥

उमके अतिरिक्त उनका वैभव मनुष्य जाति भग्ने प्रसिद्ध है। आगे की वैभव प्रसिद्ध हो सो बात नहीं पूर्ण रूपसे प्रसिद्ध है। यहा क्या, न्यग अपने शरीरमें उन्हीने कीर्तिप्रद सुन्दर रचना की हुई है। १५ ( १८ )

गौ जिस प्रकार उत्सुकतासे अपने चारा रंगे हुए स्थानको लौटती है तैसी ही इन सर्वदर्शी देवके विषयसे हमारी प्रेमप्ररित प्रार्थना पुन उन्हीके पास जाती है। १६

हमारा मधुर हवि विलकुल तैयार है। इस लिये अपने परम्पर अब कुछ प्रत्यन्त भाषण होने दो। यह हवि आपको बहुत प्रिय है। यागकर्ता की भांति आप उसका स्वीकार करते है। १७

अपने रूपके कारण सम्पूर्ण विश्वमें जितनी रग्यति है उनका दर्शन था। हमको प्राप्त हुआ। इस पृथ्वीपर उनका रथ मैने देखा। हमारी इस मूर्तिका उन्हीने स्वीकार किया है। १८

हे वरुण, हमारी पुकार सुनिये, और हमको सुखसे रक्षिये। आपही हूँ हमपर हो, इस इच्छामें हम आपमें याचना करते है। १९

हे प्रजाशील देव सम्पूर्ण पृथ्वी और स्वर्गपर आप ही की मत्ता है। इसलिये जिते समय हमको आश्रामन दीजिये। २०

हम चिरकाल पर्यन्त आयुष्यका उपभोग कर सके, इस लिये हमारे शरीरके ऊपरी भगका पाश शिथिल कीजिये, मध्य और नीचेके भागवाले बाण भी खोल दीजिये। २१ ( १८ )

१ असामि ॥

२ मव्यूती ॥

३ शदसे ॥

४ अविक्षमि ॥

५ आचके ॥

६ घामनि ॥

७ विपक्षम् ॥

## सूक्त २६.

ऋषि-गुन शेष आजागते । देवता-अभि ॥

हे सामर्थ्याधिपति देव, हे यज्ञार्हि अग्नि, अपने दिव्य वस्त्रोंको धारण कीजिये ।  
और यो विभूषित होकर हमारे को सिद्ध कीजिये । १

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, हमारा वचन श्रवण कीजिये । आप दिव्य कान्तिसे  
युक्त हैं । अन्त करणपूर्वक किये हुए स्तवन आपही को शोभा देते हैं । आपही हमारे  
हविको पहुचाते हैं । २

सचमुच वह पुत्रोंके लिये पिता समान है । आप्रै संबंधी मनुष्यों के लिये  
कुटुम्बी की भाति है और मित्रों के लिये अत्युत्तम मित्र है । ऐरो वह ( अग्नि ) ह-  
मारे यज्ञको सिद्ध करते हैं । ३

जैसे मनुष्य दर्भके आसनपर बैठते हैं, उसी तरह खँले का नाश करनेवाले  
वरुण, मित्र और अयम देवभी प्रेमपूर्वक आकर दर्भासनोपर विराजमान हो । ४

देवताओंको हवि अर्पण करनेवाले हे पुराण पुरुष, हमारे हविसे सन्नुष्ट हो,  
हमारे प्रेमसे आनन्दित हो और हमारी प्रार्थनों श्रवण कर । ५ ( २० )

जो हवि हम नित्य अलग अलग देवताओंको देते हैं वह आपही को अर्पण  
होते हैं । ६

१ विषेध्य ॥

२ दिवित्मता ॥

३ आपये ॥

४ रिशादस ॥

५ श्रुधि ॥

६ शश्वता ॥

हम शुभकारक अग्निका पूजन करनेवाले उनको बहुत प्रिय है । उन पर ही हमारा सच्चा प्रेम है । वह प्रेम करने के योग्य है । वह आनंद देनेवाले है । वह देवताओं को हवि पहुंचाते हैं । सर्व मानवोंके वह राजा है । ७

शुभकारक अग्निसे सरल रखनेवाले देवताओंने अपने लिये अत्यन्त स्पृहणीय वैभव तैयार करके<sup>२</sup> रखा है । हमभी कल्याणकारी अग्निके भक्त हैं, उस लिये उनका चिन्तन करते हैं । ८

और अब हे अमरदेव, यज्ञ के दोनों ओर बैठे हुए हम लोगोंमें परस्पर प्रेम-संभाषण होना चाहिये । ९

सामर्थ्यसे प्रादुर्भूत होनेवाले हे अग्निदेव, अन्य सर्व अग्नियों सहित यहां पधारकर इस यज्ञ और इस स्तोत्रको प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये । १० ( २१ )

### सूक्त २७.

अग्नि-शुन शेष आजोगति । देवता-१-१२ अग्नि १३ विश्वेदेव ॥

कवचें पहनाकर सजाये हुए अश्वकी तरह, अनेक बार वन्दन करके, मुझे आप अपना सन्मान करने दीजिए, आप प्रत्येक यज्ञ में विराजमान होते रहते हैं । ?

यह दाता अपने सामर्थ्य के योगसे अनेक स्थानों में गमन करता है । यह उत्तम सुख देनेवाला है । वह हमारे लिये कृपा की वर्षा करे । २

१ विदपति ॥

२ दधिरे ॥

३ प्रशस्तयः ॥

४ विश्वेभिः ॥

५ वारवन्तम् ॥

६ भीह्वान् ॥

आप सबके प्रार्थ हैं । वे आप, हम चाहे आपके पास हो या दूर हो, पापी मनुष्यों से सदैव हमारी रक्षा कीजिये । ३

हे अग्निदेव ! सब कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाले ये नवीन स्तोत्र जो हमने गाये<sup>२</sup> हैं उनकी आपने देव-समुदाय में प्रशंसा की है । ४

सर्वोत्कृष्ट और मध्यम श्रेणीका सामर्थ्य प्राप्त होते समय आप हमारे पास रहे<sup>३</sup> और हमें यह भी सिखाइये कि, अन्तिम श्रेणीमें जिस सम्पत्ति की गणना है वह कैसे प्राप्त करना चाहिए । ५ ( २२ )

अलौकिक कान्तिसे दैर्घ्यमान रहनेवाले हे देव ! आप सम्पत्ति का विभाग करते हैं । आप कृपा के सागर हैं, अतएव आपकी प्रसाद-लहरो के पास जो भक्त खडों रहता है उसके लिए आप तुरन्त ही सम्पत्ति के नद बहाते हैं । ६

सचमुच आप युद्ध में जिस मनुष्य के संरक्षक बनते हैं और जिसको आप शूरता के कामों में प्रेरणा करते हैं उसकी सत्ता शाश्वत सम्पत्ति पर प्रस्थापित होती हैं । ७

फिर वह चाहे जैसा हो, हे बलशाली देव ! उसे कोई रोक नहीं सकता । चारों ओर उसके सामर्थ्य की कीर्ति छई जाती है । ८

यह सर्व संचारी देव हमसे हमारे अश्वों सहित, पराक्रम के कार्य पूर्ण करावे और विद्वान् स्तोताओं सहित हमें सम्पत्ति<sup>९</sup> प्रदान करे । ९

१ विश्वायु. ॥

२ सनिम् ॥

३ आभज ॥

४ आभक ॥

५ इष ॥

६ अतिध्रवाय्यः ॥

७ मनिता ॥



सन्तानोंमें जागृत होनेवाले हे देव ! आप यज्ञक्रम में सम्बन्ध रखनेवाले पण्ये  
मनुष्य के लिए कोई ऐसा स्तोत्र चुनकर निकाल दे जो रुद्र को प्रिय हो । १- (२-  
ये अग्निदेव अत्यन्त श्रेष्ठ है । उनके गुणों की गर्वना ही नहीं । इन उनके  
श्रवण के उपरान्त चिन्ह है । उनकी कान्ति बहुत विस्तृत है । वे बुद्धिसत्ता और तमसा  
प्राप्त करनेमें हमारी योजना करें ।

किन्हीं वैभवशील राजाकी भाँति हमारी स्तुतियों में मोहित होकर वे अप्रीति  
हमारी प्रार्थना श्रवण करें । वे मानवों के राजा हैं, वे दिव्य मानस्य ही मणि हैं ।  
उनका तेज प्रचर है ।

श्रेष्ठ व्यक्तियों को मेरा नमस्कार है, छोटी को मेरा नमस्कार है, बड़ों को  
मेरा नमस्कार है और जो बृद्ध है उन्हें भी मेरा नमस्कार है ! आइये, यदि ही मन्  
तो हम नव लोग देवताओं के सम्मानार्थ गाग को । हे देवताओं ! तो ग  
से श्रेष्ठ है उसकी स्तुति करने में मैं कभी न लक्ष ।

सूक्त २८.

१३ ( २१ )

ऋषि—शुन, जेन आजीगति । देता—रुद्र, यज्ञ, साम ॥

जो रस संसर्गद्वारा में निकालने में बड़ी पेशीवाला मुमला जगत्वा पत्ता  
उन, उलूखल में बढनेवाले, सोमरसों का, हे इन्द्र देव, आप उलूखल  
स्वीकार करें ।  
जिन सोमरसों के लिये, युगुल जवाओं की भाँति परमर न्यत्र होनेवाले, या  
रस-निपादक पापण लेवार किये जात है, उन, उलूखल में, बढनेवाले सोमरसों का,  
हे इन्द्र महाराज, आप बड़ी उलूखलता में स्वीकार करें ।

- १ इशीकृष्ट ॥
- २ अतिमान, ॥
- ३ गेवान् ॥
- ४ आशिनेभ्य, ॥
- ५ पृथुवुतः ॥
- ६ जगुल, ॥

जिसके योग से खी को, हाथ आगे<sup>१</sup>-पीछे कर के मन्थन करनेका पाठ मिलता है उस उलूखल से वहनेवाले सोमरसो का, हे इन्द्र देव, आप बड़े उत्साह से स्वीकार करे । ३

जो सोमरस निकालते समय मानो मधानी ( रई ) को जलदीसे न दौड़ने देनेही के लिए उसके डोरिया बाधते है, उन, उलूखल से वहनेवाले सोमरसो का, हे इन्द्रजी, आप बड़े उत्साह से स्वीकार करे । ४

हे उलूखल प्रत्येक घर मे चलते समय तुम ऐसी गन्भीर ध्वनि किया करो जैसे विजयी सेना का सन्मान करने के लिए दुदुभी गर्जती हो । ५ ( २५ )

हे उत्तम काष्ठ<sup>१</sup> यह वायु तुझारे सामनेही वह रही है । हे उलूखल इन्द्र को गोमपान मिलने के लिए तुम सोमरस तैयार करो । ६

दो दो पत्र-सम्बन्धी उपकरण जिनके कारण सामर्थ्य का अत्यन्त लाभ होता है, इस प्रकारकी ध्वनि उत्पन्न करते है जैसे घास चरते समय घोडे । ७

अतएव हे उन्नता से शोभनेवाले<sup>१</sup> काष्ठ के उत्तम उपकरणो, सोम निकालने मे निपुण ऋत्विजो की सहायता लेकर, तुम इन्द्र के लिए मधुर सोमरस तयार करो । ८

नीचे गिरे हुए सोमरस को दो चमसो मे भरो और पवित्र द्रवो से टपकने के लिए डालो । वृषभ-चर्म पर उसे ला कर रखो । ९ ( २६ ]

१ अपच्यवम्-उपच्यवम् ॥

२ यमित वा ॥

३ उलूखलम् ॥

४ अग्रमित् ॥

५ वप्सता ॥

६ ऋष्व ॥

सुक्त २०.

ऋषि—शुन गेप आजीगनि । देवता—इन्द्र ।

हे मत्स्यस्वरूप और अत्यन्त उदार इन्द्र, जब कि हमारा यह हाल है कि कहीं भी हमारा मान नहीं है, तब आप ऐसा करे कि जिसमें धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहस्रो भोग-वस्तुओं की हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े ।

हे सुन्दर सुकुट धारण करनेवाले अत्यन्त उदार इन्द्र, हे सामर्थ्याधिपति, हे पराक्रमी देव, अपनी अद्भुत कृति से ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग-वस्तुओं की हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े ।

एक दुसरे की ओर बराबर दृष्टि डालनेवाली उन दोनों को निद्रित करिये । ऐसा कीजिए कि जिससे वे जगैने न पावे और पडी ही रहे । हे अत्यन्त उदार इन्द्र ! ऐसा कीजिए कि जिसमें धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य वस्तुओं में हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े ।

वे हमारे शत्रु निद्रित हों, परन्तु हे शूर, हमारे मनेही अवश्यही जागृत रहे हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहस्रवा भोग्य वस्तुओं में हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े ।

ऐसी अभद्र भाषा बोलनेवाले गधे को मार डालिये । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य पदार्थों का हमारा मा- शीघ्र ही बढ़े ।

- १ अनाशस्ता ॥
- २ तुवीमघ ॥
- ३ अबुध्यमाने ॥
- ४ शुत्रिषु ॥
- ५ तुवन्ताम् ॥

वक्रमार्ग से जानेवाली वायुका, बहुत दूरवाले वन से भी आगे, पतन हो । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य पदार्थों में हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़ जाय । ६

सब शोको का संहार कीजिए । और हमारा नाश करने के लिये जो कोई ताके<sup>१</sup> बैठा हो उसे मार डालिये । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग के पदार्थों में हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े । ७ ( २७ )

### सूक्त ३०.

ऋषि शुनःशेष । देवता १-१६ इन्द्र, १७-१९ अश्वि, २०-२२ उषा ॥

जिनका सामर्थ्य शतगुण बढ़ा है, और जो तुझे प्रिय है, ऐसे इन्द्र देव की स्तुति में निमग्न हुए हे ऋत्विजो, जिस प्रकार कोई कुआँ पानी से लवालब भर दिया जाय उसी प्रकार मानो हम उन अति उदार इन्द्र को सोमरस से भरे देते हैं । १

जिस प्रकार जल ढालू भाग की ओर बहता जाता है उसी प्रकार सोमरस की ओर इन इन्द्र महाराज की स्वाभाविकही प्रवृत्ति होती है—फिर चाहे वे दुग्ध मिश्रित सोम के सहस्र चमस हो अथवा, जिसमें कुछभी मिश्र नहीं किया ऐसे शुद्ध सोम के सौ ही चमस हो । २

१ कुण्डूणाच्या ॥

२ कृकदाश्वम् ॥

३ क्रिवि ॥

४ समाशिरां ॥

जो सोमरस सामर्थ्यवान् इन्द्र महाराज को सन्तुष्ट करता है उसमें उसका उरस समुद्र की भांति भर जाता है।

यह सोम आपके लिए तैयार कर रखा है। जिस प्रकार कपोत पत्नी अपने छोटे बच्चों की ओर प्रेम से जाता है उसी प्रकार आप बड़े प्रेम से उस सोम रस की ओर आ रहे हैं। और इसी लिये आप हमारी स्तुति को भी स्वीकार करते हैं।

हे इन्द्र, आप सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओं के स्वामी हैं और स्तुति करने पर आप अपने भक्तों की ओर आते हैं। हे वीर, हम आपका स्तोत्र गाते हैं, प्रताप्य आपकी ओर से हमें सत्यप्रेम से परिपूर्ण वैभव प्राप्त हो।

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्र, पराक्रम के इस कार्य में हमारी रक्षा करने के लिए आप उठ कर खड़े हो जाइये। अन्यो को छोड़ कर, आइये, हम एक दुसरे से सम्भाषण करें।

जब वैभव प्राप्त करने का अवसर आता है, अथवा जब जब शत्रुता के कर्म दिग्बलाने का मौका आता है तब तब, अपनी सूरक्षा के लिए, हम इन्द्र के स्नेह पात्र भक्त, उन अत्यन्त बलाढ्य इन्द्र का आश्रय करते हैं।

यदि हमारी स्तुति उन्हें सुन पड़ती है तो अपने हजारों प्रकार के शत्रुता के मार्ग प्रकट करते हुए और अपना सामर्थ्य सब को दिग्बलाने हुए ये इन्द्र का प्रकृष्ट के अनुरोध से निस्सन्देह यहाँ प्राप्त होते हैं।

१ व्यचो दधे ॥

२ गर्भधि ॥

३ गिर्वाहिः ॥

४ अन्येषु ॥

५ योगयोगे ॥

६ यदि श्रवत ॥

जिन इन्द्र को पहले तुम्हारे पिता ने पुकारा था उन्हीं, अनेक शत्रुओं की भी परवां न करनेवाले, शूर इन्द्र से, अपने पुरातन दिव्य स्थान से यहां आने के लिए, मैं विनती करता हूँ । १

हे हमारे प्रिय इन्द्र, आज हम आपकी स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें, आपके सिवाय, प्रेम करने योग्य, कोई नहीं है ! अनेक विद्वानों ने आपका स्तवन किया है। जो भक्त आपके स्तोत्र गाते हैं उनके आप मूर्तमन्त भाग्य हो है १० ( २६ )

हे वज्रधारी इन्द्र, आप हमारे और हमारी सहचरोंणियों के हितकर्ता हैं। सब सोमरस-प्रिय देवताओं में आपहों का सोम पर अत्यन्त प्रेम है। ११

हे वज्रधारी देव, हे हमारे मित्र, आप ऐसा कीजिए—आपको इच्छा से ऐसा हों—कि हम आपहों की कृपों को इच्छा करें। १२

हमारे सहवासं में इन्द्रको आनन्द हो और वैभवयुक्त तथा समृद्धि-परिपूर्ण ऐसा अतिशय सामर्थ्य हमें प्राप्त हो कि जिससे हमें हर्ष हो १३

आपको आपहों की उपमा देनी चाहिए, आप हमारे आप्त हैं। आपको प्रार्थना करने से, हे शूर देव, आप भक्तोंके लिए ( रथचक्रके ) अक्षको तरह दौड़ते रहें हैं। १४

१ तुविप्रति ॥

२ विश्ववार ॥

३ शिप्रिणीनां ॥

४ इष्टये ॥

५ सधमादे ॥

६ त्वावान् ॥

हे अत्यन्त बुद्धिशाली इन्द्र, अपने सेवकों का हव्य ग्रहण करने के लिए और उनकी इच्छाएँ परिपूर्ण करने के लिए, आप अपने सब सामर्थ्यों सहित ( रथ-सहित ) अज्ञकी भाँति मौड़ें' है ।

१३ ( ३० )

अपने अत्यन्त फड़कनेवाले, ठेहनानेवाले और वेग से श्वासोच्छ्वास करनेवाले अश्वों के योगसे इन्द्र मदैवही सम्पत्ति जीतकर लाते रहे है । ऐसे प्रसृत हाथ करनेवाले और हमपर उदारता दिखलानेवाले उन इन्द्रदेवने हमारे वैभवा की पूर्ति करनेके लिए हमें सुवर्णरथ दिया है !

१३

हे अश्विनो, आप अश्वदिकोसे परिपूर्णा और कत्याणप्रद सम्पत्ति लेकर आइये । अहो सुन्दर देवताश्वो, आप हमें जो वैभव दे उममें धेनु और मुवर्ण का संप्रह भरपूर हो ।

१४

हे सुन्दर अश्विनो, आप जो अविनाशी रथ दोनों के लिए मिलकर जुटाते हो वह सचमुच समुद्र में भी गमन करता है ।

१५

आपने अपने रथ का एक चक्र ऐसे पर्वत के मस्तकपर, जो अभेद है, भिगाया था । दूसरा चक्र गुलोक के आसपास भ्रमण करता रहता है ।

१६

हे स्तुतिप्रिय, उपे ! हे अमर देवते ! आपके वाहु-बन्धन में किस मानव का स्थान मिलेगा ? हे दैर्घ्यमान देवी ! किर्मके लिए आपका आगमन का है ?

१७

१ आ-ऋणोः ॥

२ पोमृथद्रिः ॥

३ शवीरया ॥

४ समानयोजनः ॥

५ अद्रयस्य ॥

६ नक्षसं ॥

चित्रविचित्र वर्णकी किसी तुरंगी के समान सुशोभित दिखनेवाली हे प्रकाशमान उपादेवते ! हम, दूर अथवा निकट रहते हुए, वास्तव मे, आपही का ध्यान करते रहते थे । २१

हे आकाशकन्या उपे, आप अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य सहित इधरके लिए पधारिये, और हमारे लिए वैभव भी लेते आइये । २२ ( ३१ )

## अनुवाक ७.

### सूक्त ३१.

ऋषि-तिरिण्यस्तूप आगिरस । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव ! पहले अंगिराऋषि और देव आप ही है । देवताओं के कल्याण-कारक मित्र भी आपही थे । दैदीप्यमान शस्त्रों को धारण करनेवाले और ज्ञान-सामर्थ्य-युक्त बुद्धिमान मरुद्गण आपही के आज्ञानुसार अवतीर्ण हुए । १

हे अग्निदेव ? सब से पहले और प्रमुख अंगिरा आपही है । आपका ज्ञान अतिशय है । देवताओं की पवित्र आज्ञाओंको आपही सुशोभित करते है । आप सर्व-व्यापी है । आपमे विलक्षण बुद्धिमत्ता है । आपको दो माताओं ने जन्मा था । सचमुच प्राणीमात्र और मनुष्य के हितके लिए आप कितनेही स्थानों मे वास करते है । २

१ अश्वे ॥

२ इहितर्दिव ॥

३ अपसा ॥

४ डिमाता ॥



हे अग्निदेव, आपही मंत्र के पहले थे । आप अपने सामर्थ्यमहित विमान और मातरिश्वा के लिए प्रकट हो । आप तो मूर्तिमान वैभाही है । होवृष्णान में जब सबने आपको नियुक्ति की तब आपने वह कार्यभार सहन किया और मंत्र प्रेष देवताओं को यज्ञ पढ़ाया । उसे देखकर आकाश और मरुत्तों पानी ( पाथर्षमे ) कर्मिण हो गये ।

हे अग्निदेव, मनुके लिए आपने दुलोक में प्रवेश किया और गन्धर्वों में प्रख्यात पुरूरवाके लिए आपने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये । जिस समय वर्षण किया मे आपके मातापिता की ओर से आपको प्रेरणा होती है उस समय ऋत्विज लोग आपको प्रथम पूर्व ओर और फिर पश्चिम ओर लिये फिरते है ।

हे अग्निदेव आपके हवा अर्पण करने के लिए जो मनुष्य यज्ञ-चमस उठता है उसकी सम्पत्ति की आप वृद्धि करते है । आप अत्यन्त बलिष्ठ और हीर्निर्मान है । वषट, इस शब्द से जो आहुति दी जाती है उसका ज्ञान रखनेवाले ऋत्विज हो आप सब से पहले अग्नि आहुति अर्पण करते हुए इस जगत में नाम करते है ।

हे सर्वव्यापी अग्निदेव, जो मनुष्य पापमार्गका अत्रतन्वन् करता है, उसे आप योग्य कर्ममें प्रवृत्त करते है । गुरोंके ही प्रार्थ करने योग्य सम्पत्ति के लिए जो मनुष्य होने लगता है तब आप थोड़ेही लोगों के हाथ से अनेक शत्रुओं का मरना डालते है ।

हे अग्निदेव, आप उस मनुष्यकी दिन-प्रति-दिन कीर्ति बढ़ाते है । और उसे उत्तम विनाशी पद पर आप चढ़ाते है । विद्वान् भक्तके लिए आपका अन्त करण अत्यन्त उत्कण्ठित होता है और आप उसे इतनी समृद्धि तथा मौल्य अर्पण करते है कि जितनी उसे दोनो जन्मों के लिए बस होती है ।

१ अरेजेतां ॥

२ अवाशय ॥

३ श्रवाय्य ॥

४ शूरसाता ॥

५ तातृषाणः ॥

हे अग्निदेव, हम धनप्राप्ति के लिए आपका स्तवन करते हैं, अतएव आप हमें कल्याणकारी कीर्ति अर्पण कीजिए, नवीन कर्मोंका आचरण कर के हम सांगोपांग आपका भजन कर्म करें । हे द्यावापृथ्वीयो, सब देवताओं सहित आप हमारी रक्षा करें ।

हे निष्कलक अग्निदेव, आप सब देवों में श्रेष्ठ हैं । माता पिता के बिलकुल निकट ही आपका निवास रहता है । आप हमारे लिए जागृत रहें । आप, जो सबके शरीर निर्माण करनेवाले हैं, अपनी भक्ति करनेवाले पर मनमें अत्यन्त प्रेम रखिये और जागरूक रहिये । आप प्रयत्न कल्याण ही हैं । आप सब प्रकारका द्रव्य सर्वत्र वी रखते हैं ।

हे अग्निदेव, आपका अन्त करण अत्यन्त दयाशील है । आप हमारे पिता हैं । हम आपके आस हैं, हे अजित देव, सैकड़ों, प्रायः हजारों सुखों से परिपूर्ण सम्पत्ति, आपकी ओर आपही आप चली आती है । आप अतिशय गूर और अपनी आज्ञाओं का परिपालन करा लेनेवाले हैं ।

हे अग्निदेव, सारे संसारका जीवन आपही पर अवलम्बित है । सबकी आयुर्वृद्धि होने के लिए ही देवताओं ने प्रथम आपको उत्पन्न करके नरुप का सेनार्पति बनाया । तथा जिस समय मेरे पिताको पुत्रप्राप्ति हुई उस समय मनुष्य मात्र को सज्जान करने वाली इला भी आपने उत्पन्न की ।

हे बन्दनीय अग्निदेव, आप अपनी सर्व संरक्षक शक्तियों के योगसे हमारा, और हमपर उपकार करनेवालोका, प्रतिपालन कीजिए । आप अपने नियमानुसार, एक निमिष भी न भूलते हुए, जगत् की रक्षा करते हैं । हमारा यह कौटुम्बिक वैभव परम्परा में ऐसाही स्थिर रहने के लिए आप हमारे लड़केबच्चों और गाई बैलों को संभालते रहते हैं ।

- १ सनयो ॥
- २ ओपिषे ॥
- ३ अदाभ्य ॥
- ४ विश्पति ॥
- ५ पायुभि ॥

हे अग्निदेव, याग करनेवाले भक्त के आप, विलकुल हृदय से सहायकारी है। और हे चार नेत्रों से विभूषित रहनेवाले देव, जो कभी किसीपर शत्रु नहीं उठाता उसके लिए आप प्रेमसे उद्दीपित होते हैं। आप सबका पोषण करते हैं आप के हाथ से किसीका भी नाश नहीं होता। जो स्तुति कर्त्ता आपको तृप्ति अर्पण करता है वह चाहे जितना गरीब हो, आप उसकी स्तुति को हृदय पूर्वक स्वीकार करते हैं। १३

हे अग्निदेव जो उपासक आपका अत्यन्त स्तवन करता है उसके लिये आप सब वैभव—वह वैभव जो अत्यन्त स्पृहणीय है,—सिद्ध कर सकते हैं। सब लोग कहते हैं कि आपका भक्त चाहे स्वयं अपना पोषण करने में भी सब प्रकार में असमर्थ हो, तथापि आप अत्यन्त प्रेमसे उसको सभालनेवाले पिताही बन जाते हैं। आप का ज्ञान तो अलौकिक ही है, तथापि आप उनसे वन्मल हैं कि छोटे छोटे वस्त्रों को आप दिशा और उपदिशा मिलाते रहते हैं। १४

जैसे अच्छी तरह सजा हुआ कनक शूरो की रक्षा करता है वैसे ही पवित्र और सदाचारी पुरुष का आप सब प्रकार से परिपालन करते हैं। स्वादिष्ट भोजन तैयार करके जो अपने घरमें ( अतिथियों को ) मन्तुष्ट करता है और उस प्रकार जो प्राणिमात्र के लिए मानो कुछ अनुष्ठान ही करता है उसे श्रेष्ठता में स्वर्ग की भी उपासना भली लगती है। १५ ( ३४ )

हे अग्निदेव, जिस कुमारी से हम दूर तक गये थे उसके लिए—उस पातक के लिये आप हमें क्षमा करें। आप हमारे आप, हमारे पिता, गोमरुम अर्पण करनेवाले भक्तों के हितकर्त्ता सब के पोषण करने वाले, और अज्ञ मानवको श्रेष्ठ ऋषि—पत्नी के पहचाने वाले हैं। १६

मनु, अगिरम और ययाति के पास जिस प्रकार आप पहले जाते थे उसी प्रकार हे पवित्र अग्निदेव, हे अगिरम, आप हमारे सदन की और आडये, और दिव्यलोक के सब लोगों को भी साथ लेते आडये। उनको आमन पर बिठाइये और उनका प्रिय हृदय उन्हें अर्पण कीजिए। १७

१ यज्यवे ॥

२ स्पर्द्ध ॥

३ प्रयतदक्षिण ॥

४ शरण ॥

५ देव्य जन ॥

हे अग्निदेव, हमने अपने सामर्थ्य और बुद्धि का उपयोग करके यह जो स्तोत्र बनाया है उसके योग से आप आनन्दित हो और हमें शक्ति तथा उत्तम बुद्धिमत्ता प्रदान करें। हमें अत्यन्त स्पृहणीय वैभव की ओर ले जाने वाले आपही हैं। १८(३५)

### सूक्त ३२.

ऋषि हिरण्यस्तप आगिरम । देवता-इन्द्र ॥

मैंने यहाँ वज्रधारी इन्द्र के पराक्रम प्रेमपूर्वक गाये हैं। अखिल पराक्रम के कर्मों में पहला स्थान इन्हींको देना पड़ेगा। इन्हीं इन्द्रदेव ने अहि का वध किया, उदको के लिए मार्ग निकाल दिया और पर्वतों के हृदय विदारण किये। १

त्वष्टा देव ने उन्हें वज्र तैयार कर दिया था। ( उसे धारण करके ) उन्हो ने, पर्वतों में दबाव जमा कर बैठे हुए अहि का वध किया। ( उसके साथ ) और वत्स के लिए जैसे गौवे राभती है वैसे ही भारी शङ्ख करते हुए पानी के नद के नद बहने लगे और बड़े वेग से समुद्र में जा मिले। २

शूरता की तेजी में आने पर इद्रको सोमकी इच्छा हुई और तीन यज्ञों में उन्हो ने वह पान किया। उन्हीं उदार इन्द्र ने वज्र को अपना आयुध बनाकर सब अहियों में ज्येष्ठ अहि वृत्र का वध किया। ३

हे इन्द्र, जिस समय आपने सब अहियों से ज्येष्ठ अहि का वध किया और कपटकर्मों में प्रवीण रिपुओं के कपट व्यूहों का विध्वंस किया उस समय सूर्य, उषा और अलोक को जन्म प्राप्त हुआ और आपका हाथ पकड़नेवाला कोईभी शत्रु आपके लिए नहीं बचा। ४

१ अभि-वस्य ॥

२ वक्षणा ॥

३ वाश्रा॥

४ प्रथमजाम् ॥

५ मायिनाम् ॥

वृत्र नामका अहि कृर अवश्य था, परन्तु वान्तव मे उसकी कृरता उमके नामसेभी अधिक थी परन्तु इन्द्रने अपने अत्यन्त उग्र वज्रसे उमके वा, काटकर उमे मार डाला । जिस प्रकार कुल्हाड़ी से किमी वृत्रकी डाले काट जाी जायं उसी प्रकार छिन्न विच्छिन्न होकर मरा हुआ अहि पृथ्वी पर गिर पडा । ५ (३६)

इस व्यर्थ अभिमान मे आकर, कि हमारा प्रतिस्पर्धी कोई भी नहीं है, अहि ने महापराक्रमी, अजित, और अनेक शत्रुओं के लिए भी भारी इन्द्र का आदान किया । परन्तु उनके अत्यन्त उग्र शस्त्रों के सामने वह टिक नहीं सका । पर इन्द्रसे वह इतनी शत्रुता रखता था कि बड़े बड़े दुर्गों को भी उसने विलकुल चूर चूर कर डाला । ६

हाथ और पैर टूट गये, तथापि अहि इन्द्र मे युद्ध करता ही रहा । इन्द्रने उमकी पर्वतप्राय भुजाओं पर अपना वज्र चलाया । निम्सत्व हो जाने पर भी पराक्रमी पुरुष की गेठ दिखलानेवाला अहि अस्तव्यस्त हो द्वार द्वार होकर पृथ्वी पर गिर पडा । ७

पृथ्वीपर फैले हुए किमी महानदकी तरह जब कि वृत्र भूमिपर पाड गया था तब जलोके प्रवाह धैर्य मे उमड कर उमके शरीर पर से बहने लगे । अपना सामर्थ्य मे जिन उदकों को वृत्र ने बन्द कर रखा था उन्हीं के पैरों पर वह मर कर गिर पडा ! ८

वृत्र की माता उमके शरीर पर आड़ी गिर पड़ी । इन्द्रने अपना उग्र वज्र उमके पीठके नीचे से चलाया । अर्थात् माता ऊपर पड़ी हुई थी और उमके नीचे उमका पुत्र वृत्र पडा हुआ था । इस दशा मे वह दानु णेमी जान पडने लगी जैसे कोई धेनु अपने बछरे को पेटके नीचे लिये हुए हो ? ९

१ व्यंसम ॥

२ तुविवाधम ॥

३ वृष्ण ॥

४ पन्मुत शी ॥

५ नीचावधा ॥

वृत्रका शरीर ऐसे जलप्रवाहों में डूब गया था जिन्हे कभी रुकावट और विश्रान्ति नहीं थी । उसके शरीर पर जलके प्रवाह आनन्दपूर्वक बहते थे और वह इन्द्र शत्रु बड़े अंधकार में जा पड़ा था, १० ( ३७ )

अहि ने जिन जलों को प्रतिबन्ध में रखा था और इस कारण जो जल उस दुष्ट के पास हुए थे वे, पृथिवी की प्रतिबन्ध में रखी हुई गौओं की तरह वन्दिवान हो गये थे। उदको के निवासस्थान, जो पहले बन्द हो गये थे, इन्द्र ने वृत्र को मार कर, खोल दिये । ११

हे इन्द्र, आपही एक श्रेष्ठ देवता है । जिस समय आपके आयुध पर अहि ने प्रहार किया उस समय, अश्व के लिए तैयार किये हुए कवच की तरह आपने उसकी कुछ परवा नहीं की । आपने गौओं को प्राप्त कर लिया, हे शूर आपने सोमरस भी प्राप्त कर लिया और सप्त नदियों का प्रवाह जारी करने के लिए आपने उन्हें बन्धमुक्त किया । १२

विद्युत्प्रयोग अथवा गर्जना, इन दोनों में से एक का भी वृत्र के लिए कोई उपयोग नहीं हुआ । तथा उन्हो ने जो पर्जन्य वृष्टि की और जो वज्र चलाये उनका भी उसके लिए कोई उपयोग नहीं हुआ । जिस समय इन्द्र और अहि का युद्ध हुआ उस समय उन्हीं दान शूर इन्द्र ने चिरकालीक विजय सम्पादन किया । १३

हे इन्द्र, जब कि वृत्र को मारने के बाद आपके हृदय में भय ने प्रवेश किया तब ऐसा कौन आपको देख पड़ा, जो वृत्रवध का बदला आपसे ले सकता हो ? क्योंकि जैसे कोई भयचकित श्येन पक्षी ( फर फर ) आकाश में उड़ जाता है उसी प्रकार आप ( जल्दीसे ) निम्नानवे नदिया लांघते हुए पार निकल गये । १४

- 
- १ निष्यम् ॥  
 २ विलम् ॥  
 ३ सतवम् ॥  
 ४ मिहम् ॥  
 ५ अतर ॥

इन्द्र सम्पूर्ण चराचर सृष्टिके स्वामी है । जो प्राणी शृंगयुक्त है और जो निरु-  
पद्रवी है उन दोनोंपर उनकी सत्ता है । उनके बाहु वज्रके समान हैं, सब माने में  
राजा वही है । जिस प्रकार रथचक्रकी डौड़ पहियेके आरोंको घेर लेती है उसी प्रकार  
इन्द्रने यह सब वेष्टित कर लिया है ।

१५ ( ३८ )

॥ दुसरा अध्याय समाप्त ॥

तिसरा अध्याय.

सूक्त ३३.

अपि—द्विष्यन्तुष अगिरय । वतला—इन्द्र ।

आइये, गोधने की इच्छा से हम इन्द्रके पास चले । वही हमारी बुद्धिमत्ता  
की अत्यन्त वृद्धि करने है । वे अमर हैं । क्या वे वैभव और गोधन प्राप्त करने का  
मुख्य साधन हमें वतला देंगे ?

१ वर्षणीनाम् ॥

२ गद्यन्त ॥

जिस प्रकार श्येनपक्षी अपने सदा के रहने की जगह की ओर उड़जाता है उसी प्रकार, मार्गमें उत्तमोत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी वन्दना करते हुए, मैंने उसके पास गमन किया। ये इन्द्र सम्पत्ति देनेवाले, शत्रुओंसे कभी हार न जानेवाले और भक्तोंद्वारा अर्चन करने योग्य हैं। २

अपनी सब सेना साथ में लेकर इन्होंने वाण के तरकश ( पीठ पर ) बाधे हैं। ये बहुते श्रेष्ठ हैं। जिसे उनकी इच्छा होती है उसे देने के लिए वे उसके पास गई ले जाते हैं। हे अत्यन्त श्रेष्ठ इन्द्र, अनेक प्रकारकी उत्कृष्टसम्पत्ति लेकर आइये और हमारे लिए कृपणता न धारण कीजिए। ३

हे इन्द्र, यद्यपि आप अपने अनुचरो सहित चले थे तथापि धन के समान अपने शस्त्रसे आप अकेले ही सम्पत्तिमान् दस्युका वध कर डाला ! वे चारों ओर से आपके धनुष पर एकदम टूट पड़े तथापि उन्हीं सनकों का ही नाश हुआ। आपका यजन करना उन्हें कभी मालूम ही न था। ४

हे उग्र इन्द्र, आपकी स्थिरता बखानने योग्य है और आपके अश्व पीतावर्ण के हैं। जब आपने, अपनी आज्ञा न माननेवाले दुष्टों को अन्तरिक्ष, पृथिवी और स्वर्ग से निकाल दिया तब उन्होंने अपने मस्तक ( लज्जासे ) पीछे फेर लिये। वे स्वयं तो आपका यजन कभी करते न थे, किन्तु अन्य यजन करनेवाले लोगो से स्पर्धा अवश्य किया करते थे। ५ (१)

इन्द्र, जो सर्वतोपरि दोषरहित है, उनकी सेना से भी इन्होंने युद्ध मचाया ! नवगवों ने खड़े होकर इन्द्रको उत्तेजना दी। सामर्थ्यवान् पुरुषोंसे लड़नेमें निर्बल लोगो की जैसी दुर्गति होती है वैसी ही जब उनकी भी दशा हो गई तब उन्हें इन्द्र की शक्ति का पूरा परिचय मिला और वे ( जो मार्ग उन्हें सूझ पड़े उन ) मार्गों से भग गये। ६

१ धनदाम् ॥

२ समर्प्य ॥

३ विष्णुणक् ॥

४ हरिवः ॥

५ अनवद्यस्य ॥



उन्होंने हमें या रोने की कुछ भी परवा न करने हुण, हे इन्द्र, आपने उसमें युद्ध किया और उन्हें रजोलोक के बाहर निकाल दिया। दस्यु का उन गुलोह में था तब आपने उसे दम्व किया और जिसने, आपके लिए सोमरस तैयार करते आपका स्तवन किया उसके स्तोत्रका आपने स्वीकार किया।

सुवर्ण-भूषणों से जजित होकर उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी का पारिवेष्टन किया। उन्होंने बहुतसा अपना पराक्रम प्रकट किया, तथापि वे इन्द्रका पराभव नहीं कर सके। उनके दुर्तों को इन्द्रने सूर्य के द्वारा हतवीर्य किया।

हे इन्द्र, जिस मजग आपने, अपने सामर्थ्य से पृथ्वी और मार्ग पर, मा प्रकारसे, अपना सत्ता प्रस्थापित की उस समय आपने अपना अपमान करनेवाला का अपने भक्तों के द्वारा पराभव करवाया और अपने तीव्र शक्तों से दस्यु को पराजित किया।

स्वर्ग और पृथ्वीका जिन्होंने अन्त लगाया वे भी अपने कपटजालों में पन दाता इन्द्रको नहीं घेर सके। सामर्थ्यवान इन्द्रने अपने वज्र को ही अपना सहायक माना और अपने तेज के योग से वेनुओं को अन्तकार में निकाला।

इन्द्रने जो मार्ग निकाल दिया उस मार्ग से जल के प्रवाह रहने लगे। परन्तु वृत्र ने, गेसी महानदी में पैठकर, विशालरूप प्राण किया। विषम नौका भी चल सकती है। फिर इन्द्रने वृत्र के वध में ही अपना पराजित लगाया और उसे मर्दा के लिए पृथ्वी में मिला दिया।

१ अदह ॥

२ स्पश ॥

३ महिना ॥

४ वृषभ ॥

इलीक्षिशा के दुर्गम दुर्ग आपने ढहा दिये और शृगयुक्त शुष्ण का आपने विदारण किया । आपके साथ जिस शत्रु ने युद्ध किया उसी का आपने, अपने सम्पूर्ण नामर्थ और वंग का उपयोग करके, वज्र से वध किया । १२

उनका सहायक वज्र उनके शत्रुओंको ताक कर चला । अपने तोत्र शत्रुओं से उन्होने शत्रुओं के नगर ढहा दिये । इन्द्रने अपने वज्रको तृत्रसे मिला दिया और उसका संहार करके अपने मन का हौसला पूरा किया । १३

हे इन्द्र, जिस कुरसपर आपका अत्यन्त प्रेम था उसकी अग्ने रक्षा की और वीथशाली दृग्यु जव युद्धमें भिडा था तब उसकी सहायता करने का आप त्रौडे । घोड़ों को टापों से उडी हुई धूल आकाशतक पहुँची, श्वेत्रेय को भी ऐसी योग्यता प्राप्त हुई कि जिससे लोग फिर उसकी सत्ता को स्वीकार कर सके १४

तुप्रियो के समुदाय में आपने उसके शान्तस्वभाव वाले वृषभोकी रक्षा की और जब कि भूमि-सम्पादन की ईर्ष्या से युद्ध हो रहा था तब, हे उदार इन्द्र, आपने उसकी धेनुओंको सम्हाला । यहां बहुत कालपर्यन्त जमकर जिन्हो ने शत्रुताका वर्ताव किया उन् अपने रिपुओं को आपने अत्यन्त अमंगल वेदना मरान कराई । १५ ( ३ )

१ एतन्युम् ॥

२ शाशदान ॥

३ वृषभम् ॥

४ ज्पात्र ॥

### सूक्त ३४.

रूपि-हिरण्यस्तुप भगवन्तः । जेवता- आ । ॥

हे सर्वज्ञ अश्विनो, आज आप तीनोंवार हमारे ही दृष्टिये । आपका गति सर्वत्र है । आपकी दानशूरता भी चारों ओर प्रसिद्ध है । जिस प्रकार बन्ध और जाड़े की गत का अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार आप दोनों एक दूसरे से संलग्न हैं । मुझ भक्त के आप वश दृष्टिये । १

यह सब को विदित हो है कि आप के जिस रथ के द्वारा मनुष्यम प्राप्त होता है उसके तीन पहिये हैं और वह सोम के मार्ग में गमन करता है । उस रथ का तेल सम्हालने के लिए उस पर तीन स्तम्भ खड़े किये गये हैं । हे अश्विनो, आप तीन बार रात को और तीन ही बार दिन को परिभ्रमण करते हैं । २

एक ही दिन में तीन बार आप ( भक्तों के ) पार्वक नष्ट करते हैं । आप तीन बार हमारे यज्ञ पर मार्थुर्थ की वर्षा कीजिए । हे अश्विनो, आप ( प्रतिदिन ) सुप्रभात और संध्या के समय, हम पर ऐसे कृपा प्रसाद ही रोक-पेल करते रहिए कि जिससे हमें सामर्थ्य प्राप्त हो । ३

आप तीन बार अपने निवासस्थान की ओर जाइये, तीन बार आप अपने आज्ञापालक भक्तों की ओर गमन कीजिए । और ऐसा कीजिए कि, जिससे जो पुरुष अत्यन्त रक्षा करने योग्य है उन्हें मानें, तीन बार में तीन ही प्रकार की कोई शिक्षा मिलती हो । हे अश्विनो, आप हमें तीन बार ऐसा वैभव अर्पण कीजिए कि जिससे हमारे मन को आनन्द हो । और हमारे पोरण का ऐसा उत्तम प्रबन्ध कीजिए कि सब लोग कहने लगे कि, ' हमारा ऐसा अद्वय सौभाग्य है । ' ४

१ विभुः ॥

२ पवयः ॥

३ अवद्यगोहता ॥

४ पृश्न ॥

हे अश्विनो, तीन बार सम्पत्ति लेकर हमारे पास आइये, जब कि तीन बार देवों का यजन हो रहा हो तब आप हमारे सद्बिचारों को तथा सौभाग्य और सत्कीर्ति को भी तीन बार बढ़ाइये । ( आकाश की ) दुहिता ने आप के त्रिचक्रों के रथ में स्वर्ग में आरोहण किया था । ५

हे अश्विनो, स्वर्ग, पृथ्वी और उदक, तीनों से प्राप्त की हुई, तीनों प्रकार की, आपसे तीन तीन बार हमें दीजिए । कल्याणकारी सम्पत्ति के आप अधिपति हैं, और हमें कल्याण की इच्छा है, अतएव अपने तीनों महातत्वों से हमारे पुत्रों को निर्भय कीजिए और, साथ ही, उस पर अपनी कृपादृष्टि भी रखिये । ६ ( ४ )

हे अश्विनो, प्रति दिन तीन बार आपका यजन करना ठीक है । तीनों महातत्वों साथ लेकर, आपने पृथिवी के चारों ओर विश्रान्ति ली है । हे सत्यस्वरूप अश्विनो, आप अत्यन्त दूर प्रदेश से रथ पर बैठ कर आइये, और जिस प्रकार प्राणवायु शरीर में प्रवेश करती है उसी प्रकार आप अपने तीन ( निवासस्थानों को ) गमन कीजिए । ७

हे अश्विनो, समजनों के समान शोभा देनेवाली ( सप्त ) नदियों के साथ आप यहाँ आइये । यहाँ तीन यज्ञपात्र तैयार हैं और तीन प्रकारका हव्य बना रखा है । पृथिवी के तीन प्रदेश हैं । आप स्वर्ग के ऊपर परिभ्रमण करके स्थिर अन्तरिक्ष की रात दिन रक्षा करते रहते हैं । ८

आपके त्रिकोणाकृति रथ के तीन चक्र कहां हैं ? जिस पर रथवान् के बैठने की उत्तम जगह बनी हुई है उस तुल्यारे रथ के बन्धुओं कहां हैं ? हे सत्यस्वरूप अश्विनो, जिस पर आरूढ़ होकर आप यज्ञ में पधारते हैं उस शक्तिवान् रासभ को आप कब जोतेगे ? ९

१ त्रिष्ठम् ॥

२ शुभस्पती ॥

३ त्रिधातु ॥

४ आहावा ॥

५ पथुर ॥ ( पञ्चमोऽसुः त्रिषु चोत्तमोऽसुः त्रिषु चोत्तमोऽसुः त्रिषु चोत्तमोऽसुः )

हे सत्यस्वरूप अश्विनो, उधर आइये । यह हव्य आपको अर्पण किया जाता है । आपका सुख मधुपान करने के लिए तैयार ही रहता है अतएव आप स्वर्भुव्य से मधुर सोमरस पान कीजिए । आपका प्रवर्णनीय श्वेत घृतसमृद्ध रथ सविता देव, उपा के भी पहले, हमारे गज से भेज देने है । १७

हे सत्यस्वरूप अश्विनो तेतीस देवों को साथ लेकर उम मधुर पेय के लिए आइये । हमारी आयु की वृद्धि कीजिए, पातकों का क्षालन कीजिए, हमारे शत्रुप्रोक्षा निरोध कीजिये और हमें सदा अपने समागमका लाभ दीजिए । १७

हे अश्विनो, अपने त्रिकोणाकृति रथके द्वारा, नीरवान सन्ततिसे युक्त, सम्पत्ति हमारे पास ले आइये । आप हमारी प्रार्थना सुननेके लिए तैयार ही हैं, अतएव अपनी रक्षाके लिए हम आपको बार बार पुकारते हैं । जब पराक्रम के योग्य से सम्पत्ति प्राप्त होनेका सम्भव हो तब आप ऐसा कीजिए कि जिससे हमारे वैभवमें वृद्धि हो । १७ (१)

### सूक्त ३५.

ऋषि—द्विग्यन्तर अंगिरस । देवता—अग्नि मित्र वरुण, सवि, सविता । २-११ मीमांसा ॥

हम अपने कन्याण के लिए पहले अग्निका पाचारण करते हैं । हम अपनी रक्षा के लिए मित्र-वरुण को भी यथा बुलाते हैं । सारे जगत् को अपने अपने स्वानुपम पट्टेचानेवाली रात्रि को भी हम आमन्त्रण देने हैं । हम अपना प्रतिपादन हमारे लिए सविता देव को भी पुकारते हैं । १

१ आसभि ॥

२ तारिष्टम ॥

३ शृण्वन्ता ॥

४ निवेशनीम ॥

सम्पूर्ण भुवनोका अवलोकन करनेवाले सवितादेव अपने सुवर्णमय रथ में बैठकर कृष्णवर्ण आकाश से मार्ग आक्रमण करते हुए, और अमर्त्य तथा मर्त्य सबको अपने अपने उद्योग में प्रवृत्त करते हुए, चले आ रहे हैं । २

सवितादेव उच्च और पुरोगामी मार्गसे गमन करते हैं । वे यजनीय हैं । वे अपने शुभ्र अश्रोंपर आरोहण करके चलते हैं । सवितादेव सम्पूर्ण पापोंका नाश करते हुए बहुत दूरवाले प्रदंशसे ड़धर आ रहे हैं । ३

सवितादेव हमारे लिये पूज्य हैं । उनके किरण चित्रविचित्र रंग के हैं । उनमें कृष्णवर्ण अंधकार को दूर करने का सामर्थ्य है । वे देखिये अपने सुवर्णभूषित रथ में बैठे हुए हैं । इस रथ का आड़ा डण्डा भी सुवर्ण का बना हुआ है । रथ के जितने भिन्न भिन्न आकार होते हैं वे सब इस रथ में पाये जाते हैं । ४

जिसका जुआ सुवर्णका है, ऐसे रथ को वहने करनेवाले सवितादेव के अश्रु जिनके पैर सफ़ेद शुभ्र हैं—उन्होंने सब लोकोपर स्वच्छ प्रकाश डाला है । सारे लोक और मनुष्य निरन्तर सवितादेव के समीपही वास करते हैं । ५

कुल शुलोक तीन है । इनमें से दो सवितादेव के सन्निध रहते हैं और एकका स्थान यम के प्रदेश में है । सम्पूर्ण अमर विश्व, पहिये के अवन ( अक्ष ) की तरह, सवितादेव पर अवलम्बित है । जिसे इस बात का ज्ञान हो उसे बोलनेके लिए प्रागे बढ़ने दीजिए । ६ ( ६ )

१ रजसा ॥

२ परावत ॥

३ तविषीस ॥

४ अख्यन् ॥

५ चिकेतव ॥

जिनकी गति बहुत सुन्दर है. जिनकी प्रयाणपद्धति में बहुत गन्भीरता है. जो ( शत्रुओं के ) महारकर्ता हैं और जिनमें उत्तम मार्गदर्शकता है. उनही सवितादेव ने गन्धर्व अन्तरिक्ष पर प्रकाश फैलाया है । इस समय सूर्य भला लहा होगा । इस क्षणे मान्य होगा कि उनकी रश्मियोंने कौन से गुलोक तक फैला मारी है ?

उन्होंने पृथ्वी की आठो दिशा, तीनों निर्जल प्रदेश और सातों नदियों को सुप्रकाशित किया है । जिनके नेत्र सुवर्णकी तरह चमकदार है वे सवितादेव, अपने उपामैको के लिए उत्तमोत्तम रत्न साथ लिये हुए, बिलकुल पामही आ पहुँचे हैं ।

दूर ऊपर तक संचार करनेवाले और काचनकी तरह सुन्दरवर्णके हस्तों में सुशोभित सविता स्वर्ग और पृथिवी के बीच में अपना मार्ग आक्रमण करते रहते हैं । वे रोगों का निर्मूलन करते हैं, मर्यकी ओर गमन करते हैं और कृपाण अन्तरिक्ष में गुलोकतक जा पहुँचते हैं ।

जिनके हस्त सुवर्णकी तरह सुन्दर है, जो शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं जो उत्तम मार्गदर्शक हैं, जिनकी कृपासे सारे सुख प्राप्त होते हैं, और जो स्वहीनों का अभिमान रखनेवाले हैं वे सविता हमारी ओर आवे । प्रत्येक सायंकालमें जिनकी कीर्ति गाई जाती है वे सवितादेव, राक्षसों और यातुवानों का संहार करते हुए, यहाँ आने के लिए तैयार हुए हैं ।

हे सवितादेव शूल आदि निकाल कर जो अन्तरिक्ष के प्राचीन माय स्वर्ग कर रखे गये हैं उन सुगम मार्गों से आज ( यहा आकर ) हमारी रक्षा की जाए और हमें आशीर्वाद दीजिए ।

१ सुनीधः ॥

२ वायुष ॥

३ अर्माचाम ॥

४ सुमूर्च्छीकः ॥

५ पुष्योम ॥

सूक्त ३६.

अनुवाक ८.

=भि-पार । देवता-अग्नि ॥

देवके दर्शनकी उत्कठा रखनेवाले तुम्हारे ममान जो अनेक लोग हैं उनका अभि-  
मान रखनेवाले अग्निदेव की प्रार्थना मैं सौन्दर्य-परिष्कृत स्तोत्रो से करता हूँ । अन्य  
मनुष्य भी इन्हींका स्तवन करते रहते हैं । १

सामर्थ्य की वृद्धि करनेवाले अग्निकी लोगो ने संस्थापना की है । हम भी  
उन्हे हव्य अर्पण करके प्रकट कराते हैं । हे अति उदार अग्निदेव, आप, इस जगह  
पराक्रमके कार्यों ने प्रसन्न चित्तसे, हमारे रक्षक हो । २

आप सब देवोका हव्य पहुँचानेवाले और अखिल ज्ञान सम्पूर्ण है, आपको  
हम अपना प्रतिनिधि चुनते हैं । आप बड़े हैं । आपकी दीप्ति सर्वत्र संचार  
करती है और आपके प्रकाशरश्मि स्वर्ग तक जा पहुँचते हैं । ३

आप ( देवोके ) अत्यन्त पुरातन प्रतिनिधि हैं । वरुण, मित्र, और अर्यमा  
सब आपको प्रज्वलित करते रहते हैं । हे अग्निदेव, जो मानव आपको धन अर्पणों  
करता है वह आपकी सहायता से सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त  
करता है । ४

१ पद्मम् ॥

२ सहोत्र्यम् ॥

३ प्र-दृतम् ॥

४ ददाश ॥



हे अग्निदेव, आप हमारे हवि आनन्त से देवों तक पहुँचा देते हैं । आप हमारे गृहोंके स्वामी और सब लोगोंके प्रतिनिधि हैं । देवोंने जितने मनातन निषेध बनाये हैं वे सब आपके यहाँ एकत्र हुए हैं ।

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, आप उत्तम भाग्य से युक्त हैं । आप में सम्पूर्ण हवि अर्पण किये जाते हैं । इस लिए आज, और उसके पागे भी हमें अत्यन्त सामर्थ्य प्राप्त कराकर, ऐसा कृत्रिम कि जिससे हमारा यज्ञ प्रसन्न रूप से देवों को प्राप्त हो ।

भक्तिमत्त उपासक, स्वयं अपने तेजसे दैदीप्यमान अग्निका अर्चन करते हैं । जिन पुरुषों ने शत्रुओं पर जय प्राप्त किया है वे अग्निको हव्य अर्पण करते प्रदीप्त करते हैं ।

अपने शत्रुओं का नाश करके वे उम सकट से पार हुए । स्वर्ग, पृथ्वी और जल प्रताहो को अपना निवासस्थान बनाने के लिए उन्होंने उनका विस्तार किया । सामर्थ्यवान अग्नि की पुकार करने पर वे ऋग्व के लिये सम्पन्निकाक हो और गोधन आदि वैभव के विषय में हमें इच्छा उत्पन्न होने पर ( न कि सिर्फ़ गोओं का ही शब्द, किन्तु ) अश्वों का भी ठेहनाना सुनाई दे ।

हे अग्निदेव, आप श्रेष्ठ हैं । आप अपने आसन पर विराजमान रहिये । देव समुदाय की ओर आप सदैव पधारते रहते हैं । अपना तेज प्रकट होने दीजिए । आप यज्ञ के योग्य हैं । आपका स्वन बहुते होता रहता है । आप अपने शीघ्र संचारी और रमणीय आकार धारण करनेवाले धुं के टोल झाँड़ दीजिए ।

सब देवों को हव्य पहुँचानेवाले हे अग्ने, आप अत्यन्त पवित्र हैं । मनु के लिए देवों ने यहाँ आपकी स्थापना की और ऋग्व, मेधातिथी, वृषा और उपस्तुत ने आप में उदारता प्रकट करने की, स्फूर्ति उत्पन्न की ।

१ मन्द्र. ॥

२ सुवीर्या ॥

३ स्वराजम् ॥

४ गविष्टिषु ॥

५ देववीतम् ॥

६ धनस्युतम् ॥

जिन्हें मेध्यातिथी और कृण्व नियम में भी अधिक उज्ज्वलित करते हैं उन्हीं अग्नि की ज्वालाओं ने अपना प्रखर तेज प्रकट किया है। ये स्तोत्र उन्हीं अग्निदेव की महती वर्णन कर रहे हैं। उन्हीं की हम भी स्तुति करते हैं। ११

हे हवियों से शोभित होनेवाले अग्निदेव, आप हमारे वैभव को पूर्ण कीजिए। मचमुच आप देवों के अत्यन्त समीपीय सम्बन्धी है। जो सामर्थ्य कीर्ति होने योग्य है, उसके स्वामी आपही है। आप श्रेष्ठ हैं, आप हमें सौख्य अर्पण कीजिए। १२

मविता देव की तरह आप हमारी रक्षा के लिए सज्ज होकर खड़े हो। जो कि अंजली बाध कर आपका स्तवन करनेवाले भक्तों के साथ हम आपको पुकारते हैं, इस लिए आप उठकर खड़े हो जाइये और हमें सामर्थ्य दीजिए। १३

हमारे लिए खड़े होकर हमें पापों से बचाइये और अपनी ज्वलन शक्ति से सब ग्लो को दग्ध कर डालिये। हमें उठाकर खड़ा कीजिए, जिससे हम संसार में सुख पूर्वक मंचार कर सकें। देव समुदाय में आपने हमारा ह्वय ग्रहण किया है। १४

हे अग्निदेव, राजसो से हमारी संरक्षा कीजिए। लोग द्रव्य डुवाने के मिस से जो कपट करते हैं उनका उपसर्ग हमें न पहुँचने दीजिए। जो हमारी हत्या या बध करने के लिए उत्तेजित हुआ हो उस से भी, हे अत्यन्त तरुण और प्रकाशपान् देव, हमें बचाइये।

१५ ( १० )

१ ईधे ॥

२ स्वधावः ॥

३ उतये ॥

४ विदा ॥

५ अराज्य ॥

हे अग्निदेव, आपकी दंष्ट्रा सानों ज्वालो ही में बनी हुई जान पड़ती है । जो हमारा धन डवानेवाला हो उसे, धन के सदृश किसी शस्त्र से, भिलकुल ही मार डालिये । जो ( नीच ) मनुष्य रात भर जाग कर हमारे विरुद्ध मसजदत करता हो उस हमारे शत्रु का हम पर अधिकार न चले । १०

अग्निदेव ने स्वयं पसन्द करके उत्तम सामर्थ्ययुक्त और उत्कृष्ट भाग्य रूप हो प्राण करा दिया । अग्नि ने मित्रों की रक्षा की । तथा उन्होंने, द्रव्योपासीन के समग्र, मेध्यातियी और उपस्तुत का भी प्रतिपाल किया । ११

हम तुर्वश, यदु, और उग्रदेव को, उनके अन्यन्त दूरस्थान से, यहा आने के लिये, अग्नि के द्वारा, प्रार्थना करते हैं । दस्यु का नियंत्रण करनेवाले ये अग्निदेव नववास्त्व वृहद्रथ और तुर्वीति को यहा ले आवे । १२

हे अग्निदेव, मनु ने इस नाते से, कि आप लोकहित के लिए प्रकाश करनेवाली ज्योति हैं, सदैव के लिए आप की स्थापना की । आप न्याय नीति के साध प्रकट हुए । घृत का हृद्य आप को सदा अर्पण किया जाता है । जिन्हे लोग के सम्पूर्ण लोग नमन करते हैं वही आप कण्व के लिए प्रदीप हुए थे । १३

अग्नि की ज्वालाएँ उच्चवलय, प्रबल, भयप्रद और तेसी हैं कि जिनके क. जाना असम्भव है । ( हे अग्निदेव ) राजस, पिशाच और सम्पूर्ण १४ लोगों को सदा के लिए दग्ध कर डालिये । १४ ( ११ )

१ अत्यक्तभिः ॥

२ सानो ॥

३ परावत ॥

४ ऋतजात ॥

५ श्रमवन्त ॥

### सूक्त ३७.

ऋषि ऋष घोर । देवता-मरुता।

हे कएव, मरुद्रणों को सम्बोधन करके गायन कीजिए । ये मरुद्रण सुन्दर गीति से रथ पर विराजमान हुए हैं । परन्तु वे अपने रथ में अश्व नहीं जुड़ाया करते । इन्हे क्रीड़ा बहुत अच्छी लगती है । १

ये मरुद्रण स्वयंप्रकाशित हैं । ये अपनी चित्तल हरिनी, अपनी तलवारे, अपने भाले, और अपने आभरण साथ लेकर इस जगत् में प्रकट हुए । २

जिस समय वे अपने हाथ से अपनी चाबुक की आवाज करते हैं उस समय वह मुझे ऐसी सुनाई देती है मानो वह चाबुक यहीं बज रही हो । मार्ग में चलते समय वे उमे बड़ी सुन्दर गीति से (अपने हाथ में) रखते हैं । ३

अपने प्रिय इन मरुद्रणों की प्रसन्नता के लिए किसी दैविक स्तोत्र का गान करेंगे । ये मरुद्रण ( शत्रुओंको ) कुचल डालनेवाले, तेजोवैभव से युक्त और अत्यन्त प्रबल हैं । ४

धेनुओं को प्राप्त करने के लिये, पराक्रमी और क्रीड़ा निपुण मरुद्रणों का स्तवन करेंगे । म्वादिष्ट रमोका सेवन करके ये वीर्यवान् हुए । ५ ( १२ )

स्वर्ग और पृथिवी को हिला डालनेवाले हे मरुदेवताओं, ( इस विश्व में ) ऐसा कौन श्रेष्ठ है कि जिसे तुम ( पृथ्वी के ) सिरे तक फेंक नहीं दे सके ? ६

१ अनर्वाणस् ॥

२ पृषतीभिः ॥

३ वदान् ॥

४ देवत्तस् ॥

५ जम्भे ॥

६ धृतय ॥

आपके गमन करते समय, आपके उग्र कोप से भयभीत होकर मनुष्य प्रत्येक वाग आधार ढंडने लगे है । कठोर शिखरो वाला पर्वत तब ( आपका होप देखकर ) भय कम्पित होगा । ७

उन मरुदेवों का संचार आरम्भ होते ही, यह पृथ्वी, उनके प्रागमन के समय, डर से, इस प्रकार थर थर कापने लगती, है जैसे तारुण्य से चीर्ण हुआ कोई नृपति । ८

उनका जहा जन्म हुआ वह स्थान अस्यन्त स्थिर है । अपनी माता के पैरों में बाहर निकलने के लिए वे पत्नी ही बन गये । क्यों कि उनका सामर्थ्य द्विगुणित था । ९

उमके अतिरिक्त उन वाग्देवी के पुत्रों ने विश्व की सीमाएँ बहुत दूर तक बढ़ाई, ताकि वे नु अपने वस्त्रों के पास अर्च्छी तरह जा सकें । १० ( १३ )

अपने मार्ग से जाने समय वे मेघ के बालक को नीचे गिरा देते हैं । इस मेघ बालक का आकार दीर्घ और त्रिभुज है । उसे प्रायः कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । ११

हे मरुदेवताओं, आपका सामर्थ्य इतना बड़ा है कि उसमें आप सब लोगों को हिला डालते हैं और पर्वतों को भी कम्पित करते हैं । १२

जिस समय मरुदेव गमन करते हैं उस समय मार्ग में आपसमें उनका होता है । वह क्या किमी ( भाग्यवान ) पुरुष को मुनाई देता होगा ? १३

- १ यामाय ॥
- २ जुजुर्वान् ॥
- ३ निरेतं ॥
- ४ अजंभु ॥
- ५ पृथुष ॥
- ६ अचुव्यवीतन ॥
- ७ अध्वन ॥

अपने शीघ्रसंचारी वाहन पर बैठ कर तुरन्त ही यहां आइये । कृष्व-मण्डली मे आपके लिए हव्य रखा है, उसमे आनन्द मानिये । १४

वास्तव मे आनन्द होने ही के लिए यह यहा रखा हुआ है । हम मनोभाव से केवल इन्हींके भक्त है । इन्होंने सम्पूर्ण जीवन हमारे अधीन कर रखा है, जिससे हम दीर्घकाल तक इस जगत् मे रहे सके । १५ ( १४ )

### सूक्त ३८.

ऋषि—काण्व घोर । देवता— मरुत् ॥

जिम प्रकार अपने पुत्र के तोतले वचन सुनने के लिए लोलुप होकर पिता उमका हाथ प्रेममे आकर पकडता है उसी प्रकार, हे मरुदेवताओ, आप हमे वास्तवमे क्य अपने हाथ मे लेगे ? सोमरसमे पड़े हुए दर्भ के टुकड़े निकालकर हमने उसे आपके लिए तैयार कर रखा है । १

वास्तवमे आप किस ओर को—किस प्रदेशको मन करके—जाने के लिए स्वर्ग से चले है ? क्या आप पृथ्वीकी ओर से नहीं आये ? आपकी गौएं कहा है ? उनका राभर्ना नहीं सुनाई देता । २

हे मरुदेवताओ, आपके लाये हुए अपूर्व वैभवं कहा है ? आपसे प्राप्त होनेवाली मन्पर्त्ति कहा है ? आपसे हमे जो सर्वसुन्दर सौभाग्य प्राप्त होनेवाले है वे कहां रये है ? ३

१ शीभम् ॥

२ जीवसं ॥

३ रुवप्रिय

४ रण्यन्ति ॥

५ सुम्ना ॥

हे पृथिवियों के पुत्रों, यदि मत्स्यों ने ही आप गिने जाते होंगे और पारहा  
 न्नुति करनेवाला आपका उपासक मात्र असमर्थ पाता होगा, १

तो सचमुच ही, जैसे किसी हरिनके घास चरनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं कर  
 सकता, वैसेही आपके सेवक पर भी किसीकी अपकृपा नहीं हो सकती और यम  
 के मार्ग में जाने के लिए वे कभी बाध नहीं हो सकते । ( ५ - १५ )

निर्दयता में हानि करनेवाली और बराबर बढ़ते जानेवाली सन्यानाशी ( आपत )  
 देवता हमें नारा करने में समर्थ न हो । महत्वाकांक्षा के साथही साथ उगला  
 भी नि.पात हो । ३

सचमुच, वे बलशाली, परन्तु भय उत्पन्न करनेवाले देवता, बिलकुल क्रम  
 प्रदर्शमें भी, वृष्टि करने हैं, और वायुकी ओर से वह वृष्टि खींचत नहीं  
 होने देते । ७

जब इनके द्वारा पर्जन्य की वृष्टि होती है तब बछेर के लिए गर्भनेाला  
 गौ की तरह विजली गर्जना करती है और माता जैसे अपने बच्चोंको पेट में  
 लगा लेती है उसी प्रकार ( मां जगन्को ) यह जोर में विपला  
 लेती है । ८

जिस समय ये पृथ्वी को पानी से तलातल कर देते हैं उस समय उदक  
 की वृष्टि करनेवाले पर्जन्य के द्वारा ये दिन में भी बना अन्धकार ही  
 है । ९

- १ स्वातन ॥
- २ अज्ञोध्य ॥
- ३ दुर्हणा ॥
- ४ अवाताम ॥
- ५ प्रिपानि ॥
- ६ व्युन्दन्ति ॥

मरुतों की गर्जना सुनते ही इस पृथ्वी पर का एक एक घर हिल जाता है। यही नहीं, बल्कि मनुष्य तक धरधर कापने लगता है। १० (१६)

हे मरुतदेवताओं, मार्गमें लेश न पाते हुए, नाना प्रकार की मनोहर नदियों के किनारे किनारे अपनी नामर्त्यवान् भुजाओं का प्रताप प्रकट करते हुए गमन कीजिए। ११

आपके रथों के पहियों की गैड़ें अभग हो। आपके रथ और उनके घोड़े भारी हो। आपके हाथ की लगाई चित्रित हो। १२

स्तुति करने की इच्छासे, ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित करके, और उसी प्रकार अग्नि तथा इस सुन्दर मित्र को भी ध्यान में रखकर, निरन्तर स्तोत्रों से प्रार्थित करते रहो। १३

नतत अररानेवाली वृष्टि की तरह उच्च धोपें करके स्तोत्र पाठ करो। स्तुतियों से परिपूर्ण किमी सुन्दर गीत का गान करो। १४

जो सामर्त्यवान तथा स्तुति करने योग्य है और अनेक स्तोत्रों से जिनका महात्म्य वर्णन किया गया है उन मरुतों के समुदाय को वन्दन करो। वे श्रेष्ठ मरुत यहा हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए, बैठे हुए हो। १५ (१७)

१ सन्न ॥

२ अस्त्रिद्रयामभिः ॥

३ अभीदाषः ॥

४ दर्शतम् ॥

५ ततन ॥

६ पतस्युष ॥



## ऋत्सू ३०.

ऋषि-ऋग्य पोर । मेन्ता-मरुत ॥

सम्पूर्ण जगत् को हिला देनेवाले हे मरुतो, जो कि आप अग्निज्वाला ही तरह अपना प्रतिविम्ब, उस प्रकार दूरके प्रदेश में, आगे की ओर डाल रहे हो, उस लिए किमकी करीमत में—किमके आग्रहमें—किमको मन में लाहर—वाम्बव में द्विग पर अनुग्रह करने के लिए—आप चले हैं ?

शत्रुओं का मत्यानाश करने के लिए आपके आयुध बगवद चलते रहे, प्राण आपका बल उनका योग्य प्रतिकार करे । प्रशंसनीय सामर्थ्य केवल आपही के पास हो, कपटो मनुष्य के पास कभी न हो ।

हे वीरो, जब स्थिर पदार्थों को आप उनके स्थान में हिलाते हो, और प्रयत्न जड़ वस्तुओं को भी जब आप ( बंगी की तरह ) फिराते हो, तब पृथ्वीपर के पर्वत और पर्वत की दरिप्योरियों में आपका गमन होता रहता है ।

हे शत्रुसंहारक महर्देवताओं, वास्तव में स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर अब आपका हाथ नहीं बचा । हे भयप्रद देवताओं आपको सदैव सामर्थ्य प्राप्त हो, ताकि आप पर आक्रमण कर सके ।

१ ऋत्वा ॥

२ पनीपसी ॥

३ व्याशाः ॥

४ तविषी ॥

ये पर्वतोंको कँपाते हैं और बड़े बड़े वृक्षों को भग्न करते हैं। ये मरुदेव, मर्दो-  
न्मत्त मनुष्य की तरह, अपने परिवार के साथ, इतस्ततः संचार करते  
रहते हैं।

५ ( १८ )

आपने चित्रविचित्र रग की हरिनियोंको अपने रथ में जुटाया है और उन सब  
के आगे एक लाल रग का हरिन रथ को खींच रहा है। पृथ्वी व्यानपूर्वक  
आपके आने की आहट ले रही है और मनुष्य भय में व्याकुल  
हो रहे हैं।

६

हे मर्दो आप जिस प्रकार हमारी रक्षा करते हैं उस प्रकार की रक्षा की  
याचना, हम, मरुदेव, और वह भी तुरन्त ही किससे करें? आप पहले जिस  
प्रकार हमारी रक्षा की लालसा से आते थे उसी प्रकार अब भी इस भयानुस कख  
को प्रसन्न करने के लिए यहां आइये।

७

कोई भी मनुष्य, फिर वह चाहे आपका भेजा हुआ हो, चाहे अन्य मनुष्यों  
का चिन्ताया हुआ हो, यदि हम पर आक्रमण करने के लिए आता हो तो आप  
अपने सामर्थ्य से, शक्ति से, अथवा अपने भक्तजन-संरक्षक शक्तों से उनके दो  
टुकड़े कर डालिये।

८

हे अत्यन्त ज्ञानशील और यज्ञार्थ मरुदेवताओ, आप कख को जो कुछ  
( वैभव ) अर्पण करनेवाले हो वह सम्पूर्ण अर्पण कीजिए और जिस प्रकार विद्यु-  
त्प्रता का आकर्षण पर्जन्य वृष्टि की ओर होता है उसी प्रकार आप, हमारी सरक्षा  
के सम्पूर्ण साधन लेकर, हमारी ओर आइये।

९

१ विञ्चन्ति ॥

२ रोहितः ॥

३ मधु ॥

४ शवसा ॥

५ प्रयज्यथ ॥

मनुपूर्ण जगत को हिला डालनेवाले और दानकर्मनिपुण मरुदेवताओं, आप अपना सब सामर्थ्य और शक्ति अपने पास रखिये, और जो जो भोगिष्ठ पुरुष ऋषियों का भी द्रव्य करता हो उस पर, बाणही तरह, होडे का छोड़ दीजिए ।

( १५ )

### सूक्त ४०.

ऋषि-रथ्य पोर । देवता अश्वमेध ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव, उठिये, देवताओं की भक्ति करनेवाले उपासक आपके दर्शन की इच्छा करते हैं । अत्यन्त उदार मरुन यहां आये । हे इन्द्र, उनके साथ आप ( सोमरस ) का आन्वाह लीजिए ।

सामर्थ्यमें प्रादुर्भूत होनेवाले हे देव, धन की राशि प्राप्त करने के अवसर पर ( प्रत्येक ) मनुष्य आपही को बुलाता है । हे मरुतो, जो ( भक्त ) आपको पुकार उसके लिए सुन्दर अश्वों से युक्त उत्तम सामर्थ्य तैयार कर रखिये ।

ब्रह्मणस्पति यदा आये, देवी मनुता उदर आगमन करे । देवता लाग उस पेसा यज्ञ करने की मूर्ति दे कि जो अस्माह से हुआ करे, जो मनुष्यों के लिए हितकारी हो और जिसमें अनेकों को नन्ताप प्राप्त हो ।

वह धन, जो मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी है, भाविक पुरुष का कोई अर्पण करता है वह अन्नय कीर्ति पाता है । उसके कथ्याणार्थ हम उवा दस । हव्य अर्पण करते हैं । इला देवी पेसी ह जा वीरों का लाभ हमला है, मनुष्यों का निपात करती है और जिन्हे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता ।

१ परिमन्यवे ॥

२ प्रायुः ॥

३ आचके ॥

४ पदिकगधसम ॥

५ सुप्रवृत्तिम् ॥

मन्त्रमुच जिममे इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवता वास करते हैं वह अत्यन्त प्रशंसायोग्य मन्त्र ब्रह्मणस्पति पढ़ रहे हैं । ५ ( २० )

यज्ञ में हम हैं देवताओं, वहीं कल्याणकारी और अविनाशी मन्त्र पढ़ते जायें । हे वीरों, आप इस स्तुतिका भी अंगीकार कर रहे हैं, अतएव आपके भक्तको आप नें प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण सुख ( निरसन्देह ) भोगने को मिलेंगे । ६

भक्तिमान् मनुष्य को कौन ग्रस सकता है ? सोमरस से ढभों के अग्र निकाल डालनेवाले उपामक को कौन पराभूत करेगा ? हव्य अर्पण करनेवाले मनुष्यका, उसके सम्पूर्ण परिवार सहित ( आज तक सदैव ) उत्कर्ष ही होता रहा है और उमने ( सदाही ) सम्पूर्ण समृद्धि से भरे हुए भवन खड़े किये हैं । ७

वे ( ब्रह्मणस्पति ) अपना सम्पूर्ण बल एकत्र करेंगे, क्योंकि राजाओं के द्वारा वहीं ( शत्रुका ) बध कराते रहते हैं । भय के अवसर पर भी वे ( निर्भय ) निवासस्थान तैयार कर रखते हैं । झोंटे, अथवा चंडे युद्धमें भी, इन्हीं वज्रधारी देव का सामना करनेवाला अथवा उनका पराभव करनेवाला कोई नहीं । ८ ( २१ )

### सूक्त ४१.

नाम ऋग्वेद चार । देवता-१-३ ०-८ वरुण, मित्र अथवा । ४-६ आदिभ्य ॥

अत्यन्त प्रशंसित मित्र, वरुण और अर्यमा देव जिसकी रक्षा करते हैं उस मनुष्य के लिए क्या किसी के द्वारा हानि होना सम्भव है ? १

- १ उरुधम ॥
- २ प्रतिहर्यथ ॥
- ३ पन्थाभि
- ४ सुक्षितिम् ॥
- ५ दभ्यते ॥

जिन मनुष्यों का, मानो अपनी मुर्जा पर उनका सब भार गिरे, उन को पोषण और शत्रु से रक्षण करते हैं वे मनुष्य सम्पूर्ण भय से मुक्त होते हैं वैभवशाली बनते हैं ।

ये ( सम्पूर्ण विश्व के ) राजा अपने सामने उनके ( अर्थात् भक्तों के ) भक्तों का और शत्रुओं का नाश करते हैं और उनके अरिष्ट समूह नष्ट करते हैं ।

हे आदित्यों, जो नीतिपथ की ओर जाता है उसका मार्ग सुगम योग निरुद्ध होता है । अतएव, आपको भी गुरे ( मनुष्य ) का हँसि मिलना कभी सम्भन नहीं ।

हे शूर आदित्यों, जिस यज्ञ के लिए आप सरल मार्ग दिखलाकर मार्गोपदेशक बनते हैं वह क्या कभी आपका स्तवन करना भूलेगा ?

यह मनुष्य कहीं पराभव न पाते हुए उत्तम सम्पत्ति, सब प्रकार का वैभव प्राप्त करने को आपही आप प्राप्त करता है ।

प्राणप्रिय मन्त्रियों, मित्र और अर्यमा का स्तोत्र और वरुण का उद्गृहण करने भला किस प्रकार मजाना चाहिए ?

जो मनुष्य आपको गाली गलौज करे अथवा आपकी वृणा का-पिण्ड न चाहे नाविक ही क्यों न हो तथापि—उसके साथ भेरा सम्भाषण न हो । आपकी कीर्ति हुई सम्पत्ति पर से सन्तोष मान कर चलता है ।

१ वाहुतेव ॥

२ दुर्गा ॥

३ अवधादः ॥

४ तन्नत् ॥

५ अस्तुत ॥

६ धस ॥

७ मुन्ने ॥

जो चारो ( पुरुषार्थ ) देनेवाला है और जिसके पास सम्पत्ति का कोश है, उसका भय नडा रखना चाहिए । उसके विषय में दुरुक्ति बोलने की लालसा न रखनी चाहिए ।

६ ( २३ )

## सूक्त ४२.

ऋषि-ऋष्व घोरे । देवता-प्रपा ॥

हे पूषा, हमे मार्ग ने ले जाइये, हे विमोचन पुत्र, हमे सकटो से मुक्त कीजिए,  
हे देव हमारे पान ही चलिये । १

हे पूषा, जो घृणायोग्य और दुष्ट भेड़िया हमारा मार्गोपदेशक बनना चाहता  
हो उसे मार्ग ने निकाल डालिये । २

जो कपटी चोर हमारे मार्ग ने विघ्न करता है उसे मार्ग से दूर भगा दीजिए । ३

दुर्वचनी और टुटपी मनुष्य के तापदायक शरीरपर—फिर वह कोई भी हो—  
पैर रखकर नडे हो जाओ । ४

हे सुन्दर प्रज्ञावान पूषा, जिस अपने कृपाप्रसाद के योग से आपने हमारे पितरो  
को वैभव सम्पन्न किया उन्हीं आपके कृपाप्रसाद की हम इच्छा करते हैं । ५ ( २४ )

१ निधातो ॥

२ तिर ॥

३ दु शैव ॥

४ दुरक्षितम् ॥

५ तपुषिम् ॥

६ भन्तुम् ॥

हे सकलसौभाग्यवन्त, हे सुवर्णशतों से विभूषित देव, हमें सकल मन्पत्ति सुलभ करीजिए ।

जो हमारा पीछा करनेवाले हो उनके बीच से हमें बचा ले जाये योग हमारे मार्ग जाने के लिए सुलभ कर दीजिए । हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहाँ क्या करना उचित है ।

हमें ऐसे प्रदेश में ले जाइये जहाँ वृणकी विपुलता हो और मार्ग में कोई भी नवीन ताप उत्पन्न न हो । हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहाँ क्या करना उचित है ।

हे पूषा, आप सामर्थ्यवान हैं ( इस लिए ) हमारी ( इच्छाएँ ) परिपूर्य करीजिए हमें ( मन्पत्ति ) दीजिए । हमें वृत्त करीजिए । यह आपको विदित ही है कि यहाँ क्या करना उचित है ।

हम पूषा की निन्दाएँ कदापि नहीं कर सकते, किन्तु उत्तम स्तौतियों में हमारा स्तवन करेंगे । इस सुन्दर देवता से हम वेभवा की याचना करते हैं । १० ( २५ )

### सूक्त ४३.

ऋषि—व्यास ऋषि । देवता १, २, ४, ६ इन्द्र, ३ मित्र और ५ वृण, ७-९ याम ॥

अत्यन्त प्रज्ञाशालि, अतिशय उदार, अतिशय बलवान और इन्द्र की अत्यन्त प्रमोददायक ऋद्धि को प्रमत्त करने के लिए हम भला स्तोत्र ऋक् पढ़ें ?

- १ सुषणा ॥
- २ सश्वतः ॥
- ३ क्रतुम् ॥
- ४ विड ॥
- ५ मेधाप्रसि ॥
- ६ प्रो हृष्टमाय ॥

इसके योग से अदिति देवी हमारे बालबच्चों के लिए, गौत्रों के लिए, सेवक  
जनों के लिए और पशुओं के लिए रुद्र के उत्तम आशीर्वाद लावेगी । २

( और ) इसके योग से मित्र, वरुण, रुद्र, और उनके सार्थवाले सब ( देवों )  
को हमारी पहचान रहेगी । ३

अपने कल्याण की इच्छा रखनेवाला भक्त, सब स्तुतियों के नाथ, सब यागों  
के स्वामी, और जलोपधियों के प्रभु रुद्र से जो धन मागता है उसी धन की  
हम याचना करते हैं । ४

रुद्र देवताओं के श्रेष्ठ वैभव है और इनका तेजें दैदीप्यमान सूर्य के समान  
और कान्ति सुवर्ण के समान है । ५ ( २६ )

ये ऐसा करते हैं कि जिससे हमारा अश्व, भेड़ी, भेडा, हमारे दास, दासी और  
धेनु उत्तम रीतिसे आनन्द में रह सकती हैं । ६

हे सोम हमारे लिए सैकड़ों मनुष्योंका धन और अनेक शूरोर्का यश संचित  
कर रखिये ७

सोमको सतानेवाले अथवा हम से शत्रुता रखनेवाले लोग हमारे साथ उपद्रव  
न करे । हे इन्द्र, सामर्थ्यका कृत्य होते समय आप हमारे निकट रहिए, ८

१ तोकाय ॥

२ सजोषसः ॥

३ सुम्नम् ॥

४ शुक्र ॥

५ सुगम् ॥

६ तुविष्टम् ॥

७ पाजे ॥



मण्ड० १। अध्या० ३। व० २७, २८ ]

ऋग्वेद

[ मण्ड० १। अतु० २। सू०

आप अमर है। आपका जो प्रजाजन नीतिमत्तके अत्युच्च स्थल पर प्रतिष्ठित  
ता है उसे, हे सोम, आपने अपने पेट में लगाया है—उसे आपने अपने मन्तक  
धारण किया है, आपको यह मालूम है कि वे ( दिव्य तेजसे )  
मुपित हुए।

## अनुवाक १.

६ ( २ )

### सूक्त ४४.

ऋषि—प्रमृक्ण्व । देवता—अग्नि ॥

हे अमर अग्निदेव, आप उषा देवी के आश्चर्यकारक और उज्वल वरदान है।  
हे अखिल ज्ञानवन्त, आप प्रातःकाल में प्रबुद्ध होनेवाले देवों को, आज हम  
अर्पण करनेवाले भक्त के पास ले आइये।

हे अग्निदेव, आप सत्वर यज्ञों की सागता करानेवाले और देवों को  
हव्य पहुँचानेवाले है। अनन्व, आप सचमुच हमारे प्रिय प्रतिनिधि है। अग्नि  
और उषा के साथ आकर आप हमें उत्तम पराक्रम से युक्त विपुल कीर्ति का  
अधिकारी बनाइये।

अग्निदेव मानों यज्ञों के वैभव ही है। वे तेजस्वरूप, धूम्र की वज्रा से  
युक्त, अनकों को प्रिय, और मूर्तिमान सम्पत्ति ही है। उनका हम  
उपःकाल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही अपना प्रतिनिधि नियत करते हैं।

१ नाभा ॥

२ उषर्वुधः ॥

३ श्रव ॥

४ भान्तजीह्वा ॥

जो श्रेष्ठ और अत्यन्त तरुण है, तथा जो उत्तम हवियों का सन्मान प्राप्त करनेवाले अतिथि, और हव्य अर्पण करनेवालो भक्तजनो को प्रिय है, उन सर्वज्ञ अग्निदेव की उप काल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही, मैं स्तुति करता हू । ४

विश्व को पालनकरनेवाले हे अमर अग्नि, हव्य पहुँचानेवाले यज्ञार्ह देव, आप हमारे अत्यन्त पूज्य संरक्षणकर्ता है, अतएव मैं आपका स्तवन करूंगा । ५ ( २८ )

आप मधुरभाषी, और सुन्दर हवियों का सन्मान पानेवाले है । हे अत्यन्त तरुण देव, आपके स्तवन भी उत्तमोत्तम हुए है । इस लिए स्तुति करनेवाले भक्तों के लिए आप जागरूक रहिये । आप पस्कण्व की आयु बढ़ाइये, ताकि वे दीर्घकाल तक जगत में रहे, और देवसमुदाय को हमारी प्रणति अर्पण कीजिए । ६

आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले और सर्वज्ञ है । सचमुच आपही को सब लोग प्रार्थना करते हैं । इस लिए सबकी ओर से निमन्त्रित होनेवाले हे अग्निदेव, आप अत्यन्त प्रज्ञाशील देवताओं को सत्वर यहां ले आइये । ७

रात्रि के समाप्त होने पर स्वच्छ प्रातः काल होते ही मविता, उषा, अश्वि, भग और अग्नि को (यहां ले आइये) । हे यज्ञ के सिद्धिदाता अग्निदेव, आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले है । अतएव ये कण्व सोमरस तैयार करके, आपको प्रञ्जलित कर रहे हैं । ८

१ ज्युष्टेषु ॥

२ मियेध्य ॥

३ स्वाहुत ॥

४ इन्धते ॥

५ सुतसोमासः ॥

अष्ट० १ । अध्या० ३ । व० २९, ३० ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ । अनु० १ । म० ३३

हे अग्निदेव, सचमुच आप यज्ञों के स्वामी और मनुष्यों के प्रतिनिधि हैं। प्रभातकाल में ही जागृत होनेवाले और स्वर्गलोकको अपनी दृष्टि में रमनेवाले— देवों को आज सोमपान के लिए ले आइये।

६

दीपिवैभवों से युक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, आप सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त सुन्दर हैं। आप पूर्वकालीन उपाओं के पीछे पीछे प्रकाशित होते रहते थे। प्रामो में आपही सबों के संरक्षण करनेवाले हैं और यज्ञों में जो ( यज्ञ ) मनुष्यों को प्रिय है उसके अग्रणी भी आप ही हैं।

१० ( २० )

आप यज्ञों के साधनीभूत, देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले आचार्य, अत्यन्त प्रजाशील, सत्वर गमन करनेवाले प्रतिनिधि और मृत्युरहित हैं। हे देव, आपही को हम जन समुदाय में ( लेजाकर ) प्रस्थापित करते हैं।

११

आप स्वामिनों को अर्निन्ददायक ( यज्ञ के ) आचार्य और हमारे अन्तरंग हैं। आप जब देवों के दृतकर्म के लिए गमन करते हैं तब आपकी ज्वाला, वज्र बड़ी गर्जना करनेवाले सिधु की लहरों की तरह, शोभित होती है।

१२

हे अग्निदेव, आपके कान प्रार्थना सुनने के लिए विलकुल तत्पर रहते हैं। अपने माध्व संचार करनेवाले और भक्तों की चिन्ता रखनेवाले देवताओं के माध्व आप ( हमारी स्तुति ) सुनिये, हमारे यज्ञ में पधारनेवाले मित्र और अर्गमा प्रातः-कालही दर्भासन पर विराजमान हो जावे।

१३

१ स्वर्दशः ॥

२ विभावसो ॥

मरुदेव, जो अतिशय उदार है—और जो नीतिनियमों को उत्तेजना देते हैं तथा अग्नि के द्वारा जिनकी जिहा वृष हांती है—वे हमारी स्तुति श्रवण करें। अपने अनुशासन को कार्गुरुप में परिणत करनेवाले वरुण, अश्विन और उषा के साथ, सोम का पान करें।

१४ ( ३० )

### क्तसू ४५.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व । देवता-अग्नि, देव ॥

हे अग्निदेव, वसु, रुद्र और आदित्यों का मन्मान कीजिए। धृत का हव्य देनेवाले, उत्तम यज्ञ करनेवाले और मनु से जन्मे हुए जो पुरुष हो उनका भी इस यज्ञ में मन्मान कीजिए।

१

रक्तवर्ण अश्वों से युक्त रहनेवाले हे स्तुतिप्रिय अग्निदेव, ( सव ) देवता अत्यन्त प्रजापान हैं और हवि अर्पण करलेवाले भक्त की प्रार्थना सुनने में सचमुच ही वे अत्यन्त तत्पर रहते हैं। ( इस लिए ) उन्हें यहा ले आइये। उनकी कुल मन्त्या नेतीम है।

२

हे जातवेद अग्निदेव, आपकी आज्ञापं बहुत श्रेष्ठ है। आप प्रियमेध की तरह, अत्रि की तरह, विरूप की तरह और अंगिरा की तरह, प्रस्कण्व की भी पुकार सुनिये।

३

बड़े बड़े स्तोन गानेवाले प्रियमेधों ने अपनी रक्षा के लिए, स्वतेज से यज्ञ में प्रकाशमान होनेवाले देदीप्यमान अग्नि को ही आमन्त्रण दिया था।

४

१ अग्निजिहा ॥

२ धृतशुषम् ॥

३ श्रुष्टीवान् ॥

४ श्रुष्टि ॥

५ महिकेरय ॥

घृत की हवियों का स्वीकार करनेवाले हे उदार देव, जिन स्तुतियों के द्वारा ऋग्वेद के पुत्र आपको हवन करते हैं उन्हें आप श्रवण कीजिए । ५ ( ३१ )

प्रार्थना श्रवण करने में आपकी शक्ति आश्चर्यकारक है । आप अनेक जनों को प्रिय हैं । आपके केश ज्वालारूप हैं । हे अग्निदेव, ( देवों के पाम ) हव्य ले जाने के लिए, इस जगत् के लोग, आपका पूजन करते रहते हैं । ६

आप हवि अर्पण करनेवाले, यज्ञ के आचार्य, अत्यन्त सम्पत्तिमान, भक्तों को पुकार मुननेवाले और अत्यन्त कीर्तिमान हैं । विद्वान् लोग यज्ञ में आपही की संस्थापना करते हैं । ७

हे अग्निदेव, जिन्होंने सोमरस तैयार कर रखा है, जो अतिशय कान्ति में युक्त है और जिन्होंने हव्य हाथ में लिया है उन विद्वान् लोगोंने भक्तिशील मनुष्यों के लिए, आपका मन हवि के अन्न की ओर आकर्षित किया है । ८

सामर्थ्यों में जन्म पानेवाले हे उदार अग्निदेव, हे मूर्तिमन्त वैभव, प्रांत काल में ही ( बाहर गमन करनेवाले देव समुदायों को, आज, इस यज्ञ में सोमपान के लिए, दर्भासनो पर, ला बैठाइये । ९

हे अग्निदेव, देवसमुदायों को यहा ले आइये और उन सब को एक ही दृष्टि डेकर तृप्त कीजिए । हे अत्यन्त उदार देवों, यहा यह सोम रखा है । पान कीजिए । यह कर्ल का तैयार किया हुआ है । १० ( ३२ )

१ घृताहवन ॥

२ विभु ॥

३ दिविष्टिषु ॥

४ यज्ञात् ॥

## सूक्त ४६.

ऋषि-प्रस्थव्य काण्व; देवता-आग्नेय ॥

वह अपूर्व तेजोयुक्त उपादेवी, जो गुलोको को प्रिय है, अपना प्रकाश डाल रही है। हे अश्विनो, मैं हृदयसे आपकी स्तुति करता हूँ । १

ये अश्विनीदेव सुन्दर हैं । सिन्धु उनकी जननी है । जब हम वेगवान पुरुषोंसे इनकी तुलना करते हैं तब जान पड़ता है कि ये अपने वेगसे मनको भी पीछे कर देते हैं । ये हृदयपूर्वक ( भक्तों को ) धन अर्पण करते हैं । २

आपके उन अश्वोंके योगसे, जो वेगसे दौड़नेमें मानो पत्नी<sup>३</sup> ही है, जब आपका रथ सड़ासड़ा उड़ता जाता है उस समय अति पुरातन स्वर्गलोकमें भी आपके स्तोत्र गाये जाते हैं । ३

ये सर्वसंचारी और सर्वतृप्रीकारक ( सूर्य ) देव, कि जिनपर उदकोका प्रेम है और जिनमें पानीके बाल्ले उत्पन्न होते हैं, आपको हवियोंसे सन्तुष्ट करते हैं । ४

हे स्तुतिप्रिय और सत्यस्वरूप अश्विनीदेवताओं ! ( सोमरस ) आपके मनके कपाट खोलता है । अतएव, आप मनमानी रीतिसे सोमरस पान कीजिए । ५ ( ३३ )

१ अपूर्व्या ॥

२ मनोतरा ॥

३ विभिः ॥

४ बुटस्य ॥

५ धृष्णुया ॥

अहो अश्विनो, आप हमे अपनी उस कृपा का लाभ करा दीजिए कि जो उज्वल प्रकाश डालकर हमे अंधकार से निकाले । ३

आप यहां पधारिये, ताकि आपकी कृपारूपी नौका मे बैठकर हम ( दु खसागर ) से पार हो सके । हे अश्विनो आप अपना रथ जोतिये । ७

जब कि नदियों के किनारे से आप गमन करते है तब आपका रथ ही, स्वर्गलोक से भी विस्तीर्ण, आपकी नौका होती है । आपके लिए भक्तिपूर्वक हमने यहा सामरस तैयार कर रखे है । ८

हे कएवो ! स्वर्ग के प्रदेश मे आल्हाडदायक तेज भर रहा है और नदियों के निवासस्थान मे तेज.पुंज वैभव दृग्गोचर हो रहा है । अतएव, ( हे अश्विनो, ) आप अपने दिव्य देह भला कौनसी जगह ले जाइयेगा ? ९

यह देखिये, चारो ओर अपने रश्मि फेकने के लिए प्रभा मज हुई है । और यह देखिये, इधर सूर्य ( उदय हुआ ) । यह काचन की ही प्रतिमा है । कृष्णवर्ण ( अग्नि ने भी ) अपनी जिह्वा बाहर निकालकर अपनी दीप्ति प्रकट की है । १०

हमे दु खसे पार लगाने के लिए धर्मनीति का मार्ग स्पष्ट देख पड़ने लगा है और स्वर्ग की वाटभी दृष्टि पड़ने लगी है । ११

१ रासाथाम् ॥

२ तीर्थे ॥

३ वत्रिम ॥

४ अश्विनः ॥

सोमपानने आनन्द होते ही जो अश्विनदेव भक्तोंको भरपूर वैभव देते हैं उनके उस कृपा प्रसादका स्तोत्रार्जन सदा बखान करते रहता है । १२

जिस प्रकार ( पहले ) आप मनुकी भेटको गये थे उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाओंसे और सोमरसपान से प्रेरित होकर, विवस्वत के लिए अपना तेज प्रकट करते हुए हमारे कल्याणकर्ता आप यहां आइये । १३

आपके परिभ्रमण करते समय आपके मार्गके अनुरोधसे उषाने भी अपना मार्गक्रमण आरम्भ किया । रातमें किये हुए यागकर्म आपको बहुत अच्छे लगते हैं । १४

हे अश्विनो, आप दोनों अपनी अखण्ड कृपासे हमें सौख्य अर्पण कीजिए और दोनों सोमरस का पान कीजिए । १५ ( ३५ )

## चौथा अध्याय

### सूक्त ४७.

ऋषि-प्रह्लाद्व काण्व देवता-अश्विन ॥

नीतिधर्म-परिपालनमें आनन्द माननेवाले हे अश्विनीदेवताओं, यह अत्यन्त माधुर्ययुक्त सोमरस आपके लिए निकाल रखा गया है । वह कलका ही तैयार किया हुआ है — उसका पान कीजिए और अपने भक्तोंके लिए उत्तम सम्पत्तिका भाण्डार भर रगिये । १

१ जग्निता ॥

२ शम्भु ॥

३ त्रियम् ॥

४ अविद्रियामि ॥



हे अश्विनो, जिस आपके रथमे तीन बन्धुरा है, जो त्रिकोणाकृति है और जो देखनेमे सुन्दर है उस अपने रथमे बैठकर यहां आइये । इस गजमे कण्व आपकी स्तुति करते है । उनकी पुकार आप श्रवण कीजिए । २

न्यायनीतिके उतेजना देनेवाले हे अश्विनीदेवताओ, इस अत्यन्त मधुर सोमरस का पान कीजिये और हे मूर्खपवान देवो, अपने रथ के द्वारा बहुतसी सम्पत्ति ले आकर भक्तजनोके पास पधारिये । ३

इस रीतिमे विछे हुए दर्भासनपर, कि जिसपर आप तीनों एकदम बैठ सकेगे, ( आरूढ होकर ) हे सर्वज्ञ देवो, आप हमारे यज्ञको माधुर्य मे परिणत कीजिए । हे अश्विनो, ये तेजस्वीपन से सुशोभित होनेवाले कण्व सोमरस तैयार करके आपको निमन्त्रण दे रहे है । ४

हे अश्विनो, आपने जिस अपनी कृपा के सामर्थ्यमे कण्वकी रक्षा की उसी सामर्थ्यसे युक्त होकर हमारी भी रक्षा कीजिए, क्योंकि आप सम्पूर्ण मंगलताके स्वामी और न्यायनीति को उतेजना देनेवाले है । ५ ( १ )

अहो सुन्दर अश्विन देवो, जो कि आप मुदास के लिए सम्पत्ति ले आये, इस लिए अपने रथके द्वारा ( हमारे लिए भी ) जीवन-सामग्री ले आइये । जिमे बहुत लोग ताकते रहते है वही वैभव हमे अर्पण कीजिए । फिर उमे आप चाहे महासागरमे जावे, चाहे स्वर्गके आसपासवाले प्रदेश मे लावे । ६

१ सुपेशसा ॥

२ दाश्वांसम् ॥

३ त्रिषधस्ये ॥

४ अभिष्टिभिः ॥

हे सत्यम्बरूप अश्विनदेवताओं, आप तुर्वश के समीप रहिए अथवा बहुत दूर रहिए। वहा से, अपने सुन्दर रथ में बैठकर यहां आइये और आते समय सूर्य के किरणों को भी साथ लेते आइये। ७

आपके अश्व, जो यज्ञ के लिए ललामभून है, आपको हमारे हव्यों की ओर ले आवे। अहो शूरो, जो सदाचारी भक्त आपको प्रेम से हव्य अर्पण करता हो उसे पूर्ण समृद्धि प्रदान करके आप इस कुशासन पर विराजमान हूजिए। ८

हे सत्यम्बरूप अश्विनी देवताओं, सूर्य को भी आच्छादित कर देनेवाले अपने रथ में बैठकर उभर आइये। जब जब आपको मधुर सोमरस पान करने की इच्छा होती है तब तब आप मदा इसी रथ के द्वारा अपने भक्तों के लिए सोमरस लाने रहते हैं। ९

अनेक वैभवों से सम्पन्न अश्विनीदेवोंको हम स्तुतिस्तोत्र गाकर अपनी ओर पाचारण करते हैं। हे अश्विनो, आपने अपने प्रिय कण्ठों के सदन में जाकर सचमुच मदा सोमपान किया है। १० (२)

### मूक्त ४८.

नपि-प्रसव्य देवता-३५ ॥

हे सुलोक-उहिते उपादेवी, आप अपनी अत्यन्त सुन्दर कान्ति के साथ यहा हमारे लिए सुप्रकाशित हूजिए। हे देदीप्यमान देवी, आप दानेशूर हैं, अतएव विपुल सम्पत्ति और वैभव साथ लेकर ( यहा प्रकाश फैलाइये )। १

१ सुवृता ॥

२ इषम् ॥

३ भूर्पत्वचा ॥

४ पपथु ॥

५ दास्यती ॥

हे उषादेवी, सम्पूर्ण देवताओंको अन्नरिज मे. सोमपानके लिए, गहा ले प्राडये. और, हे उषे, हमारे शरीरमे ऐसा मामर्ष्य लाडये कि जिमके द्वारा हम अपना वीर्य दिखला सके, जिसकी बहुत प्रशंसा हो और जिमके कारण हम वेनुओं और अथोहा लाभ कर सके ।

१०

यह उषा, कि जिसके उज्ज्वल और कल्याणकारक किरण देय्य पडने लगे त. हमको प्रयास न पडते हुए ऐसी उत्तम प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण करे कि जिमे मा लोग चाहते हो ।

१३

जिन प्राचीन ऋषियो ने. हे श्रेष्ठ उषादेवी, अपनी रक्षाके लिए आपको पानारण किया ( उनकी प्रजा की आप पात्र हुई ) हे उज्ज्वल कान्तिसे ( युक्त रहनेवाली ) उषा, आप हमपर अपनी कृपा कीजिये और हमारे मनोत्रो पर अपनी प्रशंसोबुद्धि व्यक्त कीजिए ।

१४

हे उषादेवी, जो कि आज आपने अपने तेजसे स्वर्गके द्वार खोल दिये हैं, उषा लिए, हे देवी, ऐसा कीजिये कि जिममे हमे ऐसा विशाल मन्दिर मिले कि, जहा शत्रुओं का भय न हो, और हमारे विषय मे ऐसी कृपा रखिये कि जिममे हमे वेनु प्राप्त हो ।

१५

हे मामर्ष्यवान श्रेष्ठ उषादेवी, हमे अखिल प्रकाशकी सम्पत्तियोमे, समृद्धियोसे, सर्वत्र फैलनेवाले कीर्तिवैभवसे और बलसे परिपूर्ण कर दीजिए । १६ ( ५ )

१ उभयम् ॥

२ हशतः ॥

३ अभिगृणीहि ॥

४ अश्रुकम् ॥

५ विश्वपशमा ॥

## सूक्त ४९.

ऋषि-परशुम्व काण्व, देवता-उषा ।

हे उषादेवि, देदीप्यमान दुलोक के ऊपरवाले भागकी ओरसे, अपनी कल्याण-प्रद कान्तिसे ( विभूषित होकर ) यहा आइये । आपके रक्तवर्ण अश्व, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्त के भवन की ओर आपको ले आवे । १

हे उषादेवी, जिस सुखदायक और सुन्दर रथपर आप विराजमान हुई है उसके द्वारा आकर, हे दुलोक कन्ये, उत्तम कीर्ति की इच्छा करनेवाले इन मनुष्यों की रक्षा कीजिये । २

हे देदीप्यमान देवि, दुलोक के आसपासवाले भागोंसे आपका आर्गमन होते ही, उड़नेवाले पक्षी, तथा द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी, बाहर निकलने के लिए तैयार हुए । ३

जो कि आप अपने किरणों से प्रकाश फैलाकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशमय कर डालती है उन्हीं आपकी, हे उषे, कण्वों ने, सम्पत्ति की इच्छा धारण करके, स्तोत्रोंके द्वारा, पुकार की है ४ ( ६ )

## सूक्त ५०.

ऋषि-परशुम्व काण्व, देवता-सूर्य ।

उस सर्वज्ञ सूर्य को उसके रश्मि यहा ले आ रहे है, ताकि सबको उसका दर्शन हो जाय । १

१ अरण्यसव ॥

२ ऋतन् ॥

३ रोचनम् ॥

अट० १। अध्या० ४। व० ७,८ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १। अनु० २। म० ५०

इस सर्वदर्शी सूर्य को देखकर नक्षत्र, रातके साथ, चौरों की तरह भागते हैं। २

जब यह सम्पूर्ण लोको पर प्रकाश फैलाने के लिए आता है तब अग्नि की तरह तेजस्वी इसके उज्ज्वल रश्मि दिखाई देते हैं। ३

हे सूर्य, आप प्रकाश देनेवाले, सब में अत्यन्त सुन्दर और सर्व-मन्त्री हैं।

इस अखिल जगत् पर प्रकाश फैलाकर आप उसमें उज्ज्वलता लाते हैं। ४

देवसमुदाय, मनुष्य, ( किवहुना ) सम्पूर्ण विश्व के सामने आप स्पष्ट गीर्ती में प्रकाशमान होते हैं, ताकि आपका प्रकाश सब को दिखाई दे। ५ ( ७ )

इस के द्वारा हे वरुण, हे जगत् को पावन करनेवाले देव, आप सब लोगों का भार सहन करनेवाले इस जगत् की ओर, अपने नेत्रों से देख सकते हैं। ६

हे सूर्य, आप, सब प्राणिमात्र का निरीक्षण करते हुए, और रात्रि के द्वारा दिनका मापन करते हुए, दुलोकपर, तथा विस्तीर्ण रजोलोकपर, आगमन करते हैं। ७

१ तायवः ॥

२ तरणिः ॥

३ प्रत्यङ्गः ॥

४ भुरण्यन्तम् ॥

५ मिमानः ॥

हे सर्व निरीक्षक सूर्यदेव, आपके केशों दीप्तिमय हैं, आपको सात रक्तवर्ण अश्व रथ के द्वारा लाते रहते हैं ।

८

जो ( रथ के अगले भाग में जुटाये जाने के कारण ) लगे हुए हैं वे ही रथ से भासते हैं । ऐसे सात घोड़े सूर्यने अपने रथ में जुटाये हैं, वे रथ का जुआ आपही आप गर्दन पर लेनेवाले हैं, अतएव उन्हें सज्ज करके वह बाहर प्रयाण करता है ।

९

हम उस उत्तम तेज को हँडते हुए, कि जो सम्पूर्ण अथकार पर अपनी प्रवलता प्रकट कर सङ्गता है, इस उत्कृष्ट ज्योति की ओर—सूर्य की ओर—आये । यह देव सम्पूर्ण देवों में प्रेष है ।

१०

स्वमित्रों को आनन्द देनेवाले हे सूर्य, आज ( यहां ) उदय होकर और इस ऊपर देख पडनेवाले आकाश पर आरोहण करके मेरा हृद्भोग और कौवल नष्ट कीजिए ।

११

हम अपने कौवल तोते पर और रोपणा का नामक पक्षियों पर छोड़ते हैं । अथवा हम ऐसा करते हैं कि जिससे हमारे कौवल हारिद्रव पक्षियों पर चले जायेंगे । १२

अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से सज्ज होकर, मेरे शत्रुओंको मेरे शरण में आने के लिए बाध्य करता हुआ, यह आदित्य यहा उदय हुआ है । मैं शत्रु के पंजे में रुभी न जाऊ ।

१३ ( ८ )

१ शोचिष्केश ॥

२ शुन्ध्युव ॥

३ देवत्र ॥

४ मित्रमह ॥

५ हरिमाणम् ॥

६ दध्मि ॥

७ रथम् ॥

## अनुवाक १०

### सूक्त ५१.

ऋषि- मव्य आगिरम, देवता-इन्द्र ॥

उस मेपरूपधारी इन्द्र को स्तुति में सन्तुष्ट करो । इसे ( संकट के समय ) अनेको ने पाचारण किया है, इसके स्तोत्र सर्वत्र गाये जाते हैं और यह सम्पत्ति का महोद्धि है । मानवोंके कल्याणार्थ किये हुए जिसके कार्य, जहां जाइये वही, किरणों के समान ही दृग्गोचर होते हैं उस अत्यन्त उदार और प्रजाशाली इन्द्र को अर्चा करो ।

१

सामर्थ्यवान ऋभु, ( भक्तों की ) रक्षा करने में सब प्रकार से समर्थ, अन्तरिक्ष में व्याप्त रहनेवाले, ( अखिल ) सामर्थ्यों से युक्त और ( शत्रुओं के ) आनन्द में विभ्र डालनेवाले इन्द्रके पास, साहाय्यभूत होकर, आये । इस अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को उनके उत्तेजनाप्रद शत्रुोंने स्फूर्ति चढ़ाई ।

२

जहां धेनुओं को बन्दकर रखा था वह किला आपने अंगिरस के लिए खोल । और सैकड़ों दरवाजों में आपने अग्नि के लिए मार्ग हंड निकाला । वावमान युद्ध में अपना वज्र ( शत्रुममुदाय में ) नचाते हुए आपने विषद को धनधान्य अर्पण किया ।

३

१ मातृषा ॥

२ मदच्युतम् ॥

३ शतदुरेषु ॥

आपने उदक के ऊपरका आवरण निकाल डाला और पर्वतो मे पैठकर विपुल सम्पत्ति हस्तगत कर लो । हे इन्द्र जब आपने अपने सामर्थ्यसे वृत्र-अहि को मार डाला तब आपने इस रीतिसे गुलोक मे सूर्यकी स्थापना की कि जिससे वह अच्छी तरहसे सबको दिखाई दे । ४

युक्ति प्रयुक्तियों के बल पर आपने कपटी शत्रुओं को खूब ही छकाया, तथा जो लोग आपकी हँसी करने के लिए आपको हवि अर्पणा करनेका ढोंग करते उनको भी आपने अपनी युद्धप्रणालीसे जीत लिया । मानवों के कल्याणकी इच्छा धारण करने वाले ( हे इन्द्र ) आपने पिप्रूके पुरोका विध्वंस किया, और दस्यु जब मारने को आये तब ऋजिश्वान की आपने रक्षा की । ५ ( ६ )

शुष्ण जब मारने का दौडा तब आपने कुत्स की रक्षा की और अतिथिग्व का पत्त लेकर आपने शम्बर को चूरचूर कर डाला । अर्बुद के समान बडा होनेपर भी आप उम पर पैर रखकर खडे हो गये । दस्युओं का हनन करने के लिए ही आप पुगहन काल मे जन्म लेते आये है । ६

आप मे सम्पूर्ण सामर्थ्य पूर्णतया सुस्थापित हुआ है, सोमपान के लिए आपके आनन्द मे उन्झुँस आता रहता है । भुजाओं पर रखे हुए आपके वज्र की ( सब को ) पहचान है । ( उसे लेकर ) आप शत्रु के अखिल सामर्थ्यों का विदारण कीजिए । ७

१ शुभौ ॥

२ हत्येषु ॥

३ हर्षते ॥



आर्य कौन है और अस्यु कौन है, यह अच्छी तरह पहचान रगिने और जो आपकी आज्ञा पालनेवाले नहीं है उनका शासन करके उन्हें अपने उपामकों के शरणमें आनेके लिये वाच्य कीजिये । आप सामर्थ्यवान है । अपने भक्तोंको आप ( उत्कर्षपर ) पहुँचाइये । आपके सर्व पराक्रम यज्ञमें ( गाते समग मुझे आनन्द देते है ।

जो इन्द्र की आज्ञा मानते है उनके आगे, आज्ञा न मानने वाले लोगों को नष्ट होनेके लिये, वाध्य करके इन्द्र भक्तों की ओर ने भक्तिहीनो का नाश करगते रहते है । वसु आपका स्तवन करता रहा, इसी लिये वह अपने शत्रु'की एकत्रित की हुई सम्पत्ति का विध्वंस कर सका । यह उसका शत्रु पहले ही से बहुत बलवान हो गया था, तिस परभी उसका बल बढ ही रह था और वह मर्गतक जा भिडा था ।

उशन ने आपनी शक्ति के योग से जो सामर्थ्य आपके लिए निर्माण किया उसमें इतना बल है कि वह दुलोक और भूलोक दोनों के लिए भारी हो रहा है । मरुतों के हित करने की बुद्धि रखने वाले ( हे इन्द्र, ) अपने को स्वयं रथ में जुटा लेने वाले वायु के अश्वों ने, सर्वत्र भरे रहनेवाले आपको, विपुल कीर्ति प्राप्त करा दी है ।

जिस समय उशनाकाव्या के सहित इन्द्र संन्तुष्ट हुए उस समय, पृथ में देहे देहे चलनेवाले अश्वों में से अत्यन्त उत्कृष्ट अश्वों पर, उन्होंने आरोहण किया । उस प्रतापी देवता ने प्रवाहरूप में जलों को विलकुल छोड़ कर उन्हें शीघ्र गति दी और—शुष्ण के दृढ़ दुर्ग का उन्हो ने विदारण किया ।

१ शाक्ती ॥

२ अनाभुव ॥

३ नृमण ॥

४ वकुतगा ॥

सामर्थावान पुरुष जिसका पान करते हैं उस सोमरस का आस्वाद लेते हुए आप रथ पर आरूढ़ होते हैं । गार्गाता के सोमरस के चमस तैयार है । इससे आपको भी बड़ा आनन्द होता है । हे इन्द्र, ( हमारे ) तैयार किये हुए सोमरस के विषय में जैसे जैसे आपकी प्रीति बढ़ती जाती है वैसे वैसे आप बुलोक में आप ही आप कीर्ति के पात्र होते जाते हैं । १२

हे इन्द्र, आपके मोत्र गानेवाले और आपको सोमरस अर्पण करनेवाले वृद्ध कक्षिमान को आपने कौमिल वयवाली वृत्रया अर्पण की । हे बुद्धिसामर्थावान देव, वृषणश्वकी कन्या घेना भी आपही बने । आपके ये सब कार्य यज्ञ में गाने योग्य हैं । १३

विपत्काल में सदाचारी लोगों ने इन्द्र का ही आश्रय किया है । जैसे दरवाजे का खम्भ नहीं टलता वैसेही पंजों के कुल में इन्द्र की पूजा कभी रुक नहीं सकती । वेनु, रथ और धित्त सं प्रीति रखनेवाले और दानकर्म में शूर एक इन्द्र ही सारे वैभवां के स्वामी हैं । १४

सामर्थावान, स्वतेज से युक्त, सत्यकार्य में बलका विनियोग करनेवाले और शक्तिसम्पन्न इन्द्रके सन्मानार्थ हमने यह नम्र स्तुति गाई है । हे इन्द्र, हम अपने यहा के सब पराक्रमी पुरुष और विद्वान लोगों के सहित इस संकट के समय में आपकी कृपा का आधार मान कर रहे । १५ ( ११ )

१ चाकन ॥

२ जर्नाम ॥

३ निगंके ॥

सूक्त ५२.

ऋषि—मव्य आगिरम देवता—इन्द्र ॥

प्रकाश को प्राप्त कर लेनेवाले मेष की अच्छी तरह अचेता करो । मैकडे स्तोते एकत्र बैठकर इसीकी कीर्ति गाते रहते हैं जिस प्रकार किसी जोशाले गोड़े को, यज्ञ के लिए जानेवाले रथ में, ( जुटाने के लिए प्रयत्न पूर्वक ) खींच कर लाना होता है उसी प्रकार इन्द्र को, अपनी रक्षा के लिए, हम, सुन्दर स्तोत्रों के द्वारा, खींच-लाने में समर्थ हो ।

जिस समय हवियों से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने, नदियों का मार्ग खोलते हुए, जलो को प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र का वध किया उस समय, अपने ही सामर्थ्य में ( परिवेष्टित होकर ) और कठिन भूभाग पर रहनेवाले पर्वत की तरह स्थिर रह कर, हजारों प्रकार से भक्तों की रक्षा करनेवाले इन्द्र अधिकाधिक बड़े ही होते गये । २

शत्रुओं में शत्रु की तरह रहनेवाले, और ( गार्डके ) गेन की तरह दिखनेवाले ( इस अन्तीरक्ष में ) व्याप्त हो रहनेवाले इन्द्र का मुख्य निवासस्थान आल्हाददायक प्रकाश में है और विद्वान लोगोंने ( सोमरस अर्पण करके ) उनका आनन्द बढ़ाया है । मनमें बहुत तत्परता रख कर, परम उदार इन्द्राका मैं आल्लाहन करता हूँ । अन्न की समृद्धि करनेवाले वही है ।

यज्ञगृह में आसनपर विराजमान होनेवाले जिन के उत्साही सेवक जिन्हें बुलोक में, समुद्र की तरह सोमरस से भर डालते हैं उन्हीं इन्द्र के समीप, उनके सामर्थ्यवान्, किसी के प्रतिरोध की परवा न करनेवाले, और सरलार्कृति महायक, वृत्रवध के अवसर पर खड़े थे ।

१ म्वाविदम् ॥

२ सहस्रप्रति ॥

३ इरिषु ॥

४ अहुतप्सवः ॥

जिस समय सोमरस से उत्साह परिलुप्त होनेवाले वज्रधर इन्द्र ने त्रिता की भाँति तल के आसपास के दुर्ग तोड़ डाले उस समय हर्ष के आवेश में युद्ध करनेवाले उस देव के सहायक, पर्जन्यवृष्टि को प्रतिबन्ध करनेवाले उस ( वृत्र ) पर इस प्रकार टूट पड़े जैसे नदियाँ ढालू जगह से वेग के साथ दौड़ते जाती हैं । १ ( १२ )

हे इन्द्र, जिस समय आपने, पराजय करने में दुष्कर वृत्र की ठुड़ी के नीचे अपना वज्र फेंक कर मारा उस समय आपका तेज आपके चारों ओर फैल गया, आपके सामर्थ्य का प्रकाश पड़ा और उदको को प्रतिबन्ध करनेवाला ( वृत्र ) रजोलोक के तल पर मर कर गिर पड़ा. ६

जो स्तोत्र आपकी महती बढ़ाते हैं वे इस प्रकार आपकी ओर दौड़ते आते हैं जैसे उदक के प्रवाह किसी दह की ओर दौड़ते हुए जाते हैं । त्वष्ट्य ने ही आपके लिए उपयोगी आपका सामर्थ्य बढ़ाया और ऐसा वज्र आपके लिए तैयार किया जो शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ है । ७

हे सामर्थ्य परिलुप्त रहनेवाले इन्द्रदेव ! मानवों के हित के लिए उदको के वहने का मार्ग खोलने के लिए आपने अपने अश्वों के द्वारा वृत्र का वध किया । आपने अपनी भुजाओं पर लोहे का बना हुआ वज्र धारण किया और सूर्यदेव की तुल्य रूप में इस रीति से स्थापना की कि जिससे वह सब की दृष्टि पड़े । ८

जिस समय मनुष्यों ने डर से आपका प्रभावशाली, आपही आप आन्हाद उत्पन्न करनेवाला, दीर्घ और स्वर्गलोक तक प्रवेश करनेवाला स्तोत्र गया तब सशय मनुष्यों के हित के लिए युद्ध में प्रवृत्त होनेवाले, स्वर्ग में सदा शूरो का सहवान करनेवाले और इन्द्र के साथभूत होनेवाले मरुतां ने इन्द्र को प्रोत्साहन दिया, ९

और जिस समय, हे इन्द्र, तुल्य और भूलोक दोनों में पीड़ा उत्पन्न करनेवाले वृत्र या शिर, सोमरस की आनन्ददायक स्फूर्ति में, आपके बजने अपने सामर्थ्य में, पाट डाला, उस समय, भय के कारण वलिष्ठ स्वर्गलोक भी, उस अहि की गर्जना से र पर कापने लगा । १० ( १३ )

यदि सचमुच, हे इन्द्र ! पृथिवी दसगुनी बड़ी हो जायगी और मनुष्य की आयु चिरकाल तक टिकनेवाली हो जायगी, तभी हे उदार ( देव, ) आपका निम्न्यात सामर्थ्य, शक्ति और पराक्रम के विषय में, ब्रुलोक में समा सकेगा । ११

मन में अत्यन्त उत्साह रखनेवाले हे इन्द्र, जो कि आप अपने ही पराक्रम से अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं वही आपने रजोलोक और आकाश के उस पार ( रहकर ) इस पृथिवी को अपने सामर्थ्य के मापने का माप ही बनाया है । आप उदक और प्रकाश को व्याप्त करके ब्रुलोक में भी प्रवेश करते हैं । १०

आपने इस पृथिवी को माप डाला है और जिसमें अति उच्च योग्यता के शूर पुरुष हैं ऐसे विशाल ( स्वर्गलोक ) के आप स्वामी हो बैठे हैं । आपने अपने सामर्थ्य से सब अन्तरिक्ष व्याप्त कर डाला है । सचमुच आपके समान उस जगत् में दूसरा और कोई भी नहीं । १३

जिनकी व्यापकता की बराबरी ब्रुलोक अथवा भूलोक दोनों नहीं कर सके और अन्तरिक्ष की नदिया भी जिनका अन्त नहीं पा सकी, तथा सोमरस के आनन्द के आवेश में, उदको का प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र में युद्ध करने समय भी ( जिनका पूर्ण ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ ) उन्हीं आपने अकेले, आत्म-व्यतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् को, अपने वश में कर रखा है । १२

हे इन्द्र, जिस समय आपने अपने तीक्ष्ण शस्त्र से वृत्र के मुखपर तार किया उस समय, उस युद्ध के प्रसंग में, मरुतों ने आपकी पूजा की और सब देवताओं ने आपके प्रोत्साहन दिया । १५ ( १५ )

### सूक्त ५३.

ऋषि-मघ आगिरस, देवता-इन्द्र ॥

इन श्रेष्ठ इन्द्र को सम्बोधन करके हम स्तोत्र गाने को बैठते हैं । विश्वान के भवन में हम उन्हे स्तुति अर्पण करते हैं । सोते सोते ( जैसे किमी को ) कोई द्रव्य ला दे, वैसे ही उन्होंने हमें सम्पत्ति प्रदान की है । ( ऐसे ) अनदाता की कोई कभी बुरी स्तुति नहीं करते । १

आप अश्व, धेनु और धान्य देनेवाले हैं । सब सम्पत्ति के स्वामी और प्रभु आपही हैं । पुरातन काल से आप मानवों के मार्गदर्शक हैं, आपने किसी की आशा को कभी भंग नहीं किया, आप अपने मित्रों के ( प्राणप्रिय ) मित्र हैं, आप के ऐसे बड़े होने के कारण हम आप के सन्मानार्थ यह स्तोत्र गाते हैं । २

हे ज्ञानसामर्थ्ययुक्त इन्द्र, हे अनेक महत् कार्य करनेवाले और अत्यन्त दीप्तिशाली देव, यह जो वैभव आसपास प्रकाशमान हो रहा है वह आपहीका है । इस लिए, शत्रुको पराभूत करनेवाले हे इन्द्र, वह हमें ला दीजिए । आप अपने भक्ति करनेवाले स्तोता का मनोरथ भंग न होने दीजिए । ३

इन ( यज्ञ की ) अग्निज्वालाओं से और इस सोमरस के बिन्दुओं से मन में मन्तुष्ट होकर आप धेनु और अश्व हमें देकर हमारी दरिद्रता नष्ट कीजिए । सोमरस अर्पण कर के इन्द्र के हाथ से दत्तुओं का वध कराकर हम शत्रुओं में त्रिलकुल निर्मुक्त होंगे और धन धान्य से समृद्ध बनेंगे । ४

हम सम्पत्ति से, धान्यसचय से, और अनेक तरह से आनन्दकारक और तेजस्विता से युक्त सामर्थ्य से सुसमृद्ध होंगे । तथा जिसके कारण हमारे यहां के शूर पुरुषों का बल दृष्टि पड़ेगा और जिससे गौओंका लाभ प्रमुख है तथा अश्व भी मिल सकते हैं, ऐसी आपकी दिव्य कृपा भी हमें प्राप्त होगी । ५ (१५)

वृत्रवध के मौके पर, हे सज्जनों के नायक ( इन्द्र ), उन आनन्दकारक पेशों से, उन उत्साहवर्धक हवियों से, और उन सोमरसों से, आपको ( अवश्य ही ) नवीन आवेश आया । क्योंकि ( उसके जोर में ) आपने किसी के प्रतिरोध की परवा न करते हुए, आपके लिए दर्भासन लगा कर आप की कीर्ति गानेवाले भक्तों के लिए दस हजार वृत्रोंको काट डाला । ६

जिस समय हे इन्द्र, आपने अपने प्राणप्रिय भक्त नमी को साथ ले कर नमुच्चि नामक कपटी ( राजस की ) अत्यन्त दूर प्रदेश में जाकर काट डाला उस समय, ( रणसत्राम में ) बड़े आवेश से घुमनेवाले आपको युद्ध के पिछे युद्ध परना पड़ा और अपने सामर्थ्य से आप पुरों के पीछे पुरों का विध्वंस करने लगे ।

अतिथिग्व के अत्यन्त तेजस्वी चक्र के द्वारा आपने करंज और पर्णय का वा किया । ऋजिश्चान के घेरे हुए वृंगद के सौ पुर आपने उध्वन्त कर डाले । प्रापके दातृत्व से ( सचमुच ) किमी की बराबरी नहीं की जा सकती ।

आप सत्कीर्तियो से मंडित हैं । जिस समय मुश्रवस को असहाय देखकर वीम राजाओं ने उम पर चढ़ाई की उस समय एक ऐसा रथचक्र लेकर, कि जिसके सामने कोई टिक नहीं सकता था, आपने उनका ( साथही ) उनके साठ हजार निजाने लोंगो का उच्छेद कर डाला ।

हे इन्द्र, अपने अपने कृपाछत्र से मुश्रवस की रक्षा की और अपनी महायता लेकर तुवयाण का बचाव किया । आपने इस श्रेष्ठ और तरुण नृपति के मामले कुत्स अतिथिव, और आयुको शरण आनेके लिए वाच्य किया ।

हम सब वेदताओं की रक्षा में रहनेवाले हैं । हम को आप अपना प्राणप्रिय भक्त बनकर अब आगे भी सौख्य में ही रखिये । अत्यन्त दीर्घ और चिरकालिक आयु का भोग करते हुए, अपनी कृपा से प्राप्त हुए हमारे यहां के शूर मनुष्यों के सहित, अपना स्तवन करते हुए हमें बैठने दीजिए ।

## सूक्त ५४.

ऋषि—मध्य जागिरम, देवता—इन्द्र ॥

हे उदार देव, इस युद्धमें, ऐसे कठिन अवसर में, हमें न छोड़िये । सचमुच - पके सामर्थ्य का अन्त लगना असम्भव है । आपने अपनी गर्जना करते ही नदियों और वृक्षां को जोर में चिल्लाने के लिए वाध्य किया । ( ऐसी दशा में ) आपके डर से भला मनुष्य क्यों नहीं एकत्र हो सकते ?

सामर्थ्यवान पराक्रमी और बलवान इन्द्रकी अर्चा करो ( भक्तों की पुकार ) मुन्ने के लिए तैयार रहनेवाले इन्द्र का गौरव करके उनका स्तवन करो । शक्तिमामर्थ युक्त इन्द्र अपनी दृढ शक्ति और दीर्घ के द्वारा युजोक्त और भूलोक दोनों को भूषित करते हैं ।

जिस शूर के अन्त करण मे अपने सामर्थ्य के विषय मे विश्वास है और माहस की ओर जिसकी प्रवृत्ति है उस देदीप्यमान और श्रेष्ठ ( इन्द्र को ) सम्बोधन कर के कोई प्रभावशाली स्तोत्र पढो । उस की कीर्ति विशाल है, वह शत्रुओं का नाश करनेवाला है, वह पराक्रमी है, वह हरिद्वर्ण अश्व रथ के आगे जुटाता है । वह सामर्थ्यवान है और ( भक्तों की ओर जानेवाला ) वह ( मानो ) रथ ही है । ३

जिम समय हाथ मे दृढता मे पकड़े हुए तीक्ष्ण वज्र से आपने, आनन्द देनेवाले सोमरस के योग से स्फूर्ति चढने के कारण, कपटी ( राक्षसों की ) चमू मे युद्ध किया उस समय विस्तीर्ण शुलोक का शिखर भी आपने हिला डाला और अपने वग के प्रहार मे शंवर का शरीर विदीर्ण किया । ४

जब कि वृक्षा को म्लाकर गुण्ण की भी मेना को आपने वायु के शिखर पर ले जाकर कट डाला और जब कि अपने उत्साही मन की प्रवृत्ति ( ऐसेही पराक्रम की ओर ) रथ कर अब भी आप ( ऐसे पराक्रम ) दिखलाते रहते है तब फिर आपसे अधिक श्रेष्ठ और कौन है ? ५ ( १७ )

आपने नर्य, तुर्वश और यदु की रक्षा की । हे सामर्थ्यवान् ( इन्द्र ) आप ने वर्य तुर्वीती की भी रक्षा की । संग्राम का प्रसंग आने पर आपने रथ और एतश की रक्षा की और ( शत्रुओं के ) निन्नानवे पुर ढहा दिये । ६

इन्द्रको हव्य अर्पण करके जो उनके अनुशामन पर चलता है वह सज्जनों मे प्रमुख मनुष्य, गजा बन कर, अभिवृद्धि को प्राप्त होता है । अथवा जो मन्तोपदायक हव्य अर्पण कर के उनको सम्बोधन कर के स्तोत्र पढता है उसके लिए ऊपर से, शुलोक से, विपुल ( धन की ) वृष्टि होती है । ७

आपके बल की सीमा नहीं, आप की बुद्धिमत्ता की भी सीमा नहीं । जो नोभपान करनेवाले आप के उपासक आप के, जो दान कर्म मे प्रवीण है, श्रेष्ठ सामर्थ्य की और विशाल शक्ति की वडाई माने है वे अपने सत्कृत्यों से अभिवृद्धि को प्राप्त होते है । ८



पापाणु के बने हुए उलूखल में डालकर निचोये हुए, पात्र में भर रगे हुए और (हे इन्द्र.) आपके पान करने के ही हेतु से नैऋत किये हुए ये सोमरस के अनेक चम्म आप ही के लिए रखे हुए हैं। आप उनका पान कीजिए, उन के विषय में आपकी जितनी शंका हो उतनी मद्य वृत्त कर लीजिए और हमें सम्पत्ति देने में अपने मन की प्रवृत्ति कीजिए। ६

अंधकार, उदको के प्रवाह को बन्द करके, बैठा था और पर्वत भी वृत्त के जठर में था। परन्तु इन्द्र ने उन (जलो को) प्रतिबन्ध करनेवाले रात्रम की रोकी हुई नदियों के लिए मार्ग निकाल दिया, ताकि वे सब अचरुद्ध प्रदेश में, एक की तरह दुमरी, दूसरी की तरह तिमरी बहने लगे। १०

तो अब हमें हे इन्द्र, ऐसा वैभव अर्पण कीजिए कि जिस में हमारा सौरभ बढ़े, और लोगों की अपेक्षा बड़ा चढ़ा हुआ विपुल शौर्य तथा बल भी हमें मिले। हे औदार्यशाली देव, हमारी रक्षा, और हमारे यहां के निद्वान लोगों का भी परिपालन कीजिए और हमें ऐसा वैभव तथा समृद्धि दीजिए कि जिसमें उत्तम सन्तति का भी समावेश हो। ११ (१८)

### सूक्त २५.

कपि-सव्य आशिरस, देवता-इन्द्र।

इसकी श्रेष्ठता तुलोक से भी अधिक है। पृथ्वी भी अपनी धड़ई में इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकती। यह (शत्रुओं को) भीतिप्रद, सामर्थ्यवान है, मानवों के लिए अपना प्रताप दिखलानेवाला है और, कोई वृषभ जैसे अपने सींगों में तीक्ष्णता लाने के लिए) उन्हें पैनाता है जैसे ही अपना बल अधिक तीक्ष्ण होने के लिए वह उसकी धार तेज करता है। १

समुद्र में निवास करके, किसी महासागर की तरह, अपने आश्रय में आनेवाली मद्य नदियों का, वह अपने श्रेष्ठ सामर्थ्य के द्वारा स्वीकार करता है, सोमपान करने की इच्छा से वह किसी वृषभ की भांति अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। अपने (अलौकिक) बल के कारण यह योद्धा मनातन काल में मत्वन का पात्र हुआ है। २

हे इन्द्र ! उस पर्वत को मानो घस लेने के लिए ही आप अत्यन्त पौरुष और पराक्रम अपने लिए प्राप्त कर लेते हैं, ( सब अद्भुत कृत्यों में ये उग्र ( इन्द्र ) अग्रुत्पापन लेते हैं और अपने सामर्थ्य में सब देवताओं को पीछे कर देते हैं । ३

सब लोगों में अपने कल्याणप्रद सामर्थ्य की प्रसिद्ध करनेवाले सिर्फ इन्द्र की ही नमस्कृति पूर्वक स्तुति होती रहती है । जिस समय हव्य अर्पण करनेवाला भक्त अपने कल्याण की इच्छा से ( इन्द्र की ) स्तुति में प्रवृत्त होता है उस समय पराक्रमी इन्द्र उस पर सन्तुष्ट होते हैं, उसके आगे वे अपना रमणीयत्व प्रकट करते हैं । ४

यही योद्धा अपने बल और सामर्थ्य के द्वारा जनहित के लिए बड़े बड़े युद्ध करता है, और इसी लिए, तेजस्वी तथा घातक वज्रमें शत्रुओं पर बार बार प्रहार करनेवाले इन्द्र पर ( सब लोग ) श्रद्धा रखते हैं । ५ ( २६ )

नम्यमुच्य क्रीति की इच्छा रखनेवाले इस सामर्थ्यवान् इन्द्रने, पृथ्वी की तरह विशाल रूप धारण करके, अपने पराक्रम से ( शत्रुओं के ) वनाये हुए भवनों का विध्वंस करेगा और यज्ञ करनेवाले भक्तों के लिए ( आकाशस्थ ) उद्योतियों को सकटमें विमुक्त करके जलों के प्रवाहों को नम्यमुक्त किया ताकि वे फिर बहने लगे । ६

हे भोजपान करनेवाले इन्द्र ! आपका मन हमारे विषय में दातृत्व बुद्धि धारण करें और हमारी नम्र स्तुति सुननेवाले हे देव, आप अपने पीतवर्ण अश्व हमारी ओर पुमाइये । हे इन्द्र, आपके तारधी आपके अश्वों को वश में रखने में अत्यन्त कुशल हैं और इस लिए आपके अश्व चाहे जितने चपल हों, वे आपको इधर उधर नहीं ले जाते । ७

हे इन्द्र, आप विख्यात हैं, आप ऐसा वैभव अपने हाथ में रखते हैं जिसका कभी विनाश नहीं । आपने ऐसा सामर्थ्य अपने शरीर में धारण किया है जो शत्रुओं को घटने नहीं देता । सर्व्वन्विवान् पुरुष जिम्हें आपके आमपान खड़े हैं ऐसे कुण क्री तरह गोभित होनेवाली आपकी अनेक शक्तियां, हे इन्द्र ! आपके शरीर में निवास कर रही हैं । ८ ( २० )

### सूक्त ५६.

ऋषि-मध्य आगरम, देवता-इन्द्र ।

जिस प्रकार कोई तुरग तुरगी के लिए उत्सुक होता है उसी प्रकार, उन उपासक ने चमसों में जो सोमरस भरकर भर रखा है उसे पीने के लिए, यह उतावली से उद्युक्त हुआ है । जिस में पीतवर्ण अथवा जुटे हुए हैं ऐसा अपना बड़ा रथ इधर को घुमाकर यह इन्द्र महत्कार्य के लिए अत्यन्त आवश्यक सामर्थ्य-दायक सोमरस पान करता है ।

जिस प्रकार प्रवास के लिए जाते समय धनाजनेच्छु ( साहसी ) लोगों की ममुद्र पर भीड़ लगती है उसी प्रकार हव्य बनाकर तैयार कर गये हुए श्लोक जनों की इसके आसपास भीड़ लगती है । जिस प्रकार ये सुन्दर युवतियाँ ( अर्थात् उषा ) पर्वत पर आरूढ़ हुई हैं उसी प्रकार ( हे देव, ) आप इस सामर्थ्याधिपति ( सूर्य ) को पर्वत पर संस्थापित कीजिए, क्यों कि यह यज्ञ का केवल बल ही है ।

वह शत्रुओं का नाश करनेवाला और श्रेष्ठ है । उसका अत्यन्त शुद्ध बल अपने सामर्थ्य से प्रत्येक युद्ध में गिरिशिखर की भाँति चमकता रहता है । इस बल के द्वारा इस अजित देव ने, ( सोम रस के कारण उत्पन्न हुए ) आनन्द के वेग में, अपना लोहेका बज्र ले कर, कपटी शुद्धण का ( पगमा किया और उसे ) शृंगलावद्ध कर के काराग्रह में डाल दिया ।

जिस समय तू ही छुटपन में बढ़ाई हुई शक्तिरूपी देवी, जैसे सूर्य उषा पर आसक्त होता है वैसीही, स्वसंरक्षणार्थ इन्द्र का आश्रय करती है उस समय अपने प्रतापी सामर्थ्य में अंधकार का नाश करने वाला यह देव तबप्राय हर्ष हुए मारी मलीनता को दूर कर देता है ।

जिस समय आपने अपने सामर्थ्य में बलोक की सीमा पर गजों-लाकरी दृढ़ता और सुस्थिरता से संस्थापना की और जब ( सोमरस में उत्पन्न हुए ) हर्ष के वेग में आपने बड़े आवेश में युद्ध में वृत्र का वध किया, तब आपका हाथ ने उदक का सचय वन्द्यमुक्त हुआ । इन्द्र, आप श्रेष्ठ हैं, आप पृथ्वी के प्रदेश में अपने सामर्थ्य में आकाश के बालक को ले आते हैं । सोमरस के कारण उत्पन्न होनेवाले हर्ष के वेग में आपने उदकों के लिए मार्ग खोल दिया और वृत्र के पत्यरवाँ ।

### स्तुक्त ५७.

ऋषि-सव आगिरस, देवता इन्द्र ॥

अत्यन्त उदार, श्रेष्ठ, अत्यन्त वैभवशाली, सत्य, सामर्थ्यवान् और पराक्रम के पुतलेही ( इस देव ) को प्रसन्न करने के लिए मैं स्तुति अर्पण करता हूँ । जिस प्रकार, ढालू जमीन की ओर जो पानी फूट जाता है वह किसी प्रतिबन्ध को भी न मानते हुए सर्वत्र फैल जाता है उसी प्रकार, इसके सर्वत्र दृग्गोचर होनेवाले और अखंड जारी रहनेवाले कृपाप्रसाद के कपाट ( भक्तों के शरीर में ) सामर्थ्य लाने के लिए सदैव खुले रहते हैं । १

जिस समय सुवर्णमय, सुन्दर परन्तु प्राणघातक, वज्र पर्वत पर फेकने की तरह ( वृत्र के शरीर पर जा गिरा उस समय सम्पूर्ण विश्व आपकी पूजा करने में प्रवृत्त हुआ और ढालू जमीन की ओर जैसे पानीका प्रवाह ) सरासर बहता जाता है ( उसी प्रकार भक्तों के हृदय बराबर आपकी ओर आने लगे ) । २

जिसके तेज, नाम, बल और प्रकाश की चारों ओर प्रशंसा होने के लिए आपने उन्हे सर्वत्र प्रवृत्त होने में, इन्द्र के पीतवर्ण अश्वों को भांति ही, प्रवृत्त किया उस भीतिप्रद परन्तु स्तुतिस्तोत्र गाने योग्य इन्द्रको, उषा की भांति, कान्तिमान देख पड़नेवाली हे युवति, । इस वज्र में, नमस्कृति अर्पण करके ले आइये । ३

अपनेको ने जिनकी स्तुति की ऐसे हे वैभवशाली इन्द्र, हम सब प्रकार से आप ही के हैं, क्योंकि आपका आश्रय करके हम इस जगत् में सुखपूर्वक रहते हैं । हे स्तुति-प्रिय देव, आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी स्तुति नहीं प्राप्त होती, इस लिए जिस प्रकार पृथ्वी ( जीव मात्र को ) जगह देती है वैसे ही आप भी हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिए । ४

हे इन्द्र ! आप का बल विपुल है, हम आप ही के हैं । आप अपने इस भक्तकी इच्छा पूर्ण कीजिए । इस विशाल गुलफके आपके सामर्थ्य से अपने सामर्थ्य की तुलना कर देखी है और यह पृथ्वी भी आप के पराक्रम के सामने नम्र हो गई है । ५

हे वज्रधारी इन्द्र, आपने अपने वज्र से उस बड़े और विशाल पर्वत के टुकड़े टुकड़े कर डाले । रौंड़ डाले हुए जल-प्रवाह फिर जारी होने के लिए आप ही मार्ग निर्णाल दिया । मचमुच जितना क्रुद्ध सामर्थ्य है, सब आप ही अकेले धारण करते हैं ।

६ ( २२ )

## अनुवाक ११

### सूक्त ५८.

ऋषि-तोषा गोतम, देवता-आग्नि ।

यह ( देवताओं को ) हव्य पहुंचानेवाला अग्नि विवस्वान का दूत हुआ है । इसी लिए यह सामर्थ्य से जन्म लेनेवाला अमर्त्य देव कभी थक नहीं जाता । वह उत्तम मार्गों से रजोलोक का आक्रमण करता है और यज्ञ में ( देवताओं को ) हव्य अर्पण करके उनका आदरातिथ्य करता है । १

यह जरा-भय-रहित अग्नि देव अपने अन्न को सत्वर और आतुरता में स्वीकार करके काष्ठ में ( प्रज्वलित होकर ) रहता है । जब इसको वृत्त अर्पण किया जाता है तब उसका पृष्ठ भाग किमी ( ताजे तवाने ) अश्व की भांति प्रफुल्लित देख पड़ता है । इसने मानो स्वर्ग के भी सिरे तक प्रतिशद् उत्पन्न करते हुए गर्जना की है । २

जो कर्तृत्वशालि है, रुद्र और वसु ने जिसे प्रमुखता दी है जिसने वैभव जित लाया है और जिसे मृत्युभय नहीं है ऐसा यह हविर्दाता ( अग्नि ) ( गदा ) आकर विराजमान हुआ है । यह देव इस जगत् में रहनेवाले सब मनुष्यों में प्रतिष्ठा प्राप्त करके किसी रथ की तरह बराबर सम्पत्ति ले आता रहता है । ३

वायुसे प्रेरित होते ही यह बड़ी गर्जना करके अपनी जिह्वारूप लपट नाथ लिये हुए काष्ठ समुदाय में सहज रीति से जा बैठता है । ज्वलज्वालाओं

परिवेष्टित और वार्धक्य पीडा से निर्मुक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, जब आप काष्ठ समुदाय में अपना सामर्थ्य एकदम प्रकट करते हैं तब आपका मार्ग ( धुएँ से ) काला हो जाता है । ४

यह अग्नि, जिसकी दंष्ट्रा ज्वालामय है, वायु से प्रेरित होकर जब काष्ठ समुदाय में प्रवेश करता है तब, कोई शक्तिमान वृषभ जैसे अपने समूह में निर्भय संचार करता है वैसे ही, यह संचार करने लगता है । जब यह अविनाशी रजोलोक से अपने सामर्थ्य के द्वारा गमन करता है तब सम्पूर्ण चराचर मृष्टी को इस पक्षिराज का भय मालूम होने लगता है । ५ ( २३ )

सम्पत्ति की तरह सुन्दर रहनेवाले, सब लोगो को पुकारने में सुलभ लगनेवाले, और दिव्य लोक के पुरुषो को मित्र की भांति सुखदायक होनेवाले हे श्रेष्ठ हविर्दाता अग्निदेव, जब आप भृगुओ के अतिथि हुए तब उन्होने मानव समुदाय में आपको सन्मान से जगह दी । ६

( भक्तो को ) सब सम्पत्ति अर्पण करनेवाले अग्निका मैं हवियों से पूजन करता हूँ और इस कारण मुझे उत्कृष्ट सम्पत्ति भी प्राप्त होती है । यह अग्नि ( देवो को ) हव्य पहुचानेवाला है, इस लिए हव्य अर्पण करनेवाले सप्त ऋत्विज ( सदा ) यह इन्द्रा करते रहते हैं कि इस यज्ञार्ह अग्नि का यज्ञ में आगमन हो । ७

सामर्थ्य से जन्म पानेवाले और स्वामित्रो को आनन्द देनेवाले हे अग्निदेव, जो भक्त आपका स्तवन करते हैं उन्हें आज आप अक्षय सुख प्राप्त करा दे । हे शक्ति-पुत्र अग्ने, जो आपकी स्तुति गाते हैं उन सेवको के लिए लोहे के नगर बनाकर आप सकट में उनकी रक्षा कीजिए । ८

हे दीमिमान् अग्निदेव, आप स्तुति करनेवाले अपने भक्तो के कवच बन जाय, हे उदार देव, जो आपको हव्य अर्पण करते हैं उनके आप प्रत्यक्ष कल्याण ही हो जाय । अग्ने, आप अपने स्तोत्रजनों की संकट से रक्षा करते ही रहते हैं, अतएव असत्य स्तुति-स्तोत्रो से मडित यह ( अग्निदेव ) प्रातःसमय शीघ्र ही ( हमारे यज्ञ की ओर ) पधारे । ९ ( २४ )

### सूक्त ५९.

ऋषि-तोषा गोतम, ॥ देवता-अग्नि वैश्वानर ॥

हे अग्निदेव अन्य तन्पूर्ण अग्नि आपकी शाखा है । तन्पूर्ण अमर ( देवता ) आपही में अत्यन्त सन्तोष पाते हैं । तन्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करने-वाले हे अग्निदेव, आप तन्पूर्ण पृथ्वी के मध्यविन्दु ( केन्द्र ) हैं । १

अग्नि दुलोक का मन्तक और पृथिवी की नाभि है, उसके सिवाय यह दुलोक और भूलोक का अधिपति हुआ है । सम्पूर्ण विश्वके विषय में मित्रता धारण करनेवाले हैं अग्निदेव, आप ऐसे श्रेष्ठ देव हैं, इसी कारण आपको देवताओं ने उम हेतु में निर्माण किया है, ताकि आप आर्यजनों की ( मार्गदर्शक ) ज्योति ही हो । ०

जिस प्रकार सूर्य में निरन्तर रश्मियों का वास रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाले इस अग्नि में सब वैभव संस्थापित हुए हैं । जिन द्रव्यनिधियों का पर्वतों, वनस्पतियों अथवा मर्त्यलोक में निवास रहता है उन सब के आप अकेले ही राजा हैं ३

मानो इस उदार अग्नि के लिए ही दुलोक और भूलोक इतने विस्तीर्ण हो गये हैं । इस प्रकाशमान मत्स्यवला से युक्त, सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रभाव धारण करनेवाले और सब शूरों में श्रेष्ठ ( अग्निदेव को ) यह उपासक, किमी प्रजावान पुरुष की तरह, बड़े बड़े अमन्व्य स्तोत्र अर्पण कर रहा है । ४

सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाले हैं सर्वत्र अग्निदेव, आप ही महिमा इस विस्तीर्ण दुलोक से भी अधिक है । आप सम्पूर्ण मानव समुदाय के राजा हैं । राक्षसों में युद्ध करके आपने देवताओं को सुगन्धित कर दिया । ५

वृत्र का वध करनेवाले जिस ( अग्नि ) का आश्रय सब लोग ढूँढते हैं उस मर्त्यवान् देवकी महिमा ( इस स्तोत्र में ) मैंने गाई है । सम्पूर्ण विश्व के विषय में रखनेवाले इस अग्निने दस्युओं का वध करके ( उदको के मार्ग का ) प्रतिबन्धन नष्ट किया और शम्बर को द्वित्रविच्छिन्न कर डाला । ६

सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाला और अपने मामर्त्य में सर्वत्र वास करनेवाला यह पृथ्वी और दीप्रिमान अग्नि भाग्द्रुज कुल के पुरुषों में ( आकाश विराजमान हुआ है । ) जिसकी चारणी मधुर पान्तु मत्स्यपशुत है उनी अग्नि की, शान्तवनेय और पुरुषीथ के यज्ञ में, सैकड़ों स्तोत्रों से स्तुति हुई है । ७ ( २५ )

सूक्त ६०.

अग्नि-तोषा गोतम ॥ देवता अग्नि ॥

जो ( हमारा हव्य देवता ओ तक्र ) पहुँचानेवाला है, वह मूर्तिमान् कीर्ति ही है, यज्ञ की जो केवल ध्वजा ही है, जो यज्ञगृह में अत्यन्त रखने योग्य है, जो हमारा दूत बनकर देवताओं के पास तुरन्त ही गमन करता है, जो दो वार जन्मता है, उत्कर्ष की भाँति जो प्रशसनीय है और जो केवल वैभव की मूर्ति ही है, ऐसे उस अग्नि को भृगुओं के लिए मातरिश्वा ले आया । १

हव्य ग्रहण करने के लिए उत्सुक होनेवाले ( जो देव ) और जो मर्त्यलोक के ( मानव हैं वे ) इन प्रकार उभयलोक डमकी आज्ञा मान्य करते रहते हैं ( सम्पूर्ण लोगों के लिए ) जो सन्मानपूर्वक स्तकार करने योग्य है, जो सम्पूर्ण मानवों में उनका राजा बन कर रहता है और जिसका कर्तृत्व विलक्षण है वही यह हविर्दाता मर्योदय के पूर्व ही यहाँ आकर स्थानापन्न हुआ है । २

जिसे उसकी उपासना करनेवाले इस जगत् के मानव अपने संकटसमय में हवियों में प्रज्वलित करते आये हैं उसी ( भक्तों के ) हृदय में प्रकट होनेवाले और मधुर भाषण करनेवाले अग्नि को, हमारा यह हृदय-पूर्वक गया हुआ नवीन स्तोत्र, जा मिले । ३

( हवियों के लिए ) उत्सुकता रखनेवाला ( सम्पूर्ण जगत् को ) पावन करनेवाला और जो ( मानो ) प्रत्यक्ष वैभवही है उसी हविर्दाता अग्नि की यहाँ उन मर्त्य-मानवों के समुदाय में स्थापना की गई है । अपने भक्तों के गृह में निवास करनेवाले और गृह में गृहाधिपति कहलाकर शोभनेवाले इस अग्नि ही की ओर सम्पूर्ण सम्पत्तियों की प्रभुता आज तक ( निर्वाध रूप से ) गतों आई है । ४

हे अग्निदेव, अश्व की पीठ पर जैसे ( कोई सार्विस ) हाथ फिराता है उसी प्रकार आप, जो सामर्थ्य प्राप्त करा देनेवाले हैं, उन पर वायु डुलाते हुए हम गौतम-कुलोत्पन्न ( आप के भक्त ), सर्व सम्पत्तियों के स्वामी आप की, अनेक स्तोत्रों के द्वारा, स्तुति करते हैं । स्तुति स्तोत्र ही इन अग्निदेव का वैभव है । ये प्रातःकाल शीघ्र ही यहाँ पधारें ।



### भूक्त ६१.

ऋषि-नोवा गोतम ॥ देवता इन्द्र ॥

प्रबल, वेगवान और श्रेष्ठ ( इन्द्र को ) सम्बोधन करके ही मैं यह हव्य तथा यह स्तवन अर्पण करता हूँ । मैं उस स्तवनीय और निर्विघ्न रीति में संचार करनेवाले इन्द्र का ध्यान कर के ऐसी स्तुति ( गाता हूँ ) कि जो उसे अर्पण करने योग्य है और ऐसे स्तोत्र गाता हूँ कि जो आजतक उसके गन्मानार्थ रचे हुए स्तोत्रों में उत्कृष्ट है । १

सचमुच इस देवता को मानो मैं हव्य ही अर्पण कर रहा हूँ । इस ( शत्रु ) विनाशक देवता को मैं एक सुन्दर स्तवन अर्पण करता हूँ । इन्द्र जो ( इस विश्व का ) पुरातन प्रभु है उसके प्रीत्यर्थ ( विद्वान उपासकोने ) अपना अन्त करण, मन, बुद्धि लगा कर ( अनेकानेक ) स्तोत्र गाये है । २

सचमुच त्रिमकी उपमा दृमरे स्तोत्रों को दी जानी चाहिए और जो प्रकाश का लाभ करा देनेवाला है वही स्तोत्र मैं उम ( इन्द्र ) की प्रसन्नता के लिए ही गाता हूँ । उम अत्यन्त उदार और प्रज्ञाशाली देव का माहात्म्य में अपनी मनमानी सुन्दर स्तुतियों से वर्णन करना चाहता हूँ । ३

जिस मनुष्य को रथ की आवश्यकता होती है उसके पास जैसे कोई बड़ई रथ तैयार करके भेजता है उसी प्रकार सचमुच इस ( इन्द्र के पास ) में अपनी स्तुति हूँ । उसी प्रकार सुन्दर सुन्दर स्तवन और ऐसा ( एक स्तोत्र ) जो सर्व स्वीकार किया जायगा, भक्तों के स्तवनों का स्वीकार करनेवाले इस इन्द्रके पास भेज देता हूँ । ४

जैसे कोई अश्व सजाकर तैयार करते हैं वैसे ही मैं सचमुच, कीर्ति प्राप्त करने की इच्छा रखकर, स्ववाणी से इन्द्र के प्रीत्यर्थ एक स्तोत्र अपनी प्रकृति में गाता हूँ । उसके द्वारा, मेरी यह इच्छा है कि, वीर्यशाली, सर्व दानशरणा के आगम, ( शत्रुओं के ) पुरों का विध्वंस करनेवाले और-त्रिमकी कीर्ति सर्वत्र गाते रहते हैं उन इन्द्र को अपनी प्रणति अर्पण की जाय । ५ ( २२ )

शत्रु पर) प्रहार करनेवाले जिस वज्र से शत्रुओं का संहार करते हुए इस बलशाली विश्वाधिपतिने वृत्र के मर्मस्थल ही की खबर ली वह उज्ज्वल और वधकर्म के लिए अत्यन्त उपयोगी वज्र सचमुच इस ( इन्द्र के प्रीतिार्थ ही त्वष्टा देव ने तैयार कर दिया । ६

सचमुच अपनी माता के किये हुए याग में ही इसने एकदम उत्कृष्ट पेय पान किया और हविषों का उत्कृष्ट ( आस्वाद लिया ) बलवान विष्णु भी ( इसके लिए ) ऐसे हवि हरण कर लाया जिनकी पाकसिद्धि उत्तम हुई थी। ( उनका भोजन करके ) अस्त्रविद्या में प्रवीण होने, उस मुञ्जर के शरीर पर अपना तिरछा वज्र फेककर, उसे छिन्न-विच्छिन्न कर डाला । ७

अहि का वध करनेवाले इम इन्द्रकी प्रसन्नता के लिए ही स्त्रियों ने भी—स्वयं देवपत्नियों ने—एक सुन्दर स्तोत्र रचा। विश्वीर्ण गुलोक और भूलोक का उसने आकलन किया है। परन्तु हा, उनकी महिमा आकलन करने का सामर्थ्य उनके शरीर में नहीं है ७

सचमुच इसकी महिमा गुलोक भूलोक और अन्तरिक्ष, इन सब से भी अधिक है। स्वतेज से विराजमान होनेवाले इन्द्र का घर घा स्तवन होता रहता है। यह मानार्थवान इन्द्र ( शत्रुओं से लड़ने के लिए) उच्च घोष करके ( एकदम ) बढ गया । ८

जगत का शोषण करनेवाले वृत्र को इन्द्रने स्वसामर्थ्य से वज्र लेकर छिन्नभिन्न कर डाला। अपनी कीर्ति फैलाने के लिए दानकर्म की ओर मन की प्रवृत्ति रखनेवाले इस इन्द्र ने, धेनु की तरह प्रतिबन्ध में पड़े हुए जल प्रवाह के लिए मार्ग खोल दिया । १० ( २८ )

जिस समय अपने वज्र से उस ( वृत्र को ) जीता उस समय, यह उस सामर्थ्य का प्रताप कि नदियां आनन्द में दौड़ने लगीं। सम्पूर्ण विश्वपर अरिपत्य स्थापन करनेवाले और, हवि अर्पण करनेवाले भक्तों के विषय में मानुष बुद्धि भागण करनेवाले, और ( शत्रुओं का ) संहार करनेवाले इन्द्र ने ही तुरीति के लिए पानी को उतार दिया । ११

आप जगत् के प्रभु और सामर्थ्यवान् है, अतएव इस वृत्र पर निशाना लगा कर सत्वर वज्र फेंकिये। उदको के प्रवाहों को पुनः प्रवाहित करने के लिए इन में गति उत्पन्न कीजिए और इम ( वृत्र के शरीर की ) प्रत्येक संधि पर प्रोच्ये चार कर के, किसी बेल की देह की संधियों की तरह, उनका विदारण कीजिए।

१०

सचमुच वेग से ( शत्रु पर दूट ) पड़नेवाले इस देवता के, पुरातन काल में लेकर, पराक्रम गाने लगे। स्तुतियों के द्वारा यह शरण जाने योग्य है, क्योंकि लड़ाई करने के लिए अपने आयुध बढ़ा कर और [ शत्रुओं को ] मार्ग पर वह उनका सत्यानाश कर डालता है।

११

सचमुच इसके जगत् में अवतीर्ण होते ही इसके डर से अत्यन्त भ्रमर प्रत्यन पर्वत तक—यही क्यों, किन्तु भूलोक और सुलोक भी कांपने लगते हैं। [ इम सुन्दर देव के भक्त संरक्षण—सामर्थ्य की प्रशंसा करनेवाला नोधा एकाएक बहुतमा पराक्रम कर दिखलाने लगा।

१२

सचमुच यह इन्द्र, जो विपुल ( सम्पत्ति का ) अकेला ही मालिक है, उन सकल वस्तुओं में से जिम जिम वस्तुकी इच्छा करता गया वह वह उसे अर्पण होती गई। जब सूर्य में एतशा की यह म्पर्धा हुई, कि अश्व पर अन्ध्या बैठनेवाला कौन है, तब एतशा चू कि सोमरस के उत्तम हवि अर्पण करनेवाला इन्द्र का भक्त था, उस कारण उसने एतशा की रक्षा की।

१३

हैं पतिवर्ण अश्वोंपर आरोहण करनेवाले इन्द्र, उन प्रकार मौतमों में वे स्तोत्र इतनी सुन्दर रीति से, सचमुच आप ही के प्रतियर्थ बनाये हैं। उन स्तोत्रों पर आप सब प्रकार से कृपादृष्टि रखिये। स्तुति स्तोत्रों के वैभव में परिपूर्ण यह [ इन्द्र ] हमारे यहां प्रातःकाल शीघ्र ही आगमन करे।

१६ ( २८ )

## अध्याय ५.

सूक्त. ६२

॥ ६२ ॥ ऋषि-गौतम नोधा । देवता-इन्द्र ॥

‘वामर्ष्यवान्’ और ‘स्तुतिप्रिय इन्द्र’ के लिए अगिरस की तरह प्रभावशाली स्तोत्र हम स्मरण कर सकते हैं। स्तुति करनेवाले भक्तों के लिए अत्यन्त स्तवनीय और अतिशय कीर्तिमान् इस वीर के सम्मानार्थे आइये हम लोग, सुन्दर शब्दरचना कर के स्तोत्र पढ़े। १

‘पैर’ पठवान लेने में अतिशय अगिरस नामक हमारे भक्तिमान् प्राचीन पूर्वजों को जिनकी तथा से धेनुओं की प्राप्ति हो सकी उन श्रेष्ठ इन्द्र को तुम अत्यन्त नम्रता से वन्दन करो और उन्हीं साम देवान इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तुम स्तुति से परिपूर्ण कोई गान करो। २

इन्द्र और अगिरस की इच्छा से सरमा को अपने पुत्र के लिए उत्तम पेय<sup>३</sup> मिला। बृहस्पति ने पर्वत तोडा और गौओं को प्राप्त किया, तथा शूर लोगों ने धेनुओं के सहित आनन्द की गर्जनाए की। ३

आप तेजस्वी हैं। आपको सप्त विप्रों ने और अत्यन्त चपल नवम्बों ने और दशम्बों ने स्तुति-स्तोत्र और गीत गाकर (प्रोत्साहित किया, तब) हैं पराक्रमी इन्द्र, आपने बड़ी गर्जना कर दे पर्वत, मेघ<sup>४</sup> और बल का ध्वंस किया। ४

हे सौन्दर्यवान इन्द्रदेव, जब अगिरसों ने आपकी स्तुति की तब उषा, सूर्य और धेनुओं ने मेकर आपसे अन्वकार<sup>५</sup> का उन्नेद दिया। हे इन्द्र, आपने भूलोक की मर्यादा विस्तृत = और रजोतीनों<sup>६</sup> ऊपर पृथ्वी की स्थापना की। ५ (१)

१-शुभ्रानाम्य । गर्जिते, (इन्द्र) अङ्गिरस्वद शशम् आगूष, प्रमन्महे। सुवृक्षिभि, स्तुवते ऋग्निवा-  
।। मुताय वर अरुम अर्चाम ॥

२-५२३। चरते न पूर्वे पितरः अगिरस येन गा अविदन्, तस्म महे शशुवाताय (इन्द्र-  
गोई मने, अगूष त्वामे प्रभरध्वम् ॥

३-इन्द्रस्य अतिरुत्या वैशो, सरमा तजयाय धासि<sup>३</sup> विश्व। बृहस्पति अरिं भिनत् गाः विश्व। न-  
ऋत्विजाम (सद) । तजयत् ॥

४-५२३। उषा उषा, दशम्बे, वस, विषे, सुधुना, स्वरेण, स्तुभा, स्वर्चः स, (त्व) (हे)  
।। अरि, ५ ।। त्वामे प्रभरध्वम् ॥

५-(३) सत्तु रजोतीनि, पृथ्वी उषसा सूर्येण गोनि अध<sup>५</sup> विव, भूम्याः सानु, व्यप्रध्व, ५५  
।। उषसेन्दु-सत्तु ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० २ ] — ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० ११ सू० ३२

इस सौन्दर्यवान् देवता का यह कर्म अत्यन्त सन्माननीय है—यह उसका अजुन कृत्य ननु-  
मुच ही अत्यन्त सुन्दर है—कि क्षितिम्न के पास उसने मगुर जल की चार नदिया, एक ते  
ऊपर एक, उपटापाट भर दी ।

स्त्रियों से परिपूर्ण स्तोत्र होते हुए, कदापि श्रान्त न होनेवाले इस देवता ने प्राचीन  
काल से एकत्र रहनेवाली जोड़ी फोड़कर उनके दो भाग किये । अनेक सुन्दर आश्चर्यकारक  
पराक्रम करनेवाले इस देवता ने भृगु की तरह स्वर्गभूमि और पृथिवी, इन दो युवनियों को,  
इस विशाल आकाश भाग में, स्थापना की ।

सनातनकाल से रात्र और उषा, ये दो युवनिया, कि जिनके रूप भिन्न है, परन्तु जो  
पुनः पुनः जन्म लेती रहती हैं, अपनी अपनी गमनरीति से सुलोक और पृथिवी के पास-  
पास, क्रमशः कृष्ण और उज्ज्वल रूप धारण कर के, अकेले अकेले, परिभ्रमण करती  
रहती हैं ।

सुन्दर सुन्दर चमत्कार करनेवाले और अत्यन्त उदार इन्द्र ने अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कर्म  
कर के ( सम्पूर्णा विश्व के विषय में ) चिरकालिक प्रेमबुद्धि धारण की है । ( हे इन्द्र, )  
गौश्रां का रंग लाल हो चाहे काला हो, किंवाहुना, चाहे वे विलकुल नवीन वन की ही भयो  
न हों, आप उनमें बलदायक, सफेद और मधुर दुग्ध रखते हैं ।

जिनकी गति एकही जगह की ओर है, और जिन्हें प्रत्यवाय अथवा नाश होने का डर  
नहीं वही ये नदिया पुरातन पुरातन काल से, अपने सामर्थ्य के अनुसार ( इस देवता की )  
आज्ञाओं का परिपालन कर रही है । जैसे एक ही पुरुष की हजागे विवाहित स्त्रिया हों  
उसी प्रकार ये बहिनी बहिनी इस एक ही की सेवा करती रहती हैं । और वह भी दिन  
खोलकर उस सेवा का स्वीकार करता है ।

६-इस्मस्य अस्य ( इद्रस्य ) तत् उ कर्म प्रयक्षतमम्, इम चाकृतमम् यत् उपरि, जग  
मध्वर्णसः चतस्र. नय. अपिन्वन् ॥

७-स्तवमानेभिः अर्कं अयास्यः ( इद्र ) सनजा सगीळे' द्विता विवत्रे । परमे व्योमन्, गण न,  
सुदसा मेने रोदसी अवारयन् ॥

८-सनात् विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वभिः एवं भूमा दिव परि, अक्ता, कृष्णेभिः, उषा, दशाद्रि,  
वपुभिः अन्धान्या आचरन् ॥

९-सुदसा, मनु, शवसा स्वपत्यमान' सनेमि सत्य दाार । आमासुचित्, कृष्णामु रोदसापु नत  
पक्तं दशात् दधिपे ॥

१०-सनात् सनीळा, अनाता, अमृता, 'अवनी सद्देवि नता रचन्ते । सनात् अ' इयाम, तात.  
पत्नीः न, दुवहयति' ॥

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ३,४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० ११ सू० ६३

आप नमस्कृतियों और स्तोत्रों से अर्चन करने योग्य हैं । हे सौन्दर्ययुक्त देव, धन और लाभ की इच्छा रख कर हमारे मन की स्फूर्ति आपकी ओर दौड़ती रहती है । हे बलशाली देव, जैसे अनुरक्त<sup>११</sup> पत्नी अनुरक्त पतिको आलिंगन देती है वैसे ही हमारी स्तुतिया आपसे मिलने आती है । ११.

हे लावण्यवान् देव, सनातन कालसे आपके हायमं सम्पत्ति है । उसका क्षय अथवा नष्टास कदापि नहीं होता । हे इन्द्र, आप कान्तिवान्, बुद्धिमान् और प्रज्ञावान् हैं । हे सामर्थ्यवान् देव, अपनी शक्तिके योगसे, आप हमें सन्मार्गमें लगाइये । १२

हे इन्द्र, यह गौतम प्रार्थन<sup>१२</sup> ऋषियोंका अनुकरण करता है । हरिद्वर्षी अश्वपर आरोह्य अग्नेवाले आपके लिए उसने नवीन स्तोत्र रचा है । हे सामर्थ्यवान् देव, आप हमारे सन्मार्गदर्शक हैं । आपके लिए नोधा ऋषिने स्तुति बनाई है । इस देवता के पास स्तोत्रसम्पत्ति भरपूर है । प्रातःकालमें ही हमारे यहा उसका सत्वर आगमन हो । १३ (३)

मुक्त. ६३

॥ ६३ ॥ ऋषि-गौतम नोधा ॥ देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, जबकि प्रत्यक्ष सम्पूर्ण पर्वत, और भूमिपर दृढ़ स्थापित अन्य भारी वस्तुएं भी, आपके डरसे (सूर्यकी) किरणोंकी तरह लच लच हिलने लगी तब आप अबरथ ही बहुत बड़े हैं—इतने बड़े हैं कि, आप सर्वज्ञ हैं, और सुलोक तथा भूलोकको भी अपने सामर्थ्य से आपने अपनी धाक<sup>१३</sup> में रखा है । १

११-नमसा अर्कं त्व नम्यः । दत्त, सनायुव वसुभ्य नतय ददु । शवसावन्, उशन्त पति "उशती. पत्नी न मनीषा त्वा स्पृशन्ति ॥

१२-सनात् एव राय एव ननस्तौ । दत्त, न क्षीयन्ते न उपरस्त्वन्ति । इन्द्र, सुमान् कतुमान् धीरः पति । शशीव, तव शचीनि नः शिषः ॥

१३-इन्द्र, गौतम सनायुक्ते<sup>१३</sup> । हरिषोऽजगत् नम्य द्रज्ञ वतज्ञन् । शवमान नः सुनीषाय नोधाः । ऋषिभ्यु प्रातः नक्षु जगन्प्रात् ॥

१-यद् ह एतन्म गिरिवन्तं वि । (दृष्ट) बन्ना ते भिया किरणा न ऐजन्, इन्द्र, न महान्—यः १३ न शशीव, तव शचीनि नः शिषः ॥

हे इन्द्र, जब आपने, अनेक प्रकार से जानते जाना मानतेमाने अपने आप जुष्टों या आपका स्तवत करनेवाले भक्तों से आपका स्तव मानती जुष्टों पर रख दिया। आपने बुद्धि से चतनेवाने, और अनेक भक्तों के द्वारा न्यायप्रणाली पानारण किये हुए हे इन्द्र, वहीं वज्र लेकर आप शत्रुओं का और सन्पत्ति से समृद्ध उनके नगरों का उद्धेः करने हैं।

हे इन्द्र, आप सत्त्वस्वरूप हैं, आप उन (शत्रुओं के) उन्धेरक हैं, प्राप्त कृष्णों के स्वामी हैं, आप मनुष्यों के कल्याणकर्ता हैं, आप अपने साथ युद्ध में प्राप्त होनेवाले भी परामृत्त करनेवाले हैं। आपने तेजस्वी और नरुण कुत्स का पक्ष<sup>३</sup> लेकर सगाम में, युद्ध में और 'वडाई' में युद्ध का उत्तम किया।

दीर्घनाती एतत् की तरह मन की प्रकृति रखनेवाले हे शूर इन्द्र, सनमुच विरागमय दस्युओं पर नहज ही विनाश पावकर के और उन्धे भगत<sup>४</sup> आपने साथ उन्हा के निवासस्थल में उन्धे काट जाता, और जिस समय, हे पराक्षी पुरुष की तरह तार्थ करनेवाले पर शूर इन्द्र, (कु-म के) दो-म तनकर आपने युद्ध का वध किया उस समय उस कार्य के विषय में स्वयं आप ही जो किसी प्रकार इच्छा था।

अष्ट० १ अध्या० ५ व० ५,६ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० १ अनु० ११ सू० ६४

हे वज्रधारी इन्द्र, इसी कारण से आपने दुत्ता के लिए वृद्ध किया और सप्त पुरो का विध्वंस किया। जिस समय आपने सुदास के लिए उसके शत्रुओं को, कुछ भी श्रम न करते हुए, घास की तरह काट डाला उस समय हे राजन, आपने पुरु की सन्तों से रक्षया<sup>११</sup> की। ७

हे सर्वसंचारी<sup>१२</sup> इन्द्र देव, आपने हम पर जल की तरह अपनी उस कृपादृष्टि की वृष्टि का कि जिससे भोग से, हे शत्रु, इस रीति से हमें आप से उत्तम सामर्थ्य<sup>१३</sup> का लाभ हुआ जैसे सब जगह जल गिरते जाता हो। ८

हे इन्द्र, गोतमों ने आपका स्तवन किया है और आपके अश्वों को दान करके उनको सम्मानाय भी उन्होंने स्तोत्र गाये हैं। हमें उत्तम प्रकार का सामर्थ्य मिला। अस्त्र तुलिकाओं से प्राप्त किया हुआ यह देवता प्रातःकाल शीघ्र ही हमारी ओर गमन करे। ६ (५)

सुक्ते. ६४

॥ ६४ ॥ ऋषि-गोतम नोधा । देवता-मरुत् ॥

हे नोधा, मरुदेवों के सम्मानार्थ, उनके सामर्थ्यवान्, अत्यन्त पूर्य और अत्यन्त कर्तृत्ववान् गथोंको उन्मोहित कर के एक तुलिका स्तोत्र अर्पण करो। ध्यानपूर्वक और गोतरी कुशला<sup>१</sup> के साथ मे यज्ञ के प्रसंग पर पानी की तरह प्रभावशाली स्तोत्रों का वृष्टि करता हूँ, १

७-वज्रधर इन्द्र, त्वत् इत्यपुस्तुताय बुध्वन् सप्त पुर दद । यत् सुदासे वाहिं न वृथा बर्क, राजन, पूरवे वरिव " क ॥

८-"पारज्मन् इन्द्र, त्व न , आपो न त्वा चित्रा इष पीपय यया, शत्रु, विध्व क्षरध्वे अस्मभ्यं प्रति ऊर्ज "त्मन पति ॥

९-इन्द्र, गोतमिनि ते ब्रह्मणि वारि हरिभ्या नमसा ब्रह्मणि उक्ता । सुवेत्स वाज न. आ भर । पियवसु प्रातः मधु जगन्वात् ॥

१ नो १, मरुत् वृषो ह्यमन्वाय वेपले कर्षाय सुवृक्ति प्र भर । नमसा धीर सुदत्तय ' दिदयेषु बाधुव. गिर अपो न हतये.



रुद्रों के पुत्र, ( शत्रुओं का ) नारा कग्नेवाले सन्पूर्ण अक्वगुणों<sup>२</sup> से अजित, जगत् हो जान करानेवाले, सूर्य की तरह तेज पुत्र और वृष्टि कग्नेवाले है, तथा सामर्थ्यवान् पुरुषों के तरह भयप्रद ये ऊँचे शरीर के पराक्रमी वृषभ युक्तों के जन्मे हैं ।

नारुण्ययुक्त, जराग्रहित, भक्तिहीन, कृपण पुत्रों का विनाश कग्नेवाले और हिमालय प्रतिगोध<sup>३</sup> को न माननेवाले ये रुद्र पर्वत की तरह बनवान् होते गये । ये शिख्य लोको और पृथ्वीतल के प्रदेशों को फिर वे चाहे जितने अचल स्थान हों, अपने सामर्थ्य के योग से हिला डालते हैं ।

सुन्दर देख पड़ने के लिए वे आपने ही चित्तविचित्र आभरणों<sup>४</sup> से आभूषित कर रहे हैं । सोमा के लिए उन्होंने अपने वक्षस्त्र पर सुवर्णालंकार धारण किये हैं । उनके तंतों पर चमकते हुए भाले देख पड़ रहे हैं और ये भी अपना ही मार्ग धारण कर के युक्तों के उत्पन्न हुए हैं ।

विश्व पर आधिपत्य संपादन कग्नेवाले, सम्पूर्ण जगत् हो हिला डालनेवाले ओ दुष्टों का संहार कग्नेवाले इन मन्त्रों ने दवा और विजली उत्पन्न की । वे स्वर्भूमि<sup>५</sup> को पृथ्वी का दोहन करते हैं और सर्वत्र संचार कर के दुग्ध से पृथ्वी को पुष्ट करते हैं ।

शरीर में कर्तृत्व रखनेवाले ये दानशू मरुत् जल, और घृतपिण्णुपूर्ण दुग्ध की समृद्धि करते हैं । वे सामर्थ्यवान् अश्व<sup>६</sup> को मानो कुद्ध वृष्टि करने की ही शिक्षा देते हैं और वे गण शब्द करनेवाले अविनाशी भागने का दोहन करते हैं ।

२ रुद्रस्य सर्वा असुर औरसः पावनान् सुर्या इव युवम् द्रग्मिन् सन्वानो न धोरणम् ( ५२ )  
वासः उक्षण ते दिवो जतिरे.

३ युवान् अजरा अमोघन अत्रिगावः ददा पर्वता इव ववथु । मग्मना दिश्यानि पा ।।। ५७  
विश्वो भुवनानि प्रच्यावयति.

४ वपुषे चित्रे अजिनिः व्यजते । शुभे वस सु हवनात् अर्धवेतिरे । एषा जनेषु ददा ।।। ५८  
नर स्वधया साके दिवः जतिरे.

५ ईशानकृत पुनथ रिगादसः वातान् विष्टुत तंविगमि मग्मना दृष्टव दिश्यानि दुर्धित, ५९  
पनथा नृनि पिन्वन्ति.

६ आशुवः सुदानव मदतः नपः दृत्तवर्तः विगन्ति । ६०  
अशित वृत्सु दुश्मिन्.

जिस समय सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण युक्तिप्रयुक्तियों में निष्णाल, आश्चर्यकारक तेज से युक्त, पर्वत की तरह स्वसामर्थ्य से परिपूर्ण और शीघ्रसंचारी आप अपनी रक्तवर्ण हरिनियों में से वज्रित हरिणी को अपने रथ में जुटाने हैं उस समय (मानो ऐसा भास हाता है कि) आप किसी वनैले हार्यो की तरह सब पेड़ पौधे खा ही डालते हैं । ७

अत्यन्त प्रज्ञाशील, रुह नामक मृग की तरह सुन्दर, सर्वज्ञ अपनी चित्तल हरिणी युगल और भाले ले कर, रान को भगा देनेवाले, शत्रु को एकदम एक ही समय पीड़ा देनेवाले और वज्रित होने के कारण सर्प की तरह क्रोधित ये मरुत् सिंह की तरह गर्जना काने हैं । ८

समुद्रा में शोभित दिखनेवाले, मनुष्यों<sup>१६</sup> के सहायक होनेवाले और शरीर में सामर्थ्य होने के कारण सर्प के रामान कुपित होनेवाले हे शूर मरुदेवता ओ, आप स्वर्ग और पृथिवी दोनों लोकों से सम्भाषण कीजिए । आपके रथ के बन्धुरों पर क्या सुन्दर तेज उगोचर नहीं होता ? और आपके रथों पर क्या विद्युत्<sup>१७</sup> विराजमान नहीं हुई ? ९

सर्प, स्वैभव धारण कर के एकत्र निवास करनेवाले, एक दूसरे से विलकुल संलग्न रहनेवाले स्वसामर्थ्य के चोल से श्रेष्ठता पाये हुए, अस्त्रविद्यानिपुण, शरीर में अपार बल रखनेवाले और प्रायु<sup>१८</sup> धारण करनेवाले इन शूर मरुतो ने हाथ<sup>१९</sup> में बाण लिया है । १०

पवित्र चमर, स्वमार्ग से गमन करनेवाले, स्थिर पदार्थों को चलानेवाले, शत्रुओं की ओर से अपने ने वज्रितवन्<sup>२०</sup> लानेवाले, हाथ में भाले चमकानेवाले ये मरुत् दुग्धपान से सामर्थ्यवान् वन कर अपने सुवर्णमय पवियों से, मार्ग के किसी क्षुद्र पदार्थ की तरह, पर्वतों को पूर चूर कर डालते हैं । ११

७ मी. इति मरुत्सु निम्नानव गिरयो न स्वतवस रघुध्वद आहारीषु तविषी यन् अयुग्ध (तदा)

८ मरुत्सु रथो वरुत्सु

९ प्रजापति विष्णोः वरुत्सु, विश्वेदेवस, पृषतर्गिणि वृद्धिभि क्षप जिन्वन्त, तम् इन् सवाध, मरुत्सु अरिमात्रसु रिशु इव नन्दति

१० मरुत्सु इत्युक्ते मरुत्सु अरिमात्रसु शरा मरुत्सु रोदसी आवदत । बन्धुरेषु दर्शता भवति । न त रथो वरुत्सु इति

११ मरुत्सु इत्युक्ते मरुत्सु अरिमात्रसु, तस्मिन् मरुत्सु, तस्मिन् मरुत्सु, अस्तार, अनन्तशुभा, "वृष-  
१२ मरुत्सु इत्युक्ते मरुत्सु अरिमात्रसु

१३ मरुत्सु इत्युक्ते मरुत्सु अरिमात्रसु "अरिमात्रसु मरुत्सु प्रजापति. मरुत्सु: दिवस्पृथ्वेभि. पवित्रिः  
पवित्रिः मरुत्सु इत्युक्ते मरुत्सु अरिमात्रसु

युद्धक्षय्य में चतुर, पवित्र, वन में संचार करनेवाले, और लोभ, लालच, हर्षिताम्य रुद्र के पुत्रों को पुकार कर हम उनका लवन करते हैं। रजोतोष के प्राणियों, सदा सरल गति से चैदनेवाले और अनिश्चय शक्तिमान् मरुद्गणों का तुम, वैभव प्राप्त करने के लिए भजन करो।

११

अपनी सहायता देकर आप जिस की रक्षा करने हो वह मनुष्य अपने सामने ही जोगो में अधिक बन्धन होता है। वह अपने अर्थों के योग से नामर्थी सम्पत्ति प्राप्त करे, वह अपने यहा शूर मनुष्यों के द्वारा सन्पत्ति कमाता है, उसे, वह यह न जानता है जिसके विषयमें जोग प्रज्ञापात्र<sup>११</sup> करते हैं और उसकी उन्नति होती जाती है।

१२

धनकी प्राप्ति करनेवाली, प्रशस्तनीय, लीला में निहित होनेवाली, अल्प बुद्धि युद्ध में हार न जानेवाली और उज्ज्वल शक्ति, हे मरुतो, आप अपने ही शक्तिमान् मरुद्गणों को लाइये। हमें शत्रु पुत्रों भी प्राप्त हो।

१३

हे मरुद्देवताओं, हमें ऐसा वैभव दीजिए जो स्थिर रहे, जिसके योग से शूर लोग युद्ध यहा रहे, जिसके योग से शत्रु पराजित<sup>१२</sup> हों, जिसकी गिनती नैकटों और शत्रुओं के पड़े और जो सदैव बढ़ता रहे। यह मरुद्गण, जिसकी स्तोत्रस्तुति अथवा उपासना हमारे यहा सत्वर गमन करे।

१४

६५ ॥ ऋषि-शक्तिपुत्र पराशर । दवता अग्नि ॥

अनुवाक. १२

सूक्त. ६५

दुरा ले जाकर जब कोई चोर गुहा में छिपकर<sup>१</sup> जा बैठता है तब उसके जगाते हैं, उसी प्रकार प्रज्ञाशील पुरुषों ने आपस में एकमत करके, सब कार करके, उन देवों के पास पहुँचनेवाले आपका पता आपके पैरों से पुष्पशील पुरुष आपके समीप विराजमान् हुए । १

स्वप्न होनेवाले अनुशासनो का देवों ने पारंपाजन किया । स्वर्ग की मत्वनियमों का आश्रयस्थान हुई । प्रत्यक्ष सत्य ने जहाँ जन्म लिया ठाटवाट के साथ, जिसका जनन हुआ वह अग्नि जब वृद्धि<sup>२</sup> पाने लगा उसका स्तवन करके उसके वर्धन को उत्तेजना दी । २

धीय होता है, पृथ्वी जैसी विस्तीर्ण है, गिरि जैसा (पुष्प फलादिक) स्पर्ण होता है उदक<sup>३</sup> जैसा हितकारक होता है, दौड़ने समय भी अधिक घोड़ा जिस प्रकार और भी दौड़ता है, अथवा जैसे कोई नदी ऐसी कि अपने तट तोड़<sup>४</sup> डाले, वैसा ही यह अग्नि है । वास्तव में इसे कौन है<sup>५</sup> ३

ऐसा ध्याग आप्त है कि मानो वे वहिनी है और यह उनका भाई ही वास्तवों का सहारा करता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण वन का भक्षणा गुने प्रेरित होकर इतना मोर्चा बनो की ओर फिरा होता है उस अग्नि (जैसे कि) पृथिवी के केश ही काट डालता है । ४

यह जल में बैठ कर श्वासोच्छ्वास करता है । यह होने बुद्धिमान् के जीव है । यह सब लोगो को प्रभात के समय जागृत करता है । इसके न नवीनता है । इसका जन्म सत्य से हुआ है । जैसे कोई पुष्ट<sup>६</sup> जानवर है वैसा ही यह देख पड़ता है । यह सर्वव्यापी है । इसकी कान्ति दूर

॥ ३३ ॥ इति-जन्तुः कर्म । मन्त्र-मन्त्रे ॥

सूक्त ३३

यह तेज-श्री और प्रभानगीत अग्नि आन्वर्षिक मन्त्रों की तरह, जिनके प्रतीक तमः जीवनप्रद आयु की तरह, निजके औरन पुत्र की तरह और जिनके अर्थ तो तमः है और जिस प्रकार भेनु दुग्ध को दूध गीनि से जागृत करना है उगी प्रकार तमः जन्तु को दृढ़ता से पकड़ रखना है ।

सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करनेवाला वह अग्नि पक्षे दृष्ट रोचके अन्वय को तमः अथवा किरी लुगोमिन मन्त्रिक की तरह है और जिनके पिता पिता के कि जिगते भक्त का श्रेय रहे । गोत्र गीनि में मन्त्र दृष्ट सृष्टि अथवा किरी गर्तप्रिय अन्व ही जेगी सम्पूर्ण जनों में प्रशंसा होती है वैसी ही जगत् में उसको प्रशंसा होगी रहना है । और यदु वा को उनका जीवन अर्पण करना है ।

माथ्यन दिक्केतानि सामर्थ्य की तरह अथवा अपने तम गीनि । जो की तरह यदु वा को पूज्य और प्रिय है और ज्ञाता तेज यः तमः कितने ज्ञाता है और ज्ञातियों ही पक्ष तृनि करनेवाला है । जो अपनी विजय विजय कतिपये तम निगमात्मान जेता है उस समय सुवर्गमय की तरह अथवा जन्तु । समुदाय में अन्व तेज में जागृतपाने किसी तेजगी पुत्र की तरह यह शोभने लगता है । मन्त्रम में ज्ञाता तेज तद्वत् तेज होता है ।

शत्रु के विरुद्ध भेनी हृष्ट सेना की तरह अथवा किरी अयकुशल शीर के शरणदायक के दृष्ट शीनिमान बाण की तरह यह मय अथवा करना है । यह शूनिमान यम ही है । फिर चाहे इन्ने जन्म शान्त्य किया हो अथवा चाहे उगता मन जन्म लेने की तैयारी में हो । यह कुमार्गिकों का दृष्टम और विवाहित लियों का नाथ है ।

जिस प्रकार भेनु अपने गृह की और गमन करती है उगी प्रकार तम, अपनी स्थाय और जंगम सन्धति के नाथ, इन प्रज्वलित अग्नि की और जो तुम्हें प्रिय है, गमन करने हैं । जन्तु के प्रवाहों को, टाट्ट मानी से, किसी महानरी की तरह, उगी ने बहाना । तुम्हें उग, सूर्यकी और, तेजकर गमने लगी ।

सूक्त. ६७

वन (दग्ध करके) विजय सम्पादन करनेवाला यह, मनुष्यजाति के कल्याणकर्ता किसी राजा की तरह, जो उपासक सेवा से शिथिल नही होता उसी सेवक को चाहता है । उसे मनुष्य का क्षेम उसे सुखदायक होता है अथवा जैसे बुद्धि का सामर्थ्य मनुष्य के लिए उपयोगी होता है उसी प्रकार सौख्यकारक होनेवाला यह अत्यन्त प्रज्ञाशील अग्नि हमारा द्रव्य देवों के पास ले जाकर उन्हें अर्पण करे । १

सम्पूर्ण वैभव अपने हाथ में रखनेवाले इस देव ने गुहा में (छिपकर) बैठ कर देवताओं को बड़े गडबड़ में डाला । मन तल्लीन करके रची हुई प्रार्थना जब बुद्धिमान् (भक्त) जन (प्रेमसे) बैठे हुए गाया करते हैं उस समय उन्हें जगत् में इस देवता का ज्ञान होता है । २

जन्मरहित परमेश्वर की तरह इसने इस विस्तीर्ण पृथिवी का पोषण किया है, सत्यश्रुति प्रार्थनाओं के भोग से उसने दुलोक को सम्हाल रखा है । हे अग्निदेव, आप विश्व के प्राण हैं । आप प्रत्येक गुहा में परिभ्रमण करते रहते हैं, (परन्तु) हमारे पशुओं के जितने प्यारे (चरने के) स्थान हों उनको आप (अवश्य) रक्षा कोजिए । ३

गुहा में निवास करनेवाले इस अग्निदेव का ज्ञान प्राप्त करने की जिसको इच्छा है, सत्यरूपी अमृतकी धारा पान करनेके लिए जो उसके आसपास ताके बैठा है, और जो अग्नि के सत्यनिगमों का परिपालन करके उसको उसके निवासस्थान से बाहर लाते हैं उनको उनको वह सम्पत्ति प्राप्त होने के लिए आशीर्वाद देता है । ४

जो अपने सामर्थ्य से लतासमुदाय में बढ़ता जाता है, जो उनका अपत्य ही है और जो अपनी जननियों में रहना है, जो प्रज्ञाशील है और जो विश्व का मानो प्राण ही है, वह अग्निदेव जलो के गृह में वास करता है । सुख लोगों ने उस गृह का माप ले कर उस मानों उसका मन्दिर ही बना दिया है । ५ (११)

मुक्त. ६८

सब वस्तुओं को परिष्क<sup>१</sup> करते हुए यह चरित्र आत्म हुंतेजों पर आरुह हुआ ।  
 ध्यान<sup>२</sup> में लेकर जगम<sup>३</sup> तक सब वस्तुओं को—( किन्तुना रागियो हो भो ) उसने गुणकारी  
 किया है । यह देवता इन सब वस्तुओं को अलेखे हा नेर कर अपने भेष गुण के हा  
 देवों में प्रमुख देव हो बैठा है ।

पिचम समय, हे देव, आपने जीव वनकर शुक्र काष्ठ से जन्म लिया उस समय आप  
 बुद्धिपयक सामर्थ्य की उन सब ने प्रशसा की । अपने अपने प्राणों में, आपने प्राणिक  
 सत्यानियमों का जब उन्होंने परिपालन किया उस समय उन सब हो 'देव' सं-  
 प्राप्त हुई ।

सन्धानियमों का यह प्रेरक है, सत्यानियमों का यह कल्पक है, सन्धानियमों का यह  
 प्राण है । इसी के कारण सब लोग अपने अपने कर्मों में प्रवृत्त होने हैं । आप ज्ञाना  
 हैं, अन्तर्गत, आपने जो द्रव्य प्रमाण करे, अथवा जो प्राणी सेवा करे, उसे आप सम्प  
 दीजिए ।

मनु की सन्तानों के समुदाय में यह 'इविर्दत्ता' बनकर बैठा है । वास्तव में सम्प  
 सम्पत्ति का स्वामी यही है । जब वही पुत्रोंको परम्पर यह उच्छ्रा हुई कि हमने सम्प  
 वीर्य ही सब वे अपनी शक्तियों के योग से गन्तवि-लाभ करसकें और उन पर मनोभंग  
 होने का प्रसंग नहीं आया ।

जिन्होंने तत्काल इसकी आज्ञा सुनी है उन्हें इसका सामर्थ्य एसे ही प्राप्त हुआ  
 जैसे पुत्र को पिता का अधिकार प्राप्त होता है । सब के पोषण<sup>४</sup> का प्रबन्ध करनेवाले  
 अग्नि ने इस प्रकार अपनी सम्पत्ति खोज रखी है जैसे कोई अपने बग के दान पुत्रों  
 दे । सब के गृहस्थाध्य<sup>५</sup> में आनन्द माननेवाले इस अग्नि ने नक्षत्रों के योग से सम्प  
 सुगोभिन किया है ।

॥ ६९ ॥ ऋषि-शक्तिपुत्र पराशर । देवता-अग्नि ॥

सूक्त ६९.

उषा के बह्म की तरह यह उज्वल और देदीप्यमान<sup>१</sup> है । और स्वर्ग की ज्योति की तरह ध्रुलोक और पृथिवी का आक्रमण कमता है । जन्म लेतेही इसने अपने सामर्थ्य से सम्पूर्णा जगत् घेर लिया और पुत्र होते हुए भी वह देवताओं का पिता हुआ । १

उस अग्नि में कर्तृत्वशक्ति बहुत है । यद्यपि इसका ज्ञान विशाल है, पर इसमें गर्व की छूट नहीं । अग्नि के दुग्ध की तरह पेय<sup>२</sup> पदार्थों का यह मूर्तिमन्त माधुर्य<sup>३</sup> ही है । यद्यपि इसका ताप दुर्गर<sup>४</sup> है, तथापि, प्रत्यक्ष सौख्य की तरह, यह लोगों को आनन्द देनेवाला है; जब यह घर<sup>५</sup> के मध्य भाग में स्थित होता है, तब अत्यन्त रमणीय जान पड़ता है । २

पुत्र का जन्म होने पर जैसे वह घर में पिता को रमणीय देख पड़ता है वैसे ही यह भी घर में रमणीय मालूम होता है । प्यारे घोड़े की तरह यह कठिन प्रसंग से, निर्वाह करा लेता है । मनुष्यों से सहवास करने में जिस देव-समुदाय को आनन्द मालूम होता है उन्हें जब जगत् (अपने यज्ञ में) बुलाता हूँ तब तब यही उन सब का देवत्व धारण कर के आता है । ३

जो कि इन नव मानवों की ओर आपने (आज तक) उत्तम ध्यान<sup>६</sup> दिया है, इस लिए आपकी यह ग्राजा भंग करने का साहस कोई नहीं कर सकता । सचमुच यह आपही का पगलम है कि अपने समबल देवताओं की सहायता से आपने शत्रुओं का वध किया और और पुरुषों को राज में लेकर आपने दुर्भाषणी निन्दको<sup>७</sup> का सत्यानाश कर दिया । ४

उषा के बह्म के समान देदीप्यमान और तेजस्वी रहनेवाले इस अग्नि की कान्ति से सना परिचित है । स्वयं अपनी ही प्रेरणा से रथ खींच ले जानेवाले अग्नि के अश्व ने द्वार खोल दिये और सूर्य दर्शन होते ही आनन्द का शब्द किया । ५ (१३)

१ उप जात न शुभं शुशुक्लान् दिव ज्योति न समीची पत्रा प्रजात क्त्वा परिवभूय पुत्र सन् देवाना ज्यता भुव

२ यता विजाना अग्नि अदभ गोना ऊध न पितृता स्वाद्य आहर्ष्यं सन् जने शैव न दुरोणे न तपसा रथ

३ एत जत न दुरोणे रथ प्रीत वाजी न विश वितारीत् यन वृभि समीच्या विश अदे अग्नि विधा ने देव ता अथा

४ ए एव तुभ्य भुष्टि चर्वा एता ते यता नकि निनन्ति तन तु ते दस यत् समाने (रपासि) एतु यत् तुभि तुक्त्वा रपासि विवे

५ उप जात न विनासा एत सशतरुप अस्ते चिरेतत् त्मना दइ त दुर पिन्दुष्यन् स्वर्दशीके तिदे गवन्त



॥ ७० ॥ इवि-गक्तिवुत्र पगगर । देता-अग्नि ॥

मूक्त ७०.

अग्नि की उन्नता कग्नेवाले हम ऋग्य से उसकी स्तुति करते मग्य देता पगग के लिए वाचना करें, क्योंकि यह अत्यन्त तेजयुक्त अग्नि सम्पर्गी पिता तो उन्नता उन्नतनेवाचा है । देवलोके के नियमों का इसको पूर्ण ज्ञान है और यह, उत्तम मग्य । उस वाचको जानना है कि मनुष्यजाति के प्राणी कैसे जन्म पाते हैं ।

उत्तम का जो गर्भ है, जो चर और अचर सृष्टि का भी गर्भ है उस अग्नि के मायते-स्त्रि चाहे वह पर्वतों के अन्तर्भाग का हो अथवा गृहों के अन्तर्भाग का हो-वाचको का प्रत्येक मनुष्य, तथा अमरों का समुदाय भी प्रसन्नतापूर्वक नम्र होना है ।

जो उस अग्नि को, उत्तम स्तोत्रो सहित, जब तक यह वृत्त नहीं होना वा नही, अर्पण करना है उसके लिए यह रात्रिका स्वामी अग्नि धनदा भांडार देना है । देताप्रा के जन्म और मर्यजनों का ज्ञान रखनेवाले है ज्ञानशील अग्निदेव, आप से मग्य भूप्रदेशों की रक्षा कीजिए ।

स्वर्ग में अविष्टित होनेवाला यह हविर्दत्ता अग्नि जन सत्य के परिष्कार परात्म परमात्मा था तब हमारे और से उसकी आगमना हुई है । यह सत्य के परिष्कार है । निरालस स्वरूप की अनेक रात्रियों ने तथा न्यावर जंगम सम्पर्गी पदादों ने उन्नता वीति लिए हैं ।

आप हमारे अनुश्रुतों की प्रशंसा करते हैं । जो वन हमारे अविहार में ह आते हैं प्रशंसा करते हैं । हमारे कुलके सब मनुष्य आपको स्वर्गीय वनि अर्पण करेंगे । अ वृद्ध पिता की सम्पत्ति जिन प्रकार उसके पुत्र को प्राप्त होती है उसी प्रकार आपको भी मैं उन्हें सम्पत्ति निक्षी है ।

यह कार्यमाधु मनुष्य की तरह अपना मार्य देवनेवाला, अत्यहुयग मनुष्यों की मः शर, बदला देनेवाले का मनुष्य की तरह मयप्रद और मग्य में उन्नत नामा वाचना है ।

॥ ७१ ॥ ऋषि-शक्तिपुत्र पराजर । देवता-अग्नि ॥

भूवत् ७१.

जिस प्रकार प्रेमी' स्त्रिया अपने प्रेमी पति को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार एक ही जगह रहनेवाली इन स्त्रियों ने इसको प्रसन्न किया है । जैसे उषा को देखकर गौश्रोको आनन्द होता है उसी प्रकार आश्चर्यकारक तेज के योग से प्रकाशमान होनेवाले शुभ्रवर्ण दिवस और कृष्णवर्ण रात्रि को देख कर इसने आनन्द से उनका स्वागत किया है । १

हमारे पितरों ने मित्र त्रैत्र सामर्थ्यों से अत्यन्त दुर्भेद्य दुर्ग भी तोड़ डाले; उसी प्रकार अग्निदेव ने त्रैत्रियों से पर्वतोंका भंग किया । उन्होंने हमारे लिए, विस्तीर्ण दुलोक की पार जाने का, मार्ग नैयार किया और दिवस, स्वर्ग, दीप्ति और प्रकाश को प्राप्त कर लिया । २

प्रेमपूर्वक उसकी उपासना करनेवाले उसके किङ्गों ने उसके सत्यनियमों का अवलम्बन किया और उसकी प्रार्थनाएं सफल कर ली । देवसमुदाय को सन्तुष्ट करनेवाले कर्मव्यापृत अन्तु चिन्ताम अग्नि की ओर गमन करते रहते हैं । ३

जब से अग्ने सर्वव्यापी मातरिश्वा ने मंथन कर के उत्पन्न किया तब से यह देवीयमान् अग्नि प्रलोक पर मे प्रादुर्भूत होने लगा । किसी बलवान् राजा का कार्य अपने ऊपर चलाये की तरह, अग्ने भृगु के समान देख पड़नेवाले अग्नि देव ने, प्रत्येक स्थल में उपस्थित रहकर, मन का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया है । ४

यह अग्निदेव चित्रविचित्र बालिन से युक्त और प्रजावान् है । इसने अपने पिता अग्ने शुभ्रवर्ण की लातगा पूर्ण की और फिर वह नीचे चला गया । (तुरन्त ही) इस पर प्रलोक पराक्रमी पुत्रों ने क्रोध में आकर प्रज्वलित वाण चलाया और उस दिव्य दुलोक न अपने कन्या के तर्ह प्रकाश उत्पन्न किया । ५ (१५)

१ उषाती उषसि नित्य पति न सनीग जनयः उप प्र जि वन् गावः उपस न स्वसारः श्यावी विम उषसती जग्मी अनुषा.

२ पितर उषा कीटु चिा ह्यगु न अनिरस खेष अद्रि रजन, अग्ने वृहत दिवः अग्ने गावु नु, सर, रा, गेव, उ । विविटु

३ जय दिविप त्रिभ्रा ता द्यव अगु गिति धनयन् इव अतः देवान् जन्म प्रयसा वर्धय तीः अनुषती अयत अष्टउ पति

४ वा पिता मातरि श दे सनीरु रेतन' उदृष्टे जेन गुन सचा सन् नृगवाणः ई सहीप्रसे रति न देव सा पिताम

५ ता नरे ति, जने, रा न विदि नरु प्तान आ त्तरन् अस्ता वृपता अस्मै दिव्यु सजन, देवः ता । उषारि विवि पा

सूक्त ७२.

॥ ७२ ॥ त्रिपि-नाक्तियुत्र पगगर । देवता-अग्नि ॥

अनेक प्रकारने लासकारना<sup>१</sup> अग्निने हापमे होनेके कारण कई कवीयोंने उसकी स्तुति की है, अग्निने शाश्वत् सम्पत्ति उत्पन्न की है; और स्वयं वैभवका स्वामी बन गया है ।

छास-पास बहुत कुछ ढूँढनेपर भी हमारा बालक हमको नहीं मिलता ? यह सब ज्ञानी देवोंको मानस हुआ । उसके पैरने<sup>२</sup> पीछे पीछे जानेपर सब ज्ञानी देव थक गये और उनकी स्तुति की । तब अग्निने उनपर कृपा की और वे ( सब ज्ञानी देव ) अग्निके उच्च स्थान पर पहुँचे ।

हे अग्निदेव, काम देखियमान है । जिस समय उन देखियमान पुरुषोंने आपकी तीन वर्णिक पृथक् पूजा की तब वे अपने पूजनीय पद धारण करने योग्य बने, और महत्कार्य करने की शक्ति उन में उत्पन्न हुई ।

जब विशाल सुजोका ओर सुजोह में वे शरीर पुरुष ढूँढने लगे तब उनको रुद्र के नागर्योना लाभ हुआ । जब सभी गजुओं ने यह बात विदित हुई तब श्रेष्ठ पद पर चढ़े हुए अग्निने उन स्थान पर मिठनाकर वे अग्नि को जानने लगे ।

आगे सर्वे मनुष्य अग्नि को जानने लगे तब वे उत्तरे पास बैठे और अपनी स्त्रियों के साथ उनकी पूजा की । उन्होंने अग्नि को नमस्कार किया । जैसे एक मित्र सोते हुए दूसरा,

हे अग्निदेव, जो एकलोक गुह्य पद (यत्र) आपके जगत्में रखे हुए है उन्हीं के प्राण यज्ञार्ह पुरुषों को जान हुआ। उन एकलोक पदके कारण ही वे एकलोक के भाव से रहने हैं, और अपने अमरत्वको रक्षा करने हैं। हे अग्निदेव, हमारे पशु, वाजपते मियर और अग्निधनकी रक्षा कीजिये। ६

हे अग्निदेव, सब मनुष्योंके विचारों को आप जानते हैं। उनके प्राणों की रक्षा करते ही प्रबन्ध आपने हमें आपके विषय किया है। देवोंके जाने आनेके गुप्त मार्ग भी आप जानते हैं। इस लिये आप उनको हवि पहुँचानेवाले दूत बन गये हैं। आप आलसी नहीं हैं। ७

तुम्हारा ध्यान करनेवाले और सन्ध-नियम पालनेवाले पुरुषों तो तुल्यो हामे जो साग नदीया और संसृति है उन सबका जान हुआ। जिस जगह गोश्रोतो बन्द कर रखा या वह गुप्त स्थान भी समाप्तो मालूम हुआ। इसीके कारण मानव जाति प्राणोंमें रहती है। ८

अपनी भाषी प्रजाको सुख प्राप्त करनेके लिये जो महान् पुरुष नीतिमार्गोंका प्रबलभान करते हैं उनको पृथ्वी माना उमास्माने नन्दति देवी है। अपने मानवस्वपी पक्षीकी (गुप्त बुझानेके लिये) वृद्धि (रक्षा) करनेके लिये अग्निनि माना आकाशमें विस्तृत रूपसे प्रकाशित होने लगी। ९

अमर देवोंने जिस समय पुरुषोंके दो आने उपर को उस समय उन्हींके अग्निमें सुन्दर तेज उत्पन्न किया और अग्निमें तेजोस्वी नदिया बहने लगी, तब तेजोस्वी तीर्थया पहुँच लगी तब सब मानव जातिको उनका जान हुआ १० (१२)

सत्य और नीति का प्रमाण रगनेवाले सतर्क से सब मनुष्यों को रगिते को उ-मुक्तता से वेष्ट दृष्ट मिलाना । आसकी दुर्गती प्राँचि रगनेवाले मश नाःगा भी प्रेशों से पर्वनेके पास आयी है ।

७ हे अग्निदेव, पवित्र देवाने भी आसकी दुर्गती प्राँचि रगिते को, और रगि लोहमे प्रथ को । उन्होने गवि और उवा इन दोनो अन्न अन्न रूपके (देताश्रो को) किया और इस तरह उन्होने काना और जान रगोको एतित किया ।

हे अग्निदेव, आपने सब मानव जानिके लिये धन-धान्य उत्पन्न करनेका साधन किया उस कारण हम भी आपको हवि प्रर्पण करते है । आकाशको व्याप्त करते पुनोह पृथ्वीलोकका भी आसने व्याप्त किया है । इस तरह सब विश्वको आप रगिते रहते है ।

हे अग्निदेव, यदि आसकी दुर्गता हमारा हो और आप हमारे रक्षा करनेवाले हो हमारे और मनुष्योंके श्रेयो हापगभव हमारे हमारे वीर पुरुष शत्रुओंके वीरों हापगभा क हमारे दुर्जने उन्नत देवैवागे विद्वान पुरुषों को हमारे पुरोहितों मान प्राण हो । और उ सा वंशकी आसु प्राप्त हो ।

हे वीरेशानो अग्निदेव, ये हमारे लोककी गीत आपके दृश्यको प्राप्त करे । ये छाने हमे वीरि प्राँच होवे । आस गा वैश्वको अर्पण स्वाधीन रगनेवाले है । हम अश्विपों के अहुसार हमें रगिते ।

सूक्त ७४.

अनुवाक १३.

॥ ७४ ॥ ऋ१-रघुगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

दूर<sup>१</sup> होनेपर भी जो हमारी पुकार सुनता है उस अग्निके लिये हम एक स्तोत्र गाते हैं । १  
जब मनुष्य आपनमें लड़ाई जगने है तब वह पुराणा अग्निदेव अपने भक्तों के धन और  
वरकी रक्षा करता है । २

अब सचमुच ही यह बात साहस्य होती है कि हरएक युद्धमें अग्निदेव धनकी रक्षा ले  
आये और वृत्र का वध करने के लिये ही आपने जन्म लिया । ३

हे अग्निदेव, जिनके घरमें आग देवोंका प्रतिनिधी बनकर रहते है, जिसके यज्ञमें आपको  
हवि अर्पण किया जाता है और जिनके यज्ञका प्रचनन आपकी ओरसे अच्छी<sup>४</sup> तरहसे  
किया जाता है, ४

उसी को लोग, हे सामर्थ्यमें उन्नत हुए अग्निदेव, अच्छा हवि अर्पण करनेवाला,  
अच्छा यज्ञ करनेवाला और हे तेजस्वी कहते है । ५ (२१)

हे आत्मान देवोंको अग्निदेव, हविषोंका आन्वय लेनेके लिये और तुनियोंका स्वीकार  
करनेके लिये आग देवोंको तब क्या तब ले आते है । ६

१ ऊरे व यतो यणो वपे यवरं उपप्रयन्त मन्त्र बोधेन.

२ धीरितीषु वृष्टिं तव नामसु, एते व दृष्टये नम अरभन्.

३ उत, तेभ्यो यजन्त उति उतथा यन्ति ज तव दृग्मत्

४ एव्य एव द्यु वरि, ए नि वि वि वर, य तव दग्मो वृषं वि

५ तस्ते यजे, यन्त उति जग, उतथा, उदेव उति व

६ तुयन्त, ए वा वि वि प्रारभ्ये तान् देवान् च रर उव वा वृष्टि

अष्ट० १ अध्या० ५ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड १ अनु १३ सू० ७६.

हे अग्निदेव, आपका कौन सगा है, आपको यज्ञ कौन अर्पण<sup>३</sup> करता है, सचमुच आप कौन है, और आप किसके पास रहना चाहते हैं ? ३

हे अग्निदेव, आप सबके नातेशर<sup>४</sup> है, आप हमारे मित्र है; और जो आपपर प्रेम करता है उसके आप प्यारे मित्र है । ४

मित्र और वरुणको हमारा यज्ञ आग पहुँचाहिये । हमारे तरफसे अपने सत्य नियमके अनुसार देवोंको हमारी पूजा अर्पण कीजिये । हे अग्निदेव, आप हमारा यज्ञ अपने घर ले जाते हैं । ५ (२३)

### सुक्त ७६.

॥ ७६ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गौतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, आपको कौनसा स्तोत्र प्यारा<sup>१</sup> है जिसके गाने से आपको आनन्द होगा ? कौनसी स्तुति आप चाहते हैं जिससे आप सजुष्ट होंगे ? आपको यज्ञ अर्पण करके किसने दत्त प्राप्त किया ? और हम आपको किस तरहसे हवि अर्पण करें ? १

हे अग्निदेव, आप आईये, हमारा हविर्शता वनकर आप यहा विराजमान् हूजिये । आप हमारे नेता हैं । आपको कोई भी किसी तरह नहीं सना<sup>२</sup> सकता है । बुलोक और पृथ्वीलोक-जिनसे सब विश्व<sup>३</sup> व्याप्त है-आपकी रक्षा करें । सब देवोंको हमारा यज्ञ पहुँचाहिये जिससे उनकी बढी<sup>४</sup> कृपा हमारेपर वनी रहे । २

अष्ट० ? अध्या० ५ व० २५, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० ? ३ सू० ७८

वही बुद्धि का खजाना है, वही कार्य करनेवाला सच्चा मनुष्य है, मनुष्य के अच्छे गुणों का वही आदर्श है, मित्र की तरह आर्त्त पैदा करनेवाले रूपर वही आरूढ होता है। देवों के श्रद्धालु भक्त इस सुन्दर देव को यज्ञ में पहले पहल बुलाते हैं। ३

सब मनुष्यों में अग्नि बहुत श्रेष्ठ है। शत्रुओं का नाश करनेवाला अग्नि हमें सहारा देता है। हमारे स्तुतिओं का वह स्वीकार करे। जो मनुष्य अग्नि को हवि अर्पण करता है वही वक्त्रान् और पराक्रमी बनता है। इस प्रकार की हुई स्तुतिओं का भी अग्नि स्वीकार करे। ४

गोतम गोतमों के सक्षयप्रम का पावन करनेवाले और सर्वज्ञ अग्नि की स्तुति की है। अग्नि ( अग्निने ) गोतमों को वेभ्य, वष, और वन दे दिया है, आप प्रजाशील है। और आप पर सब प्रेम करते हैं। ५ (२५)

सूक्त ७८.

॥ ७८ ॥ ऋषि-रहगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्नि, आप सर्वज्ञ और सर्वसचारी हैं। हम गोतम, आपको हवि अर्पण करके आपसे वार वार नमस्कार करते हैं। १

धन की प्राप्ति करनेवाले हम, गोतम आपको सेवाओं हवि अर्पण करके आपसे वार वार नमस्कार करते हैं। २



अष्ट० १ अध्या० ५ व० २७, २८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ७९

हे अग्नि, आम शक्ति के पुत्र है, आम गोम्रां के स्वामी है। हे सर्वज्ञ देव, आप हम को वैभवं और धन अर्पण कीजिये। ४

(हे अग्नि, ) आम उदियमान, दयालु, धनवान् और सर्वज्ञ है। आप स्तुति के योग्य है। अनेक सेवकों पर अधिकार चलानेवाले, हे अग्निदेव, आप इस तरह प्रकाशित हूजिये जिस से हमें बहुत धन मिले। ५

हे तीक्ष्ण-सूत्र अग्निदेव, रात्रि और प्रातः काल के समय आप अपने उगलाओं से राक्षसोंका नाश कीजिये। ६ (२७)

हे अग्निदेव, आमकी स्तुति सब स्तानों में गायी जाती है। इसलिये आप वन्दनीय हैं। हम नामों ज्योत आपको अर्पण करने हैं। इस लिये आप हमारी रक्षा कीजिये। ७

हे अग्नि, हमें ऐसा वैभवं और धन कीजिये जो हमेशा के लिये हमारे पास रहे और जो, हमारे भय, किसी पुद्गल बिना नहीं सकते। ८

अष्ट० १ अध्या० ९ व० ३० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० ८०

तो जगह जुडा हुआ वज्र अपने हाथमे लेकर इन्द्र वृत्रका सोर नेउ अजाता डे। अपना साम्राज्य न्यापित करनेके लिये इन्द्र अपने भक्तो के हथियो से सन्नुष्ट होकर उनो धन देकर उनकी उन्नति करना है।

हे शत्रु-शत्रु पान रचनेवाले इन्द्र, हे वज्रवागी इन्द्र, आपके सामर्थ्य का छोडे नाश नहीं कर सकता है। अपना साम्राज्य न्यापित करने के हेतु आपने बडे कुशलता से ओर युक्तियुक्ति से उन दुष्ट पयु (गक्षस) ओका नाश कर आजा।

आपका वज्र नये महानर्भयो की रक्षा करने के लिये तैयार था। आपका वाहुन वज्र श्रेष्ठ है। उन लिये आप अपना साम्राज्य न्यापित करते है। आपके वाहुनके लोगो को लाभ होता है।

हजारो मनुष्य पशुन होकर इन्द्रकी पुजा करनी चाहिये। सौतरो मनुष्य आपका स्तुतिमन्त्र गाता है। इन्द्र के लिये अब एक अच्छा मन्त्र तैयार है। इन्द्र आ गया। न्यापित करने की इच्छा करता है।

अष्ट० १ अ० ५ व० ३०, ३१ ] ऋग्वेदः [ गण्ड० १ अ० १३ सू० ८०

इन्द्रने वृत्रके सामर्थ्यका नाग क्रिया । इन्द्रके वाके सामने वृत्रके बजका कुब्ज नहीं चला । यह बड़ी शीरता ही वान है कि इन्द्रने वृत्रको मार डालकर जजोतो उनके प्रतिबन्धने छुड़ा लिया । निजका साम्राज्य स्थापित करनेकी आसका बड़ी इच्छा थी । १० (३०)

हे इन्द्र, जब आप दुस्रोमे आते है तब दोनो भू और चुलोक उरके मारे कांपने लगते है । अपना साम्राज्य स्थापित करनेके लिये आपने मरुत् गणो के सहायता से वृत्रको मार डाला । ११

वृत्रने पृथ्वीको हिजागा ओर बड़ी गर्जना की, तथापि इन्द्र विजकुलही नहीं डरा । बल्कि अपना साम्राज्य स्थापित करनेके हेतु इन्द्रका पैनेडार लोहेवा वज्र वृत्रके सिरपर गिर पडा । १२

जब इन्द्रका वज्र वृत्रके सिरपर गिर गया तब इन्द्रकी योगता चुलोकमे भी मालूम हुई । उस तरह पराजित करके वृत्रको जाग डालके इन्द्रने अपना साम्राज्य स्थापित किया । १३

लागता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि साम्राज्य स्थापित करनेवाले इंद्र को पुत्रों के

त्वष्टा देव भी इसके सारे कामने लगता है।

१४

इंद्र से किसीका भी बल अधिक नहीं है। आपके बलकी तैरि गेह नदी यदपी  
निजका साम्राज्य स्थापित करने के लिये सन देवों ने अपना बल और स्फूर्ति इंद्र को प्रो

का दी।

१५

अथवा, सन मनुष्योंका पिता मनु और देवोंके इंद्र के लिये जो स्तुति-बोध मागे गेवा  
साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा करनेवाले इंद्र को जा पहुँचे।

१६ (११) (१२)

---

## अध्याय ६.

सूक्त ८१.

॥ ८१ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

वृत्र का यध करनेवाले इन्द्रको आनन्दित और उत्साहित करनेके लिये मनुष्य उसकी मूर्ति करता है। जिस समय लड़ाई उपस्थित होती है उस समय हम इन्द्र को पुकारते हैं और उनका सहारा लेते हैं। छोटी लड़ाई में भी हम उनको बुलाते हैं। वीरता के काम में आपने हमारी रक्षा की है। १

हे सूर्य पुरुष, सचमुच, आपही सेना के नेता है। अनेक तरह से (भक्तों को) (वैभव) अर्पण करनेवाले आपही है। संसारमें जो छोटा ( गीन ) मनुष्य है उसकी भी आप उन्नति करते हैं। जो भक्त आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप बहुत धन-जो आपके पास है-देते हैं और उसको ज्ञानी बना देनेवाले आपही है। २

जिस समय लड़ाई उपस्थित होती है उस समय साहसी पुरुषों को आप चोहे जितनी सम्पत्ति देने हैं। लड़ाईमें शत्रुओंको हटानेवाले शत्रुओंको आप अपने रथको जोतिये। आपने किसका यध कर डाला? आपने वैभवका किसको स्वामी बनाया है? सचमुच हे इन्द्र, आपने वैभव का स्वामी हमें बना दिया है। ३

हे इन्द्र, आप वपदान् होनेके कारण बड़े श्रेष्ठ बन गये हैं। आपका लड़ने का ढङ्गा जुद्ध और ही है। इस कारण शत्रु आपको डरते हैं। आपका बल बहुत बढ़ गया है। आपका सिर बहुत सुन्दर है। आपके पास पीले रंग के अश्व हैं। आप जैसे बड़े देवने अपने घोसों वन्धोपर लोहेका बन्ध रखा है। ४

आपने गूँकों और रजों जाकों को भी व्याप्त किया हैं। सुलोक में जो देदीप्यमान प्रवेश है उसको भी आपने व्याप्त किया है। हे इन्द्र, आप सरीखे (इस जगतमें) दूसरा कोई भी नहीं। (इतना ही नहीं) किन्तु भूतकाल में भी आप सरीखा दूसरा कोई नहीं था। और भविष्यत् काल में भी आप सरीखा दूसरा कोई नहीं होगा। आप सबसे परमेश्वर हैं। ५ (१)

१ इन्द्र इन्द्र मदाय शकं रुमि वायुं महसु आनिषु त इत् उन ई अर्ध हागंहे त. वाजु न प पक्षिपते ।

२ अरि रे य हि वसि मरि पराददि अति दन्त्यं चिन् इध अग्नि मु गने यजमानाय त गरि यद भवति ।

३ असा वाजु ररिते पृष्विषे धना पीयते नदक्षुता हरी युत्त क हन १ क वनों दध १ इन्द्र, वनों का दधि ।

४ असा गरी १ इन्द्र १ असा तय आ वपुं । रिषी हरिवात् कृष्व १ उपाकृषो. हन्त्यो शिने आपस तर्क १ ।

५ असा वा र्ग आ पने रिषि रेणा ह्यो १ इन्द्र, न स्वाजान् वन्धन । न जात, न जनिष्यते विन १ न सरे १ ।

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २,३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १२ सू० ८२

जो इन्द्र अपने भक्तोंपर प्रीति करता है और अपने उपासकों के पोषणका प्रयत्न करता है वह इन्द्र धन प्राप्त करनेकी हमें शिक्षा देवे । आपके पास जो वहुत धन है उसे हमें दीजिये । हमपर आप कृपा रखिये ।

अपने बलका सचेत् अतःकरणासे उपयोग करनेवाला इन्द्र जब प्रसन्न होता है तो सचमुच वह हमें चाहे जितनी गोएँ दे देता है । हे इन्द्र देव, रोहतो प्रहारके पानके आप स्वामी बन जाइये । हमारी रक्षति बढाइये । और हमें सम्पत्ति दीजिये ।

हे शूर इन्द्र, जब तैयार किया हुआ सोमरस आपको दिया जाता है तो आप मनुष्य होकर हमें बल प्रदान करते है और हमपर कृपा रखते है । सचमुच हमें यह पता है कि आपके पास वहुत धन है । हमारी जो इच्छा है वह हम स्पष्ट रीतिये पाल देते है उन कारण आप हमारी रक्षा कीजिये ।

हे इन्द्र, जो मनुष्य आपके सहारेपर प्रवर्जित है वे दिनपर दिन अपनी मा प्रहाराकी सम्पत्ति बढाते है । आप भक्त-वत्साल होनेके कारण भक्तिहीन ( पापी ) मनुष्योंके पाप तो रम्यति है उसको भी आप जानते है । उन पापी मनुष्योंका धन श्रितकर हमें वा दीजिये ।

सूक्त ८२.

॥ ८२ ॥ ऋषि-रह्यगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्रदेव, आप इन्द्र आइये, और हमारा पुकार सुनिये । हमारे सन्तान आप ( विरोध ) विघ्न भाव नहीं समाप्तिये । मधुर वचनसे प्रार्थना करनेका तरीका आपमें हमें सिखाइया है । हम दिने जन्म हमें आपकी प्रार्थना करोगे । हे इन्द्र, सचमुच आप अपने अधि ( शोक्नेके लिये ) तैयार कीजिये ।

वे आनन्द में रहे। उन्होंने अपना समय आनन्दमें व्यतीत किया। आपकी उनपर कृपा थी। इस लिये उन्होंने (आनन्द के साथ) अपना मस्तक हिलाया। उन विद्वान् लोगोमें निजका तेज था, इस लिये उन्होंने नये स्तोत्र बनाये। और आपकी स्तुति की। इस लिये हे इन्द्र, आप अब अपने अश्व जोतिये। २

हे उदार इन्द्रदेव, आपका दर्शन बहुत मनोहर है। इस लिये हम आपकी स्तुति करते हैं। आप अपने रथमें सब प्रकारका वैभव भरकर रख दीजिये। उस वैभव के साथ आप अपने भक्तों के पास आजाइये। हे इन्द्र, आप अपने अश्व अब जोतिये। ३

हे इन्द्रदेव, यह यजुवात्र सोमरस से भरा हुआ है जो आपको अश्व जोतनेके लिये तैयार करता है। जो मनुष्य सोमरस की रुचि जानते हैं उनको धेनुएँ<sup>३</sup> प्राप्त होती है। वे रथपर बैठनेके लिये तैयार होते हैं। इस लिये आप अपने अश्व (जोतनेके लिये) सिद्ध करके रखिये। ४

हे इन्द्र, आप अपने दृष्टने तरफका घोड़ा रथ को जोतिये अथवा वाये तरफका घोड़ा रथको जोतिये। अपने रथ में बैठकर हमारा हवीं आप स्वीकार कीजिये और आनन्द बनाकर अपनी पत्नी की ओर जाइये। सचमुच हे इन्द्र, आप अपना अश्व जोतिये। ५

आपकी स्तुति करके हम आपके अश्वों को आपही आप जोतनेकी स्फूर्ति कराते हैं। उनके गर्जन के बाल पतल लगते हैं। आप इधर आइये। आप सब सम्पत्ति अपने स्वाधीन रखते हैं। तपस्य को प्रसन्न करनेवाले सोम रस ने आपको आनन्दित किया हैं। हे वज्रधारी इन्द्र, पुष्यदेव और उसकी पत्नी के साथ आप प्रसन्न रहते हैं। ६ (३)

॥ ८३ ॥ ऋषि-रहुगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्रदेव, जिन मनुष्योंपर आपकी कृपा बनी रहती है और जिनकी आप रक्षा करते हैं उनको सबसे पहले अश्व और धेनु मिलती हैं । जिस तरह शीघ्र बहनेवाला जल समुद्र में जा मिलता है उस तरह सचमुच आप उन मनुष्यों को बहुत धन देते हैं । १

जिस तरह समुद्र की चारों ओर पुण्यवती नदीया फैलती है उसी तरह इन्द्र देव के आस पास उनके उपासक जम जाते हैं और भूलोक और रजोलोक की रक्षा करने का आप का ही धे देखते हैं । भक्तिमान् मनुष्योंको सब देव उच्च पद को पोहचाते हैं । जिस तरह स्त्री का इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्री को हूँदता है उसी तरह देवों की स्तुति करनेवाले भक्तों को ही सब (देव) हूँदते हैं । २

यज्ञचमस तैयार करके जो पुरुष अपने स्त्री के साथ इन्द्रकी पुजा करते हैं उन लोगोंपर आप कृपा करते हैं । जो मनुष्य आपकी आज्ञा मानते हैं उनको कोई भी नहीं सताता और उनकी उन्नति होती है । जो उपासक आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप कल्याण करनेवाला वज्र प्रदान करते हैं । ३

भक्ति से पुण्यकर्म करनेवाले अंगिरसों ने अग्नि को प्रदत्त किया । वे सबसे पहले वीर्यपूर्ण बन गये । उनको पर्णा ( राक्षस ) की अनाज, अश्व धेनु और पशु आदि सब सम्पत्ति मिली । ४

पहिले पहिल अथर्वणने यज्ञ करके धन कमानेका मार्ग बनाया । उसके बाद नीतिनिर्णयके अनुसार वर्ताव करनेवाले तेजस्वी सूर्यने जन्म लिया । उसनाकाव्य धेनुओं को माग्नीदिक के आया । हम अब यम देव की पूजा करते हैं । यम देव को मृत्यु में जाना नहीं है । ५

१ इन्द्र, तव उतिभि सुधावी, मर्त्य प्रथम उन्नवति गोषु मच्छति यथा विद्यमान आप नीलतः सिन्धु, नदीयसा वसु त इत् पृथग्नि ।

२ देवी, आप न होत्रम उपयन्ति, रज यथा विवत जव पश्यन्ति देवसु देवाम पाणि पजान्ति, वरु इव व्रह्मप्रिय जोषय ते ।

३ या वतद्बुधा मिथुना सपर्यत इयो उव्य वच न्नि अदमा ते प्रते दोनि जयन्त पुष्ये सुवने वजमानत्व भद्रा शक्ति ।

४ सुहृद्यथा सन्धा ये इन्द्रामव, अगिरा प्रान ख र्नि जत तर पते मी नोका वरुणो मेम त पशु वा न अचिन्दन्त ।

५ अथर्व प्रथम यज्ञे पथ तने, तव प्रतपा देव आ अतनि उज्जवा मन्व, वा मता ना नील, वमस नित्त तव धनमहे ।



अच्छा सन्तान पैदा होनेके लिये उपासक लोक यज्ञकी तैयारी करते हैं । वे पहिले ऋग्वास को काटने है । उसके बाद वे स्तुति करते है । और बडे जोरसे गाते हैं जिस गानेका ध्वनि दुलोक तक पहुँचता है । उसके बाद सोमवलीको शील बट्टेसे कूटकर और निचोडकर उसका रस निकाल लेंते है । इस तरह जो यज्ञ किया जाता है उसको देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है ।

### सूक्त ८४.

॥ ८४ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत ॥

हे इन्द्र, आपके लिये यहा सोमरस तैयार<sup>१</sup> करके रखा है । इस लिये आप इधर आइये । आप बलवान् और धैर्यवान है । जिस तरह सूर्य अपने किरणों से दुलोक और भूलोकों को व्याप्त करता है उस तरह मूर्तिमान स्तुति<sup>२</sup> आपके शरीरमे घुस जाती है ।

जिसके बलका कोईभी प्रतिरोध नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रके अश्व, ऋषिजनोंकी स्तुति चुननेके लिये और मनुष्यों के यज्ञों का स्वीकार करनेके लिये आपको यहा ले आते है ।

हे वृत्रका बध करनेवाले देव, आप अपने रथ पर सवार हो जाइये । स्तोत्र गाकर अपने रथको अपने अश्व जोतनेके लिये हम प्रार्थना करते है । यह सोमरस अपने मधुर<sup>३</sup> आस्वादसे हमारे तरफ आपका मन आकर्षित करे ।

हे इन्द्रदेव, अमरत्व प्राप्त करनेवाले, और मूर्तिमान् आनन्द देनेवाले, उत्कृष्ट सोमरस का आप पान कीजिये ।

सचमुच इन्द्रको उद्दिश्य पूजा अर्पण कीजिये । आपका सन्मान करनेके लिये हम स्तोत्र गाते है । इस सोमवली को निचोडकर निकले हुए सोमरस ने आपको आनन्दित किया है । इस लिये आपके श्रेष्ठ बल को हम नम्रतासे प्रशाम करते है ।

जिस समय हे इन्द्र, आप रथ को अपने अश्व जोतते हैं उस समय रथ चपानेके जौ आपसे बढ़कर चतुर पुरुष कोई भी नहीं है । और वह बात भी सच है कि रथ के अंग दौड़ानेमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं है ।

भक्ति से हवि अर्पण करनेवाले मनुष्यों को धन देनेवाले केवल आप ही हैं । आपका वज्र बहुत बड़ा है आपके बल को कोई रोक नहीं सकता ।

इन्द्र की पूजा न करनेवाले मनुष्यों को आप पैरके नीचे घास की तरह दगा कर कुत्ता बनाते हैं । सन्मुख आप हमारे प्रार्थना कर सुनेंगे ?

और सब अन्त्ये देवताओंको छोड़कर मनुष्य आपको सोमरस अर्पण करके आपकी पूजा करते हैं । सबको डगलियाँ ब्रह्म केवल आपहीके पास है ।

जो उज्वल धनुष इन्द्र के साथ रहती हैं वे बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं । वे गुण और शान्ति में रहती हैं । वे भी स्त्रियों उत्पन्न करनेवाले मधुर सोमरस का पान करती हैं । १० (३)

इन्द्र, यन् हरी वच्छन्वे त्वन् रथितर, नदि मग्मना त्वा अनु नदि, स्वन्, नदि आनेसे ।

७ य दाष्टये मताय वसु विद्वयते अप्रतिष्कृत इन्द्र ईमान एह इत्त जग ।

८ अराधन मर्ते कुम्प' इव कदा पदा स्तु'न्' जग, इन्द्रः कदा नः मिगः शुभ्रम' ।

९ य चिद् द्वि त्वा मुतवान् बहुन्व' आ विवामनि तन् उम श्व इन्द्र, फयने' जग ।

१० या इन्धेय मवावरी, \* कुम्प नो'मेव मदन्ति, मग्मन् अनु रन्ती, गीय दया म्वासे विपु'न्, मन्व' विवन्ति ।

वे चमकदार<sup>१</sup> धेनुए इन्द्र के साथ रहना बहुत पसन्द करती हैं । इन्हींका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है जिससे सोमरस अच्छा बनता है । इन्द्र इन धेनुओंपर प्यार करता है । सब विश्वपर इन्द्र का साम्राज्य है । इस कारणसे इन्द्र की धेनु भी बड़ी तेजस्वी दिखाई देती है । इन्द्र का वज्र भी फूर्तिला<sup>११</sup> और चमकदार दिखाई देता है । - ११

वे ज्ञानी धेनुए इन्द्र को नमस्कार करती है । और आपकी पुजा करती है । सबसे पहिले ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे वे तेजस्वी धेनुए इन्द्र की हर एक आज्ञा को मानती है । १२

जिसके बल के सामने डरके मारे शत्रु खडे भी नहीं रह सकते ऐसे इन्द्र ने दधिचि वृषिकी अस्थि द्वारा नव्यात्रवे वृत्रोका वध किया । १३

जो अश्वका शिर पर्वत की गुहामें छिपा हुआ था वह इन्द्रको शरणावृत्तके बीचमें मिला । १४

त्वष्ट्रोदेव के वृषभ का नामभी मालूम नहीं था । तथापि उसी गुहामें उसका पता मालूम हुआ । चन्द्र के घरमें भी वह मिला । १५ (७)

वे वृषभ सामर्थवान्<sup>१३</sup> और तेजस्वी है । वे किसीके कावूम<sup>१४</sup> रह नहीं सकते । उनका मुख<sup>१५</sup> और वदन<sup>१६</sup> पैसेदार होनेपर भी वे लोगों को सुख देते है । वे इन्द्र की आज्ञा और रात्यानयनों को मानते है । सचमुच जो कोई उनकी सेवा<sup>१७</sup> करते है वे दीर्घआयु बन-जाते है । १६

( इन्द्र को पास देखकर ) ( शत्रुसे ) कौन डरेगा ? किसको भीति उत्पन्न होगी ? ( किसीको नहीं । ) जब इन्द्र अपनी पूजा करनेवाले भक्तोंके पास होता है तब आप स्वयं उनको भगपति और सन्तति देते है । आप दिना प्रार्थना किये उनको सेवकजन<sup>१८</sup> देने है । उनके शरीर और चीजों की रक्षा आप करते है । किसीके लिये प्रार्थना करनेकी किसीको आव-श्यकता नहीं होती । १७

अष्ट० १ अध्या० ३ व० ८,० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ८५

हवि और धी से अग्नि की पुजा कौन करना है? नियत समयपर गज्जन्तन ने आपको कौन हवि अर्पण करना है? देव यज्ञ का सामान किन्तों जिनसे ले जाते है? (आपको भिगे) कौनसा उपासक यज्ञ अर्पण करके आपका ध्यान नहीं करता है। १८

हे देव, आप बड़े पराक्रमी है आन बड़े श्रेष्ठ है। आपने मनुष्यों का उदात्त उठाया है। हे उदार इन्द्र, हम निश्चय से कह सकते है कि आपके बिना मुझ देनेवाला दूसरा कोई ना नहीं है। १९

हे सुखन्ध देव, आपकी कृपा हमारेपर हमेशा के लिये बनी रहे, और आप हमारी रक्षा कीजिये। इस व्रत का भंग कभी नहीं कीजिये। मनुष्य जाति की रक्षा करनेवाले हे देव, मा सत्यति हमारे पहले फल दीजिये। २० (८) (१२)

### अनुवाक १४.

सूक्त ८५.

॥ ८५ ॥ ऋषि-रुद्रगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत ॥

जब अश्विन पुरातन कर्मेवाले और शीघ्रगवागी रुद्र के पुत्र अपने मार्गसे चले गाने हैं ना वे अपनी काया ब्रियो की तरह मजाले हैं। सबमुच उन मरुत देवों ने स्वर्ग और पृथ्वी को उच (श्रेष्ठ) स्वानपर पट्टचाया है। वे बड़े होशियार और शूर है। वे यज्ञ के समय आनन्दित होते हैं। १

बटने बटने वे श्रेष्ठ हुए। उन रुद्रों ने वृत्रोक में अपना स्थान नियत किया। अर्कः की उषामना करके और शरीर हृष्टपुष्ट करके उन पृथ्वीके पुत्रों ने बहुत बल और तेज सम्पादित किया। २

जिस समय ये धेनुओं के देदीप्यमान् पुत्र निजको सजाते हैं उस समय वे अपने शरीरपर उज्ज्वल अलंकार पहिन्ते हैं। वे दुष्टजोगोका<sup>३</sup> नाश करते हैं; और उनके मार्गोंपरसे घी का प्रवाह बहता है। ३

ये परमपूज्य मरुत्-देव निजके बल से अचल<sup>४</sup> वस्तुओं को भी चल करते हैं और अपने आयुधों से शोभायमान् गिस्टाई देते हैं। जिस समय वे बलवान् मरुत्-देव एकत्र हो जाते हैं और अपने रथ को चित्र विचित्र रंग की हरिन जोतते हैं उस समय उनकी गति में मनकासा वेग आ जाता है। ४

जिस समय वे मरुत्-देव अपने रथ को चित्र-विचित्र रंग की हरिनी जोतते हैं और बड़े वेग से अपना आयुध फरतें<sup>५</sup> है उस समय तेजों की लहरें पृथ्वीपर सब दूर फैलती हैं और भीरुओंके भिगो हुए चमड़े की तरह वे पृथ्वी को अपने प्रवाहों में डुबाते हैं। ५

हे मरुत्-देव, शीघ्रगामी और वेग से कूटनेवाले<sup>६</sup> आपके अश्व आपको हमारे तरफ ले आवे। जब आप आते हैं तब ( सोमरस पीनेके लिये ) तैयार होकर आइये। हमारे आसनपर बठिये। आपके लिये अरुण जगह तैयार की गयी है। हमारे मधुर हृदियों का आस्वादि लीजिये। ६ (६)

निजके बल<sup>७</sup> के कारण मरुत्-देवों को उन्नति हुई। सर्गगत वे उपर जा पहुँचे। उन्होंने निजके लिये एक दिस्तीर्ण घर बनाया। जिस समय शत्रुओं के गर्दका खण्डन करनेवाले मरुत्-देवों ने सहायता दी उस समय वे देव पक्षीनी तरह अपने प्रिय कुशासनपर जाकर बैठे। ७

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १० ] कण्वेडः [ मण्ड० ? अनु० १३ नु० ८१

रात्रुओंपर जोरसे चढ़ाई करनेवाले चौर पुरुषों की तरह और जडाइ में इजा करते होते कमोनेवाले शूर पुरुषों की तरह वे मरुत्-देव बड़े जोरसे लड़कर परम कष्ट उठाते हैं। ससार के सब लोक इन मरुत्-देवों से डरते हैं। राजाओं की तरह उनके शरीर में ताज जोर दिखाई देता है।

जिस समय कुशल त्वष्टा देव ने सुवर्ण का सुन्दर पैनेदार वज्र बनाया उस समय तीर्था का काम करनेके लिये इन्द्र ने उसका स्वीकार किया, उससे वृत्र का वध किया और उसी के प्रवाह का मार्ग खुला कर दिया।

वे वनवान मरुत् कुँकों नीचेसे ऊपर ले आये। दृढ पहाड को भी उन्हो ने तोड़ दिया सोमरस का पान करके और उसी में मग्न होकर उन उदार मरुत् ने मीठी भेषुपानि और कट आश्चर्यकारक काम किये।

उन सब मरुत् को अपर ले गये। और प्यारे गोतमों के लिये उन्हें पानी का भक्षण बढ़ा दिया। वे सुन्दर मरुत् अपने वज्र से अपने उपासकों की रक्षा करनेके लिये चले गये। और अपने वेज से उन (मरुत्) उन विद्वान् ऋषियों की इच्छा पूर्ण की।

आपकी मृत्ति करनेवालों को जो वैभव प्राप्त देने है उसमें तिगुणा वैभव प्राप्त करनेवालों को दीजिये और हमें भी उसका लाभ मिले। हे शूर मरुत्-देव, मरुत् और वेद्व हमें दीजिये।

सुक्त ८६.

■ ८६ ॥ ऋषि-रह्यगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

हे तेजवान्<sup>१</sup> मरुत्, युसोक से आकर जिसके घर<sup>२</sup> में आप सोमरस का पान करते हैं उम में, आप रक्षा करगेवाले बन जाते हैं । १

यज्ञ करनेवाले भक्तों के तरफ दृष्टि देकर और विद्वान् उपासकों की स्तुति<sup>३</sup> का स्तौकार करके, हे मरुत्-देव, आप हमारी पुकार सुनिये । २

आप अपने भक्तों को बलवान् बनाते हैं और उनका सन्मान करते हैं । जहा धेनुएं बहुत हैं वहा उनको आप रहने के लिये स्थान<sup>४</sup> देते हैं । ३

ये यज्ञने<sup>५</sup> इन पवित्र दर्भ-घासपर सोमरस निकाशके रख देते हैं और वे स्तुति और सुन्दर गायन गाते हैं । ४

सब मनुष्यों<sup>६</sup> में जो भक्त श्रेष्ठ है उसकी पुकार मरुत्-देव सुने । उनका वैभव इतना बड़ा है कि वह सूर्यतक पहुँचता है । ५ (११)

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १२ ], ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ८३ ]

ध्यान—पूर्वक आप मनुष्यों की रक्षा करने हैं। इस जिये बहुत दिनोंसे हम आपको  
हृदि अर्पण करते हैं।

हे पूजनीय० मरुत्-देव, जिन मनुष्यों के हवी का आप स्वीकार करते हैं। निवासों  
भाग्यवान् होते हैं।

हे वज्रवान् मरुत्-देव, आपको विदित ही है कि आपके भक्तजन कितने परिश्रम उठाकर  
आपकी स्तुति करते हैं, आपके उपासकों की आपपर कितनी प्रीति है और वे किस किस  
उच्छा करने हैं।

हे वज्रवान् मरुत्-देव, विष्णु-प्रहार से राक्षसों का नाश करते आप हमें आप के वज्र  
अनुभवं दिखलाएं।

इस गद्दरे अन्धकारको हटा दीजिये। और सब राक्षसों को भगा दीजिये। मे  
प्रकाश हम चाहते हैं वही हमें दीजिये।

१० (१२)



## सूक्त ८७.

॥ ८७ ॥ ऋषि-रह्यगणुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जब (द्युनोक्त में) प्रकाश<sup>१</sup> दिखाई देता है तब (अन्तरिक्ष में) ज्योतिः भी दिखाई देती है। उसी तरह मरुत्-देव भी अपने बलसे दिखाई देते हैं (प्रकट होते हैं)। इनका बल बहुत बड़ा है। इनका तेज बड़ा सुन्दर है। और वे बड़े पराक्रमी हैं। वे किसीके सामने अपना सिर नहीं नमाते। वे अपने स्थानसे हिलनेवाले नहीं हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा सीधा है। इस कारण से सब लोक उनपर प्रेम करते हैं। १

हे मरुत्-देव, जब पक्षी की तरह किसी श्रद्धुत् मार्गसे आकर आप भागनेवाले<sup>३</sup> मेघों को पृथ्वी के पास<sup>२</sup> रोकते हैं तब आप के रथपर जल का सिञ्चन होता है और पृथ्वीपर पानी गिरता है। अपने भक्तों की धिन्ती का स्वीकार करके मधु-सदृश उदको की वृष्टि कीजिये २

जब वे बाहर चले जाते हैं तब सुन्दर दिखाई देनेके लिये वे अपने अलंकार पहिन्ते हैं। जब वे गमन करते हैं तब अस्थिर वस्तुकी तरह पृथ्वी हिलने लगती है। खेलने और बूदनेवाले, पृथ्वी को हिलानेवाले, चमकीले शस्त्रों को पास रखनेवाले और सब शत्रुओं को भगानेवाले, हे मरुत्-देव, अपना प्रभाव गाने के लिये लोगों को बाध्य कराते हैं। ३

स्वय-संचार<sup>४</sup> करनेवाले, रक्तवर्णों के अश्वोंपर आरूढ होनेवाले, और जवान मरुत्गण सब वस्तुओंपर अपनी सत्ता चलाने हैं। वे मरुत्-देव नागप्रकार के बल के स्वामी हैं। ४

पुराने काल में जन्म पाये हुए पितरों का नाम लेकर हम कह सकते हैं कि सोमरस का दर्शन<sup>५</sup> होते ही उसका पान करनेके लिये मरुत्-देव पाने के लालच से आगे बढ़ते हैं। युद्ध के समय बड़ी पुकार करके इन्द्र की सहायता करने के कारण उन्होंने यज्ञ में बड़ा नाम-पाया है। ५

१ प्रलक्षस प्रतपस विराशिनः अनानता अविधुराः कृजीषिण जुष्टतमास नृतमास. के चित् उता इव स्तुभि<sup>१</sup> अजिभि. वि जानजे ।

२ मरुत यत् वय इव केन चित् पया उपहरेषु<sup>२</sup> यधि<sup>२</sup> अचिध्व, कोशा वः रयेषु उप आ श्रोतन्ति अति मधुवर्णं पत उक्षत ।

३ यत् यानेषु शुभे युजते ह एषा अज्नेषु भूमि विधुरा इव प्र रेजते कीद्वय, धुनय आजद्वय धूतय ते रथ गाल्व पनय त ।

४ स्वयन्<sup>४</sup> पुपदश्च युवा अथा ईशान. स गण तविषीभि आवृत हि सत्य ऋणयावा अनेष अग्नि अध एषा गण अस्या अथ प्राविता ।

५ यजेत्य<sup>५</sup> पशु अ मना वदानसि सोमरस चक्षता जिह्वा प्र जिगाति यत् ई ऋणाय शनि इद्र आशत शहे मान नामान दोषरे र्व आर ।

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ८८

हमंगा उत्तम हविर्वाते मन्तु-देव, आप किसकी सुन्दरता और भेजनीता तर्जोसे' कि-  
का प्रकाशका लाभ दे देगे ? और किसकी प्रशसा करेगे ? (आपने भक्तो ही) । शो-  
गामी, निडर और, गल्ल-अल्ल धारण करनेवाले मन्तु-देव अपने प्रिय प्यारती और  
चले गये ।

६ (११)

### मुक्त ८८.

॥ ८८ ॥ ऋषि-रुद्रगणपुत्र गोतम । देवता-मरु ।

जिस रथ के अश्व पंखो की भानि उडने है, जिसमे गहुनमे आगुन जो हुण है,  
जिसकी बहुत स्तुति की गयी है और जिसमे विजकी चमकती है ऐसे रथ मे बैठकर, दे-  
मन्तु-देव, आप डगर आइये । हे कुशल और चतुर मन्तु-देव, बहुतसा पोषणा' का सामान  
गाय केकर पशुकी तरह चहा से उडकर गदा आइये ।

रथ को वेग से ले जानेवाले' अपने ज्ञान और पीले पर्योपर आरुढ होकर ये मन्तु-देव,  
किस पुष्पका पर शोभायमान करने के लिये चले जाते है । निजके हाथमे आगुन' नाग्या  
करके, यह मन्तु-देव मुर्खोती तरह सुन्दर दिखाई देता है । इन मन्तु देवो के रथचक्रों मे  
जमान चौर डाली है ।

जिसको सुशोभित करने के लिये आपने शरीरपर शम्बल्य चमकाने है ? जिस तरह तथा  
आदि अपना निर ऊपर गटागी है उती तरह आपके मरु आपकी ओर (आप) अपना  
सोत्र भेज देने है । जिसका जन्म बड़े वैभव मे हुआ है और जिसने तेज और तन पर  
हृष्टा है ऐसे मन्तु-देव, वेपज आइये हे जिये आप के उपासक यज्ञपर्यय का (गोमय  
निकालनेका) काम गुरुं करते है ।

उदक की वर्षा' करनेका सामर्थ्य रखनेवाली दिव्य स्तुति की और, हे गीन, प्रकाश देतेवाले  
दिन आर्कायन होते है । स्तुति करनेवाले गोतम भी अपने स्तवकें पत्र मे जल पीनेके लिये  
व करने को भी ऊपर ले आये ।

४

सुवर्ग्य चक्र को हाथ में पकड़नेवाले और लोहे की तरह मजबूत दातवाले बराह<sup>१</sup> सब गृह संचार करते हैं और प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। हे मरुत्-देव, गीतमो ने जो स्तोत्र गाया<sup>१०</sup> यह बहुत ही यश देनेवाला है। और दूसरी कोई भी स्तुति उसकी बराबरी<sup>११</sup> नहीं कर सकती। ५

हे मरुत्-देव, यह हमारी स्तुति आपके मन को संतोष<sup>१२</sup> देवे। अन्य भक्तों की तरह हमारी स्तुति आपका स्तोत्र गाने में उद्यत हुई है। सब प्रकार के वैभव के आप स्वामी हैं। इस कारण यह सर्व साधारण<sup>१३</sup> बात है कि सब उपासक लोग आपकी स्तुति करते हैं। ६ (१४)

### सूक्त ८९,

॥ ८९ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गीतम । देवता-विश्वेदेव ॥

जिस सामर्थ्य का प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता जिसका पराभव कोई नहीं कर सकता ऐसा कल्याण-करनेवाला और यश-देनेवाला बल हमेशा हमें प्राप्त होवे। हम देवोंकी स्तुति करते हैं। इस लिये वे हमारी कीर्ति बढ़ावे और हमारी हमेशा<sup>१</sup> रक्षा करें। १

सीधे स्वभाव के देवोंकी कृपा और उदारता हमें हमेशा हमारे तरफ घेरे। देवों की मित्रता का हमें कुछ उपयोग होवे। देव हमारी श्रापु बढ़ावे जिससे हमारे प्राण बहुत दिनतक जीवित रहे। २

भग, मित्र, अरि, विजयी दक्ष और अर्यसा, वरुण, सोम, और दोनों अधिनों को प्रणम्य, पुत्राय स्तुत<sup>३</sup> गाकर हम बुलाते हैं। दयालु सरस्वति हमें सौख्य<sup>४</sup> अर्पण करे। ३

अष्ट० ? अध्या० ६ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड ? अनु० १४ सू० ८२

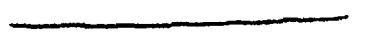
बाहु, लाभ देनेवाला औषधि हमारे तरफ से आवे। उसी तरह माता-पुत्रो, प्रोम-पिण्ड पुत्रो, वह औषधि हमारे ओर से आवे। सोम उत्पन्न करनेवाले और सुत देनेवाले यज्ञ के पर्यय और अश्विनी देव वह औषधि हमारी ओर से आवे। हे अश्विनी देव, हमारे पुत्रों को सुनिये।

बुद्धि को प्रेरणा करनेवाले और स्थिर और अस्थिर वस्तुओं पर अधिकार करनेवाले देवों को इन निजकी रक्षा के लिये प्रार्थना करने है। इसी कारण से पुष्पांशु हमारा गौमाता और हमें सुख देवे। आप सब को जाननेवाले है हमारी रक्षा करनेवाले और हमारा पालन करनेवाले हैं।

उन्द्र, जिसकी मूर्ति सब दूर फैली हुई है हमें शान्ति प्रदान करे। सर्वज्ञ पुष्पांशु। उन्द्र शान्ति प्रदान करे। तार्क्ष्य-देव जिसके रथचक्र की गति को कोई रोक नहीं सकता उन्द्र शान्ति प्रदान करे। और वृहस्पति भी हमें शान्ति प्रदान करे।

मरुत-देव-जिनके अश्वोक्ता यज्ञी रमान है, जिनकी माता पृथिवी ही है, जिनके मनः पुष्पांशु अश्वोक्ता वन्याणां ही ओर है और जो यज्ञ के समय हमेशा उपस्थित रहते हैं, अश्विनकी चिन्ता है, जो सूर्यकी ओर ताकते रहते हैं, और मनु आदि सब देवों के लिये हमारी रक्षा करे और अपने वस्त्रों के साथ हमारी ओर आवे।

हे मरुत-देव, आपकी वृषा में हम अपने कानों में सुन सकेंगे। हे यज्ञांशु पुत्र, आपकी वृषा में हम अपने नेत्रों में अच्छी तरह देख सकेंगे। मधुमुच जो आयु प्रदान करने वाला है उस (आयु) में हमारा शरीर स्वस्थ अच्छा रहे और शरीर के अंगों में मजबूत रहे। मधु आयु में आयु के नाम का उच्चारण और स्तुति करके हम सब (समाज) को सब वस्तुओं का उपभोग ले लेंगे।



अष्ट० ? अध्या० ६ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १४ सू० ९०

हे देव, हमारी आयु केवल सौ वरस की है। उसीमें हम बुढ़े हो जाते हैं। जो आज छोटे लड़के दिखाई देते हैं वे कुछ दिनोंके बाद बनेवाले बाप होंगे, इस लिये हमारी सौ वरस की आयु में सन्तति उत्पन्न होकर हमारे वंश की वृद्धि होवे। ६

अदिति ही शुलोक है। अदिति ही आकाश है। अदिति ही माता पिता और पुत्रही है। अदिति ही सब देव है। अदिति ही सब मानव है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब अदिति ही है। और जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब कुछ अदिति ही है। जो कुछ है सो सब अदिति ही है। १० (१६)

सूक्त ९०.

॥ ९० ॥ ऋषि-रहगणपुत्र गोतम । देवता-विश्वेदेव ॥

वरुण, प्रजावान् मित्र और अर्यमा जिसके साथ सब देव रहते हैं हमे सरल मार्ग<sup>१</sup> से ले जावे। १

वैभव को शकटा बरनेवाले वे देव, अपने बल से और सावधानी से<sup>२</sup> अपने शासन काम की रक्षा करने में हमेशा जागृत रहते हैं। २

दुष्ट लोगो का नाश करनेवाले अमर देवों ने-जिन को मृत्यु का वादा नहीं है-हो. सौख्य अर्पणा द्रिया। ३

वे इन्द्र, मत्स्य, पूषा, और भृगु-देव पूजा करने योग्य हैं। वे हमारे कल्याण के लिए  
अच्छा मार्ग दृग्दर्शक हैं।

अग्ने अग्ने मार्गों से गमन करनेवाजे हे पूषा और विश्व-देव, हमारे प्रार्थना मुक्तियों  
और ऐसा काम कीजिये जिससे हमें विशेषकर के वेदुओंका लाभ होवे। और आप हम  
सुख प्रदान कीजिये।

जो नीति-नियमोंका योग्य रीतिसे पालन करने हैं उनके लिये कल्याणकारक ऋषि  
हैं, और नदीयोंका पानी भी मधुर होकर बहता है। हमारे ओषधि हमारे लिये मधुर  
होंगे।

रान और प्रातःकाल हमारे लिये मधुर होंगे। हमारे लिये भूतोंक और रजोशोक म  
से नष्ट हुए होंगे। हमारा पितृ मुक्तोंक हमें सुख प्रदान करे।

हमारे लिये जगन्नि मधुर होंगे और सूर्य भी अच्छी तरह प्रकाशित होंगे। वेदुए हम  
मधुर दुग् देंगे।

मित्र हमें सुख देनेवाला होंगे। वन्द्य भी हमें सुख देनेवाला होंगे। अग्नि भी हमें  
सुख देनेवाला होंगे। इन्द्र और बृहस्पति हमें सुख प्रदान करें। सब प्रदेशोंक मार्ग  
करनेवाला विश्व हमें सुख देनेवाला होंगे।

अष्ट० १ अध्या० ६ व० १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु०-१४ सू० ९१

सुक्त ९१.

॥ ९१ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-सोम ॥

हे सोम-देव, आप बड़े ज्ञानी और विचारवान् हैं । आप ही (-सब जगत् को) सीधे मार्ग की तरफ ले जाते हैं । हे, इन्द्रो, आप ही सरल मार्ग बतलानेवाले<sup>१</sup> होने के कारण हमारे ज्ञानी पुरखो को देवगन्ध की ओरसे बड़े बड़े पारितोषिक मिले हुए हैं । १

हे सोम-देव, नाना प्रकार के बल आप में एकत्रित होने के कारण आप बड़े बलवान् हुए हैं । आप सर्वज्ञ हैं । आपमें भिन्न भिन्न शक्तियाँ<sup>२</sup> एकत्रित होनेके कारण आप बड़े शक्तिमान् बने हुए हैं । आप बड़े होनेके कारण नाना प्रकार के बलों के आप स्वामी बन गये । नाना प्रकारके बल एकत्रित होनेके कारण आप बड़े बलवान् बन गये । नाना प्रकार-की उज्ज्वल सम्पत्ति आपको प्राप्त हुई । इसके कारण आप सम्पत्तिमान् बन गये । आप सब मानवोंपर (कृपा) दृष्टि रखते हैं । २

जो जो नियम<sup>३</sup> पृथ्वीपर जागे हैं वे सब राजा वरुण के बने हुए हैं । हे सोम आपका रहनेका ठिकाना बहुत ही बड़ा है । आप बड़े देदीप्यमान् हैं । हे सोम-देव, आप मित्र-देव की नाई सबको प्रिय है और अर्यमा-देव की नाई सामर्थ्यवान् है । ३

गुल्लोम, पृथ्वी, और पहाटोंपर औषधि और उदक में जहाँ जहाँ आपकी रहनेकी जगह होगी तहाँ तहाँ सब जगह, हे सोमगज, घुसा<sup>४</sup> छोटकर और प्रसन्न होकर, हमारे दृष्टियों का स्वीकार कीजिये । ४

हे सोम, आप ही (सबके) दयालु स्वामी हैं । आप राजा हैं । आप वृत्र का बध करनेवाले हैं । और आप ही बतयाथ करनेवाली श्रेष्ठ शक्ति हैं । ५ (१६)

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० २१

हे सोम, यदि आप के मन<sup>१</sup> में आवे कि हम सौ परस तक जीने रहे तो हम सौ परस के अन्दर नहीं मरेगे। आप वन के वृक्षों के स्वामी हैं। आप लुति-प्रिय हैं। ६

हे सोम, आप के नीति<sup>२</sup>-नियमों को पालन करनेवाले उपासकों को-चाहे वे जवान् हो या बुढ़े हो-आप सुख अर्पण करते हैं। उनकी आयु की वृद्धि होनेके लिये आप जहाँ श्रेष्ठ वज्र प्रदान करते हैं। ७

हे सोम-गज, पानी<sup>३</sup> मनुष्यों से चारों ओरों हमारी रक्षा कीजिये। जिन भक्तों के आप रक्षा करनेवाले बन गये हैं उनका नाश कभी होनेवाला नहीं है। ८

हे सोम, आपको हति अर्पण करनेवाले भक्तों के लिये आपने जो सुख के मायने वापस लिये हैं उनको मायने वापस लाना हमारे रक्षा करनेके लिये आये। ९

इस यज्ञ और लुति का स्वीकार<sup>४</sup> करते हमारी ओर आये। हे सोम, हमारे उपासक करनेवाले आप ही कीजिये। १० (२०)

---



अष्ट० ? अध्या० ६ व० २? ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ९१ ]

हे सोम, स्तुति करनेका तरीका जानकर हम आन्तो त्वात्रो से सन्तुष्ट करते हैं। इस-  
लिये प्रसन्न होकर आप हमारी ओर आइये। ११

हे सोम, आप हमारे वैभवो की वृद्धि<sup>१०</sup> कीजिये। हमारे रोगों का नाश कीजिये। हमें  
नगपत्ति कीजिये। हमारे घर में धन और अनाज की वृद्धि होवे और आप हमारे उत्तम मित्र  
बन जाइये। १२

हे सोम, जिस तरह मनुष्य निजके घर<sup>११</sup> में आनन्द में रहता है अथवा धेनुएं  
तृण (घास) को देखकर सन्तुष्ट होती है उसी तरह हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न  
कीजिये। १३

हे सोम-देव, जो मनुष्य आपका मित्र होने के कारण आनन्द<sup>१२</sup> मनाता है उसी के  
साथ रहनेकी जानी और सामर्थ्यवान् लोक इच्छा करत है। १४

हे सोम, दुष्ट वचनों से और पापों से हमारी रक्षा<sup>१३</sup> कीजिये आप हमें सौख्य प्रर्षण<sup>१</sup>  
कीजिये। और आप हमारे मित्र हूजिये। १५ (२१)।

११ सोम, पचोषिद् गीर्भि त्वा घर्षयाम्, सुवर्द्धकं न था विश।

१२ सोम, गथरधान, "जमीनरा, वसुधित, पुष्टिवर्धन, व सुमित्रः भव।

१३ सोम, त्वे ओषधे" मर्ष इष माव् उवसेषु न, न हृदि आ इरन्धि।

१४ सोम देव, व मत्स, तत्र सत्त्वे ररप्ता, "त दक्ष कश्च नचत्वे।

१५ सोम, अभिशक्ते न उरष्य, "जस नि पदि न सुतोके सखा एषि।

अष्ट०-१ अध्या० ६ व० २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० २१

हे सोम, आप बढ़<sup>१६</sup> जाइये । आपके बल की (दिनपर दिन) वृद्धि होये । जश नानाप्रकार का बल एकत्रित किया जाता है वहा आप का रहनेका स्थान होये । ११

हे आनन्द<sup>१७</sup> देनेवाले सोम, अपने प्रकाश किरणों से आप बढ़ जाइये । आपकी सुन्दर कीर्ति सब जगह विदित है । आप हमारे सभे मित्र है, इस लिये आप हमारी उन्नति कीजिये । १७

दृष्ट<sup>१८</sup> लोगों का नारा करनेवाले हे सोम, (उस जगत् मे) जितना दूष है उतना सब आपके पास आवे । संसार भरका सामर्थ्य आपमे एकत्रित होये । संसार का राग बल आपकी ओर आवे । हे सोम, आप निजकी अमर बनाकर अपनी कीर्ति गुजोक मे फैलाइये । १८

आप की निवास स्थान की ओर जो मनुष्य हवि पहुंचाते है वे सब हमारे यज्ञों के प्राप्त हुआ दृष्टि रखे । हे सोम, आप हमारे यज्ञों की वृद्धि कीजिये । हमें धन प्रदान कीजिये । अपनी वीरता दिखाकर उषोत लोगों का नारा कीजिये । और आप हमारे घर<sup>१९</sup> की ओर आइये । १९

जो (मनुष्य) सोम-देव को हवि अर्पण करता है उसको सोम-देव वेनुपं दिखाना है । और देव से दौड़नेवाले अश्व दिखाना है आप हवि अर्पण करनेवाले को विचारवान, कुशल, यज्ञकर्म करनेवाली, अचछा वर्तव्य करनेवाली और अपने पिता की कीर्ति बढ़ानेवाली सभ्य सन्तान दिखाने हैं । २० (२०)

सोम, ना प्यत्तन्व," ते वृथ्व विश्वत म ण्तु वात्स्य मगये भव ।

"विदन्ते" सोम, विदेति अष्टुति, आ प्रायस्य पृथ्वस्वम मगा न श्रे भव ।

"अग्निमानिमह" सोम, अग्नि ते म (यनु), प्राणा म वन्दु, इन्द्रानि स (यनु), अश्वपय म वन्दुति विवि उन्नमति अश्वानि निव ।

१६ वा ते वगमनि द्विदा वचन्ति ता ते विशा वा पग्भिः अन्तु अम, अयन्तान, प्रायस, पुष्टि, अर्जिस्त, दुर्भदि" प्र चर ।

२० य उमे ददन्त, सोम वेदु, सोम अशु अन्त, सोम, अग्ने, अद्व्य, विदन्, मगि विदुन्त, वीर ददाति ।

आष्ट० १ अध्या० ६ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अ० १४ सू० १२

आपको युद्ध में कोई जीत नहीं सकता। युद्ध में उपासको को आप सहायता देते हैं। आप दुलोक से जल को नीचे लाते हैं। कठिन<sup>१८</sup> समय में आप सब को रक्षा करते हैं। आप यज्ञ में उपरिष्ठ होते हैं। आप सगे हुए मंदिर में रहते हैं। हे सोम, आप जैसे कीर्तिवान् और विजयी देव को देखकर हम आनन्दित होते हैं। २१

हे सोम, आपने सब वनस्पतिया उत्पन्न की। आपने ही जल को उत्पन्न किया। और आपने ही धेनुएं निर्माणा की। इस विशाल आकाश को आपने फैलाया है और प्रकाश उत्पन्न करके अन्धकारका नाश<sup>१९</sup> किया। २२

हे सामर्थ्यवान् सोम-देव, हमारे लिये धन का संचय करनेके हेतु आप युद्ध कीजिये। आपको कोईभी नरोके<sup>२०</sup>। सब बल के स्वामी आप ही हैं। धेनुओं का लाभ होने के लिये जब युद्ध शुरू होता है तब दोनों पक्षों को आपका प्रभुत्व विदित<sup>२१</sup> होता है। २३ (२३)

### सुक्त १२.

॥ १२ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-उपा ॥

उपा-देवी अपनी ध्वजा फर्रा रही है। अन्तरिक्ष के पूर्वोप आधे भाग में उपा अपने मुखर विरग्य फैलानी है। जिस तरह वीर पुरुष अपना शस्त्र फर्गता है उसी तरह उपा अपना चमकीला<sup>१</sup> प्रकाश प्रकट करती है। धेनुएं-माताएं इस तरफ आ रही हैं। १

११ सोम, सुख्य आपाष्ट, धृतनासु पपि अस्तां स्वर्षा, वृजनस्व<sup>१८</sup> गोधा, भरेपुजा, सुक्षिति, सुश्रवस जयन्त ला जनु मरेम ।

१२ सोम, त्वं मा विश्वा जोषशी, त्वं अप, त्वं गा. अजनय, त्वं उर अन्तरिक्ष आ ततन्व. त्वं जोषिषा तम पि त्वं<sup>१९</sup> ।

२३ तत्ता त्वं देव सोम, देवेन मनसा, नः राय भाग अग्नि युच. त्वं मा आतनत्<sup>२०</sup> वीधेस्य ईक्षिये. गोष्णी उमोषन्व प्र विदितं<sup>२१</sup> ।

११ त्वं मा अपाष्ट, धृतनासु पपि अस्तां स्वर्षा, वृजनस्व<sup>१८</sup> गोधा, भरेपुजा, सुक्षिति, सुश्रवस जयन्त ला जनु मरेम ।

अष्ट० ? अध्या० ६ व० २४, २५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड १ अनु० १४ सू० २२

उषाओं की लाल किरणें बूढ़ बूढ़कर सहज रीति से इधर आ रहे हैं। उषाओं ने प्रकाशित गौश्रो को ( अपने रथ को ) जोता है। सब दिशाओं पर अपना प्रकाश फैलाने का विचार उषाओं ने किया है। उषाओं का तेज बहुत चमकीला है।

सच्चा वर्तवि करनेवाले, हवि अर्पण करनेवाले और सोमरस तैयार करके रखनेवाले भक्तों के लिये उषाएँ बहुत सम्पत्ति ले आती हैं। सुन्दर और जवान उषाएँ एक ही रथ में बैठकर अपना प्रकाश फैलाकर दूर से आती हैं। मानो बड़े वेग से आकर अपने प्रकाश का घमण्ड ही करती हैं।

जिस तरह सर्प हरसमय अपना पोशाक बदलती रहती है उसी तरह यह उषा हरसमय अपना स्वरूप बदलती है। जिस तरह भेनु का स्तन सतत दिखाई देता है उसी तरह उषा का वदन नुक्ता दृष्टा होनेके कारण सतत दिखाई देता है। जिस तरह भेनु सोम अपना ग्यान छोड़कर चली जाती है उसी तरह उषा सोमरे अन्धकार को प्रतिक्रिया प्रोत्साहित करती है।

उषा का उज्ज्वल प्रकाश दिखाई देने लगा। वह प्रकाश चारों ओर फैलता है और गहगह अन्धकार का गारा फटता है। यज्ञ में जिस तरह यज्ञस्तम्भ को सजाने के लिये उषा ने अपने शरीर को मुगलित किया है। मुगलित दुहिता उषा अपने साथ प्रकाश लाती आती है।

इस उज्ज्वल चारों ओर निकले हैं। अपना प्रकाश चारों ओर फैलाने का उषा का उद्देश्य प्रकट कर रही है। दीर्घमान् उषा ने कविता की नाई सौन्दर्य वाग्म्या काया है। उसके वाग्म्य उसका हाथ-वदन दिखाई देता है। श्राप बहुत ही सुन्दर है और आप हमारे उपर कृपा करनेके लिये आई है।

२ ननु भक्तवृक्ष उत अपमन स्वायुत अदधी मा जयुस्त पृथ्वी उषम। सुमानं गच्छेत् ।

३ ननु भक्तवृक्ष उत अपमन स्वायुत अदधी मा जयुस्त पृथ्वी उषम। सुमानं गच्छेत् ।

३ सुवते सुवन्ते सुवन्ते वचनानाथ विद्या इत अह इष वदन्ती नापी पसात्प कमानन तीज्ज न विनिं अपन न अचन्ति ।

४ वृत् इव पेशामिं अति उपते उवा इव मरुदं वक्ष अप अर्पुने विस्मिं मुतात् अति इवति उषा, गव प्रव, न तम वि प्रव ।

५ अस्या वक्षन् अचि प्रति अर्पय वि तिष्ठत अयं इषा अपी विदामु एव न वेत् । एत दिव इहेता चित्र ननु अनेत् ।

६ ननु वक्षन् अचि प्रति अर्पय वि तिष्ठत अयं इषा अपी विदामु एव न वेत् । एत दिव इहेता चित्र ननु अनेत् ।

देवीप्यमान उपा सत्य और माधुर्य की प्रेरणा करती है। युलोक कन्या-उषा की स्तुति गोतमो ने की है। हे उषा-देवी, आप हमें ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिसे हमें शूर और पराक्रमा सन्तति उत्पन्न होवे और जिससे अश्व और धेनुएं हमें मिले। ७

(सूर्य के) सामर्थ्य से उषा उत्पन्न हुई है। अपनी आश्चर्यकारक कीर्ति और पराक्रम दिखाकर उषा अत्यन्त उज्वल तेज से प्रकाशित होती है। हे दयालु उषा-देवी, आपकी कृपा से वीर पुरुष हमारे वंश में उत्पन्न होंगे। बहुतसे अश्व आदि हमारी सेवा में रहेंगे। और इस तरह हमारा वैभव आप की कृपा से बहुत ही बढ़ेगा। ८

उषा-देवी, प्रातः काल के समय अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर फेक देती है, और उसके बाद उज्वल प्रकाश देती है। सब प्रजा को उषा जागृत करती है और विद्वान् कवियों की स्तुतियों को अपनी ओर खींचती है। ९

उषा-देवी बारबार जन्म लेती है, फिर भी आप पुरानी कही जाती है। उषा-देवी बार बार एकही रंगका पोशाक पहिनकर निजको सुशोभित करती है। आप छुट्टियाँ चजाकर<sup>१३</sup> श्रानों<sup>१४</sup> को मार डालती है और हम तरह आप सबको डराती<sup>१५</sup> है। दुष्ट मनुष्यों की तरह आप उनकी आयु को घटाती है। मनुष्यों की आयु का इस तरह (दिनपर दिन) नाश करके फिर आप वहाँही उपस्थित है। १० (२५)

युलोक की सीमानक उषा-देवी प्रकाश फैलाकर जागृत होती है। आपकी वहिन-रात्रि को उषा-देवी पृथ्वीपरसे दूरतक<sup>१६</sup> निकाल देती है। मनुष्यों की आयु को घटाकर अपने बहभ (सूर्य) की कान्ति से भरी हुई जवान उषा चारों ओर प्रकाश फैलाती है। ११

७ गोतमो स्तुताना नेत्री दिवः दुहिता गोतमेभि स्वये उप, प्रजावतः, वृवन, अश्वमुमान्, गोअग्रान् जनान् उप नासि ।

८ आपन्ता ॥ सु.सगा' अकवा वृहत् विनासि सुभो उप, त सुवीर वनन दासप्रवर्गो अश्वुभ्य स्या अरयाम् ।

९ वि तत्रि भुवना परिचर्य देती चक्षु प्रतीची उचिता वि भात विः जीव चरसे वोपमन्ती विश्वस्य ॥ १० ॥ वाच जन३॥

१० एते एते अ कवा पुराणी, गन्तान वर्षे अभि दुम्नमाना, वृत्तु " विज " इत्नी" इव आ मि ताव ॥ १० ॥ वाच जन३॥

११ दिवः अग्रान् उपसती चरसे रत्नार ववुत् " अर वुप्रेति मनुष्या दुग्गान् पमिनती च.ता ॥ ११ ॥ वाच जन३॥

अष्ट० ? अध्या० ६ व० २६, २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १३ सू० १२

जिस तरह उदधि अपने जल को स्पष्टरूप से सत्र को दिखाना है उसी तरह उषा प्रातःकाल के समय, सत्र पयुओं को उनके स्थान से बाहर ( लुर्जाजगह में ) बाहर और सत्र दूर प्रकार<sup>१०</sup> फैलाकर, मानों प्रकटरूप से प्रदर्शनी ही दिखानी है। उषा, देवी ही प्राज्ञाओं को हमेशा माननी रही। सूर्य के किरणों से प्रकाशित हुई उषा यहा प्रकटरूप से ( दृग्गोचर<sup>११</sup> ) होती है। १२

हे सामर्थ्यवान् उषोदेवी, हमे ऐसा अपूर्व वैभव दीजिये जिस से हमे सन्तति का लाभ वंशानुवश होवे। १३

सत्य और मधुर वचन बोलनेवाली हे उषोदेवी, आपके पास गहन वेतुण और ग्रथ हैं। हमे सुख प्रदान करनेके लिये हमारे ऊपर प्रकाश फैलाइये। १४

हे सामर्थ्यवान् उषा-देवी, अपने लाल रंग के अश्व आज रख हो जोत हर सुख प्रदान करनेके लिये हमारे और आइये। १५ (२६)

शत्रुओं का नाश करनेवाले, हे अश्विनी देव, हमारा वर धेनुओं और सुवर्ण से भरण के लिये आपस में मिश्रकर अपना रख हमारी और लाइये। १६

१२ लिटु न मोद पशु न प्रथाना सुमना चित्रा उर्विया<sup>१०</sup> रि अर्वा<sup>११</sup>। दिव्यमि प्रथानि प्राग्वता<sup>१२</sup> रक्षिमि दृशाना चिति<sup>१३</sup>।

१३ अजिनोवति उप येन लोक च तनय च आमहे तत् चित्र अमम्य आ भर।

१४ मन्तु इति गोमति अश्वरति विभावरि उप नय २५ अग्ने रंय रि उरुत्।

१५ अजिनोवति उप, अय अदगार अश्वर सुख रि नय रि त गोमति न आ १२।

१६ उरुत् = इति, मन्तुमा रय अमन्त् वति । अमन्त् दिश्यवत् नय क ति उरुत्।

अष्ट० १ अध्या० ६ व० २७,२८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १४ सू० ९३

हे अश्विनी-देव, बहुतसा सामर्थ्य<sup>१०</sup> इकट्ठा करके हमारी ओर लाइये । ( संसार के ) सब मनुष्यों के लिये प्रशंसा<sup>११</sup> योग्य (उज्ज्वल) तेज शुलोक-से आप इस तरह इधर ले आइये । १७  
सुख देनेवाले, शत्रुओं का नाश करनेवाले सुवर्णा से बने हुए मार्ग<sup>१२</sup> से जानेवाले ये दोनो अश्विनी-देव, प्रातःकाल के समय जागृत होनेवाले देवों को, सोमपान के लिये इधर ले आवे ।

१८ (२७)

मूक्त ९३.

॥ ९३ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि, सोम ॥

हे सामर्थ्यवान् सोम, और अग्नि, मेरी पुकार सुनिये । मेरे सुन्दर स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये । और आपको हवि अर्पण करनेवाले उपासकों को आप सौख्य ( अर्पण करनेवाले ) हजिये । १

हे अग्नि और सोम, जो उपासक आज स्तुति करके आपकी प्रार्थना करते हैं उनको शूर और पराक्रमी बनाकर आप ऐसा कीजिये जिससे उनको बहुत सुन्दर अश्वों और धेनुओं का लाभ होवे । २

हे अग्नि और सोम, जो भक्त आपको आहुति अर्पण करते हैं और जो आपके लिये यज्ञ करते है उनको सन्तति और वीरता का लाभ होवे और उनकी आयु भी पूर्ण रीतिसे बढ़े । ३

१० अश्विना, यी जनाय लोक" ज्योति. दिव इत्या वा चक्रधु, युव न ऊर्ज" आ बहव ।

११ गयोशुवा, दद्या, दिश्यवर्तनी, " देवा उपसुध सोमपीतये इह आ बहन्तु ।

१२ उपजा जपीधोमौ रम मे एव सु रणुत, मुक्तानि हर्षत, दाशुषे नव भवत ।

१ अश्विनीना ५. अथ इद वच वा तपर्यति तस्मै गवा पोष स्वइज्य सुवीर्ये वत्त ।

२ अश्विनीना ५ जाहुति ५. वा एभिश्चुति दाशात् स प्रजया सुवीर्ये विश्व आयु वि अश्ववत् ।

हे अग्नि और सोम, जिस समय पर्णा राक्षस ने तुमारे इकट्ठा किये हुये वन (नेतुरं) हो दान लिया उस समय आपने वृषभ राक्षस के अनुचरो का पराभव किया। और जिस समय सब मनुष्यों के कन्याण के लिये आप अपने देवीयमान तेज के साथ आये उस समय अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।

हे सोम, आप और अग्नि, दोनों सामर्थ्यवान् है। आपने ज्योतिषों को (नक्षत्रों को) वृषभके में (आकाश में) स्थापित किया। हे अग्नि और सोम, रहते हुए नाशियों को (जनों को) आपने हानिकारक निन्दा में मुक्त किया।

आप (अग्नि और सोम) दोनों में से एक को मानरिश्वा-श्व गुप्तोक्त से यहा ले आये। आप दोनोंमें से दूसरे को श्वेत पक्षी पर्वत से उत्पन्न करके लेआया। हे अग्नि और सोम, आप न्युनि-लोका से आनन्दित हजिये। आने गदा-कर्म करनेके लिये इस जगत् को विन्तर्गत किया।

हे अग्नि और सोम, आप ही लिये यहा हवि मिद्धा किया गया है। आप उस ही वर्णिये। आप उन ही रीतिर हीजिये। हे पराक्रमी देव, भक्ति से आर्षिया लिये हुए अग्नि ही आप पमन्द हीजिये। आप हमारा हलयाया हीजिये। हमारी रक्षा की जिम्मेदारी केवल आपही पर निर्भर है। न्युनि करनेवाले नक्षत्रों की जो मौल्य आप आर्षिया करते हैं वही मौल्य पाव-कर्म करनेवाले उपामनों की भी आप प्रदान कीजिये।

हे अग्नि और सोम, जो उपामक आपको दधि आर्षिया करके आपकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं और आप से अर्चन करते हैं उनके कर्मों को आप गदा कीजिये और सफ्टम अन्त (शरीर की) रक्षा कीजिये। सब लोग आपही की प्रजा है, इस लिये आप उन्हें माय्य अर्पण कीजिये।

१. अग्निदेव, सोम ही जगत् को विन्तर्गत करनेवाले हैं। अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।  
 २. अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।  
 ३. अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।  
 ४. अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।  
 ५. अश्व हा वीर्य सब को विहित हुआ।



अष्ट० ? अध्या० ६ व० २९,३० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १५ सू० ९४

हे अग्नि और सोम, आप दोनोंको हमारा सब हाल विदिनही है। आप दोनोंको हम एकसाथ पुकारने<sup>६</sup> हैं। इस लिये हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये। देवगण में आप एकदम प्रकट हुए। ६

हे अग्नि और सोम, घी में भरा हुआ हवि जो मनुष्य आपको अर्पण करता है उसको आप उत्तम नमस्ति कीजिये और उसके लिये प्रकाश भी दीजिये। १०

हे अग्नि और सोम, प्रेम से इन हवियों का आप स्वीकार कीजिये। और दोनों<sup>६</sup> मिलकर आप हमारी ओर आइये। ११

हे अग्नि और सोम, हमारे अश्वों को (धेनुओं को) हृष्ट पुष्ट करनेका प्रबन्ध आप कीजिये। उनके दुध से हवि<sup>७</sup> तैयार किया जाता है। हमारी गौओं की संख्या भी बढ़ाइये। हम आपको हवि<sup>७</sup> अर्पण करने हैं। इसलिये आप हमें सामर्थ्य प्रदान कीजिये। और हमारे यज्ञ की कीर्ति आप सब दूर फैलाइये। १२ (२६) (१४)

अनुवाक १५.

मृक्त ९४.

॥ १४ ॥ अग्नि-रहगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे योग्य और सर्वज्ञ अग्नि-देव, जिस तरह कोई मनुष्य अपने मित्र को प्रेम से रख प्रदान करता है उसी तरह हम बड़े प्यार से आपको हवि अर्पण करने हैं। सचमुच हमारे विषय में आपकी इच्छा बहुत अनुकूल है। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र हैं। इस लिये हमारा नाश न होनेका प्रार्थना आप कीजिये। १



अष्ट० १ अध्या० ६ व० ३१, ३२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० ९४

हे अग्नि-देव, आप सब प्रकारसे बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। दूर<sup>६</sup> होनेपर भी आप अपने तेज-से बड़े प्रज्वलित दिखाई देते हैं। रात्रि के अन्ध कार में भी आप अपने तेज से देख सकते हैं। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण आपको चाहिये कि हमारा नाश न होने।

७

हे देव, सोमरस को सिद्ध करनेवाले उपासकों का रथ सबसे आगे बड़े। और हमारी मनुनि दुष्ट मनुष्यों का निररकार करके आगे चलकर आपको पहुँचे। हमारी प्रार्थना को अन्धकार<sup>७</sup> समझ जाइये और उसको सकल कीजिये। हे अग्नि-देव आप हमारा सखा होनेके कारण आप हमारा नाश न होने दीजिये।

८

अपने नाश करनेवाले शत्रुओं से दूष्ट और पापी मनुष्यों को<sup>८</sup>—चाहे वे आपके पास हों या दूर हों—मार डालिये। आपका स्तोत्र गानेवाले भक्तों के लिये यज्ञ का मार्ग सरल और सीधा कीजिये। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये।

९

जिस समय देदीप्यमान सुन्दर, मानो, वायु की तरह दौड़नेवाले लाल अश्व आप जोतते हैं उस समय वृषभ की तरह आपकी गर्जना होती है। धूम्ररूपी ध्वजा को फरनिवाले चालाश्री से आप वृक्षावो व्याप्त<sup>९</sup> करते हैं। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण हमारा नाश न होने दीजिये।

१० (३१)

जब आपकी आजाप पागदा नाश करती है और चागे डोर फैलती<sup>१०</sup> है तब आपकी गर्जना सुनकर पक्षीनी उरते हैं। आपके रथका मार्ग भी सुगम होता है। हे अग्नि-देव, आप हमारे होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये।

११

मित्र और वरुण को सन्तुष्ट<sup>१२</sup> करनेवाले, मरुत् देवों के क्रोधसे<sup>१३</sup> सचमुच आश्चर्य ही उत्पन्न होता है। हे अग्निदेव—हमें सौख्य अर्पण कीजिये। उन मरुतों के मनका झुकाव फिर हमारी ओर होवे। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १२

आप सब देवों में श्रेष्ठ देव है; आप सबके अपूर्व मित्र है। आप सब वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं। सब यज्ञों में आप शोभा देनेवाले हैं। आपकी कल्याणकारक सहायता की इच्छा हम करते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १३

जिस समय आपको अपने घर में सोम का हवि दिया जाता है उस समय आप प्रति होते हैं और भक्तों को सौख्य अर्पण करते हैं। आप मधुर भाषा बोलते<sup>१४</sup> हैं, और र्पासकों को उत्तम वस्तु और धन अर्पण करते हैं। यही आपका कल्याणकारी काम है। हे अग्निदेव आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १४

वैभव और अखण्ड सामर्थ्य देनेवाले हे अग्निदेव,<sup>१५</sup> आप जिसको सामर्थ्य और सौख्य देते हैं और सन्तति देकर जिनकी उन्नति करते हैं उनपर आपकी कृपा<sup>१६</sup> बनी रहती है और वे आनन्द में रहते हैं। १५

हे अग्नि-देव, कल्याण करनेका सच्चा मार्ग केवल आपही अच्छी तरह जानते हैं। इस जगत् में हमारी आयु आप बढ़ाईये। मित्र, वरुण, तथा आदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक सबही एक सम्मति<sup>१७</sup> से हमारी प्रार्थना सुने और हमारी आयु बढ़ावे। १६ (३२) (६)

१२ मित्रस्य वरुणस्य धायसे<sup>१२</sup> अवयाता मरुता अय हेळः<sup>१३</sup> अद्भुतः मृळ, एषा मन नः सु भुतु।

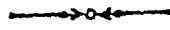
१३ देवानां देव, अद्भुत मित्र, असि. वसुना वसु, अचरे चारु असि. तव सप्रवस्तमे शर्मन् स्वाम।

१४ तत् ते भद्र, यत् स्वे दमे सोमाद्भुत समिद्र. मृळ्यत्तम जरसे,<sup>१४</sup> दाशुषे रत्न द्रविण च दधसि।

१५ सुद्रविणः अदिते<sup>१५</sup> यस्मै त्व सवताता<sup>१६</sup> अनागास्त्व ददाश, य भद्रेण शशसा चोदयासि, प्रजावता ते रावमा स्याम।

१६ देव अग्ने, सौभगत्वस्य विद्वान् त्व इह अस्माक आयुः प्रतिर. मित्रः वरुण, अदितिः सिन्धु पृथिवी उन द्यौ न तत् ममहन्ता<sup>१७</sup> ५

## अध्याय ७.



सूक्त १५.

॥ १५ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता-भूमि ॥

(उषा और रात्रि) दोनों (युवतीयांका) स्वरूप विजकुञ्ज भिन्न हैं । वे दोनों सुन्दर मागोंने गमन करती हैं । हर एक परम्परके बालकको स्नान पिलाती हैं । एक (रात्री) के पान पीले रङ्गका बालक हृष्ट पुष्ट<sup>१</sup> होता है और दूसरे (उषा)के पास शुभ्र रङ्गका बालक वृद्धि पाता है । १

त्वष्टा देवके उद्योगी दश युवतीयोने इस खिलाडु<sup>२</sup> (अग्नि) बालकको जनाया । जब इस राजकका नेत्र दिखाई देने लगा तब उसकी कीर्ति (संसारमे) चारों ओर फैल गयी । वे दोनों (युवती) उस देखीप्यमान् बालकको अपने साथ ले गयी । २

तबिन जगह उस बालकका जन्म हुआ-समुद्रमे, युजोकमे और अन्तरिक्षमें । ज्ञानी लोक उन तीनों जन्मोंका<sup>३</sup> अन्धका वर्णन करते हैं । पृथिवके चारों दिशाओतक पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर विभागोतक और ऋतुओपर वह बालक अपना शासन नियमानुसार<sup>४</sup> चलाता है, और योग्य समयपर अपना प्रबन्ध स्थापित करता है । ३

जब यह बालक (अग्नि) गुप्त<sup>५</sup> रहता है तब कौन उसको पहचान सकता है ? इस बालकने अपने माताओको अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न किया । सब वस्तुओको अपने पेटमे रखनेवाला भेष, ज्ञानी, और सामर्थ्यान्<sup>६</sup> अग्नि अपने (अनुत्) पराक्रमके<sup>७</sup> त्यागके<sup>८</sup> बाहर निकलकर जादूम सञ्चार करता है । ४

\* इत्येते ते स्वये चरतः । अग्न्याजन्त्या वस्त उप धापयेते । अन्यस्या हरिः स्वववान् भवति, अन्यस्याः दुःका सुवसा वरते ।

२ त्वष्टा नामाग्निः एता युवतय इम विष्ट्रं गर्भे जनयन्त । तिग्मानीक जनेषु स्वयंशन विरोचमानो परि वरति ।

३ तदुदे एकः दिवि एकः जलु (एक), अस्य त्रीणि जना<sup>३</sup> परि भूयन्ति । पूर्वा अनु पार्थिवाना प्र एता एते प्रसोत ए जनु<sup>३</sup> वि दधौ ।

४ विष्णुः स्वमे य एता त्वेषेते<sup>४</sup> वस्त त्वेषानि गानुः जनयन्त । नदीना गर्भं, नशान्, कवि, एत एता<sup>४</sup> जना<sup>३</sup> एत एता<sup>४</sup> दे वरति ।

यह सुन्दर अग्नि जलमें रहकर सबके सामने<sup>५</sup> वृद्धि पाकर प्रकट होता है। आप निज कीर्तिसे शोभायमान दिखाई देते हैं। जिन जलोमें आप रहते हैं वे आड़े मार्गसे चलते हैं किन्तु उनमें आप खड़े रह सकते हैं। जब आपका जन्म हुआ तब द्युलोक और पृथिवीलोक—जिनको त्वष्टा देवने उत्पन्न किया—दोनों घबडा गये। किन्तु (द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों लौट आये और सिंहरूपी बालकको गोदमें लिया। ५ (१)

उपकारी द्यावापृथिवीओने माताकी नाई उस बालकका पालन किया। अपने बत्सके लिये रांभनेवाली गौकी नाई वे दोनो (माताएं) अपने बालकके पास दौड़ती गयीं। (सब उपासक लोग) अग्निको दहने ओरसे हवि अर्पण करते हैं, और सबसे आप सामर्थ्यवान् बन जाते हैं। ६

सविता देवकी नाई अग्नि अपने हाथ खड़े करता है। और आप दोनो (द्यावापृथिवी)को वज्रासे सुशोभित करते हैं। सबसे आप उनके पुराणे उज्ज्वल वस्त्र<sup>१०</sup> छान लेते हैं, और अपने माताओसे भी नया वस्त्र छान लेते हैं। ७

जब निजके घर (अन्तरिक्ष)में अग्निका सम्बन्ध उदकरूपी गोकेशाय होता है तब विजराकी तरह उनका उज्ज्वलरूप प्रकट होता है। प्रज्ञावान् अग्नि केवल बुद्धिकी मूर्ति है। इसके चमकनेसे आकाशमें प्रकाश प्रकट होता है। आपही स्वर्गके मूलरत्नको पवित्र करते हैं। इसीको कहते हैं कि यज्ञके समय अग्निका मेल देवोकेसाय होता है। ८

(अग्नि) सबसे श्रेष्ठ है। आपका निवासस्थान (स्वर्ग लोकके) प्रदेशमें है। उस विस्तीर्ण प्रदेशको आपका देदीप्यमान तेज<sup>११</sup> व्याप्त करता है। हे अग्निदेव, आप अपने सब ज्वालितओसे प्रदीप्त हो जाइये। अपने सामर्थ्यसे<sup>१२</sup>—जिसको कोई रोक नहीं सकता—भक्तोकी रक्षा कीजिये। ९

५ चारुः आविष्टयः आसु वर्धते । स्वयशाः जिह्वाना उपस्थे ऊर्ध्व । लघु उभे जायमानात् विभ्यतु , प्रतीची सिंह प्रति जोषयेते ।

६ भद्रे उभे मने न जोषयेते । वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थु । य दक्षिणत हविर्भिः अजति स क्षाणां दक्षपतिः वभूव ।

७ सविता इव बाहू उत् ययमीति । सिचौ उभे ऋजन् भीम यतते । सिमस्मात् शुक्र अत्क<sup>१०</sup> उत् अगते । मातृभ्य नवा वसना जहाति ।

८ यत् सदने गोरिः अद्रिः सपृचान उत्तर त्वेष रूप कृणुते । धी कविः बुध्र परि मर्मज्यते । सा देवताता समिति वभूव ।

९ ते उह विरोचमान जय<sup>११</sup> महिषरय धाम बुध्र परि एति । अग्ने स्वयशोभिः विश्वेभिः इद्व अदन्नेभि पायुभिः<sup>१२</sup> अस्मान् पाहि ।

(अग्नि) वञ्जर<sup>१३</sup> भूमिमे जलको बहाता है। उदकोको आप मार्ग दिखाते हैं। आप पानीकी लहरे उदरलाते हैं; और आप सब दूर पृथिवपर पानी फैलाते हैं। सब पुरायी वस्तुओको आप पेटमें रखते हैं; और नये वृक्षोंको उत्पन्न करते है। १०

हे अग्निदेव, जो इन्धन ( लकड़ी ) हम आपको अर्पण करते हैं उससे, आप बढ़ जाइये; अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये; हमे धन दीजिये और अपनी कीर्ति बढ़ाइये। इस प्रार्थनाको मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, युलोक सुने आर हमारी प्रार्थना सफल करे। ११ (२)

### सुक्त ९६.

॥ ९६ ॥ ऋषि-अजिरस कुत्स । देवता-शुद्धोमि ॥

सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए अग्निने सचमुच<sup>१</sup> बुद्धिका सब खजाना एकदम प्राप्त किया। उदक और प्रजाओने अग्निको दुनियाका मित्र बनाया। और सब देवोंने वैभव देनेवाले अग्निकी शरण ली। १

अग्नि आयूकी स्तोत्रोसे<sup>२</sup> सन्तुष्ट होकर अपने प्राचीन ज्ञानके अनुसार मनुष्यजातिकी सब प्रजा उत्पन्न की। आपने अपने तेजसे युजोक और उदकको उत्पन्न किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। २

विश्वका पोषण करनेवाले, दान-कर्मकरनेमें सहायता देनेवाले और यज्ञकी सिद्धि करनेवाले सामर्थ्यके पुत्र-अग्निको-श्रद्धावान्<sup>३</sup> लोगोंने सभसे पहले बुझाया; ( श्रद्धावान् लोगोंने ) अग्निकी स्तुति करके आपको सन्तुष्ट किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ३

मानवजातिकी रक्षा करनेवाले, दुलोक और भूलोकको उत्पन्न करनेवाले स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाले और असंख्य वैभव पास रखनेवाले मातरिश्वा देवने अपनी सन्तानका कल्याण करनेके लिये नये नये और अच्छे मार्ग ढूँढे । और इसी लिये वैभव देनेवाले अग्निकी स देवोंने शरण ली ।

अपने स्वरूपको हमेशा बढ़ानेवाली<sup>१</sup> रात्री और उषा दोनों मिलकर<sup>२</sup> अपने सूर्यलोक अग्नि बालकको अपना स्तन पिलाती है । सुवर्णके समान शोभा देनेवाले (सूर्यलोक) अग्नि-देव दुलोक और भूलोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं । वैभव देनेवाले अग्निको स देवोंने शरण ली ।

५ (३)

आप सम्पत्तिका मूल खजाना हैं, । धन देनेवाले, यज्ञकी ध्वजा फहरानेवाले और प्रार्थन करनेवालोंकी<sup>३</sup> इच्छा पूरी करनेवाले आपही हैं । अपना अमरत्व स्थिर करनेका प्रयत्न करनेवाले देवोंने वैभव देनेवाले अग्निको शरण ली ।

जैसे प्राचीनकालमें आप वैभवके स्थान थे वैसेही अबभी<sup>४</sup> आप वैभवके स्थान बने हुए हैं आजतक जितने प्राणियोंका जन्म हुआ है और भविष्यत्कालमें जिनका जन्म होगा उन सबके आप आनन्दकारक स्थान<sup>५</sup> हैं । वर्तमानकालमें जितने प्राणी जीवित हैं और भविष्यत्कालमें जिनका जन्म होगा उन सबकी रक्षा आप करनेवाले हैं । वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली ।

७

वैभव देनेवाले अग्निदेवने शीघ्र<sup>६</sup> बढ़नेवाली सम्पत्ति हमें दी है । पराक्रमी पुत्र भी (अग्निदेवकी कृपासे) हमें मिले हैं । वीर्यशाली सम्पत्तिके साथ पोषण-द्रव्य भी आप (अग्नि)ने हमें अर्पण किया है । वैभव देनेवाले अग्नि-देव हमारी आयुकी वृद्धि करते हैं । ८

विशा गोपाः रोदस्योः जनिता रविवित् पुष्टवारपुष्टि स मातरिश्वा तनयाय मातु दिदत् ।

५ वर्षे आमैम्याने नक्तोपसा समीची एकं शिशु वापयेने । रुमन. वावाक्षामा अ त वि भाति ।

६ राय दुध्न वसूना र.गमन. यज्ञस्य केतु वे. मन्त्रावन । अमृतत्व रक्षमाणास देवा एत द्रविणोदा अग्नि वारयन् ।

७ तु च पुरा च रवीणा सदन, जातरय च जायमानय च क्षा,<sup>७</sup> भूरे सत. च भवतः च गोपा द्रविणोदा अग्नि देवा वारयन् ।

८ द्रविणोदा. तुरस्य<sup>८</sup> सनरस्य द्रविणसः प्र यसत् । द्रविणोदा नः वीरवती इष । द्रविणोदा दीर्घ आतु रासते ।



हे अग्निदेव, हमने अर्पण किये हुए इन्धनसे आपकी वृद्धि होती है। आप सबको पवित्र करने हैं। आप अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये। हमें धन दीजिये। और आपकी कीर्ति सब दूर बढ़ जाये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, बुलोक हमारी प्रार्थना सुने और सकल करें।

६ (४)

सूक्त ९७,

॥ ९७ ॥ ऋषि-अजिरस कुत्स । देवता-अग्नि ॥

(अग्नि-देव) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। हे अग्निदेव, हमपर सम्पत्तिका प्रकाश फैलाइये। सचमुच आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। १

अच्छी<sup>१</sup> जगह रहनेवाली और सुमार्गसे<sup>२</sup> प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति ही इच्छा करके हम आपका अर्चन करते हैं। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। २

आपका भक्त (केवल) आपहीका भवन<sup>३</sup> करता है। और हमारे कुलमें उत्पन्न हुए सब विद्वान् मज्जन्भी आपहीकी स्तुतिमें मग्न होते हैं। इस लिये आप (अग्नि) प्रज्वलित- ३

हे अग्निदेव, हमारे जन्मसेही हम आपके उपासक बन गये हैं। इस लिये हम आपके ही हैं। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश कीजिये। ४

जन्म पलवान् अग्निमे प्रिरया सब दूर फैलते हैं तब आप हमारे पापका नाश कीजिये। ५

चारों ओर आप (अग्नि)का सुन्दर मुख दिखाई देता हैं। हे (अग्निदेव) सचमुच आपने सब जगह व्याप्त की है। प्रज्वलित होकर हमारे पापका आप नाश करे। ६

आप (अग्निदेव)का मुख चारों ओर दिखाई देता है। जिस तरह जहाज समुद्रके परे ले जाता है उसी तरह हमें आप शत्रुके बलके पार (जहा शत्रु किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचा सकता) ले जाइये। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ७

समुद्रके पार ले जानेवाले जहाजकी तरह आप हमें संकटसे बचाइये और आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ८ (५)

### सूक्त ९८.

॥ ९८ ॥ ऋषि—अङ्गिरस कुत्स । देवता—सोम ॥

सब मानवजातिसे अन्तःकरणमें प्रेम रखनेवाले अग्निदेवकी कृपा—दृष्टि हमपर रहे। आप किसकी रक्षा करते हैं? आप सब भुवनोके अलंकार<sup>१</sup> है। इसी जगह जन्म लेकर आप सब विश्वका अवलोकन करते हैं। सब मानवजातिके विषयमें अन्तःकरणमें प्रेम रखनेवाले (अग्निदेव) सूर्यसे इर्ष्या<sup>२</sup> करते हैं। १

ध्रुवोक्त्रमें जिसको दृग्ढते है और पृथ्वीपर भी जिसको दृग्ढते है ऐसे अग्निदेवने वनस्पतिमें प्रवेश किया। मानवजातिसे प्रेम रखनेवाले बलवान् अग्निदेवको सब लोग दृग्ढते है। आप दिनरातमें दुष्ट लोगोंसे हमारी रक्षा कीजिये। २

विश्वतोमुख, ल हि विश्वत परिभू असि ।

वन्दतोमुख, नावाइव न द्विष अति पारय ।

८ नावया सिबु इव स्वस्तये स नः अति पर्ष<sup>३</sup> ।

१ वैश्वानरस्य सुमती स्याम । राजा क हि ? भुवनाना अभिश्री<sup>१</sup> इतः जातः इदं विश्व वि चष्टे । वैश्वानर सूर्क्षेण यतते<sup>२</sup> ।

२ दिवि पृष्ट, पृथिव्या पृष्ट. पृष्ट. अग्नि. विश्वा. ओषधी. आ विवेश । वैश्वानरः अग्निः सहसा पृष्टः । सः दिवा नक्त न रिष पातु ।

अष्ट० ? अध्या० ७ व० ७,८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १९ सू० ९९

सब मानवजानिसे प्रेम रखनेवाले अग्निदेव, यह आपका सत्य (बल) हमेशा आपके पास रहे। हमारे नरक आकर वृहत्<sup>३</sup> सम्पत्ति हमे दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वा और शुलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे और सफल करे। ३ (६)

सूक्त ९९.

॥ ९९ ॥ ऋषि-मरीचिपुत्र, काश्यपऋषि । देवता-अशुद्धोमि ॥

चलिये। सर्वज्ञ अग्नि-देवका सन्मान करनेके लिये सोमरस तैयार करके रखना चाहिये। जो मनुष्य हमसे वैरभावका वर्ताव करते हैं उनके धनका अग्नि-देव नाश करते है। जिस तरह जहाज समुद्रके पार लेजाता है उसी तरह अग्नि-देव संकट और पापोंसे हमे बचाते हैं। १ (७)

सूक्त १००.

॥ १०० ॥ ऋषी-ऋज्जाश्व, अवरीष, सहदेव, भवमान, सुराधा । देवता-इन्द्र ॥

बलवान् इन्द्र कई वीर्यशाली देवोंकेसाथ रहना है। विस्तीर्ण शुनोक और पृथिवलोकोंका आप स्वामी है। सचमुच अनुभवसे आपके बलके अस्तित्वका प्रभाव विद्रित होना है। सोमरा नेयाग होनेके पश्चात् आपको हवि अर्पण किया जाता है, और आप सन्तुष्ट होते हैं। मरुत्-देवोंकेसाथ आप यहा आवे और हमारी रक्षा करे। १

सूर्यकी गतिकी<sup>१</sup> नाई इन्द्रकी गतिकी कोई रोक<sup>३</sup> नहीं सकता। जब सोमरस तैयार किया जाता है तब नृत्रको मार्गवाले इन्द्रकी पराक्रम- करनेकी और प्रवृत्ति होती है। मित्रकी सहायता मिलनेके कारण आपका सामर्थ्य वृहत् बढ़गया है। आप मरुत् देवोंकेसाथ अपने मार्गसे<sup>२</sup> चरते हुए हमारी रक्षा करनेके लिये यहाँ आवे। २

अष्ट० १ अध्या० ७ व० ८,९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १००

इन्द्रके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता, जिस मार्गको आप तैयार करते हैं उसी मार्गसे दुलोकमे जल बहते हैं। आप अपने शत्रुओसे आपको सहजही बचा सकते हैं। आप पराक्रमी होनेके कारण सब जगह आप विजयी हुए हैं। मरुत्-देवोंकेसाथ इन्द्र-देव हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ३

आप (इन्द्रदेव) अपने मित्रोंके साथ मित्रत्वका वर्ताव करते हैं। पराक्रम करनेवाले लोगोमे आपका नाम मशहूर है। आगिरस वंशमे आपही सबसे श्रेष्ठ हैं। जो देव स्तुति करने योग्य हैं उनमे, आप अधिक स्तुति-योग्य हैं। स्तुतिके कारण आपका नाम बहुत बढ़ गया है। इन्द्रदेव मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ४

युद्धमे<sup>६</sup> इन्द्रदेव अपने शत्रुओको जीत<sup>७</sup> लेना है। मानो, पुत्रकी नाई रुद्रोंकी सहायता आपको युद्धमे मिली; इस कारण आप श्रेष्ठ<sup>८</sup> समझे गये आपके साथ रहनेवाले देवोंकी सहायतासे आप बड़े बड़े वीरताका काम करते<sup>९</sup> हैं। इन्द्रदेव मरुत्देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ५ (८)

शत्रुओकी घमण्ड<sup>१०</sup> हरण करनेवाले और युद्ध<sup>११</sup> करनेवाले इन्द्रने शूर पुरुषोंकी सहायतासे सूर्यको दूखड निकाला। भक्तगण आपको हमेशा प्रार्थना करते हैं। आप सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं। इन्द्रदेव मरुत्-देवोंकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ६

पराक्रमी लोग धन प्राप्त करनेकी इच्छासे युद्ध करते हैं। युद्धके समयपर आप उनके मनमे प्रेरणा<sup>१२</sup> उत्पन्न करके उनको सामर्थ्य देते हैं। सब मनुष्य आपहीको कल्याण करनेवाले<sup>१३</sup> समझते हैं। जगतमे सत्कृत्योंके<sup>१४</sup> आपही स्वामी हैं। इन्द्र-देव मरुत्देवोंकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवे। ७

३ शवसा अपरीता यस्य पथासः दिव न रेतसः दुधाना यति, तरद्द्वेषाः, पौंस्येभि ससहिः मरुत्वान्  
॥ ऊती भवतु ।

४ िभि सखा सन् वृषभिः वृषा सः अगिरोभि अगिरस्तम. भूत् । ऋग्मिभि. ऋग्मी, गातुभि. ज्येष्ठ.  
इन्द्र न ऊती भवतु ।

५ नृसह्ये<sup>६</sup> अमित्रान् ससहान्<sup>७</sup> स सूनुभि न रुद्रेभि ऋभ्वा<sup>८</sup> । सनीळेभिः श्रवस्यानि त्वेन्<sup>९</sup> मरुत्वान्  
इन्द्र. न ऊती भवतु ।

६ मःयुमीः<sup>१०</sup> समदनय<sup>११</sup> कर्ता स अरमाकेभि वृभि सूर्य सनत् । पुरुहूत सत्पति. मरुत्वान् इन्द्रः  
अरिमन् अहन् न ऊती भवतु ।

७ इरसातौ त ऊतय रणयन्<sup>१२</sup> । क्षितय त क्षेमरय त्रा<sup>१३</sup> कृण्वत । विश्वस्य करुणस्य<sup>१४</sup> सः एक. ईशे ।  
मरुत्वान् इन्द्र. न. ऊती भवतु ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० ९,१० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १००

आनन्दोत्सव मनाने समय आप (इन्द्र) के मनमें नयी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। स्वरक्षा और धनकी इच्छा करनेवाले पुरुष आप (इन्द्र) जैसे पराक्रमी देवोंकी शरण लेते हैं। जो चारों ओर गाढ़ा अन्धकार फैलता है तब आप तेजोमय प्रकाश उत्पन्न करते हैं। इस लिये इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। ८

आप अपने चाये द्वापसे अपने बलवान्<sup>१४</sup> (शत्रुओंको) दबा सकते है; और प्राप्त किये हुए धनको दहने द्वापसे आप पकड़ लेते है। स्तुति करनेवाले उपासकोंको धन अर्पण करनेवाले इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। ९

आप (इन्द्र) बैठकर सेनाकी सहायतासे धन प्राप्त कर सकते है। सब मानव जातिको आपकी कीर्ति विदितही है। जो लोग आपकी स्तुति नहीं करते उन दुष्टोंको<sup>१५</sup> आप अपने बलसे पराजित करते है। इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। १० (९)

बहुतसे उपासक लोग इन्द्रको पाचारण<sup>१६</sup> करते हैं। अपने सगेवाले हों अथवा दूरे लोग हों सबको मुख्यमें आप सहायता देते है। जल, पुत्र, और पौत्रकी प्राप्ती करानेके लिये इन्द्र-देव, आप यहा आवे। आप (इन्द्र) देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। ११

आप (इन्द्र) द्वापसे वस्त्र धारण करते हैं। आप शत्रुका नाश करनेवाले है। आप स्वयं उगनेवाले है। आपका स्वरूप उग्र है। आप प्रजावान् हैं। आप सेनाके अधिपति है और सामर्थ्यावान् है। सोमरसकी तरह आप स्फूर्ति देनेवाले है। आप मानव जातिकी रक्षा<sup>१७</sup> करनेवाले है। इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहा आवे। १२

अष्ट० ? अध्या० ७ व० १०, ११ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ मू० १००

जैसे शुलोकमें अथवा (अन्तरिक्ष) में (विजली चमकते समय) बड़ी गर्जना<sup>१०</sup> होती है वैसेही आपका वज्र स्वर्गसे गिरते समय बड़ी गर्जना करता है । अनेक मार्गोंसे लाभ और सम्पत्ति आपकी ओर दौड़ती चली आती है । इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १३

इन्द्रके सामर्थ्यसे शुलोक और भूलोक भरा हुआ है । आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई है; हमारी पूजासे<sup>११</sup> आप सन्तुष्ट हूजिये । और हमे संकटसे परे ले जाइये । इन्द्र, मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १४

देव, देवता, मनुष्य, जल, आदि किसीको भी इन्द्रके सामर्थ्यका पता नही लगा । आप अपने बलसे<sup>१२</sup> शुलोक और भूलोकको आक्रमण करते हैं । इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १५ (१०)

सामर्थ्यावान् इन्द्रदेव जब अपने रथमे विराजमान होते हैं तब आपके रथका जूआ शुलोकमे<sup>१३</sup> रहनेवाली लाल और काले रङ्गकी सुन्दर और देदीप्यमान घोड़ी अपने कंधेपर ले चलती है । वह सुन्दर घोड़ी<sup>१४</sup> ऋज्जाश्वको सम्पत्ति अर्पण करनेके लिये (यहां) आनन्दसे आती हुई<sup>१५</sup> दिखाई देती है । १६

हे इन्द्र, ऋज्जाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा वृषागिरके पुत्र अपने मित्रोंके साथ<sup>१६</sup> आनन्दसे आपका सम्मान करके आपका स्तोत्र गाते हैं । १७

१३ दिवः शिमीवान् त्वेष. रथः<sup>१०</sup> न तस्य स्वर्षाः वज्रः ऋन्दति । सनय 'नानि त सचन्ते ।

स्य शवसा मान उक्थ अजल चिन्त सी रोदसी परिभुजत्, स. ऋतुभि.<sup>११</sup> मन्दसान पारिपत् ।

वा, देवता, मर्ता, आप चन याय शवस शन्त न आपु त्वक्षसा<sup>१२</sup> इमा दिवः च परिका स न् इन्द्रः नः ऊती भवतु ।

१६ वृषण्वन्त रथ धृषुं विश्रती रोहित् इयावा बुक्षा<sup>१३</sup> सुमदशु ललामी<sup>१४</sup> ऋजाश्वस्य राये नाहुपीपु<sup>१५</sup> विशु मन्त्रा चिकेत ।

१७ इन्द्र, वार्षागिराः, ऋज्जाश्वः, अम्बरीषः, सहदेवः, भयमानः, सुराधाः, प्रष्टिभि<sup>१६</sup> वृष्णे ते एतत् त्यत् राधः उक्थ अभि गुणन्ति ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० ११, १२ ] ऋग्वेदः [ षण्ड० १ अनु० १५ सू० १०१

इन्द्रदेवने— जिसकी अनेक भक्तजन प्रार्थना करते हैं—पृथिवपरके सब दुष्ट लोगोका और नानेवाले शत्रुओका<sup>१०</sup> धीरे धीरे<sup>१८</sup> नाश<sup>१९</sup> किया। वज्रधारी देवने अपने तेजस्वी<sup>३०</sup> मित्रोकी नहायनासे भूमिको प्राप्त किया। १८

इन्द्र हमारा निरन्तर कल्याणकरनेवाला और आशीस देनेवाला होवे; जिससे हमारे नागमे कोउ बाधा न पड़े और हमे सामर्थ्य प्राप्त होवे। मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथिवी, शूलोकादि एक सन्मतिसे हमारी प्रार्थना सफल करे। १६ (११)

मूक्त १०१.

॥ इन्द्र-आज्ञिरस कुत्स । देवता-इन्द्र ॥

इन्द्र देवने ऋग्विष्वाके द्वारा काले रङ्गके (दुष्ट) लोगोका वध करवाया। आनन्द देनेवाले इन्द्रको इन्द्रिके<sup>३</sup> साथ एक स्तोत्र हम अर्पण करते हैं। हमारी रक्षा करनेके लिये हम उनके मित्रत्वकी इच्छा करते हैं। दहने ह्याधमे वज्र धारणकरनेवाले पराक्रमी इन्द्रको मरुत् देवोके साथ हम यहां बुलाते हैं। १

आप (इन्द्र)ने क्रोधमे आकर व्यंसका वध किया, आपने शम्बरको मार डाला; आपने नीचि-हीन पिप्रूका भी नाश किया, जिस शुष्णका नाश करना असम्भव<sup>३</sup> था उसका भी आपने वध<sup>३</sup> किया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत् देवोके साथ आपको बुलाते हैं। २

शुलोका और पृथिवीलोक उत्पन्न करनेका पगवन आपने किया। वरुण, सूर्य, नदियां, आदि देवताए इन्द्र देवताकी आज्ञा मानते हैं और उसके अनुसार चलते हैं। ऐसे उपर्युक्त देवोकी आज्ञा करनेवाले हम मरुत् देवोके साथ आपको बुलाते हैं। ३

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १२, १३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०१

आप अश्वोंके और धेनुओंके भी स्वामी हैं। आप सबको अपने वशमें रखते हैं। आपका सब सन्मान करते हैं। आपका प्रभाव हर एक काममें दिखाई देता है। आपको हवि अर्पण न करनेवाले पाखण्डी (अभक्त) लोगोंका आप बध करते हैं। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके हम मरुत् देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। ४

आप सब प्राणियोंके स्वामी हैं। भक्तिवान् उपासकोंके लिये आपने पहिले धेनुओंकी प्राप्ति की। आपने दुष्ट लोगोंको दूरतक नीचे फेंक दिया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत् देवोंके साथ आपको पाचारण करते हैं। ५

पराक्रमी लोग आपको हमेशा पुकारते हैं; और कायर लोग भी आपको बुलाते हैं। युद्धमें जीतनेवाले और हारनेवाले दोनों प्रकारके पुरुष आपसे प्रार्थना करते हैं। सब जगत्के लोग आपके सङ्गतिकी इच्छा करते हैं। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत् देवोंके साथ आपको पाचारण करते हैं। ६(१२)

ज्ञानी इन्द्र रुद्रकी दिशाकी ओरसे आते हैं। रुद्रदेवके साथ उपादेवी (युवती) अपना विस्तीर्ण प्रकाश फैलाती है। भक्त लोग स्तोत्रोंके द्वारा कीर्तिवान् इन्द्रका अर्चन करते हैं। हम भी इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके मरुत् देवोंके साथ आपको पाचारण करते हैं। ७

हे इन्द्र, आप हमेशा मरुत् देवोंके साथ रहते हैं। जब आप सब देवोंके साथ किसी जगह आनन्द मनाते हैं अथवा किसी एकान्त जगह वैठते हैं तब भी हमारे यज्ञकी ओर आगमन कीजिये। सत्यसे सन्तोष मनानेवाले देव, आपहीके प्रेमसे हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ८

य अश्वाना, य गवां गोपति वशी, य आरित कर्मणिकर्मणि स्थिर, य इन्द्र वीळो चित्र असु-  
ः, मरुत्वत सख्याय हवामहे ।

विश्वरथ जगत प्राणतः पति, य ब्रह्मणे प्रथम गा अविन्दत्, य दस्युन् अधरान् अवातिरत्,  
सख्याय हवामहे ।

य श्रेभि हव्य, य च भीरुभिः, य वावेद्रि ह्यते, य च जिग्युभि, य इन्द्र विश्वा भुवना अभि  
दधु, मरुत्वत सख्याय हवामहे ।

७ विचक्षण रक्षाणा प्रदिशा एति । रद्रेभि योषा पृथु जयः तनुते । मनीषा श्रुत इन्द्र अभि अर्चति ।  
मरुत्वत सख्याय हवामहे ।

८ मरुत्, यत् वा परमे सवस्ये, यत् वा अवमे वृजने मादशामे, अत न अधर अच्छ आ याति ।  
सखराय लाया हवि चक्रम ।



हे वीर्यशाली इन्द्र, आपहीके प्रेमसे हमने सोमरस तैयार किया है। हमारे स्तुतियोंका स्वीकार करनेवाले देव, आपहीके प्रेमके कारण हम हवि सिद्ध करते हैं। अश्वपर आरूढ<sup>६</sup> हानेवाले देव, अपने गणोंकेसाथ यहा आकर हमारे कुशासनपर विराजमान् होकर मरुत्<sup>६</sup> देवोंके साथ आनन्द मनाइये।

अपने पीले रङ्गके अश्वोंके साथ (इस यज्ञमें आकर) आनन्द मनाइये। अपना मुख गोलकर अपने सुन्दर मुखसे हमारे हवियोंका भक्षण कीजिये। उत्तम मुकुटसे<sup>७</sup> शोभनेवाले इन्द्रको आपके अश्व ले आवे। हमारे हवियोंको पसन्द<sup>१०</sup> करके आप उनका स्वीकार कीजिये।

जिस जगह मरुत् देवोंकी स्तुति की जाती<sup>११</sup> है वहां इन्द्रनेव भी आते है और हमें सामर्थ्य प्रदान करते हैं। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वि, दुलोक आदि देवताएँ हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उसे सकल करें।

सूक्त १०२.

॥ ऋषि—अजिरस कुत्स । देवता—अग्नि ॥

(हे इन्द्र) जो स्तोत्र आप बहुत पसन्द<sup>१</sup> करने है उसीको मैं आप जैसे श्रेष्ठ देवको अर्पणा करता हूँ। आनन्द मनाने समय अथवा लाभ<sup>२</sup> प्राप्त करनेके समयपर आपका हमेशा विजयही<sup>३</sup> होता है। आप जैसे सामर्थ्यवान् देवको देखकर और आग दूतरे देवोंको आनन्द होता है।

आपकी कीर्ति इतनी बड़ी है कि पड़ सात नदियों द्वारा बहती है। स्वर्ग और भूमि दोनों पितागी लोक<sup>४</sup> आपको सुन्दर देहको व्याप्त करने है। हे इन्द्र सचमुच हम आपकी पर आज्ञा करते हैं, और सूर्य और चन्द्र आपसमें न मिलकर हमारा प्रकाश देनेके लिये हमें पराचार करते रहते है।

हे उदार ( इन्द्र ), जब आपका विजयी रथ आता है तब हमें आनन्द होता है । आपके रथके द्वारा हमें सम्पत्तिका लाभ होता है और हमारी रक्षा होती है । भक्तोंकी स्तुतिका स्वीकार करनेवाले उदार इन्द्र, हम हृदयसे आपपर प्रेम<sup>६</sup> करते हैं । इस लिये युद्धमें हमारी रक्षा कीजिये ।

३

यदि आप हमको सहायता देनेवाले होंगे तो हम ( निश्चयसे ) शत्रुओंको<sup>७</sup> जीत लेंगे । जब<sup>८</sup> हम आपको हवि अर्पण करते हैं तब हमारे पक्षकी<sup>९</sup> रक्षा करनेके लिये तैयार रहिये । हमारी रक्षा करनेके लिये आप एक ऐसा सुलभ ( बचानेवाला ) अस्त्र<sup>१०</sup> बनाइये जिससे हम शत्रुओंको जीत लेंगे ।

४

सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र, हम आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं । आपका स्तवन गौर पूजन करनेवाले बहुत सज्जन है । किन्तु केवल हमारा लाभ करानेके लिये आप रघमें श्रावण<sup>११</sup> हूजिये । हे इन्द्र, सचमुच आपके मनकी इच्छा हमेशा विजयकी ओर दौड़ती है । ५(१४)

आप अपने बाहुओंके बलसे-गौधनको जीत लेते हैं । आपकी बुद्धिका सामर्थ्य असीम है । आप बड़े श्रेष्ठ<sup>१२</sup> हैं । हरएक कृत्यमें आप ( भक्त )को सहायता देते हैं । आप युद्ध करनेमें बड़े कुशल<sup>१३</sup> हैं । आपके बलकी कोई कल्पना<sup>१४</sup> भी नहीं कर सकता है । आप अपने अद्वितीय सामर्थ्यके कारण श्रेष्ठ हुए हैं । आपकी सेवा करनेवाले लोग आपको कई प्रकारसे पुकारते हैं ।

६

मानवजातिमें आपका यश सब दूर फैला हुआ है । सैकड़ों नहीं हजारों लोगोंकी अपेक्षा आपका यश अधिक फैला हुआ है । आपका सामर्थ्य कोई नाप<sup>१५</sup> नहीं सकता ( वह असीम है ) । हमारी स्तुति आपका उत्साह<sup>१६</sup> बढ़ाती है । शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले देव, आप राक्षसोंका नाश कर सकते हैं ।

७

मघवन, य ते जैत्र ( रथ ) सगमे अनुमदाम, त रथ सातये प्र अव स्म । पुरुस्तुत मघवन इन्द्र, आयद्वा<sup>१</sup> न. न आज्ञा शर्म यच्छ ।

लया युजा वृत<sup>२</sup> वय जयेम । भरेभरे<sup>३</sup> अस्माक अश<sup>४</sup> उत् अव । इन्द्र, अस्मभ्यं सुग वरिव<sup>५</sup> हवि । शत्रूणा वृष्ण्या प्र रुज ।

५ धनाना धर्त<sup>६</sup>, अवसा ला हवमानाः विप-यव. इमे जना. नाना हि । अस्माक सातये स्म रथ आ तिष्ठ । इन्द्र, तवः मनः निभृत जैत्र हि ।

६ बाहु गोजिता; इन्द्रः अमितकतु सिम<sup>७</sup> कर्मन्कर्मन् शतमूति<sup>८</sup>, सजकर,<sup>९</sup> अकल्प,<sup>१०</sup> ओजसा प्रतिमान । अथ सिपासवः जना विह्वयन्ते ।

७ मघवन, कृष्टिपु ते श्रव उत् शतात्, उत् च भूयस<sup>१</sup>, उत् सहदाव् रिरिचे । अमान<sup>२</sup> ला मदी धिषणा तिलिषे, अध, पुरन्दर वृत्राणि जित्रसे ।

अष्ट० ? अःया० ७ व० १५, १६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०

हे मनुष्योंके स्वामी, भूलोक, स्वर्गलोक, और देदीप्यमान प्रदेश (अन्तरिक्ष) तीनों लोगोंको आपने व्याप्त किया है। इन तीनों लोगोसे आप बड़े है। हे इन्द्र, आपके जन्मसेही आपका कोई शत्रु नहीं रहा।

सब देवोसे पहिले हम आपको पुकारते हैं। युद्धमे विजय पानेवाले इन्द्र, हमे तबन करनेकी स्फूर्ति<sup>१५</sup> दीजिये, और (सम्पत्ति) का लाभ<sup>१६</sup> करानेके लिये हमारा रथ सबसे आगे बढ़ाइये।

हे उदार देव, आप छोटे और बड़े सब युद्धोमे विजय पाते हैं। किन्तु कभी सम्पत्ति लूट नहीं लेते। आपका स्वरूप बड़ा उग्र है। हमारी रक्षा<sup>१७</sup> करनेके लिये हम आपकी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, जब हम आपकी स्तुति करते है तब आप हमारी उन्नति कीजिये। १०

इन्द्र, हमे शुभदायक आशीस देनेवाला होंगे। आपकी कृपाके कारण ही हमारे कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी। हमे सामर्थ्यका लाभ करा दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और बुध्लोक, आदि हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये ११(१५)

मूक्त १०३.

॥ १५-अग्निरस युत्स । देवता-इन्द्र ॥

पुरागो कालसे आपका जो सामर्थ्य<sup>१</sup> हम पृथिवीपर दृग्गोचर होता है उसका विद्वान लोग अभिनन्दनही<sup>२</sup> करते है। आपकी शक्तिका एक अंश पृथिवीपर दृग्गोचर होता है, और दूसरा अंश स्वर्गलोकमे दिखाई देता है। जैसे युद्धके समय भीड़ होनेके कारण (एक दशवती ध्वजा दूसरे दशवती ध्वजासे मिलती हुई दिखाई देती है) उसी तरह आपका (बुध्लोक और पृथिवीलोकके) दोनो अंश एक दूसरेके साथ मिले हुए दिखाई देते हैं। ?

८ गुपते, तिष्ठ गूनी, त्रीणि रोचना, लोजस त्रिविष्टिधातु प्रतिमान । इद विश्व भुवन अति वराजिय ।  
९ सनास अनुषा वरातु अस्ति ।  
१० देवसु प्रथम सा एवागरे । पृतनासु स तसहि वभूष । सः इन्द्र न. वार उपमन्यु उद्रिद, "प्रसवे"

११ पुर उद्योतु ।  
१२ नमस्तु जनेषु नालु च जाजा ल जिगेय, धना न हरोधिष । ता उग्र अवसे स विशीमसि" ।  
१३ सः एतेषु न चं दय ।  
१४ सः विजाल न अपिचसा अत्तु । अपरिहता वाज समुधान ।  
१५ सः सः परम सः सः सः पुरा पराचे 'अधारयन्त' अत्प इद अन्यत् क्षमा, अन्यत् दिवि ।  
१६ सः सः सः सः पुञ्जते ।

अष्ट० ? अध्या० ७ व० १६, १७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड ? अनु० १५ सू० १०३

आपने पृथिवीको धारण करके उसको विस्तीर्ण किया और अपने वज्रसे वृत्रको मार डाला । जलोके मार्गमें जो ( रुकावटे ) थी उनको हटा दिया । आपने अहीका वध किया । और व्यंसको अपने शक्तिसे मार डाला । २

आपने अपने वज्रसे<sup>३</sup> और सामर्थ्यसे शत्रुओंके<sup>४</sup> दश नगोंका नाश किया । आपने शत्रुकी सेनाको पैरसे कुचल डाला । हे वज्रधारी इन्द्र, आप तो सर्वजही है । शत्रुपर आप अपना अस्त्र<sup>५</sup> छोड़िये; और अपने उपासकोंके बल और वैभवको बढ़ाइयें । ३

हे वज्रधारण करनेवाले और उदार इन्द्र, जब आपने दस्युओंपर ( गक्षस अथवा दुष्ट लोग ) चढ़ाई की उस समय आपकी कीर्ति बहुत बढ़ गयी । नाम कमानेके<sup>६</sup> कारणही आप जैसे उदार देवकी सब उपासक प्रशंसा करते हैं । ४

इन्द्र-देवका बहुत बड़ा हुआ सामर्थ्य अवलोकन कीजिये, इन्द्रकी शक्तिपर भरोसा रखिये । इन्द्रदेवने ही धेनु, अश्व, और वनस्पतियोंको प्राप्त किया, और जलका मार्ग मुक्त करके आपही अरण्यका स्वामी बन गये । ५ (१६)

मार्गमें रुकावट डालनेवाले चोरोंका आप पहिले आदर करके उनका धन हूराण करते हैं । हमारी तरफ आनेवाले इन्द्र, आप सामर्थ्यवान्, बलशाली, और सत्यशक्तियुक्त हैं । आपके लिये सोमरस तैयार करना चाहिये । ६

२ स. पृथिवी धारयत् पप्रयत् च । वज्रेण हत्वा अपः नि. ससर्ज । अहि अहन् रौहिण अभिनत्, मघना मिः व्यस अहन् ।

मां,<sup>३</sup> ओज श्रद्धान पुर विभिन्दन् दासी<sup>४</sup> वि अचरत् । वज्रिन्, विद्वान् दस्यवे हेति अत्ये<sup>५</sup> यै सह युम्न वर्धय ।

४ वज्री मृनुः दस्युहत्याय उपप्रयन् श्रवसे यत् नाम दवे ह तत् कीर्तय नाम मघवा इमा मानुषा दुर्गानि ऊचुर्पे<sup>६</sup> विभ्रत् ।

५ तत् आरय इद भूरि पुष्ट पश्यत । इ दस्य वीर्याय श्रत् धत्तन । स गा अविन्दत्, स अश्वान् अविन्दत्, स ओषधी, स अप, स दगानि ।

६ य शर परिप थी इव अयज्वन वेद, आहत्य विभजन्, एति, भुरिकर्मणे, वृषभाय, वृष्णे, सत्य-  
दुष्माय मोम सुनवाम ।

हे इन्द्र, सोम<sup>१</sup> हुए अहि (राक्षसको) अपने बमसे जगाया। सचमुच आपने यह बड़े जीवनाका<sup>२</sup> ज्ञान किया। जब आप आनन्दित होते हैं तब सब देव और पक्षीभी आनन्द मनाते हैं।

७

हे इन्द्र, जब आपने शुष्ण, पिशु, कुवय, और वृत्र, आदि (राक्षसोंका) वध किया तब प्राणन जम्भर (गलस) के नगरका नाश किया। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थना सुनकर सम्मति देवे।

८ (१७)

### सुक्त १०४.

॥ ऋषि-आत्रिरम कुत्स । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र-देव, आप इस आसनपर विराजमान हूजिये। यह आसन<sup>१</sup> आपके लिये सिद्ध किया गया है। जिस प्रकार अश्व आनन्दसे हिनहिनाता है उसी प्रकार (आनन्दसे) आप इसका स्तितार कीजिये। पक्षीकी तरह वेगवान् घोड़ोंको (अश्व) छोड़ दीजिये। चाहे रात हो या दिन हो, सोमरस पीनेके लिये आपके अश्व आपको चाहे जहाँ ले जाते हैं। अश्व उनको छोड़ दीजिये।

१

वे पुरुष अपनी रक्षाके लिये इन्द्रकी ओर दौड़े, क्या आप (इन्द्र) उनकी ओर नहीं जायेंगे? सब देव मिठाकर दुष्ट शत्रुओंका क्रोध शान्त<sup>२</sup> करे। और हमारी जातिके लोगोंको कल्याणका मार्ग दिखलावे।

२

दृसरेके अन्त करघानो जाननेवाला (कपटी) कुवय (राक्षस) ने जजमे चारों ओर फेन फाला दिया। कुवयका स्थाया तो बेमस दूधसे नष्टाती है, सिन्धा नदीके जलमे (भवरमे) वे लोगों को लाया सर आवे।

३

अष्ट० १ अध्या० ७ व० १८, १९ | ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०४ ]

आयु (राक्षस) ऊपर आकाशमें था । उसका नाभिस्यस्त इतना बड़ा था कि जिससे सब आकाश व्याप्त<sup>४</sup> हुआ था । इन्द्रने अपने जोरसे उसको तोड़ डाला और अपना अतिकार उसके ऊपर प्रस्थापित किया । आयु (राक्षस) की धीया अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्निआने उस को (अपने पतिको) जलमें छुपा दिया । ४

आयु राक्षसका मार्ग (इन्द्रको) दिखाई देने लगा । जिस वेगसे वी अपने घरकी ओर जाती है उसी तरह इन्द्र उस राक्षसकी ओर (मारनेके लिये) दौड़ता<sup>५</sup> है । हे उदार इन्द्र देव, हमे किसीसे बाधा न हो जाय । जिस तरह विषयासक्त पुरुष<sup>६</sup> अपनी सम्पत्ति उड़ाता है उसी तरह हमारा त्याग न कीजिये । ५ (१८)

हे इन्द्र, सूर्य, उदक, हमें पवित्र बनाइये और हमें उन्नतिका लाभ हों । आप इती लिये हमारे पास रहिये । हमने जो धन इकट्ठा किया है उसका नाश न होवे । आप शक्तिकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही हैं । आपहीपर हमारा भरोसा है । ६

हे इन्द्र, मैं पूर्ण रीतिसे यह समझता हूँ कि मेरा आपहीपर पूर्ण विश्वास है । आप सामर्थ्यवान् हैं; इस लिये हमे ऐसी स्फूर्ति दीजिये जिससे हमे सम्पत्ति मिले । आपके भक्तगण आपको पाचारण करते हैं । हे (इन्द्र-देव) जब हमे भूक लगता है तब हमे अन्न<sup>७</sup> और जल<sup>८</sup> दीजिये । हमे रहनेके लिये ऐसा घर दीजिये जिसमे सम्पत्तिकी कमी न होवे । ७

हे इन्द्र, हमारा वध मत कीजिये, हमारा त्याग मत कीजिये । हे सामर्थ्यवान् उदार (इन्द्र), गर्भमे रहनेवाले सन्ततिका<sup>९</sup> नाश न कीजिये । ऐसे अण्डको मत फाँड डालिये जिससे एकदम कई बच्चे उत्पन्न<sup>१०</sup> होते हैं । ८

४ उपरस्य आयो नाभि युयोप<sup>४</sup> पूर्वाभिः प्र तिरते । शूर राष्ट्रि । अजसी कुलिशी, वीरपत्नी, पय विन्वाना भरते ।

तु दस्यो रया नीया प्रति अदर्शि, सदन जानती ओक. अच्छ न, गात, अध, मघवन्, नः मा इत्, निष्पपी<sup>५</sup> मघा<sup>६</sup> इव, न मा परमा परा दा ।

इन्द्र, सः त्व नः सूर्ये, सः अण्डु, अण्णात्वे, जीवन्तसे आ भज । न अन्तरा भुर्ज मा आ रिरिप ७ इन्द्रियाय श्रद्धित ।

८ अथ ते अरमै श्रत् अवायि मन्ये; वृषा महते वनाय चोदरव । पुरुहूत इन्द्र, न क्षुध्यद्रव, वय आयुति,<sup>९</sup> अकृते योनौ, मा दा ।

९ इन्द्र न मा वनी, मा परा दा न प्रिया योजनानि ता प्र मोषी मघवन् शक, न आप्ज<sup>१०</sup> मा निः १० । सहजानुपाणि<sup>११</sup> न पात्रा मा भेत ।

मण्ड० १ अध्या० ७ व० १९,२० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

हे इन्द्र, आप ड़धर आईये । यह बात सबको विदितही है कि आप सोमरस बहुत चाहते हैं, और इसी लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा गया है । आप उसको पीजिये और आनन्द मनाइये । आप बहुत जगह व्याप्त कीजिये । इस ( सोमरस ) का पान कीजिये । आप सामर्थ्यवान् होनेके कारण हम आपकी सहायता चाहते हैं । पिताकी नाई हमारी प्रार्थना सुन लीजिये ।

६ (१६)

सूक्त १०५.

॥ ऋषि-आज़िरस कुत्स । देवता-अग्नि ॥

चन्द्रमा जलमें ( अन्तरिक्षमें ) दौड़ता चला जाता है । यह सुन्दर पड़ोंका पक्षी आकाशमें दौड़ता है । उसके पद सुवर्णके बने हुए हैं । आकाश में चमकनेवाली विजलीको भी आपका ध्यान विदित नहीं है । हे शुलोक और भूलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १

अर्थकी इच्छा करनेवालेको धन मिलता है, और स्त्रीको उसके स्वामीकी भेट होती है । जब दोनों मिलते हैं तब जल उत्पन्न होता है । इस प्रकार उत्पन्न हुआ जल एक दूसरेको देता है, और इस तरह दोनोंको आनन्द होता है । हे शुलोक और पृथिवीलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । २

हे ( इन्द्र ) देव, यह तेज स्वर्गसे भी गिर न जाय । हमारा कल्याण करनेवाला सोमरस अष्टा नदी है वहा हमे कभी मत ले जाइये । हे शुलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थना सुनिये । ३

मे अन्तिम यज्ञसे एक प्रश्न पूछता हू । आप देवोंके दूत होनेके कारण आप उसका उत्तर दोगे । प्राचीन कालका राज्य कहा है ? वह किस नये मनुष्यके पास चला गया ? हे शुलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । ४

१ अर्थात् आग्नि । त्वा सोमदाम आहु, अथ सुत ; तस्य पित्र । उरन्वन्वा. जटरे आ वृषस्व । द्रव्यमानः पता रत्नम शशुदि ।

२ अर्थात् अथु जत सुवर्ण दिवि जा धावते । हिरण्येनस्य विभुत व पद न विन्दन्ति । सोमानी न जस्य पित ।

३ अर्थिन ये जस्य रत्नं ज्ञा, जज्ञा पते आ हुवते । इन्द्र पत्र सुजते, परिदात्र रत्नं वृहे ।

४ देवो, यत्र रथ दिवं परे नो सु जस्य पादि । सन्नुव सोमस्य रत्ने कदा चन मा भूत् ।

४ अर्थिन पत्नं हुवते । तं सुतं ज्ञा वि तेजते । इन्द्रे जत जस्य अ तत्र न्नुत्न. तत्र दिनात् ।

अष्ट० ? अध्या० ७ व० २०२१, ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

दुलोकके इन तीनों देदीप्यमान् प्रदेशोंमें रहनेवाले देव, आपका सत्य कहा है? आप असत्य किसको कहते हैं? पुरागो कालमें जो आहुति मैंने अर्पण की थी वह कहा चली गई? हे दुलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ५ (२०)

आपके सत्यकी रक्षा कौन करता है? वरुणदेवकी (अमृत) दृष्टि कौनसी है? श्रेष्ठ अर्यमाके मार्गसे चलते हुए हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोको हम किस प्रकार मार डाल सकते हैं। हे दुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ६

जो मैं पहिले सोमरस सिद्ध करनेवाला था वही मैं स्तोत्र गानेवाला हूं। जिस तरह भेडिया हरियाको खा जाता है उसी तरह चिन्ता मुझे खा जाती है। हे दुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ७

जिस तरह दो स्त्रियां अपने पतिको सताती हैं उसी तरह मेरी पतली हड्डियां मुझे दोनों तरफसे सताती हैं। हे सामर्थ्यवान् देव, मैं तुमारा स्तुति गानेवाला हूं। जिस तरह चूहा जुलहाके सूतको खा जाता है उसी तरह यह चिन्ता मुझे खा जाती है। हे दुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ८

सूर्यके सात रङ्गके किरण सब दूर फैले हुए हैं। इनमें मेरी नाभि भी खुली हुई दिखाई देती है। आप्त्य-त्रिता-को यह बात विदितही है। अपने सगेदारोसे वह मिलनेके लिये प्रार्थना करता है। हे दुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ९

५ अमी ये देवा. दिव त्रिपु रोचने आ स्यन, व ऋतम् कत्, अमृत क्त्? व. प्रत्ना आहुति क?

६ व ऋतम् धर्णसि कत्? वरुणस्य चक्षण कत्? महः अर्यम्णः पथा दृढ्य कत् अति क्रामेम ६

७ य पुरा सुते दानि चित् वदामि स अह अस्मि । त मा, वृक. तृष्णज मृग न, आध्य व्यन्ति ।

८ सपत्नी. इव पशव. मा अजित स तपन्ति । शतक्रतो ते स्तोतार मा आध्य शिश्रा न दि अदन्ति ।

९ अमी ये सप्त रशाय तत्र मे नाभिः आतता । आप्त्य त्रित तत् वेद । स जामित्वाय रेभति ।



अष्ट० १ अध्या० ७ व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

जो पाच वसवान् देव विस्तीर्या शुलोकके बीचमें विराजमान हुए हैं वे मेरी स्तुति सुनकर देवगणकी ओर लौट गये। हे शुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १०(२१)

शुलोकके अन्तिम सीमापर सुन्दर पङ्क्तिके किरणरूपी पक्षी विराजमान हुए हैं। आकाशरूपी विस्तीर्या उदकके बीचमें तैरनेवाले भेड़ियोंको वे मार्गसे निकाल देते हैं। हे शुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ११

हे देव, यह स्तोत्र भक्तोका कल्याण करनेवाला प्रशंसा करनेयोग्य और विलकुल नया है। ये महानदिया अपने प्रवाहोके साथ सत्य और सत्ययुक्त नीतिको दूरतक ले जाती हैं; और सूर्य (अपने प्रकाशके साथ) सत्यबलको चारों ओर फैलाता है। हे शुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १२

हे अग्नि-देव, आप देवोके सगेदार भाई हैं। आपकी सब लोक प्रशंसाही करते हैं। जिस तरह आप मनुष्यके यज्ञमें विराजमान<sup>१०</sup> होते हैं उसी तरह हमारे घरमें आप विराजमान हूजिये। आप प्रज्ञाशील हैं; इसलिये हमारा यज्ञ देवोकी ओर पहुंचाइये। हे शुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १३

सब देवोमें अग्नि-देव अत्यन्त बुद्धिवान् और प्रज्ञाशील है। जिस तरह मनुके यज्ञमें आप स्थित होते हैं उसी तरह हमारे घरमें स्थित होकर हमारे हवि देवोकी ओर पहुंचाइये। क्यों कि, हवि पहुंचानेका<sup>११</sup> काम आपहीका है। हे शुलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १४

१० वे अनी पच उक्षणं मह. दिव. मध्ये तस्यु प्रवाच्य सप्रोचीनाः देवना नि वयतुः नु।

११ एतं सुपर्णा दिव आरोधने मध्ये आसते। ते यह्वती अपः तरन्त वृक पथः सेधन्ति।

१२ देवा, तत् उक्थ्य हित सुप्रवाचन नव्य। सिन्धव ऋत अर्षन्ति, सूर्यः सत्य ततान।

१३ अग्ने, देवेषु तव त्यत् उक्थ्य आप्य अस्ति। स विदुष्टरः मनुष्वत् न आ सत्त. देवान् यक्षि।

१४ देवेषु विदुष्टर नेधिर हांता अग्नि देव मनुष्वत् आ सत्तः देवान् अच्छ हव्या सुपूदति<sup>११</sup>।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १५ सू० १०५

स्तुति ( स्तोत्र ) करनेकी स्फूर्ति वरुण देवही देता है । अच्छा मार्ग<sup>१५</sup> बतानेवाले ज्ञानी वरुणकी हम प्रार्थना करते हैं । भक्तोंके हृदयको आपही प्रकट करते हैं । सचमुच नयी नीति ( स्तुति ) का उदय होवे । हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये १५(२२)

आकाशमें आदित्यका जो नया मार्ग है वह प्रशंसा करनेयोग्य है । हे देव, आप उस मार्गका उल्लंघन नहीं कर सकते । और मनुष्य उसको देख भी नहीं सकता । हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १६

जब त्रित कूबेमे गिरा<sup>१३</sup> तब उसने अपनी रक्षाके लिये देवोंको बुलाया । बृहस्पतिने संकटसे<sup>१६</sup> उसको बचा लिया, और उसकी प्रार्थना सुनी । हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १७

जब मैं मार्गसे चलता था तब एक लाल रंगके भेड़ियाने मुझे देखा और जिसके पीठमें<sup>१८</sup> दर्द है ऐसे बदर्शकी तरह धीरे धीरे<sup>१६</sup> उठा और मेरे पीछे चलने लगा । हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १८

इस स्तोत्रके द्वारा इन्द्रकी कृपा हमें प्राप्त होवे । उसके कारण हम अपने वीरोंकेसाथ निजको संकटसे बचा लेंगे । भित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक आदि सब देवताएं हमारी प्रार्थनापर सम्मति देवे । १९ (२३) (१५)

१५ वरुण ब्रह्म कृणोति । त गणुविद<sup>१५</sup> ईमहे । हृदा मति ऊर्णोति । कृत नव्यः जायतां ।

देवा, असौ य आदित्य दिवि पन्थाः प्रवाच्य कृत स न अतिक्रमे । मर्तासि, त न पश्यथ ।

१७ कूबे अवहित<sup>१३</sup> त्रित ऊतये देवान् हवते । बृहस्पति अदूरणात्<sup>१६</sup> उरु कृण्वन् तत् शुश्राव ।

१ पया यन्त मा अक्ष्ण वृकः सन्कृन् ददर्श हि । पृष्ट्यामयी<sup>१८</sup> तथा इव निचाय्य<sup>१६</sup> उत् जिहीने ।

१९ ए१, आशुषेण इन्द्रवन्त सर्ववीर्यं वयं वृजने अभि स्याम ।

अनुवाक १६.

सूक्त १०६.

॥ ऋषि-आजिरस कुत्स । देवता-इन्द्र ॥

हम अपनी रक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदिति को बुलाते हैं । हे उदार देव, आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) घुरे<sup>१</sup> मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये । १

हे देव, आपहीके लिये हम यज्ञ करते हैं, इस लिये आप इधर आईये । हे देव, दुष्ट लोगोका नाश करके हमारा कल्याण कीजिये । हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति हैं । हे उदार देव, आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) घुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये<sup>२</sup> । २

स्तुति करने योग्य हमारे पितर हमारी रक्षा करे । नीतिनियमनसे चलेनेवाली और देवोको जन्मदेनेवाली दोनो देवीएं हमारी रक्षा करे । हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति हैं । आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) घुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये । ३

सामर्थ्यवान् पूषा-देव प्रशंसा-योग्य है । आपहीके पास वीर पुरुष रहते हैं । इसलिये हम आपकी स्तुति करते हैं । हे उदार देव, -प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति-आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) घुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये । ४

हे बृहस्पति-देव, मनुष्यका कल्याणकारी सौखा आपहीकेपास है । इसलिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं । हे उदार देव, -प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति-आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) घुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये । ५

१ इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि भारत शर्ध, अदिति, जतये हवामहे । सुदानव वसवः, दुर्गात् रथ न रवश्चस्मात् अहस न नि पिपर्तन ।

२ आदित्या, सर्वतातये ते आ गत । देवा वृत्रतूर्येषु शशुव. भूत<sup>३</sup> ।

३ सुप्रवाचना पितर न अक्नु, उत ऋतवृथा देवपुत्रे देवी ।

४ वाजिन नराशस इह वाजयन् क्षयद्वीर पूषण सुत्रै ईमहे ।

५ बृहस्पते, सद इत् नः सुग कधि । यत् ते यो मनुर्हित श तत् ईमहे ।

अष्ट ० १ अ० ० ७ व० २४, २५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० १०७

ऋग्वेद गिरे हुए कुत्स ऋषिने अपनी रक्षाके लिये वृत्रका वध करनेवाले सामर्थ्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना की । हे उदार देव,—प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति—आप जिस तरह रथको ( गाड़ीको ) कुं मार्गसे बचा लेते है उसी तरह हमें संकटसे बचाइये ।

अदिति—देव सब देवोंके साथ हमारी रक्षा करे, और हमारा रक्षा करनेवाला देव हमारी उपेक्षा न करके हमारी रक्षा करे । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और ध्रुवोक्त हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवे ।

### सूक्त १०७.

॥ ऋषि—आदितिस कुत्स । देवता—इन्द्र ॥

यज्ञ देवोंकी कृपा<sup>१</sup> सम्पादन करनेके लिये हमें सिद्धि देनेवाला होने । हे अदितिदेव, हमें नौख्य अर्पण कीजिये । आपकी कृपासे हमारी रक्षा<sup>२</sup> होती है । इस लिये आप भक्तगणोपर ( हमपर ) कृपा कीजिये ।

अंगिरसने अपने स्तोत्रोंके द्वारा देवोंकी स्तुति की है । इसलिये वे देव हमपर कृपा करें । इन्द्र—देव, अपने सामर्थ्यकेसाथ मरुद्—देव अपने मरुद्गणोंकेसाथ, और अदिति—देव अपने अद्रित्य गणोंकेसाथ हमें सौख्य अर्पण करें ।

इन्द्र—देव हमारा स्तुतिका प्रेमसे स्वीकार करें । वरुण, अर्यमा, सविता, देवमां हमारा स्तुतिका स्वीकार<sup>३</sup> करें । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और ध्रुवोक्त हमारा प्रार्थनापर ध्यान देवे ।

१ काटे निवाह्य कुत्स. वृत्रहन शचीपति इन्द्र उतये अत्त ।

७ देवी अदिति देव न नि पातु । त्राता देव अप्रयुच्छन् त्रायता ।

१ यज्ञ देवाना मुन्न प्रति एति । आदित्यास, मृळ्यन्त जवत । या अहो चिन् वरिवोवित्तरा अगः  
मुमति अर्वाची आ वृत्वात् ।

२ अनिरया मामगि । रतृदमाना देवा अवसा न. उप आ गगन्तु । इन्द्रिये इन्द्र, मरुद्रि मरुत,  
आदिते अदिति न गर्भ धमत् ।

३ तन् न इन्द्र, तन् वरुण, तन् अर्यमा, तन् सविता चन. वात् ।

सूक्त १०८.

॥ अग्नि-अरिस्त इत्युत । देवता-इन्द्राग्नि ॥

हे इन्द्र और अग्नि-देव, जिस आश्चर्यकारक रथमें<sup>१</sup> बैठकर आप जगत् विश्वका अमलोकन करते हैं उस रथमें आप दोनों साथ ही साथ आरुह्य होकर यहाँ आइये और तैयार किये हुए सोमरसका प्राशन कीजिये । १

हे इन्द्र और अग्नि-देव, जिस तरह यह सब जगत् वितीर्य रूपसे नीचे<sup>२</sup> तक फैला हुआ है उसी तरह इस सोमरसका आप यथेष्ट प्राशन कीजिये और उससे आपका आनन्द होवे । २

सद्युत आपने अग्नी तरह नाम पाया है । वृत्रका नाश करनेवाले आप (सचमुच) अच्छा काम करनेवाले हैं । इन्द्रजिये (इस रथमें) अग्नी तगइसे आप विराजमान् कीजिये । हे तानध्वेवान् इन्द्र और अग्नि, आप तामध्ये प्रातः करनेके लिये सोमरसका पान कीजिये । ३

हे इन्द्र और अग्नि-देव, अतिको प्रदीप्त करनेके बाद आप अलंकारसे विभूषित<sup>३</sup> होते हैं । आपके लिये यह चमस (हविर् अर्पण करनेके लिये) ऊपर उठाया जाता है, और आप वर्मान् पर विराजमान् होते हैं । यह सोमरस तैयार होते ही हम पर कृपा करके इन्द्र आइये । ४

हे इन्द्र और अग्नि-देव, (आज तक) आपने जितना वीरनाश काम किया और जिस तरह अपना लक्ष्य प्रकट किया और प्राचीन कालमें जितना मित्रताका काम किया उन सब (अर्थों) पर ध्यान देकर लिख किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ५ (२६)

१ इन्द्राग्नि, य वा चित्रतन रथ विश्वानि भुवनानि अरिनेष्ट तेन सत्यं नरिधवासा आ यात अथ उत्तरं सोमस्य पियत ।

२ इन्द्राग्नि चावत् इदं विश्वं वृत्रं उत्सृजन्तं वरिन्ता गन्तार अस्ति तातान् अयं सोमः पातवे अर्हन्तु वृत्रनाशं गन्ते अर अस्तु ।

३ सद्युत इन्द्र नाम वजाये हि उत वृत्रदन्तौ तग्नीनीना स्थ वृषणा इन्द्राग्नी, सध्वचा नियय वृषण सोमस्य आ वृषणा ।

४ इन्द्राग्नि अग्नि नमिद्वेषु अजज्जना यनहृता, वहिं तिरितागणा तीत्रं सोमै परिषिक्तभि, सोम-नवाय अतार्ह वा जत ।

५ इन्द्राग्नि सानि र्षिदोषि अग्नि हवापि उत वृष्यन्ति नवधु वा ता पतानि शिवानि सध्वना, तेभिः सुकस्य सोमस्य ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ मू० १०८

पहिले पहल जब हम आपके दर्शनकी इच्छा करते है और हमारे उपासकोके द्वारा आपको सोमरस अर्पण किया जाता है तब हमारी सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर आपको हमारी ओर आना चाहिये । आप तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ६

हे यज्ञ करने-योग्य इन्द्र और अग्निदेव, जब आप अपने मन्दिरमे अथवा विद्वान् भक्तके घरमे अथवा राजाके यज्ञमे आनन्द मनाते हुए बैठते है तब हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर यहा आइये और सोमरसका पान कीजिये । ७

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप यदु, तुर्वश, द्रुहु, अनु अथवा पूरुओके घरमे बैठते है तब भी हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर आइये और सोमरसका पान कीजिये । ८

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके नीचेके प्रदेशमे रहते है अथवा बीचके प्रदेशमे रहते है तब भी हे सामर्थ्यवान् देव हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ९

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप स्वर्गमे, पृथिवी और पर्वतपर अथवा वनरूपिनि वा उदकमे रहते है तब भी हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । १०

६ यत् प्रथम वा वृणानः अत्रव “अय सोम. न. अशुरैः” विह्व्यः, ता सत्या श्रद्धा अभि आ यात हि ।

यजत्रा इन्द्राग्नी, यत् स्वे दुरोणे, यत् ब्रह्माणि राजनि वा मदय, अत, वृषणौ, परि आ यात हि ।

इन्द्राग्नी, यत् यदुषु तुर्वशेषु, यत् द्रुत्युषु, अनुषु, पूरुषु स्वः, अतः, वृषणौ, परि आ यात हि ।

९ इन्द्राग्नी, यत् अवमस्या पृथिव्या, मध्यमस्या उत परमस्या स्वः, अतः, वृषणौ, परि आ यात हि ।

१० इन्द्राग्नी, यत् परमस्या पृथिव्या, मध्यमस्या उत अवमस्या स्वः, अतः, वृषणौ परि आ यात हि ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २७, २८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड १ अनु० १६ मृ० १००

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके ऊपरके, बीचके और नीचेके, प्रदेशमें रहते तब भी वहाँसे हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी और आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ११

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप सूर्योदयके समय स्वर्गलोकके बीचमें बैठकर आनन्दमें हविका स्तीर करते हैं तब हे सामर्थ्यवान् देव, इधर आइये और तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये । १२

हे इन्द्र और अग्निदेव, इस तरह सोमरसका प्राशन करके हमारे लिये सब वैभव जीन ले आइये । हमारी प्रार्थनाएँ मित्र, वरुण, तथा आदिति, सिन्धु, पृथिवि, और शुक्रलोक-ध्यान और सम्मति दें । १३

मूक्त १०९.

॥ ऋषि-अङ्गिरस कुत्स । देवता-अग्नि ॥

मनमें धनकी इच्छा करके मैं भाई और सगेदारोको सहायताके लिये दूगढ़ों<sup>१</sup> लगा । किन्तु हे इन्द्र और अग्निदेव, आपकी इच्छा मुझे अनुकूलही है । इस लिये भक्तिपूर्वक यह स्तोत्र मैं आपके सन्मानार्थ गाता हूँ । १

मैंने सुना है कि आप सचसुच साला<sup>२</sup> और गुणहानि जमाईकी अपेक्षा उदारतासे अधिक धन वाटते हैं । इस लिये हे इन्द्र और अग्नि-देव, आपको सोमरस अर्पण करके मे यज्ञ नया स्तोत्र बनाता हूँ । २

११ इन्द्रमी, यत् दिवि स्थः, यत् पृथिव्या, यत् पर्वतेषु, ओषधीषु, अप्सु, अतः, वृषणौ परि आ यात हि

१२ इन्द्रानी, सूर्यस्य उदिता यत् दिवः मध्ये स्वधया मादयेधे, अतः, वृषणौ, परि आ यातं हि ।

१३ इन्द्रामी, एव सुतरय पपिवासा अत्मभ्यं धनानि सजयत ।

१ इन्द्रानी, मनसा वत्यः इच्छन् शसः<sup>१</sup> उत वा सजातान् वि अत्य हि । युवत् प्रमतिः मय्य अन्या न अस्ति । सः वाजयन्तीं धिय वा अतक्षम् ।

२ स्वालात् उत वा विजानातु ध वा भूरिदावत्तरा अश्रव हि । मध, इन्द्रामी, युवभ्या सोमस्य प्रयती नव्य स्तोत्रेन जनयामि ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० २८, २९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० १०९

इन्द्र और अग्नि की कृपाके कारणही सामर्थ्यवान् पुरुष अपने वंशका<sup>३</sup> नारा न होनेकी प्रार्थना करते है, और अपने वंशकी, सन्ततिकी वृद्धिकी इच्छा करते हैं। (इसका उदाहरण देखिये) सोमरस तैयार करनेके लिये लाये हुए पाषाण ( पत्थर ) पासही रखे हुए ( दिखाई ) देते है। ३

हे इन्द्र और अग्नि-देव, यह दिव्य सोमरसपात्र आपको सन्तुष्ट करनेके लिये बड़े आनन्दसे सोमरस निकालकर स्वयं धारण करता है। हे अश्विनी-देव, आपके मङ्गलदायक और सुन्दर हाथ आगे करके बड़े जोरके साथ हमारी ओर दौड़िये। जजमे सोमरस रखकर उसके ऊपर मधुकी वर्षा कीजिये। ४

हे इन्द्र और अग्नि-देव, मैंने यह सुना है कि दुष्ट लोगोंका नाश करनेके काममें और धन अर्पण करनेके अवसरपर आप ( सबसे ) अधिक अधिकार<sup>५</sup> चलाते हैं। हे बहुत जगह सञ्चार करनेवाले देव, इस यज्ञमे कुशासनपर बैठकर सोमरससे सन्तुष्ट ब्रूजिये। ५ (२८)

हे इन्द्र और अग्नि-देव, युद्धके लिये बुलानेवाले<sup>६</sup> पुरुषोंकी अपेक्षा, पृथिव गुजोक, महानदी, पहाड़ोंकी अपेक्षा और बचे हुए सब दूसरे लोगोंकी अपेक्षा आप श्रेष्ठ हैं। ६

हे इन्द्र और अग्नि-देव, आपके बाहु वज्रकी तरह मजबूत हैं। हमारी उन्नति कीजिये, हमें सिखलाइये, और अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा कीजिये। सचमुच वे, येही सूर्यके किरण है जिनके स्वरूपमे<sup>७</sup> हमारे बाप दादा जा मिले ( मग्न हुए )। ७

३ रस्मीन्<sup>३</sup> मा छेय इति नाधमानाः पितृणा शचीः अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्या क मदन्ति । ता हि अग्नी धिपणायाः उपस्थे ।

४ इन्द्राग्नी, देवी धिपणा युवाभ्यां मदाय उशती सोम मुनोति । अश्विना, तौ मद्रहस्ता सुपाणी जा , अप्पु मधुना पृक्त ।

५ इन्द्राग्नी, वृत्रहस्ये, वसुनः विभागे, युवां तवस्तमा<sup>५</sup> शुश्रव । प्र चर्षणी, तौ अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आराय तस्य मादेयेया ।

६ इन्द्राग्नी, पृतनाह्वेषु<sup>६</sup> चर्षणिभ्यः, पृथिव्याः, दिवः च प्र रिरिचाथे । महित्वा सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र, अन्या विश्वा भुवना अति ।

७ वज्रवाहु इन्द्राग्नी, अस्मान् आ भरत, शिक्षतं, शचीभिः अवत । इमे तु ते सूर्यस्य रदमय, वेभिः नः पितरः सपित्व<sup>७</sup> आसन् ।



शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले और ( हाथोमे ) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र-देव, हमें अच्छा मार्ग बताइये, हमारे हवियोंका स्वीकार कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये । हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और सुलोक सम्मति देवे । ८(२६)

मुक्त ११०.

॥ ऋषि-भाजिरस कुत्स । देवता-इन्द्र ॥

मेरा ( नियुक्त ) हुआ काम<sup>१</sup> समाप्त हुआ । वह काम मैं फिर करता हूँ । ( देखिये ) ऋभुओंका सन्मान करनेके लिये मैं मधुर स्तुति गाता हूँ । सब देवोंके उद्देश्य ( सोमरसका ) समुद्र भरा हुआ रखा है । हे ऋभुओ, “स्वाहा” शब्दका उच्चारण करके अर्पण किये हुए सोमरसका पान करके सन्तुष्ट हूजिये । १

जब अज्ञानसे मुक्त<sup>२</sup> हुए मेरे पुराणे सगेदार भाईयोने हवियोंकी इच्छा<sup>३</sup> की तब वे उसको ( प्राप्त करनेका ) उद्योग करने लगे । उस समय सुधन्वाके पुत्र अपने पराक्रम और श्रेष्ठताके कारण सविता देवके रथमें जा सके । २

जिस सविता देवका यश गुप्त नहीं रह सकता उस ( देवता ) का वर्णन करनेका परिश्रम जब आप करते हैं तब सवितादेव आपको अमरत्व अर्पण करते हैं । उदार ( त्वष्टा ) देवका पीनेका जो रस था उसके आपने चार विभाग ( चमस ) बनाये । ३

सत्कर्मोंका उत्साहसे आचरण करनेवाले और देवोंकी<sup>४</sup> उपासना करनेवाले ( ऋभु ) मनुष्य होनेपर भी अमरत्वको जा पहुंचे । सुधन्वाके पुत्र ऋभु, सूर्यका दर्शन मिलने योग्य हुए । उनकी योग्यता एक वर्षमें इतनी बढ़ गयी कि सब लोग उनकी स्तुति गाने लगे । ४

८ पुरदरा इन्द्राग्नी, अस्मान् शिक्षत, भरेषु अवतं ।

१ मे अप<sup>१</sup> तत तत् ऊ पुनः ताथते । स्वादिष्टा धीतिः उचथाय शस्यते । अय इह विश्वदेव्यः समुद्रः, ऋभव स्वाहाकृतस्य स तृणुत ऊ ।

२ यत् अपाकाः, मम के चित् आपयः, प्रांचः आभोग्य<sup>२</sup> इच्छतः प्र ऐतन, सौधन्वनासः, चरितस्य भूमना, दाशुष सवितु गृह अगच्छत ।

३ यत् अगोह्य श्रवयन्त ऐतन तत् सविता वः अमृतत्व आ असुवत् । त्य चित् असुरस्य भक्षण चमस एक सन्त चतुर्वय अकृणुत ।

४ शमी तरणित्वेन विष्टी<sup>३</sup> वाघत. मर्तासः सन्तः अमृतत्व अनशु सौधन्वनः सूरचक्षस ऋभव सवत्सरे धीतिभि स अपृच्यन्त ।

अष्ट० १ अध्या० ७ व० ३०, ३१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० ११०

देव समुदायमें अपनी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले और उत्कृष्ट यश<sup>५</sup> प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ऋभुओंकी मनुष्यजातिने स्तुति की। जिस तरह खेतका क्षेत्र नापा जाता है उसी तरह ऋभुओंने अपने तेज हथियारसे<sup>६</sup> खुला हुआ यज्ञपात्रका मुख<sup>७</sup> नाप लिया। ५(३०)

ऋभुओंकी श्रेष्ठतापर ध्यान देकर अन्तरिक्षमें रहनेवाले वीरोको हम जिसतरह चमसोसे धी अर्पण करते हैं उसी तरह स्तोत्र<sup>८</sup> अर्पण करेंगे। अपने प्राचीन श्रेष्ठ पितरोके साथ अपने उत्साहकारी कार्योंके कारण वे जा मिले। उन्हें सामर्थ्य प्राप्त हुआ और वे दिव्य रजोलोकमें विराजमान हुए। ६

ऋभुही अपने सामर्थ्यके कारण स्फूर्ति पाया हुआ हमारा इन्द्र है। ऋभुही अपनी शक्ति और सम्पत्तिके कारण हमारा उदार दाता हुआ है। हे देव, आपकी कृपाके कारणही एकआध अनुकूल दिनपर भक्तिहीन लोगोकी सेनापर<sup>९</sup> हम विजय पावेंगे। ७

हे ऋभु, केवल चर्मसेही आपने सचमुच एक नयी गौ उत्पन्न की; और उसकी उसके बल्लड़ेके साथ भेट करवाई। हे सुधन्वाके पुत्र, आपने आश्चर्यकारक कामके कारण अपने बुढ़े मांतापितरोको जवान बनाया। ८

इन्द्र, पराक्रमसे लाभ होनेकी जहां सम्भावना हो ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा<sup>१०</sup> कीजिये। ( हे इन्द्र, ) आप ऋभुओंके साथ आकर हमें आश्चर्यकारक सौख्य प्रदान कीजिये। हमारी इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और गुह्योक्त ध्यान और सम्मति दें। ६ (३१)

५ अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः उपमं नावमाना . उपरतुताः ऋभवः तेजनेन<sup>१</sup> एक जेहमान<sup>२</sup> पात्र क्षेत्र इव वि मसु ।

ये ऋभव अस्य पितु सथिरे, वाज, दिव रज अरुहन्, अन्तरिक्षस्य नृभ्यः, वृचा इव घृत मनीषां, आ जुहवाम ।

ऋभु नः शर्वमा नवीयान् इन्द्र, ऋभु वाजेभि वसुभि वसु ददि देवाः, अवसा प्रिये अर्हणि नता पृत्सुती<sup>३</sup> अभि तिष्ठेम ।

८ ऋभव, चर्मण गा नि अपिशत, वर्ततेन सातर पुन स असृजत । सौधःवनास नर, स्वपस्यथा जज्ञी पितरा युवाना अकृणोतन ।

९ इन्द्र, वाजसातौ वजे नि अविष्टि, ऋभुमा चित्र राव आ दर्धि ।

सुक्त १११.

॥ ऋषि-आज़िरस कुत्स । देवता-इन्द्र ॥

ऋभुओं, आप ज्ञानी<sup>१</sup> होनेके कारण चतुर बन गये हैं। इन्द्रके लिये आपने सुन्दर रथ और वेगवान् अश्व उत्पन्न किये। आपने अपने (बुढ़े) मातापितरोंको नयी आयु प्रदान करके जवान बनाया और बल्लडेके लिये हमेशा पास रहनेवाली माता उत्पन्न की। १

हे ऋभुओं, आप सामर्थ्यवान् हैं; इसलिये यज्ञ याग करनेके लिये हमें आयु<sup>२</sup> प्रदान कीजिये। हमें बलवान् तथा पराक्रमी बनानेके लिये उत्कृष्ट सन्तति और यथेष्ट अन्न प्रदान कीजिये। अपने वीर पुरुषोंके साथ इस जगत्में आनन्दसे रहनेके लिये हमारी सेनामें स्फूर्ति (बल) उत्पन्न कीजिये। २

हे ऋभुओ, हमारी उन्नति कीजिये। हमारे रथोंकी और अश्वोंकी संख्या बढ़ाइये। युद्धमें हमें ऐसा यश प्राप्त होवे जिससे हमारे साथ हमारे शत्रु और हमारे अप्रिय सगेदार युद्धमें यदि सामने खड़े हों तो उनका भी पराजय<sup>३</sup> होवे। ३

ऋभुओका स्वामी इन्द्र, ऋभु, तथा वाज, मरुत् दोनों मित्र और वरुण और दोनों अश्विनी देवोंको सोमपान कराके हमारी रक्षा करनेके लिये हम बुलाते हैं। ४

ऋभु हमारा ऐसा लाभ<sup>४</sup> करा दे जिससे हमें हवि अर्पण करनेका सामर्थ्य प्राप्त होवे। युद्धमें विजय पानेवाले वाज भी हमारी रक्षा करे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवि और शुलोक हमारी प्रार्थनापर (ध्यान देकर) सम्मति देवे। ५ (३२)

१ विद्वानपसः, सुदृढ रथ तक्षन्; इन्द्रवाहा, वृषष्वसू हरी तक्षन्। ऋभवः, पितृभ्या युवत् वयः तक्षन् वत्साय सचाभुव मातर तक्षन्।

२ यज्ञाय न ऋभुमत् वय आ तक्षत, कत्वे दक्षाय सुप्रजावर्ती इष। यथा सर्वर्वरया विशा क्षयाम तत न शर्धाय इन्द्रिय सु धासथ।

३ नरः ऋभवः, अल्सभ्य साति, रधाय साति, अर्वते साति आ तक्षत। पृतनासु जामि अजामि सक्षणि जैत्री साति नः स महेत।

४ उतये ऋभुक्षण इन्द्र, ऋभून्, वाजान्, मरुत्; उभा मित्रावरुणा, अश्विना सोमपीतये नून आ हुवे। ते न. सातये, धिये, जिये न हिन्वन्तु।

५ ऋभुः भराय साति स शिशातु। समर्याजिन् वाज अस्मान् अविष्ट।

मुक्त ११२.

॥ ऋषि-अद्विस कुत्स । देवता-द्यावापृथिवी अग्नि अश्विन ॥

दुलोक और भूलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान<sup>१</sup> देवे, इस लिये हम उनकी स्तुति करने हैं। वह सुन्दर और देदीप्यमान् अग्नि हमारी इच्छा पूरी करे; इस लिये हम उनकी स्तुति करते हैं। हे अश्विन, जब आपकी स्तुति<sup>२</sup> करनेवाले लोग आपको सोमरस अर्पण करने हैं तब आप<sup>३</sup> अपने सामर्थ्यसे उनकी रक्षा करते हैं। उस सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये।

भक्तजन आपका स्मरण करके आपको सोमरस अर्पण करते हैं; इस लिये आप उनको अपनी उदारता दिखाकर धन दीजिये; मानो, वे आपकी राह<sup>४</sup> जो रहे है और इसी लिये वे आपके रथके पास इकट्ठे हुए हैं। हे अश्विनीदेव, अपने (भक्तोंकी) इच्छा पूरी करनेके लिये आप उनको ऐसे सामर्थ्य प्रदान कीजिये जिससे वे अपनी रक्षा कर सकें और अपने काममें लगे। उसी सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये।

आपका तेज दिव्य और अमर होनेके कारणही आप नये उत्साहके साथ सब लोगोंपर अधिकार चला सकते हैं। हे शूर अश्विन, आपने जिस सामर्थ्यसे (भक्तजनों)की रक्षा की उसी सामर्थ्यसे वञ्जर<sup>५</sup> गौके स्तनमें दूध उत्पन्न करते हैं। उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारी ओर आइये।

जिस सामर्थ्यसे<sup>६</sup> आपने चारों ओर सञ्चार करनेवाले और दो माताओंसे जन्म पाये हुए दोनों पुरुषोंको (वायु और अग्निको) शीघ्रगामी और सामर्थ्यवान् बनाया और जिस सामर्थ्यसे त्रिमन्तुकी ज्ञानी और बलवान् बनाया ऐसे सामर्थ्यके साथ हे अश्विन, आप हमारी ओर आइये।

जिन् सामर्थ्योंसे आपने बन्धनमें<sup>७</sup> कैसे हुए रेभको मुक्त किया, पानीमें गिरे हुए बन्दनको पानीके बाहर निकाल कर उसको प्रकाश दिखलाया और आपके चिन्तनमें मग्न हुए<sup>८</sup> की रक्षा की, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप हमारी ओर आइये। ५ (३३)

१ पूर्वचित्तये<sup>१</sup> द्यावापृथिवी, धर्म सुहृत् अग्नि यामन् इष्टये, ईळे । अश्विना, याभि भरे कर' अशाय' । जन्वय ताभि. ऊतिभि सु आ गत । २ युवो दानाय सुभरा असन्वत. वचन न रथ मन्तवे आ तस्यु' अश्विना, याभिः इष्टये कर्मन् धिय अवय ताभि ऊतिभि सु आ गत । ३ दिव्यस्य अमृतस्य मज्जना तासा विशा प्रशासने युव क्षयय नरा अश्विना, याभिः अरव' बेनु पिन्वयः ताभि ऊतिभि. सु आ गत ।

४ याभि परिज्मा द्विमाता तनयस्य मज्जना त्रुं तरणि विभूषति, याभिः त्रिमन्तु विचक्षणः अभजत् ताभि ऊतिभि अश्विना, सु आ गत । ५ अश्विना, याभि निमृत' रित' रेभ व दन अदभ्य दशे उऽ एरयत्, याभि. प्र सिपासन्त ऋषप्र आवत ताभि. ऊतिभि. सु आ गत ।

जिन सामर्थ्योंसे चलते चलते<sup>१</sup> घके<sup>२</sup> हुए अन्तकको आप उत्साहित करते हैं, दुःखसे मुक्त करके भुज्युको उत्साह दिलाते हैं, और कर्कन्धु और वय्यको आनन्द दिलाते हैं, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, हमारे यहा आइये । ६

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने शुचन्तिको धनसे भरा हुआ गृह<sup>३</sup> अर्पण किया, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अत्रिका दाह ( गर्मी ) शान्त किया, और जिन सामर्थ्योंसे आपने पृश्निगु और पुरुकुत्सकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये । ७

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अन्धे और लङ्गड़े<sup>४</sup> परावृजको देखनेकी और चलनेकी शक्ति प्रदान की और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अन्तरिक्षमें उड़नेवाले ( चिडिया ) पर्क्षीको नाश करनेवाले प्राणियोंसे बचा लिया उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये । ८

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने नदीयोंमें पूरा पूरा मधुर जल भर<sup>५</sup> दिया, जिनसे आपने वसिष्ठकी उन्नति की, और जिनसे आपने कुत्स्य, श्रुतर्य और नर्यकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहा आइये । ९

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अथर्वकुलमें उत्पन्न हुए धनवान् विष्पलकी भयङ्कर युद्धमें ( जिसमें सैकड़ों मनुष्य मरते हैं ) रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंसे, आपसे प्रेम<sup>६</sup> करनेवाले अश्वकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंकी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १० (३४)

६ याभि आशरणे<sup>१</sup> जसमान<sup>२</sup> अन्तक, याभिः अव्ययिभिः भुज्यु जिजिन्वधु<sup>३</sup>, याभि कर्कधु वय्य च जिन्वय ताभि. ऊतिभि , अश्विना सु आ गत ।

७ याभि शुचन्ति धनसा सुपसद,<sup>४</sup> तप्त घर्म अत्रये ओम्यावन्त, याभिः पृश्निगु पुरुकुत्स आवत्ताभि. ऊतिभि , अश्विना, सु आ गत ।

८ वृषणा अश्विना, याभि. शचीभि अन्ध श्रेण<sup>५</sup> परावृज चक्षसे एतवे कृय, याभि प्रसिता वर्तिका अनुचत ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

९ याभि मधुमत सिन्धु असधत्,<sup>६</sup> अजरौ, याभि. वसिष्ठ अजिन्वत्, याभिः कुत्स श्रुतर्य नर्य आगत, ताभि ऊतिभि , अश्विना, सु आ गत ।

१० अपव्यं धनसा विस्पला याभि. सहसमीद्वे आजौ अजिन्वत्, प्रेणि<sup>६</sup> अश्व्य वश याभि आवत्ताभि ऊतिभि , अश्विना, सु आ गत ।

हे उदार अश्विनीदेव, जिन भक्तरक्षक सामर्थ्योंसे आपने उशीजकुलम उत्पन्न हुए दीर्घ-श्रवाका व्यापार बढ़ानेके लिये मेघोसे मधुर ( जलोकी ) वृष्टि कराई, और जिन सामर्थ्योंसे आपकी स्तुति करनेवाले कक्षीवानोंकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आगमन कीजिये ।

११

हे अश्विनीदेव, जिन भक्त रक्षक सामर्थ्योंसे आपने रसा नामके नदीको जलप्रवाहसे बढ़ा दिया, जिन सामर्थ्योंसे बिना अश्वके जोते हुए रथकी विजय कराके आपने रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण त्रिशोक अपने गौको अपने घर ले जा सका उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये ।

१२

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण ) रक्षक सामर्थ्योंके कारण आप दूरके प्रदेशमें भी सूर्यकी चारो ओर घुम सकते हैं, जिन सामर्थ्योंके कारण जमीन का स्वामी बननेका यत्न करनेवाले मन्धाताकी रक्षा आप कर सकते हैं, और जिन ( सामर्थ्यों ) के कारण विद्वान् भागद्वजकी आप रक्षा करते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये ।

१३

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने शम्बरका वध करनेके समय श्रेष्ठ अतिथिग्वी, कशोजु और दिवोदासकी रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण ( शत्रुओं ) के नगरोका नाश करनेवाले त्रिदस्युकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये ।

१४

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने रोमरसका पान करनेवाले वज्र, उपस्तुत और खीका<sup>१</sup> लाभ करानेवाले कलिका सन्मान किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने व्यश्व और पृथिकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये ।

१५ (३५)

११ सुदानू अश्विना, याभि औशजाय दीर्घश्रवसे वणिजे कोश मधु अक्षरत्, याभिः स्तोतार रुधी । आवत ताभि, ऊतिभि, अश्विना, सु आ गत ।

१२ अश्विना, याभि उद्र क्षोडसा रसा पिपिन्वधु, याभि. अनश्व रथ जिघे आवत, याभि त्रिशोक लिय उदाजत, ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१३ अश्विना, याभि परावति सूर्य परियाय, क्षेत्रपत्येपु मगातार आवत, याभिः विप्र भरद्वज प्र आपत ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१४ अश्विना, याभि शम्बरहत्ये महा अतिथिग्व, कशोजुव, दिवोदास आवत, याभि पृथिये त्रसदस्यु आवत, ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

१५ अश्विना याभि विपिपान वज्र, उपस्तुत, वित्तजानि कलि दुवस्यध, याभि व्यश्व उत पृथि आवत, ताभि ऊतिभिः सु आ गत ।

हे पराक्रमी अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने पुराने समयमें गयु, अग्नि और मनुकी उन्नति करनेकी इच्छा की, और जिन सामर्थ्योंसे आपने स्यूम-रश्मीके जिये बायर् चलाये उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहा आइये । १६

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण प्रज्वलित अग्निकी नाई पठर्वा मार्गसे<sup>१</sup> चलता हुआ आपने बड़े शरीरके कारण देदीप्यमान दिखने लगा, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने बड़ बड़े युद्धमेंभी शर्याताकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहा आइये । १७

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण अङ्गिरसोंकी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट<sup>१०</sup> हुए आपने गुहामे बन्धे हुए गौश्रीको सबसे आगे होकर मुक्त किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण पराक्रमी मनुको अन्न देकर आपने उसकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १८

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने विमदाको भार्या दिला दी, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने लाल रङ्गकी धेनुओंको अपनी आज्ञा माननेको सिखलाया, और जिन सामर्थ्योंके कारण सुदेव्यको मुदासकी ओर आप ले गये उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । १९

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंका आप कल्याण<sup>११</sup> करते हैं, जिन सामर्थ्योंसे भुज्यु और अभ्रिगुकी आप रक्षा करते हैं, और जिन सामर्थ्योंके कारण आप हवि अर्पण करनेवाले ऋतस्तुभको आनन्द दिलाते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहा आइये । २० (३६)

१६ नरा अश्विना, याभि पुरा शयवे, याभि अन्नये, याभि. मनवे गातु ईषथु, याभि. स्युमरस्मये शारी. आजत, ताभि ऊत्तिभि सु आ गत ।

१७ अश्विना, याभि पठर्वा जठरस्य मज्जना अज्मन् चित इद् अग्नि न अदीदेत्, याभि. महाधने शर्वात अवध ताभि ऊत्तिभि सु आ गत ।

१८ अश्विना, याभि अबिर मनसा निरण्यधः,<sup>१०</sup> गोअर्णस विवरे अग्र गच्छथः, याभिः शूर मनु इषा सनावत ताभिः ऊत्तिभि. सु आ गत ।

१९ अश्विना, याभि विमदाय पत्री नि ऊह्यु, याभि. वा घ अरुणी. अशिक्षत, याभि सुदेव्य मुदासे ऊह्यु ताभि. ऊत्तिभि सु आ गत ।

२० अश्विना, याभि ददाशुपे शताती<sup>११</sup> भवथः, याभि. भुज्यु, याभिः अभ्रिगु अवधः, याभि. सुभरा ऋतस्तुभ अंगेनावती, ताभि ऊत्तिभि. सु आ गत ।

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगण रक्षक ) सामर्थ्योंके कारण आपने वाण चलाते समय कृशानुकी प्रशंसा करवाई, जिन सामर्थ्योंके कारण अश्वपर बैठकर दौड़नेवाले युवाकी आपने रक्षा की और जिन सामर्थ्योंके कारण आप भ्रमरको मधुर रस पिलाते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तगणरक्षक ) सामर्थ्योंके कारण युद्धमे धेनु, भूमि और सन्ततिके लाभ इच्छा करनेवाले वीरोकी आपने उन्नति की, और जिन सामर्थ्योंके कारण आप रथ और अश्वकी रक्षा करते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।

हे अश्विनीदेव, जिन ( भक्तरक्षक ) सामर्थ्योंसे अर्जुनीका पुत्र कुत्स्य, तुर्वीति और दभीतिकी आपने रक्षा की, और जिनके कारण ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी भी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले पराक्रमी अश्विनीदेव, हमपर कृपा करके हमारी स्तुति और प्रार्थना सफल<sup>१३</sup> कीजिये । सूर्यप्रकाश<sup>१४</sup> चारो ओर फैलनेके पहले हम अपनी रक्षामे लिये आपकी प्रार्थना करते हैं । इसलिये आप हमे सामर्थ्य अर्पण करके हमारी उन्नति कीजिये ।

हे अश्विनीदेव, हमारे आनन्दमे बाधा<sup>१५</sup> न डालिये और रातदिन हमारी रक्षा कीजिये । इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथिव और शुलोक सम्मति देवे ।

२१ अश्विना, याभिः असने<sup>१३</sup> कृशानु दुवस्यथ, याभि युन अर्वत जवे आवत, यत सरद्भ्यः प्रिय मः ।  
१४ ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

२२ अश्विना, याभिः गोपुयुध नर नृषाह्ये क्षेत्रय तनयस्य साता जिन्वयः, याभिः रथान्, याभि अर्वत अवय ताभि ऊतिभि सु आ गत ।

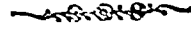
२३ शतक्रतू अश्विना, याभि अर्जुनेय कुत्स, तुर्वीति, दभीति प्र आवत, याभि ध्वसति पुरुषन्ति आवत, तानि ऊतिभि सु आ गत ।

२४ दक्षा वृषणा अश्विना, अरमे न वाच मनीषा अप्रस्वती<sup>१५</sup> कृत, अद्यत्ये<sup>१६</sup> अद्यसे वा नि द्वये वात्रसात् न वृषे च भवत ।

२५ अश्विना, अरिष्टेभि<sup>१७</sup> सौं० गेभि शुभि अकतुभि अत्मान् परिपात ।



## अध्याय ८.



सूक्त ११३.

॥ ऋषि-आजिरस्तः कुत्स । देवता-उषा ॥

सब तेजोमें जो अष्ट तेज है वह तेज प्रकट हुआ है । आश्चर्यकारक और सर्व व्यापी प्रकाशका उदय हुआ है । सविता देवको उत्पन्न करनेके लिये ( उषा ) देवी प्रकट हुई है और इत्ती लिये रात्रीने अपनी जगह खाली छोड़ दी है । १

अपने सफेद ( शुभ्र ) रङ्गके बबेको लेकर शुभ्र और देदीप्यमान् ( उषा ) प्रकट हुई है । काले रङ्गकी रात्रीने अपनी सब जगह छोड़ ( उषा ) के लिये सब जगह खाली की है । एक दूसरीका अनुकरण करनेवाली ( उषा और रात्री )—दोनोंका अधिकार एकसा होनेपर नी-जगतका रङ्ग उलट पुलट कर देती है । आप दोनों आकाश मार्गमें सञ्चार करती है । २

दोनों बहिनोके कई मार्ग हैं । देवोकी आज्ञाको मानकर बताये हुए मार्गसे वे बारी बारीसे सञ्चार करती है । स्वल्पमें निन्न किन्तु एकमतसे चलनेवाली सुन्दर उषा और रात्री किला जगह ठहरकर आराम नहीं करती । ३

देदीप्यमान्, सुन्दर, सत्यकी ओर ले जानेवाली और आश्चर्यकारक उषा प्रकट होकर दिखाई देने लगी । आपने ही हमारे घरका दरवाजा खोल दिया । आपने ही सब लोगोको उद्योगके लिये प्रवृत्त किया । आपने ही हमारे लिये दैभव प्राप्त करनेका दरवाजा खोल दिया और आपने ही सब प्राणियोंको जगाया । ४

१ इ३ ज्योतिषा अष्ट ज्योति आ अगात् । चित्र विभ्वा प्रकेतः अजनिष्ट । यथा सवितुः सवाच एव प्रत्या रात्री उपसे योनि अरैक् ।

२ स्वद्वन्मा स्वती श्वेत्वा आ अगात् । कृष्णा अत्याः मदनानि अरैक् । समानवन् अनुची अदृते वन आ निनाने शवा चरत ।

३ स्वलो अथा समान अनन्त । देवशिष्टे त अचाचा चरत समन्ता निरूपे सुनेके नक्षोपसा न अपेने, न तस्थतु ।

४ गत्स्वती, मृतकाना नेत्री निना अचेति । नः दुर वि भाव । जगत् प्रा न राच वि अस्वत् । उषा निवा मुदना ने अर्जाग ।

उदार उपाने सब प्राणियोंको जगाया है । इधर उधर सोये हुए प्रवासी लोगोको मार्ग वतानेके लिये, अच्छी अच्छी वस्तुओका लाभ करानेके लिये, उट वस्तुएं और धन प्राप्त होनेका प्रयत्न करानेके लिये और अन्धको दृष्टि दिलानेके लिये उपादेवी प्रकट हुई है। ५ (१)

उपा सब प्राणियोंको इसलिये जागृत करती है कि वे सामर्थ्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करे, कोई कीर्ति कमानेका प्रयत्न करे, कोई अपना उद्देश सिद्ध करनेका प्रयत्न करे, कोई अपनी इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न करे, और इस तरह सब लोगोको अपने अपने उदरपोषणका मार्ग दिखा देवे । ६

सफेद वस्त्र पहनी हुई और पृथ्वीपरके सब वैभवपर अधिपत्य चञ्जानेवाली देदीप्यमान युलोककन्या (उपा) प्रकट (दृग्गोचर) हुई है । हे कल्याणकारी उपादेवी, आज यहा आकर अपना उज्वल प्रकाश फैलाइये । ७

अपना उज्वल प्रकाश सब दूर फैलाती हुई, सब प्राणियोंको अपने अपने काममे लगानी हुई, (विद्वानेपर) मृतवत् पड़े हुए (मनुष्य) को जागृत करती हुई यह उपा धीरे धीरे आगे चलकर पिछली उपाओंका अनुकरण करती है । ८

हे उपादेवी, आपहीने अग्निको प्रदत्त करनेके लिये उसको सिद्ध किया, आपहीने सूर्यके नेत्रोके द्वारा सब जगत्को प्रकाशित किया; आपहीने यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योको जागृत किया; इस तरह आपने देवोंकी ओर बड़े उपकारका काम किया । ९

५ जिह्मस्ये<sup>५</sup> चरितवे, त्व आभोगवे इष्टये राये, दध्न<sup>६</sup> पश्यद्र उर्विया विचक्षे उपा विश्वा भुवनानि  
: ।

६ त्व क्षत्राय, त्व ध्रुवसे, त्व महीये इष्टये, त्व अर्थे इव इत्यै,<sup>७</sup> विसदृशा जीविता अभिप्रचक्षे, उपा  
श्वा भुवनानि भर्जागः ।

७ शुक्रवासा , विश्वस्य पार्थिवस्य वस्व ईशाना, व्युच्छती युवति एषा दिव दुहिता प्रति अदर्शि। मुभगे  
उप , अद्य इह व्युच्छ ।

८ व्युच्छन्ती, जीव उदीर्यन्ती, मृत कचन बोधयन्ती, शश्वतीना आयतीना प्रथमा उपा परायतीना  
पायः अनु एति ।

९ उप<sup>९</sup>, यत् अग्निं समिधे चक्रथ, यत् सूर्यस्य चक्षसा वि आव, यत् यक्ष्यमाणान् मानुषान् अनीग,  
तत् देवेषु न्द्र अग्न चक्षथे ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २,३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० ११३

हर एक उपा—जो उपाएं पहिले प्रकाश फैलाकर चली गयी और जो उपाएं आगे प्रकाश फैलानेके लिये आनेवाली है—उपर्युक्त उपाओंका अनुकरण करती है। उनमेंसे हर एक उपा पहिले गयी हुई उपाके सम्बन्धमें दुःख मनाती है और अपना प्रकाश फैलाकर आगे आनेवाली उपाके साथ चली (मिल) जाती है। १० (२)

प्राचीन कालमें जिन लोगोंने प्रकाशित होती हुई उपाको देखा था वे (मानव) चले गये। यह उपा अब हमें दिखाई देती है। आगे आनेवाले लोग भी प्रकाशित होनेवाली उपाको देखकर चले जायेंगे। ११

दुष्ट लोगोका नाश करनेवाली, सत्यकी रक्षा करनेवाली, सत्यको उत्पन्न करनेवाली, मधुर रातिसे सत्व बोलनेवाली, कल्याण करनेवाली, और देवोको हवि पहुंचानेवाली, है सबसे श्रेष्ठ उपादेवी, आप अपना प्रकाश यहा फैलाइये। १२

हे उपादेवी, प्राचीन कालसे आप प्रकाशित होती चली आई है। उस उदार देवीने अब भी अपना प्रकाश सब दूर फैलाया है। और इसके अनन्तर भी वह देवी अपना प्रकाश फैलावेगी। उपादेवी कभी बुढ़ी नहीं होनी और उसको कभी मृत्यु नहीं आती। वह देवी अपने मार्गसे गमन करती है। १३

अपने अलंकारोंसे भूषित हुई उपादेवी दुलोकके विस्तीर्ण प्रदेशमें प्रकाश फैलाती है। इस देवीने (जगत्का) काला देह सफ़ेद किया है। अपने लाल रङ्गके अश्वोंके द्वारा वह सबको जगाती है और अपने सजे हुए रथमें बैठकर चली आती है। १४

१० या व्युषु, या च नून विउच्छान् कियति यत् समया आ भवाति<sup>२</sup> वावशाना पूर्वा अनु इपते, प्रदीप्याना अन्यामि जोष एति।

११ ये मर्त्यास पूर्वतरा उपस व्युच्छन्ती अपश्यन् ते ईयु। अस्माभि ऊ प्रतिचक्ष्या अश्रूत् तु। ये अपरीषु पर्यान् त यन्ति।

१२ उप, यवयद्वेषाः, ऋतपा, ऋतेजा, सुन्नवरी, सूनुता ईरयन्ती सुमगली, देववीति चित्रती श्रेष्ठतमा अय इह व्युच्छ।

१३ देवी उपा पुरा शश्वन् वि उवास, अथो मघोनी अय इद व्याव, अथो उत्तरान् यून् अनु व्युच्छात् अजरा अनृता स्वधमि चरति।

१४ अजिभि दिव आतासु वि अयौत्। देवी कृष्णा निर्णिज अप आव। अरुणेभि अश्वौः प्रबोधय ती उपा सुयुजा रथने आयाति।

आप (उषादेवी) अपने साथ शक्तिवर्धक वस्तुएं ले आती है। प्रजावती उषादेवी अपना आश्चर्यकारक तेज प्रकट करती है। अबतक जितनी उषाएं चली गयीं उनमें यह अन्तिम<sup>१०</sup> उषा है; और आगे आनेवाली उषाओंमें यह पहिली उषा अपना प्रकाश फैलाती है।

१५ (३)

चलो, उठो;<sup>११</sup> अपना चैतन्य देनेवाला प्राण आया है। अन्वकार भाग गया। प्रकाश आ रहा है। उषाने सूर्यके लिये अपना मार्ग छोड़कर खुला कर दिया। जिस जगह सब लोगोकी आयु बढ़ती है ऐसी जगह हम आकर पहुंचे है।

१६

यह स्तोत्रा-उपासक-उषाके लिये मधुर स्तुति बनाकर<sup>१२</sup> देवीप्यमान् उषाकी प्रशंसा करता है। इसलिये हे उदार देवी, उपासकके लिये आज प्रकाशित हूजिये, हमें सन्तति दीजिये और हमारी आयु बढ़ाइये।

१७

गोधन और अश्वोका लाभ करनेवाली उषादेवी-जिसको सब पराक्रमी पुरुष पूज्य मानते हैं-हवि अर्पण करनेवाले मानवोके लिये अच्छी तरह प्रकाशित होती है। सोमयाग करनेवाले उपासकोकी जोरसे गई हुई स्तुति वायुकी तरह उषाके पास शीघ्र जा पहुंचे।

१८

हे उषा, देवोकी माता, आदिनिका बल, यज्ञकी ध्वजा और सबसे श्रेष्ठ देवता आप ही है। इसलिये आप प्रकाशित हूजिये। हमारे यज्ञकी प्रशंसा करके हमारे स्तुति सुनिये; और उज्वल कान्तिसे युक्त हूजिये। आपसे सब लोग प्रेम रखते हैं। जब तक हम इस जगत्में रहते हैं तबतक हमें नया जीवित अर्पण कीजिये।

१९

१५ वार्याणि पोष्या आवहन्ती चेकिताना चित्र केतु कृणुते ईयुपीणा शश्वतीना उपमा<sup>१०</sup> विभातीना न उषा वि अश्वत्।

६ उत् ईश्वे,<sup>११</sup> न असु आ अगात्, तम अप प्र अगात्, ज्योति, आ एति। सूर्याय यातवे पथा अरफ। आयु प्रतिरन्ते अगन्म।

१७ विभाती उपस स्तवान रेभ वह्नि वाचः स्यूमना<sup>१२</sup> उत् इयति। तत् मघोनि गृणते अय उच्छ, अस्मे प्रजावत् आयु नि दिदीहि।

१८ गोमत अश्वदा सर्वधीरा याः उपस दाशुपे मर्त्याय व्युच्छन्ति सोममुत्वा सूतृताना वाथो इव उदन्ता अश्वत्।

१९ देवाना माता, अदिते अनीक, यज्ञस्य केतु, वृहती वि मादि। प्रशस्ति कृन् न व्रह्मणे वि उच्छ, विश्वारो जने न आ जनय।

अष्ट० १ अ०या० ८ व० ४,५ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सु० ११४

पूजन और स्तवन करनेवाले उपासकोके लिये कल्याणकारी उपादेवी आश्चर्यकारक बल जे आती है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उपाका अनुकरण करे।

२० (४)

### सुक्त ११४.

॥ ऋषि—आजिरस कुत्स । देवता—रुद्र ॥

जो रुद्र केवल पराक्रमकी मूर्ति है, जिनका सिर जटा<sup>१</sup> भारसे मण्डित रहता है और सब पराक्रमी वीर जिनकी शरणा लेते हैं ऐसे रुद्रदेवको हम स्तुति अर्पण करते हैं। जिस ग्रामने रुद्रको हवि अर्पण किया जाता है उसमें किसी मनुष्य (द्विपाद) और पशुओं (चतुष्पादा) को दुःख नहीं होता है, किन्तु उनकी उन्नति ही होती है। १

हे रुद्र, हमें सौख्य अर्पण कीजिये और हमें आनन्द दीजिये। सब शूर पुरुष आपकी शरणा लेते हैं और आपहीको वन्दन करके आपहीकी सेवा करते हैं। जो आपके भक्त हैं केवल उन्हींका आप कल्याण करते हैं। हमारे पिता मनुजोने भी आपसे जिस कल्याणकी इच्छा की वह (कल्याण) उन्हें आपहीकी कृपासे<sup>२</sup> प्राप्त होगा। २

हे उदार<sup>३</sup> रुद्र, सब शूर पुरुष आपहीका आश्रय करते हैं। आपकी सेवा करनेसेही हमें आपकी कृपाकः लाभ हांगा। हमारे लिये और इधर<sup>४</sup> हमारे बालवच्चोके लिये भी उत्तम वैभवं जे आइये। हमारी सेवामें जितने लोग हैं वे सब आनन्दित रहे। हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ३

बड़े जोशवाले, यज्ञकी ओर पहुंचानेवाले, कुटिलनीतिमें बड़े होशियार, ऐसे रुद्रको हम अपनी रक्षाके लिये बुलाते हैं। दूसरे देवोंका क्रोध जो हमारेपर है उसे, हे रुद्र, छुटा दीजिये। आपहीकी कृपाकी हम इच्छा करने हैं। ४

२० ई जानाय शशानानाय यत् भद्र चित्र अग्र<sup>१३</sup> उपस. वहन्ति तत् न मित्र वरुण ममहंता।  
१ तवसे कर्पादिने<sup>१</sup> क्षयद्वीराय रुद्राय इमा मती प्र भरानहे, यथा द्विपदे चतुष्पदे श असत्, अस्मिन् ग्रामे विश्व पृष्ट अनातुर।

२ रुद्र, न गृह्य उत न मय कृधि। क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम। यत् च वो च श पिता मनु आयेजे तत्, रुद्र, तव प्रणीतिपु<sup>२</sup> अस्याम।

३ मीढु<sup>३</sup> रुद्र, क्षयद्वीरस्य तव सुमति ते अस्याम। अस्माक विवाः इत् सुत्रयन् आचर<sup>४</sup>। अरिष्टवीरा ते ढवि जुहुवाम।

४ नय त्वेप यत्साध वकु कवि रुद्र अवसे नि द्यामहे। दैव्य हेळ अस्मत् आरे अस्यतु। अस्य सुमति नू नय आ वृणीमहे।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० ५,६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १६ सू० ११४

देदीप्यमान्, जटा धारण करनेवाले, जोशवाले और सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाले स्वर्गके वराह (इन्द्र) को वन्दन करके हम बुलाने हैं । जिन औषधियोंको सबलोग चाहते हैं उन्हींको आप अपने वशमे रखते हैं और हमे निडर बनाकर तथा सौख्य अर्पण करके हमारी रक्षा कीजिये । ५ (५)

सबसे मधुर और सन्तोष देनेवाला स्तोत्र, मरुतोका पिता जो रुद्र उनके लिये हम गाते हैं । इसलिये हे अमर देव, हमे अच्छे अच्छे और खाने योग्य पदार्थ अर्पण कीजिये, और हमारे बच्चोंको सौख्य अर्पण कीजिये । ६

हे रुद्र, हम लोगोमें जो बड़े<sup>६</sup> अथवा छोटे लोग है और जो बड़े हुए हैं और जो बड़े होनेवाले हैं उनमेसे किसीको भी मन सनाइये । हमारे पिता और माताओका नाश मत कीजिये । हमारे शरीरको किसी प्रकारकी वाधा मत पहुंचाइये । ७

(आपकी कृपासे) हमारे बालबच्चोंको, सेवकोंको,<sup>७</sup> धेनुओंको और घोड़ोंको किसी प्रकारकी वाधा न पहुंचे । हे रुद्र, हमपर क्रोध मत कीजिये और हमारे पराक्रमी पुरुषोंका नाश मत कीजिये । हम आपको हवि अर्पण करते है और सदैव आपकी पूजा करते है । ८

जिस तरह गड़रिया अपने पशुओंको इकट्ठे करता है उस तरह मै आपके सन्मानार्थ सब स्तोत्र एकत्रिन करता हूं । हे मरुतोके पिताजी, आप हमे उत्कृष्ट वैभव दीजिये । आपकी कृपासे हमें कल्याण और आनन्द प्राप्त होता है । इसलिये मै आपसे कृपा करने की प्रार्थना करता हूं । ९

५ अक्षय कपर्दिन त्वेष रूप दिव वराह नमसा नि व्हयामहे । चार्याणि भेषजा हस्ते विव्रत् शमे वर्म छर्दि अस्मभ्य यसत् ।

स्वादो स्वादीय. वर्धन इद वच महता पित्रे सदाय उच्यते । अमृत न मर्तमोजन च रास्व, रमने तो-  
नय ५ मृळ ।

७ रुद्र, न महान्त उत न अर्भक, न उक्षन्त<sup>१</sup> उत न उक्षित, न पितर उत मातर, न प्रिया. तन्वः  
रिरिषः ।

८ न तोके तनये, न आयौ,<sup>२</sup> नः गोषु, न अश्वेषु मा रिरिष । रुद्र, भामित नः वीरान् मा वर्धीः  
हविमन्त त्वा सद इत् हवामहे ।

९ पशुषा इव ते स्तोमान् आ अरुः । महता पित अस्मे सुन्न रास्व । ते सुमति भद्रा मृद्व्यत्तमा दि, त्रय  
वय ते अव इत् वृणीमहे ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११९

हे देव, धेनुओं और पुरुषोका वध करनेवाला आपका शस्त्र दूरतक फेंक दीजिये । हे रुद्रदेव, आप सब वीर पुरुषोका आश्रय देनेवाले हैं । आपके पास जो उत्कृष्ट वैभव है वह हमारे लिये रख छोड़िये । हे देव, हमें सौख्य अर्पण कीजिये और हमारी तरफदारी कीजिये । आप दुर्गण ( बलवान ) हैं; इसलिये हमारी रक्षा कीजिये । १०

रुद्रदेवके लिये हम नम्रताके साथ उनका स्तोत्र गाते हैं । वे हमारी रक्षा करें ! इसलिये आप ( रुद्र ) मरुतदेवोंके साथ हमारी पुकार सुनिये । हमारी प्रार्थनापर मित्र वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और शुलोक ध्यान दें । ११ (६)

सूक्त ११५.

॥ ऋषि-अङ्गिरस कुत्स । देवता-सूर्य ॥

देवोंका आश्चर्यकारक मुख-मित्र, वरुण, अग्नि्योंके, मानो नेत्रही जो सूर्य, उसका उदग होता है । सूर्यने-मानो जो स्थिर और अस्थिर वस्तुओंका केवल प्राणही है-शुलोक, भूलोक और अन्तरिक्षको व्याप्त किया है । १

जिस तरह कोई युवा पुरुष युवा स्त्रीके पीछे पीछे दौड़ता है उसी तरह देदीप्यमान् सूर्य भी उपाके पीछे पीछे चलता है । जिस भूलोकमें उसके उपासक अपनी आयु व्यतीत करते हैं उसी कल्याणकारी जगह आप उनका कल्याण करनेके लिये जाते हैं । २

सूर्यके अध्व कल्याणकारी, आश्चर्यकारक निन्न<sup>१</sup> भिन्न रंगके और आनन्ददायक होते हैं । सब लोग सूर्यको नमन करते हैं । आपने सब शुलोकको व्याप्त किया है । आप शुलोक और भूलोककी चारों ओर एक क्षणमें जा सकते हैं । ३

१

१० ते गोघ्न उत पुरुषघ्न आरे । क्षयद्वीर, ते सुन्न अस्मे । अस्तु देव न मृळ च अधि ब्रूहि च, अध द्विवर्हा न शर्म च यच्छ ।

११ अवरयव अस्मै नम. अत्रोचाम । महत्वान् रुद्र नः हव शृणोतु ।

१ मित्रस्य वरण य अग्रे चक्षु देवाना चित्र अनीक उत अगात् । जगत तस्थुष च आत्मा सूर्य. यावापृथिवी अ तरिद आ अग्रा ।

२ यत्र देवय ता युगानि वितन्वते भद्र प्रति भद्राय, मर्य योषा न, सूर्य. रोचमाना देवी उषस पश्चात् अग्नि एति ।

३ सूर्यस्य हरित अक्षा भद्राः, चित्रा, एतग्वा, अनुमायास. नमस्यन्त दिवः पृष्ठ आ अस्थु. । यावापृथिवी सप्त परिपति ।

जब मनुष्य काम<sup>२</sup> करता है तब सूर्य अपने किरण एक निमित्तमें अपनी ओर खींच लेता है। इसीसे आपकी दिव्य शक्ति और बढ़ापन लोगोको विदित होता है। रात्रि और सूर्य दोनोंकी रहनेकी जगह केवल यही जगत् है। जब इस जगत्से दूर चले जानेके निमित्त सूर्य अपने अश्व जोतता है तब रात्रि अपना अन्धकार सब (जगत्पर) फैलाती है। १

मित्र और वरुणको अपना देदीयमान् स्वरूप दिखलानेके लिये सूर्य स्वर्गलोकके अग्निप्रदेशपर प्रकाशित होता है। एक समय उसके अश्व उसका देदीयमान् तेज प्रकट करने के और दूसरे समय काले रंगका तेज (पृथिवीपर) दिखाई देता है। २

हे देव, आज सूर्यका उदय होते ही हमें पाप और निन्दासे मुक्त कीजिये। अग्नि, वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और बुलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान दें। ६ (७)(१-)

### अनुवाक १७.

#### सूक्त ११६.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अग्नि ॥

सत्यस्वरूप देव, डोटे आयुके विमदकी ओर उसकी स्त्रीको सैन्यकी नाई वेगवान् गथमें धिठलाकर ले आये। उन देवोका सम्मान करनेके लिये मानो, मैं यह कुरासन तैयार कर रहा हूँ। (क्यों कि) जिस तरह वायु मेवांशका गीराता है उसी तरह मैं उन देवोका कस्तोत्र अर्पण कर रहा हूँ। १

जो बड़े जोरसे उड़ते हैं और जो बड़े वेगवान् हैं ऐसे (आपके अश्व) अथवा देवोके उत्साह देनेवाले शत्रुही केवल आपको इस यज्ञमें ले आते हैं। (किन्तु) हे सत्यन्वाप्य देव, आपका गवा भी (इतना मामर्धवान् है कि)—जिस युद्धमें यम स्वय लड़ता है उसमें। उन्होंने (आपके गाधाने) कई शत्रुओको जीत लिया। २

४ सूर्यस्य तन् देवस्य तन् महित्व कर्तो<sup>३</sup> मत्या वितत स जभार यदा सधस्यान् हरित अयुक्तं यत् स (१) वास तनुते आत् ।

५ मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे योः उपस्ये तत् तप सूर्यं कृणुते । अन्यन् हरित अस्य जनन्तं दसा पाजः, अन्यन् कृण न नरति ।

६ देवा, अय सूर्यस्य उदिता अह्न अवयान् नि पिष्टुत ।

७ यो अर्भगाय विमदं य नेनाजुता रथेन जाता निऋदधुः, नामत्याभ्या वर्हि द्व प्र वृजे । वात अत्रिया द्य त्तोमान् द्यर्भि ।

२ वीक्षुपन्मभिः आशुहेमभि वा देवाना नृत्तिभिः शाशदाना । तन्, नामत्या, यमस्य प्रयने आज्ञा रागम नद्वन् जिगाथ ।



हे अश्विनीदेव, जिस तरह मृत मनुष्य अपने संसारिक वैभवको छोड़कर चला जाता है उसी तरह सचमुच तुमने भुज्युको अथाह जलमे छोड़ दिया। किन्तु आप उसको प्राण अर्पण करनेवाली, आकाशमे उडनेवाली और जलसे अलग रहनेवाली नौकामे विठलाकर ले आये। ३

हे सत्यस्वरूप देव, तीन दिन और तीन रातसे अधिक समयतक दौड़नेवाले पक्षीकी तरह वेगवान् अश्वोकी सहायतासे आपने भुज्युको तीन रथोमे विठलाया। उन रथोको छः घोड़े जोते हुए थे और उन्हे सौ पैये थे। उदकसे भरे हुए समुद्रके परे सूखे जमीनपर आप उसको ले गये। ४

हे अश्विनीदेव, आपने भुज्युको नौकामे—जिसे चलानेके लिये सौ डाण्ड लगते हैं—विठलाकर उसके घर पहुचाया। यह आपका बड़ा पराक्रम है। इस बातको कोई नहीं जानता कि समुद्र उत्पन्न हुआ कहासे, उसे किसका आधार है और उसको किस तरह बशमे रखना चाहिये। ५(८)

हे अश्विनीदेव, हमेशा शान्ति देनेवाला सज्जद रङ्गका अश्व आपने अधाश्वोको दिया। इससे विदित होता है कि आप बड़े दानी है। आपका यह गुण स्तुति करने योग्य है। पैदूका उत्कृष्ट अश्व सम्मान करने योग्य हैं। ६

पञ्जके कुलमे उत्पन्न हुए कक्षीवानने आपकी स्तुति की। स्तुति करते ही आपने उसको गेत्र बुद्धि अर्पण की। वरतनके<sup>३</sup> समान लन्वे आकारवाले सामर्थ्यवान् अधके खुरसे आपने सुराके सौ घोड़े उत्पन्न किये। ७

३ अश्विना, क चित् मनुवान् रथि न तुमः ह भुज्यु उदनेषे अत्र अहा । अ तरिअप्रुद्धि अपोदकाभिः नौभिः त उह्युः ।

४ नासत्या, तिलः क्षप त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः पतर्गः, त्रिभि शतपद्भि गडधे रथैः, आर्दस्य तनुस्त्य पारे धन्वन् उह्युः ।

५ अश्विनौ, शतारित्रा नाव आतस्थिवास भुज्यु यत् अस्त उह्यु. तत् अनारभणे अनास्थाने अग्रभणे स्तुने अवीरयेत् ।

६ अश्विना, शश्वत् इन् र्वस्ति य श्वेत अश्व अथात्राय ददधुः तन् वा महि दात्र कीर्तेन्य भूर् । पैदू वाचं वाजो तद् इन् ह्य्य ।

७ नरा, पञ्जिवाच स्तुवते रञ्जीवते युत्र पुरधि अरदत । वृष्ण. अश्वस्य कारोतरा' शफान् सुराया शत कुम्नान् अतिवत ।

अष्ट० ? अध्या० ८ व० ९, १० ] ऋग्वेदः [ मण्ड० ? अनु० १७ सू० ११६

ठण्डि हवा उत्पन्न करके आपने तापदायक अग्नि को शान्त किया। आपने अग्नि को उत्तम सुरा पिलायी। इसी कारणसे उसमें (अग्निमें) उत्साह देनेवाला नया बल उत्पन्न हुआ। जब अग्नि गहरे गड्ढेमें पडा था तब आपने, हे अश्विन, उसके बालवर्षोंकी रक्षा की और उसको गड्ढेसे बाहर निकाला।

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, आप उस कूपको ऊपर ले आये। उसका मूँह टेढ़ा रहनेके कारण आपने उसके तलको उलटा दिया। उसके अनन्तर आपने गोतमके प्यासे अनुचरोंके लिये पानीका प्रवाह बहा दिया, मानो, गोतमको हजारों प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण की। ६

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जिस तरह मनुष्य अपना कवच निकालता है उसी तरह आपने वृद्ध चवनको दुःदापनसे मुक्त किया। जब सब ( लोगोंने ) उसको त्याग दिया तब आपने उसकी आयु बढ़ायी और उसको कुमारियोंका पति बनाया। १० (६)

हे सत्यस्वरूप और शूर अश्विनीदेव, सचमुच आपकी कृपा बड़ी प्रशंसा योग्य सौख्य देनेवाली और हित करनेवाली है। उस कृपाके कारणही आप जैसे ज्ञानवान् देवोंने मानो, दृष्टिके परे हुए धन सञ्चयको वन्दनके लिये दूषणकर बाहर निकाला। ११

हे शूर अश्विनीदेव, जिस तरह मेघगर्जनासे पर्जन्य वृष्टि होनेका लक्षण दिखाई देता है उसी तरह धनका लाभ होनेके लिये मैं आपके पराक्रमकी स्तुति करता हूँ। आपकी कृपाके कारण ही अथर्व वंशमें उत्पन्न हुए दध्यंच ऋषिने अश्वका शिर धारण करके आपकी साथ मधुर सम्भाषण किया। १२

८ हिनेन प्रस अग्नि अवारणेयः । पितुमर्ता ऊर्जे अस्मै अवत । अश्विना, ऋषीसे अवनीत अग्नि सर्वगण त उन् निन्द्युः ।

९ सत्या, अवन परा अनुदेया, जिह्ववार उच्चातुप्र चक्रयुः । गोतमस्य तृप्यते पायनाय, आप, लाय राये, अग्न ।

१० उत नासत्या, जुनुस्य च्यवानात् द्रापि द्व वन्नि प्र अमुचत । दन्ना, जहितस्य आयुः प्र अतिरत वनीन पति इत् अकृणुत ।

११ नासत्या नरा, तन् वा दह्य दास्य रण्य अभिष्टिम् च यन् विद्वाया दर्शतात् अपगृह्य निधि द्व वन्दनाय उन् उपयु ।

१२ नरा, तन्वतु वृष्टि नसन्ते वा तर् उग्र दस जावि. इगोमि, यन् आर्वाण द यड द्व अयस्य शीष्णां वा ई मधु उवाच ।

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव जब आप लम्बे लम्बे मार्गपर चलते थे तब वृधिमतिने आपकी स्तुति की और आपको हवि अर्पण किया । आप बड़े बलवान् और सबकी रक्षा करनेवाले हैं । वृधिमतिनेकी स्तुतिको आज्ञाही समझकर आपने उस स्तुतिको सुना और उसको हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया । १३

हे सत्यस्वरूप देव, जब वाज पक्षी त्रिलकुल भेडियाके मुहके पास था तब आपने उसको छुड़ा लिया । हे भक्तोकी रक्षा करनेवाले अश्विनीदेव, जब विद्वान् लोक आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं तब आप उनको देखनेका सामर्थ्य देते हैं । १४

जिस तरह पक्षीका पंख टूट जाता है उसी तरह खेलके युद्धमे रातके<sup>१</sup> समय (विश्लेका) पैर टूट गया । किन्तु लडाईं शुरू होतेही (युद्ध क्षेत्रमे चलनेके लिये) आपने उसको शिवही लोहेका पैर जुड़ा दिया । १५ (१०)

जब ऋज्जाश्वाने भेडियाको (खिलानेके) लिये सो वकरियां काट डाली तब उसके पिताने उसको अन्धा बनाया । (किन्तु) शत्रूओका नाश करनेवाले, हे सत्यस्वरूप वैद्यराज, आपने देखनेके लिये कृपा करके फिर उसको जैसेके तैसे नेत्र प्रदान किये । १६

अपने वेगवान् शत्रूओके द्वारा (शर्यत) जीतनेवाली सूर्यकी लडकी (पुत्री) आपके रथको शर्यतका<sup>२</sup> ठिकाना समझकर आपके रथपर चढ़ गयी । हे सत्यस्वरूप देव, इस तरह उस वैभवसे आपकी शोभा बढ गयी । और सब देवोंने इस बातपर हार्दिक सहानुभूते दिखलायी । १७

१३ नासत्या, वा महे यामन् पुरधि करा पुरुभुजा अजोहवीत् वधिमत्या तत् शशु इव श्रुत हिरण्यहस्त, अश्विना, अदत्त ।

१४ नरा नासत्या, वृक्षस्य आल्ल अनीके वर्तिका युव अनुसुक्न । उतो, पुरुभुजा, दुव ह कृपमाण तत्रि विचक्षे अकृणुत ।

१५ वे इव पर्णे, खेलस्य आज्ञा, परितक्म्याया<sup>१</sup> चरित्र अच्छेदि । धने हिते सतर्वे आयसी जघा विश्लेकाये प्रति अवत्त ।

१६ शत नेपान् वृक्ष्ये चक्षदान त ऋज्जाश्च पिता अध चकार । नासत्या दत्ता भिपजो, विचक्षे अन्वत् तस्मै अक्षी आ अधत्त ।

१७ अर्वता जयन्ती सूर्यस्य दुहिता वा रथ कर्म्म<sup>३</sup> इव अतिष्ठत् । विश्वे देवा हृद्भिः अनु अम यन्त । नासत्या, धिया स सचेधे ।

अष्ट० ? अध्या० ८ व० ११, १२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११६ ]

हे अध्विनीदेव, जब आप दिवोदास और भरद्वाजके लिये उनके घरकी ओर शीघ्रतासे चले गये तब जिस रथमें आप बैठे थे उसमें बहुत धन भरा हुआ था। उस रथको एक त्रैज और एक नक्र ( मगर ) जोते हुए थे। १८

दिनमें तीन समय आपको हवि अर्पण करनेवाले, जन्तूके वंशमें उत्पन्न होनेवाले पुरुषोंकी ओर, हे सत्यस्वरूप देव, आप दोनों अपने बालवच्चो, वीरता वैभव और सामर्थ्यवान् आयुके साथ एक सम्मतिसे चले गये थे। १९

हे वृद्धे न होनेवाले सत्यस्वरूप देव, जब जाहुप चारों ओरसे शत्रुओंसे घिरा हुआ था तब आप रजोलोकमेंसे सरल मार्गसे उसको ले गये। पत्थरको तोड़नेवाले रथमें बैठकर आपने पहाड़मेंसे मार्ग निकाला। २० (११)

हे अध्विनीदेव, हजारों प्रकारकी सम्पत्तिका लाभ करानेके लिये आपने वशको एक दिनमें युद्ध करनेका सामर्थ्य प्रदान किया। हे सामर्थ्यवान् देव, आपने इन्द्रकी सहायता लेकर पृथुश्रवके दुष्ट शत्रुओंका नाश किया। २१

ऋचत्वका पुत्र-शरकी प्यास बुझानेके लिये आपने गह्विरे कूपसे पायी ऊपर निकाला। पके हुए शयूके लिये उसर गौमें भी आपने भरतूर दूध उत्पन्न किया। २२

१८ अध्विना, यत् दिवोदासाय भरद्वाजाय ह्यन्तां वर्ति. अयात्, सचन रथ रेवत् उवाह। प्रथम च शिशुमार च युक्ता।

१९ अन्ह त्रिः भाग दधतीं जन्तुर्वीं सुक्षत्र स्वपत्य रथि सुवीर्यं अयु आ वदन्ता वाजे समनसा उप त।

२० अजरयू नामत्या, विश्वतः परिविष्ट जाहुप सुगेभि रजोभि नक्त ऊह्यु.। वि भिन्दुना रथेन पदंतान् वि अजात्।

२१ अध्विना, सहवा सनये एकस्या वस्तोः वत्त रणाय आवत। वृष्णी, इन्द्रवन्ता पृथुश्रवम् दुच्छुना. करानि. नि. अहत।

२२ आर्चकस्य शरस्य चित्र पातये नीचात् अवतान् वा उवा चक्रयुः। नगुरये शयवे चित्र शर्वाभि रत्तन गा पित्रयु।

हे सत्यस्वरूप देव, कृष्णके कुलमें उत्पन्न हुए और सीधे मार्गसे चलनेवाले विश्वकने आपकी स्तुति की और आपकी सहायताकी इच्छा की। इसलिये जिस तरह खोया हुआ पशु स्वामीको मिल जाता है उसी तरह, आपने उसके पुत्र (विष्णापू)को दूधदकर निकाला, उसे उसका पिता विश्वकसे मिलाया और उसे उसके सुपुर्द किया। २३

जिस तरह चमसोसे सोमरस बाहर निकालते हैं उसी तरह आपने दस रात और नौ दिनतक पानीके अन्दर बन्दे हुए, थके हुए, सर्दीसे कांपते हुए, और जलमें दुःख पाते हुए रेभको पानीके बाहर निकाल दिया। २४

हे अश्विनीदेव, मैंने आपको बड़े बड़े कामोंका यहा वर्णन किया है। इसलिये आपकी कृपासे मुझे धेनु और पराक्रमी पुरुष प्राप्त होंगे। मुझे इस घर और वैभवका स्वामी बनाइये। आपकी कृपासे मेरी दृष्टि अच्छी रहे और मेरी आयु बढ़े। जिस तरह कोई मनुष्य आनन्दसे मन्दारमें घुसता है उसी तरह बुढ़ापेमें आनन्दसे मेरे दिन व्यतीत हों। २५ (१२)

### सूक्त ११७.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हे अश्विनीदेव, मधुर सोमरसका पान करके आपको आनन्द होनेके लिये मैं आपका पुराना सेवक आपसे प्रार्थना करता हूं। आपके लिये हृत्वि हमने पवित्र दभोंपर रखा है। हमारी स्तुति भी आपकी ओर पहुंच गयी है। इसलिये अनाजका संग्रह करके नाना प्रकारके सामर्थ्योंके साथ आप इधर आइये। १

हे अश्विनीदेव, आपका चञ्चल रथ मनसे भी वेगवान् है। उसको सुन्दर अश्व जोते हुए है। वह सब लोगोंकी ओर आता है। जिस रथमें बैठकर आप सदाचारी पुरुषोंके घर चले जाते हैं उसी रथमें विराजमान् होकर, हे वीर पुरुष, आप हमारी ओर आइये। २

२३ नासत्या, ऋजूयते अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय शचीभि, नष्ट पशु न, विष्णाप्व दर्शनाय ददधु ।

२४ दश रात्री. नव यून् अशिवेन अप्सु अन्तः अवनद्ध श्रथित विप्रुत उदनि प्रवृक्त रेभ ह्येण सोम इव उत् नित्यधु. ।

२५ अश्विना, वा दसात्ति प्र अबोच । सुगवः सुवीरः अस्य पतिः स्या । उत पश्यन् दीर्घ आयु. अश्ववन् जरिमाण अस्त इव जगन्त्या ।

१ अश्विना, नध्वः सोमस्य मदाय प्रलः होता वां विवासते । रातिः वहिष्मती, गीः विश्रिता, नासत्या इषा वाजैः उप जात ।

२ अश्विना, यः वां मनस. जवीयान् स्वश्वः रभः विशाः आजिगात्ति, येन सुकृतः दुरोण गच्छथः, तेन, नरा, अस्मभ्य वर्ति. यात ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११७

हे सामर्थ्यवान् वीर पुरुष, हमारे मनका झुकाव (आपकी कृपासे) हमारी उन्नतिकी ओर होवे और दुष्ट राक्षसोंका कपटजाल निष्फल होवे। पाच प्रकारके लोगोंको प्रिय होनेवाले अत्रिऋषिको उनके मनुष्योंके साथ भयंकर गुहामेसे आपने बाहर निकाला। ३

रेभऋषि जलमें डूब गया था। दुष्ट (लोगोंके) नीच कर्मोंके कारण अश्वकी तरह रेभ ऋषि जलमें अदृश्य हुआ था। हे सामर्थ्यवान् वीर, आपने आश्चर्यकारक काम करके उसकी रक्षा की। आपका काम पुराना होनेपर भी कभी पुराना नहीं समझा जाता। ४

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, हीन अवस्थाको पहुँचे हुए वन्दनको कल्याण करनेके लिये अन्धकारमें छुपे हुए सूर्यके समान और सुन्दर द्रव्यसञ्चयको जमीनसे खोदे हुए सुवर्णके समान, संकटसे आपने बाहर निकाला। ५ (१३)

हे शूर सत्यस्वरूप देव, आपका काम ऐसा था कि जिसके कारण पञ्जकुलमें जन्म पाये हुए कक्षीवान्की ओरसे आपकी स्तुति हुई। जब आप सञ्चार करते थे तब आपने एक सामर्थ्यवान् अश्वके खुरसे लांगोंके कल्याणके लिये मधुर रसके सौ बड़े उत्पन्न किये। ६

कृष्णवंशमें उत्पन्न हुए विश्वकने आपकी स्तुति की। इसलिये आपने (उसके पुत्रको) विष्णापूत्रो दूगड़ निकाला। हे अश्विनीदेव, पिताके घरमें रहकर बुढ़ी हुई घोषाको आपने पतिका लाभ करा दिया। ७

३ वृषणा नरा, अनुपूर्वे चोदयन्ता, अशिवस्य दस्यो. मायाः मिनन्ता पाचज्ञन्य अत्रि ऋषि गणेन अहस. ऋवीसात् मुचय. ।

४ वृषणा नरा अश्विना, दुर्देवे अश्व न अप्सु गूह्य विप्रत त रेभ ऋषि दसोमि. रिणीत्र. वा पृथ्या न जूर्वन्ति ।

५ दत्ता अश्विना, निरृक्ते उपस्ये न सुपुष्वास, सूर्ये न तमसि क्षियन्त दर्शत ह्वम न वन्दनाथ शुभे उत् ऊपयुः ।

६ नरा नासत्या, पञ्जियेण कक्षीवता शस्य तत् वा, परिज्मन्, वाजिन अश्वस्य शफात् जगय मयूना शत कुभान् अरिचत ।

७ नरा, स्तुवते वृष्णिनाय विश्वकाय विष्णाप्व ददयु पितृपदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषाय चित् पत्ति जदत ।

हे अश्विनीदेव, आपने श्यावको वृषति नामकी भार्या दिलाई और कण्वको गृह-सौख्य अर्पण किया। हे सामर्थ्यवान् देव, आपने नृषदके पुत्रको कान दिये। वह आपका कृत्य प्रशंसा करनेयोग्य है।

नाना प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाले हे अश्विनीदेव, आपने जो अश्व पेदूको अर्पण किया था वह सैकड़ों प्रकारका वैभव ला सकता था। वह बड़ा बलवान् था, उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था, वह सर्पोंको मार डालनेवाला था; उसकी कीर्ति सन फैली हुई थी, और वह संकटमें सबोंकी रक्षा करनेयोग्य था।

हे अत्यन्त उदार देव, यही आपका कीर्तिमान् पराक्रम है जिसके कारण बुलोक और भूलोकमें आपकी स्तुति गायी जाती है; वही आपका निवास-स्थान है। हे अश्विनीदेव, पञ्च आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते हैं। इसलिये बड़ा अन्नसंग्रह आप इधर ले आइये और विद्वान् स्तुति-करनेवालोंको सामर्थ्य अर्पण कीजिये। १० (१४)

सब विश्वका पोषण करनेवाले हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जब मानने पुत्रका लाभ होनेके लिये आपकी स्तुति की उस समय आपने उस विद्वान् उपासकको सामर्थ्य अर्पण किया अगस्त्यक गाये हुए स्तौत्रोंसे आप सन्तुष्ट हुए, और आपने विश्वलाको संकटसे बचा लिया। ११

हे अश्विनीदेव, हे सामर्थ्यवान् बुलोकपुत्र, शयूकी रक्षा करनेवाले आप काव्यकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करनेके लिये बाहर चले गये थे। जिस तरह सुवर्णका घडा जमीनसे खोदकर बाहर ले आते हैं उसी तरह छुपा हुआ धन दसत्रे दिन आप बाहर ले आये। १२

८ अश्विना, युव श्यावाम रुतती अदत्त । कण्वाय क्षोणस्य महः । वृषणा तत् वा कृत प्रवाच्य यत् नार्षदाय श्रव अथ्यपत्त ।

९ पुरु वर्षासि दधाना अश्विना, पेदवे आशु सहस्रसा वाजिन अप्रतीत अहिहन श्रवस्य तस्त्र अश्व नि ऊदधु ।

१० सुदानू, एतानि वा श्रवस्या रोदस्यो ब्रह्म आगूष सदन अश्विना यत् वा पञ्चासः हवते श्वा च यात विदुष च वाज ।

११ भुरणा नासत्वा अश्विना, मानेन तुनो वृणाना विप्राय वाज रदन्ता, अगस्त्ये ब्रह्मणा वृथाना, दिशपत्न स अरिणीत ।

१२ अश्विना, दिव वृषणा नपाना, शयुत्रा, काव्यस्य सुस्तुति कुह यान्ता, हिरण्यस्य इव कलश दशमे अत्त निस्तात उत् ऊपयु ।

हे अश्विनीदेव, दुर्ग हुए चवनको आपने अपने सामर्थ्यसे फिर जवान बनाया । हे सत्यस्वरूपदेव, सूर्यकी कन्याने अपने वैभवके साथ बैठनेके लिये आपहीके रथको पसन्द किया ।

१३

हे तरुण देव, अपने प्राचीन रीतिके अनुसार आपने तुग्रके विषयमें बड़ी दया (सहाय-भूति) दिखलाई । पक्षीकी तरह चंचल<sup>१</sup> अश्वकी सहायतासे आपने भुज्यूको समुद्रके-जिसमें बड़ी बड़ी लहरे उछलती थी-बाहर निकाला ।

१४

हे अश्विनीदेव, तुग्रके पुत्रने आपकी पूजा की । समुद्रपर कामके लिये जब वह भेजा गया था तब वह निडर होकर चला गया । हे सामर्थ्यवान् देव, अच्छी तरह सजे हुए और मतकी नाई वेगवान रथमें बिठलाकर उसको अच्छी तरह आप बाहर ले आये । १५(१५)

हे अश्विनीदेव, जब आपने भेड़ियाके मुखसे लवा पक्षीकी रक्षा की तब उसने आपकी पूजा की । अपने विजयी (रथमें) बैठकर आपने पहाड़की चोटीको तोड़ डाला, और जहर पिला कर विष्णापूके पुत्रका नाश कर डाला ।

१६

ऋज्राश्वने भेड़ियाको खिलानेके लिये सौ बकरिया ला दी । उस कारणसे उसके दुष्ट पिताने उसको अन्धा बनाया । उसपर कृपा करके आपने उसको नेत्र अर्पण किये, और देखनेके लिये नेत्रमें प्रकाश उत्पन्न किया ।

१७

१३ अश्विना, जरन्तं च्यवान युव शचीभिः पुन युवान चक्रथु । नासत्या, सूर्यस्य दुहिता त्रिया मद युवो रथ अवृणीत ।

१४ युवाना, पूर्वेभिः एवैः एव तुग्राय पुनर्मन्यौ अभवत् । विभि ऋत्रेभिः अद्वैः अर्णयः समुद्रात् भुज्यु ह्यु ।

१५ अश्विना, तौश्य वा अजोहवीत् समुद्र प्रऊह्य अव्यधिः जगन्वान् । वृषणा, सुयुजा मनोजवना रथेन स्वस्ति निः ऊह्युः ।

१६ अश्विवा, यत् वृकरय आत्त सीं अमुचत् वर्तिता वां अजोहवीत् । जयुषा अद्रे सानु नि वयु । विश्वाचः जात विषेण अहत ।

१७ अश्विनौ, वृकये शत मेपान् ममहान् अश्विनेन पित्रा तमः प्रणीत ऋत्राये अशी आ अधत् । मन्थान् विचक्षे ज्योति चक्रथु ।



हे अश्विनीदेव, उस भेड़ियाने अन्धे हुए ऋचाश्वके लिये आप जैसे सामर्थ्यवान् और ताकती देवसे बड़ी नम्रतासे<sup>१</sup> प्रार्थना की। मुझे खानेके लिये एकसौ एक वकरियों देकर पुत्रा पतिज्ञो नई आने मुझपर बड़ी दृषा की। १८

हे अश्विनीदेव, भक्तोको रक्षा करनेवाला आपकासामर्थ्य बड़ा सुख देनेवाला है। हे वैश्वानर देव, लङ्गडे<sup>२</sup> सन्तुष्टको भी आप अच्छा करते है। इसीलिये पुरन्धीने आपको फिर दुलाया। हे पराशर देव, आप अपने सामर्थ्यके साथ उसको रक्षा के लिये चले गये। १९

सन्तुष्टोका गरा करनेवाले हे अश्विनीदेव, शयुके लिये दूध<sup>३</sup> न देनेवाली और दुग्गली गौने दमेष्ट दूध आपने उत्पन्न किया। आपने अपने सामर्थ्यसे पुरुमित्रकी कन्याको विनदकी पत्नि करा दी। २० (१६)

अत्रुका संहार करनेवाले हे अश्विनीदेव, जमीनमें हलसे अनाजका बीज बोकर मानव-जातिके लिये अन्नका समूह आप उत्पन्न करते है। अपने वज्रसे आप दुष्ट लोगोका नाश करते है। भक्तिदत्त लोगोके लिये आपने बहुत प्रकारा प्रकट किये। २१

हे अश्विनीदेव, अर्धके पुत्र दध्यचको आपने अश्वका तिर लगाया। अनन्तर, सराचरो पुरपने आरको एक पत्नी मीठी और गूड बात बतलाई, जो केवल त्वष्टा देवको नातुन थी और जिससे आप बड़े प्रसन्न हुए। २२

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १७, १८ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११८

हे ज्ञानवान् देव, आपकी कृपाकी मैं इच्छा करता हूँ। हे अश्विनीदेव, मेरी स्व स्तुतियोंका आप स्वीकार कीजिये। हे सत्यस्वरूप देव, हमें कीर्तिवान् सन्तान और वैभव अर्पण कीजिये।

२३

हे उदार और पराक्रमी अश्विनीदेव, आपने वृद्धिमतिको हिरण्यहस्त नामका एक पुत्र, अर्पण किया। हे दान करनेवाले अश्विनीदेव, जब श्यावका शरीर तीन जगह दूदा हुआ था तब आपने उसमें चैतन्य उत्पन्न किया।

२४

हे अश्विनीदेव, कई मनुष्योंने आपके पुराने बड़े बड़े कामोका वर्णन किया है। हे सामर्थ्यवान् देव, हम अपने कुटुम्बके मनुष्योंके साथ आपकी स्तुति गाते हैं और अपने यज्ञोंकी कीर्ति बढ़ाते हैं।

२५ (१७)

सूक्त ११८.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हे बलवान् अश्विनीदेव, आपके रथकी गति मनसेभी अधिक है। उसके तीन पैये होते हैं। उसका वेग वायुसे भी शीघ्र है। आपहीके तेजसे आपका रथ शोभायमान् दिखाई देता है। उसको वाज पत्नी जाता हुआ है। इसीके कारण वह आकाशमें उड़ता हुआ दिखाई देता है। वह कल्याण करनेवाला रथ हमारा और आवे।

१

हे अश्विनीदेव, आपके रथके तीन पैये होने हैं। उसका आकार त्रिकोण है। ऐसे सुन्दर रथमें बैठकर आप हमारा और आइये। आपकी कृपासे, हमारा गौ येयेष्ट दूध देवे। हमारे अश्व शीघ्र चलनेवाले होंवे, हमारे (कुलमें) वीर पुरुष उत्पन्न होंवे, और उनको उन्नति होंवे।

२

२३ कवी, सदा वां मुमति आ चक्रे अश्विना, मे विश्वा. विवः प्र अवत । नासत्या, बृहन्त अपत्यसाच रधि अन्ने रराधा ।

४ मुदान् नरा अश्विना, रराणा वत्रिमत्याः हिरण्यहस्त पुत्र अदत्त । अश्विना, त्रिधा ह विद्वत्त स्यात् से उत् एरयत ।

२५ अश्विना, एत नि वा पृथ्वीणि वीर्याणि आयव अवोचन् । वृषणा, युवन्त्यां व्रज ऋष्वन्तः सुवीगम. विदय आ वेदम ।

१ वृषणा अश्विना, वृ वा रथ मर्त्यस्य मनस. जवीयान्, त्रिवन्धुर, वातरहा, स्ववान्, मुग्दीर्घ, स्येनप्रवा अर्वाक् यातु ।

२ अश्विना, त्रिवन्दुरेण, त्रिवत्ता, त्रिचक्रेण सुवृता रथेन अर्वाक् आ यात । न गा. पिन्वत, अर्सेतः जिन्वत, अत्ने वीर वामत ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १८, १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११८

( शत्रुश्रोका ) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, सीधे<sup>३</sup> मार्गसे चलनेवाले सुन्दर रथमें बैठ-  
कर, आप सोमपत्थरका सुन्दर आवाज सुनिये । हे अश्विनीदेव, प्राचीन कालमें विद्वान् लोक,  
आपको 'दुःख मिटानेके लिये शीघ्र भागनेवाले देव' ऐसे क्यों कहते थे ? ३

हे अश्विनीदेव, आपके रथको जोते हुए, और आकाशमें शीघ्रतासे उड़नेवाले चञ्चल  
श्येन पक्षी आपको हमारी ओर ले आवे । हे सत्यस्वरूप देव, आकाशके गीधकी नाई वे  
हमारी रक्षा करते हैं । ( हमे ) खानेके लिये वे अनाज ले आते हैं । ४

हे शूर पुरुष, वह प्यारी<sup>२</sup> स्त्री, सूर्यकी कन्या, आपके रथपर चढ़ती है । वे सुन्दर अश्व,  
(आकाशमें) उड़नेवाले वे सुन्दर<sup>३</sup> और देदीप्यमान् पक्षी, आपको हमारी ओर ले आवे । ५ (१८)

हे शत्रुश्रोका नाश करनेवाले सामर्थ्यवान् देव, आप अपने अद्भुत कृत्योंसे वन्दनको ऊपर  
ले आये और अपने बलसे रेभको ऊपर उठाया । तुम्हारे पुत्रको आप समुद्रके परे ले गये  
और च्यवन हो फिर युवा बनाया । ६

हे अश्विनीदेव, सत्य स्थलमें चले गये अत्रिको आपने सामर्थ्य और सहायता अर्पणा  
की । अन्ये<sup>४</sup> बने हुए अत्रिकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करके आपने उसकी नेत्र अर्पणा  
किये । ७

३ दसौ अश्विना, प्रवक्षामना<sup>१</sup> सुवृता रथेन अद्रेः इमं श्लोकं शृणुत । पुराजा. विप्रास वा अवर्ति प्रति  
गमिष्ठा. किं अग आहु ?

४ नासत्या अश्विना, दिव्यासः गृध्रा. न ये अप्तुरः प्रयः अभि वहन्ति, रथे युक्तासः पतन्ता. आशव  
श्येनास वा आवहन्तु ।

५ नरा, जुद्धी<sup>१</sup> युवतिः सूर्यस्य दुहिता अत्र वा रथ आ तिष्ठत । वा वपुषः<sup>२</sup> अश्वा, अरुषा पतगा वय,  
वा अभिके परि वहतु ।

६ वक्रा वृषणा, दसनाभि वन्दन उन् ऐरयत, शचीभिः रेभे उन् ( ऐरयत ) । तौभ्य समुद्रान् निः  
पारयथ, च्यवान पुन युवान चक्रधु ।

७ अश्विनौ, तप्त श्वनीताय अत्रये ऊर्जे ओमान युव अधत्त । सुस्तुति जुजुषाणा अपिरिस्ताय<sup>१</sup> कम्वाय  
युव चक्षु प्रति अधत्त ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० १९ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११८

हे अश्विनीदेव, जब पुराण्ये शयूने आपकी स्तुति<sup>८</sup> की तब आपने (उसकी) धेनुमें पूरा पूरा दूध भरा दिया ।

हे अश्विनीदेव, आपने पेटूको एक ऐसा अश्व अर्पण किया जिसका रंग सफ़ेद था । इन्द्र उसको हाकता था । वह अश्व सांपोंका नाश कर सकता था । अच्छे वर्णोंके लोगोको देत कर वह (अश्व) हिनहिनाने लगता था । वह अश्व हज़ारो शत्रुओंका<sup>९</sup> नाश करनेवाला था । वह (अश्व) उग्र दिखता था । वह (अश्व) सैकड़ों प्रकारकी सम्पत्ति जीतकर ले आता था । वह सामर्थ्यवान था और उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था ।

हे अश्विनीदेव, आपका जन्म उब कुजमें हुआ है । आपकी प्रार्थना करके हम आपको हमारी रक्षा करनेके लिये बुलाते हैं । हमारी स्तुतियोंका स्वीकार कीजिये और धनसे भरे हुए रथमें बैठकर हमारे कल्याणके लिये आप हमारी ओर आइये ।

हे सत्यस्वरूप देव, हमारे रथेन पक्षीको नया वेग दिखाकर आप दोनों सम्मत होकर हमारी ओर आइये । हे अश्विनीदेव, जब यह पुरानी उषा अपना प्रकाश प्रकट करती है तब मैं आपकी पूजा करके आपको हवि अर्पण करता हूँ ।

८ अश्विना, नाधिताय<sup>१०</sup> पूर्याय शयवे युव धेनु अपिन्वत । वर्तिका अहस नि अमुचत, विदपलायाः जग प्रति अयत्त ।

९ अश्विना, युवं पेदेवे श्वेत, इन्द्रजूत, अहिहन, अर्य जोहृत्र,<sup>११</sup> अभिभूर्ति, उग्र, सहस्रसा, उग्र, अश्व अदत्त ।

१० एजाता नरा अश्विना, नाधमाना ता वा अवसे सु हवामहे । न गिर जुनुषाणा वसुमता रथेन मुक्ताय उप आ यात ।

११ नासत्या अश्विना, रथेनस्य नूतनेन जषसा सजोषा अस्मे आ यात । शश्वत्तमाया उपग न्युशो रानद्वय वा हवे हि ।

सूक्त ११९.

ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हमारी आयु बढ़ानेके लिये मैं आपके रथको इस हविकी ओर बुलाता हूँ । इस रथमें कई<sup>१</sup> अच्छी अच्छी वस्तुएं भरी हुई है । इस रथका वेग मनके समान है । उसके अश्व बड़े चञ्चल हैं । वह यजन करनेयोग्य है । उसपर हजारों भयड़े लगे हुए हैं । वह रथ अच्छी अच्छी लकड़ीयोका<sup>२</sup> बना हुआ है । उसमें सैकड़ों प्रकारका धन भरा हुआ है । उसने बड़ी नामवारी पैदा की है । उससे भक्त लोगोकी रक्षा होती है । १

जब आपका रथ चलता है तब मेरी बुद्धि चौक उठती है । इतनाही नहीं, किन्तु आपकी स्तुति<sup>३</sup> करनेके लिये मानो, दश दिशाएं इकट्ठी हो जाती है । गरम<sup>४</sup> हविकी (जहातक हो वहातक) मैं मधुर बनाता हूँ । भक्तगणोकी रक्षा करनेवाला आपका सामर्थ्य मेरी ओर आवे । हे अश्विन, ऊर्जानी आपके रथपर आरूढ हुई है । २

जिस समय बड़े बड़े वीर युद्धमें जयकी इच्छासे<sup>५</sup> जोरसे<sup>६</sup> लड़ते हैं तब आपका रथ आकाशसे नीचे उतरता<sup>७</sup> हुआ दिखाई पड़ता है । हे अश्विन, उस समय आप अपने चतुर भक्तोको वैभव अर्पण करते है । ३

पक्षीयोके समान चञ्चल अश्वोपर आरूढ होकर आप डूबनेवाले<sup>८</sup> भुज्यूकी ओर दौड़े । उन्ही अश्वोके द्वारा आपने उस (भुज्यू) को उसकी मातापितरोके पास पहुंचाया । आपके अश्व रथको स्वयम् जोत लेते है । हे सामर्थ्यवान् देव, भुज्यूका स्थान दूर<sup>९</sup> होनेपर भी आप वहापर पहुंचे । यह बात सबको विदित ही है कि आपने दिवोदासकी रक्षा अच्छी तरहसे की । ४

१ जीवसे वा पुष्पमाय<sup>१</sup>, मनोजुव, जीराश्व, यज्ञियं, सहस्रकेतु, वनिन<sup>२</sup>, शतद्वसु, श्रुष्टीवान, वरिवोधा रथ प्रयः अभि आ हुवे ।

२ अस्य प्रयामनि धीति ऊर्द्धा प्रति अवायि; शस्मन्<sup>३</sup> दिश स आ अयन्ते । घर्म<sup>४</sup> स्वदामि ऊतयः प्रति यन्ति । अश्विना, ऊर्जानी वा रथ आ अरहत् ।

३ यत् जायवः<sup>५</sup> अमिता. मखा<sup>६</sup> शुभे निथः पत्पृथानास रणे स अगमत, अह युवो रथ प्रवणे<sup>७</sup> चैक्विने, यत, अश्विना, सूरि वर आ वहय ।

४ विनिः सुव भुरनापं भुज्यु गत, स्वयुक्तिभि पितृभ्य. आ निवहन्ता । दृषणा, विजेय<sup>८</sup> वर्ति आ यासिष्ट, दिवोदासाय वा महि अव. चेति ।

अष्ट० ? अध्या० ८ व० २०, २१ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० ११९

हे अश्विन्, आपका जो रथ आपने आनन्दसे<sup>१०</sup> जोता था वह केवल आपको आज्ञासे ही चलता था। जो सुन्दर युवा स्त्री आपकी ओर आई थी उसने आपको पसन्द किया और (अन्तमे) आपही उसके पति बन गये। ५(२०)

आपने रेभकी संकटसे<sup>११</sup> रक्षा की; और अत्रिके तप्त हृदयकी गरमी शान्त की। शत्रुकी धेनुसे आपने अच्छा दूध उत्पन्न किया और (आपहीको कृपासे) वन्दनकी आहुति बढ़ गयी। ६

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे सामर्थ्यवान्<sup>१२</sup> देव, जिस तरह पुरानी गाड़ीकी मरम्मत करके वह नईसी बनजाती है उसी तरह बुढ़े<sup>१३</sup> वन्दनको आपने फिर जवान बनाया। स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर विद्वान् उपासकको आपने पृथिवीसे फिर उत्पन्न किया। आपको स्तुति करनेवाले भक्तोंके लिये आपका आश्चर्यकारक कर्म, कल्याणकारो होंगे। ७

(भुज्युके) पिताने उसको त्याग दिया था, इस कारण वह बड़े दूरके प्रदेशमें बड़ा कष्ट उठाता था। उसका दुःख मिटानेके लिये आप उसकी ओर (दौड़ते) चले गये। जब आप उसके पास थे तब आपका भक्तकी रक्षा करनेवाला, आश्चर्यकारक और उज्वल सामर्थ्य प्रकट हुआ। ८

उस मधुमक्षिकाने आपकी बहुत स्तुति की और उशीरका पुत्र सोमपान करके सन्तुष्ट होनेके लिये आपको बुलाता है। आप दध्युको भी सन्तुष्ट करते हैं। अश्वके सिरने आपसे सन्भाषण किया था। ९

५ अश्विना, वसुपे<sup>१०</sup> युवायुज युवोः रथ चाणी अस्य शर्व्य येमतु । वा पतिल सख्याय आ जग्मुषी ने या योषा युवा पती अहृणीत ।

६ युव रेभ परिपृते<sup>११</sup> उरुष्यथ , अत्रये हिमेन परितप्त घर्म । युव शयो गवि अवस पिप्यदु , वन्दन घिण आदुषा प्र तार ।

७ दहा करणा<sup>१२</sup>, रथ न जरण्यया निर्ऋत<sup>१३</sup> वन्दन युव स इन्वय । विप यया विप्र क्षेत्रात् आ जनय । वा अत्र विधते दसना प्र भुवत् ।

८ स्वस्य पितु लजसा नवाधित परावाते वृषमाण अमच्छत । अमीके दुवो जती इतः सागो नद अनिष्ट्य चित्रा अन्वत् ।

९ एतस्या मदिका वा नहुमत अरपत, सोमला मधे योकिज हुव यने । युव दरीदः नन आ पिप्यदय अम अरुष्य दिर वा प्रति वदत् ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २१, २२ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० १२०

हे अश्विन, आपने पेटूको जो सफेद अश्व दिया था उससे सब लोग प्रेम करते हैं। वह शत्रुओंको<sup>१०</sup> जीतनेयोग्य है, वह बड़ा तेजस्वी है, युद्धमें उसको कोई जीत नहीं सकता; सब जगह उसकी प्रशंसा<sup>११</sup> होती है और इन्द्रके समान वह सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ है। १०(२१)

सूक्त १२०.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हे अश्विनदेव, कौनसा यज्ञ आपको सन्तोष देता है? आप दोनोंको किस यज्ञसे आनन्द होता है? अज्ञानी मनुष्य (विना आपकी कृपाके) किस तरह रह सकता है? । १

चाहे अविद्वान् हो अथवा अज्ञानी हो; किसी प्रकारका मनुष्य हो! हरएक मनुष्यको विद्वान् (अश्विनी देवोंकी) सम्मति पूछना चाहिये। क्या सचमुच मर्त्य मनुष्यके विषयमें वे (अश्विनोदेव) कुछ कर नहीं सकते? (वे सब कुछ कर सकते हैं) । २

आप दोनों अश्विनीदेव विद्वान् हैं। आपकी हम स्तुति करते हैं और आपको पुकारते हैं। आप दोनों विद्वान् देव हमें एक सुन्दर स्तोत्र सूचित करेंगे। मैं आपका प्रिय भक्त हूँ। मैं आपको हवि अर्पण करता हूँ। और आपका पूजा करता हूँ। ३

शत्रुओंका नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, "वषट्" शब्दका उच्चारण करके मैं आपको अद्भूत हवि अर्पण करता हूँ। प्रेम्से<sup>१</sup> यह बात मैं देवोंको पूछता हूँ। बलवान् और चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंसे आप हमारी रक्षा कीजिये । ४

१० अश्विना, युव पदवे पुष्वार, स्पृधा<sup>११</sup> तरुतार, अभियु, शयं पृतनासु दुस्तर, चर्कृत्य<sup>१२</sup>, इन्द्र इव चर्पणीसह श्वेत दुवस्यथ ।

१ अश्विना, वा का होत्रा राधत् ? वा उभयोः जोषे क ? अप्रचेता कया विधाति ? ।

२ अविद्वान् अचेता इत्या अपर विद्वान् इत् दुर पृच्छेत् । मर्ते अकौ नु चित नु ? ।

३ ता वा विद्वान्वा हवामहे । ता विद्वान्वा न मन्म वोचेत । युवाकु. दयमान. प्र आर्चत् ।

४ दत्ता, वपददृत्तस्य अद्भुतस्य पाक्या<sup>१</sup> न देवान् वि पृच्छामि । युव सख्यसः च रभ्यसः च न पात ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २२, २३ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १७ सू० १२०

भृगुकी नाई आपका प्यारा भक्त घोष अपने मूँहसे आपकी प्रशंसा जोरसे करता है। उससे उसकी शोभा बढ़ती है। षन्नका पुत्र विद्वान् इष्यू स्तुतियोंके द्वारा आपकी वन्दना करता है। (आप उसे पसन्द कीजिये)। ५ (२०)

(आपकी स्तुति करनेके लिये) शीघ्रता<sup>१</sup> करनेवाले भक्तोंकी स्तुति सुनिये। हे अश्विन, जिसने आपकी स्तुति की वह मैं हूँ। हे कल्याण करनेवाले देव, हमारी ओर देखिये। ६

सम्पत्ति देनेवाले आप ही है और उसको ले जानेवाले भी आप ही है। हे वैभव स्वरूपदेव आप ही हमारी रक्षा करनेवाले हूजिये। और दुष्ट भेड़ियोंसे हमारी रक्षा कीजिये। ७

जो मनुष्य हमारा मित्र नहीं उससे हमारी पहचान न होवे। हमारी दूध देनेवाली गौओंको उनके बड़डोंसे<sup>२</sup> दूग् मत ले जाइये। ८

आपसे प्रीति होनेके कारण आपके भक्तजन गौओंको दोहते हैं और आपको दूध अर्पण करते हैं। हम आपके मित्र होनेके कारण आप हमारा वैभव बढ़ाइये, हमारी वेदोंकी वृद्धि होवे और भरपूर धान्य हमें अर्पण कीजिये। ९

५ भृगुवाणे घोषे वा प्र शोभे न, दया पञ्जिय विद्वान् इष्यु. न वा यजति ।

६ तक्वानस्य<sup>१</sup> गायत्र स्तुत । अश्विना, अह चित् वा रिरेभ हि शुभस्पती, अक्षी च्च ८१ ।

७ यत् महः रन् युव हि आस्त युव वा निरततसत, वसू, ता नः सुगोपा स्यात, न अवयो वृक्षात् ५०

८ कस्मै ऽमित्रिणे न मा अग्नि वात, न स्तनभुज वेनव अशिनी<sup>१</sup> गृहेन्य अकुत्र मा गु ।

९ युवाकु निवितये दृहीयन् । वाचपत्नै राये च न मिमीत, वेनुगर्लै श्ये च न. मिमीत ।



अष्ट० १ अध्या० ८ व० २३, २४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२१

अश्विनीदेव बड़े सामर्थ्यवान् है । उनका रथ बिना अश्वोंके चलता है । वह मुझे मिला<sup>१</sup> है और इस कारणसे मैं बड़ा आनन्दित<sup>१</sup> हूँ । १०

यह सुख देनेवाला रथ हमेशा<sup>१</sup> मुझे ऐसी जगह धीरे धीरे ले जावे जहां सोमरस तैयार करके रखा हुआ है । ११

वह रथ सोनेवाले और धनका उपभोग न लेनेवाले ( मनुष्यको ) तुच्छतासे देखता है । दोनो प्रकारके लोगोंका शीघ्रही नाश होता है । १२ (२३) (१७)

### अनुवाक १८.

#### सूक्त १२१.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेव, -इन्द्र ॥

मनुष्योका पालन<sup>१</sup> करनेवाले इन्द्र, यहाँ शीघ्र आकर भक्तिवान् अंगिरसकी स्तुति कब सुनेगे ? जब आप घरमें रहनेवाले मनुष्योंकी ओर चले जाते हैं तब आप यज्ञकी ओर बड़े गौरवके साथ पैर रखके चले जाते हैं । १

इन्द्रने ही दुलोक स्थापित किया । आप जैसे चतुर<sup>२</sup> पराक्रमी पुरुषने मनुष्यको सामर्थ्यका लाभ होनेके लिये धेनुके धनमें पुष्टि देनेवाला दूध उत्पन्न किया । महान् इन्द्रने स्वयम् उत्पन्न किये हुए समुदायको<sup>३</sup> घोड़ीयो और गौश्रोको अपने दृष्टिसे देखा । २

१० वाजिनीवतो अश्विनो. अनश्व रथ असन् । तेन अह भूरि चाकम् ।

११ अय सुख. रथ जनान् अनु सोमपेय मा समहं तनु ऊद्याते ।

१२ अध, स्वप्नस्य अभुजत रेवत च नि विदे । उभा ता बलिं नश्यतः ।

१ नृन् पात्रं इत्या तुरण्यन् देवयता अगिरसा गिर. कत् श्रवत् ? यत् हर्म्यस विश प्र आ यत्, यजत्रः अश्वरे उह कसते ।

२ सः वा लभीत् हि । ऋशु<sup>१</sup> नरः वाजायः गो. धरुण द्रविण पुषायत् । महिषः स्वजां मां, अश्वस्य मेना गो मातर, अनु परि चक्षत ।

लाल रङ्गकी उपाके पहिले शीघ्र प्रकाशित होकर अंगिरसके कुत्रमे उत्पन्न हुए मनुष्योंकी पूजाका आपने स्वीकार किया। जो वज्र आप अपने हस्तमे धारण करन है उसको आपहीने उत्पन्न किया, और मानवजातिको उपयोगी होनेके लिये आपने पशू (चतुष्पाद) और पक्षी (द्विपाद) उत्पन्न किये। उन्हींके लिये आपहीने युलोकको स्थापित किया। ३

सोमरसका पान करके आनन्दित होकर (सत्य) यज्ञकर्म अच्छी तरह चलानेके लिये देदीप्यमान् गौत्रोके भ्रुण्डको आपने बन्धनसे मुक्त किया और उनको फिर ला डिया। तिगुणा स्वरूप धारण करके जब इन्द्र युद्धकी ओर चले गये तब मानव जातिके शत्रुओके (वर्गे) दरवाजे आपने तोड़ डाले। ४

जब गौका दूध मातापिताने आपको अर्पण किया, तब मानो, आपको अमृतरूपी पेय ही मिला। इस तरह आपके पोषणका प्रबन्ध किया गया। जो सामर्थ्य और आनन्द देनेवाला दूध आपको मिला वह केवल आपहीके लिये (उत्पन्न किया गया) था। ५ (२३)

(देखिये), उपाके अनन्तर सूर्यकी नाई इन्द्रदेव प्रकाशित होता है और सबको आनन्दित करता है। यज्ञग्रहमे यज्ञचमसोसे जितने सोमरसके बिन्दु नीचे गिरते है उतने गरम हवि और स्तोत्र, वे (इन्द्र, सूर्य, उपा,) तीनों मिलकर अपनी ओर खींचलेते है। ६

सूर्यके यज्ञमे लकड़ीके राशिमे (एक) वृषभ बद्ध किया जाता है। उसमे अच्छी अच्छी लकड़ी डाल दी जानी है। जब वह काठका दर जलने लगता है तब आप अपना प्रकाश फैलाने ह। इस तरह दिनका काम सरल रीतिसे चलता है। प्रकाशित होनेके लिय जब आप रथमे आरूढ़ होते हैं तब हरएक मनुष्य अपने पशूको दूग्दते दूग्दते अपना काम करनेके लिये शीघ्रतासे चला जाता है। ७

३ अरणीः पूर्व्ये तुरः राद्रे अनु यून् अन्निरसां विशा हव नक्षत् । नियुत वज्र तक्षत्, नर्याथ द्विपदे तुष्पदे वा तस्तन्तत् ।

४ अस्य मदे अपिद्वृत उद्वियाणा स्वयं अनीक ऋताय दा. यत् ह त्रिककुप् प्रसर्गे निवर्तत् मानुष्यम् इत् तुर अप वः ।

५ यन् सर्वदुघाया उद्वियायाः पय ( पितरौ ) ते शुचि रेक्ण अयजन्त, तुरणे भुरण्यु पितरौ यत् राय तुरण पय. अनोता, तुन्य ।

६ अथ प्र जज्ञे । तरणि. ममत्तु । अस्या उपस सूर न प्र रोचि, येभि जरणा स्वदद्व्यं वा न जान तुवेण सिचन् इन्दु आष्ट ।

७ सूर अ वरे गोः रोचना त्विन्मा वनधिति यत् अ वरे जपन्ता, यत् ट कृत्वात् अनु यून् प्रनामि, न विने, पद्विपे, तुगाय ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २५, २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२१

देदीप्यमान् भरना उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये शुलोकसे आप भाठ घोड़े ले आये। उस समय आपके भक्तोने, आपको आनन्दित करनेके लिये अपने यज्ञपाषाणसे सोमरस तैयार किया। वह सोमरस उबलाया<sup>१३</sup> गया था। उसमें दूध मिलानेके कारण वह तीव्र बना हुआ था और पीला दिखाई देता था।

हे इन्द्र, आपको आपके भक्तगण पुकारते हैं। जब आपने कुत्सपर प्रसन्न<sup>१४</sup> होकर असंख्य शस्त्रोंसे शुष्णको घेर लिया तब शुलोकसे लाया हुआ लोहेका पत्थर आपने कुशाक्षतासे<sup>१५</sup> गोकनके<sup>१६</sup> द्वारा (शुष्णपर) फेक दिया।

हे वज्रधारी इन्द्र, जब अन्धकारने सूर्यको घेर<sup>१७</sup> लिया तब आपने अपना शस्त्र मेघपर फेक दिया। शुष्णका जो बल सब शुलोकको व्याप्त करता था उसका आपने नाश किया।

हे इन्द्र, शुलोक और भूलोक बिना पैयेके चलते हैं। वे श्रेष्ठ हैं। वे आपका पराक्रम देखकर आनन्दित होते हैं। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। जज्ञमे<sup>१८</sup> छुपे हुए वृत्र (वराहको) आपने अपने वज्रसे मार डाला।

हे इन्द्र, जिन मनुष्योंकी आप रक्षा करते हैं उनका आप कल्याण करते हैं। वायुके बलवान् और श्रद्धे शश्वोपर आप आरूढ़ हुईजिये। उशनाकाव्यने जो आनन्द देनेवाला वज्र आपको अर्पण किया है उसका उपयोग<sup>१९</sup> वृत्रको मार डालनेके लिये आप कीजिये।

८ एनरह उत्त योधन मह. दिव. अष्ट हरी इह आद, यत् वाताप्य<sup>१३</sup> गोरभस ते मन्दिन हरि अद्रिभि. धुक्षन् ।

९ पुद्गूत, कुत्साय वन्वन्<sup>१४</sup> यत्र अनन्तै वधै शुष्ण परियासि, दिवः आनीत आयन अस्मान ऋभ्वा<sup>१५</sup> गो<sup>१६</sup> प्राति वतय ।

१० अद्रिव, तमस सूर अपीते<sup>१७</sup> पुरा यत् हेति त फलिग अस्य, शुष्णस्य चित् यत् दिव परि पाराहेत सुप्राप्त ओज, तत् आ अद ।

११ इन्द्र, अचके मही पाजही दावाक्षामा त्वा अनु कर्मन् मदता । मह ल सिरामु<sup>१८</sup> आशयान वराह वृत्र वज्रेण सिस्वप. ।

१२ इन्द्र, यान् नृन् अव नर्य वातस्य सुयुज वहिष्ठान त तिष्ठ । उशना काव्य य मन्दिन ते दात्, पाच<sup>१९</sup> वृत्रहन वज्र ततज्ञ ।

अष्ट० १ अध्या० ८ व० २६ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १, अनु० १८ सू० १२१

हे इन्द्र, आपने सूर्यके पीले रंगके अश्वको<sup>१०</sup> रोका<sup>११</sup> । एतद्दाने उत्तके पैये नहीं सींचे । जो लोग आपकी पूजा नहीं करते उनको आप नव्वे नदीयोके परे ले जाकर गुरुमें फेंक देते हैं ।

१३

हे वज्रधारी इन्द्र, पाप और संकटसे हमारी रक्षा कीजिये । हमें ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे हम अपना पेट भर सके, हमारी कीर्ति बढ़े, हमें सैंकड़ो रथ प्राप्त होवे, सबी और मीठी वात सुने, और हमें सैंकड़ो अश्व मिले ।

१४

हे सामर्थ्यवान् इन्द्र, हमपर आपकी कृपा बनी रहे, हमें बहुत धनधान्य प्राप्त होवें । हे उदार इन्द्र, आप सबसे श्रेष्ठ हैं । इसलिये आपकी कृपासे हमें धेनुओका लाभ होवे । आप यज्ञा बैठिये, और हम आपको हवि<sup>१२</sup> अर्पण करते हैं । हम सब आनन्दमें रहे । १५(२६)(८)(१)

---

१३ इन्द्रा, ल सरः हरितः वृन्<sup>१०</sup> रमयः<sup>११</sup> अय एतदाः चक्र न भरतु अयज्युन् नाव्यतना नवर्ति पाव प्रास्य कर्त अपि अवर्तयः ।

१४ वज्रिवः इन्द्र; अभीके दुरितात् अस्याः दुर्हणायाः लं नः पाहि । इषे, श्रवसे, सुवृताये, रथ्यः अश्वबुध्यान् वाजान् नः प्र यन्धि ।

१५ सा ते सुमतिः अस्मत् मा वि दसत् । वाजप्रमहः इष स वरन्त । मघवन्, अर्यः गोषु न भग, ते २५। सधमादः साम ।

॥ अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ प्रथमोऽष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीय अष्टक ।

प्रथम मण्डल ।

॥ ऋग्वेद ॥

[ प्रथम अध्याय ]

[ अष्टादश अनुवाक ]

सूक्त १२०

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेव ॥

हे ऋग्विज, आप बड़े उत्साहों और चञ्चल हैं। अब अपना पेय, हवि और यज्ञ रुद्रको अर्पण कीजिये। आप ( रुद्र ) सिद्धि देनेवाले हैं। आकाशमें रहनेवाले परमेश्वरकी कृपासे वे पराक्रमी मरुत् अन्तरिक्षमें अपने बलसे रहते हैं। १

प्रथम आहुति पूर्ण उत्साहके साथ अर्पण करनेके लिये उषा और रात्रिकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। उषा और रात्रि नूतन वधूकी नाई अपने शरीरको शोभायमान करती हैं। उनमेंसे एक ( रात्रि ) विजलीरूपी वस्त्र पहिनकर चमकती है, और दूसरी ( उषा ) प्रातःकालमें सूर्यके किरणोंसे शोभायमान दिखाई देती है। २

अन्धकारका नाश करनेवाला और आकाशमें सञ्चार करनेवाला सूर्य हमें आनन्दित करे। जलकी वर्षा करनेवाला वायु हमें आनन्दित करे। हे इन्द्र और पर्वत, हमारी बुद्धि कुशाग्र होवे, और सब देव मिलकर हमें सब वस्तुओंका लाभ करा दे। ३

मैं उगिशजाका पुत्र हूँ। आप संसारका पालन करनेवाले हैं। आपका कभी नाश नहीं होता है। आप दोनों यश देनेवाले हैं और इसलिये प्रातःकालके समय मैं आपको ( दोनों अश्विनको ) बुलाता हूँ। आप अपने अग्निकी क्रमसे स्तुति कीजिये। अग्निकी प्रकट करनेवाली दोनों लकड़ीयाँको अपने सामने रखिये। यह अग्नि आकाशमें रहनेवाले जलमें भी प्रकट होता है। बड़े जोरसे चिड़ाकर यह अग्नि अपने भक्तोंको आशीस देता है। ४

१ हे रघुमन्यव ( यूय ) व पान्त अध यज्ञ ( च ) मीळुपे इद्राय प्र भरध्वम्, ( अहव ) असुरस्य दिव वोरै ऋग्विज रोदस्यो ( स्थितान् ) मरुत् अस्तोषि ।

२ पूर्वहृति वृध्ध्वै उपतानक्ता पुरुधा विदाने ( स्तवनीये ) । ( तयो एका ) स्तरी न व्युत अत्क वसाना, ( अपरा ) स्यस्य श्रिया हिरग्ये ( इव ) सुदृशी ।

३ परिज्मा वसर्हा न ममत्तु अपा प्रपण्वान् वात ममत्तु, हे इन्द्रापर्वता युव न शिशीतम्, तत विश्वे-देवा न वरिवसन्तु ।

४ उत औशिज श्वेतनाये, त्या मे यशसा व्यता पाता हुवध्वै ( प्रवृत्तः ), ( यूय ) व अपा नपात प्र ऋग्विज, रस्पिनस्य आयो मतरा प्र ( ऋग्विजम् ) ।

मैं उशिजाका पुत्र हूँ। आपके लिये जोरसे चिल्लानेवाले अग्निर्का मैं स्तुति करता हूँ। कोढ़ गोगका नाश होनेके लिये घोषाने भी इस प्रकार आपकी स्तुति की थी। आपहीके लिये दानी पूषाकी कृपा मैं प्राप्त कर लेता हूँ और धनका लाभ होनेके लिये मैं अग्निसे प्रार्थना करता हूँ।

५(१)  
हे मित्र और वरुण, मेरी पुकारकी ओर ध्यान दीजिये। जब आप अपने घरमें रहते हैं तब भी मेरी प्रार्थनाकी ओर ध्यान दीजिये। चारों तरफसे मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ। हमारी पुकार शीघ्रतासे सुननेवाला सिन्धु भी हमारी स्तुति सुने। आपका दान सबका विदित ही है। यह सिन्धु उपजाऊ प्रदेशको अपने जलसे भर देना है।

हे मित्र और वरुण, पञ्च कुलमें उत्पन्न हुए मुझको अनेक यज्ञके समय आपने संकड़ों गौधनका दान प्रदान किया है। उसका स्मरण करके मैं आपके दानी स्वभावकी बड़ी स्तुति करता हूँ। जिनके ग्यका दर्शन होते ही प्रेम उत्पन्न होता है वे मित्र और वरुण रथमें बैठकर वैभवके साथ आते हैं।

जिनका वैभव बहुत बड़ा है उन (परमेश्वरके) दानी स्वभावकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूँ। आप बड़े पराक्रमी हैं। हम सब मिलकर आपके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं। पञ्च कुलमें उत्पन्न हुए मुझको आपहीने पवित्र सामर्थ्य अर्पण किया। घोड़ोंपर सवार होकर मुझे सहायता देनेके लिये वीर पुरुषोंके मनमें (बुद्धिवान्) आपही प्रेरणा उत्पन्न करते हैं।

हे मित्र और वरुण, खुले तौरपर लोगोंका द्वेष करनेवाले, सोमरसका पान करके आपकी सेवा न करनेवाले, और कपटसे दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले दुष्ट लोगोंको जब विदित होता है कि सदाचारी भक्तोंकी सेवा अच्छी तरह सफल हुई है, तब उनके हृदयमें एक प्रकारका राग (चिन्ता) उत्पन्न होता है।

५ औशिज व (अयं) रुवण्यु आ हुवर्यं शस (कर्तुं प्रवृत्त), अर्जुनस्य नशे घोषा इव, व (अयं) नवे पूष्णे आ प्र (वोच्य), अग्ने. वसुताति अच्छा वोच्य ।

६ हे मित्रावरुणा म इमा हवा श्रुतम्, उत सदने (अपि) विश्वत सीम् श्रुतम्, सुश्रानु सिन्धु गानु, (अय) श्रोतुराति सुक्षेत्रा अद्रि (पिपति) ।

७ हे वरुण मित्र वा वृक्षयामेषु पत्रे (मयि) सा गवा शता राति स्तुपे, प्रियरये श्रुतरय सथ पुष्टि दधाना (ताच) निह्वानासः अगमन् ।

८ (अहम्) अस्य महिमघस्य राव स्तुपे, (वय) सुवीर नट्टय (अतः) राचा रांनम, (अपिच) या जन पत्रेन्य वाजिनीवान् (अस्ति), अन्धावत रयिन. मय्य सुरि. हि (चास्ति) ।

९ मित्रावरुणौ य जन अभिष्टक व अपा न सुनोति अक्षयामुकू च, स यत् कृताम शोनामि श्म आप (दति पश्यति तदा, स्वय हृदये चक्ष्म नि वत्ते ।

दूसरी ओर उपर्युक्त भक्तगणोंकी इतना शीघ्र उत्कर्ष होता है कि सब लोग आश्चर्य करते हैं । पराक्रमा पुरुषोमे भा वे भक्तगण दिनपर दिन बलवान् होते हैं । सब लोगोमे उनकी कीर्ति बढ़ता हुई सब दूर फैलती है, चाहे जैसा संकट होवे, दानी और पराक्रमी भक्तगण, ऐसे बड़े सकटसे भी अपनी रक्षा करते हैं । १०(२)

हे देव, जब भक्तगण आपको बुलाते हैं तब आप शीघ्रतासे भाईये । हे देव, भक्तगणको सहज रीतिसे आप अमरत्वका पद दे सकते हैं । आकाशतक आप सहज रीतिसे जा सकते हैं । पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाला कोई नहीं है । आप उनकी प्रार्थना सुनिये । आप उनको ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे उनकी सब जगह प्रशंसा होवे । ११

प्रत्यक्ष रीतिसे देव कहते हैं कि 'जिन भक्तोंके यज्ञमें दस प्रकारके हवियोंका स्वीकार करनेके लिये हम जात हैं उन भक्तोंका सामर्थ्य बहुत बढ़ जाता है' । जो पराक्रम और सामर्थ्यका केवल स्थान है ऐसे सब देव यज्ञमे हमे पवित्र सामर्थ्य प्राप्त करा दे । १२

कभी कभी देव अपने वचनसे कहते हैं कि 'चलिये, ये ऋत्विज दस प्रकारका हविरूपा अन्न लेकर हमारी ओर आये हैं, इसलिये हम उसका स्वीकार करते हैं' । इष्टाश्व अथवा इष्टरश्मि हमारे भक्तोंसे अधिक क्या कर सकते हैं ? लोगोपर अधिकार चलानेवाले और यश सम्पादन करनेवाले हमारे भक्त सचमुच शोभायमान दिखाई देते हैं । १३

कानमे सुवर्णके कुण्डल और गलेमे जेवरका हार पहिने हुए शरीरका लाभ सामर्थ्यवान् देवकी कृपासे हमे प्राप्त होवे । स्वयंस्फूर्तिसे हमारे मुखसे निकलनेवाली स्तुति और मन्त्र देदीयमान देव बड़े प्रेमसे सुने । १४

१० सः ( ऋतावा ) दसुजतः, ब्राधत. नहुषः शर्धस्तर, नरां गूर्तश्रवाः, विश्वासु पृत्सु ( सः ), विसृष्टरातिः शरः सदमित् वाळहसृत्वा याति ।

११ अध सूरे नहुष हवम् गन्त, हे अश्रुतस्य मद्रा राजान ( यूय ) नभोजुव ( तत् ) रधवते महिना प्रशस्तये ( यथा भवेत् तथा ) निरवस्य राध श्रोत ।

१२ यस्य सूरे दशतयस्य ( धासेः ) नशे ( वय आगताः तस्य ) एत शर्ध धाम इति ( देवाः ) अवाचन्, येषु युप्रानि वसुतातिश्च ररन् ते विश्वेदेवा प्रश्रयेषु वाजम् सन्वन्तु ।

१३ "यत् द्वि पञ्च अन्ना विभ्रतः यन्ति ( तस्मात् ) दशतयस्य धासेः मन्दा महे" ( इत्यपि भ्रुवन्ति ) । किम् इष्टाश्वो वा इष्टरश्मिर्वा ( करिष्यति ) । एते ईशा नास तरुषश्च ( भक्ता ) नृन् ऋजते ।

१४ ( यत् ) हिरण्यकर्णं मणिप्रोवम् अर्णं तत् विश्वेदेवा न वरिष्यन्तु । अस्मे उभयेषु ( निपये ) सद्यः आ जग्मुषीः गिर उस्ता अयं आचकन्तु ।

मशशारारके चार पुत्र और बड़ा बलवान् राजा आयवसके तीन पुत्र मुझे अब सता नहीं सकत । इसका कारण यह है कि, हे मित्र और वरुण, आपका बड़ा रय अब दिखाई देने लगा है । उसके किरण भी बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं । स्वयं वह रय बड़ा तेजस्वी दिखाई देता है ।

१५ (३)

सूक्त १२३.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-उषा ॥

यह उषा बड़ी सुन्दर दिखाई देती है । देखिये । उषाका बड़ा रय जोता हुआ त्रिलकुल तैयार दिखाई देता है । उस रयकी चारों ओर तेजोमय प्रकाशका गोला चमकता हुआ दिखाई देता है । काले अन्धेरेसे बाहर निकलकर प्रकाशमान उषा लोगोपर उपकार करनेके लिये अपना प्रकाश फैलाती हुई दिखाई देती है ।

जब सब लोग सोते हैं तब उषाही सबसे पहिले जागृत होती है । उषा मनसे भी अधिक पवित्र और सामर्थ्यवान् है । आप सबसे श्रेष्ठ हैं । आप सबसे अधिक उदार हैं । हमेशा युवा अवस्थामें रहनेवाली सुन्दर उषा बारबार आकाशमें जन्म लेती है और वहासे उच्च स्थानसे जगत्की चारों ओर दृष्टि फैकती है । प्रथम हवि अर्पण करनेके समय सबमें पहिले उषा आ पहुँचती है ।

हे उषादेवी, आप सबसे उच्च स्थानमें जन्म लेती है और सब मनुष्योंकी रक्षा करती है । प्रत्येक दिनका सुख और दुःखका भाग हृणक मनुष्यको आप बांट देती है । हे उषादेवी, आप हमारी ओरसे स्वयं प्रकाशमान सूर्यको ऐसा कहिये कि हम त्रिलकुल निष्पाप हैं । वह सूर्य अब प्रकाशमान होनेवाला है । वह सबको चैतन्य दिलाता है ।

प्रत्येक दिन उषादेवी भिन्नभिन्न प्रकारका पोषाक पहिनकर प्रकाशमान होती है । आप सब मनुष्योंको मित्रती हैं । सज्जनलोगोपर अनुग्रह करनेके लिये तेजामय उषादेवी बड़े उत्साहमें साथ आ रही हैं । जगत्में जितनी जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं उन सबका रस ( उपभाग ) उषादेवी अपने प्रकाशके द्वारा चख लेती हैं ।

१५ मशशारारस्य चत्वारि जिष्णो आयवसस्य राज्ञ त्रयं शिश्वं मा (अधुना न पीडयन्ति, यत ) दे वरुण वा दीर्घाप्सा स्युमगमन्ति रथ सूर्यो न अधीत ।

१ दक्षिणायाः (उपसः) पृथु रय अयोजि, एनम् अमृतास देवास आ अस्तु । अर्वा विश्व मागुपाय पाय चिकित्सन्ती कृष्णात् उदरथान् ।

२ विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अर्वावि, (सा) वाज जयती वृहती सनुत्री, युवति पुनर्भुं. व्यह्वय, उषा पृवहृती प्रथमा आ अगन् ।

३ हे देवी मुजाते उषा यत् (ल) मर्त्तत्रा, अद्य वृभ्य भाग विभजासि, अत्र देव दमूना सन्ति न मुययि अनागस इति वोचति ।

४ दिनेदिवे नामा अवि दधाना अहना गृह गृह अच्छ याति, सियागन्ती द्योतना च (उषा.) शं त्वा आ जगान्, वसुनाम् (च) अप्रमत्रम् इत् भजते ।



हे उषादेवी, यह बात विदित हुई है कि आप भगवान् सूर्यदेवकी बहिन हैं। वरुणदेवकी भी आप नातेदार हैं। हे उषादेवी, सत्य और मनोहर स्तोत्र गानेकी प्रेरणा करनेवाली आपही हैं। सबसे पहले हम आपहीकी स्तुति करते हैं। पापकर्म करनेवाला जो मनुष्य है वह ठोकर खाकर नीचे गिर जाय। आप सदाचारी हैं, इस लिये आपको सहायतासे इन पापी मनुष्यका एक प्रणाम नाश कर सकेंगे। ५(४)

अब हम सत्य और मनोहर स्तोत्र गाना शुरुं करता हूं। कविकी प्रभा काव्यके द्वारा प्रकट होवे। रात काजके समय अग्निपुराणमे जो अग्नि है वह प्रदित हो रहा है। जगत्मे जितना धन आजतक अन्धेरेमे छुपा हुआ था वह सब धन उषाके प्रकाशके कारण अब प्रकट हुआ है। वह धन अब दिखाई देता है। ६

जब उषा दिखाई देती है तब रात अन्धेरेमे चली जाती है। इस तरह वर्षरूप पुरुषके ये दोन भाग हैं। रात और उषा अनुक्रमसे छोटी बड़ी होती है और एकके पीछे दूसरी चली जाती है। उषा और रात जब पृथ्वीपर सञ्चार करती है तब दोनो भिन्न स्वरूप धारण करती है। जब रात सब दूर अन्धकारको फैलाकर चली जाती है तब उसके साथे उषा अपने प्रकाशके साथ रथमे बैठकर चली आती है। ७

जिस तरह उषा वरुणका रहनेका स्थानमे आज प्रकाशमान दिखाई देती है उसी तरह वह कल भी दिखाई देगी। इस तरह रात्रि और उषा लम्बे चौड़े आकाशमे सञ्चार करती है। उनको कोई दोष नहीं लगा सकता। वे दोनों निष्पाप हैं। वे निष्कलंक हैं। वे दोनो तीस दिन तक आकाशकी परिक्रमा करती हैं। इस तरह वे दोनो नियत समयपर अपना अपना काम पूरा करती हैं। ८

नये वर्षका नया दिन आतनवाली उषा अपने श्रेत रग और तेजोमय प्रकाशके साथ गहिरें और काले अन्धकारसे बाहर निकलती हुई दिखाई देती है। उषा होनेका अपना काम करनेमे मग्न हुई दिखाई देती है। तथापि सूर्यका नियत मार्ग छोड़कर उषा अपनी गन्तव्यको नहीं उलघन करती है। ९

५ ( ल ) नगस्य त्वसा वरुणस्य जामि , हे सूर्ये उप प्रथमा जरत्व । य अघस्य वाता स पश्चाद्घ्या . त दक्षिणया रथेन जयम ।

६ सूर्यता उदीरता पुरथो . उदीरता , अत्रय . च शुशुचानात् . उदत्यु । सार्हा वसूनि तमसा अप गुब्ज ( आसन् तानि ) विनाती उपम . आवि कृष्वन्ति ।

७ अन्यन् अग्नि एति अन्यन् अप एति , ( एतावता मवत्सरस्य ) विधुत्पे अहनी त चरेते । ( तयो ) परि क्षितो अया तम गुण अरु , ( अन्या ) उषा च शोशुचता रथेन अदीरु ।

८ सइसी . अय , उ च इत् महती ( एव ) ( एताइस ) वरुणस्य दीर्घ जान सचन्ते । अनवद्या ( ता ) एका त्रित्त योजनानि । ऋतु सग परि यन्ति ।

९ ( सवत्सरस्य ) प्रथमस्य अउ . नाम च नी ( सा ) शुका द्वितीची कृष्णात् अजनेउ । ( एया ) योषा अउर निष्कृतम् आपर ती इतस्य धम न विनाति ।

अष्ट० २ अध्या० १ व० ५,६,७ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १८ सू० १२४

उपांक अवयव कैसे हृष्ट पुष्ट दिखाई देते हैं! नयी वधुकी नाई तेजोमय उपा अपने देदीप्यमान पतिकी ओर चली जाती है। उपाका पति सूर्य भी उसके लिये मोहित हुआ है। तू भी मुक्कराती और चमकती हुई अपना वदन और छाती खुली रखकर उसके सामने चली जाती है। तू अपने युवा अवस्थामे हो; इस लिये तुमारे लिये यह बात ठीक ही है। १०

जिस तरह माता अपनी पुत्रीका शरीर पानीसे स्वच्छ करके सजाती है उस तरह, हे उपा, आप अपने सुन्दर अवयवोंको शोभायमान करके प्रकट करती है। आप प्रकाशमान हूजियं और हमें प्रकाश अर्पण करके हमारा पेसा कल्याण कीजिये जिसकी बराबरी दूसरी उपा न कर सके। ११

ये उपाएं बड़ी चञ्चल है। (ज्ञान देनेवाला) प्रकाश भी आपके पास भरा हुआ है। सुन्दर सुन्दर वस्तुएं आपके पास है। आप सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्धा करते करते गुप्त हो जाती हैं। फिर आप प्रकट होती हैं। इस तरह कल्याण करनेवाले रूपोंको धारण करनी हुई आप (उपाएं) चली जाती है और फिर आ जाती है। १२

हे उपा, सत्यस्वरूप सूर्यकिरणोंके साथ आपका स्वरूप मिल जाता है। आपकी कृपामें कल्याण करनेवाला सापथर्य हमें प्राप्त होवे। हे उपा, आज हम आपसे हार्दिक प्रार्थना करते हैं। हमारे लिये आप अच्छा प्रकाश दीजिये। हम और हमारे स्वामी दोनोंके लिये बहुत धनका लाभ आप करा दीजिये। १३(१)

### सूक्त १२४.

ऋषि-कक्षीवान् । देवता-उपा ॥

अब अग्नि प्रज्वलित हुआ है। उपादेवी अन्धकारका नाश करके अपना प्रकाश फैलाती है। सूर्यका उदय भी अब होनेवाला है। उपा और सूर्यके प्रकाशसे सब दिशाएँ शोभायमान हुई हैं! सब दूर चैनन्य उत्पन्न करनेवाला प्रकाशमय भगवान् सूर्य हमारे लिये पृथ्वीके गा वस्तुओंको जगाना है। और इसी कारण हम जैसे प्राणि, चाहे मनुष्य हो अथवा पशु हो, अपना अपना काम अच्छी तरह कर सकते हैं। १

१० तन्वा शानदाना कन्यव दे देवि त्व इयक्षमाण देव एषि । युवति. ( ल ) सन्मयमाना विभागी च ( अस् ) पुरस्तात् वक्षामि आवि कृणुषे ।

११ मानृमृश सुमकाशा योपा देव ( म्व ) तन्व दशे क आवि कृणुषे । हे उपा ल भद्रा वि । म्-मुन्त्र, तत् ते ( तेज ) अन्या उपस न नशन्त ।

१२ ( इना ) अन्वावनी गोमती निध्वारा च, सूर्यस्य रश्मिभि यतमाना पग वन्ति च पुनश्च गन्-यन्ति, ( एष ) उपस भद्रा नाम बहुमाना ( वर्तन्ते ) ।

१३ ऋत्स्य रश्मिन् अनु यच्छाना ( ल ) भद्र भद्र कतु अस्मानु वेदि । हे उपा ल यद्य मुद्रा वि उच्छ, मपवन्तु ( यजमानेषु ) अस्मानु च राय स्यु ।

१ मानवने अश्रो उपा उच्छन्ती मृय छ उपन् ज्योति उर्विया अत्रेत् । देव मणि ॥ १ ॥ १ न अर्थ तु द्विपत् वत् ११ १ १ प्रस वं न ।

ईश्वरके नियमको न तोड़ती हुई उषादेवी मनुष्योंकी आयुके कालको केवल कम करती है। आज्ञानक जितनी उषाएं चली गयी उनमें यह उषा पसिद्ध है, और आगे आनेवाली जितनी उषाएं हैं उनमें भी आज उगनेवाली उषा उत्तम है। २

देखिये। आकाशकी कन्या उषा पूर्व दिशाकी जोर दिखाई देने लगी। पराक्रमी स्त्रीकी नाई यह उषा प्रकाशरूपी वस्त्रको पहिनती है। और जो मार्ग सूर्यने नियम किया है उस मार्गसे घतुर स्त्रीकी नाई यह उषा चली आती है। वह अपने मार्गको कभी भूलती नहीं। ३

देखिये। मानो, उषा अपना शुभ्र और उज्वल वक्षस्थल सबको दिखलाती है। जिस तरह कवि हृदयके भावोंका वर्णन करके मनको प्रकट करता है उस तरह उषा अपना प्रकाश फैलाकर पृथ्वीकी सुन्दर वस्तुओंको दिखलाती है। जिस तरह घरका स्वामी अपने बालबच्चोंको उठाता है उस तरह उषा सब विश्वको जगाती है। उषा हमको नहीं छोड़ती, किन्तु बारबार हमारी ओर आती है और हमें आनन्दित करती है। ४

भास्वें भरी हुई पूर्व दिशाकी ओर प्रकाश देनेवाली उषाने आकाशमें अपना झण्डा लगाया है। उसका प्रकाश दूर तक फैला हुआ है। अन्तरिक्षरूपी मातापिताकी गोशमें बैठकर उषा अन्तरिक्षकी चारों ओर अपना प्रकाश फैलाती है और अपने प्रकाशसे आकाश भर देती है। ५ (७)

उषादेवि बड़ी उदार है। इस लिये आप सबको अपने प्रकाशके द्वारा अपना दर्शन देती है। पृथ्वीमें कोईभी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको उषाका दर्शन नहीं होता है। तेजस्वी उषा अपने स्वच्छ प्रकाशके कारण बिलकुल साफ साफ दिखाई देती है। उषादेवी किसीको चाहे बड़ा हो अथवा छोटा हो—तुच्छ नहीं समजती। ६

२ दैव्यानि व्रतानि अभिनतां, मनुष्या युगानि प्रमिनती ( एतादृशी ) उषा शश्वतीना ईयुषीणा उपमा आपतीना च प्रथमा वि अथौत् ।

३ एषा दिव दुहिता समना ज्योति वसा ना पुरस्तात् प्रति अदर्शि । ऋतस्य पन्थाम् प्रजानतीव साधु अनु एति, दिश, न मिनाति ।

४ ( पश्य अस्मा ) शुभ्युव न वक्ष उपो अदर्शि, नोधा इव प्रियाणि आविरकृत । अद्भसत् न ससत बोधयती ( सती ) शाश्वतमा एयुषीणाम् पुन ( न ) आ अगात् ।

५ अपत्यस्य रजस पूर्वे अर्धे गवा जनित्री केतु अकृत । ( यस्मिन् ) पित्रो उपस्था ( सा आसीना ते ) उभा ( तेजसा ) आ पृणन्तां, विउ वितर वरीय प्रथते ।

६ दशे क एव इत् एषा पुरतमा ( विभाति ), न अजामि न च जामिं परिवृणक्ति । ( किन्तु ) अरेपस्य तन्वा शाशदाना विभाती न अभात् न मह ( च ) ईषते ।

उपादेवि जब हमारे जैसे वीरोके सामने आती है तब वह अकेली रात्रहन्याकी नाई न्यायासन पर बैठकर न्यायनीतिके अनुसार सबको धन बांटती है। जिस तरह युवा स्त्री वस्त्र और अलंकारोंसे निजको सजाकर अपने पतिकी ओर चली जाती है, उसी तरह उपा बड़े ठाढ़से सुन्दर स्त्रीकी तरह चलती हुई और अपना सौन्दर्य और तेज कुशलतासे प्रकट करती हुई चली आती है। ७

छोटी बहिन ( रात्रि ) बड़ी ( उपा ) के लिये अपने स्थानको खाली करती है। मानो, उसकी ओर देखते देखते वह चली गयी। जब बड़ी बहिन उपा अपने प्रकाशके साथ प्रकट होती है तब मानो, मालूम होता है कि विजली स्वयं चमक रही है। (अथवा अलंकारसे सजी हुई युवा स्त्रीया ठाढ़से मेलेमे ( व्याहमे ) निकली हुई है। ८

प्रत्येक दिन यह विदित होता है कि, इन बहिनोमे जब पहली उपा चली जाती है तब उसके स्थानमे दूसरी नाई उपा आ जाती है। इससे यह साफ साफ विदित होता है कि भविष्यतमे आनेवाली सब नाई उपाएं पुरानी उपाओकी नाई हमाग कल्याण करे और दिन-पर दिन हमारा आनन्द बढ़ावे। ९

हे उदार उपादेवि, उदार शूर पुरुषोंको जागृत कीजिये। कंजूस दुष्ट लोग सोते रहें। वे हमेशा आलसी रहे। हे उदार उपादेवि, भक्तगणोंको धन देकर उनका वैभव बढ़ाईये। हे उपादेवि, सत्य और मधुर वचन कहनेके लिये आपही प्रेरणा करती है। कवियोंको बुद्धि देनेवाली आपही है। इस लिये आप भगवान् सूर्यकी स्तुति करन्वाले भक्तगणोंको धन देकर शोभायमान कीजिये। १०

देखिये। उपादेवि अपने सौन्दर्यके साथ सबके सामने आती हुई दिखाई देती है। उपा ने अपने रथको जो घोड़े जोते हैं वे सब लाल रंगके ही हैं। उसकी प्रकाशरूपी तेजोमय ध्वजा आकाशमे सब दूर चमकती हुई निश्चयसे शीघ्रही दिखाई देगी। उसके अनन्तर हर एक घरमें अग्निकी स्तुति सुनाई देगी। ११

७ अधातर पुम प्रतीची एति, गर्ताहक इव वनाना सत्रये ( एति ) । ( अपि च ) पत्ये उशती मुनासा  
८ उपा दृषा इव अस् नि रिणीते ।

( कनीयसी ) स्वमा ज्यायस्ये स्वप्ने योनिम् अरक्, ( अपि च ) अस्या प्रतिचक्ष्येव अप एति ।

९ रश्मिनि व्युच्छती ( उपा ) समनागा ( विगुता ) मा इव अग्नि अद्भ ।

१० आसा पूर्वामा स्वच्छणा ( एतद् दृश्यते यत् ) अहमु अपरा पूर्वाम् पश्चात् अग्नि एति । ( तस्मात् )  
नूनम् ता मुदिना नव्यसी उपस प्रत्नवत् अस्मे रेवत् उच्छतु ।

११ हे मघोनि उप, पृणत प्र वोवय, अबु यमाना पणय समन्तु । हे मघोनि, मृतृते, जरयन्ती  
मघवद्रव रेवत् उच्छ, लोत्र च रेवत् उच्छ ।

११ द्य युवति पुरस्तात् अव अश्वत्, ( रये ) अदृणाना गवा अनीक युङ्क्ते । नूनम् अग्नि ( आ धाते )  
केतु वि प्र उच्छात्, गृह गृह अग्नि उपतिष्ठते ।

हे उषा देवि, आपका प्रकाश दिखाई देते ही सब पक्षी अपने घोंसलोंसे बाहर निकलकर उड़ने लगते हैं। अन्नकी चिन्तामें लगे हुए लोग अपना अपना उद्योग धरने लगते हैं। किन्तु दानशील और सद्धर्म करनेवाले लोग (अग्निगो) हवि अर्पण करते हुए धर्म ही बैठते हैं। तथापि घर बैठे बैठे हवि अर्पण करनेवाले लोगोंको भी आप उनके घर जाकर बहुत धन प्रदान करते हैं। १२

हे महाभाग उषाओ, मेरी बुद्धिके अनुसार मैंने आपका स्तुति की है। उससे आप सन्तुष्ट भी हुए हैं। हे प्रेम करनेवाली देवि, अब हम ऐसा सान्न्ध्य दीर्घाद्ये जिसकी वरामग कोई न कर सके। १३ (६)

सूक्त १२५.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-दम्पती ॥

अतिथिने प्रातःकालमें आकर, अपने पासके सब रत्न (अपने पिताको) अर्पण किया। उसने (पिताने) उन रत्नोंके देखकर उनका स्वीकार किया। जिस पराक्रमी राजाने योग्य पुरुषको धन अर्पण किया था उसको बहुत धनका लाभ हुआ और उसको दीर्घकालतक आयु प्राप्त हुई। दिनपर दिन उसका धन भी बढ़ने लगा। १

उस राजाको ज्ञान, गोधन, अचिर सम्पत्ति, और अन्धे अन्धे घोड़े प्राप्त होवे। इन्द्र हमेशा उस राजाको युवा अवस्थामें रखता है। जिस तरह सिकारी पक्षीको अपने जालमें फसाता है उस तरह, देखो, हे अतिथि, उस (राजाने) तुमको सम्पत्ति देकर तुम्हें अपने धनसे बाधकर रखा है। २

यज्ञकर्मनिष्ठ पुरुषके योग्य पुत्रको मिलनेके लिये मैं आज सबेरे रथमें भरपूर धन भरकर यज्ञ आया हूँ। इस लिये उस बड़े पुरुषको सोमलतासे निचोडा हुआ और आनन्द देनेवाला रस अर्पण कीजिये। पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाले रुद्रकी सत्य और मधुर स्तोत्रोंसे स्तुति कीजिये। ३

१२ तेषुद्यौ वयश्चिन वमते उत् अपसन्, वेच नरः दितुभाज. (तेऽपि अपसन्) । (पर) अमा सते दाशुषे मर्त्याय हे देवि उप त्वम् वानम् भुरि वहसि ।

१३ हे स्तोम्या उपस नं ब्रह्मणा (यूय) अस्तोढुम्, (अपि च) उशती युयं अवीवृधध्वम् । हे देवी युष्माकम् अवसा सहस्रिण च शक्तिं च वाज संनम ।

१ प्रातरित्वा प्रातः रत्न दधाति, (पितापि) त (रत्न) चिक्रिवान् प्रतिगृह्य निधत्ते । तेन (दानेन) प्रजा आयुश्च वर्धयमान सुवीर रायस्पोषेण सचते ।

२ सगु सहिरण्य सु अश्वः (स) असत् अस्मै बृहत् वय इद्रः दधाति (यत्) हे प्रातरित्वा य आवायन्तम् मुञ्जीज्या पदिम् इव वसुना उत् सिनाति ।

३ इष्टे सुकृतम् पुत्र इच्छन् वसुमता रथेन अथ प्रातः आयम् । (तत्) मत्सरस्य अशो सुत (देव) पायय, क्षयद्वार सूत्रताभि. वर्धय ।

जो पुण्यवान् पुरुष यज्ञ करता है अथवा केवल यज्ञ करनेकी इच्छा करता है उसके लिये भी धेनु देनेवाली और भरपूर सुखकी महानदिया बहती है। उसी तरह ईश्वरको सन्तुष्ट करनेवाले मत्पुरुषोंकी और कीर्तिरूप धी का प्रवाह चारों ओरसे बहता है। ४

जो दानधर्मसे ईश्वरको सन्तुष्ट करता है वह स्वर्गकी पीठपर चढ़ता है और वहाँ ही रहता है। सचमुच वह देवताओंमें मिल जाता है। उसके लिये स्वर्ग और पृथ्वीकी नदिया धीको बहाती है। और उसीके लिये उपजाऊ जमीन धनकी भरमार कर देती है। ५

य नाना प्रकारका अमूल्य धन दान देनेवाले पुरुषोंके लिये है। दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंके लिये ही सूर्य और तारा आकाशमें प्रकाशित होते हैं। दान देनेवाले पुरुषोंका केवल नाश न होनेवाले उच्च स्थितिको प्राप्त होते हैं। दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंका केवल अपना और दूसरोंकी आयुको बढ़ा सकते हैं। ६

गान और धर्मसे (ईश्वरको) सन्तुष्ट करनेवाले पुरुषोंको दुःख और पाप प्राप्त न होंगे। सदाचारी और ज्ञानी पुरुष क्षीणताको प्राप्त न होंगे। कोई भी मनुष्य ऐसे भजनशील पुरुषोंको सहायता देनेके लिये तैयार होता है। सब दुःख पाप और शोक कञ्जूस मनुष्यों ही पर गिर पड़ें (केवल उन्हें प्राप्त होंगे)। ७ (१०)

### सुक्त १२६.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-विद्वांसः ॥

मैं भाव्य राजाकी हृदयसे प्रशंसा करता हूँ। मैं आपकी स्तुति केवल मामुल्की तौरपर नहीं करता हूँ। सिन्धु देशके रहनेवाले भाव्य राजाने मेरे लिये सहस्र यज्ञ किये। उसकी कोई जीत नहीं सकता। यह राजा सत्कर्म करनेकी इच्छा करनेवाला है। १

४ इजान (पुरुष) यक्षमाण चापि धेनुवः मयो भुवश्च सिववः उपक्षरन्ति । (ईश्वर) पृण त च पपुर्विव श्रमस्यवः घृतस्य वारा विश्रत उपयन्ति ।

५ यः पृणानि स नाकस्य पृष्टे श्रित आवितिप्रति, सहि देवमु गच्छति । तस्म आपः सिन्धवव घृत न्त तस्मे इय दक्षिणा (भूमिः) सदा अपन्वते ।

६ दक्षिणावन्ताम् इत् इमान् । चित्रा (वसूनि), दक्षिणा वाताम् दिवि सूर्यासि । दक्षिणावन्त अष्ट भजन्ते दक्षिणावन्तः आयु प्रातरन्त ।

७ (ईश्वर) पृण त उरित एन च मा आ अरन्, सुव्रतास मूरय मा जारिषु । अन्य क विद्र तोषा पारिवि अस्तु (सर्वे) शोका अपृण तम् अभि स यन्तु ।

९ सिवो आवि नियत भाव्यस्य अपन्दान् स्तोमान् मनीषा प्रगरे । यः राजा मे सहस्र सवात अभिमीत, (यश्च) अर्तुर्न एव इच्छमान, ।

उस राजाने मेरी बहुत प्रार्थना की। इसके कारण उसने दिये हुए सौ सुवर्ण मुद्राओं और सौ अच्छे अच्छे घोड़ोंका शीघ्रही मैंने स्वीकार किया। मुझे (कक्षीवान्का) उस पराक्रमी राजासे सौ गोएँ प्राप्त हुई। इस लिये मैंने स्वर्गतक उसकी अखण्ड कीर्ति फैलाई। २

स्वनय राजाने दिये हुए दस रथ उस समय मेरे पास थे। उस रथको काले रंगके घोड़े जोते हुए थे। उस रथमे मेरी नई विवाहित स्त्री बैठी हुई थी। उस रथके पीछे साठ सहस्र गौओंकी भुण्ड चली जाती थी। यह दान मुझे (कक्षीवान्को) पिछले दिनके साय-कालमे मिला था। ३

उन दस रथोंके साथ एक सहस्र (सिपाही) चल रहे थे। चालीस लाल रंगकी घोड़ोंकी कतार आगे चलती थी। वे घोड़े बड़े मस्त थे और बड़े ठाठसे चलते थे। वे घोड़े सुनहरी सिंगारसे युक्त और उज्ज्वल भी थे। उनके वदनपर सुवर्ण और मोतीके साज लदे हुए थे। कक्षीवान और उनके भाईबंदके नौकरोंने उन घोड़ोंको मालिस करके, तैयार रखा था। ४

जब पहिले दानका मैंने स्वीकार किया उसके अनन्तर आठ और तीन मिलके ग्यारा बैलोंसे जोती हुई एक (गाड़ी) का दान मुझे मिला। उस गाड़ीको जोते हुए बैल बड़े हृष्ट पुष्ट थे। वे राजाके वाडेमे रहने योग्य थे। भाईओ। आप सब एक कुटुम्बके मनुष्योंक तौरपर प्रेमसे रहते हैं। पत्रके कुलमे उत्पन्न हुए हम सब भ्रातृभावसे रहते हैं। और हम सब सत्कर्म करनेकी इच्छा करते हैं। ५

जब मैं अपनी पत्नीको आलिङ्गन देता हूँ तब वह बड़े प्रेमसे मुझे नकुलीकी तरह चिपकती है। आलिङ्गनके समय वह मुझे सैकड़ों सुखोंको देती है। ६

२ (अह) नाधनानस्य राज्ञ शत निष्कान्, शत प्रयतान् अश्वान् सद्यः आदम् । (अह) कक्षीवान् असुरस्य (राज्ञ) गोना शत (आदम्), अजर ध्रुव दिवि च आ ततान ।

३ (इदानीं) स्वनयेन दत्ता श्यावाः (युक्ता.) वधूमन्त दश रयासः मा उप अस्थु (तेषा पश्चात्) पति सट्त्र गव्य अनु आ अगात्, कक्षीवान् (एतद्) अहाम् अभिपित्ते सन्त् ।

४ दशरजस्य सहस्रय (सैनिकाना) अग्रे चत्वारिंशत् शोणाः (अश्वा) श्रेणि नयन्ति । (तान् च) मदच्युत कृशनावत. अत्यान् कक्षीवत पज्ञा च उत् अत्रक्षन्त ।

५ पूर्वाम् प्रयातिम् अनु त्रीन् अष्टौ च युक्तान् अरिधायस गाः वः आ ददे । हे सुवधव ये (युय) विद्वा वा श्व, (वय) पज्ञा (अपि) अनरवना. ध्रुव ऐपन्त ।

६ आगधता पारगधिता वा कक्षीकेव जज्ञहे । (सा) यादुरी मय्यम् याश्रता शता भोज्या ददाति ।

हे पति, मुझको अत्यन्त समीपसे स्पर्श करो । मुझे छोटी मत समझिये । गन्धार लोको की भेड़की तरह मेरा शरीर वालोस भरा हुआ है ।

७ (२१)

### अनुवाक १९.

सूक्त १२७.

॥ ऋषि-परुच्छप । देवता-अग्नि ॥

मेरा ध्यान सब अग्निकी ओर लगा हुआ है । आपही यज्ञके होता है । आप वृत्त उदार है । धनका सजाना आपही है । निर्बल मनुष्यको बल देनेवाले आपही है । जिन तरह विद्वान् ब्राह्मण अपने शास्त्रमें निपुण रहता है उसी तरह अग्नि सृष्टिके हर एक पदार्थको जानता है । अग्निकी कृपास हमारो यज्ञ पूरा किया जाता है । आपकी कृपा बहुत बड़ी है । आप जैसे देवका यह बात उचित ही है । आपकी बढती हुई ज्वालाओस विहित है कि स्वच्छ और ताजा घी और मक्खन आप बहुत चाहते है ।

हे अग्निदेव, आप अत्यन्त पूजनीय है । आंगिरस कुलमें उत्पन्न हुए भोगोसे आप श्रेष्ठ है । हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आपहीके लिये हम, जो आपके सेवक है—एक मतसे हवि अर्पण करते रहते हैं । हे तेजोमय अग्नि, सब विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ हम सुन्दर स्तोत्रोंके द्वारा आपकी प्रार्थना करते है । विजलीका रूप धारण करके मानो, आपने आकाशको घेर ( व्याप्त कर ) लिया है । आप सब मानवजातिक आचार्य है । आप बड़े पराक्रमी है । ज्वालाही केराले अग्नि, अच्छे अच्छे विचारोंको प्राप्त करनेके लिये, सब भोग आपकी शरण लेते है ।

सचमुच आपके चमकनेवाले शब्दके कारण आपका तेज बहुत उज्वल दिखाई देता है । उस दिव्य तेजके कारण दुष्ट लोगोंका नाश ही होना है, माना, वह तेज शत्रुओंका नाश करनेवाली कुन्हाड़ी ही है । जब अग्निके दिव्य तेजस साथ किसी कठिन पदार्थका स्पर्श होना है तब—चाहे जैसा कठिन पदार्थ हो—वह टूट जाता है । वृद्धकी तरह अज्ञान भंग हो जाता है । आपको कोई रोक नहीं सकता । जब आप किसी जगहपर खड़े हो जाते है तब आप कभी पीछे नहीं हटते । जब आप बड़े बड़े धनुर्धारी यान्त्रिक सामने डटे रहते है तब पीठ नहीं दिखाते ।

३

७ म ( अग ) उपेप परामृश, म ( अद्भानि ) दत्राणि ( इति ) मा मयथा, अह सर्वा, यासरोणाम् विना इव रोमशा अस्मि ।

१ अग्नि होतार, दास्वन्त वसु, सहस ससु, जातवेदस विप्रन जातवेदस य स्व नम देव ऊर्वया देवाया कृपा, आजुदानस्य वृतस्य सपिपथ विभ्राष्टिम् सोचिषाः अनु वष्टि ।

२ हे विप्र ( वय ) यजमानाः त्वा यजिष्ठ अगिरसा ज्येष्ठ मन्मभि हवेम, हे शुक्र त्रिप्रेभि मन्मभि ( हवेम ) । ( त्वा ) परिज्मानमिव या, चपणीनाम् हे तार, सोचिष्कश, यथणम् ( हवेम ) य त्वा इना विना विराथ जूतये प्र अवन्तु ।

३ स हि विहवमता पुक्षित्वा दीद्यान ओजसा द्रहतर द्रहतर परश न स्वन्ति । याय मन्तौ गीष्टिभिः (अपि) वत् च स्थिर (तदपि) वना इव श्रुवत् । निष्पद्मान अय यमत, न अयने व जगत् (अपि) न नमः ।



यह बात रात्रको निश्चित ही है कि कठिन कठिन पदार्थोंकी आहुति अग्निको दी जाती है। अग्निही कृपा करनेके लिये यजमान प्रज्वलित की हुई अरणी ( लकड़ी ) योके द्वारा हवन करता है। अग्नि अपनी ज्वालाओसे जंगलकी लकड़ीयोंका बड़े जोरसे नाश कर देता है। अग्नि अपनी ज्वालाओसे बहुत पदार्थोंमें घुसकर वृक्षोंकी तरह उनका नाश कर देता है। अग्नि अपने सामर्थ्यसे कठिन और कोमल धान्यको पका बनाता है और अपने गर्मीसे कठिन पदार्थोंका भी गलाता है। ४

दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अग्नि बहुत सुन्दर दिखाई देता है। दिनपर दिन बृद्धे होने परभी हमारे बलका नाश न होनेके लिये वेदोंके पास बैठकर हम अग्निके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं। जिस तरह पुत्रको पिताकी कीर्तिका आधार मिलता है उसी तरह अग्निके सामर्थ्यपर यजमान पूर्ण रीतिसे अवलम्बित रहता है। वेदोंमें जो अग्निका स्थिर रूप—जो कभी नष्ट नहीं होता और कभी क्षीय नहीं होता—दिखाई देता है वही हमारा अब और भविष्यत कालमें भी सब प्रकारसे आधार है। ५ (१२)

जब अग्नि, उपजाऊ जमीन परसे जोरसे चलता है अथवा शत्रुके सैन्यमें बड़े जोरसे घुसटा है तब वायुकी तरह वह भयकर गर्जना करता है। हवियोंको ग्रहण करके खानेवाला अग्नि यज्ञकी उज्ज्वल ध्वजा है। अग्निने आनन्दसे हमारे हवियोंका स्वीकार किया है। आप स्वयं आनन्दकी मूर्ति है और आप दूसरोको आनन्दित करते हैं। अग्निकी पूजा करनाही कल्याणकारक है। इस हेतुसे सब लोग अग्निकी सेवा करते हैं। ६

४ अस्मै हृत्वाचित् यथाविदे अनु दु, (अत यजमान) तेजिष्ठाभि अरणिभि अनगे दाष्टे, अग्नये अवसे दाष्टि। य वे व तक्षत पुरुणि (वस्तूनि) शोचिपा प्र ग्राहते, (अपि च) ओज्ज्वा विवरा चित् अन्ना निरिणाति स्पिराणि चित् ओजसा निरिणाति।

५ य दिवातरात् नक्त मुदर्शतर अस्य दिवातरात् अप्रायुषे त पृक्ष उपरासु धीमहि। आत् अस्य आयुः वीळु शर्म सूतवे न प्रभणवत्। अग्नय व्यत अजरा व्यता अजरा च (ते एव न) भक्त अभक्त अव (भवन्ति)।

६ अग्रस्वतीषु उर्वरासु इष्टनि स दि आर्तेनासु इष्टनि (वा) माहृत शर्धः न तुविष्वणि। स आददिः यज्ञस्य केतुः अर्हणा हव्यानि आदत्। अध स्म अस्य हर्षत हपीवतः पन्वा, शुभे पन्वा, न विश्वे नरः सुपन्त।

महा कवि भृगु आकाशमें अग्निकी ओर स्थिर दृष्टि जगाकर उसकी बड़ी नम्रतासे रो प्रकारकी स्तुति करता है । भृगुने बड़ी नम्रतासे अरणीयोंका मन्यन करके अग्नि उत्पन्न किया, ( दो लकड़ीयोंका रगडकर अग्नि उत्पन्न किया ) । इस तरह उत्पन्न किया हुआ अग्नि सव प्रकारके स्वामी है । आप बड़े पवित्र होनेके कारण सव प्रकारके धनको स्वार्थीन रखते हैं । हमारे हवियोंको आप बहुत चाहते हैं । इस लिये प्रज्ञावान् आप हमारे हवियोंका प्रेमसे स्वांकार करते हैं । उपर्युक्त अग्नि-केवल परमेश्वरकी मूर्ति-हमारे हवियोंके दानसे प्रसन्न होते । ७

आप सव लोगोके स्वामी हैं । सव लोग केवल आपहीको मानते हैं । हम अपने कल्याणके लिये, हम अपने लाभके लिये, आपको बुलाते हैं । हमारी प्रार्थना परमेश्वरकी ओर पहुंचानेवाले आपही हैं । सव मनुष्य जातिके आप बड़े अतिथि हैं । पिताकी तरह आप सव अमर देवोपर कृपादृष्टि रखते हैं । इसीके कारण सव अमर देव हमेशा युवा अवस्थामे रहते हैं । ऋत्विज अग्निके द्वाराही देवोकी ओर अपना हवि पहुंचाते हैं । ८

हे अग्निदेव, आप बड़े पराक्रमी हैं । आपका प्रभाव बड़ा है । इस लिये आपके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता । जब तक आप प्रकट नहीं होते तब तक हम ईश्वरकी प्रार्थना नहीं कर सकते । जिस तरह संसार चलानेके लिये धनकी आवश्यकता है उसी तरह देवोकी सेवा करनेके लिये आपकी ( अग्निकी ) आवश्यकता है । आप नित्य आनन्दी हैं । आपके तेजके कारण आप बड़े पराक्रमी हैं । हे अग्निदेव, आप कभी लुढ़े नहीं होते । इसलिये सव लोक आपकी सेवा करते हैं । हे स्थिर अग्नि, सेवककी तरह सव लोक आपहीको आज्ञा मानते हैं । ९

७ यत् कीस्तास अभिद्यव नमस्यत भृगव दाशा मभ्रत भृगव ई द्विता उपभेचन्त ( तस्मात् ) य एषा ( वसूना ) धर्षिं स अग्नि वसूना ईशे । मेधिरः ( अग्नि ) प्रियान् अपि धीन् वनिषीष्ट, मेधिरः जा िषीष्ट ।

विश्वासा विशा पतिं त्वा हवामहे, सर्वासा समान दपति भुजे ( अस्माक ) भुजे सत्यगिर्वाहिस ( हवाम ) । ( अपि च ) मानुषाणा अतिथिं, पितु न यस्य आसया, अमी विश्वे अमृतासः वय आ ( भजन्ते ), ४ च ( तव आसया ) देवेषु आ हव्या ( निदधति ) ।

९ अग्ने त्व शुष्मिन्तम सहसा सहन्तम, देवतातये, रथि न देवतातये जायसे । शुष्मिन्तम हि ते मद उत शुष्मिन्तम ऋतु । अब रम हे अजर ते त्वा परिचरन्ति हे अजर श्रुष्टीवान न ( पारचरन्ति ) ।

अष्ट० २ अध्या० १ व० १३, १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२८

अग्नि सबसे श्रेष्ठ है। अग्नि स्वयं सम्प्रवर्धवान् होनेके कारण तेजस्वी दिखता है। गडगि-याके पुत्र ( गोपाङ्गक ) की तरह अग्नि उषाके पहिले जागृत होना है। हमारा स्तुतियोंसे अग्नि प्रसन्न होवे। सब पृथ्वीपर हाथमें हवि लिए हुए, और अग्निके गुणोंको स्तुति करते हुए यज्ञमान दिखाई देते हैं। जिस तरह भाट ( ऋवि ) स्तुति करते हुए, राजाके सामने चल जाते हैं उसी तरह बुद्धिमान् होता सब देवोंके सामने अग्निके गुणोंका वर्णन करता है।

१०

हे अग्निदेव जब आप विलकुल हमारे पास प्रकट होते हैं तब आप और और देवोंकी तरह बड़ी कृपासे प्रसन्न होते हैं। हमपर कृपा करके आप हमें पवित्र धन अर्पण करते हैं। हे सामर्थ्यवान् अग्नि, हमें वह तत्व समझायिये जिससे हम पृथ्वीके सब पदार्थोंका उपभोग कर सकें। आपका नेत्र बड़ा तीव्र होनेके कारण मानो, यह विदित होता है कि आप सबको नाश करनेवाले उग्र और क्रूर दिखाई देते हैं। किन्तु, हे दानशील अग्नि, आपकी स्तुति करनेवालोंको आप बड़े वीर बनाने हैं।

११ (१४)

सूक्त १२८.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-उषा ॥

उशिजाका पुत्रोने जो तप किया उसके कारण मनुकी पुराणी वेदीमें माननीय अग्नि अपने वचनसे अनुसार प्रकट हुआ है। अग्निका साथ रखनेकी इच्छा करनेवाले भक्त गणोंकी आप सब प्रकारसे सहायता करते हैं। पुण्यकर्म करनेवालोंके लिये, मानो, आप धनका अमोल कोष है। आपका कभी पराभव नहीं हो सकता। आप आचार्य बनकर वेदीपर अधिष्ठित हुए हैं। आप अपने परिवारके साथ पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।

१

१० महे, सदसाः सहस्वते, पशुषे न उपवृधे, अम्रये, अम्रये ( देवाय ) वः स्तोम प्र बभूतु। यत् ई प्रति हविष्मान विश्वासु क्षासु जोगुवे, ( किञ्च ) ऋषूणा अग्ने रेभ न ( अय ) जूर्णिः होता ऋषूणाम् ( अग्ने अग्नि ) जरात् ।

११ हे ओं सन नेदिष्ट दृशान ( अन्यै ) देवेभि सुचेतुना महः रायः आ भर । हे शविष्ट न महि सक्षे कृधि, भुज च अस्मै ( कृधि ) । त्व मधी उग्र. न ( असि पर च ) मघवन् स्तोतृभ्य. महि सुवीयै ( कृधि ) ।

१ उशिजा व्रत अनु मनुषः धरीमणि अय यजिष्ठः होता अग्नि, स्व व्रत अनु जायत । सखीयते विश्व-श्रुष्टि., भ्रवरयते राय इव ( अय ) । ( अय ) अदग्ध. होता इळः पदे निषदत्, ( परिवारै. ) परिष्टतः इळः पदे ( अवतीर्ण ) ।

अष्ट० २ अध्या० १ व० १४ ] ऋग्वेदः [ मण्ड० १ अनु० १९ म० १२८

यज्ञको अच्छी तरह पूरा करनेवाला अग्निही है। इस लिये हम अग्निही वड़ी भक्तिसे स्तुति करते हैं। सत्य धर्मके मार्गपर चलकर और नमस्कार करके हम अग्निही हवि अर्पण करते हैं। जब हम ईश्वरका ध्यान करते हैं तब हम पहिले अग्निही हवि अर्पण करते हैं। अग्नि बहुत दयाशील है। दैवी तेज सुलभ रीतिसं प्राप्त करनेमें आप हमें साहायता देते हैं और कभी भी हिचकते नहीं। प्राचीन कालमें भार्गवा नामका एक ऋषि था। वह मनुके लिये स्वर्गसे पृथ्वीपर देदीप्यमान अग्निही ले आया । २

जिसका हम बारबार स्मरण करते हैं और जो वड़ी गर्जना करके पृथ्वीपर जलकी वर्षा कराता है वह अग्नि वर्षा करनेवाले मेघको एक क्षणमें घेर लेता है। वह फिर गर्जना करके जलवृष्टि कराता है। अपने सैकड़ों आखोंसे सब जगत्पर देखकर मेघरूपी अरुणामें इधर उधर सञ्चार करके वह अग्नि सब जगह हल्ला मचाता है। वह अग्नि पासके और कभी कभी दूरके पहाड़पर उतरकर आराम लेता है। ३

अग्निदेव सब बड़े बड़े कामोंमें निपुण है। यज्ञमें आप सबसे श्रेष्ठ आचार्य हैं। जिस वरमें हवियोंका ढान होता है उस आप हमेशा तैयार सिद्ध रहते हैं। जब यज्ञ शुरू होता है तब वह बात आपको दैवी सामर्थ्यसे विदित हो जाती है। अग्निदेव अपने परम भक्तोंके लिये अपने सामर्थ्यसे अनुकूल अवस्था उत्पन्न कराता है। आप सब सृष्टिपर अपनी दृष्टि रखते हैं। धीकी आहुतिके कारण अग्निदेव देदीप्यमान दिखाई देते हैं। आप अनियि वन गये हैं। हवि पहंचानेवाला और जगत्की रक्षा करनेवाला अग्नि अब प्रकट हुआ है। ४

२ त यज्ञसाध (अग्नि) अपिवातयामसि, ऋतम्य पथा, नमसा हविष्मता, देवताता हविष्मता । ४

५. न ऊर्जा उपावृत्ति न जयति, य (अग्नि) देव परावत. मातरिक्षा भनवे परामत भा ।

६. नी कनिकदत् वृषभ (अग्नि) पार्थिव रेत एवेन सद्यः पर्यति रेत (च) दधत् कनिकदत्

७. ) । रात अग्नि (सर्व) चक्राण वनेषु तुवणि देव अग्नि उपरेषु सानुषु ( तथा ) परेषु सानुषु

८. दधान ( मिथ्रान्वति ) ।

९. स अग्नि तुक्त्तु. पुरोहित, दमे दमे अ वरस्य यज्ञस्य चेतति, ( यत. ) कृत्वा यज्ञस्य चेतनि । कृत्वा

१०. चेतने वेना, विश्वा जानानि परशये, यत हृत्तरी ( अग्नि ) अतिथि अजायत, वडि वधा जगामत ।

जैसे हम अतिथिको अच्छे अच्छे भोज खिलाते हैं वैसे जब अग्नि की ज्वालाओं में बड़े बड़े आदरसे नित्यधिके अनुसार मरुतों की तरह हवि अर्पण करते हैं तब अग्नि बड़े उत्साह के साथ सुन्दर धन अपने प्रभावसे हमें प्रदान करता है। हमारा नाश करनेवाले सङ्कटोंसे दूसरोंके शापोसे और भ्रष्ट करनेवाले पापोंसे अग्नि हमारी रक्षा करता है। ५ (१४,

सुन्दर धन विश्वव्यापक और सामर्थ्यवान् अग्नि की दहिनी ओर है। जिस तरह सूर्य प्रकाश देता है उसी तरह अग्नि अपने भक्तोंको वह धन बांट देता है। किन्तु कीर्ति प्राप्त करनेके हेतु आप धन नहीं वाटते। जो लोग केवल हार्दिक भक्तिसे ईश्वरकी सेवा करते हैं उनके हवि, हे श्रेष्ठ अग्नि, आप देवोंको ओर पहुंचाते हैं। सज्जन और साधु पुरुषोंको उत्तम धन देनेके लिये आप आते हैं। भक्तोंके लिये कृपा करनेका आप हमेशा तैयार रहते हैं। ६

जिस तरह विजयी राजा अथवा लोकप्रिय अध्यक्ष धर्मसभामें जाकर बैठता है उसी तरह मनुष्यजातिका पाप हरण करनेके लिये अग्नि यज्ञमें अधिष्ठित होता है। क्यों कि पवित्र सुख केवल आपही अर्पण कर सकते हैं। वेदोंमें जो हवि अर्पण किये जाते हैं उनके स्वामी आपही हैं। पाप करनेके कारण जो दण्ड दिया जाता है उसकी बड़े वरुणदेवके द्वारा आपही हमें क्षमा करते हैं। ७

५ यन् मरुता न क्त्वा अत्य अग्ने तविषीषु अवेन इपिराय न भोज्या. नोज्या पृञ्चते। सहिस्म मज्मना च वसूना दान इन्वति, स अभिन्हुतान् दुरितान् शसान् अभिन्हुत (वा) अघान् न त्रासते।

६ (अय) विश्व विहाया अरति वसु दक्षिणे हन्ते दधे, (त च) तरणि. न शिश्रथन् (परच) ध्रवस्यथा न शिश्रथन्। विश्वस्मै इपुष्यते इन् देवना हव्य अ ऊहिपे। वि इस्मै सुकते इन् अग्नि वार ऋष्वति, द्वारा च वि ऋष्वति।

७ स अग्नि नाशये वृजने जेच विरपति न प्रिय विरपति (न) यज्ञेषु, (तथा) यज्ञेषु शतमः इति स नानुपायाम् हव्या इव्य कृतानि पश्यते, स वरुणस्य धूते मद देवस्य धूते न त्रासते।

अष्ट० २ अध्या० १ व० १५, १६ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १२९

अग्निदेव यज्ञके आचार्य हैं। आपहीकी ऋत्विज स्तुति करते हैं। आप भक्तोंको प्रिय है। आपही धनका कोप है। आपही ज्ञानवान् ईश्वर है। देवोंकी ओर हवि पहुंचानेके लिये ऋत्विजोंने बड़ी नम्रतासे अग्निकी प्रार्थना की। अग्नि सब विश्वका प्राण है। विश्वका ज्ञान अग्निकोही है। अग्नि यज्ञका आचार्य हैं। अग्नि पूज्य और बुद्धिमान् हैं। सब देवताएं अपनी कामना पूरी करनेके लिये बड़े उत्साहके साथ सुन्दर अग्निकी स्तुति करते हैं। सुगर्ही इच्छा करनेवाले देव भी मधुर सूक्तोंके द्वारा गर्जना करनेवाले अग्निकी स्तुति करते हैं। ८ (१५)

### सूक्त १२९.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-इन्द्र ॥

हे सबको प्रेरणा करनेवाले इन्द्र, यज्ञकी पूर्ति करानेके लिये जिन महात्माओंके पास आप अपना रथ ले जाते हैं उनकी इच्छा आप पूरी करते हैं और उनको बलवान् बनाते हैं। हे निष्कलंक इन्द्र, वे महात्मा चाहे जितने दूर हों उनके पास आप अपना रथ ले जाते हैं। दोगे रहित इन्द्र, सज्जन पुरुषोंको सहायता देनेके लिये आप दौड़ते हैं। हमारी ओर भा आप ध्यान दीजिये। जिस तरह प्रेमी कवियोंकी पुकार आप सुनते हैं उसी तरह हमारी भी पुकार आप सुनिये। १

हे इन्द्र, जब युद्ध शुरू होता है तब पराक्रमी पुरुष भक्तिसे आपकी स्तुति करते हैं। पापका नाश करनेके लिये भी लोग आपहीका स्तवन करते हैं। आप ऐसे सामर्थ्यवान् हैं। इसलिये हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान दीजिये। आप जैसे वीरोंके साथ यदि हम रहे तब हमें स्वर्ग प्राप्त होता है और हम सामर्थ्यवान् बन जाते हैं। बड़े बड़े राजा भी शूर इन्द्रकी शरण लेते हैं। आपको सामर्थ्यकी केवल मूर्ति समझकर सब लोग आपकी शरण लेते हैं। २

८ अग्नि होतार इच्छते, प्रिय वसुधिति चेतित्प्र अरति ( ऋत्विज ) नि एरिरे, हव्यवाह नि एरिग।  
' २म च ) विश्वायु विश्ववेदस होतार यजत कवि रण्व ( अग्नि ) वसुधिव देवास अवरो, वसुधा एव  
न ( इच्छते ) ।

१ हे इषिर, इन्द्र, ऋ य सत अपाका ( अपि ) मेवगातये ( स्वकीय ) रथ प्रणयमि, ह अनय ( रथ )  
प्रणयमि त सद्यश्चिन् अभीष्टये वश वाजिन च कर हे अनवय, तृतुजान स ( त्व ) अस्माक वयमा वा। प  
न अस्माक दसा वाच ( शणु ) ।

२ हे इन्द्र तामुचित् पृतनासु भरदृतये य स्म नृनि दसाय्य आगि प्रतृत्तये ( पि ) नृभि ( दसाय्य नृभि )  
ग त्व ( न ) श्रुवि, । य शूरै ( न ) स्व मनिता यद्य त्रिप्रे वात्त तदता, त वाजिन ईशानाम ईशान,  
अथ पृक्ष न वाजिन ( इरवत ) ।

सचमुच आप बड़े अद्भुत चमत्कार करनेवाले हैं। क्यों कि वर्षा करनेवाले मेवामे आपही छेद करते हैं। आपही दुष्ट मनुष्यको निकाल देते हैं। हे वीर, आपही अमर आत्माका नाश होनेवाले शरीरसे अलग रखते हैं। हे इन्द्र, आपके अद्भुत पराक्रमका वर्णन मित्र और रुद्रके सामने मैं करता हूँ। रुद्र स्वयं आकाशमें रहता है और अपने पराक्रमसे बड़ा मशहूर है। सुख देनेवाले वरुणके सामने भी मैं आपके प्रसिद्ध यशका वर्णन पूर्ण रीतिसे करता हूँ।

३

हम बड़ी इच्छा करते हैं कि, तुमारा और हमारा दोनोंका कल्याण करनेके लिये इन्द्र यहा आवे। इन्द्रपर हम बड़ा प्रेम करते हैं। आप विश्वव्यापी हैं। आपके सामने कोई भी लड़नेके लिये खड़ा नहीं रह सकता। युद्धमें आप हमेशा हमारे साथ रहते हैं। शत्रुओका पराभव करनेवाले आप हमेशा हमें सहायता देते हैं। युद्धके समय हम हमेशा आपकी स्तुति करते हैं। उससे आप आनन्दित होंगे। क्यों कि उसीसे हमारा रक्षा होती है। युद्धमें आपके सामने कोई भी शत्रु क्षणभर भी खड़ा रह नहीं सकता। कोई भी शत्रु आपके सामने आज्ञाय, आप उसका नाश करते हैं। यदि मनुष्य जातिका शत्रु आपके सामने आज्ञाय तो उसको आप मार डालते हैं।

४

हे इन्द्र, हमें सहायता देकर मत्त लोगोंका गर्व हरण कीजिये। हे उग्र इन्द्र, जलती हुई मशालकी नाई तीव्र शखोंसे शत्रुओकी घमण्ड उतार दीजिये। जैसे प्राचीन कालमें आप हमारे नेता थे उसी तरह अब भी आप हमारे नेता हैं। क्यों कि, हे वीर, आपको सब लोग निष्कलंक समझते हैं। आप इच्छित फल देनेवाले हैं। इसलिये सद्गुरुकी तरह आप हमारी ओर आइये और हमारे शरीरके और मनके पापोंका नाश कीजिये।

५ (१६)

३ दत्स\* ( अस्ति ) हि स्म, ( यत् ) वृषण त्वच पिन्वसि, कचित् अरु मर्त्य यावीः, हे शूर (अमर्त्यात्) मर्त्य च परिशृणक्षि । हे इन्द्र उत तत् ( ते यश ) तुभ्य, तच्च दिवेस्वयशस रुद्राय, मित्राय वोचम्, वरुणाय सुम्ह्रीकाय ( ते ) सप्रथ. ( यशः ) सप्रथ. ( वाचम् )

४ अस्माक व ( च ) शृष्टये इद्र उद्मसि—( इद्र ) सखाय, विश्वायु प्रसहम्, युजं, वाजेयु प्रसह, युजम् । वासुचित् पृत्सुषु अस्माक नद्म क्तये अव । शत्रु त्वा न हि तरते य ( पश्यति त ) स्तृणोषि, । व ३ शत्रु स्तृणोषि ।

५ ऊतिभि कन्नस्य चित् अतिमति नि सु नम, हे उग्र वैजिष्ठाभि. अरणिभिः न उग्राभिः ऊतिभिः ( अतिमति नमच ) । यथा पुरा न नापि, हे शूर त्व हि अनेना. मन्यसे । बन्धिः ( त्वम् ) बन्धिः न नः अच्छ पुरो विश्वानि ( एनासि ) अपपर्वि ।

हे इन्द्र, बड़े सोमके सामने ही आपके पराक्रमका वर्णन करना मुझे उचित है। मनको प्रसन्न करनेकी शक्ति आपमें है। इसलिये आप भी पूज्य हैं। आप राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं। तथापि आपहीके कारण मनमें पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं। स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। आप अपने नाश करनेवाले शस्त्रोंसे दुष्ट और निन्दा करनेवाले शत्रुओंको यहासे निकाल दीजिये। हमारे सामने आनेवाले पापी यहासे आप भगा दीजिये। भाफकी तरह उनका नाश होवे। ६

हे भगवन् इन्द्र, जो दिव्य तेज पराक्रमसे प्राप्त होता है, जो बहुत रमणीय है और जो बहुत उदार है और जिसके कारण पराक्रमके बड़े बड़े सुकर्म होते हैं ऐसे दिव्य तेजका लाभ हमें आपहीका एकान्त ध्यान करनेसे और आपहीकी प्रार्थना करनेसे प्राप्त होता है। आपका महिमा अचिन्त्य है। हमारी हार्दिक प्रार्थनासे और हमारे दिये हुए हवियोंसे आप प्रसन्न रहें। हे पूजनीय इन्द्र, हमारे गाये हुए सत्य सूक्त और हमारा हार्दिक प्रेम आपके पास जाकर मिले। आपको पहुंचे। ७

देखिये। दुष्ट इच्छा और दुष्ट लोगोका नाश करनेके लिये इन्द्र, तुमको और हमको सहायता देनेमें हमेंशा तैयार रहता है। हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले और हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले राक्षसोंकी सेनाका नाश होवे। यहा तक आनेके पहिले ही उस सेनाका नाश होवे। यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि हमारे ऊपर छांड़े हुए बाण यहातक आ नहीं सकते। ८

६ तत् (ते यश.) नव्याय इदवे (अपि) वोच्यम् यः श्यवान् (अतः) हव्य. न, (स) मन्म रेजति रक्षो हा (सन्नपि) मन्म रेजति । स स्वय अस्मत् वर्ध. निदः च दुर्मतिम् आ अजेत । (अत्य पुरा) गस अवतर अव खवेत्, क्षुद्रमिव अव खवेत् ।

हे रथिव इन्द्र, यत् सुवीर्यं रण्व सन्तम् सुवीर्यं रथि (अस्ति) तत् होत्रया चित्तन्या च धनेम् । १५ । न ई (इन्द्र) सुमन्नुभिः श्या च आ पृचीमहि, दुम्रहृतिभिः सत्याभिः युम्रहृतिभि च यजत्रम् २ । (पृचीमहि) ।

८ अस्मे व (अर्थे) स्वयशोभिः दुर्मतीना परिवर्गे, दुर्मतीना दरिमन् ऊती इन्द्र प्र प्र (मर्जित) । या न रियव्ये उपे च अत्रे (क्षिप्ता) मा स्वय हता ईम् असत् । न वक्षति, क्षिप्ता जूर्णि न वक्षति ।



हे इन्द्र, जिन मार्गोंसे जानेसे हमें धन मिले और जो मार्ग अच्छे हैं उन्हीं मार्गोंसे हमें ले चलो। जिन मार्गपर (दुर्वासना रूप) राक्षस नहीं हैं उन मार्गोंसे हमें आप ले चलो। जब हम घरमें रहते हैं और परदेशमें जाते हैं तब भी आप हमारे साथ रहिये। जब हम पास रहते हैं अथवा दूर रहते हैं तब हमारे ऊपर कृपा करके और हमें सहायता देकर आप हमारी रक्षा कीजिये। ६

हे इन्द्र, आप और आपका धन केवल हमारे लिये है। (लज्जाके मारे) आपको और कोई नहीं देख सकता। मानो, स्वयं यश निजकी रक्षाके लिये और निजके सुखके लिये मित्रकी तरह हमेशा आपके पास रहता है (आपका साथ कभी नहीं छोड़ता।) हे इन्द्र, आपका तेज बड़ा तीव्र है। हे लोगोका पालन करनेवाले इन्द्र, रथमें बैठकर आप भक्तोंकी रक्षा करते हैं। हे वज्रधारिन् इन्द्र, जो दुष्ट लोग हैं उनका अपने वज्रसे नाश कीजिये। हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोको भी आप मार डालिये। १०

हे इन्द्र, भक्तिसे हम आपकी स्तुति करते हैं। पापसे हमें दूर रखिये। दुष्ट लोगोका हमेशा नाश करनेवाले केवल आपही हैं। प्रत्यक्ष (साक्षात्) आप ईश्वरही हैं। इसलिये दुष्ट इच्छाओंका भी आप नाश कर सकते हैं। दुष्ट कर्म करनेवाले राक्षसोंका भी आप नाश करते हैं। हमें जैसे गरीब ब्राह्मणकी रक्षा करनेवाले भी आप हैं। हे आनन्द देनेवाले इन्द्र, इसी लिये जगत्पिता परमेश्वरने आपको (उत्पन्न करके) प्रकट किया। हे सुख देनेवाले इन्द्र, राक्षसोंका नाश करनेके लिये ही ईश्वरने आपको प्रकट किया। ११ (१७)

९ हे इन्द्र परिणसा राया अनेहसा पथा याहि, अरक्षसा ( च पथा ) पुर नः यदि नः पराके आ सचस्व अस्तमीक ( अपि ) आ सचस्व । नः दूरात् अभिष्टिभिः पाहि, आरात् च ( अपि ) अभिष्टिभिः सदा पाहि ।

१० हे इन्द्र त्व तरुपसा राया न ( अग्नि ) उग्र त्वा चित् महिमा अवसे, अवसे च महे मित्र न त्वा सक्षत् । हे ओजिष्ठ ( इन्द्र ) हे त्रात अमर्त्य, रय क चित् अविता ( त्वमसि ) । हे अद्रिव अस्मत् अन्य क चित् रिरिपे, अद्रिव रिरिक्षत् चित् ( रिरिपे ) ।

११ हे सुष्टुत इन्द्र धिध न पाहि, त्व दुर्मतीना सदमित् अवयाता, देव सन् दुर्मतीना ( चापि अवयाता ) पापस्य रक्षस हता, विप्रस्य मावत् चाता, अध हि हे वसो त्वा जनिता जीजात्, वसो रक्षोहण त्वा जीजन्त ।

सूक्त १३०.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-इन्द्र ॥

जिस तरह सत्यवान् महात्मा सभामें आकर बैठता है अथवा प्रजाका पालन करनेवाला सज्जन राजा अपने राज मंत्रीरमें आकर बैठता है उसी तरह, हे इन्द्र, उस लोकसे हमारी ओर आइये । सोमरस तैयार होते ही हम आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते हैं । क्यों कि हमें परम सुख प्राप्त करनेकी इच्छा है । जिस तरह पुत्र पिताको बुलाता है उस तरह सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये और जय पानेके लिये हम आपकी-जो बड़े दानशील हैं- प्रार्थना करते हैं ।

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासा बैल जलसे भरा हुआ झौंका सब पायी पी डालता है अथवा जिस तरह तप्त हुआ सूर्य मेघोदकसे पूरे पूरे भरे हुए सरोवर ( तालाबो ) को सुखाता है उसी तरह पत्थरसे चूर चूर किया हुआ और अच्छी तरह निचोड़ा हुआ सोमरसका, हे इन्द्र, आप स्वीकार कीजिये । आपको सोमरस पिलाकर आपको पूर्ण रीतिसे आनन्दित करानेके लिये आपके दिव्य अश्व आपको यहां ले आवे । आपका तेज सूर्यकी नाई बड़ा तीव्र है । सबको उत्साह देनेवाले सूर्यको जिस तरह अश्व ले आते हैं उसी तरह वे अश्व आपको भी ले आवे ।

जिस तरह पर्वतके दरारमें पड़े हुए पत्थरके आन्दर छिपा हुआ पक्षीका गर्भ बाहर लाया जाता है उसी तरह इन्द्र आकाशके उदरमें छिपा हुआ प्रकाशके निर्विको दूगडका जगतके सामने ले आय । वज्र धारण करनेवाले अंगिरसोंक स्वामी इन्द्र, बड़े ठाठसे प्रकाशरूपी धेनुओंको साथ ले आये । भक्तगण उससे आनन्दित हुए और अपने अपने अवतक रुके हुए पराक्रमके काम करने लगे । भक्तोंके लिये अन्न प्राप्त करनेका मार्ग इन्द्रने खोज दिया ।

१ हे इन्द्र अय सत्पति न अच्छा विद्वानि देव ( उतवा ) सत्पतिः राजा अस्तम् इव, त परावत उग ।  
गहि । प्रयस्वन्त वय सुते सचा त्वा हवामहे । पुत्रास पितर न वाजसातये महिष्ठ ( त्वा ) वात्रमावय  
( हे ) ।

२ हे इन्द्र क्रोशेन सिक्त अवत वसग न ततृषाण वसग न त्व अद्रिभिः सुवान सोम पित । ते ह्यताय  
मदाय तुविष्टमाय धायसे त्वा सूर्यम् हरितः विश्वा अहा सूर्य देव आ यच्छन्तु ।

३ अनन्ते अश्मनि अत अश्मनि परिवीतम् वे गर्भे न, दिव गुहा निहितम् निर्वि ( इन्द्र ) अंगिरस्तम  
गवा वज्रम् सिपासन् इव वज्री ( अय ) इन्द्र इय परिवृत्ता. ( द्वार ) इय. परिष्ठा द्वार न  
अवृणोन् ।

इन्द्रने अपना वज्र अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। इन्द्रने तरवार की तरह अपना वज्र प्रकट किया। वृत्रको मारनेके लिये इन्द्रने अपने वज्रको धार लगाया। हे इन्द्र, अपने दिव्य तेजसे आप चमकते हैं। आप अपने प्रभावसे और सामर्थ्यसे बड़े मस्त हैं। जिस तरह वृक्षको तोड़नेवाला अपनी कुल्हाड़ीसे वृक्षको बिलकुल तोड़ डालता है उसी तरह आप अपने शस्त्रसे दुष्ट शत्रुओंको मार डालते हैं। ४

हे इन्द्र, आपने रथकी तरह शौडते हुए बहते बहते समुद्रमें जाकर मिलनेके लिये उन नदीयोंको उत्पन्न किया। उन नदीयोंने सबके लिये एक कल्याणका काम किया है। जिस तरह काम धेनु मनुराजाकी इच्छा पूर्ण करती है उसी तरह वे नदियां सब जगतको इच्छित फल देती हैं। ५ (१८)

हम दीन जन, धनको इच्छा पूरी करनेके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं। उसके लिये हमने एक प्रार्थना सूक्त तैयार किया है। जिस तरह चतुर और कुशल कारोगर रथको अच्छी तरह तैयार करता है उसी तरह हम अपने मनमें आपकी मूर्तिको ध्यान करते हैं। हे परम बुद्धिवान् इन्द्र, आप विजयी हैं। हम आपका आदर करते हैं। जिस तरह युद्धमें पराक्रमी और साहसी वीरोंको अलंकार प्रदान किये जाते हैं उसी तरह वल यश और वैभव प्राप्त होनेके लिये हम आपको सन्मान अर्पण करते हैं। ६

४ वज्र गभस्ता ददरण तिग्म क्षत्रेव इन्द्र. असनाय स इयत् अहि हत्याय सद्यत् । इन्द्रः ता भोजसा सविष्यान मज्जना शवोभि. च ( सविष्यान. ) तथैव वक्ष वनिन नि वृश्वासि परश्वा इव वि वृश्वासि ।

५ हे इन्द्र त्व नष रथान् इव वाजयत रथान् इव समुद्र अच्छ सर्तवे वृथा असृज. । इत ऊती ताः समान आक्षित अर्थ अरुजत, ( यत् ) ( इमा ) मनवे विश्वदोहस धेनु इव जनाय विश्वदोहसः ( अभवन् ) ।

६ वसून्त ( वय ) आयव इमा त वाचम् अतक्षिपु, स्वपा धीर रथ न सुत्राय तां अतक्षिपुः । विप्र ता जेन्य सुभतो ( यथा ) वाजेषु वाजिन अत इव, शवमे धना सातये विश्वा धनानि सातये ।

हे पराक्रमी इन्द्र, अपने दानशील भक्त, दिवोदासके लिये आपने अपने वज्रसे शत्रुके नखे किलोका नाशकर डाला । भयंकर इन्द्रने अतिथिग्वाके लिये शम्बर राक्षसको पर्वतसे नीचे खींचकर मार डाला । इन्द्र अपने दिव्य सामर्थ्यसे सब प्रकारकी श्रेष्ठ सम्पत्ति अपने भक्तोंको देता है ।

७

इन्द्रने अपने सामर्थ्यसे युद्धमें अपने भक्तोंकी रक्षा की । ऐसे युद्धमें वीर पुरुषको स्वर्गलाभ होता है । अधर्मी लोगोंको आप दण्ड देते हैं और उनको सीधे मार्गपर ले आते हैं । काले रंगके राक्षसको जीतकर मनुराजाके सुपुर्द किया । सब जगत्को मानो, अपने तेजसे जलानेवाला इन्द्र, लालची राक्षसोंका नाश करता है और सज्जन पुरुषोंको सतानेवाले दुष्ट लोगोंको मार डालता हैं ।

८

इन्द्र अपने तेजसे प्रकट हुआ और आपने सूर्यके रथका एक चाक निकालकर राक्षसोंकी ओर फेंक दिया । प्रातःकालमें क्रोधसे तप्त होकर सूर्यके रथके दूसरे चाककाभी आवाज आपने बन्द किया । इस तरह इन्द्रने अपने प्रभावसे सूर्यके रथका आवाज बिलकुल बन्द किया । हे प्रज्ञावान् इन्द्र, प्राचीन कालमें जब उशनाकवि आपकी ओर आया तब आपने उसकी रक्षा की । मनुष्य जातिको जितना सुख मिल सकता है उतना सुख आपने उशनाकविको अर्पण किया । मानो, उसको अनन्त सुख प्राप्त हुआ ।

९

हे वृत्रके किले तोड़ डालनेवाले इन्द्र, आप भक्तोंकी इच्छा पूरी करते हैं और हमारी अपूर्व स्तुतियोंसे आप प्रसन्न होते हैं । कृपा करके हमारी रक्षा आप कीजिये । हे इन्द्र, दिवोदान आपने आपकी स्तुति की है । जिस तरह दिनक प्रकाशसे आकाशकी शोभा बढ़ती है उस तरह हे इन्द्र, आप अपने प्रकाशसे प्रकट हुईये ।

१० (१६)

७ पूरवे महि दाशुपे दिवोदासाय, हे नृतो, हे नृतो इद्र त्व वज्रेण नवति पुर भिनत् । उप अतिथिग्वाय गिरेः अव अभरत् । ( अय इद्र ) मह वनाान ओजता विश्वा वनानि आजसा दयमान ( भवान् ) ।

इद्रः शतमूति विधेषु आजिषु, स्वर्माळ्देषु आजिषु आर्यम् यजम न प्र अवत् । मनव अत्रता गाय । । त्वचम् ( अस्मे ) अरवयत् । । वश्रम् नय । न ( स ) तवृषाणम् आपति, अशानमन् । न आपत् ।

९ ( स्वय ) जात. ओजमा सृग् चक्र ( राक्षस-निवर्धनाय ) प्र वृद्धत्, प्रपित्वे ( च अपरम्य चक्र ) । । अरुण. वाच मुपायति ईशान आ मुपायति । हे कवे यत् उशना. परावत ( त्वा ) ऊतये अगमन् ( तदा प ) । विश्वा मनुषा मुन्नानि तुवाणिः इव, अहा विश्वा तुवाणिम् ( अभवत् ) ।

१० हे वृषकर्मन्, हे पुरा दत्त ( दद्र ) स ( त्व ) नव्येभि उव्ये ( तुष्टः सन् ) शर्म पायुभि न पात् । हे इद्र दिवोदासेनि. त्वान त्व अहोनि. ( प्रफोते. ) द्यो द्र वृषीया ।

सूक्त १३१.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-इन्द्र ॥

वेहद और प्रकाशसे भरा हुआ आकाश केवल इन्द्रको ही नमस्कार करता है । लम्बी-चौड़ी पृथ्वी भी अपने सौभाग्यके साथ, अपनी उत्कृष्ट सम्पत्तिके साथ और प्रपन्न फल-पुष्पोंके साथ इन्द्रको नमस्कार करती है । प्रेमसे एकत्रित हुए सब देवोंने इन्द्रकोही नेता बनाया है । हमारे सब सोमरस और हम जैसे भक्तजनोके हवि भी इन्द्रको ही जा पहुंचे । १

सोम अर्पण करनेके समय, आपको सबसे श्रेष्ठ देव समझकर यजमान लोक, बड़े उत्साहसे, आपकी प्रार्थना करन है । हरएक मनुष्य नित्य आनन्द प्राप्त करनेके लिये, स्वतन्त्र रीतिसे आपकी प्रार्थना करता है । प्राणकी रक्षा करनेवाली तरह बड़े कार्यके समय आपकी सहायता मागना हमारे लिये उचित है । हम जैसे मनुष्यगण और भक्तगण यज्ञके कारणाही इन्द्र देवके लिये सूक्त गाते हैं । केवल इन्द्रकी ओर ही हम अपना ध्यान लगाते हैं । २

हे इन्द्र, अनेक यजमान और उनकी स्त्रियां आपकी कृपासे गोधन प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करती है । दुष्ट इच्छाओंका नाश करके वे यजमान आपको आदुति अर्पण करते हैं और आपका यजन बड़े उत्साहसे करते हैं । जब आप, हे इन्द्र, यजमान लोगोको दिव्य प्रकाश और स्वर्गसुख प्राप्त करानेके लिये स्वर्गको ले जाते हैं तब आपका विजयी वज्र हमे सहज रीतिसे दिखाई देता है । प्राणके समान आप अपने वज्रपर प्रेम करते हैं । आप उससे कभी अलग नहीं होते । ३

१ असुर यौ. इद्राय हि अनन्नत, ( इय ) महीं पृथिवी युन्न साता, वरीमभिः इद्राय ( एव ) वरीमभिः ( अनन्नत ) । सजोषस विश्वे देवास इद्र ( एव ) पुरः दधिरे, ( तस्मात् ) विश्वा मानुषा सवनानि, मानुषा ( हव्यानि ) इद्राय ( एव ) रातानि सन्तु ।

२ विश्वेषु हि सवनेषु वृषमन्वव ( यजमाना ) समान एक ( देव ) तां पृथक् तुञ्जते, स्व सनिष्यवः पृथक् ( तुञ्जते ) । त त्वा पर्षणि नाव न श्रुत्य धुरि धीमहि, ( वय ) आयव. आयवः यज्ञै. न इद्र स्तोमेभिः इद्र ( एव ) वितयत ( वतमहि ) ।

३ अवस्यव मिथुना गव्यस्य व्रजस्य साता इद्र त्वा विततस्त्रे । ( हव्य ) निःसृज सक्षन्त नि सृजः ( विततस्त्रे ) । यत् गव्यता त्वर्यन्ता द्वा जना समूहसि, ( तदा ) इद्र वृषणं सचाभुव हे इद्र सचाभुव वज्रम् आवि करिक्नु ( एषि ) ।

हे इन्द्र, आपका पराक्रम अब सब जगत्को विदित हुआ है । शरद् ( जाड़ेके ) ऋतुमें अकालरूपी राक्षसके कीले आप तोड़ डालते हैं । आपने बड़ी कठोरतासे उन कीलोका नाश कर डाला । हे सामर्थ्यवान् प्रभो, अथर्मी लोगोको आप दण्ड देते हैं । विजय प्राप्त करके हर्ष पाये हुए आपने पृथ्वी, नदीया, और नदीके पासके प्रदेशको जीत लिया और आपने स्वार्थीन कर लिया ।

४

हे उदार इन्द्र, आपके भक्तोंने बड़े हर्षसे आपकी स्तुति की है । क्यों कि आपका माय प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तोंकी आपने रक्षा की । आपका सख्य प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हुए भक्तोंको आप सहायता देते हैं । जय प्राप्त करनेकी इच्छासे जब आप युद्धमें बड़ी इर्षासे भयंकर आवाज ( सिहनाद ) करते हैं तब नदीयोके अन्तर्गत प्रदेशोको आप जीत लेते हैं । अच्छा काम करनेकी इच्छासे आपने उन प्रदेशोको जीता ।

५

क्या इन्द्र आज प्रातःकालमें हमपर कृपा करेंगे ? हे इन्द्र, हमारे सामग्रीतको कृपा करके सुनिये । हम बड़ी नम्रतासे आपको हवि अर्पण करते हैं । दिव्य प्रकाशका लाभ होनेके लिये हम आपका प्रार्थना करते हैं । हमारी प्रार्थनाओ का स्वीकार कीजिये । हे वज्र धारण करनेवाले पराक्रमी इन्द्र, जब आप दुष्ट लोगोका नाश करनेकी इच्छा करते हैं तब हम आपकी स्तुति करते हैं । बड़े उत्साहसे और फूनीसे गाए हुए स्तुतियोका आप स्वीकार कीजिये ।

६

हे इन्द्र, आप बड़े वलवान् हैं । आप हमसे प्रेम करते हैं । आप सामर्थ्यवान् हैं । हे पराक्रमी इन्द्र, आपही आप हमारा द्वेष करनेवालो दुष्ट लोगोका आप नाश कीजिये । हम पर अन्याय करनेवाले लोगोकोभी आप अपने शस्त्रसे मार डालिये । कृपा करके हमारी प्रार्थना सुनिये । आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई । जब दुष्ट लोग हमारी ओर आते हैं तब मार्गमेंही उनका नाश होंगे । तुष्ट हुये गाडीकी तरह हमारा शत्रु मार्गमेंही गिरजाय । ७(२०)

४ पूरव ते अस्य वीर्यस्य विदुः यत् हे इन्द्र शारदीः पुरः अब अतिर, ममहानः अब अतिर. । शरद्

शरद् ( त्व ) त अयन्तु मर्त्ये शास. । महीं पृथिवी अमुष्णा. इमाः अप मदमान इमा अपः ( अमुष्णा )

५ इन्द्र ते अस्य वीर्यस्य मदेषु चर्किरन् यत् हे वृषन् उशिज अविष, सरीयत यत् अविष ।

प्रवन्तवे ( यत् ) एन्य कार चर्य ( त् ) ते अन्या अन्या नय सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ।

उत अया उपम न जुपेत् हि ( न. ) अर्कस्य वोवि, हवीमभि हविषः च स्वर्पाता हवीमभि  
स्वन्व च वोवि ) । यत् इन्द्र वज्रत् त्व इषा युवः इतवे चिन्देमि मे अन्य नवीयसः वेवस नवीयस  
, प्रतिनायत्य ) मन्म श्रुवि ।

७ न इन्द्र त्व वावृषन् ( अपि ) अन्मयु, हे तुविजात हे शू अमिचयन मर्त्ये वज्रेण मर्त्ये जहि, य. त  
न अधायति ( त अपि जाह ), मुश्रवन्तम् शृणुष्व ( एतद् ), इमर्ति अपमृतु । विसा इमर्ति रिः ( ५ )  
न वानन् अपमृतु ।

## सूक्त १३२.

॥ ऋषि—परुच्छेप । देवता—इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्र, पहले युद्धकी तरह इस युद्धमेभी हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंका हम आपकी कृपासे पराभव करेगे । क्यों कि हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं । उसी कारण हम अपने शत्रुओंका नाश भी करेगे । अब पराक्रम दिखलानेका समय तो आगया । आपको सोमरस पिलानेवाले आपके भक्तोंको आप आशीर्वाद दीजिये । हम केवल शूरता दिखलाने की इच्छा करते हैं । युद्धमे हमे जो लूटका माल मिलेगा वह सब हम आपकोही अर्पण करेगे । १

इन्द्रही स्वर्गको प्राप्त करानेवाला है । इन्द्रही सबे वीरोको वैभव दिखलानेवाला है । युद्धके समय प्रातःकालमे भक्तोंके गाये हुए स्तुतियोंका और प्रार्थनाओंका आप स्वीकार करते हैं । आप सन्तुष्ट होकर शत्रुओंका नाश करते हैं । यह बात सबको विदितही है कि आप बडे पराक्रमी हैं । इन्द्रको नमस्कार करके उसका सन्मान करना चाहिये । हे इन्द्र, आप कवल सौभाग्यकी मूर्ति ही हैं । आप हमपर कृपा कीजिये और हमारा कल्याण कीजिये । २

जिस यज्ञमें आपके लिये सुन्दर वेदी—मनोहर निवासस्थान—तैयार की जाती हैं उस यज्ञमे उज्ज्वल हवि भी पहिले की नाई आपको अर्पण किया जाता है । अपने भक्तोंको सनातन सत्य लोकको ले जानवाले आपही हैं । सूर्य प्रकाशके कारण अन्तरिक्षमे आपके भक्त लोग केवल आपका पराक्रमही देख सकते हैं । यह बात सबको विदितही है कि प्रकाशरूपी दिव्य धेनुओंको हूण्डकर निकालनेवाले केवल आपही हैं । जब आप अपने भक्तोंको अपनाते हैं तब आपही केवल उनके लिये धनूओंको भी ले आते हैं । बिना आपके दूसरा कोई भक्तोंको सहायता देनेवाला नहीं है । ३

१ हे भवन् इद्र ( यथा ) पूर्वे धने ( तथा इदानीं अपि ) त्वया लोता च वयं पृतन्यतः ससह्याम, वनुष्यत च वनुयाम । नेदिष्ठे अस्मिन् अहनि सुन्वते नु अधि वोच । ( यत ) अस्मिन् यज्ञे भरे कृत ( वय ) वाजयत भरेकृत वि चयेन ।

२ स्वर्जेपे, आप्रस्य वक्मनि ( एतादृशे ) भरे, उपर्युध स्वस्मिन् अजसि, काणस्य स्वस्मिन् अजसि इद्रः ( इन्द्र ) अहन् यथा विदे, स. हि शीर्ष्णांशीर्ष्णां उपवाच्य, अत्मत्रा त भद्रस्य शतय भद्रा. रातयः सध्रयक् सन्तु ।

३ यस्मिन् यज्ञे ( तुन्य ) वार क्षय अरुणवत ( तस्मिन् यज्ञे ) तत् शुशुक्न प्रयः प्रलथा ते ( एव ) तु ऋतस्य क्षय वा असि । अध तन् निवोचे. यत् ( भक्ता ) दिता अन्त रदिमभि पश्यन्ति । स इद्रः ध अनु विदे नो एषण. बहुक्षित्-य. गोएषण ।

हे इन्द्र, आपकी कीर्ति ऐसी है कि सब लोग उसका बारबार वर्णनही करते रहते हैं। अंगिरसोंके लिये प्रकाशरूपी धेनुओंको रोकनेवाले कीलोंको आपने तोड़ डाला। जान डिलानेवाले प्रकाशरूपी धेनुओंको स्वाधोन करके आपने अंगिरसोंके अर्पण किया। हम भी आपके भक्तही हैं। हमारे लिये भी आप युद्ध कीजिये। और आपकी कृपासे हमें जय प्राप्त होवे। जो लोग आपको सोमरस पिलाकर आपकी सेवा करते हैं वे सज्जन लोगोंको सतानेवाले अधर्मी और दुराचारी लोगोंके पूर्ण रीतिसे स्वामी बन जाय। ४

हे शूर इन्द्र, आपने अपने भक्तोंको भावी दशाका ज्ञान ईश्वरी कृपासे अर्पण किया है। जय और कीर्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तगण युद्धमें बड़े पराक्रमसे लड़ते हैं और सहज रीतिसे विजय पाते हैं। आपके लिये वे यज्ञ करते हैं। निजको और पुत्रको दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त आपकी स्तुति करते हैं। वे संकट समयमें आपहीकी स्तुति करते हैं। जब वे अन्य देवोंकी स्तुति करते हैं तब भी उनका ध्यान आपहीकी ओर रखता है। ५

हे इन्द्र और पर्वत आपही हमारे नेता हैं। जब कोई अपनी सेनाके साथ हमारे ऊपर चढ़ाई करता है तब आप अपने वज्रसे उसका नाश कीजिये। आपका शत्रु ऐसा है जो शत्रुको मार डाल सकता है। वह शत्रु चाहे जिस जगह छिपा हुआ हो? आप उसको मार सकते हैं। हे शूर इन्द्र, शत्रुओंका नाश करनेवाला आपका शत्रु चारों ओरके हमारे शत्रुओंका सब प्रकारसे नाश करे। ६

४ हे इन्द्र ते (वीर्यं) पूर्वया च नु इत्या प्रवाच्य यत् अंगिरोभ्यः (गवा) व्रज अप अत्रणोः, (त व) ज (तान्) अप शिस्तन् । (एव) एभ्य समान्या दिशा अस्मभ्य च आयोत्सि जेष च । (पर च) अत्रत मुक्त्वा, स्वयं हृणायन्तम् चित् अत्रतम् (अपि स्वयं) ।

५ हे शूर त्वं कृतिः (भक्त) जनान् स ईक्षयन् । ते हि श्रवत्यन् तक्षन्त, श्रवम्य च प्रतप्तान् । इत् प्रजावन् (दीर्घं) आयु (लब्धु) बावे च ओजसा अर्चन्ति । (तेषां) धीतय देवान् अच्छन्, अतय इद्रे ओक्त्वा दिधिष त ।

६ इन्द्रापर्वता, पुरोदुवा य. नः पृतन्यात् त, त इत्, जप इत्, त त इत् वज्रेण इत् । गद्वं वर इन्द्र इद्रे चत्ताय छयन्, शूर, दर्ना अन्माक शत्रून् विश्वतः परि दर्शयत् ।



सूक्त १३३.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-इन्द्र ॥

सनातन और सच्चा धर्म यज्ञ ही है। यज्ञके कारण ही हम पृथ्वी और आकाशको स्वच्छ कर सकते हैं। इन्द्र और ईश्वरको न माननेवाले बलवान् और दुष्ट भूतोको हम यज्ञके कारण ही जला सकते हैं। यज्ञ देखिये। हमारे शत्रुओका नाश हुआ है और उनके मृत शरीरके टुकड़े यज्ञ स्मशानमें गाड़नेकी जगह पड़े हुए हैं। १

हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, हमारे ऊपर हमला करनेवाले वाजीगरोका सिर काट डालिये। उनको अपने प्रचण्ड पैरके नीचे कुचल डालिये। उनको जगद्व्यापी पैरके नीचे कुचल डालो। २

हे उदार इन्द्रदेव, जादूगरोकी वह बलवान् टोली स्मशानमें गन्दी जगह पड़ी छिपी हुई रहती है। उस टोलीको दूरडो और उसका नाश करो। ३

पचास पचासकी तीन टोलीयोका आप पहिले ही नाशकर चुके हैं। ऐसे कामको आप कुछ नहीं समजते। तथापि हम उसको बड़े महत्वका काम समजते हैं। ४

हे इन्द्र, पीले रंगके, भयंकर स्वरूपके और बड़े जोरसे चिलानेवाले पिशाचको आप मार डालिये। उस पिशाचके साथ अन्य राक्षसाका भी नाश कीजिये। ५

१ ऋतेन (यज्ञेन) उने रोदसी पुनामि, या. महीः अनिद्रः दुहः ताः सं दहामि । (पश्य) यत्र अमित्राः अभिव्लग्य हता, परितुच्छा च बलस्थान अशेरन् ।

२ हे अद्रिव अभिव्लग्य चिन् यातुमतीना शीर्षा छिद्रि, वदरिणा पदा महा वदरिणा पदा (छिद्रि) ।

३ हे मधवन् आसा यातुमतीना शर्ष. अव जहि, वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ।

४ यासा तिलः पचाशत. अभिव्लगे अपावप, तन् (यद्यपि) ते तकन् सु मनायति, (भक्तः) ते वीय) सु मनायति ।

५ हे इन्द्र पिशाचान्छेष्टिन् अन्वृणन् पिशाचिन् स मृण, सर्वे रक्ष नि वर्तय ।

अष्ट० २ अध्या० १ व० २२ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० १९ सू० १३३

हे इन्द्र, ( शरीरको चिपके हुए ) भयंकर अन्धकारका नाश कीजिये । क्या आप हमारी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देते हैं । आकाशसे विजलीकी वर्षा करनेवाले और हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, आपके तीव्र तेज और प्रकाशरूपी ( अग्नि ) के कारण पृथ्वी और आकाश भी डरके मोरे विलकुल दुःखी और उदास दिखाई देते हैं । आप बड़े सामर्थ्यवान् हैं । नाश करनेवाले आप अपन शस्त्र और अस्त्र विलकुल तयार करके रखते हैं । उन शस्त्रोंके साथ आप सब जगह सञ्चार करते हैं । परन्तु, हे वीर, सात्विक और सज्जन लोगोको आप विलकुल नहीं सताते हैं । एकात्म सेवकोके साथ आप सञ्चार करते हैं । ६

सोमरस अर्पण करनेवाले यजमानको ही केवल आप धन देते हैं । सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तही केवल शत्रुओको जीत सकते हैं और उनको अपने अधिकारमें रख सकते हैं । सोमरस अर्पण करनेवाले पराक्रमी भक्त सैकड़ो जय प्राप्त करने हैं । ऐसे भक्तको इन्द्र यथेष्ट धन और सुख अर्पण करता है । परमेश्वर भी उतीको धन देता है । ७(२०)

६ हे अद्रिव इन्द्र, मह अव दादृहि, श्रुचि नः, हे अद्रिवः वृणान् भीषा न, दा. न वीः ( अग्नि ) भीषा शुशोच हि । त्व शुध्मितम. हि वधं. उप्रेभिः ईयमे, ( पर च ) हे सत्वभि. अप्रतीत शूर, त्व हे शूर अपहृषम.

सत्वभिः ( ईयसे ) ।

७ मुन्वान हि परीणस क्षय वनोति, मुन्वान हि द्विष अव यजति, देवाना द्विष अव यजति स्म ।  
मुन्वानः । इत् कर्त्ता अवृत्त. सदृचा सिषासति । मुन्वानाय इन्द्रः ( मुत्त ) आधुन ददान, रति आधुन ददति ।

अनुवाक २०.

सूक्त १३४.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-वायु ॥

हे वायो, आपके चञ्चल और वेगवान् अश्व, सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये सादिष्ट हवियोंकी और आपको ले आवे । इन सत्य, मधुर, ज्ञानमय और उदात्त स्तत्रोसे आपका मन सन्तुष्ट होवे । नियुत नामके वेगवान् घोडोको रथको जोतकर हमने अर्पण किये हुए हवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप इधर आइये । १

हे वायु, हमारे सोमरस आनन्द देनेवाले है । कुशलतासे वे तैयार किये गये है । उनवे तेजसे विदित होता है कि वे मानो, स्वर्गमे बने हुए है । सोमरसमे दुध मिलाकर वे और भी स्वादिष्ट बने हुए है । ऐसे सोमरसको पीकर, हे वायु, आप आनन्दित हूजिये । आपकी सहायता करनेवाले घोडे आपको सेवा करनेके लिये आपहीके साथ हमेशा रहते है । रथका जाते हुए घोडे ( प्रकाशकिरण ) जब भक्तोके मनमे पवित्र विचार उत्पन्न कराते है तब हमारे बुद्धिमान् ऋत्विज् वायुके लिये स्तोत्र गाते रहते है । २

यह वायु कभी कभी अपने रथको लाल रंगके और कभी कभी अबलक रंगके घोडे जोतता है । स्वतन्त्र रीतीसे सञ्चार करनेके लिये और चाहे जहा जानेके लिये यही वायु, अपने वेगवान् और बलवान् घोडोको रथके जूआको जोतता है । जिस तरह पती अपनी सोये हुए स्त्रीको जगाता है उसी तरह आप भी हमारे मनमे उच्च विचारोको जागृत कीजिये । पृथ्वी और आकाशके ऊपर जो पर्दा है उसको हटा दीजिये जिससे हम उनको देख सके । आप उषाको प्रकाशित कीजिये । उषाको इस लिये आप प्रकाशित कीजिये कि हम अपना सत्कर्म करे । ३

१ हे वायो (ते) जुव ररहाणा अभि प्रयः त्वा वहन्तु, इह पूर्वपीतये, सोमस्य पूर्वपीतये आवहन्तु । (इय) जानात उर्वा च सूनुता ते मन अनु तिष्ठतु, हे वायो नियुलता रथेन दावने मखस्य दावने आ याहि ।

२ हे वायो अमृत इद्व मन्दिन काणास, सुकृता अभिदव, गोभि काणा अभिदव त्वा मन्दन्तु । यत्र ह काणा उत्तय (अन्ता) दक्ष त्वा इरप्ये तत्त ते, यदा त नियुत. धिय. दावने सध्रीचीनाः (भवन्ति) (नात्वज) ई।धय उपत्रवन्ते ।

३ वायु (ऋदाचर) रोरता वायु (कदाचित्) अरण (अन्वा.) युष्के । (अय) वायु. रथे धुरि वंश्रवे, (सव) वाचव अजिरा वहिष्ठा (अन्वा.) धुरि (युष्के) । जार आ ससर्ती इव पुरधि प्रवोधय । रादती प्रचक्षय, उपनः वासय, ध्रवसे उपसः वासय ।

अष्ट० २ अध्या० १ व० २३ ] ऋग्वेद [ अण्ड० १ अनु० २० सू० १३४

हे वायु, देदीप्यमान उषा आपके लिये अपना सुन्दर और महीन मंगल-बल अपने अर्ध-किरणोंमें-अपने अलौकिक किरणोंमें सब दूर फैलानी है। अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणोंमें दिव्य वेणुएँ आपहीके लिये सुन्दर वस्तुओंको देनी (दिखाती) है। आकाशके उदगमें (अन्तरिक्षमें) आपही नूतन उत्पन्न करते हैं। नदीयोंको वक्षानेके लिये ही आप (समुद्रमें) आन्वी उत्पन्न करते हैं।

वे स्वच्छ सोमरस स्फूर्ति देनेवाले हैं। वे सोमरस आपको (वायूको) आगमसे ठेके नहीं देते। वे आपको (वायूको) अन्तरिक्षमें घुमाते हैं। वे आपके द्वारा पृथ्वीपर वर्षा कराते हैं। जब कोई यात्री प्रवास करते हुए थक जाता है और जब कोई चोर उसके ऊपर हमला करता है तब वह आपकी प्रार्थना करना है और आप उसकी रक्षा करते हैं। जब सब लोग आपके भक्तके विरुद्ध है तब आप उस भक्तकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसकी रक्षा करते हैं। गहरे अन्वकारमें भी आप दिव्य शक्तिसे अपने भक्तकी रक्षा करते हैं।

हे वायु, (यजमें) आप सबने पहिले है। इस लिये हमारे सोमरसका पान सबसे पहिले आपहीको करना चाहिये। पहिले पहिले सोमरसका पान करनेके लिये आपही योग्य हैं। आपको नानाप्रकारके हवि अर्पण करनेवाले और बैठनेके लिये दर्भासन देनेवाले भक्तोंके द्वारा हृत्वा सोमरसका पान आपको करना चाहिये। आपके लिये वेणुएँ अर्चवा दी देनी हैं।

१ तुभ्य यच्चः उपम (स्वेषु) दसु रश्मिषु नव्येषु रश्मिषु चित्रा भद्रा वत्वा सवति तन्वते। तुभ्य सर्वदृषा वेनु विश्वा दग्न्नि दाहते। त्व महतः दिव वक्षणान्य, वक्षणान्य आ अजनय।

(इने) मुक्तान् शुचय (सोमान्) तुभ्यन्त (पर च) मदेषु उषाः त्वा उपगत, सुवर्षि, नपा उपगत। सारा दमम न (भक्तः) तद्वर्षये त्वा भग इष्टे। (तदा) त्वम् (त भक्त) विश्वान्ना ए नान् वनना पानि, अदुर्वात् (अपि) वनना पानि।

१ हे वायो, त्व अर्च्यः प्रथम, नः एषाम सोमाना पीतिम् अर्हाम, मुताना पानि अर्हानि। उन विदु-त्सर्ताना, दिवर्षिणा विनाम् (एषु अथ सोम)। ते इत् विश्वाः वेनवः आशिर दुन्दे वृत् आशिर दुन्दे।

सूक्त १३५.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-वायु ॥

हमारे यहां दर्भासन बिछा हुआ है । इस लिये, हे वायु, छवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप हमारे यहां आइये । प्रशसायुक्त मन्त्र कहनेके कारण सोमरस तीव्र बन गया है । अपने रघको हजारों घोड़े जोतकर सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये यहां आइये । हे भगवन् वायुदेव, अन्य देवताएँ सोमपान करनेके लिये आपको यहां पहिले आनेके लिये आप्रह करती है । आपको आनन्दित करनेके लिये मधुर सोमबिदु हम आपको अर्पण करते हैं । हम आपको सोमबिदु इस लिये अर्पण करते हैं कि आप सत्कार्य करनेके लिये प्रेरणा उत्पन्न करें ।

पत्थरोसे पिसे हुए सोमरसको केवल आपहीके लिये हमने तैयार किया है । यह स्वच्छ और तेजस्वी सोमरस थालीमे डाला हुआ है । ( मोतीकी नाई ) यह तेजस्वी सोमरस छाना हुआ है । सोमरसका एक भाग आपको अर्पण किया जाता है और दूसरा भाग अन्य देवता-ओंको और दिव्यजनोको अर्पण किया जाता है । हे वायुदेव, आपके घोडोको हमारी ओर खींचो । हमपर आप बड़ी कृपा करते हैं । हमपर आप बहुत प्रेम रखते हैं । आप सन्तुष्ट होकर हमारी ओर आइये ।

हे वायुदेव, आपके सैकड़ों नहीं हजारों घोडोको जोतकर हमारे यज्ञके समय छवियोंका स्वीकार करनेके और आस्वाद लेनेके लिये आप आइये । एक भाग केवल आपहीके लिये अलग रखा हुआ है । रविकिरणोके प्रकाशके कारण वह भाग बहुतही तेजोमय दिखाई देता है । हे वायुदेव, अध्वर्युने आपके लिये थालीमे सोमरस तैयार रखा है । उसको हम आपके सामने रखते हैं । मोतीकी नाई शुभ्र सोमरसको हम बड़े प्रेमसे आपको अर्पण करते हैं । ३

१ स्तीर्णे वहि उपनः याहि वीतये, सहस्रेण नियुता नियुत्त ( सोमाय ) शतिनीभिः ( स्तुतिभिः ) नियुत्वते ( आयाहि ) । तुभ्य देवाय देवाः पूर्व पीतये येभिरे हि । ( इमे ) मधुमत सुतास ते मदाय प्र अस्मिन्, ( तव ) ऋत्वे अस्मिन् ।

२ अय अद्रिभिः परिपूत स्वर्गा वसान तुभ्य कोश परि अर्पति, शुक्रा वसान अर्पति । तव अय भाग, अय सोमः देवेषु आयुषु दूयते, ( तव ) हे वायो नियुत वह, अस्मयु याहि, अस्मयु जुषाणः याहि ।

३ शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्रि न अध्वर आ याहि, हे वायो वीतये, हव्यानि वीतये उपयाहि, । तव अय ऋत्विय भाग ( स अधुना ) सूर्ये सचा सरदिमः । ( तस्मात् ) अध्वर्युभिः भरमाणाः ( इमे सोमाः ) अयसत, हे वायो शुक्राः ( सोमा ) अयसत ।

अष्ट० २ अध्या० ? व० २४, २५ ] ऋग्वेद [ मण्ड० ? अनु० २० मृ० ? ३५

आपका रथ, आप दोनों ( इन्द्र और वायु ) को हमारी रक्षा करनेके लिये, तैयार किये हुए पक्वान्न-भोजनको पानेके लिये, और हवियोंका आस्वाद लेनेके लिये, ले आया है। आपके रथको नियुक्त नामके अश्व जोते हुए थे। इस मधुर सोमरसका प्राशन कीजिये। आपही के लिये वह रस तैयार किया हुआ रखा है। हे वायु, आपकी कृपा हमपर हमेशा वनी रहे। अर्पण किये हुए विभागको आप ले जाइये। हे वायु और इन्द्र, आप अपना भाग ले आइये। आनन्द देनेवाला भोजनका भाग आप ले जाइये। ४

हमारी हार्दिक प्रार्थनाएं आप ( इन्द्र और वायु ) दोनोंको हमारे यज्ञकी ओर आकषित करे। तेजस्वी और चञ्चल अश्वकी तरह हमारे ऋत्विजोंने सोमरसको बड़ी चिन्तासे स्वच्छ तैयार किया है। आप हमपर प्रेम करते हैं इस लिये हमारे सोमरसका आप प्राशन कीजिये और हमारी सहायताके लिये आइये। हे इन्द्र, हे वायु, पत्थरोंसे पीसकर बने हुए सोमरसका आप दोनों स्वीकार कीजिये। हे दिव्य सामर्थ्य देनेवाले देव, सोमरस पीकर आप प्रसन्न हूजिये। ५ (२४)

ऋत्विजोंने पानी डालकर निचाडे हुए सोमरसको यज्ञपात्रमे रखा है। वे स्वच्छ सोमरसको आप ( वायु ) को ही अर्पण करते हैं। आप दोनोंके लिये यह सोमरस पात्रेण दूर्भापर छाना हुआ है। आनन्दित करनेवाले और उत्साह दिखानेवाले सोमरस खराब न होनेवाले उनके बल्लोमेंसे छाने हुए है। ६

४ वायो, ( अय ) नियुत्वान् रथ ( अस्माक ) अवसें सुवितानि प्रयासि अभि वीतये, हव्यानि च वीतये वीतये वा आ वलन् । मन्व अधस पिबतम्, इद वा पृवपेयम् हि हितम्, ( तस्मात् ) वायो आ ( गहि ), त इ च रावसा आगतम्, चद्रेण रावसा आ गतम् ।

( न ) दिव वा अन्वरान् उप आ ववृत्यु ( ऋत्विज ) दम वाजिन इन्दु, आशु अत्य वाजिन न मधु मन् । ह अन्मयू तेषा पिबतम्, ज्त्याच इहन आगतम् । हे इदवायू युव अद्रिभि सुताना ( पिबतम् ) वाजदा युक्म मदाव ( पिबतम् ) ।

६ इमे अनु सुता मोमा. इह अ वयुभि । रमाणा वा अय त हे वायो ( इमे ) युक्ता ( मोमा ) वा अद्वयत । एत अद्वय तिर परिव्रम् वा जनि अन्वत । अति जव्यया रोमाणि जति अन्वया ( ५१ ) इवान् सो नाम ( अन्वत ) ।

हे वायु, इस समय बहुत लोक सोते होंगे, इस लिये उनको छोड़कर जहाँ सोमरसको पीसनेवाले पत्थरोका आवाज होता है वहाँ आप चले जाइये। हे वायु, आप और इन्द्र, दोनो उस घर चले जाइये जहाँ आपके लिये मधुर स्तोत्रोका गायन होता है। जिस घरमे अग्निमे धीकी धारा बहती है उसी घर आप चले जाइये। अपने रथको बलवान् घोडे जोतकर उस पवित्र यज्ञकी ओर आप (वायु और इन्द्र) चले जाइये। ७

सोमरसके मधुर हविर्भागको आप इधर ही ले आइये। वीर पुरुष इस मधुर सोमलताको अश्वत्थ वृक्षकी नाई पवित्र मानते है। वे उसका बड़ा वर्णन करते है। जय पानेवाले वीर पुरुष हमेशा हमारी ओर दौंवे। हमारी धेनुएं आपकी कृपासे अच्छे अच्छे बच्चे जनती है। आपकी कृपासे हमारे खेतमे बहुत धान्य उत्पन्न होता है। हे वायु, आपकी कृपासे हमारी दूध देनेवाली गौओको बीमारी पैदा नहीं होती और वे दुबली नहीं होती। ८

हे वायु, आपके बलवान् हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी घोडे आकाशके अन्तरिक्षमें दौड़ते हुए चलते है। चलते समय वे अश्व बड़े मजबूत दिखाई देते है। निर्जल प्रदेशमे भी वे थक नहीं जाते। जब वे दौड़ते है तब बड़ा आवाज होनेपर भी वे हिचकते नहीं। जिस तरह सूर्यके किरणोंको कोई रोक नहीं सकता उसी तरह आपके अश्वोंको भी कोई खींच नहीं सकता अथवा दवा नहीं सकता। ६ (२५)

७ हे वायो, ससत शश्वत अति याहि, यत्र प्रावा वदति तत्र त्व च इद्र० च गच्छत (तत्र) गृह गच्छतम्। (यत्र) सूनुता पिददृशे, घृतम् च रीयते, (तत्र) अध्वरम् पूर्णया नियुता आयाथ, (त्वच ह इद्र० च अध्वरम् आयाथ।

८ तत् मध्व आहुति अत्र अह वहेये, यम् (सोम) अश्वत्थ (इव बहुमन्यमाना०) जायवः उप तिष्ठन्त ते जायव अस्मे सन्तु। अस्माक गाव साक सुवते यव. पच्यते, हे वायो ते धेनव न उपदस्यति न च ते धेनव अपदस्यन्ति।

९ हे वायो इमे ते उक्षण ते ये सु वाहो जस. नदी अन्त. पतयन्ति। (पतयन्त० च) महि प्राधन्त उ-क्षणः (दृश्यन्ते) ये धन्वन् चित् अनाशवः, जीग चित् अगिरौकम। (पुन च) सूर्यस्य रश्मय इव दु.नि-यन्त०, दत्तयो दुर्नियन्तव. (सन्ति)।

## सूक्त १३६.

॥ हृषि-परुच्छेप । देवता-मित्रावरुण ॥

सत्रसे श्रेष्ठ, आनन्दरूप, और आनन्द देनेवाले मित्र और वरुणको वडी नन्नतासे नमस्कार कीजिये । एकान्त चित्तसे उनका ध्यान कीजिये । और मधुर हृषि उनको अर्पण कीजिये । व विश्वके अधिपति हैं । घीकी नाई वे तेजस्वी वर्षा करते हैं । यज्ञमें उनका गजन होता है । उनके सर्वव्यापी अधिकारको कोई रोक नहीं सकता । उनके श्रेष्ठतामें कोई सन्देह नहीं करता ।

देखिये । हमारे महायज्ञके लिये उपाका उदय हुआ है । मित्र और सत्य आकाशमें उपाका गरी किर्गोसे प्रकाशित हुआ है । दयालु भगवान्‌ज्ञा आरा भी अपने हमेशाके उपाका किर्गोसे दिखाइ देने लगा है । उमी तरह मित्र, अर्यमा और वरुणका भी ध्यान प्रकाशित हुआ है । वहासे वे सन्तुष्ट होकर प्रशंसायोग्य उत्साहके साथ उत्तम युवा अवस्थाका अर्पण करते हैं ।

गियाण, तेजोमय और पौला आकाश अदिति पृथ्वी और नक्षत्रोंको धारण करता है । इन आकाशरूपी अदितिके साथही कभी न सोनेवाले मित्र और वरुण हमेशा रहते हैं । विश्वके वैभवंदुक्त साम्राज्यका दानशील आदित्यही उपभोग लेते हैं । मित्र और वरुण नव लोगोंने अपना अपना काम करनेकी प्रेरणा करते हैं । अर्यमा भी दगी तरह काम करनेकी प्रेरणा करता है ।



यह सोमरस मित्र और वरुणको सुख देनेवाला होवे। जब यज्ञके समय सब देव यज्ञ-पात्रमे रखे हुए तेजास्वी और मधुर सोमरसका प्राशन करते हैं तब वह बड़ा स्वाग्निष्ट लगता है। प्रेमसे एकत्रित हुए सब देव सोमरसका यथेष्ट प्राशन करे। हे विश्वाधिपति ( मित्र और वरुण ), हम आपसे प्रार्थना करते हैं वह सफल होवे। हे सत्यधर्मका प्रचार करनेवाले ( मित्र और वरुण ), कृपा करके हम जो आपसे मांगते हैं वह दीजिये। ४

जो मित्र और वरुणकी सेवा करते हैं उन पराक्रमी और उदार भक्तोंकी पाप और दुःखसे सब प्रकारसे रक्षा कीजिये। जो सबे और सत्यधर्मसे चलते हैं, जो यज्ञका स्तोत्र गाते हैं, और जो सेवारूपी स्तवन करते हैं, उन भक्तोंकी अर्यमा सब प्रकारसे रक्षा करता है। ५

पृथ्वी और आकाशके बीचमे प्रकाशित होनेवाले बड़े मित्रका मैं स्तवन करता हूं। दान-शील, दयालु, और उदार वरुणकी भी मैं स्तुति करता हूं। हे ऋत्विज, इन्द्र, अग्नि, भग, और स्वर्गमे रहनेवाले अर्यमा आदि देवताओंके गुणोंका भी वर्णन कीजिये। हमें अच्छे पुत्रका और दीर्घ आयुका लाभ होवे। क्यों कि हम आपको सोमरस अर्पण करते हैं। ६

दयालु मरुद्देव और इन्द्र देव भी हम पर कृपा रखे। वडे कष्टसे हमें कीर्तिका लाभ हुआ है। इसी लिये सब लोक हमें जानते हैं और मानते हैं। अग्नि, मित्र और वरुण हमें सबको शान्ति और सुख देवे। हम और हमारे यजमान सदाके लिये सुख और शान्तिका उपभोग लेवे। ७ (२६) (१)

४ अथ सोम मित्राय वरुणाय शतम भूतु, देवः देवेषु आभग अवपानेषु आभग ( भवतु ) य ( सोम ) सजोपस दिवे देवास अथ जुपरत । हे राजाना यत् ईमह, हे ऋतावाना यत् ईमहे तथा करथः ।

५ य. जन मित्राय वरुणाय अविधत् त अनर्वाण दाश्वस मर्तं अहस परिपातः, अहस ( परि पात ) । त ऋज्यन्त अनु व्रतम् ( चरन्त ) अचना अग्नि रक्षति, य एनो व्रतम् उक्थे परि भूषति, व्रतम् स्तोमै आभूषति ।

६ रोदसीभ्या. वृहते दिवे मित्राय नम वोचम् । वरुणाय मीळुषे सुमृळीकाय मीळुषे च ( नम वोचम् ऋत्विज । इदम् अग्नि, शुभ अर्चमण भग च उपस्तुहि, ( यया लुला ) ज्योक् जीवन्त प्रजया सत्चेमहि, ( सर्वे इदम् ) सोमस्य उती सत्चेमहि ।

७ मरुद्भिः देवाना च उती वय इद्वन्त स्वयशसा च मसीमहि । अग्निः मित्रं वरुण शर्म यसन् ) तत् च नधवान वय च अद्यान ।

## अध्याय २.

सूक्त १३७.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-मित्रावरुण ॥

मित्रावरुणो आइये । हमने ये सोमरस प्रावोके योगसे निचोड़ कर निकाले हैं । उनमें दूध डाला है और वे उत्साहकर और हर्षप्रद है । हे जगन्नायको, आप आकाशतकको व्याप्त कर डालनेवाले है, आप ही हमारे रक्षक है, इस लिए हमारे पास आइये । मित्रावरुणो, ये शुभ्र सोमरस आपहीके लिए बनाये गये है और उनमें मीठा तथा गाढ़ा दूध और पोड़ासा पानी मिलाया गया है । १

इधर आइये । ( हमारे ) यहां भी इन सोमरसोंमें दहीके समान गाढ़ा दूध डाला गया है । यह रस निचोड़ कर उसमें मीठा दहीभी डाला गया है । प्रभात होनेके बाद सूर्य के कामल किरण पड़ते ही आप दोनोंके लिए, अर्थात् मित्र और वरुण के लिए, यह रस निचोड़ कर तैयार किया गया है । उनके पान करनेके लिए—उन सत्यस्वरूप मित्रावरुणोंके ग्रहण करने के लिए—यह सुन्दर रस तैयार किया गया है । २

( हे देवताओ ), दूधके प्रवाहके प्रवाह छोड़नेवाली आपकी उस प्रकाशरूपी वेनुका जैसे दूध दुहा जाय वैसे ही ( हमारे ऋत्विज ) इस सोमवल्लीका मानो दूध ही दुह रहे हैं । प्रावोके योगसे—उन पापाणोंके योगसे—मानो उस वनस्पतिका दोहनही कर रह है, अनाम्य हे भक्तरक्षको, हमारे यहा सोमपान करनेके लिए आइये । हे मित्रावरुणो, ऋत्विजोंके आपके लिए यहा यह सोमरस तैयार कर रखा है, यह आपके ग्रहण करनेके लिए यहा पर उन्हीने पात्रों में भरकर ( आपके सामने ) रख दिया है । ३ (?)

१ ( हे मित्रावरुणो ) आयात, इमे सोमासा मत्सरा अद्रिभि सुपुम, इमे, गोश्रीता मत्सरा च । हे राजाना युवा दिवि स्पृशौ अस्मन्ना च उप न. आगतम् । हे मित्रा वरुणा इमे गवाशिर वृष्णा गवाशिरश्च ( सन्ति ) ।

( मित्रावरुणो ) आयातम्, इमे सोमाम इद्व दव्या शिर ( इमे ) सुतामः दध्याशिर, उत उपम यु । त्व रद्मिनि साक वाम् ( अयं ) मित्राय वरुणाय च ( अय ) सुत, ( अय ) चाद ऋताय पीतये सुत ।

३ ( हे देवो ) ता वा वासरीं वेनु न अशु अद्रिनि. दुहति सोम अद्रिभि दुहन्ति; अस्मन्ना जगाम । ( नतो ) उपन सोम पीतये आगन्तम् । हे ( मित्रावरुणा ) अय सोम. वा वृनिः सुतः, ( अय ) पीतये वा सुतः ।

सूक्त १३८.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-पूषा ।

अब मैं समर्थ पूषा की महिमा यथामति वर्णन करता हूँ । यह स्वाभाविकही प्रतापी है । इसके पराक्रम की कीर्ति कदापि कम नहीं होती, अथवा यह भी नहीं होता कि इसकी स्तुति कभी समाप्त हो जाय । शान्तिसुखकी मनीषा रखकर मैं जिस पूषा की उपासना करता हूँ वह ( भक्तों की ) रक्षा करनेके लिए विलकुल तैयार रहता है और वह सर्वोत्कृष्ट आनन्द का लाभ कर देनेवाला है । यह परमपूज्य प्रभु सम्पूर्ण विश्व का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और इसकी प्रसन्नता के लिए जो यज्ञ किया जाता है वह भी सब का मन हरण कर लेता है ।

१

हे पूषा, चपलता में वायुकी तरह अत्यन्त चंचल आपका भजन हम स्तोत्रोंसे करते रहते हैं । अतएव, जिस प्रकार आप युद्धके अवसर पर ( हमारी ) रक्षा करते हैं उसी प्रकार शत्रुके इस अंधेरे प्रदेशसेभी हमें, अंटकी पीठ पर बैठा कर लजाने की तरह, पार कीजिए । आप परमानन्ददायक परमेश्वर हैं और मैं दान मर्त्य हूँ । आपका सहवास होनेके लिए आपकी विनती करता हूँ । भजनमें हमारी स्तुतिओ को सफल कीजिए और समरांगण में हमारे वाणोंको यशस्वी कीजिए ।

२

हे पूषा, आपके सहवाससे विद्वान् साधुजन अपने सुकृतके कारण और आपकी कृपासे संसारके लिए उपयोगी हुए; और सचमुच इस सत्कर्मके कारण ही वे ( आनन्दपदका ) उपभोग कर रहे हैं । अतएव, हम आपसे कड़ो ऐसे दिव्य प्रसाद, जोकि आपके पूज्य नामके योग्य है, अंचल फैला कर मागतें हैं, इस लिए हमें न दवकाते हुए, हे सर्वजनस्तुत पूषा, आपही हमारे रक्षक हो, प्रत्येक युद्धमें आपही हमारे नेता हो ।

३

१ पूषण महित्व प्र प्रशस्यते, अस्य तुविजातस्य तवसं ( महित्व ) न तदते । अस्य स्तोत्रमपि न तदते । सुम्नयन् ( अह ) अतिजति मयोभुव अर्चामि, यं मत्त दव विश्वस्य मनं आ युयुवे, ( यस्य ) मत्तश्चापि आ युयुवे ।

२ हे पूषन् यामनि अजिर न, त्वा स्तोत्रेभि प्रकृष्वं ( तत् ) यथा मृध ऋणव ( तथा ) उश्रूः न मृधः पीपरः । यत् मर्त्यं ( अह ) त्वा देव मयोभुव सह्याय हुवे । अस्माक आगूषान् वाजेषुद्युम्नि ।

३ हे पूषन् यस्य ते सख्ये विपन्यव सत क्त्वा चित् अवसा च बुभुजिरे इति क्त्वा बुभुजिरे । ( तत् ) ता ( तव ) नवीचर्षी ( कीर्ति ) अनु नियुत राय ईमहे । हे ऊषस ( त्व च ), अहेळमानः सरी भव वाजवाजे सरी भव ।

हे पूषा, आपके अश्व भी जन्मरहित हैं, अतएव, ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर देनेके लिए सदा सर्वदा आप हमारे विलकुल समीप रहिये, हे परमोदार पूषा, आप रोष न रखें हुए हमारे विलकुल समीप रहिये; क्योंकि हम सत्कर्मप्रवृत्त हैं। हे अद्भुत पराक्रम करनेवाले पूषा, हम अपने मनोहर स्तोत्रोंके योगसे आपका अन्तःकरण अपनी ओर आकर्षित कर सकें। हे प्रखर दीप्तिमान् पूषा, आपको हम क्षणभर भी न भूले और हमारी ओरसे आपके सहवासकी उपेक्षा यत्किंचित् भी कभी न हो। ४ (२)

### सूक्त १३९.

॥ ऋषि-परुच्छेप । देवता-विश्वेदेव ॥

सुनिये सुनिये, मैं आपके सामने भक्तिपुरस्सर अग्निकी स्थापना करता हूँ और दिव्य सामर्थ्य प्राप्त होनेके लिए ( हम सब मिलकर ) उससे प्रार्थना करते हैं, हे इन्द्र, वायुदेव, उस ( सामर्थ्य ) के लिए हम अंचल फैलाते हैं। अपूर्व और विनचूक कार्य सिद्ध कर देनेवाली जो जो प्रार्थना होती है वह वह इस प्रकाश-निधि के तई संलग्न हो जाती है, अतएव हमारा भी ध्यान पूर्णतया उसीकी ओर लगे और देवताओंकी दृष्टिमें रहन की तरह हमारी काव्यप्रतिभा का ओर बेरोक फैले। १

हे मित्रावरुणो, जब आपने अपनी इच्छासे और अपने चातुर्यपूर्णा नियमके अनुसार तत्त्वस्वरूप ( आत्मा ) से यह असत्य ( शरीर ) अलग कर दिया तभी आपके निवासस्थानमें आपका हिरण्यमय स्वरूप हमें देख पडा। वह पहले हमारी सूक्ष्म बुद्धि को गोचर हुआ। इसके बाद मन को हुआ, इसके बाद इन्द्रियोंको और अन्तमें सोमकी ओर लगे हुए हमारे वरुण तत्रोक्तो ( गोचर हुआ )। २

४ हे अजाश्व पृषन् अस्वाः ( राय. ) सातये नः उप भुव, हे ररिवान् अजाश्व पृषन् त्व अहेळमान च्चना ( अस्माक उपभुवः ) । हे दस्म त्वा साबुभि स्तोमेभि ओ पु वृतीमहि । हे आधुणे पृषन् त्वा तिमन्ये, ते सख्यमदि नापन्हवे ।

लु श्रौपद्र ( अह ) विद्या अग्नि पुरा दवे त नु तद् दिव्य शर्वे आश्रणीमहे, हे इद्रवायु आश्रणीमहे । नव्यसी क्राणा ( लुति सा ) विववति नाभा सदायि । अव न वीतय प्रसूपयन्तु देवान् अच्छा न . ) धीतय ( प्रसूपयन्तु ) ।

२ हे मित्रावरुणौ यत् द युवा स्वेन मन्थुना दमस्य स्वेन मन्थुना ऋतात् अधि त्यत् अनृत आददाये । ( तत् हि ) बुधोः हिरण्यमम् ( ह्य ) सद्गमु अवि दत्वा अपश्याम । ( तत् प्रयम ) वीमि नन ( अपश्याम पश्याम ) मनमा ( तत् पर ) म्वनि अक्षमि सोमस्य स्वेनि अक्षनि ( अपश्याम ) ।

हे अधिदेवताओ, यहा बन्दिजनों की तरह आपकी कीर्ति फैलानेवाले कितनेही ऋत्विज आपका स्तवन कर के आपकी प्रार्थना किया करते है, और इधर दुसरे कुछ ऋत्विज आपको हनिर्भाग देकर भजते रहते है। हे ज्ञानसागरो, सब प्रकारकी सम्पत्ति, सब ( प्रका- रका ) सामर्थ्य आपमे रहता है। हे अद्भुत पराक्रमी अधियो, आपके सुवर्णरथके, आपके अविनाशी रथके, पहिले ( मानो इच्छित मनारथो की ) वर्षाही किया करते हैं। ३

हे पराक्रमी अधियो, यह सभी को मालुम है कि आप आप आकाश के कपाट खोलते हैं। ( भक्तजनों की ) प्रातःकालकी इष्टियो मे जानेके लिए आप अपने रथके घोड़े जुटाते रहते है; आप वे अपने कभी न नाश होनेवाले घोड़े, देवलोकमे रहने की इच्छा करनेवाले भक्तोके यहा जानेके लिए, जुटाते रहते है। हे अधिदेवताओ, आपके कर्म अद्भुत हैं। आप अपने अविनाशी रथमे सारथीके समीप हमे बैठने दीजिए; क्यो कि ( पृथ्वीपरकी ) किसी पक्की सड़क परसे चलने की तरह आप आकाशमें अच्छी तरह घोड़े दौड़ाते रहते हैं, और दिव्य लोकके मार्गसे वेगपूर्वक रथ ब्याड़ते रहते हैं। ४

हे अधिदेवताओ, विलक्षण सामर्थ्य तो आपकी सम्पत्ति ही है, अतएव उन सामर्थ्योंके योगसे रातदिन आप हमारी सहायता कीजिए। आपकी उदारतामे कभी प्रतिरोध न हो। हमारे उपर जो आपकी कृपा है वहभी कभी समाप्त न हो। ५ (३)

३ हे अधिनौ आश्रावयन्त इव, आयव ( युवयो ) श्लोकम् ( आश्रावयन्तः ) आयवः युवान् स्तोमेभिः देवयन्त ( अपरे च ) आयव युवा हव्या अभि ( आह्वयन्ति ) हे विश्वेदेसा विश्वाः श्रियः पृक्षः च युवो अधि ( वसन्ति ) हे दत्ता वा हिरण्यये हिरण्यये रथे पवयः ( अभीप्सितानि ) श्रुपायन्ते ।

४ हे दत्ता ( इद ) अचेति ( यद् युवा ) नाकम् वि ऋण्वधः वा रथयुज दिविष्टिषु युञ्जते, अध्वस्मानः ( अश्व ) दिविष्टिषु ( युञ्जते ) । हे दत्ता, वा हिरण्यये रथे वन्धुरे अधि स्थाम । यत. ( सु ) पथा इव रज. अनुशासता यतौ, रज अजसा शासता ( यन्तौ ) ।

५ हे शचीवसू शचीभि दिवा नक्त च नः दशस्यतम् । वाम् रातिः कदा चन मा उप दसत् । ( वा ) राति कदाचन अस्मत् ( ता उप दसत् ) ।

हे औदार्यसागर इन्द्र, ये सोमरस आपके समान शूरके ही पीने योग्य है। ये प्रांसे निचोड़ कर टपकाये हुए तीव्र सोमरस—ये शरीरमें भिननेवाले रस—आपके लिए ( तैयार किये गये ) हैं। ये ( रस ) आपको हर्ष उत्पन्न करे, जिससे आप प्रसन्न हो कर हमें बहुत बड़ी और अद्भुत देनगी दें। स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले हे इन्द्र, हम सुन्दर स्तोत्रोंसे आपके गुणानुगाः गाते हैं। हमारे यहा आइये। आप हमारे लिए अत्यन्त सुखदायक है, अतएव हमारे पास आइये। ३

हे अग्निदेव, हमारी सुनिये, हमे आपका गुणसंकीर्तन करते रहते है, ( यह बात ) उन माननीय देवों से—उन यजनीय और दैर्घ्यमान देवों से—आप कहे ही गे। देवों, जब आपने अंगिरसोको ( काम—) धेनु दीं तब यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए अर्घ्यमाने उसका दोहन किया, और वह गाय कौनसी है—सो सिर्फ उसे अथवा एक मुझेही मालुम है। ७

( हे मरुतो, ) हमारे लिए आपने पराक्रम किये, ऐसा कभी नहो कि वे अब पुरानी बातें हो गईं। हमारा उज्वल यश कभी मलीन न हो, अर्थात् हमारे आसों—देखत तो कभी न हो। अद्भुत, और पीढी दर पीढी हो जाय तथापि नवीनही, ( रहे ) आर हे मरुतो, आपका जो वरदान लोकोत्तर तथा सर्वप्रसिद्ध हो वही हमे दीजिए। जितना कुच्छ दुस्साध्य हो, जितना कुच्छ दुर्लभ हो, वही भी आप हमें दिये बिना न रहिए। ८

६ हे वृषन् इन्द्र इमे इ दवः वृषपाणास, इमे अद्रिसुतास उद्रिद उत् भिदथ तुभ्य सुताम । ते मद चित्राय रावसे दावने त्वा मदनु । हे निर्वाह गीर्भि स्तवमान. आगहि, सुमृच्छीकः नः आगहि ।

हे अग्ने न ओ पु गृणु ( अन्मामि ) इच्छित त्व यज्ञियेभ्य राजभ्य यज्ञियेभ्य देवभ्य ( अम्भत् स्तुतिम् इत्य) ब्रवसि । हे देवा यत् अगिरोभ्य त्या वेनु अदत्तन ता कतरिसचा अयमा दृढे ण्य म सचा ता । ६ ।

८ ( हे मरुतः ) व तानि पोस्वा अम्भत् मोषु सना अभि भूवन्, ( अस्माक ) युत्रानि मोत जागिषु, अस्मत् पुरा मोत जागिषु । यत् व राव चित्रम् युगेयुगे नव्य आगर्त्य च धोषात् । तत् हे मरुत जगत्पु दिशत वच दुस्तरम् यत् च दुस्तरम् तदपि ( दिशत ) ।

पुरातन ऋषि दध्यङ्, तथा अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और मनु को मेरा कुल मालुम है। जितने कोई मेरे पूर्व हो गये उन ( ऋषि और राजा मनु ) सबको मेरा हाल मालुम है, क्योंकि उनका सम्बन्ध देवों तक पहुँचता है और हमारे मुख्य पूर्वज भी उन्हींमें से थे; अतएव उन्हीं की पद्धतिके अनुसार मैं इन्द्राग्निका स्तवन करके उनके सम्मुख नम्र होता हूँ।  
उनका यशोवर्णन करके उन्हींको प्रशिक्षित करता हूँ। ६

याज पठन करके आचार्य को देवोंका यजन करन दीजिए, और प्रेमी देवता भी उत्कृष्ट हविरन्नका स्वीकार करने में प्रवृत्त हो, क्योंकि अब ज्ञानवान् बृहस्पति, बलवर्धक सोमरस अर्पण करके देवयजन करनेके लिए उत्साहित हुआ है, और सर्वगुणसम्पन्न तथा तीव्र सोमरससे यजन कर रहा है। अतएव सोमवल्ली निचोड़ने के पाषाणों की दूर तक सुन पड़ने वाली ध्वनि सहज ही हमारे कानों में पड़ी। महत्कार्य करनेवाले इस सोमरसके हाथ में वर्षा करनेका सामर्थ्य है, ( इसी लिए ) पुण्यकर्मका आचरण करनेवाले के लिए रहने को विस्तृत और उत्कृष्ट स्थान मिले है। १०

हे दिव्य विभूतियों, आप ग्यारह जन आकाश में रहते हैं ग्यारह लोग पृथ्वीपर और उदकोमें भी ग्यारहही जन बड़े वैभव से रहते हैं; अतएव आप हमारा यह यज्ञ मान्य कर लीजिए। ११ (४) (२०)

### अनुवाक २१.

सूक्त १४०.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

जो यह अग्नि वेदीपर आरूढ़ होता रहता है और जिसे अपना निजका (तेजोमय) स्थान अधिक प्रिय होता है उस परम देदीप्यमान अग्निके लिए घृतपात्र ले आओ। घृत ही उसका लिए हविरन्न का तरह है, और जैसे वस्त्रसे मंडित किया हो वैसे ही अग्निको मननीय स्तोत्रोक्त आच्छादित करो। यह परम पवित्र, शुद्ध-तेजोमय है, प्रकाशही उसका रथ है और उसके योगसे वह अंधकार का नाश करता रहता है। १

५ पूर्व दध्यङ् ह अगिरा च, प्रियमेध कण्वः, अत्रि मनु च ( एते ) मे जनुष विदुः, ( ये च ) मे पूर्वं मनु च ते त्वेपि विदुः । ( यत ) तेषा देवेषु आयति अस्माक च तेषु नाभयः; ( तत. ) तेषाम् पदेन इन्द्राग्नी गिरा महि आनमे, गिरा आनमे ।

१० होता यक्षत वनिन ( देवा ) वार्यं वन्त, वेन बृहस्पति पुष्वारेभिः पुरुवारेभि उक्षभिः यजति । अप अद्रे दूर आदिशाम् लोकम् त्मना जगृम्भ, सुकतुः ( सोम. ) अररिदानि अधारयत् ( अत ) सुकतु. ( भक्त. ) पुरु सज्ञानि ( अधारयत् ) ।

११ हे देवास ये ( यूय ) एकादश दिवि स्थन, पृथिव्या एकदशस्थ, एकादश एव महिना अप्सु क्षितः स्थ ते ( यूय ) यज्ञम् इम जुषध्वम् ।

१ वेदिपदे, प्रियधानाय सुद्युते अग्नये धासि इव यानि प्रभर । वत्रेणेव मन्मना त शुचि ज्योतीरप शुक्लवर्णं तमोहनम् वासय ।

दोनों से, अर्थात् पृथ्वी और आकाशसे, यह प्रकट होता है, और तीन प्रकारका अन्न ग्रहण करके एक वर्ष के बाद फिर उसी भक्षण किये हुए अन्न की (वान्यरूपसे) अनेक-गुणा वृद्धि करता है। बलशाली अग्नि अत्यन्त उदार चरित देख पड़ता है, उस समयका उसका मुख और जिब्हा दूसरी, और जब अनिवार होकर अरण्यके अरण्य चट कर डालता है तबका दूसरा। २

पहले दोनों अंधकारमे छिपे रहते है और एक दूसरेसे चिपटे रह कर जोरसे हिलने लगने है और इसके बाद (प्रकट होनेवाले) अग्निरूप बालकके पास वे दोनों दौड़ते आते हैं (यह बालक साधारण नहीं है)। इसकी लम्बी जिब्हा बाहर आकर पूर्वाभिमुख होती है। यह एकदम प्रकट होकर चमकता है और सब अनिष्टों का नाश करता है। इसकी सेवा साफ़ करनी चाहिए। यह भक्तों की अन्तःकरणवृत्तियों को उत्साहित कर देता है और (जगत्के) पिताको हर्षित करता है। ३

(अग्निदेव,) ये आपके छूटनेके लिए आतुर होनेवाले, सर्वव्यापक, वेगसे दौड़नेवाले अथ जव जोरसे उडते हुए जाते है तब उनका मार्ग काला होता जाता है। इन अश्रुओंके गुण भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर भुके हुए है और ये वायुरूप शीघ्रगति और वायुप्रेरित अथ उस राजाके लिए जाते गये हैं। ४

जाते जाते मार्गके अन्धकारका समूल उच्छेद करके अपना विशाल रूप प्रकट करनेवाले वे (अग्निदेव) स्वाभाविकही परन्तु बडे जोरसे उडते जाते है, क्योंकि उस समय यह अग्नि भी पृथ्वीके विस्तीर्ण भासप्रदेश का चुम्बन लेकर मेघगर्जनारूप प्रचण्ड वोग करते हुए सपाटेसे जाता है। ५ (५)

२ दिनम्ना, त्रिवृत् अन्नम् अभि ऋज्यते, सवस्मरे ईम् जव पुन वय्ये । (अय) वृषा अन्यस्य (न्यस्य) जिदन्ना जेन्य वारण (असौ) वनिन अन्येन ति मृष्ट ।

ते वृष्णप्रतौ सधितौ अन्य मानरा वेविजे, उभा च शिशुम् अभि तरेते । प्राचादिद स्वमयत पुं आ साच्य कुपय पितु वयन (अभितरेते) ।

४ (हे अने) (इमे ते) सुमुन्व आसव जुव (जथा) (धुम्ब. वृष्णसीताम, उ (चते) जगन्ना अजिराम रवुधद त्रानचता मनवे मानवस्यते इय युज्यन्ते ।

५ जात् अन्य ते (जथा) वृग्म स्वमयन्त सधियप फरि कत इभा अन्य उरते । यत् गीम गी जवनि अभि मय्दान अभिवनन् न्तनयन् नानदन् प्र एति



चित्रधिचित्र ओषधियोको मानो ( अपनी ) प्रभासे अलंकृत करनेके लिए ही यह अग्नि ( उनकी और ) झुककर देखता है और जैसे कोई शूर योद्धा अपनी प्रिय पत्नीसे भटने जाता है वैसे ही गर्जना करते हुए वह उन ( ओषधियों ) के पास जाता है । उसका दिव्य प्रताप प्रकट होनेलेही उसके शरीरमें विशेष शोभा आती है, परन्तु उस समय किसी भयंकर श्वाभ्र की तरह दुर्निवार होकर वह अपने ज्वालारूप अयाल एकदम हिलाता है ।

वे ज्वाला चाहे सकलित हो चाहे भिन्न भिन्न दिख पड़नेवाली हों, उन सबको जाननेवाला यह सनातन अग्नि उन सभीको समेटता है और वे भी अग्निको अपनेके तौर पर पहचानती है । और इसी लिए उनके समुद्रमें जाकर वह शयन करता है । उस समय तिस्रों ज्वाला बढ़ती है और दिव्यरूप पाकर मावापसाहित एक निराला ही रूप धारण करती है ।

सुन्दर केशकलाप धारण करनेवाली उन लावण्यवतियोंने अग्नि को आलिंगन किया । ( इसके पहले ) वे मृतप्राय ही थी, परन्तु इस विश्वजीवन के लिए ही वे उठ राड़ी हुईं, उनका वार्धक्य दूर करके उनमें उत्साहपूर्णा और नष्ट अथवा क्षीण न होनेवाली शक्ति, जीवनीशक्ति उत्पन्न करके, जयघोष करते हुए वह उनके पास आया ।

पृथ्वीमानके वस्त्रके अंचलका चुम्बन करते हुए यह तीव्र अग्नि ( दावान्निके रूपसे ) वेप के साथ आगे जाता रहता है और ( उसके पास आने ही ) घोर वन्यश्वापद भी चिह्लाते हुए उधर उधर भागने लगते हैं । पृथ्वीका पृष्ठभाग चाटते चाटते जाते समय ( वह अग्नि ) पादचारी प्राणियोंके शरीरमें ( उन्हें अन्न देकर ) सदा नवीन जोशा उत्पन्न करता है; परन्तु इसके आगे जानेपर पीछे अवश्यही इसका मार्ग काला होता जाता है ।

हे अग्निदेव, हमारे उदार यजमानों पर अपनी दयाका प्रकाश डालिये । आप वीर्यवान् और आत्मसंयमी है, आपका श्वासोच्छ्वास भी ( ओजस्वी ) होता है । आप अपना बालरूप छोड़कर, जैसे समराज्यमें तेजस्वी वाचक पहन कर घूमता हो वैसेही, अपने प्रकाशसे सबको दीप्त कर डाला है ।

१० ( ६ )

५ य वश्रपु ता भूपन् न अधि नत्रते वृषेव पत्नी, ता.श्च रोखव् अभ्योते । ओजायमानः ( त्व ) ताव च शुभते भीम ( सिंह. ) न दुर्धृभि सन् शशा दविधाव ।

७ स नस्तिर विष्टि ( सतीः अपि ता सर्वा. ) जानन् एव सगृणाति जानती च ता नित्य आनके । ता पुं यवन्ते देवम् अपि यन्ति, अन्यत् वर्ष पित्रो सत्त्वा कृष्वते ।

८ अग्निर्वा अनुव त हि तरेभिरे, मन्त्रपी ( च ता ) प्रायव तस्मै पुन. ऊर्ध्वं तस्थु । सोपि तस्मा जरा परतम तासु च अनु पर अस्तृत र्जं वम् जनयन् नानदत् च एति ।

९ न तु जग्मिवाप परिरेरु अय जय ( अग्नि ) तुविप्रभि तत्तपभे याति अट । वय पद्वते उभय न अग्नेः ( ताति ) गर्वा वर्तनी अनु मन्ने अट ।

१० स न अस्नात् नषात् ( यजमानपु ) र्दीदिहि, अय ता दग्ना शुभम इगीवान् ( अग्नि ) अग्नात् तोऽपि त्नुम् तेष परिजुगा अदीदि ।

अष्ट० २ अध्या० २ व० ७,८ ] ऋग्वेद [ मण्ड० ? अनु० २? सू० ?४?

हे अग्निदेव, किसी न किसी तरह रची हुई किसी कवितासे, अथवा आपको प्रिय लगने-  
वाले किसी सुरस पद्यसे भी, यह मेरा सुन्यवर्तित स्तोत्र आपको विशेष प्रिय हो, और  
आपके शरीरका जो शुभ्र और पवित्र प्रकाश पड़ता रहता है उसके योगसे (ऐसा हो कि)  
आप हमें (आपकी जो कृपा है वही) रत्नही देते हैं । ११

हे अग्ने, हमें रहनेके लिए और जल्द चलनेके लिए, एक ऐसी नौका आप देनेही चांते  
हैं कि जिसमें अमंग छाये और बली है, परन्तु वह ऐसी चाहिए कि जिसमें हमारे सा  
योद्धा, यज्ञमान और लड़के तथा अन्य लोग, सब बैठकर पार हो सकें और जो हमारे लिए  
सुख का आश्रय हो । १२

हे अग्ने, यह हमारा प्रशंसास्तोत्र उत्तम मान लीजिए, इससे पृथ्वी, आकाश और  
स्वयशोर्मंडित महा नदिया हमें दिव्य गोधन, धान्यसमृद्धि और दीर्घ आयु प्राप्त कर लगी  
और अरुणवर्णा उपादेवी हमारे लिए मन-सामर्थ्यही का वरदान माग लगी । १३ (७)

सूक्त १४१.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

सचमुचही देव का अवर्यानीय तेज सामर्थ्यके प्रभावसे प्रकट हुआ, इसी लिए वह (यह  
अग्निरूप तेज) एक दर्शनीय वस्तु हो रहा है, अतएव मेरी चित्तवृत्ति उसकी ओर लगती  
है और वह तत्काल फलद्रूप भी होती है । इस कारण सत्यधर्मप्रवर्तक (हमारी) स्तुतियोंका  
प्रवाह भी उसी ओर बढ़ता रहता है । १

सामर्थ्यवान, नाशरहित, और सर्वान्न सम्पन्न यह अग्नि (प्राणियोंके) शरीरमें वास करता  
रहता है । सलो भुवनोको जो माताके समान कल्याणप्रद होते हैं उन (उदको) में उमका  
दृग्ग स्वरूप रहता है । इस वीर्यवान् अग्निसे मनोरथरूप दूध दुहनेके लिए उसके तीसरे  
स्वरूपकी योजना की गई है । और इतनेहीके लिए सुन्दर युवतियोंने इस लोकत्रयमें पूर्य  
(अग्नि) को प्रकट किया है । २

११ हे अग्ने इदं मुधितं (मन्म) दुर्धितान्, प्रियान् उचिन् मन्मनं ते प्रिय अस्तु यन् तन्व शुभितं ।  
रोचते तेन त्व अस्मभ्य (तव वृषारूप) रत्न आवन्से ।

हे अग्ने, गृहाय उत्तम रथाय निव्याग्निं पट्टती नाव रासि, या नौ अम्भाक वीरान् उत न नगिं  
पारथान् वा च शान (नेवेत्) ।

१३ हे अग्ने न इत् उक्थ अग्निं जुगुषी अपि च वावाभामा, स्वगूतां गिन्वन्थ गव्यं गव्यं दान  
दाच वन्त (नेवेत्), अदग्य (उपम च) इप वर वरन्त ।

१ वक्रिया, देवस्य दर्शितं नगं तन् वन महमं अजनि, (अत एव अत्र तन्) वपुषे वापि । १४ मे  
मत्ति ई उप इरते सावने च, अत ऋतन्थ वना मन्तुन अगवन्त ।

२ पृक्षं न निच्य पितुमाथ (अथ अग्नि, प्राणिना) वपु आगये (अन्व्य) द्वितीयं त्व मर्ताशिवानु मापुः  
जा अन्व्य इपगन्थ तृतीयं (अनीषिताना) दोहमे (अत) वपुषे दत्तं मर्ता अनु अगवन्त ।

जब अति विशाल ( इस आकाशरूप ) शरीरके मूलप्रदेशसे महात्माओंने अथवा ज्ञानसम्पन्न ऋषियोने अपने सामर्थ्यसे इसे बाहर प्रकट किया और मधुर रसकी आहुति देनेके लिए पुरातनकालमें उसके गुप्त रूपसे रहते हुए भी मातरिश्वाने मंथन करके ( जब ) उसे बाहर निकाला, ३

जब उसे परात्पर पिताके पाससे नीचे लाकर आस पास फिराते हैं तब सामर्थ्यवर्धक आहुतियोंसे और समिधोकी लताओंसे वह विलक्ष्य तेजके साथ ( एकदम ) प्रज्वलित होता है । दो लोग उसे प्रकट करनेका योग लाते हैं । तब वह अति पवित्र अग्नि अपने प्रखर तेजसे अत्यन्त तरुण रूपमें प्रादुर्भूत होता है । ४

इसके बाद वह पवित्र ( आग्ने ) मातृ समूहमें भटपट प्रवेश करके निष्प्रतिबन्धताके साथ अतिशय वृद्धिको प्राप्त होता है और उनमेंसे जो उसके विस्तारवृद्धिके लिए पहले कारणी भूत हुए होते हैं उनमें पहले प्रज्वलित होकर बादको फिर नवीन और कनिष्ठ समूहमें वेगसे संचार करता है । ५ ( ८ )

अर्थात् प्रातर्यज्ञके समय ( ऋत्विज ) उसीको अपना आचार्य बनाते हैं और यह श्रद्धा रखकर, कि वही हमारा भाग्यदाता है, उसके प्रीत्यर्थ आहुतियोंसे पूर्णतया हवन करके उसे प्रसन्न कर लेते हैं । फिर, अपने प्रज्ञाप्रभावसे और अद्भुत सामर्थ्यसे सबकी स्तुतिका पात्र होनेवाला और सारे विश्वको जिसका आधार है वह अग्नि, सुप्रसन्न होकर, भक्तजनोंके स्तवन सुननेके लिए और उनके सोमरसका आस्वाद लेनेके लिए देवताओंको ले आता है । ६

यह अत्यन्त पूज्य अग्नि, वायुके कारण क्षुब्ध होते समय, स्तुतिको न माननेवाले किसी चतुर-चायाक्ष पंडितकी तरह, ( अपने मार्गसे ) अनिवार होकर, जब अच्छी तरह जाता है और सब ( पातकोको ) भस्म कर डालता है, जिसके दोनो पक्ष कृष्णवर्णही होते हैं, तथापि जो शुद्ध स्थानहीमें प्रकट होता है और जिसकी ( कृपाके ) मार्ग नाना प्रकारके हैं वही यह अग्नि जाते समय मार्गमें अन्तरिक्षसे ऊपर चढ़ता जाता है । ७

३ यत् महिषस्य वर्षस बुधात् ईशानासः सुरय ई शवसा क्रन्त । यच्च मध्व आधवे प्रदिव् गुह्य सन्तम् मातरिश्वा ईम् अनु मयायति ।

४ यत् परमात् पितु प्रपरिणीयते ( तदा ) पृथुध वीरुध दसु आरोहति । यत् यत् अस्य अनुषः उभाः इन्वतः आदित् शुचि असौ घृणा यविष्ठ ( प्रादुः ) अभवत् ।

५ आदित् स मातृ. आ विशत्, यासु आ, असौ शुचि अहिस्यमान सन् उर्विया वि वृधे । यत् पूर्वा-सनाशुव अनु अरहत्, ( तत् ) नव्यसीषु अवरासु धावते ।

६ आदित् च त दिविष्टिषु होतार वृणते, भगमिव ( हव्यै ) त पृचानासः ऋजते । यत् क्त्वा मज्मना च पुर एत विश्वथा अमौ शस ( श्रोतु ) धायसेच देवान् मर्तं वेति ।

७ यत् ( अय ) यजत वातचोदित सन् जरणा अनाकृत व्हार वका न व्यस्थात् तदा ( एनासि ) धक्षुष, हुष्पाजट्स, व्यध्वन तस्य पत्मन् रज आ ( गच्छति ) ।

यंत्रसामर्थ्यसे चलाये हुए और सजा कर तैयार किये हुए किसी वाहनमें (वैठने) की भांति वह अपने आरक्त परिवारसहित तैयार होकर आकाशलोकमें संचार करता है। हे (अग्ने), आपका दहनकर्म जब तेजोसे होता रहता है तब कृष्णवर्ण धूमके टोलके टोल ऊपर जाते रहते हैं और जैसे प्रतापी शूको कोई (डरे) वैसेही पक्षिगण आपके प्रखर कोपमें डरकर दशो दिशाओंको भग जाते हैं।

हे अग्निदेव, आपहींके द्वारा वरुण (अग्ने) धर्मनीति-नियमोंका पालन कराता है और मित्र तथा अर्यमा नामक उदारबुद्धिवाले देव (पापियोंको) शासन करते हैं। आप अब सी व्यापक रूपसे प्रकट हुए हैं, और जैसे पहिलेका घेरा आरोंको अपनी अपनी जगमें दान रखता है उसी प्रकार अपने प्रज्ञाबलसे आप सबको सब प्रकारसे सम्हालते हैं।

हे अग्निदेव, आप सदासर्वदा ठीक तरुणार्थके जोरमें रहते हैं और स्तवनपूर्वक सोमस अर्पण करनेवाले भक्तोंको इच्छित रत्नसम्पत्ति और देव भजनबुद्धि दोनोंका जोड़ मिला देने हैं। आप स्वयं सामर्थ्यकी ही तारुण्यदशाकी मूर्ति हैं, अतएव, हे महा वैभवं सम्पन्न अग्निदेव, आप जो स्तुतिपात्र हैं उन्हें अपना भाग्यदाता मान कर हम अपने सब उद्योगोंके आरम्भमें आपहींकी याद करते रहते हैं।

हे अग्निदेव, जिस प्रकार उत्तना ऐश्वर्य और बलवत्तर भाग्य, कि जो स्वयंपूर्ण और सत्कार्यमें व्यय किया जा सके, (आपने हमें दिया) उसी प्रकार सब सदन करनेका भरपूर सामर्थ्य भी हमें दीजिए। जिस प्रकार (वाड़ेकी) लगाम पकड़कर उसे वशमें रखते हैं उसी प्रकार यह अग्नि स्वाभाविक लीलासे (देवी और मानवी) जन्मोपर अपना प्रभुत्व चलाता रहता है और सद्धर्मविहित यज्ञके प्रसंगमें देवोंके प्रीत्यर्थ स्तवन करनेकी स्फूर्ति भी वहीं सत्कृत्यशील (देव) देता रहता है।

अत्यन्त देवीप्यमान, सर्व (वस्तु) तत्काल व्यापकर डालनेवाला और आनन्दरूप यह यज्ञसम्पादक अग्नि, तेजोमय रखे जाना रहता है, वह हमारी पुकार सुने। अविद्यार्गिन अग्नि, अचूक प्रेरणाओंसे हमें अभीष्ट सुखकी ओर-स्पृहणीय आनन्दकी ओर-ले जाय।

८ शिकनि यात कृत च रय न अर्पनि अंतमि. या इयते। आत् अस्य त्वन्दि, ते कृष्णाणः सुर। चन्ति), शरस्य त्वेषयान् देव दय उपते।

हे अग्ने त्वया हि वरुण. वृत्रत्रत, मित्र अर्यमाच मुदानव (देवाश्च) शासते। यत् सीम् अनु विपय अजायया नेमि अरान् न परिम् (अग्नि)।

१० हे अग्ने यविष्ट त्व शशमानाय हुन्वते रुन दवताति च इन्वसि। हे सहस्र युवन् दे मतिन्व नन्व न त्वा वय भग न नुकारे वीमहि।

११ हे अग्ने, दमनसम् स्वर्ग्य रथिम न दज च भग न त्व अग्ने वषामि पपुचामि। (अर्पय) रथीम् २१ य उने जन्मनी यन्नति य मुज्जु न्त आ दवनाम् च शस (प्रैर्यति)।

१२ उत सुयोत्मा जीराय नः चद्रय होता (अव अग्नि) न दृणवत्। स अग्नि जन्म नेपान वन मुपित नन्व नच्छ न नेप।

ऐसे स्तोत्रगानोंसे, कि जिनका प्रभाव विलक्षण है, अग्नि का स्तवन किया है। विश्वका साम्राज्य भोगनेके लिए यह विलकुल योग्य है, इसी लिए यह सबसे अप्रसर ठहरा है। अतएव, हमारे दातृत्वशाली यजमान और हम, सब इस प्रकार (अधर्मका उन्मूलन करके) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो जैसे सूर्य हिमजालका (उच्छेद करके वृद्धिको प्राप्त होता है।)

१३ (६)

### सूक्त १४२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्ने, आप प्रदीप्त हुए है, अतएव आहुतियां देनेके लिए उत्साहित होनेवाले यजमानोंके पास आज आप अपने देवताओंको ले आइये; और पुरातन (यज्ञधर्मकी) यह हमारी परम्परा सोमरस निकाल कर अर्पण करनेवाले भक्त जनोके लिए यथासांग कीजिए। १

हे स्वयंभु अग्निदेव, आपका स्तवन करके ह्वि अर्पण करनेवाले मेरे समान भक्तजनोका (जो) यज्ञ आप समीप रहकर यथासांग पूर्ण करते हैं उसमें अवश्यही घृतकी और मधुर मधुकी कदापि न्यूनता नहीं रहती। २

यह नराशंस, अर्थात् सर्वजनस्तुति योग्य अग्नि स्वयं पवित्र है, दूसरोंको पावन करनेवाला और आश्चर्यचकित करनेवाला है। वह शुलोकेसे आकर तीन बार (हमारा) यज्ञ मधुरससे पूर्ण करता है। वह सब देवताओंमें अत्यन्त पूज्य है। ३

हे अग्निदेव, हमारे स्तवनोसे आप प्रसन्न हुए है, अतएव उस अत्यन्त उज्ज्वल यशवाले इन्द्रको यहा ले आइये। आप मधुरभाषी हैं और यह अपना स्तोत्र मैं आपके प्रीत्यर्थही गाता हूं। ४

१३ (अ) अग्नि साम्राज्याय प्रतर दधान. अग्निः शिमीवद्भि अकें अस्तावि । अमी ये च मघवान (यजमाना) वय च ते मिह न सूरः अति निष्टतन्युः ।

१ हे अग्ने समिद्ध. अथ यतलुचे (यजमानाय) देवान् आ वह, सुत सोमाय द्यशुषे पूर्व्यं ततु तनुष्व ।

२ हे तनूनपात, त्व भावत विमत्य, शशमानस्य दाशुषः घृतवन्त मधुमन्त यज्ञ उप गासि ।

३ शुचि. पावक. अद्भुत. देवेषु यज्ञिय देवः नराशंसः त्रिरा दिवा. (न) यज्ञ मध्वा मिमिक्षति ।

४ ८ अम ईळित. त्व टि चित्र प्रिय इद्र इहा वह, हे सुजिह्व इय मम मतिः त्वा अच्छ वच्यते ।

ए० २ अध्या० २ व० १०, ११ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० १४२

इस अन्वर यत्ने ऋत्विज कुशासन विद्या कर हाथमे सुवा लेकर आहुतिया देनेके लिए  
यार हैं; और मैं भी इन्द्रके लिए ऐसा विस्तृत आसन सुशोभित करता हूँ जो कि उस  
दिव्यव्यापक देवके लिए योग्य होगा ।

देवताओंके भीतर प्रवेश करनेके लिए यज्ञशालाके पवित्र महाद्वार खुले, ये दुष्टोंके स्पर्शमें  
लकिन नहीं हुए हैं; किन्तु सनातन धर्मको बढ़ानेवाले, पवित्र करनेवाले और साते  
त्यन्त प्रिय हैं ।

सबको आनन्दसे जिसका सत्कार करना चाहिए, जो एक दूसरेसे मित्रकुल संलग्न हुई हैं  
और अपनी मुन्दरताके कारण बहुत मोहक देख पड़ती है वे रात्रि और उषारूप देवता, जो  
( मानो ) सत्यधर्मकी श्रेष्ठ माताही है, प्रसन्न अन्तःकरणसे कुशासनपर आकर बैठे । ७

मधुरभाषी, ( भगवान्का ) अत्यन्त प्रेमसे स्तवन करनेवाले कवि, दोनो दिव्य ऋत्विज,  
हृदयमाग यज्ञ-सर्वायप्रद और स्वर्ग (के देवताओं ) तक भी पहुंचानेवाला यज्ञ-सामोपाग  
र्ष करे ।

शुद्धचारिण्य और देवताओंमें तथा मरुद्गणोंमें भी पूज्य होनेवाली होत्रा, भारती, इत्या  
दिको परम श्रेष्ठ सरस्वती, सन बंशनीय देवता आपही आप आसनपर आ बैठे । ८

हमारे ऊपर कृपा करनेवाला त्वष्टृदेव ( यज्ञमंडपमें ) नाभिपर, अर्थात् उत्तर वेदीपर,  
गारुड़ होकर, हममें जो आजर्ध्वी और स्वाभाविकही अत्यन्त विपुल तथा अतिशय  
आश्चर्यकारक बौर्य हैं उसकी ऐसी योजना करे कि जिससे हम समर्थ हों और हमारा  
कर्म हो ।

हे राजा वृक्ष, यहाँ आइये और स्वयं हवि अर्पण करके देवोंका यजन कीजिए । परम द्विमान अग्नि भी देवताओंमे जिनका हविर्भाग होता है उन्हीको देता रहता है । ११

पूषा तथा मरुत् भी जिसके सेवक है, जो विश्वाधीश है और सर्वत्रगति वायु ( का भी तो आत्मा ) है, जो गायत्र गायनके विषयमे स्फूर्ति देता है उस इन्द्रको, ( हे ऋत्विजो ), शहा उच्चार करके हवि अर्पण करो । १२

स्वाहा शब्दका उच्चारण करके ये हव्य अर्पण किये हैं, इस लिए इनका स्वीकार करनेके लिए आइये, हे इन्द्र यही ठीक है । इस अध्वर यज्ञके लिए ही ( ये ऋत्विज ) आपको प्रीति प्रकृत कर रहे हैं । १३ (११)

### सूक्त १४३.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

मैं अब अपना वह ध्यान, जो कि सदा फलद्रूपही होता है, अग्निके नई लगाता हूँ, और अपने मनोहर तथा शब्दोंसे व्यक्त किये हुए विचार भी हम धैर्यबल देनेवाले उस अग्निकी ही सेवामे अर्पण करते हैं । ( स्वर्लोकके ) उदकोसे जो प्रादुर्भूत हुआ है वह लोकप्रिय अग्नि यज्ञका होता होकर अपने दिव्य निधियोंके सहित यज्ञसमयमे आकर पृथ्वी ( पर की इस वेदी ) पर अधिष्ठित हुआ है । १

अत्युच्च आकाशमे प्रकट होते ही यह अग्नि पहले मातरिश्वाको दृष्टि पड़ा । और वह अपनेही प्रज्ञाबलसे तथा पराक्रमसे जब प्रज्वलित हुआ तब उसकी दीप्तिसे पृथ्वी और आकाश दोनो आंतप्रोत भर गये । २

११ हे वनस्पते त्मना ( हव्यानि ) अवसृजन् देवान् उप यक्षि । देवेषु मेधिरः देवः अग्निः ( अपि स्वय ) हव्या सुपूदति ।

१२ पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे, गायत्रवेपसे इन्द्राय स्वाहा हव्य कर्तन ।

१३ हे इन्द्र स्वाहाकृतानि ( इमानि ) हव्यानि वीतये उपागहि हे इन्द्र आगहि, हव च श्रुधि, ( ऋत्विजः ) त्वा अध्वरे हवन्ते ।

१ तव्यसीं धीति नव्यसीं वाच मति च सहस्र सूनवे अग्नये प्रभरे । यः अपा नपात् प्रियः च होता ( अग्नि ) ऋत्विष्य वसुभि सह पृथिव्या न्यसीदत् ।

२ स. परमे व्योमन् जायमान अग्नि ( प्रथम ) मातरिश्वने आविरभवत् । अस्य कृत्वा, मज्मनाच समिधानस्य शोचि. यावा पृथिवी च अरोचयत् ।

इसकी ज्वाला कभी बुझती नहीं, किन्तु सदा बढती रहती है और इस भव्य तन्त्र अग्निके कारण भी बड़े दर्शनीय और दैवीप्यमान होते हैं। चडकिरण सूर्यकी तरह इसके भी तेजकी लहरें न थकते हुए अथवा निद्रावश न होते हुए गत्रिके निचिड़ अथकारती भेज कर चारों ओर फैल जाती है।

जिस सकल ऐश्वर्यके स्वामी अग्निको भृगुऋषिने त्रिभुवनका वज्र रत्न करके (संगे) लाकर पृथ्वीके मध्यभागमें (वेदीपर) उसकी स्थापना की उसके स्वस्थानमें विराजमान होनेपर उस अग्निको अपनी स्तुतियोंसे अपना बनाओ, क्यों कि वरुणकी तरह (भगवद्रूप रहनेवाला) यह भी (देवी) सर्वात्तका अकेलाही प्रभु है।

मेघगर्जना अथवा (धनुषसे छूटा हुआ) बाण अथवा आकाशके उल्कापात जैसे किसी पकड़ें हुए नहीं रह सकत उसी प्रकार इस अग्निका यदि कोई राकना चाहे तो यह ब्राम्हा है। अपनी तीक्ष्ण दंष्ट्राओंसे (जो कुब्ज इसके पंजेमें आता है वह सब) यह खाकर भस्म हो डालता है और जैसे कोई किसी लड़नेवाले शत्रुपर दूट पड़े वैसेही यह जंगलके जंगल चट कर डालता है।

हमारा स्तोत्रगायन अग्नि बड़े कौतुकसे बारम्बार पसन्द कर लेवे। यह (देवी सम्पत्तिका) भाटागी, हमें बड़ सम्पत्ति बारम्बार देकर हमारा मनोरथ पूर्ण करे। यह प्रेरक ऐसा करे कि प्रगाहृत कार्यमें हमारे सुविचार उत्तम रीतिसे काम दे। उस अग्निका, जो पवित्रताकी मूर्तिही है, मन्त्रन करता है। वह ऐसे स्फूर्तिजन्य स्तोत्रके द्वाराही करता है।

आपकी उन्नत कानि धृतिमें नुशांभितही दिखती है। इसका सत्यधर्मका मार्गदर्शक मानकर तुम्हारे लिए प्रेमी मित्रकी तरह उदाधन करके (जय) इसको भक्तजन सुप्रसन्न करते हैं। अपने वदके भेरे जोरमें प्रदीप्त होकर सारे यजमंडपमें दिव्य कानिसे चमकनेवाला यह अग्नि हमारे लक्ष्मणक प्रेमका आनन्दय कौतुक करता है।



हे अग्निदेव, आप भक्तोंकी कभी उपेक्षा न करते हुए अपने श्रमोघ मंगलदायक और सुखकर उपायसे हमारी संरक्षा कीजिए। आपकी योजनाएं ऐसी हैं कि उनमें न्यूनता कहीं नहीं मिल सकती। वे किसीके द्वारा च्युत नहीं की जा सकती। इसके सिवाय उनमें कभी खंड भी नहीं पड़ता। इस लिए, हे परमपूज्य देव, ऐसी योजनाओंसे हमारे स्वकीयोंकी संरक्षा कीजिए।

८ (१२)

### सूक्त १४४.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

अपनी (उपासना) प्रवीणताके जोरमें जब ऋत्विज इस अग्निकी सेवा करनेमें प्रवृत्त होता है तब वह अपने सर्वांगसुन्दर गायनके आलाप खड़े सुरमें निकालता रहता है। उसके साथ अग्नि भी प्रेमवेगसे, आहृतिया देनेके लिए बढ़ाई हुई पड़ीकी ओर बाईं तरफ बढ़ता है, क्योंकि सबके पहले वही उसके आसनसे भिड़कर उसका चुम्बन लेता रहता है। १

सत्यधर्मके प्रवाह अपने उद्गमस्थानमें अर्थात् देवके निवासस्थानमें दिखाई देने लगे। उन्होंनेही अग्निको गौरव किया। स्वर्गाके अंकपर कौतुकसे क्रीड़ा करते हुए इस (अग्निरूप बालकने) ईश्वरी तेजका पान किया, इसी कारण अब उसकी सर्वत्र प्रार्थना होती रहती है। २

एकही उद्देश साधनेके लिए दोनो परस्पर आतुर हुए हैं और दोनोका उत्साह बराबरही है। अतएव अग्निका वह अपूर्वरूप प्रकट होनेके लिए (दोनो) प्रयत्न करते हैं, अर्थात् इस भावनासे कि हमारे भाग्यका निधान यही है, हम भी इस अग्निकी पुकार करें, यह विलकुल योग्य है। क्योंकि जैसे घोड़ेकी लगाम हाथमें रहती है उसी प्रकार हमारे भाग्यके सूत्र इसी सूत्रधारके हाथमें है। ३

जिस अग्निकी उपासना दोनो (ऋत्विज) एकही घरमें रहनेवाले एकही वेदीपर जोड़ीसे, समानही उत्साहसे करते हैं वही यह अग्नि, क्या दिनमें क्या रात्रिमें, सदाही तरुण रहनेवाला यह शुभ्रतेजस्क अग्नि देखिये अवतीर्या हुआ है। और मनुष्यजातिके कितनेही युग हों जायेंगे, परन्तु यह कदापि जराप्रस्त नहीं होगा। ४

८ हे अग्ने त्व अग्रयुच्छन् अग्रयुच्छद्रि. शिवेभिः शग्मै. पायूभि न पाहि। (तथाच) हे इष्टे, अदन्वेभि अदपितेभि अनिमिपद्रि च (उग्रने.) न जा परि पाहि।

१ (यदा) होता मायया अस्य व्रतम् प्रेति (तदा) स ऊर्ध्वो शुचिपेशस धिय दधानः। अग्निश्चापि, अग्निं ह्युच दक्षिणावृत्तं क्रमते, या. (रुच) अस्य धाम प्रथमं निसते ह।

२ ऋतस्य दोहना योनौ (नाम) देवस्य सदने परिवृताः (अपि) ई अभ्यनूपत, यत् अपा उपस्थे विभृत्. वा अवसत्। अध स्वना. अवयत्, याभिः श्यते ता।

३ समान अर्पे मित्र वितरित्रता (द्वौ) सवगमा तन् (अपूर्व्यं) वपु युयुपत इत्, आदीम् सः (नः) भग न तम् आरुष्य वौळु न रग्नीन् स सारणि अस्मत् (रग्नीन्) सम् अयस्त।

४ यम् इम् द्वा समोक्ता, समा. योना भियुना सवगसा सपथतः। (सोय) दिवा न नक्तम् युवाः पलित. (अग्नि) अजनि, मानया युगा पुरु चरन् अपि अजर।

मैं जो व्यानुक्त लोकोत्तरे उस वार प्रार्थना करता हूँ सो उसीकी और हम मर्त्य मानव को मरुश्रगाय्य पुकार करते हैं सो भी उसी भगवानको । यह कमानीदार आकाशसे तेजीके साथ नीचे आता है और अपने स्वागत करनेवाले भक्तोंको साथ लेकर ( जगत्में ) अपनी ज्ञानका प्रसार करता है ।

हे अग्निदेव, इस आकाशके भुवनोंके राजा एक आपही है । और इस भूजोते भी ( राजा ) आपही है । कोडि गोपाल ( जैसे गार्शकी घेरना है ) उसी प्रकार आप ही उन दोनों लोकोंपर सत्ता चलाते हैं । ( आकाश और पृथ्वी ) ये पृथ्वी इत्यादि गोले उत्तरे प्राग्, युव्रवर्ण, तेज पुंज, नाशरहित और भ्रमणशील यद्यपि है तथापि इस अग्निके कुशासनके निष्कर्षों वैसे जैसे करकेही पुरते है ।

हे अग्निदेव, आप प्रसन्न होकर इन हमारे स्तवनोंसे आनन्दपूर्ण हो । हे अग्ने, आप आनन्दमय, त्वन्त्र, सद्धर्मप्रभव और परमप्रद है, आपके दर्शन होते ही सब दिशाओंसे आप मन्त्रोंकी शक्ति देते हैं और सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त राजमहलकी तरह सब दिशाओंसे आप भक्तोंकी मन्त्रुय देते रहते हैं ।

सूक्त १४२.

॥ ह्यि-दातामा । देता-अग्नि ॥

उसीने प्रदो, यह देगिने अग्नि शक्ति आ रहा है । उसे सब बातों का ज्ञान रहता है । उसने सब देता है । उसीकी विनती करते हैं और प्रार्थना करते हैं । सब शास्त्रनियम उसीके नियम हैं, सब यज्ञभाग भी उसीने हैं । पवित्र सामर्थ्यका, सब प्रतापोका और प्रतापी पुत्र्यता भी अविभक्ति वही है ।

कुछ पढ़ना है तो उसीने पढ़ते हैं, पर ऐसा नहीं है कि चाहे जो मनुष्य इसमें प्रसन्न हो सके, लिये जानु पुत्र्य, अपने मनके विचारके अनुसार, अपने हृदयकी बात इसमें पढ़ सकेता है । वह ( महाना ) अग्निका वनवाया हुआ आगे या पीछेका कोईभी शब्द न भवने हुए उसने मन्त्र ( अग्निकेही ) मन्त्रुयके अनुसार चलता रहता है ।

(घृताहुतियोंसे भरी हुई) पड़ियां इसीकी ओर जाती हैं; स्फूर्तिजन्य स्तुतिस्तोत्रोंका स्थान भी वही है, हमारी की हुई सारी विनयिया भी उसीके कानमें पड़े। नाना प्रकारकी प्रार्थनाओंका स्वीकार करनेवाला, जयशाली और यज्ञ सांगोपांग पूर्ण करनेवाला यह वालरूप अग्नि अपने जोरकी चमक प्रकट करने लगा है। इसका कृपाब्ज ऐसा पूर्ण है कि उसमें दोष निकालना विलकुल असम्भव है। ३

अग्नि अपना सारा शरीर जब सम्हाल लेता है तब वह अवश्यही चारों ओर (धीरे धीरे) संचार करता है। परन्तु जब नवीन प्रकट होता है तब अपने परिवारके सहित एकदम झपाटेसे निकल जाता है। परन्तु अग्निके प्रकट होतेही प्रेमवेगसे जब उसकी स्तुति की जाती है तब अवश्यही वह पास आकर थके हुए भक्तजनोंमें आनन्द और प्रेमकी वृद्धि करनेके लिए उनकी पीठपर हाथ फिराता है। ४

यह जब मेघोद्वेगसे या वनमें होता है तब किसी वन्यश्वपदकी तरह उग्र अवश्य दिखता है, परन्तु अब (आकाश और पृथ्वी परकी वेदोंके) उत्कृष्ट पृष्ठभागपर उसकी स्थापना की है। मनुष्यको पहले पहल सद्धर्मका ज्ञान इसीने सिखलाया; क्योंकि वह सर्वज्ञ है, तथा परम धर्मका प्रवर्तक और सत्यकी केवल मूर्तिही है। ५ (१४)

सूक्त १४६.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

अग्निके मस्तक तीन (प्रकारके) और किरण सात प्रकारके हैं और उसके स्वरूपमें न्यूनता मिलही नहीं सकती। वह (जगत्के) मा वापके समीपही बैठा हुआ है। उस अग्निका मैं गुणसर्कार्तिन करता हूं। देखिये, उसने देखनेमें चल परन्तु वस्तुतः अचल आकाशका तेजोऋप और विस्तीर्ण प्रदेश कैसा ओतप्रोत भर डाला है। १

दीर्घवेगसे स्फुरण पानेवाले महान् अग्निने आकाश और पृथ्वी दोनोंको कभी का घेर डाला। जराहीत और उदारचरित अग्नि यद्वासे फैलते फैलते आकाश तक जा भिड़ा। इसने पृथ्वीके गिरिशिखर पर पैर रखा, इतनेही में उसकी आरक्त शिखाएं मेघरूप गाईके ऐन तक पहुँच कर चारने लगी। २

३ उग्र तमिन् गच्छन्त, तम् अदती, मे विश्वानि वचासि स (एकः) शृणवत् । स. पुरु प्रपेः तदुदि यज्ञसाधनः अछिद्रकृति शिशु च रभ. समा अदत्त ।

४ यत् समारत उपस्थाच चरति (कित्) सद्यः जात सन् गुज्येभिः तत्सार । यत् ईम् अपिष्ठितम् उशती (स्तुतय) गच्छन्ति (तदानीमेव) श्वान्तम् (भक्त) नान्ये मुदेच अभि मृशते ।

५ सः अप्य वनर्तुं (वा) मृग ईम्, (कित्) अधुना) उपमस्या त्वचि उप नि धायि । मार्चेभ्यः वयुना अनिः (एव) व्यत्रवीत (सः) हि विद्वान् कृतचित् सत्य च ।

१ त्रिमूर्धानं, सप्तारदिम्, अनूतम्, पित्रो उपर्ये नियत्तम् अग्निम् गृणीषे । (पुनश्चः) अस्य चरतोपि ध्रुवस्य दिव विश्वा रोचना आपप्रिवात्तम् (गृणीषे) ।

२ अय उक्षा महान् एने (यावा पृथिव्या) अभि ववक्षे, अजरः ऋष्व इत कृतिः तस्थौ । (यदा) ऊर्वा सानौ पद नि दधाते (तदानीमेव) अस्य अरुपासः (दीप्तयः) ऊधः रिहन्ति ।

अष्ट० २ अध्या० २ व० १५, १६ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २१ सू० ११०

ये दोनों मनोहर धेतुएं अपने बछड़ोंके आसपास चकर काटते हुए एक के पीरे एक चर्ता जानी हैं और जाने जाते उसके मार्ग निकटक कर डालती हैं, क्योंकि उनका पुराना ध्यान ( उनके इन बछड़ोंकी ओर ) उस सर्वश्रेष्ठ ( अग्नि )की ओर लगा रड़ा है।  
 जाना ऋषि अग्निको उसके स्वस्थानकी ओर ले जाते हैं और वहां सच्चे प्रेमने योजित की हुई नाना प्रकारकी युक्ति प्रयुक्तियों से उस जरारहित अग्निको वही मत् लेते हैं।  
 उसमें उक्तपर्वक सेवा करनेवाले उन ऋषियोंके आकाशरूप सागरकी ओर द्रष्टि डालते हैं।  
 उन ऋषियोंके कारण मर्त्यजनोंके लिए सूर्य प्रकट हुआ।  
 चाहे जितम म्यत्नमे दर्शन करने योग्य यदि कोई है तो वह यही निभूति है।  
 ब्रह्मदेवोंको दीर्घायु-प्राप्तिके लिए स्तवन करके इसीको प्रसन्न करना चाहिए, क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ मतोदार सबको दर्शन देनेवाला अग्नि इन सब जीवोका पिता है।

मूक्त १४७.

५ (१५)

॥ इषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, ( पुण्यप्रभावसे ) तेज पुंज, और आपको परमात्मा मान कर अन्त तर्गाये प्रापका भजन करनेवाले भक्तजन यज्ञोसे आपकी सेवा कैसे करण हैं, सो कृपा करके हमें त्वलाशय, हमने ( हमें ) पुत्रपौत्र दोनों देनेवाले देव हमारे भर्मानगणसे सन्तुष्ट होंगे।  
 अत्यन्त तर्गा अग्निदेव, हे स्वतंत्र, यह मेरा स्तोत्र कृपा करके सुनिये, उसमें औदार्यका नि द्रिया गया है और इसकी पशुचरना भी मनाहर है। बाहे कोई प्रशमा करे, चाहे य करे, परन्तु हे अग्ने, मैं आपका सेवक सर्ववन्द्य देव आपके सामने शरयनी होऊंगा।

आपके आज्ञाकारी सेवकोने उस ममताके अंधपुत्रको देखते ही उस दुखसे उसकी रक्षा की। हे परमबुद्धिमान् सर्वज्ञ भगवान्, उन भक्तोंकी (अपने इस रीतिसे) रक्षा की, इस लिए, मनमें नुकसान करनेकी इच्छा रखते हुए भी, शत्रु (उन भक्तजनों)का एक बाल भी नहीं टेढा कर सके। ३

हे अग्ने, जो कोई नीच मनुष्य स्वयं तो भक्ति करताही नहीं, किन्तु (सज्जनोंको अवश्यही, दुख देना चाहता है, और कपट करके हमें धोखा देना चाहता है, ऐसे दुरात्माका दुष्ट विचार उल्टे उसीके गले पडता है और उसके गालीगलौजसे स्वयं उसीका नाश होना है। ४

तथा हे परमप्रतापी अग्निदेव, आपका स्तवन सर्वत्र होता रहता है, अतएव जो मनुष्य जान बूझकर कपटसे दूसरेका नाश करना चाहे उसके पंजेसे आप अपने गुणसंकीर्ति करनेवाले भक्तोंका बचाव कीजिए और ऐसा न होने दीजिए कि हम पर अनर्थ आवे। ५ (१६)

### सूक्त १४८.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

जो यज्ञका आचार्य, सब प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाला, सब देवोंका मूर्तस्वरूप है उस अग्निको जब स्वार्थीनचित्त मातरिश्वाने मंथन करके प्रकट किया तबसे देदीप्यमान सूर्यकी भांतिही एक अद्वितीय और तेजस्वी विभूतिके तौरपर इसकी भी मनुष्यलोकने स्थापना हुई। १

जो सचमुच भक्तिभावसे (देवकी) प्रार्थना करता है उसकी हानि कोई भी नहीं कर सकता, अग्निको इस प्रकारकी प्रार्थना मनसे अच्छी लगती है, इसी कारण मेरा कवच बन कर वह मेरी रक्षा करता है। लोगोंको धर्मरत भक्तोंका सत्कर्म, सेवा, इत्यादि सब कुछ प्रिय ही होता है। २

३ हे अग्ने ते ( तव ) पायव धे मामतेय अध पश्यत. ( त ) दुरितात् अरक्षन् । हे सुकृतो विश्ववेदा तान् ( भक्ताः ) ररक्ष ( अत. ) रिपक दिप्सन्तः इत् अपि न अह देभुः ।

४ हे अग्ने, य अघायु ( त्वय ) अररिवान् अरातिवा च द्वयेन ( न ) मर्चयति, । ( अस्य ) सः मत्र पुन अन्न ( एव ) गुरु अस्तु, स च दुरुक्तै तन्वम् अनु मृक्षीष्ट ।

५ उतवा हे सटस्य अग्ने, य ( कोपि ) मर्ते प्रविद्वान् मर्ते द्वयेन मर्चयति । अत हे स्तवमान अग्ने, स्तुवन्तम् पाटि, न दुरिताय नाकि धायी ।

१ यन् इन् होताः, वि आप्तु, वि वेदेव्यम् ( अग्निम् ) विष्ट. मातरिश्वा मधीत् । ( तत् ) य त्व ( सूर्य ) न चिन् विना ( देवा ) मनुष्यान् विभु वपुषे दधुः ।

२ मन्म ददान ( केपि ) न इत् ददभन्त, तस्य ( मन्मन ) चाकन् अग्नि मम वरुभम् । ( लोका ) अस्य भरणणस्य उपस्तुतिम् कर्म वि वानि जुपन्त ।

पूज्य ऋषिजनोको उनके शाश्वत स्थानमेंही अग्नि मिला, फिर बड़े गौरवसे उन्होंने उसको (वेदीपर) स्थापना की। इसके बाद वे आदरसे उसे यज्ञमें ले गये। परन्तु रथमें जाते हुए अथोकी तरह वे बड़े वेगसे गये। ३

अग्नि अघटित चमत्कार घटित करता है (परन्तु उसी प्रकार) सैकड़ों पदार्थ अपनी डाढ़ोंके नाचें डालकर रगड़ भी डालता है। और लोगोंको आखें चकाचोभमें डालकर साग जंगल प्रज्वलित कर डालता है। ऐसी दृश्यामें वायु भी, जैसे किसी धनुर्धरके द्वारा वेगसे झोंडे हुए बाणको सहाय्यभूत होता है, उसी प्रकार प्रतिदिन अग्निकी ज्वालाओंके अनुसूझड़ी बढ़ता रहता है। ४

अग्नि चाहे गर्भावस्थामें हो, तथापि उसे कोई भी शत्रु, कोई भी घातकी अथवा कोई भी अत्याचारी पातकी उपसर्ग नहीं डे सकता। उसके प्रकट होनेपर उसके जाज्वल्य तेजसे वे अंधे हो जाते हैं और उन्हें कुछ देखही नहीं पडता, तब फिर वे उपद्रव कैसे कर सकते हैं? परन्तु निरन्तर उपासनानिष्ठ भक्तजन अवश्यही उसे (अन्तःकरणमें) रखे रहते हैं। ५ (१७)

### सूक्त १४९.

॥ हवि-दीर्घमा । देवता-अग्नि ॥

यह देविये, दिव्य सम्पत्तिका उदार अधिपति, राजाओंका भी राजा इस (पवित्र) निमित्तके स्थानकी आरंभही आ रहा है। अतएव अब उसका आगमन होता है, इतनेही-में वे सोमप्रस्तर उसकी सेवाके लिए तैयार हों। १

यह अग्नि इस (भूतजपरके) लोगोंका तथा अन्तरालके भुवनोंका अपनी कीर्तित्तम पुरीणोंके नातेसे प्रसिद्ध है। जिसकी क्रियात्मक सृष्टिका पान सम्पूर्णा जीव नित्य करते रहते हैं वही यह अग्नि आगे बढ़कर अपने आमनवर आगेहीगा करता है। २

जिसने नार्मिणीके कोटवाले नगरपर उज्वल प्रकाश डाला वही यह महाज्ञानी ( अग्नि ),  
प्रकाश कँपा डालनेवाला मानो चपल अश्वही और सूर्यकी तरह तेज. पुत्र अग्नि, आत्मशक्ति  
से सौ गुना भर रहा है। ३

दो स्थानोमे प्रकट होनेवाला और तीनों दिव्य लोक तथा सब अन्तराज्य प्रकाशसे  
ओतप्रोत भर डालनेवाला यह अत्यन्त पूज्य आचार्य स्वर्गगाके वसतिस्थानमे वास करता  
रहता है। ४

वही यह अग्नि दोनो स्थानोमे प्रकट होनेवाला यज्ञका आचार्य है। सत्य भक्तिसे प्रेरित  
होकर जो भक्त इसे हविर्भाग अर्पण करता है उरो यह अग्नि अत्युत्कृष्ट संपत्ति और  
जगद्विख्यात सत्कीर्तिका लाभ अवश्यही कर देता है। ५ (१८)

सूक्त १५०.

॥ ऋषि-दीधितमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, मैं आपसे बहुत धन मागता हूँ। क्योंकि मैं आपका अनन्य भक्त हूँ। आप  
सबसे बड़े हैं। आप धर्मका प्रचार करनेवाले हैं। आपहीकी कृपासे मैं आनन्दमे  
रहता हूँ। १

आप मुझपर कृपा कीजिये। जो नास्तिक मनुष्य यज्ञ नहीं करता है और जो ईश्वरकी  
पूजा नहीं करता है उसका आप नाश कीजिये। वह बड़ा धनवान् होनेपर भी आप उसकी  
पुकार मत सुनिये। उसकी ओर आप ध्यान मत दीजिये। २

हे ज्ञानवान् अग्निदेव, जो मनुष्य आपका भक्त है वह सबको आनन्द दिलाता है।  
रोगोमे भी उस भक्तकी उन्नति होती है। हे अग्निदेव, हम भी आपके भक्त हैं। इस लिये  
हमारी भी आप उन्नति कीजिये। और हमें सबसे श्रेष्ठ बनायिये। ३ (१९)

३ य नार्मिणीनाम् पुरम् अदीदेत् ( सोय ) कवि, ( अग्नि ) नभन्यः अत्य अर्वा न, सूर न रुक्मान्,  
सतात्ना ( भवति ) ।

४ ( स ) द्विजन्ना त्री रोचनानि विश्वा रजासि अग्नि शुशुचान यजिष्ठः होता अपा सधत्ये अस्थात् ।

५ अय स दिजन्ना होता, य मर्त सुतुक् अस्पे ददाश, ( तस्मै ) विश्वा वार्याणि, अयस्या च दध ।

१ हे अग्ने दा दान् ( अह ) त्वा पुस्वोचे, ता ( अह ) अरि तव रिचत् शरणे आ ( अस्मि, येन ) महस्य  
तोदरधेव शरणे मा ( भवानि ) ।

२ ( प्रसीद ) अग्निवस्य, वग्नि ( सत्त. ) अररूप चित् अदेवयो च वि प्रहोपे ( अग्नि ) कदा चन  
पजिगत. ।

३ हे विप्र अग्ने स, ( तव ) मर्त ( मर्त ) चद्र मत् दिग्नि त्रावन्तम्. च, ( अत ) हे अग्ने ( वय ) ते  
वतुष ( अग्नि ) प्रप्र इत् साम ।

मुक्त १५१.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-मित्रानरण ॥

(उत्थरके) ध्यानमें मग्न हुए सज्जनोंने (ज्ञानरूपी) गौतमकी उच्छ्वा तकके यज्ञके समान मित्रकी तरह उपकार करनेवाले, परम प्रिय और परमपूज्य अग्निको आहासके जजसे प्रकृत क्रिया । उस समय अग्निने बड़े जोरसे गर्जना की । उससे आकाश और पृथ्वी भी क्षिप्त हुई । वे सोचने लगे कि मनुष्यकी रक्षा किस तरह होगी ।

सोमयाग करनेवाले पुत्रभिऋदाकी आज्ञाक अनुसार चलनेवाले ऋत्विजोंने ये प्रेतों आपको द्वि अर्पण किया है । इस लिये आपको स्तुति करनेवाले भक्तोंको आप ज्ञान प्राग आव्य करनेकी मूर्त्ती अर्पण कीजिये । हे पराक्रमी पुरुष, बरका स्वामी अथवा यज्ञमानका प्रार्थनाकी ओर भी आप ध्यान दीजिये ।

हे धीर पुत्र, आप अन्तरिक्षसे उत्पन्न होते हैं । उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त बड़ प्रेमसे आपकी उत्पत्तिका वर्णन करते हैं । यथानिधि किये हुए यज्ञका ज्ञान प्राप्त प्रेमसे न्योत्तर करते हैं तब आप अपने साथ लाया हुआ सामर्थ्य धर्मप्रचारके लिये उनको अर्पण करते हैं ।

हे आर्ग्वरूपी मित्र और वरुण, गिन ओगोपर आप कृपा करते हैं उनका वैभवं बढ़ता है । हे धर्मशी रक्षा करनेवाले देव, हमारे यज्ञकी आप प्रशंसा कीजिये । जिस तरह रथके साथ हमेशा दैत्य जाते हुए रहते हैं उसी तरह आपकी कृपासे गुजोकसे प्राप्त होनेवाले सामर्थ्यका साथ सत्कर्म हमेशा रहता है ।

आप अपने प्रभावसे पृथ्वीकी सुन्दर सम्पत्तिका संग्रह करते हैं । इस लिये निःकलक और तेजस्वी (दुद्धिरूप) धेनुएँ अच्छी तरह रहती हैं । जिस दिन आकाश में घोर आन्ध्रता पित रहता है उस दिन जिस तरह तक्षशी पक्षी सूर्यका दर्शन लेनेके लिये रातमें आकाशमें उड़ती है उसी तरह वे धेनुएँ भी सुन्दर (काव्य) यज्ञि आपका मुद्ग निशालती हैं ।



हे मित्र और वरुण, जिस यज्ञमें आप बड़े जोरसे गाते हैं उस यज्ञमें स्वर्गकी स्त्रीया भी जिनके बाल बड़े मनोहर दिखाई देते हैं आपके यशका वर्णन करते हैं। आप अपने मनसे हमारी बुद्धिकी उन्नति कीजिये। मैं जैसे कवीकी बुद्धिकी स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही हूँ। ६

जो मनुष्य आपकी स्तुति करके यज्ञके द्वारा आपको हवि अर्पण करता है और जो कवि और पुजारी बड़े ओजसे आपका स्तवन करता है और आपकी उपासना करता है उनके पास आय जाते हैं और बड़े प्रेमसे उनके यज्ञके हवियोंका आप स्वीकार करते हैं। हमपर कृपा करनेवाले हे मित्र और वरुण, हमारी प्रार्थना और सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर हमारी ओर आइये। ७

न्याय और नीतिका प्रचार करनेवाले मित्र और वरुण, यज्ञके लिये लाये हुए गोस्सस हम नियमके अनुसार हृदयसे आपहीकी पूजा करते हैं। (भक्तजन) आपहीको अनन्य भक्तिसे स्तुतियो और प्रार्थनाएँ अर्पण करते हैं। आप भी दिव्य वैभव साथ लेकर उनको हृदयसे अर्पण करते हैं। ८

हे वीर पुरुष, आप बड़े जवान हैं। श्रेष्ठ और सबकी रक्षा करनेवाला सामर्थ्य भी ईश्वरकी कृपासे आपही हमें अर्पण करते हैं इस लिये आकाशरूपी समुद्र और पृथ्वी भी आपके दैवी सामर्थ्यकी बराबरी नहीं कर सकते। ९ (२१)

६ हे मित्र वरुण यत्र गातुम् अर्चथ, तत्र ( यज्ञे ) केशिनी; ऋताय वाम् आ अनूपत । (युवा) तन्ना धिय अवस्रजतम् पिन्वतम् च युवम् विप्रस्य मन्मनाम् इरज्यथ ।

७ य वा शशमान ह यज्ञै दाशति, य. कवि होता ( वा ) मन्मसाधन. ( वा ) यजति । तम् उप गच्छथ अइ, ( तस्य ) अध्वर वीथ, ( तत् ) हे अस्मयु ( अस्माक ) गिर सुमति च गन्तम् ।

८ हे ऋतावाना, यज्ञै गोभि मनस प्रयुक्तिषु न युवाम् प्रथमा अङ्गते । ( भक्ताश्च ) सयता नन्मना वा गिर भरन्ति, ( युवा हि ) अदृष्यता मनसा रेवत् ( च ) आशाये ।

९ हे नरा, रेवत् वय दधाये, रेवत्, इतजति, ( च. ) मादिनन् ( ऐर्वयमपि युना ) मायया आशाये । ( अत. ) न याव. न उत तिन्यव नापि पणय वाम् देवत्वम् मय ( वा ) अहभि न आनशु ।

मूक्त १५२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-मित्रारुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप ऐसा बल पहिन्ते हैं जिससे सवदूर प्रकाशही फैलता है आप अपने नियत कर्ममें और अपने कृत्यमें कभी भूल नहीं करते । किसीकी अपमान ( चालवाजी ) आपके सामने नहीं चलती । हे मित्र और वरुण, इसका कारण यह है कि आप हमेशा सत्य धर्मसेही चलते हैं ।

हे मित्र और वरुण, आपके कामके विषयमें विद्वान् लोग जो अनुमान करते हैं विलकुल ठीक निकलता है । उसके लिये विद्वान् लोग आपकी स्तुति करते हैं । आप काम करते हैं वह विलकुल उचित है । शत्रुका हथियार जब तीन जगह पतली भाग होता है तब आपका हथियार चार जगह पतली धारका होता है । इस तरह आप शत्रु नाश करते हैं । उसी समय देवोंकी निन्दा करनेवाले लोगोंका नाश आपही करता होता है ।

यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि जिस लोको पर नहीं होते वह पैरनाजी लोको पर चलती है । हे मित्र और वरुण, आपका उपर्युक्त महिमा कौन जान सकता है ? आप स्वरूप छोटा होनेपर भी आप जगतका भार सहन करते हैं । आपका अवतार सत्यार्थमें बढ़ाना है और असत्य धर्मका नाश करता है ।

सूर्य-जिनपर स्वर्गकी लीया प्रेम करनी है-सदा हमें चलता हुआ दिखाई देता आराम लेता हुआ वह कभी दिखाई नहीं देता । उसके तेजोस्वी बल सवदूर प्रकाश फैलते हैं । मित्र और वरुणका प्रीतिका स्थान भी आप ( सूर्य ) ही हैं ।

उदय होतेही बिना लगामके अश्वही तरह सूर्य बड़े गर्वसे अपनी छाती दिखाकर गर्जना करके आकाशमें एकदम उछलने और कूदने लगता है । इस आश्चर्यके कारण सूर्य पुत्रा अवस्थाका उपभोग लेनेवाले देव मित्र और वरुणके वैभवकी स्तुति करते हैं और ईश्वरके अनर्क्य गुणोंका वर्णन करते हैं और उसीमें मग्न हो जाते हैं ।

१ युवम् धीमसा वक्राणि वसाधे, युवो, नन्तव, सर्गाश्च अचिच्छ्रा । ( वसाम् ) निना अनुमानि  
 २ निरुत्तम्, ( वन् ) हे मित्रावरुणा ( युवाम् ) स्तुतौ सन्तव ।  
 एतन् च त्वं वि चिच्छतन् ( वन् ) ण्याम् नत्र ( य ) हविशस्त, स तय दत्ताम् । ।  
 ) उत्र चतुर्था ( नृत्वा ) त्रिगुणम् हन्ति । ( तदानीम् ) देवनिदं ह प्रथमा जगन् ।  
 ३ वन् पृथ्वीना ( नये ) प्रथमा णि, ४ मित्रा वरुणा वा तन् ( धर्म ) ६ आ चिच्छत । यन्  
 चिन् नर जा नरति, स्तुत निरति, अस्तुत जितागिन् ।  
 ५ उर्वेण जग प्रवृत्तमिन् परिपश्यामि न ( तु ) उपनिपश्यामिम् । ( अपिन् ) जगत्पुगा । । ।  
 ( वयम् ) । वनन्तम्, मित्रस्य वरुणस्य च द्विजं जगत् ( पश्यामि ) ।  
 ६ नृत्वा वन् ( ३२ ) नन्तव नन्तवु ( वसाधे ) हविच्छदं पतयन् वरुणावु ( नयन् ) । ( ३३ )  
 ७ युवम् ( देवा ) निवेव वदोव नम प्रवृत्तम् अचिन्तम् नम उरुपु ।

जिन धेनुओंने मेरी-मैं जो ममताका पुत्र हूँ-रक्षा की उन्होंने मुझे-जो मैं उनकी उपासना करनेवाला भक्त-हूँ अपना दूध पिलाकर हृष्टपुष्ट बनाया है। सब प्रकारकी विद्याओंको पढ़कर ( दिव्यज्ञान ) प्राप्त करनेके लिये मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ। उसके अनन्तर ईश्वरपर सब भरोसा रखकर दुःखसे मुक्त होनेकी इच्छा मैं करूँगा। ६

हे देव, हे मित्र और वरुण, मैंने अर्पण किये हुए हवियोंका आप स्वीकार कीजिये। मैं आपकी सेवा करनेवाला भक्त हूँ। इस लिये मेरी और आप ध्यान दीजिये। युद्धमें हमारी प्रार्थना सफल होवे, हमें दिव्य ज्ञान प्राप्त होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ७ (२२)

सूक्त १५३.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-मित्रावरुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप सामर्थ्यवान् हैं। हम सब लोग एकत्रित होकर प्रेमसे आपको हवि अर्पण करते हैं। हम नम्रतासे आपकी प्रार्थना करके आपकी सेवा करते हैं। हे स्वर्गके घाँकी वर्षा करनेवाले देव, हमारे अध्वर्यु घाँकी आहुतिकी तरह योग्य स्तोत्रोंसे आपको सन्तुष्ट करते हैं। १

आपकी अच्छी तरहसे स्तुति करनेसे और आपका ध्यान करनेसे दोनोंसे सामर्थ्य प्राप्त होता है। हे मित्र और वरुण, इस लिये मैं आपको एक सुन्दर स्तोत्र अर्पण करता हूँ जब धर्ममन्दिरमें यज्ञका आचार्य आपका भजन करता है तब, हे वीर पुरुष, आपस वह महात्मा ( आचार्य ) सब्से आनन्दके लाभकी इच्छा करता है। २

हे मित्र और वरुण, यज्ञके सभामन्दिरमें आचार्य भी साधारण मनुष्यकी तरह आपको हवि अर्पण करके आपकी पूजा करता है। वह अपने हृदयको भी आपकी सेवा लगाता है। उस समय मनकी शक्तिस्वरूप धेनु सत्यधर्म बढ़ानेके लिये और हवियोंको देनेवाले भक्तलोगोंके लिये दिव्य दूधसे भरी हुई, बड़ी मस्त रहती है। ३

६ ( या ) धेनव ( मा ) मामतेय अवन्ती ( ता ) ब्रह्म ( ता.एव मा ) ब्रम्हप्रियं सस्मिन् ऊवन पीपयन् । वयुनानि विद्वान् पितृ भिक्षेत अदितम् असा आविवासन् उरुष्येत् ।

७ हे देवों मित्रावरुणों नमसा अवसाच वा हव्यजुष्टि ( प्रति ) आ ववृत्याम् । अस्माक ब्रह्म वृतनासु सहा दिव्या वृष्टि अस्माक सुपारा ( भवतु ) ।

१ हे मित्रावरुणा ( वय ) सजोपा हव्येभि नमोभि वा मह यजामहे । हे धृतस्नु, अध यूत अध्वर्यव धृतै न धीतिभि वाम् भरन्ति ।

२ प्रस्तुति वाम् प्रयुक्ति न धाम ( अत ) हे मित्रावरुणा ( मया ) सुवृक्ति अयामि । यत् होता विदेषु वाम् अनक्ति, ( तदा ) हे वृषणौ स स्त्रि वाम् सुनम् इयक्षन् ( वर्तते ) ।

३ हे मित्रावरुणा यत् विदधे स होता मानुष न रातहव्य सपर्यन् च ( स्वात. ) वाम् हिनोति । ( तदा ) अदिति धेनु कृताय, एविदे जनाय च पीपाय ।

जब आपके भक्त आपके आनन्दमें मग्न होते हैं तब सोमरस, दिव्य गेहूँ, और लगेता जल आपको चयेष्ठ रूपसे प्राप्त होते हैं। यदि इसी तरह सनातन भगवान् हमें हमेशा आनन्द देवे तो आप भी मित्र और वरुण, आर्द्रेय और प्रकाशहा गेहूँ मधुर रस आस्ता लीजिये।

४ (२३)

सूक्त १५४.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-विष्णु ॥

हम पूर्ण गीतिमें विष्णुके पराक्रमोका वर्णन नहीं कर सकते। क्योंकि वे बहुत हैं<sup>१</sup> विष्णुने सब जगत् व्याप्त किया है। इतनाही नहीं किन्तु देवलोग भी—जो सबसे ऊंचा है आपके बलके आधार पर ही रहता है। भिन्न भिन्न जगद् तीन पैर रखकर आपने सा विश्व व्याप्त किया है।

विष्णुके पराक्रमोके कारण ही सब लोग उनकी स्तुति करते हैं। घोर वनमें संधार करने-गले श्रीगुहामें रहनेवाले सिद्धकी नाई विष्णुके (सब दिव्य देवताओमें) बड़े पराक्रमी ३। देगिये; उनके केवल तीन पैरोने विश्वके सब भुवनाको व्याप्त किया है।

कार्य हमने ही उन्साह डिजानेजानी हमारी सुन्दर स्तुतिको विष्णु सुने। हमारी स्तुतिक, आप प्रेमसे स्वीकार करने हैं। सब लोग आपका यश माने हैं। आप बड़े गौर है। आप प्रकले केवल तीन पैरोसे इतने बड़े विश्वका व्याप्त करते हैं।

आप तीन जगद् रहते हैं। हरएक जगद् मधुर, रस भरा हुआ है। तीनों स्थान अशक्य हैं। हरएक स्थानमें आपके भक्त बड़े आनन्दमें मग्न रहते हैं। आप स्वयं ऐसे हैं कि त्रिगुणात्मक विश्वको—पृथ्वी, आकाश और अन्य अन्य भुवनको आप प्रकले सम्हाल सकते हैं। ४

१ उत वा नदामु विश्वु अन्य गाव आपो देवी च पीपयत । उत न (अवि) नह्य (पुगप्य) च पति दत् (नवृष्ट, अत्) उत्रियाथा पयम वीतम् पातम् ।

उ इम् त्रि गो वीर्वाणि प्र मोचन्, य (विष्णु) पार्विनानि रजाति विममे । यत्र वेवा विजानाम् (सत्) उत्तर सवत्य अस्डनायत् ।

न ) त्रिगु त्व वीर्वो प्र स्ववते, कुचर गिरिथा मृग न नीम । यत्र त्रिगु इत्यु विक्रमण्यु मुनयवि नति निवन्ति ।

३ (एतत्) इय नाम गिरिजिते उरुमानय इष्ये विष्णवे प्रेतु । ४ २२ दीर्घ प्रका मत्स्य प. ७ त्रिगु विष्णु इदेनि. इत् विदने ।

४ अन्य वी पशन्ति ननुता पृष्ठा, अकडेवमाणा स्वयया मदन्ति । न उ त्रिगुणु पृष्ठात् ५१३३० । ५५५ नुनो वि च पृष्ठा इचर ।

जिस स्थानमें ईश्वरके भक्तलोग आनन्दमें मग्न रहते हैं वह विष्णुका प्रिय स्थान मुझेभी प्राप्त होगा । सचमुच जो विष्णुका सच्चा भक्त है वही केवल सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुका प्रिय मित्र है । विष्णुके बड़े पवित्र स्थानसे ही अमृतका अक्षय्य झरना बहता है । ५

ऐसे बड़े ( आनन्दमय पवित्र और वैभवयुक्त ) स्थान ही प्राप्त करनेकी हम ( हृदयसे इच्छा ) करते हैं । बड़ी चंचल और सींगवाली दिव्य धनुएँ वहाँ रहती हैं । देखिये सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुके श्रेष्ठ स्थानसेही हमें पूरा पूरा प्रकाश मिलता है । ६

सूक्त १११.

॥ ऋषि दीर्घतमा । देवत विष्णु ॥

( हे ऋत्विज, ) आप अपने सोमरसकी मधुरताका वर्णन. परम श्रेष्ठ और पराक्रमी विष्णुके सामने कीजिये । जब सच्चा भक्त विष्णुकी प्रार्थना करता है तब सचमुच उसने की हुई प्रार्थना विष्णु सुन लेते हैं । वहाँ देख लीजिये; जिस तरह विजयी योधा जवान घोड़ेपर सवार होता है उसी तरह इन्द्र और विष्णु दोनों देव पहाड़के शिखरपर खड़े हुए हैं । १

हे इन्द्र और विष्णु आप बड़े बलवान् हैं । इस लिये आपके सोमरसका जो मनुष्य स्वीकार करता है वह बड़े जोरसे चले हुए घोर संग्राममेंभी परास्त नहीं होता है । जब धनुर्धर धनुषपर बाण चढाकर निरपराधी मनुष्यपर छोड़ता है तब भी आप उस बाणकी दिशा पलटाकर उस निरपराधी मनुष्यकी—यदि वह आपका भक्त हो तो—रक्षा करते हैं । २

जब विष्णुके भक्त सोमरसका स्वीकार करते हैं तब उनका बल बहुतही बढ़ता है । वे अपने बलसे मेघोदककी वर्षा कराके वीर्यको माता और पिता ( आकाश और पृथ्वी ) तक पहुंचाते हैं । उससे वे दीर्घकाल तक ( धान्यका ) उपभोग लेते हैं । इसा तरह विष्णुके भक्त वे पुत्र—स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें अपने बलकी रक्षा करते हैं । ३

५ यत्र देवयव. नर. मदन्ति, तत् अस्य प्रिय पाय. अभि अश्याम्, ( य' अनन्यभक्त. ) स हि उरुक्रमस्य बन्धु इत्या, विष्णो परमे पदे मध्व' उत्स १६ ( हे पत्नी यजमानो ) व । गमधै ता वास्तेनि उश्मसि, यत्र भूरिशुद्धा अयास. गाव । अत्राह ( पदय ) उरुगायस्य युष्ण. तत् परम पद भूरि अवभाति ।

१ ( हे ऋत्विज. ) वः अवमः पान्तम् महे शूराय धियायते च विष्णवे अर्चत । या ( इद्राविष्णू ) अदाभ्या पर्वतानाम् साधुनि साधुना अर्चता इव मह. तस्यतुः ।

विष्णुदेव विश्वके अधिपति और भक्तकी रक्षा कर्त्तव्य हैं । आप बड़े उदार और दयाशील हैं । आपने केवल तीन पैरोंसे सब विश्वको व्याप्त किया है । मनुष्यकी आयु बढ़ानेके लिये और मनुष्यकी उन्नति करानेके लिये ही केवल आपने विश्वको व्याप्त किया है । विशेष करके आपके इस पराक्रमके लिये हम आपका वर्णन करते हैं ।

विष्णु सदा आकाशमेंही रहते हैं । आकाशमेंही स्थित होकर आप सब विश्वको देखते हैं । विष्णुके केवल दो पैरोंको ही देखकर मनुष्य आश्चर्यसे मुग्ध हो जाता है । विष्णुके तीसरे पैरकी ओर कोई देख नहीं सकता । मनुष्य अथवा पक्षी चाहे जितना सामर्थ्यवान हो अथवा बुद्धिवान हो; विष्णुके निपटमें कोई किसी प्रकारकी अटकल नहीं कर सकता ।

चारों जगह सब प्राणियोंके जन्मको भिन्न भिन्न रीतिसे नब्बे प्रकारसे बरत कर विष्णुदेव सब विश्वको सदा घुमाते रहते हैं । आपके शरीरको कोई नाप नहीं सकता । केवल भक्तिसे ही लोग आपका अन्दाज सहज रीतिसे कर सकते हैं । जब भक्त लोग युवा विष्णुको पुकारते हैं तब आप उनकी ओर दौड़ते चले जाते हैं ।

सूक्त ११६

॥ क्विं दार्षतेमा । देस्ता विष्णु ॥

आपका यजन केवल वीकी आहुतिसे होता है । आपका वैभव बहुतही बड़ा है । आप सर्व व्यापी हैं । आप भक्तोंके लिये दौड़ते चले जाते हैं । इस लिये भिन्न भिन्नकी नाई आप हमें आनन्द दीजिये । हे विष्णु, यह बात उचितही है कि जनी लोग आपका यश बढ़ाने और तब लोग यज्ञके द्वारा आपको तब । इस तरह भक्त लोग आपको प्रमत्त कर्त्त हैं ।

विष्णुदेव मन्त्रमय पुराणपुरुषही है किन्तु आप मन्त्र भी हैं । आप सृष्टिकी रीतिमें चलते हैं । आप स्वयन्तु ही हैं । इस लिये जो मनुष्य विष्णुकी कृपा करना है और विष्णुके अवतारकी स्तुतिभी करता है मन्त्रमय उसको ( देवी ) ऐश्वर्य प्राप्त होता है ।

हे स्तुति करनेवाले लोग, सृष्टि नियमसेही सब धर्मोंकी नींव विष्णुही है । इस लिये, हे लोग, अपने अल्पबुद्धिके अनुसार विष्णुके अवतारकी स्तुति करो और आनन्दसे प्रसन्न रहो । हे लोग, जो यश तुमको विदित हैं उनका वर्णन करो । हे विष्णु, आपकी परमश्रेष्ठ कृपा हम पर बनी रहे । हम आपकी कृपाका अनुभव ले रहे हैं । ३

विष्णु देव मरुतांपर शासन करते हैं । विष्णुके पराक्रममें भाग लेनेका अधिकार राजा वरुणकाभी है । उसी तरह अश्वी देवकाभी अधिकार है । दिन उत्पन्न करके ( विश्वको ) प्रकाशित करनेकी शक्ति और उत्कृष्ट सामर्थ्य आपही ( विष्णु ) में है । इसलिये विष्णु अपने साथियोंके साथ स्वर्गमें जाकर ( प्रकाश रूपी ) धेनुओंको बन्धनसे मुक्त कर देते हैं । ( फैलाते ) हैं । ४

इन्द्र स्वयं सत्कृत्य करनेवाले हैं । इन्द्र बलवान् भी हैं । अच्छा काम करनेकी इच्छा करनेवाले विष्णु भी ( इन्द्रकी ) और चले गये । तीनों भुवनोंके अधिपति और शासन करनेवाले विष्णुने आर्य यजमानको आनन्दित किया । श्रेष्ठ धर्म उस ( आर्य यजमान ) को अर्पण करके उसकी उन्नति की । ५

अनुवाक २२.

सूक्त १९७.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

अग्नि जागृत हुआ है । सूर्यका उदय अतनारिक्षमें अव होनेवाला है । श्रेष्ठ और सुख देनेवाली उषाभी अपने तेजसे प्रकाशित हुई है । रथको जोतकर अश्वी देव भी तैय्यारीमें हैं । उस समय जगत्प्रेरक परमात्माने सब प्राणियोंको अपना अपना उद्योग करनेके लिये जागृत किया है । १

३ हे स्तोतार तमुपूर्व्य ऋतस्य गर्भं यथा विदेजनुपा विपर्तन । ( युद ) जानन्तः अस्य नाम चित् आ विवक्तन, हे विष्णो मह ते सुभतिम् भजामहे । ४ अस्य मारुतस्य वेधस ( विष्णो ) तं ऋतु राजा वरुणः तं ( ऋतु ) अग्निना ( अपि ) सचन्त, ( सोय ) विष्णु उत्तम अहविदम् च दक्षं यवार, ( स ) सस्तिवान् च ( गवा ) व्रजम अपोर्णते । ५ आग्निनौ, युव ह जगर्तुपु गर्भं धत्थ, युव विश्वेषु भुवनेषु अन्तः । युव पृथणौ, अग्नि च, अप च, वनस्पति ऐरयेवा । १ अग्नि अवोधि, सूर्य ज्म उदेति, चंद्रा महीच उषा अग्निष आव । अग्निना ( अपि ) रथ यातने अयुक्षताम् ( एतस्मिन् काले ) सविता देव जगत् पृथक् प्रासावीत् ।

हे अश्विदेव, जब आप अपना विजयी रथको जोतकर जानेके लिये तैयार होते हैं तब हमारी सेनापर वी और मनुकी वर्षा करके आप ( यश देनेवाली ) आशीस दीजिये । हम आपकी स्तान करते हैं; इस लिये आपकी कृपासे रणभूमिमें हमें यश प्राप्त होवे । आप ऐसा कीजिये जिससे हमें यह सम्पत्ति और पेश्वों प्राप्त होवे । जिसके लिये दोनों दलके वीर आपसमें युद्ध कर रहे हैं । १

हे अश्वि देव, आपका तीन चक्रोंका नसिद्ध रथ हमारे (प्रेमरूपी) मा'से भरा हुआ है । इस लिये उसका आप हमारी ओर लाइये । आपके रथके बड़े बड़े शीप्रतामि दौड़ते हैं । आपके रथमें बैठनेके लिये तीन स्थान हैं । उसके आनेसे भक्त लोगोंका लाभही होता है । इस लिये सबलोग उसको भाग्य देनेवालाही समझते हैं । मनुष्य और चार पैरवाले पशुओंकी ओर आपका रथ आनन्दसे भरा हुआ आवे । ३

हे अश्विदेव, यदि हमें आप कुछ देते हैं तो ओजस दीजिये । आपके नाचने-जिममें मधु भरा हुआ है—( आशीसका पवित्र ) सिञ्चन हमपर कीजिये । इण्डिका नाश कीजिये और सदा हमारी रक्षा कीजिये । ४

स्त्रीजानिमें गर्भाणि उत्पत्ति आपहीके प्रभावसे होती है । सब भुवनोंमें आपही चैतन्य फैलाने हैं । हे अश्विदेव, हे पराक्रमी पुरुष, गर्भी और जलपृष्ठिओ आपही उत्पन्न करनेवाले हैं । वनस्पतियोंको जीवित देनेवाले आपही हैं । ५

आपही बड़े वैद्य हैं; जिनको औषधियोंके सब गुण निहित हैं । आप बड़े महारथी वीर हैं । रथको जोतनेके लिये अच्छे अच्छे बौड़े आपके पास प्राप्त रह सकेंगे । उग्रस्वरूप धारणकरनेवाले अश्विदेव, जो आपको बड़े प्रेमसे और क्लिमे हवि अर्पण करते हैं उनको आप, लोगोंका आविपत्य दिलाने हैं । ६



## अध्याय ३

सूक्त १९८

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता--अश्विन ॥

हे अश्वी देव, आप ( दैवी सम्पत्तिका ) खजाना हैं । रुद्रस्वरूप आपही हैं । सबसे बलवान् और प्रज्ञावान् भी आपही हैं । हे वीरपुरुष, हे अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वी देव, उचथ्यका पुत्र हाथ जोड़कर आपसे अनमोल धनका भण्डार मागता है । कृपा करके आप उसे उसको दीजिये; देखियें, आप सब लोगोंपर उदारतासे कृपा करते हैं । १

हे इयानिधि, अश्वी देव, यज्ञवेदीके सामने जब हम बड़े प्रेमसे आपको वन्दन करते हैं तब आप हम ( भक्तों ) पर बड़ा अनुग्रह करते हैं । किन्तु उस अनुग्रहके योग्य क्या कोई आपकी सेवा करता है ? । हमारे दिव्य तेजको जागृत कीजिये । क्योंकि भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लियेही आप हमेशा सब जगह सत्कार करते हैं । २

( हे अश्वी देव ), संकट दूर करनेके लियेही आपका रथ हमेशा तैयार रहता है । तुमके पुत्रकी सहायता करनेके लिये आपने अपने सामर्थ्यवान् रथको समुद्रके बीचमें डकेल दिया था । जिस तरह पराक्रमी सेनापति अपने चञ्चल घोड़ोंके साथ ( इधर उधर न जाकर ) सहायताके लिये अपनी सेनाकी ओर चला जाता है उसी तरह मैंभी आपहीकी शरण लेता हूँ । और यही मेरा कर्तव्य है । ३

इस प्रकार मैं—उचथ्यका पुत्र —आपकी स्तुति करता हूँ । इस लिये आप मुझे संकटसे बचाइये । हमेशा भागनेवाली दोनों—दिन और रात—मेरी आयुका नाश न करे ( मेरा रस निचोड़ न डाले ) । बड़ी बड़ी लकड़ियोंकी बड़ी होली मुझे मत जला दे । देखिये; जिसने आपके भक्तको बांध दिया था वही अब जमीन पर गिर गया है और मर्दा खाता है । ४

१ हे ( अश्विनौ ) युवा वसु, रद्रा, पुस्मन्तौ, वृन्ता ( च स्त, तत्, हे वृषणा, दद्या, यत् रेक्ण. औचथ्य वा ( याचते, तद् ) दशस्य त, यत् युवा अक्वाभि ऊती प्र सन्नाथे । २ हे वसु गोः पदे ( भक्ति-संयुतेन ) नमसा यत् ( सुमति ) धेधे अस्थै सुमनये चित् ( प्राणनाय ) को दशत् ? अरमे रेवतीः पुरधीः जिगत्तम्. ( यत् युवा ) तामप्रेणेव मनसा चरन्ता । ३ यत् ( अयं ) वाम् पेरु ( रथः ) युक्तो ह ( वर्तते ) । ( स ) पञ्जो ( रथ ) तौद्रियाय, मन्थे अर्णस ( युवाभ्याम् ) वि धायि, शूरः ( सैनिकः ) पतयान्नि एवै अज्ज न ( अहं ) वात् अत्र शरणम् ऊपगमेयम् । ४ ( इयम् ) उपस्तुतिः मा औचथ्यम् उस्थेत् इमे दत्तत्रिणी माम् ना दुभ्याम् । मा दशतय चित एध मा धाक् । यत् ( येन ) वा ( अयं भक्त. ) वद. ( स ) त्मनि क्षा प्र सादति ।

देवोंका माहेमा और सामर्थ्य अपूर्व और अपार है । आपने घावापृथिवीको इस तरह उत्पन्न किया । देखनेसे विदित होता है कि वे आपसमें नातेदारही हैं । आप दोनोंका जन्मस्थान एकही है और आप दोनों एकही जगह रहते हैं । ज्ञानवान् और प्रकाशमान् देवोंने अपने कामसे यह दिखलाया है कि आकाशमें और समुद्रके पेटमें आपने एक अद्भुत और नया सम्बन्ध हमेशाके लिये जुड़ा दिया है । ४

सबको चैतन्य देनेवाले देवोंने पूज्य और अपूर्व दान दिया है । सूर्य-उदयके समय हम सदा आपका चिन्तन करते हैं । घावापृथिवी बड़ी उदारतासे और प्रेमसे उस ऐश्वर्यको दरागुणी करके हमारी ओर ले आवे । ५

सूक्त १६०

॥ आप-शैर्षतम- । देवता घावापृथिवी ॥

उन घावापृथिवीकी ओर देखिये । आप धर्मपर प्रेम करते हैं । आप सब विश्वको सुख देनेवाली है । अन्तरिक्षमें ज्ञानका प्रचार करनेवाली शक्तियोंको आपहीका सहारा है । आपहीके पेटमें बड़े बड़े महात्मा लोग जन्म लेते हैं । उन महात्मा लोगोंके द्वारा ईश्वरको चतुरता दिखाई देती है । उस दिव्य शक्तिकी चारों ओर सूर्य नियमके अनुसार घूमता रहता है । १

विस्तीर्ण, पवित्र और बड़े घावापृथिवीरूपी-मातापिता सब भुवनोंकी रक्षा करते हैं । घु और पृथिवीके बीचमें जो पोला प्रदेश दिखाई देना है उसमें रत्नोंकी तरह सुन्दर तारामण्डल है । वह तारामण्डल स्थिर है ! जगत्के पिताने सबोंका रूप मनोहर बनाया है । इस तरह उनकी शोभा बढ़ती हुई दिखाई देती है । २

अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त ज्ञानवान्, और सत्कर्मका प्रचार करनेवाले ईश्वरने घावापृथिवीरूपी मातापिताके पेटमें जन्म लिया । उनका पुत्र बनकर ईश्वरने अपने अपूर्व सामर्थ्यसे सब भुवनोंको पवित्र किया । अपने भक्तोंको ( शुद्ध सत्त्वरूप ) दुग्ध पिटानेके लिये आपने चित्र विचित्र रंगको गौ और सान्धर्ववान् बेल उत्पन्न किये । ३

४ ते माथिन सुप्रनेपल, ( ते इमे ) मिथुना जामी, सयोनी, समोकसा मभिरे, ( अतः ) कर्तः सुदीतय- ( देव ) दिवि समुद्रे अतश्च नव्यनव्यं ततु आ सन्वते ।

५ सवितु देवस्य यत् वरेणाम् राध ( तत् ) अद्य प्रमवे मनामहे । ( तस्मात् ) इमे घावापृथिवी सुचेतुना वसुमन्त शतपित्रन रधिपू अत्नना उत्तम् ।

सब देवोंमें ईश्वर ही केवल कुशल और चतुर है, क्यों कि, सब लोगोंको सुख देनेवाली आकाश और पृथिवीको आपहीने उत्पन्न किया। अपनी आपूर्व चतुरतासे ईश्वरने अन्तरिक्षमें सब भुवनमण्डलोंको उत्पन्न किया। आपहीके आधारपर ये मण्डल अन्तरिक्षमें हमेशा घूमते रहते हैं। आपका आधार कभी पुराना और नष्ट होनेवाला नहीं है।

४

हे दयावापृथिवी, आप बहुत उदार और बड़े हैं। हम आपकी सदा स्तुति करते हैं। इस लिये आप हमारी कीर्ति बढ़ाइये। आपकी छपासे हमें अधिकारका पद प्राप्त होवे। आप ऐसा कीजिये जिससे आपके भक्तोंकी चारों ओर भीर्ति फैले और उनका सामर्थ्य बड़े।

५

सूक्त १११

॥ हवि शीमा । देवता ऋगु ॥

क्यों? क्या आप हमारी ओर आये हैं? क्या आप सबसे बड़े हैं और छोटे हैं? आप किसके लिये आये होंगे? हमने क्या कहा होगा? यह यज्ञपात्र विश्वज्ञापक ईश्वरी विभूतिमें उत्पन्न हुआ है। हम उसकी निन्दा नहीं करते किन्तु हे भर्षि अग्निदेव, हम इन काष्ठपात्रकी वर्णन स्तुतिही करते हैं।

१

देवाने आपसे कहा है कि एक चमससे आप चार चमस कीजिये? यही बात कहनेके लिये मैं आया हूँ। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि आप इस तरह करेंगे तो देवोंकी तरह आपभी पुत्र्य होंगे।

२

हे ऋगु, आप जानते हैं कि अग्नि देवोंका प्रतिनिधि है। हे भार्गव, उसके पास आपने कहा है कि आप एक अश्व, एक एव, और एक माय उत्पन्न करना। आपने यह भी कहा है कि आप अपने मातापिताको नमान करवा। उपयुक्त कार्य करके आप उनके पास चले जायेंगे।

३

उपर्युक्त कार्य समाप्त करके आपने पूछा कि “जो देवोंका प्रतिनिधि (अग्नि) हमारी ओर सन्देश ले आयाथा वह कहां है ?” इतनेमें त्वष्टाने देखा कि चार चमस तैयार हुए हैं। उसी समय वह देव स्त्रियोंमें जाकर छिप गया। ४

त्वष्टाने कहा की “तुमने देवोंके सोम पीनेके चमसोंकी निन्दा की है; इस लिये तुमको मार डालना चाहिये”। हे भाईयो ऋभु, जिस समय उपर्युक्त बात त्वष्टाने कही तबसे सोमरस अर्पण करते समय तुमारी शकल पलट गयी; देवकीसी तुमारी शकल हो गयी। तुमारा रूप पलटनेके कारण स्वर्गकी युवतियां तुमपर मोहित हो गयीं और तुमपर प्रीति करने लगीं। ५

आपने जो घोड़े उत्पन्न कियेथे उनको इन्द्र ले गया। इन्द्रने उन्हें अपने रथको जोता। अश्वि देवोंने रथको तैयार किया। अपनी शकल बदलने वाली कामधेनुको बृहस्पति अपने साथ ले गया। उपर्युक्त बातें होनेके अनन्तर ऋभु, विश्वा और वाज तीनोंको देवोंका सारूप प्राप्त हुआ। तुम सत्कर्म करनेवाले हो; इस लिये यज्ञमें तुमको हविका हिस्सा मिल गया। ६

तुमने अपने अतुल बुद्धिके सामर्थ्यसे केवल एक चमडेसे जीती गौ उत्पन्न की और बड़े हुए मातापिताको फिर जवान बनाया। हे सुधन्वाके पुत्र, तुमने एक साधारण अश्वसे एक अपूर्व अश्व उत्पन्न किया। तदनन्तर रथको जोतकर तुम देवोंकी ओर चले गये। ७

हे ऋत्विज, आप ऋभुओंसे ऐसी विनति की जिये कि “आप यह जल पीजिये; अथवा भृंज तृणसे पवित्र किया हुआ और छाना हुआ यह शुद्ध जल पीजिये। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि उपर्युक्त जल पीना आप नहीं चाहते तो तीसरी आहुति देने समय सोमरस पीकर आप आनन्दित हूजिये।” ८

४ हे ऋभु तत्तच्छ्रुत्वांस (युग्म) अपृच्छन् “या दूत न आ भजगन्स्यः क इत् अभूत्” इति । रा त्वष्टा चमसान् चतुर कृतान् अथ अक्षयत्, आदित् मासु अंत नि आनजे ।

५ “ये देवानं चमस आनिदिषु (तान्) एनान् हनाम” इति त्वष्टा यद् अत्रवित् (तदानामिव) सुते सत्वा अन्या नामानि कृण्वते, एनान् च (देव) कन्या अन्यै नामभि (एव) स्परत् ।

६ इन्द्रो हवी युयुजे, अग्निना रथं (युयुजाते), बृहस्पतिरपि विश्वरूपा (गां) उप भजत । (तदानीं) ऋभु विश्वा वाजथ (यूथं) देवान् अगच्छत, सु अप्स यूथं यज्ञियं भागं ऐतन ।

७ (यूथं) धीतिनि चर्मग (एव) गा नि अरिणीत, या जरन्ता ता युवशा अहृणोतन । हे सौधन्वना, अज्ञात् अथ अतक्षत, युन्वा च रथं देवान् उप अयातन ।

८ “इद उदकं पिबत” इति (ऋभून्) अत्रवितन, “इदं घ मुज नेजनम् वा पिबत, हे सौधन्वना- यदि तद् नैव हर्यथ तृताये सवने य (सोमरस) मादयार्थे” ।

एक ऋतुने कहा - मधमे उदकका उपयोग अधिक है । दूसरे ऋतुने कहा - मधमे अग्नि श्रेष्ठ है । तीसरा ऋतु कहने लगा कि 'सबके लिये निजको जलाने-पकाने की अत्यन्त उपयोगी है ।' उस तरह भिन्न भिन्न तत्त्वोंपर बाद प्रतिपाद करने करने करने महज गनिमे चारों चमसोंको तैयार कर डाला ।

एक ऋतु अचोटे गणिके गौको जलके पास ले जाता है । दूसरा ऋतु दुग्धमे काटकर किये हुए मांसके टुकड़ोंको यज्ञके समय ठीक ठीक जगहपर अच्छीतरहमे रखता है । तीसरा ऋतु मध्याह्निकके समय बध किये हुए पशुके मांसका यज्ञके अगोम्य भागको दूर जाकर फेंक देता है । यज्ञके समय मातापिताको इससे अधिक अपने पत्रमें क्या चाहिये ।

हे गुरुपुत्र, तुमने अपने आश्चर्यकारक कुशलतासे पशुओंके शिपे शिपेपर पाम उत्पन्न किया और पहाड़के गहरे दरारोंमें स्वच्छ जल उत्पन्न किया । अपनी धानं करनेपरभी सूर्यके घरमें जाकर आप आरामसे सोते हैं । किसी तरह सूर्य शिपे नहीं जाता । वही काम आप फिर सुरू क्यों नहीं करते ?

मरुत् देव उच्च आकाशमें संचार करते हैं. अग्निदेव पृथ्वीवर प्रदीप्त होते हैं और वायुदेव अन्तरिक्षमें चलते हैं। वरुण देवभी समुद्रके वहते हुए जलके बीचमें संचार करते हैं। किन्तु हे सामर्थवान् ऋभु, आप ऐसे हैं कि वे सब देव आपका साथ रखनेकी सदा इच्छा करते हैं। १४

सूक्त १६२.

॥ ऋषि-दोषतमा । देवता-आग्नि ॥

इस यज्ञके समय विद्वान् लोगोंकी सभामें प्रत्यक्ष देवोंसे उत्पन्न हुए चपल और तेज अश्वके गुणोंका वर्णन करना हम चाहते हैं। इस समय मित्र, वरुण, अर्यमा, मरुत्, विश्वका प्राण और प्रभु इन्द्र आदि देवताएं हमारा त्याग न करें। १

उपर्युक्त ( मेध्य ) घोडा उंचे दर्जेके कपड़े पहिनकर अच्छी तरह सिद्ध हुआ बड़े ठाठसे चलता है। उसके आगे लोग भी वली हाथोंमें लेकर चलते हैं। इन्द्र और पूषाके घर जानेके लिये एक चित्र विचित्र रंगका बकराभी चिझाता हुआ बड़े ठाठसे चलता है। २

जो बकरा तेज घोडेके आगे चलता हुआ दिखाई देता है वह देवोंका बड़ा प्यारा है। किन्तु इस यज्ञके समय पूषा देवको उसका बलिदान होनेवाला है। उस बकरेकी आहुति देव बड़े आनन्दसे चाहते हैं। यह बात प्रकट है कि यह देवोंका बड़ा प्यारा पुरोडाश है। इस लिये विदित होता है कि त्वष्टा उस ( बकरे ) को उस अश्वके साथ आगे आगे चलाता है और यज्ञकी ओर ले जाता है। ३

देवलोकको जानेके लिये तैयार हुए और हविर्भागके तौरपर अर्पण किये हुए अश्वको ऋत्विज बलिदान देते समय अग्निकी चारों ओर तीन दफे घुमाते हैं। यज्ञके समय अश्वका बलिदान होनेके पहले बकरेका बलिदान सबसे पहले पूषा देवके लिये अर्पण किया जाता है। यज्ञका आरंभ होते ही बकरेका बलि प्रथम अर्पण किया जाता है। जब बकरेका बलि दिया जाता है तब वह बकरा देवको ओर स्वर्गमें चला जाता है। ४

१४ मरुत्. दिव्य चान्ति, भूम्या आग्नि अपम् वात अन्तरिक्षेण याति। वरुण आग्नि चान्ति ( परंच सब एते ) हे सवस्त. नयंत पुष्पान् इन्द्रन्त.

हे होता, अध्वर्यु, आवया, अग्निर्मिध, ग्रावस्तुत, प्रस्तोस्ना, और विद्वान् ब्रह्म आदि ऋत्विज, इस यज्ञमें वीका प्रवाह इतना बहना चाहिये कि यज्ञकी समाप्ति अच्छी तरह होवे । ५

यज्ञके लिये यूप तैयार करनेवाले, यूपको लानेवाले, यूपके चोटीको अच्छी तरह सजानेवाले, मेध्य अश्वका मांस पकानेका बरतान तैयार करनेवाले, आदि सब लोग सन्तुष्ट होवे और हमारे यज्ञकी सिद्धि आनन्दसे सफल होवे । २

जब मैं अच्छी तरहसे स्तोत्र गाने लगा तब वह हृष्टपुष्ट अश्व देवलोकको जानेके लिये तैयार हुआ । स्तुति करनेवाले लोग और ऋषि बड़े हर्षसे उस अश्वको पहुंचानेके लिये गये । जब वह अश्व देवलोकको चला गया तब देव बड़े प्रसन्न हुए । उस अश्वको हमभी अपने बन्धुके समान मानते हैं । ७

उम चपल घोड़ेकी रस्सी, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, उसके खानेका बाल, और उमने मूहमें जो बाल धरा है वह, आदि सब वस्तुएँ उसके साथ स्वर्गमें चले जावे । ८

उस मेध्य घोड़ेका मांस, जो मांस मख्खोने खाया होगा, जो मांस लकड़ी और छुरीको चिपका होगा, और जो मांस हाथ और नखोंकोभी चिपका होगा वे सब मांसके टुकड़े देवोंको जा पहुंचे । ९

\* हे होता, अध्वर्यु आवया अग्निर्मिध, ग्रावस्तुत, प्रस्तोस्ना, उत च शस्तु सुविप्र ( यज्ञा च इत्यादयः ऋत्विज इति ) एतेन सु अरु एतेन सु उष्टेन ( यज्ञेन वृत्तस्य ) यज्ञणाः आ प्रणध्वम् ।

यवान्महा इत ये यपन हा ये च अध्वर्युपाय चपाल तद्वति, ये च अर्पिते पचन मरमन्ति, उनो तेषां च न इवन्तु ।

पेटमें' अपक घासका जो भाग रहता है वह सड़ जाता है । कच्चा मांसभी गंदा रहता है । इस लिये मांस काटनेवाले लोग उस मांसको साफ धोकर स्वच्छ करें । और वे मेध्य मांसको अच्छी तरह पकावे । १०

जब मेध्य मांस चूलेपर पकता है तब उसका कुछ भाग उबलने लगता है और कुछ हिस्सा बाहर निकल जाता है । जब उस मांसके भूजते हुए कुछ टुकड़े लोहशूलपर चिपक जाते हैं तब कुछ हिस्सा पिघल जाता है । जमोन और घासपर पड़े हुए वे सब मांसके अंश खराब न होवे । वे सब मांसके अंश देवोंको जा पहुंचे । ११

जवान घोड़ेके मांसको पकानेका और देखनेका अधिकार जिसका रहता है वह कहता है कि ' अब इसका अच्छा सुवास चल रहा है; इस लिये बरतानको नीचे उतारो ' । जो लोग मेध्य अश्वके मांसकी इच्छा करते हैं वे सन्तुष्ट होवे और हमारे कार्यमें सहायता दें । १२

मेध्य अश्वका मांस पकानेके लिये एक बड़े लोहेके चमचकी, एक बड़े पीतलकी थालीकी, एक ढक्कनकी, एक लोहेकी कड़ाहीकी और एक बड़े लोहेकी जर्जर ( कडी ) की आवश्यकता है । १३

जिस स्थानमें वह अश्व आनन्दसे बैठता था वह आनन्द, उसने पीया हुआ जल, और खाया हुआ घास आदि सब वस्तुएँ, उस अश्वको देवलोकमें प्राप्ति होवे । १४

१० उदरस्य यद् ऊवध्वम् अपवाति, आमस्य ऋविपः यद् गंध अस्ति, तद् शमितारः सुकृता कृण्वन्तु उत मेधम् शूनपात्रम् पचन्तु ।

११ ( हे अब ) अग्निना पच्यमानात् ते गात्रात् यद् अवधावति, निहतस्य ते अभि शुभम् ( यद् ) जजधावति, तत् भूम्या मा आश्रिपत्, मा तृणेषु ( अपि ) . तत् उशब्द देवेभ्यः रातम् अस्तु

१२ ये वाजिन पक्कं परिपद्यन्ति, ये ( अयं ) सुरभीः ईम् निर्हर इति आहुः येच अर्धतः मांसभिक्षाम्, उपासते, उतो तेषाम् अभिगूर्तिः न इन्वतु ।

१३ यत् मास्यचन्याः उत्सायाः नीक्षण, या यूष्णः आसिचनानि पात्राणि, चरुणाम् उष्ण्या ( या ) आपिधाना, अट्टकाः सूनाश्च ( एतानि ) अश्वम् परिभूपान्ति ।

१४ अर्धतः यद् निक्रमण निघदनम्, विधर्तनम् यच्च पपवीशम्, यद्य ( उदक ) पपौ धासि जघ्रास, सर्वा ते अपि देनेऽ अस्म ।



मेध्यमांस अधिक पकनेके कारण अग्निके धुएं का वास न आवे । जिस वरतानमें मांस पकता है वह वरतान नीचे गिर न जावे । जलनेका मांसका कुछ हिस्सा उबलनेके बाद अग्निमें गिरकर जल न जावे । जब मांसका अच्छी तरहसे हवन किया जाता है, जब मांस स्वादिष्ट बनता है, और जब पका हुआ मांस 'वषट्' शब्दसे पवित्र किया जाता है तब देवलोग उस अश्वके मांसको पसन्द करके उसका स्वीकार करते हैं ।

१५

बोडेकी झल, उसका सुवर्णका जीन, उसका लगाम, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, साफ करनेका कपडा आदि अश्वका सब सामान उसके साथ देव लोकको भेजनका प्रचार है ।

१६

दौड़ते दौड़ते थक जानेके बाद यदि किसीने तुमको ( अश्वको ) चाबूकसे पटाहुआ हो, तो तुमको दुःख हुआ होगा । इस यज्ञमें होमके चमचेसे और मंत्र स्तवनमें तुमारे दुःखका नाश होवे ।

१७

वह मेध्य अश्व बलि दिया जाता है । इस लिये सब देव उसपर भाईके समान प्रेम करते हैं । उसकी पसलीकी चौंतीस हड्डीयोंमें छुरी घुसती है । हे ३५ वे काटने वाले लोग, इस अश्वके सब गात्रोंको बड़ी कुशलतासे अलग अलग कीजिये । प्रत्येक अवयवके जोड़का नाम कहकर उसको कांट डालिये ।

१८

प्रत्यक्ष त्वटाने उस अश्वको उत्पन्न किया, उसका कांटनेवाला एक ही होता है । किन्तु उसको पकडनेवाले दो होते हैं । इसका प्रचार ही ऐसा है । ( हे अश्व ) जिस अनुक्रमसे तुमारे अवयव काटे जाते हैं उसी अनुक्रमसे मैं उसका बलि यज्ञाग्निमें अर्पण करता हूँ ।

१९

१५ ( हे अश्व ) त्वा वृमग्नि अग्निः मा भवन्तीत् ब्राजन्ती उवा जग्निः मा अभियिक्त । इष्टम् योतम् = निरुत्तम वषट्कृतम् ( एतादृशमेव ) तम् अश्वम् देवास प्रति गृह्णन्ति ।

१६ यद् अश्वम् अश्ववान् वास उपस्तृगन्ति, या अर्सेम हिरष्यानि ( परिष्कृतानि ) यद्च सदानम्, सुव ( एतानि ) धिया ( वत्सुनि ) अश्व देवेषु जा यमयन्ति ।

१७ ( हे अश्व ) ते मादे महमा शकृतस्य यद् ( कोपि ) पाण्थ्या वा कशया वा ( त्वा ) तुतोद, ते जग ( दुःखनि ) हविष सुचेव ( मे ) वग्मणा ( जपि ) सूदयामि ।

१८ वाचिन देवस्यो अश्वस्य चतुन्विशत् पक्ता न्यविति समेति । ( हे विशसितार ) गात्रा सुव अन्विशत् कृतेन, पक्ताम् अनुग्रथ वि शन्ति ।

१९ धदु ( अश्व ) अश्वस्य एक विशन्ता ( भवन्ति ), द्वा यंतारा नयन्, तथा ऋतु ते गात्राणां वा न्ययन् = तेन वा ता निगमन्ताम् नतो प्रतुशेति ।

जब इस लोकको ( हे अश्व ) तुम छोड़ जाते हो तब तुमारे प्राणकों किसी प्रकारका दुःख न होवे । तुमको कांटेनेवाले की छुरी तुमारे गलेमें रुक न जावे । तुमको कांटेनेवाला मनुष्य अपने अज्ञानके कारण गिद्धकी तरह तुमारे गात्रोंको अयोग्य स्थानमें कांटेकर विगाड न डाले । २०

( हे अश्व ), तुम मरोगे नहीं; अथवा तुमारा नाश भी नहीं होगा । सुलभ मार्गसे तुम देवोंकी ओर चले जाते हो । प्रत्यक्ष इन्द्रके हरिद्वर्ण ( हारे रंगके ) अश्व और मरुत् देवकी हरिणी तुमारे साथ रथको जोते जायेंगे । अथवा अश्वी देवके जोरसे हिनहिनानेवाले बलवान् घोड़ोंकी जगह तुम जैसे जवान अश्व जोते जाओगे । २१

यह तेज अश्व यज्ञको अर्पण किया हुआ है । वह हमे उत्तम गोधन देवे, वह हमे अश्व की सम्पत्ति देवे; वह हमें वीर्यशाली पुत्र देवे; वह हमें ( दिव्य ) सम्पत्ति देवे, वह हमारी सब तरहसे उन्नति करें । अनाद्यनन्त अदिति हमें पापसे मुक्त करें । और यह अश्वमेघ हमें अधिकार प्राप्त करा दे । २२

सूक्त १६३

॥ ऋषि दीर्घतमा । देवता—अश्वस्तुति ॥

( हे यज्ञीय अश्व, ) तुमारा जन्म चाहे समुद्रसे हुआ हो अथवा मेघोदकसे हुआ हो । जब तुम उड़कर अन्तरिक्षमें हिनहिनाकर प्रगट हुए तब तुमारा रूप कुछ और था । तुमारे पंख श्येन पक्षीकेसे चपल थे । तुमारे पैर हरनकेसे चञ्चल थे । हे अश्व, तुमारा बड़ा भाग्य है कि इस तरह तुमारा जन्म बहुत अच्छा हुआ है । १

यमने इस अश्वको दे दिया । त्रितने उसपर शूल डालकर उसको सजाया । उसके बाद इन्द्र स्वयं सबसे पहले उस पर सवार हुए । उसका लगाम पकड़कर गन्धर्व खडा हुआ । हे वसुदेव, इस दिव्य अश्वको आपने सूर्यसे उत्पन्न किया । २

२० ( ते ) प्रियः आत्मा अपियन्त त्वा मा तपत्, स्वधिति' ते तन्व. आ मा आतिष्ठत् गृध्नु अवि शस्ता अतिहाय, ते गात्राणि असिना मिथु छिद्रा मा क

२१ ( हे अश्व ) एतद् न वा उन्नियसे, न रिध्यसि ( परंच ) देवान् इत् सुगेभि पथिभिः एषि ( इंद्रस्य ) हरी ते युञ्जा ( उत वा महताम् ) पृपती ( युंजा ) अभूताम्, ( अथवा ) रासभस्य धुरि ( त्वं ) वाजी उप अस्मात् ।

( ईश्वरकी ) अद्भुत लीलाकी दृष्टिसे देखनेसे विदित होता है कि हे अश्व, आपही स्वयं यम हैं । आप स्वयं आदित्य हैं और आप स्वयं त्रितही हैं । सोमरसभी स्वयं आपही हैं । सब लोग कहते हैं कि तुमारा तीन बन्धनभी स्वर्गलोकमें हैं । ३

लोग कहते हैं कि “ ( हे अश्व ) स्वर्गमें तुमारे जन्मस्थान तीन है, मेघोदकमें तुमारे जन्मस्थान तीन हैं, और समुद्रमेंभी तुमारे जन्मस्थान तीन हैं । ” कहते हैं कि वरुणकी तरह तुमारा जन्मभी श्रेष्ठ स्थानमें हुआ है । मुझे कहिये कि आपका जन्म कहाँ हुआ । ४

हे बलवान् अश्व, यह वही स्थान है, जहाँ तुमारा शरीर स्वच्छ किया जाता है । यह वही स्थान है जहाँ तुम अपने विजयके बड़े आनन्दसे अपने खुरोंमें मट्टी उड़लते थे । यहाँ तुमारी भंगलदायक रस्सी पडी हुई मैंने देखी थी । जो लोग मृत्युधर्मकी रक्षा करते हैं वे ही उस रस्सीकीभी रक्षा करते हैं । ५

जिस तरह पक्षी नीचेसे ऊपर उड़ता है उसी तरह आपकोभी अन्नरिक्षमें उड़ते हुए मैंने अपने मनमें देखा । पवित्र मार्गसे ऊपर जानेवाले और पंखोंके द्वारा उड़ने वाले आपके मस्तकको मैंने देखा है । जिस मार्गसे आपका मस्तक ऊपर उड़ता है उस मार्गपर पाप और गन्दा रजः कण दिखाई नहीं देता । ६

इस यज्ञमण्डपमें तुमारी मनोहर शकल मैंने देखी । जब तुम वेदीके पास हविरन्त्रका आस्वाद ले रहे थे उस समय तुमारा रूप बड़ा उसाही दिखाई देता था । जब भक्तोंने खानेकी वस्तु तुमारे सामने धर दी तब तुमने उस घासको ( तृष्णाहारको ) एकदम खा डाला । ७

३ हे अश्व ( नगवन् ) गुणैश्च प्रनेन ( त्व ) यम आसि, आदित्य असि त्रितश्चासि । सोमेनापि सन्तानं विपुञ्ज असि, दिशि ते बन्धनानि त्रीणि दद्याहु ।

ते । इति च प्रतानि त्रीणि, इति आहु आनु त्रीणि, समुद्रे अन्नं च त्रीणि ( दद्याहु ) उत हे अश्व यम ते परमम् जनिवम् आहु ( तद् ) मे छनिम् ।

४ हे त्रित इना ते अश्वाना र्जानि, इना ( ते ) मनितु शकाना निवाना । ते मद्रा रशना अश्वानां ऋग्वन् प्रेषा अनिरक्षन्ति ।

५ ( हे अश्व ) ते अन्नं जम प्रव दिव पतगमिष उपतवम् मनना आशान् अजानान् । ( अपि च ते यस्मिन् अन्ने तुभिर्न पशिनो जृन्तानन् अपश्यम् ।

६ त्वे मेघोदके आते उतन्म त्वपत्तं म विगिन्नाम् अपश्यम् । यदा च मर्तुं त्वं नोगम् वान् आलद् न इत्तं ( त्वं ) न इत्तं नोवम् ।



वह अश्व उच्च स्वर्गलोकमें जा पहुंचा। उस अश्वको जगत्पिता और जगन्माताका भी दर्शन हुआ। हे अश्व, सन्तुष्ट हृदयसे देवोंका दर्शन कीजिये। स्तोतृजनभी यजमानको ईश्वरकी छपाका लाभ होनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। १३

देखिये; यह ( किरणरूपी ) सफेद बालोंका पुराणा आचार्य। इसका दूसरा भाई बड़ा स्वाङ्ग है। इसके तीसरे भाईका शरीर बीसे लिपट जानेके कारण बड़ा दीप्तिमान दिखाई देता है। सब लोगोंके स्वामीका और उसके सात पुत्रोंका दर्शन घृष्टे यहांही हुआ। १

एक चक्रके रथको सात मनुष्य जोतकर तैयार करते हैं। उस रथको एकही घोड़ा जोतते हैं, किन्तु उसका रूप सात प्रकारका है। उस रथका चक्र तीन स्थानमें गांठदार है। वे कभी विसते नहीं हैं। उनका कभी नाशभी नहीं होता। इन एक चक्रके आधारपर ही सब भुवन अच्छी तरह घुम रहे हैं। २

दूसरा एक रथ सात चक्रोंका है। उसमें सात मनुष्य बैठते हैं। उसको सात घोड़े जोतते हुए रहते हैं और सात बहिनो उस रथके महत्त्वका वर्णन करते हैं। क्योंकि उन रथके स्थानमें दिव्य धेनुओंके घात रूप गुप्त रीतिसे छिपे हुए है। ३

ज्या किसाने उस ईश्वरको उत्पन्न होते हुए देखा है जो सब स्थूल विश्वको सम्भालता है और जिसके गरोरमें हड्डी न होनेपर भी जो हड्डीयोंसे भरे हुए प्राणियोंकी रक्षा करता है? उन पृथ्वीका <sup>ऊपर</sup> <sup>नीचे</sup> और आरगतत्त्व उस समय कहां था जो जो <sup>ऊपर</sup> पृथ्वीका <sup>नीचे</sup> <sup>ऊपर</sup> <sup>नीचे</sup> उस समय कहां था? जिसको उपर्युक्त बातें मालूम थीं उनको पूछनेके लिये कौन गया था। ४

मेरे मनमें कुछ रूप नहीं है, किन्तु मैं अज्ञानी हूँ। इस लिये मैं पूछता हूँ कि ईश्वरका रूप जो विलकुल गुप्त है-किस प्रकारका है। देखिये; ज्ञानी लोक एक वर्षके वत्स (सूर्य) के शरीरपर सात धागेका भक्ति (उपासना) रूप बद्ध फैलाते हैं। ५

इस विषयमें मुझे कुछ नहीं समझता है। मैं अज्ञानी हूँ। जिन ज्ञानी लोगोंको ईश्वरके तत्त्वकी सब बातें विदित हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि विनाजन्मके ईश्वरके- जो छः लोगोंको धारण करता है-रूपमें कुछ भिन्नता है या एकता है। ६

जिनको उपर्युक्त बातें विदित होवे मुझे शीघ्रही सब कह दे। उस मनोहर दिव्य पक्षीका निवासस्थान बहुत गूढ है। उसकी (किरणरूपी) धेनूँ ऐसी है कि जिनके मस्तकसे दूधका प्रवाह चलता है। वे धेनूँ तेजोमय बद्ध पहिनती हैं और पैरोंसे जलपीती हैं। ७

जब यज्ञमें भूमानाने पिता (दू) की सेवा की तब पिताने ध्यानसे और मनसे भूमाताके साथ पहले पहल समागम किया और (द्युरूपी) पिताने सेवा करनेवाली पत्नीपर वृष्टयुद्धकी वर्षा की। भक्तलोग दोनोंके पास चले गये और दोनोंकी स्तुति करने लगे। ८

दक्षिणा नामकी यज्ञधेनुका काम करनेके लिये भूमाता तैयार हुई। भूमि भीजी हुई थी। भेवरूपी धेनुके पेटमें गर्भ उत्पन्न हुआ। वत्स चिह्नाकर अपनी माताकी ओर देखने लगा। यह गोमाता ऐसी है कि इस भुवनमें वह अपना घाहे सो रूप धारण कर सकती है। ९

५ मनसा पाक अविज्ञानम् ( च ) देवानां एना निहिता पदानि ( अधिकृत्य ) पृच्छामि । ( यत् ) कवय वत्से वस्क्ये अधि. ( वत्स ) ओतवै उ सप्त ततून् वितलिरे ।

६ आधिकित्वान् ( अह ) न विद्वान् ( च ) अत्र चिक्त्तुप चित् कवीन् विशने पृच्छामि । ( यत् ) ( य ) इमा पद् रजासि तस्तभ ( एतादृशस्य ) अजस्य रूपे किं त्विद एकम् ( अस्ति सत् ) ।

७ य वत्स ईम् वेद ( स ) इह त्रयीतु । अस्य वामस्य वे पद निहितम् । अस्य गावः ( ईदृशां अपूर्वा यत् ता. ) शीर्ष्वां वीर दुहते ( आपिच ) वत्रिम् वसानाः उदकम् पदा अपु. ।

८ माता पितरम् ऋते आवभाजे, ( सोपि ) अग्ने धांती मनसा च सजरमे हि । सा धीमत्सु गर्भैसा निविदा, ( तदा कवयः ) नमस्वन्त इत् उपवाकम् ईयु ।

९ दक्षिणाया पुरि ( भू ) माता युक्ता असीत् । वृजनीष्वन्त. गर्भ. अतिष्ठत् । वत्स. अमीमेत् निधु योजनेषु विश्वरूप गाम अनु अपदनत् ।

( हे आदित्यरूपी परमेश्वर ), मातृरूपी तीन और पितृरूपी त्रिंशत् । ऐसे मिलकर छः भुवनोंको आप अकेले धारण करके खड़े हैं । इतना बोज धारण करके भा आप थक नहीं जाते । स्वर्गलोकमें रहनेवाले देव आपसमें एक ऐसी भाषा बोलते हैं कि वह किसीके समझमें नहीं आती । किन्तु वे आपसमें उस भाषाके द्वारा अपना मतलब समझ लेते हैं । १०

इस सृष्टिक्रमके चक्रके चारों ओर डण्डे होते हैं । वे कभी बिस नहीं जाते । आकाशमण्डलमें वे हमेशा चारों ओर घूमते रहते हैं । हे अग्निदेव, इसी चक्रपर सब पुरोंको ( रात और दिन दोनोंको ) जोड़ी बैठी हुई है । वे सब मिलकर सात सौ बीस ( ७२० ) हैं । ११

ऊँचे लोग कहते हैं कि ( धुरूपी ) पिताके पाँच चरण होते हैं; और उसका रूप चारों ओर प्रकाशका है । वह जलकी वर्षा करनेवाला है और वह आकाशके उषःकालमें रहता है । और दूसरे लोग कहते हैं कि वह पिता पासके प्रदेशमें रहता है और छः दण्डके सात चक्रके रथपर बैठकर सब कुछ देखता है । १२

एक चक्रके पाँच दण्डे होते हैं और वह हमेशा घूमता रहता है । सब भुवनोंको उसीका आधार है । उस चक्रके लोहेकी धुरीपर बहुत बोज पड़ता है । तथापि वह कभी तप नहीं जाता । अनन्तकालसे वह चक्र एकही धुरीपर घूमता रहता है; तथापि वह धुरी कभी टूट नहीं जाती । १३

एक अखण्ड धुरीकी चारों ओर नाश न होनेवाला चक्र घूमता रहता है । उसका लकड़ो उड़ट फुलट हुई है । उसको दस बड़े जोतेहुए हैं और वे चक्रको खींच रहे हैं । नाना प्रकारके रंगोंके गोलोंसे सूर्यका नेत्र घिरा हुआ है और वह अपने मार्गसे चल रहा है । सब भुवनोंको उसीकाही आधार है । १४

१० नित्य मातृः त्रिंशत् पितृन् विभ्रत् एव । ( एव ) ऊर्ध्वं तस्यै, ( इमे अतिभाराः ) ईम् न अन्ति । अनुप दिवः पृथ ( देवाः ) विश्विदिम ( किं ) तु ) अविश्वमिन्वाम् वाचम् मवयन्ते ।

११ द्वादशान् तन्व्य चक्रम् नहि तन्नराम, ( तच्च ) या परि र्वात, हे अत्रे अत्र च मिथुनामः पुत्राः मिथुना ) नम शतानि विशतिः ( सत्याकाः ) तन्व्य ।

१२ एवमद, द्वादशाङ्गिन् पुगेदिताम् पितरन् दिवः परे अर्धे आहु । अथ इमे अन्ये ( तम् ) उपरे परे अत्र चन्द्रे ( रथे ) अन्तिम् ( दृशन् ) विश्वमाम आहु ।

१३ एवमे चक्रम् र्धैतुन, वे-तन्विन् विश्वा भुवगानि आतस्य तन्व्य अत्र भरिनार ( अपि ) न तयते । नम शतान् एव न शतानि ।

१४ मन्वि चक्रं अन्वि विवद्रे, ( तस्य ) उतानामा ( धुरि ) दश युक्ता वदन्ति । सूर्यस्य चष्टु र्वातान् पुत्रे, तन्विन् विश्वा भुवगानि अर्पिता ( शान्त ) ।

सातोंका जन्म एकसाथही हुआ; किन्तु अन्तिम सातवेका जन्म भिन्न प्रकारसे हुआ । वचे हुए छः का जन्म एकही स्थानसे हुआ । देवोंसेही उनका जन्म माना जाता है; और वेही ऋषि कहलाये जाते हैं । उनके कर्मफल निजकी इच्छाके अनुसारही अनुक्रमसे मिलते हैं । वे नाना प्रकारका रूप धारण करते हैं । किन्तु वे अपने स्वामीकी इच्छाके अनुसारही वर्ताव करते हैं । १५

सचमुच वे स्त्रीयां हैं । किन्तु उन्होंने मुझे कहा की वे पुरुष हैं । जिनको आंख हैं उनको यह बात विदित हो सकती है । आन्धा इस बातको किस तरह जान सकता है ? जो सच्चा सुपुत्र है वही इस बातको जानेगा । जो सुपुत्र इस बातको जानता होगा वह अपने पिताका भी पिता होगा । १६

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु इस भूगोलके ऊपर वह गौ—जो अपने पैरसे अपने वच्चोंको ऊपर उठाती है—दिखाई देने लगी ! नहीं मालूम, वह किस तरफ और किसकी ओर चली जा रही है । यह बात किसीको विदित नहीं है कि वह वच्चको कहां जनती है । झुण्डमें वह कभी नहीं जनती । १७

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु नीचेके स्थानके ऊपर यह विश्व स्थित है । इस विश्वका पिता ईश्वर है । इस संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो उस ईश्वरको ठीक ठीक पहिचान सके ? उस पुरुषने ईश्वरके विषयमें क्या उपदेश किया है ? दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ ? १८

जो ( किरण ) सचमुच अपनीओर नीचे आते हुए दिखाई देते हैं वे ऊपर जानेवाले हैं; और जो ( किरण ) सचमुच ऊपर चले जाते हैं वे अपनी ओर नीचे आते हुए दिखाई देते हैं ? यह क्या बात है । हे सोम और इन्द्र, दोनों मिलकर तुमने यह आश्चर्य उत्पन्न किया है । किन्तु रजोगुणके कारण ही जुआमें जोते हुए घोड़ोंकी तरह यह सृष्टिनियम योग्य रीतिसे चल रहा है । १९

१५ साकजानां ( सता ) सप्तयम् एकजम् आहु. ( शेपास्तु ) षट् यमाः इत् देवजा ऋषय इति ( आहु ) तेषाम् इष्टानि ( फलानि ) धामशः विहितानि, रूपश विस्तृतान्यपि स्थाने रेजन्ते ।

१६ द्वियः सती. तान् उ पुंसः ( इति ) मे आहुः, ( एतद् ) अक्षष्वान् पश्यत्, अंधः न रिचेत्त् । यः पुत्र कवि स ईम् आचिकेत, ( अपि च ) य ता. विजानात् सः पितुः पिता असत् ।

१७ परेण अवः एना अवरेण परः वत्सं पदा विभ्रति गौः उदस्थात् । सा कद्रीची, कं स्वित् अर्धम् परा अगात्, क स्वित् सूते, नहि यूषे अन्त ।

१८ परेण, अव, एना अवरेण पर, य अस्य ( विश्वस्य ) पितर अनुवेद ( एतादृशः ) कवीयमानः ( ऋषि ) इह प्र वोचम् देवम् मनः कुत. अधि प्रजातम् । ।

१९ ये अवाञ्च तान् उ पराच, आहु ये च पराच्चः तान् उ अवाच आहुः । ( एवम् ) हे सोम, त्वम् ईरक्ष या ( अङ्गतानि ) चक्रधुः तानि धुरा युक्ताः [ अथा ] न रजसः बहन्ति ।



सुन्दर पंखके दो प्रेमी मित्र—जो विलकुल एक मनके हैं—एकही वृक्षपर बैठे हुए थे। उनमेंसे एक उस वृक्षके मधुर फलका आस्वाद लेता है और दूसरा कुछ भी न खाकर सब बातें अपने आँखोंसे केवल देखता है। २०

वे सुन्दर पंखके पक्षी अपने ज्ञानसामर्थ्यसे अमरत्वका कुछ भाग उस स्थानपर सदा पहुँचाते हैं जहाँ ज्ञानस्वरूप परमेश्वरका निवास स्थान है। विश्वकी रक्षा करनेवाले परमात्माका कुछ अंश मुझमें—जो मैं बड़ा अज्ञानी हूँ—भी उपस्थित है। २१

जिस वृक्षपर सुन्दर पंखवाले पक्षी मधुर फलोंको खाकर आराम लेते हैं और अण्डा डालते हैं उस वृक्षकी चोटीका फल बड़ा स्वादिष्ट होता है। किन्तु जगत्पिता ईश्वरका ज्ञान जिसको नहीं है उसको वह फल नहीं मिलता। २२

गायत्रसे गायत्री, त्रिष्टभसे त्रैष्टुभ और जागनसे जगती छन्द किस प्रकार उत्पन्न हुए क्या इन बातको कोई जानता है?। इस बातको जाननेवालोंकोही अमरत्व प्राप्त होता है। २३

गायत्री छन्दसे अर्क छन्द उत्पन्न हुआ। अर्क छन्दसे साभ छन्दकी रचना हुई। और कई त्रैष्टुभ छन्द मिलकर एक वाक उत्पन्न हुआ। दो अथवा चार चरणोंके वाक्योंमें एक अनुवाक होता है? अक्षरोंकी संख्या के हिसाबसे सात मुख्य वृत्त बनते हैं। २४

२० द्वा सुपर्णा सयुजा सजाया समान वृक्षम् परिपस्वजाते । तयो अन्य स्यादु पिपालम् अति अन्यथ  
भनक्षत् अनि चादृशोति ।

२१ यत्र सुपर्णा सिद्धया अमृतस्य भागम् आनिमेयम् अभिस्वरन्ति । अत्र [ मे शरीरे ] स उन विभस्य  
वनस्य वार गोपा मा पाकम् आ विवेश ।

२२ यन्निन् विषे वृत्र आधि म वद सुपर्णाः निविशन्ते सुयते च । तस्य इत् अत्र पिपालम् स्यादु  
पु. यः सितर न वेद ( स ) तत् न उन् नशत् ।

२३ यद् गानत्रे अवि गायत्रम् आहितम् त्रैष्टुभान वा त्रैष्टुभानि अतश्चत । तद्वा गगत् जगति आदि-  
वम् य इत् तद्विदु ते अमृतत्वम् प्राप्सुः ।

२४ यत्रेव । अर्कम् प्रति त्रिभिरे अर्केण मान त्रैष्टुभान वाकम् । द्विपदा चतुःपदा मर्केन [ अनु ]  
सकम् यज्ञेन च सम वा ति निरन्ते ।

जागत और साम वृत्तोंका सामर्थ्य इतना है कि आकाशमें आकाशगंगा धारण की जाती है। रथन्तर-सामनामका छन्द अथवा वृत्त गानेसे ( आकाशमें ) सूर्यका दर्शन होता है। गायत्री छन्दके तीन ज्वालाएं रहती है। इस लिये तेज और बड़ेपनमें वह ( गायत्री ) छन्द सबसे श्रेष्ठ है। २५

बहुत दूध देनेवाली धेनुको मैं अब पुकारता हूं जो चतुर होगा वही उस गौको दोह सकेगा। सबको प्रेरणा करनेवाला सविता देव सबसे उत्तम जीवनका हमें लाभ देवे। देखिये; सूर्यका प्रकाश कितना तेज है। इस लिये मुझे सूर्यके गुणोंकाभी वर्णन करना चाहिये। २६

देखिये वह गौ सब संसारकी स्वामिनी है। अपने बछड़ेके पास जानेके लिये वह जोरसे रांभती हुई उत्साहसे दौड़ती चली आती है। यह अवध्य धेनु अश्वी देवके लिये दूध देवे। हमें बड़ा सौभाग्य प्राप्त होनेके लिये उसकी उन्नति होवे। २७

आंख बन्द करके पकड़े हुए बच्चेकी ओर वह धेनु उसका सीर चाटनेके लिये रांभती हुई चली जाती है। तदनन्तर वह धेनु बड़ी उत्सुकतासे अपने बच्चेका मुंह अपने थनके दूधकी ओर मोड़ती है। फिर वह धेनु धीरे धीरे रांभने लगती है। इतनेमें उसके थनमें दूध भर जाता है। २८

देखिये; यह वत्सभी रांभता है। उस वत्सकी ओर उस धेनुका ध्यान लगा हुआ है। वर्षा करनेवाले मेघकी तरह वह धेनु डकारती है। इस तरह ध्यान लगानेमें वह मनुष्यसेभी श्रेष्ठ है। किन्तु वह धेनु जब विजलीका रूप धारण करती है तब वह अपना सच्चा रूप प्रकट करती है। २९

२५ जगता दिवि सिन्धुम् अस्तभायत्। रजन्तरे सूर्यम् परि अपश्यत्। गायत्रस्य समिध तिस्रः आहु ततः महा ( च ) महित्वा ( च ) प्ररिचि।

२६ एता सुदुया धेनु उपव्हये उत सुहस्तः गोधुक् एनां दोहतासविता ( देवः ) श्रेष्ठं सर्वं नः साविधत, ( तस्य च ) धर्म अर्भादः, तद् उ पु प्र वचिम्।

२७ वत्सूनां वसुपत्नी हिं कुण्वती वत्सम् इच्छती मनसा अभि आ आगात्। इयन् अघ्न्या अविभ्यां पय दुहाम्, सा महते सौभाग्यार्धताम्।

२८ गौ. वत्स निपन्त अनु अर्मामेत्, मूर्धानं मातवै उ हिड् अकृणोत्। ( ततः ) अस्य मुसाम् धर्मम् सुज्ञाणम् अभि वावशाना, मायु मिमाते, पयोमि पयते।

२९ अय ( वत्सोपि ) येन गौ अभिमृता स शिक्ते, ( सापि ) ध्वसनौ अवि ध्रिता मायुं मिमाति। सा प्रतिमि. मूर्त्यु ( अपि ) नि हि चकार, ( पर च विद्युत् भवन्ती वज्रि प्रति औहत् )।

सांस लेनेवाली, बंचल और सजीव रीतिमे हिलनेवाली कोई वस्तु इस शरीर रूपी झूठेमें दृढ रीतिसे गढी हुई है । जीवात्मा भी मृत पदार्थोंके सृष्टि नियमके अनुसार ही चलता है । मरनेवाला शरीर और अमर आत्मा दोनों एकही जगह स्थित है ।

३०

शरीरको धारण करनेवाला जी सदा अपने नियमके अनुसार इस संसारमें आता है और फिर चला जाता है । मैं इस बातको देख चुका हूँ । उस जीमें संयोग और वियोगका दोनों सामर्थ्य है । वह बारबार संसारमें घूँट आता है ।

३१

जिसने उस जीको उत्पन्न किया उसको वह नहीं जानता । क्योंकि जो हमेशा इस जीको देखता है वह छिपा हुआ रहता है । इसी कारणही मनुष्य प्राणी अपनी माताके पेटमें लिपटा हुआ रहता है और बाराबर जन्म लेकर दुःखसागरमें डूबा हुआ रहता है ।

३२

धृ मेरा पिता है । भुङ्गे उत्पन्न करनेवाला वही है । और मेरे जीवनका आधार वही है । यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है । मेरा नातेदार सत्र कुछ पृथिवी है । सब लोगोंका जन्मस्थान पेटके बीचमेंके पोले प्रदेश में ही है । उसी स्थानमें पिता अपनी कन्याका गर्भभी रखता है ।

३३

अब मैं तुझे पछता हूँ कि 'पृथिवीकी अन्तिम सीमा कहा है' । जगत्का केन्द्र कहा है । सांड घोड़ेका शुक्र कौनसा है ? और वाक्-देवीका अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान कौनसा है ?

३४

३० अनत्, तुरगतु, जीवन्, एजन् ( एतादृश वस्तु ) पस्त्यानाम् मन्थे ध्रुवम् आ शोथे । जीवः मृतस्य स्वधाभिः चरति अनर्थः मन्थेन स्योनि ।

३१ ( तनोः ) गोपा अनिष्यन्तम् पयिभिः । आच पराच चरन्तम् अपश्यम् । स सश्रीची स त्रिपूची नुवनेषु अन्न आवरोवर्ति ।

३२ य ( ईश्वर ) ई चकार स ( जीवात्मा ) अस्य न वेद । य ई ददर्श ( स ) तस्मान् द्विषू इत् ।

. ) न. तु. योनो अन्न परिवीत स बहुप्रजा निर्कृतिम् आ विशेष ।

३३ अब यो मे पिता जन्मिता नाभिः च, इथ मदी ( पृथिवी ) मे माता नन्धुध ( भरीत ) उत्तायनोः न्यो अन्त ( जगत्. ) योनि, अत्र पिता दुहितु गर्भम् आ अवान् ।

. ४ चाम् पृथिव्या पर अन्त पृच्छानि, यत्र नुवनत्य नाभिः ( तन् ) पृच्छानि, दृग् अथात्य रेतः यो पृच्छानि, वाच परम योन च पृच्छानि ।

यह वेदी पृथिवीकी अन्तिम सीमा है । यह यज्ञ सर्व जगतका केन्द्र है । यह सोमरस ही सांड घोड़ेका शुरु है । और यह 'ब्रम्ह' वाक्-देवीका श्रेष्ठ स्थान है ।

३५(२०)

वे सात ( सूर्य किरण )—जगत्का अपूर्ण गर्भ—बीजरूपसे रहते हैं । वे विष्णु की आज्ञाके अनुपार नियमपर चलते हैं । वे बुद्धिमान् हैं; और सब जगत्को व्याप्त करके रहते हैं । वे ध्यानसे सब वस्तुओंका विचार करते हैं ।

३६

मैं यह नहीं जानता हूँ कि सब कुछ मैं हूँ । मैं मनसे बन्धा हुआ हूँ । मेरा ध्यान ठिकानेपर नहीं है । मैं हमेशा सञ्चार करता हूँ । किन्तु परम तत्त्वसे उत्पन्न हुआ चैतन्य जब मुझमें प्रकट हुआ तबसे ( ईश्वरी ) वाक्-देवीका अंश मुझे प्राप्त हुआ ।

३७

इस आत्माका जोवन उसके हिलनेसेही विदित होता है । वह कभी पीछे हट जाता है और कभी आगे बढ़ता है । वह अमर होनेपरभी मरने वाले शरीरके साथ जन्म लेता है । वे दोनों ( शरीर और आत्मा ) आपसमें संलग्न होकर रहते हैं । किन्तु वे सब स्थानोंमें नानारूपसे घूमते हुए रहते हैं । किन्तु सब लोग केवल शरीरकोही देखते हैं और आत्माको नहीं देखते ।

३८

जिसतरह देव स्वर्गके बड़े उच्चस्थानमें रहते हैं उसी तरह वेदोंकी ऋचाओंके प्रत्येक अक्षरमें देवोंका रहनेका स्थान है । जो मनुष्य ऋचाओंके अक्षरोंको नहीं जानता उसको वेद पढ़नेसे कुछभी लाभ नहीं है । जो ऋचाओंके अक्षरोंको जानते हैं वे वेदोंको पढ़नेसे आनन्दमें इकट्ठे रहते हैं ।

३९

३५ इय वेदि. पृथिव्याः पर. अन्तः, अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः, अयं सोम. वृष्ण. अश्वस्य रेतः, अयं ब्रह्मा वाच. परमं व्योम ।

३६ सप्त अर्धगर्भा. ( ये ) भुवनस्य रेत. ( ते ) विष्णोः प्रविशा ( स्व ) विधर्मणि तिष्ठन्ति । ते विपाथित मनसा परिभुव. ( सन्तः ) विश्वत ( विश्व ) धातिभिः परि भवन्ति

३७ यदिव इद अस्मि ( इति ) न जानामि. ( किंतु ) मिष्यः मनसा सन्नद्धः चरामि । यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा भा अगन् आत् इत् अस्याः वाच. भाग अस्तुवे.

३८ स्वधया गर्भित. अमर्त्य. मर्त्येन सयोनि. अपाद् प्राद् एति ता शश्वन्ता विषुचीना वियन्ता ( सन्तौ ) अन्य निचिक्व्युः, अन्यं न निचिक्व्यु.

३९ परमे व्योमन् ( इव ) यस्मिन् ऋचः अक्षरे अधि विश्वे देवाः निषेदुः । ( तर्हि ) यः तत् न वेद ऋचा किं करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते

हे धेनु, तुझे खानेके लिये वांस चाहिये । वह तृण तुझे प्राप्त होवे और तुमारा भाग्य सदा बना रहे । तुमारे भाग्यके साथ हमभों भाग्यवान् हो जायेंगे । हे अवध्य धेनु, तू हमारी ओर आ जाव । सदा यहां तृण खा कर जल पी जाव ।

४० (२१)

जब वह सफेतंजस्वी (मेघवाणी रूपी) धेनु जल उत्पन्न करती है तब रांभती है । उसके कभी एक कभी दो, कभी चार, कभी आठ और कभी नौ पैर होते हैं । उसके कभी कभी सहस्र अक्षर भी होते हैं और वह उच्च स्वर्ग लोकमें रहती है ।

४१

उस (मेघरूपी) धेनुकेही कारण समुद्र सदा पानीसे पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है । और उसीके कारण पृथिवीके चारों ओरके प्रदेशोंमें सब लोग आनन्दमें जीन्दे रहते हैं । वहांसे ही अमृतकी वर्षा होती है और इस तरह सब विश्वकी रक्षा होती है ।

४२

दर अन्तरपर गोवरका धुआं मुझे दिखाई दिया । एकके पीछे एक ऊपर जानेवाले धुएँके वादल चारों ओर फैले हुये थे । चित्र विचित्र रंगके बेटको वहां पराक्रमी पुरुष पकाते थे । उसीको पुराणे कालका पहिला धर्म कहते थे ।

४३

तीन देव-जिनकी जटाएं दर तक बढी हुई हैं—अपने अपने समयपर पृथिवीपर आते हैं । उनमेंसे एक हर साल सबस्थानोंको स्वच्छ करता है । उनमेंसे दूसरा अपने सामर्थ्यसे सब विश्वपर देखभाल करता है । उनमेंसे केवल तीसरोको हम प्रत्यक्ष रूपसे जान सकते हैं । उसकी बाल मालम होती है; किन्तु वह दिखाई नहीं देता ।

४४

१० तुनवनाद् भगवती हि भुम्भ, नन प्रथम् भगवन्त स्याम, हे अग्नये पियदानाम् तृणम् अर्द्धि, चरन्ती च शुद्धम् उदरम् पिव ।

२१ ( इन्द्र ) गोरी नालिकाणि तक्षती मिमाथ, ना ( च ) एक पदी, द्विपदा, चतुष्पदी, ( भवति ) हि । अष्टपदी चतुष्पदा सहस्राक्षग चतुष्पदी परमे ध्योमन् ( वर्तते )

२२ तदा । समुद्रं अग्निं वि क्षरन्ति, तेन च चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति । ततः अद्वारम् क्षरति, तदा धेनुः धेनुः भवति ।

२३ ननु धेनु आराम् अवश्यम्, एन अवरोधे विपत्तना ( धेनु ) पर, गोरा पृथिवीम् उदात्तां चरन्ति, ( च ) तान् प्रमथि प्रथमं तान् जानन् ।

२४ १३ । ऋतेन ननु प्र । चरन्ते, ( एतस्मिन् ) भवन्ते एषाम् एकः भवति । एकं पियम् शचीमिः ननेते इत्यत्र च । अन्ते न ( तु ) रूपम् ।

चार प्रकारकी वाक् देवी समझी जाती है । जो ज्ञानवान् ब्राह्मण है वे ही केवल वाक्-देवीके चारों प्रकारोंको समझ सकते हैं । उनमेंसे पहले तीन प्रकार गुप्त रहते हैं । वे समझमें नहीं आते । जिसको मनुष्य बोलते हैं वह वाक्-देवीका चौथा प्रकार है ।

४५

उस ( ईश्वरको ) ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । देवलोकमें रहने-वाला और सुन्दर पंखवाला वही है । सचमच वह अकेलाही है । तबभी ज्ञानी लोक उसको बहुत प्रकारके नामोंसे पुकारते हैं । उसीको अग्नि, यम अथवा मातरी-श्वामी कहते हैं ।

४६ ( २२ )

आकाशमें जानेका जो एक काले रंगका मार्ग है उस मार्गसे सुवर्ण रंगके सुन्दर पक्षी जलरूप वस्त्र पहिनकर आकाशमें उड़ते हैं । जब वे अपने निवास-स्थानसे लोट आते हैं तब पृथिवी घीली वर्षासे बिलकुल गीली हो जाती है । ५७

चक्र एक ही होता है । किन्तु उसके चारों डण्डे होते हैं । उसके तीन नाह होते हैं । वे किस प्रकार होते हैं यह बात किसीको विदित नहीं है । उस चक्रके तीन सौ साठ डण्डे होते हैं । वह चक्र शङ्कु की तरह बड़े जोरसे घूमता रहता है । ४८

हे सरस्वति, आपका थन अक्षय, और कल्याण करनेवाला है । उस थनके द्वाराही मनोहर वस्तुओंकी सुन्दरता बढ़ती है । आपका थन रत्नोंका भण्डार है । आपका थन बड़ी उदारतासे सर्वोंकी इच्छा पूरी करता है । इसलिये आपके थनका दूध हमें पिलाइये ।

४९

४५ वाक् पदानि चत्वारि परिमिता, ये ब्राह्मणा. मनीषिण ( ते ) तानि विदुः । त्रीणि ( पदानि ) गुहा निहिता न ईगयान्ति, चाच तुरीयं ( पद ) मनुष्या वदन्ति ।

४६ ( परमेधरम् ) इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्निम् आहुः, अथो स ( एव ) दिव्यं सुवर्णं गह्वरान् । एरुम् सत् विप्रा. बहुधा वदान्ते, आग्निम् यम् मातरिश्वानम् आहुः ।

४७ हरय सुपर्णा अप. वसानाः कृष्णं नियानं ( तिर ) दिवम् उत्पतन्ति । ( यदा ) ते ऋतस्य सदान् आ अवयत्रन्, आदित् पृथिवी घृतेन वि उद्यते ।

४८ चक्रम् एकम्, व्दादश पदय, त्रीणि नभ्यानि क उ तत् चिकेत । तस्मिन् ( चके ) निशताः साक पष्टि ( अरा ) शंक्रव न, चलाचलास ( शंक्रव ) न अपिंता ।

४९ हे सरस्वति, ते स्तन न शशय मयोभूच्च येन ( त्व ) विश्वा वार्याणि पुण्यासि, यश्च रत्नधा. य. वसुवित्, य सुदन तम् ( स्तन ) रत्न धातवे क ।

देवोंने यज्ञपुरुषके द्वाराही यज्ञ किया । यदि सब पृछा जाय तो यही सबसे पुराना और पहिला धर्म है । तदनन्तर जहां पुराने और श्रेष्ठ साध्यदेव रहते थे उन स्वर्गलोकमें वे ( यज्ञ करनेवाले ) देव बनकर रहने लगे । ५०

उदक सब स्थानोंमें एकही प्रकारका होता है । वह उदक भाफके रूपसे ऊपर चला जाता है और पुनः वर्षाके रूपसे नीचे गिरता है । इस प्रकार जलको वर्षा पृथिवीको हरियाली बनाता है । और यज्ञके अग्निसे आकाश नेत्रोमय दिखाई देता है । ५१

घुड़ोक्रमें रहनेवाला सरस्वान् देव बड़ा वेगवान् और ( बलवान् पक्षी है वही देव उदक का और ) वनस्पतियोंका सुन्दर बच्चा है । जलको वर्षा करके वह सब लोगोंको बड़ा आनन्द दिलाकर उनको सहज रीतिसे प्रसन्न करता है । वह हम पर कृपा करें और इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूं । ५२(२३).

### अनुवाक २३

सूक्त १६९

॥ ऋषि—आगस्त्य । देवता—मरुत् ॥

समान बलके और एकही स्थानमें रहनेवाले सब मरुत् देवोंकी कान्ति सुन्दर होनेके कारण वे बड़े शोभायमान् दिखाई देते हैं । वे कहांसे और किस उद्देशसे आयें होंगे ? कुछभी हो । वे हमारे शूर मित्र हैं । उन(से लाभ होनेके लिये हम उन)के सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं । और बड़े जोरसे उनकी स्तुति हम गाते हैं । १

१० देवा यजेन यज्ञं धयजत, तानि वर्नाणि प्रथमानि आसन् । देवा ते ह देवा मूर्धमानः । नाक सचते वा सन्ति ।

१ उदकम् ( मत् ) अद्देनि उत् च अवच एति तत समानम् । गर्जन्गा मूर्ध निवन्ति, ( तथाच ) न, निवन्ति

दिश्वम् वापर्वं, बृहन्तम्, अपाम् गर्भम्, ओषधीनाम् दर्शितम् । अर्भापि । अग्निमि ( जगत ) तर्पयन्त ॥ १३ ॥ मुनि सरस्वन्तम् अवसे जोह्वानि ।

१ ( ५२३ एते ) सप्तमष सनीया मन्त कृता शुना मनाय्या ( कान्या ) स मिमिक्षु । कया मदी, हुत एता स, एते ( न ) इषया वत्सा ( एतान् ) गुण अर्चन्ति ।

हे जवान मरुत्, इस समय आप कौनसे भक्तोंकी स्तुतिरसका आस्वाद ले रहे हैं । यज्ञमें मरुत् देवोंको कौनसा भक्त ले गया होगा ? । वह भक्तिको कौनसो श्रेष्ठ रीति है जिससे श्येन पक्षको तरह आकाशमें उडनेवाले मरुत्-देवोंको हम प्रसन्न करेंगे । २

हे इन्द्र, आप बड़े श्रेष्ठ हैं । सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले आपही हैं । आप अकेले क्यों चले जाते हैं ? सचमुच आप अपने मनमें किस बातका विचार कर रहे हैं ? जब आप अपने विजयी लोगोंके साथ चलते हैं तब आप हमारा स्वास्थ्य पृच्छते हैं । हरिन् रंगके अश्वोंका पालन करनेवाले इन्द्र, आप हमें कहिये कि आप हमारे विषयमें क्या सोचते हैं । ३

स्तोत्रोंका गाना और भक्तिसे प्रार्थना भी मेरे लिये की जाती है । सोमरससे मुझे हो आनन्द होता है । जब मैं अपना वज्र फेक देता हूँ तब वह शत्रुका नाश करता है । भक्त लोग मुझसे सदा प्रार्थना करते हैं । साम गाना मैं पसन्द करता हूँ । इसी लिये मेरे अश्व मुझे गानेके स्थानकी ओर ले जाते हैं । ४

हम इसी लिये पराक्रम करते हैं कि हमें सदा विजय प्राप्त होवे और हमारो शोभा बडे । वे अश्व अपनी इच्छासे निजको जोतते हैं और तैयार होते हैं । हे इन्द्र, हमारी इस रीतिको आप अच्छी तरह जानते ही हैं । ५(२४).

२ युवान् ( मरुत् ) कस्य जज्ञानि जुजुषु, मरुत् कः अध्वरे आ वर्तते । श्येनान् इव अतरिक्षे ध्रजतः मरुत्. केन महा मनसा रीरमान ।

३ हे इन्द्र हे तत्पते त्व नाहिन सन् एक कुतः यासि ? ते ( मनसि ) किं इत्या ? शुभानैः समराणः ( नः ) सं पृच्छसे ( तद् ) हे हरिः यत् ते ( मनसि ) अस्मे ( वर्तते ) तत् न वोचे ।

४ ( इमानि ) ब्रह्माणि, मत्पथ मे ( भवन्ति, ) सुतासः च ( मन ) शं ( भवन्ति ) । मे शुष्मः अद्रिः प्रभृत सन् ( अरार्तान् ) इयन्ति ( अपिच भक्तास्तु ) उक्था हि ( ना एव ) आ शासते, प्रति ह्यर्पन्ति इमा नः हरी ता अच्छ बहतः

५ अत वयमपि अतमेभि त्वक्ष्वेभि तन्वः शुभमाना, महोभि, ( प्रभावैश्च ) एतान् उपयुज्जयहे, हे इन्द्र, त्वं हि ( एता ) न त्वधा अनुमभूथ



हे मरुत् देव, अही राक्षसका वध करनेके लिये तुमने मृझसे प्रार्थना की । उस समय तुमारा सामर्थ्य कहां चला गया था ? मैं सचमुच धैर्यवान् हूँ और पराक्रमी हूँ । उसी लिये हमने अपने भयंकर शस्त्रोंसे जगत्के शत्रुओंका नाश किया । ६

हे पराक्रमी पुरुष, आपने अपने सामर्थ्यसे बड़े बड़े काम किये । आपके पराक्रम सचमुच आपके मृत्युक्ष अतुल मित्र ही हैं । हे पराक्रमी इन्द्र, अब हमें हमारे सामर्थ्यसे और पराक्रमसे हम चाहे सो काम करने दीजिये । ७

हे मरुत् देव, क्रोधमें आकर बड़े पराक्रमसे हमने वृत्रको मार डाला । हमने मनुके लिये सब विश्वको आनन्द देनेवाले भेवोदकोंको अपने वज्रसे सहज गीतीसे मृक्त किया । ८

हे उदारशील इन्द्र, आपके सामने किसीके बलका कुछ नहीं चलता । देवोंमें आपके सदृश ज्ञानी दूसरा कोईभी नहीं । हे बलवान् इन्द्र, जिन कामोंको करनेका आपने पण कियाथा उनको अब कीजिये । ९

६ हे मरुतः स्वा वः स्वया क जानीत् या नाम् एकमेव अद्विष्टये समवत्त । अहं हि उप, तपिप पुत्रिणान् ( अतएव ) विश्वन्व शनो ( परिमाण ) वस्तुन अतमम

म ( दत्र ) च वद अत्त । ये नि ) पात्यति समानेति युद्धोना मरि चरुय । ( तर्हि ) द्य ) मरुत् च व, अत् व-गत ( ताति ) नर्मणि ( तीर्तणि ) कृणवात् ।

मरुत् ननेन चित्त नमुताव येन इद्विषेन व्रिन व वाम् । एता. विश्वचद्रा. मुगा अप अहम् ३ ) वचनटु ( न्य यता ) च ३२ ।

७ हे मरुतः स्वयं - ते अतुल्य । त्रि मु, त्र व दियान् न च ( नापि ) देवता, हे प्रयद्र न जान नापि च-नाम ( चा ) नने ( चद्रा ) च मे रि वा ( ताति ) कृणवात् ।

यह कहना योग्य होगा कि विश्वको व्याप्त करनेवाला सामर्थ्य ( अकेलेमें ) मुझमें है । क्यों कि जो काम करनेका मैं निश्चय करता हूं वह काम मैं करके दिखलाता हूं । हे मरुत् देव, मैं भयंकर हूं । मैं ज्ञानी हूं; इस लिये इन्द्रने जो जो वस्तुएं उत्पन्न की हैं उन सब वस्तुओंका मैं स्वामी हूं । १० ( २५ )

हे पराक्रमी मरुत् देव, आपने जो अभी मेरी स्तुति की और जो मनोहर स्तोत्र आपने गाया उससे मैं आनन्दित हुआ हूं । क्यों कि वीर्यवान् और अत्यन्त पूज्य इन्द्रके लिये—जो तुमारा बड़ा मित्र है और जो तुमारा प्रत्यक्ष प्राण और आत्मा है आपने बड़े प्रेमसे और भक्तिसे एक स्तोत्र गाया है । ११

निष्कलंक, कीर्तिमान् और सामर्थ्यवान् आप प्रत्यक्ष रूपसे मेरे सामने आप खड़े हैं । हे मनोहर कान्तिके मरुत्-देव, बड़े ध्यानके द्वारा आपने मुझे प्रसन्न किया है; और अबभी वैसाही मुझे प्रसन्न कीजिये । १२

हे मरुत् देव, इस जगतमें सचमुच आपके गुणोंका वर्णन किसने किया है ? हे मित्र, हम आपके मित्र हैं; इस लिये आप हमारी ओर आइये । आपकी कान्ति अद्भूत है । हे मरुत्-देव, सुन्दर स्तुति करनेकी प्रेरणा हमें उत्पन्न कीजिये । सत्यधर्मके अनुसार हम आपकी उपासना करते हैं । इस लिये आप हमारी और ध्यान दीजिये । १३

१० हे ( मरुत् ) विभु ओजः एकस्य मे चित् अस्तु ( यत् ) या नु मनीषा दधुष्वान् ( तानि ) कृण्वै हे मरुत् उग्र, विद्वान् । अहं- इन्द्र इत्-ऋग्वेदोऽयानि च्यवम्, एषाम् ईशे हि । .

११ हे मरुत् अत्र ( व ) स्तोमः माम् अमन्दत् ( अपिच ) हे नर, यत् ध्रुत्यं ब्रह्म मे ( यूयं ) चक्र सुमन्वाय, शुष्णे, इद्राय सत्ये तन्वे मय, यूय मे सत्ताय तनूभि ( चकृद्वे ) ।

१२ अनय च, प्रवः इपय आ दधाना एते ( यूय ) मा प्रति रोचमानाः एषेत् । हे मरुतः ( यथा यूयं ) चंद्रवर्णाः ( पूर्वं ) सचक्ष्य मे अच्छान्तः ( तया ) नूनम् अपि हृदयर्ष ।

१३ हे मरुत् व अत्र क वु मनहे, हे सरवाय, सत्वीन् ( अस्मान् ) अच्छ प्र यातन । हे वित्राः ( यूयं ) मन्मानि आपिवातयन्त एषाम् में ऋतानाम् ( उपासनानाम् ) नवदा भूत ।

जिस तरह विद्वान् कवि एक भक्तके पाससे दूसरे भक्तकी ओर जाता है उसी तरह सज्जन लोगोंकी बुद्धिके सामर्थ्यसे हम तुझे ( मरुत्-अपनी ओर ले आये । हे मरुत् देव, ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा कर भक्तलोगोंकी ओर आप अपना ध्यान पहुंचाविये ; स्तोत्रोंको गा भक्तोंने आपके लिये स्तोत्र गाया है ।

१४(२६)

दे मरुत्-देव, तुमारे माननीय मित्र मान्दार्थ्येन यह स्तोत्र और यह प्र तुमारे लिये को । इस लिये हमें उत्साह और बल दीजिये । हमारी इच्छा करनेवाला आपका सामर्थ्य ही हमारे जीवनका आधार है ।

### ॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥



१३ ( हे मरुत्. ) यत् आ दुवस्यात् दुग्मे कातः न, ( मान्यस्य ) मेवः ( व० ) अस्मान् = भक्त, इम विप्रम् अन्धा ओषु वर्त, इमा वग्नाणि जरितौ व० अर्चत् ।

१५ हे मरुत्, एष स्तोत्र, इय गो च, मान्यस्य कारोः मादार्थ्यस्य य० ( जविकृत्य प्रार्थिता ( न्त० ) तन्वे इया आ त्रासाष्ट, ( व ) वत्राम् च विद्याम, जौरदानु वृजनम् च ( मुजोमहि )

## अध्याय ४.

सूक्त १६६.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत ॥

सब लोगोकी इच्छा पूरी करनेवाले और पराक्रमी इन्द्रकी, मातो, हे मरुतदेव, आप ध्वजाही हैं। आप बड़े जोरसे प्रकट होते हैं। हे मरुतगण, आपने प्राचीनकालमें जो पराक्रम किये हैं उसके लिये आपकी स्तुति करना हमारा कामही है। हे मरुतगण, सिंहनाद करनेवाले आप बड़े पराक्रमी वीर हैं। एक हाथमें मशाल और दूसरे हाथमें तलवार लेकर इस लोकमें आते समय, मार्गमें आप अपना पराक्रम दिखाते चले आते हैं। ?

जिस तरह पिता अपने लडकोंको मिठाई खिलाता हैं उसी तरह-लीला करनेवाले और देदीप्यमान् मरुतदेव, अपने भक्तोंपर प्रेमका दान अर्पण करते हैं। आप यज्ञमण्डपमें आकर बड़े आनन्दसे खेल करते हैं। हे स्वरूप धारणकरनेवाले मरुतदेव, जो भक्त आपके सामने बड़ी नम्रतासे सिर झुकाते हैं उनपर आप बड़ी कृपा करते हैं। निजके बलपर निर्भर रहनेवाले मरुतदेव, हवि अर्पण करनेवाल भक्तोंका कभी नाश नहीं करते। २

भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अमर मरुतदेव, हविर्भाग अर्पण करनेवाले भक्तोंको हमेशा दिव्य ऐश्वर्य अर्पण करते हैं। भक्तोंका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले मरुतदेव, अपने भक्तोंकी उन्नति करनेके लिये अन्तरिक्षके विस्तीर्ण प्रदेश वृष्टिसे गीले करते हैं। ३

हे मरुतदेवगण, आपके अश्व स्वयं रथको जोत लेते हैं। जब आपके अश्व दौड़ते चले जाते हैं तब वे अपने वेगसे सब रजो लोकको व्याप्त करते हैं और उसको हिलाते हैं। जब मरुतदेवगण वाह्य निकलते हैं तब सब मनुष्य डरके मारे घबराने लगते हैं। और जब वे अपने हाथमें भाला लेते हैं तब आपकी सवारीकी शोभा कुछ अपूर्व दिखाई देती है। ४

१ रमराय जन्मने वृषभस्य ( द्रस्य ) केतवे ( मरुतगणाय ) तत् ( तेषा ) पूर्व महित्व बोचाम नु । हे वृषभस्य शक्रा मरुतः यामन्, ( पाणौ स्थितेन ) एधेय गुवच तविपाणि कर्तन

२ नित्य सूनु न ( भक्तजन ) मधु उपविभ्रत ( एते ) घृष्वयः क्रीळश्च ( मरुतः ) विदयेषु क्रीळन्ति । द्रा. नमरिवन अवसा नक्षति, रवतवस हविष्कृतम् न मर्धन्ति ।

३ ( एते ) ऊमास अत्रता हविषा रदाशुपे यस्मे ( भक्ताय ) राय पोप च अरासत्, अस्मै मयोभुवः मरुत हिता इव पुररजासि पयसा उक्षन्ति ।

४ ( मरुत ) ये ( एते ) व एवास स्वयतास ( ते यदा सन्तु ) प्र अग्रजन् तविपीभि रजासि आ अव्यत । ( गुग्गाक निर्गमने ) विश्वा भुवनानि हर्म्या च भयन्ते ( परच ) प्रयतासु हृष्टिषु व. याम चित्र ( खलु ) ।

वेगसे चलनेवाले भयंकर मरुत्देवगण जब गर्जना करते हैं तब पहाडके गुफाओमेमे प्रतिध्वनि निकलने लगता है और आकाशका विस्तीर्ण और गोल प्रदेश हिलने लगता है। हे मरुत्-देवगण, जब आपआपने मार्गसे चलते है तब डरसे बड़े बड़े वृक्ष उखड जाते है और छोटे छोटे वृक्ष भी रथके चक्रकी तरह वेगसे घूमते हुए दिखाई देते है। वे भी बहुत दूरतक फेक गिये जाते ह।

५ (१)

हे भयंकर मरुत्-देवगण, आपकी सेनाको कोई भी किसी तरह रोक नहीं सकता। आप हमपर कृपा कीजिये और हमारे मनोरथ सफल कीजिये। जिस तरह भयंकर शत्रुओमे पशुओका नाश हाता है उसी तरह भयंकर दातवाली विजलीसे भी दुष्ट लोगोका नाश होना है।

६

जो मरुत्-देव कृपा करते है तब वह हमेशा बनी रहती है। आपकी कृपासे सबको लाभ होना है, किन्तु आपका विद्युत् अस्त्र बहुतही भयंकर है। मरुत्-देवोकी स्तुति हमशा यज्ञ-मन्दिरोमे चलती है। आनन्ददेनेवाले सोमरसको पीनेके लिये मरुत्-देव गर्जना करते हुए आते हैं। प्राचीनकालमे इन्द्रने जो पराक्रम किये उनको मरुत्-देव अच्छी तरह जानते हैं। ७

हे मरुत्-देव, जिस तरह चारा और धिर हुए दीवारोस शहरकी रक्षा की जाती है उसी तरह जिन भक्तोपर आप प्रसन्न होते ह उनकी पातकोसे और दुष्टलोगोकी गालीयोसे आप रक्षा करते ह। हे भयंकर और पराक्रमी मरुत्-देव, आप बहुत बड़ है। हे मरुत्-देव, जिन जलोपर आप कृपा करते है उनकी कुटुम्ब-पोषणके कारण उत्पन्न हुई जननिन्दासे आप रक्षा करते हैं।

८

हे मरुत्-देव, आपके रथपर स्थान मिलनेके लिये प्रत्यक्ष कल्याण और बल मानो, आपतमे भगड़ रहे हैं। आपके रथपर प्रत्यक्ष कल्याण और बल खिचाखिच भर रहे है। जब आप शत्रुओपर चढाई करनेके लिय चजते है तब आपके कन्धपर चक्र आदि शस्त्र-प्रत्य अज्ञकारकी तरह लटकें हुए दिखाई देते है। आपके रथकी घुरा इस तरह चलता है कि रथके सब चक्र एकदम वेगसे घूमते हुए दिखाई देते है।

९

५ यन् नर्भा. त्वेषयामा. ( मरुत स्वनि स्वनेन ) पवतान् नदयन्त, दिव वा पृथ अचुच्युवु, ( त्व ६ मन्व ) व अमन्न् विश्व वनस्पति नयने, ओषधिविश्व रथयतीव प्र जिहीते ।

६ उमा भरत, अरिष्टनामा युय सुचेतुना न सुमतिम् पिपर्तन, ( पश्यन् ) यत्र व दिद्युत् ( विद्युत् )

७ नी सुतिना ब्रह्मा पश्व देव, ( अवायन् ) नि रिणाति ।  
 पने हि ) स्व-देवता, अनवभ्रगावम, अत्यातुगास ( मरुत ) विदधेषु सुष्टत । मदिरस्य ( सोम-  
 नदये अस्त्र अचन्ति, ( यत ) वीरस्य ( दद्रस्य ) प्रथमानि पोस्या विट ।

८ मरुत् यन् ( मरुत्जन ) आवत, तम् यन्मुजिभि पूर्भि ( देव ) अभिच्युता अगाव च रक्षत  
 ९ हे मरुत्-देव, त्वस निरीक्षण य जन पाथन (तमपि) तनयस्य पुष्टिपु ( उन्विता १ ) शमान् ( रथान ) ।  
 हे मरुत्-देव रथेषु विज्ञानि नरा तत्रिपाणिच मियस्यु वेव आहिता । व. प्रपथेषु ( व ) अमिपु म  
 न रथान् ( व ) उ दय ( दोगमन्ते ), न ( रथस्य ) अक्ष चता समया वि वापते ।

हे मरुत्-देव, मान्यत्र मान्दार्थने आपका स्तोत्र गाया है। उसने आपसे प्रार्थना की है। इसी लिये आनन्द देनेवाला सामर्थ्य आप हमारी ओर ले आइये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होगी और उसीके कारणही हमारा मन स्थिर होगा। १५ (३)

### सूक्त ?६७.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

हे हरिदश्व, इन्द्र, आपके सहस्र प्रसाद, आपकी आनन्द देनेवाली और स्तुति करने योग्य सहस्र प्रेरणा, आपकी सहस्र ( दिव्य ) सम्पत्ति और आपकी असीम पवित्र शक्ति हमें आनन्दमे मग्न करनेके लिये हमारी ओर आवे।

आश्चर्य-कारक मरुत् अपने उत्तम और दीप्तिमान् प्रसादोके साथ हमारी ओर आवे। ( यह काम करना आपके लिये कठिन नहीं है )। क्योंकि आपके नियुत् नामके सुन्दर अश्व दौड़ते दौड़ते समुद्रके पार चले जा सकते हैं।

एक सुन्दर स्त्री मरुत्-देवोके साथ हमेशा रहती है। मक्खनकी तरह उस स्त्रीका शरीर बहुत कोमल है। सुवर्णकी तरह उसकी कान्ति तेजस्वी है। और उसके शरीरका ढङ्ग बहुत ही मनोहर है। जिस तरह मरुत्-देवोका भाला उनसे अलग नहीं होता उसी तरह वह स्त्री भी उससे कभी अलग नहीं होती। अन्तःपुरमे रहनेवाली स्त्रीकी तरह वह स्त्री कभी कर्म गुप्त रहती है। और कभी कभी वह स्त्री सभामे आनेवाली स्त्रीकी तरह और यज्ञके समर ( मेघगर्जनारूप ) देवस्तुतिरूप स्त्रीकी तरह प्रत्यक्ष रूपसे सबको दिखाई देती है।

शुभ्र-कान्तिमान् और कभी न थकनेवाले मरुत्-देवोने उस युवा स्त्रीको अपने पास लिया। इससे यह विदित होता है कि सब मरुत्-देव उस युवा स्त्रीपर बहुत प्रेम करते हैं। मरुत्-देव बड़े उग्र हैं, किन्तु वे रोदसी स्त्रीका कभी त्याग नहीं करते। विद्युत्-रूप रोदसी स्त्री मरुत्-देवोका आनन्द बढ़ाती है। इस लिये वे भी प्रेमसे उस स्त्रीका स्वीकार करते हैं।

५. २ नस्त एष व स्तोम इयच गी मान्यस्य कारो मान्दार्थस्य । इषा आ यासीष्ट तन्वे, वयाम् ।

१ ६ हरिव इद्र, ते सहस्र ऊतय सहस्र गूर्ततमा इष सहस्र रायः, (अपिच) सहस्राणि वाजः न । नादय-वे न उप य तु ।

२ उन वा नस्त प्येष्टेभि वृहद्वै वा अन्नोभि नः अच्छ आ यन्तु । अध यत् एषा परमाः नियुत् समुद्रस्य पारे चित्त गनयन्त ।

३ घृताची, हिरण्य निर्णिक, सुधिता ( एतादृशी का चित्त योषा ) येषु ( मरुत्सु ) मिम्यक्ष, उपरान् ऋष्टि । ( सापि कदाचत् ) शुहा चरन्ती मनुष योषा न ( निगूढा, कदाचित्त च ) विदध्या वाक् इव । सभापती न ( हृद्यते ) ।

४ शुभ्र अयाम् नस्त ( तथा ) वयाम् परामिग्धिु सावारण्या ( स्त्रीया ) इव, । घोरा ( अपि ते ) रोदसी न अपनुदत ( विनु ) देवा ( ते ता ) वृध सहयाय उपन्त ।

मरुत्देवोंके बाहु बड़े पराक्रमी और यश प्राप्त करनेवाले हैं। आपकी छाती अलंकारोंमें जोभायमान दिखाई देती है। आपके गजोंमें सकेत माला दिखाई देती है। आपका हृषियार बड़ा तेज है। इस तरह सजे हुए जब आप चलते हैं तब आपआपनी दिव्य कान्ति जिस तरह पक्षी अपने पंख फैलता है उसी तरह सबदूर फैलते है। १० (२)

जिस तरह नक्षत्रोंके कारण बुलोक सब दूर प्रकाशमान दिखाई देता है उसी तरह बड़े पराक्रमी मरुत्देव भी अपने ऐश्वर्य और सामर्थ्यके कारण सबदूर प्रकाशमान दिखाई देते हैं। मरुत्देव बड़ा आनन्द देनेवाले है। आप बड़ी मीठी बात करनेवाले हैं। आप अच्छी तरह गाते हैं। आप हमेशा इन्द्रका साथ रखते हैं। सब लोग मानो, आपको स्तुतियोंसे चांगे योगमें घेर लेते हैं। ११

हे अमर मरुत्देव, आपका प्रेम विलकुल सच्चा है। अपने भक्तोंपर आपकी कृपा भविष्यत् युगमें भी सदाके लिये बनी रहती है। मनुष्य जातिका कल्याण करनेकी आपकी इच्छा है। हम लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं। आप बड़ शूर है और आपअपने पराक्रमके कारण बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। १२

हे मरुत्देव, आप केवल पवित्रस्थानमेंही प्रकट होते हैं। आपका तेज बहुत बड़ा है। जिस तरह अदितिका अधिकार बहुत बड़ा है उसी तरह आपका दान भी असीम है। जिस पुण्यवान् पुरुषपर आप कृपा करते हैं उस पुरुषका इन्द्र भी तिरस्कार नहीं करता है। १३

हे वेगवान मरुत्देव, आपने लिये हुए दिव्य और असीम ऐश्वर्यके कारण हमारी हमेशा उन्नति होवे। जिस स्थानमें हमारे लोग रहते हैं उसी स्थानमें उनकी सन्ततिकी वृद्धि होवे। उसी लिये हम यज्ञ करते हैं और उसीके कारण हमारा उदर्य पुग होवे। १४

१० नक्षत्राणां भूरीणि न्ना, वज्र. सु रत्नमास अथय दक्षमा, असेषु एताः, पविषु आधि क्षुरा, ( एव यत् ) यत् न वज्रान् थिय. वि अनु थिरे ।

११ नक्षत्राणां भूरीणि न्ना, वज्र. सु रत्नमास अथय दक्षमा, असेषु एताः, पविषु आधि क्षुरा, ( एव यत् ) यत् न वज्रान् थिय. वि अनु थिरे ।

मरुत् मरुत, व तत् महित्वनम् (भवति यत्) अदिते व्रतमिव व. दात्रम् सुदीर्घम्  
ने सुदृते जनाय अरावम्, तत् ( व दात्रम् ) इदं च न व्यजगा वि ऋणाति ।

व मरुत, तत् व जानित्वम् यत् शम् आवत् ( तत् ) परं युगे ( अपि ) पुह, अया  
इत् - न्य, नर ( मरुत ) इमने साह आन्तिकिचिरे ।

तुम्भ मरुत देन युनाक्व परीणमा ( तथा ) दीर्घं शशवाम । यत् ( अस्माह ) जनास  
इत्ने न। तत्तन् तत्, एनिर्दीभिः ( ने ) इष्टि जनि अश्याम् ।

विद्युत्-रूप रोदसी स्त्रीका रूप बहुत दिव्य है; उसके बाल बड़े सुन्दर हैं। मरुत्-देवोंके साथ हमेशा रहनेके लिये रोदसी स्त्रीने उनको पसन्द किया। जिस तरह सूर्यका तेज उनके रथके पास चला जाता है उसी तरह वह तेजोमय विद्युत्-रूपी रोदसी स्त्री मरुत्-देवोंके रथके पास चली जाती है। ५ (४)

जवान् मरुत्-देवोंने आनन्द देनेवाली और यज्ञ सभामें गर्भीरतासे इशर उभग चलनेवाली युवा रोदसी स्त्रीका अपने रथमें बिठा लिया। उस समय, हे मरुत्-देव, आपकी स्तुति करनेवाले भक्त लोगोंने आपको हवि और सोम अर्पण किया आपका स्तुतिगी और अप्पका स्तोत्र गाया। इस तरह उन्होंने आपकी सेवा की। ६

मरुत्-देवोंका एक बड़ा विशेष गुण (महिमा) है। वे गुण वर्णन करने योग्य और सब भी हैं। मरुत्-देवोंकी घमण्डी और विश्वास-करने योग्य रोदसी-स्त्री जज्ञ-वृष्टिरूप भाग्यशाली स्त्रियोंको भी अपने साथ ले आती है। ७

वह भी आपहीका महिमा है कि मित्र, वरुण और अर्यमा भी आपके भक्तोंका पणोसं रक्षा करते हैं। वे दुष्टलोगोंको दूरडकर निकालते हैं और उनका नाश करते हैं। जो जाग पूर्ण गीतसे अचल है वे भी चल होंगे किन्तु जो दान देनेवाले भक्त हैं उनकी उन्नति अवश्यही होगी। ८

हे मरुत्-देव, किसी मनुष्यको आपका पता नहीं लगा-चाहे वह मनुष्य पुराने कालका हो अथवा आज कालका हो। जब मरुत्-देव क्रुद्ध होते हैं तब वे समुद्रको तरह दुष्टलोगोंको घेर लेते हैं और उनको डुबाते हैं। ९

५ यद् अहर्ना, विधितस्तुना वृमणा ( एतादृशी ) रोदसी ( मरुतः ) सचथै ईम् जोषन, ( तदा ) सूर्या इव ननस इचान, ( सा ) त्वेवपतीका ( रोदसी ) विधतः ( मरुदणत्य ) रथम् आ अगात् ।

६ ( ते ) युवान ( ता ) दुभे निनिन्ला, विदपेपु पजाम् युवतिम् ( त्वे रथे ) आ अस्थापयन्त, यद् हे मरुत् व ररिष्मन् हुतमेम हुवत्यन् ( च ) अक ( व ) गाय गायन् ।

७ एषा मरुता यो मरुता वरुण सत्य ( व स. ) अस्ति, तम् प्र ववक्मि । यद् ईम् अह यु ( चापि ) स्थिरा वृमणा ( रोदसी ) हुमगा चिन् जनी वरुते ।

८ निन्ववते अपन्व श्म अ-वदात् पात्ति, अपन्वस्तान् ( अपि अन्विन्वा ) चयते । उत अच्युता दुजपि ( अपि ) च्यवते ( परच ) हे मरुत ईम् दातेवार वगुम् ( सलु ) ।

९ हे मरुत अस्ते ( मरुतेषु ये ऋषि ) अन्तिनु आरत्तात् चिन् ( दु तसपि ) न शनस. अन्त न आपु । ते पुष्टना सवसा मनुनात् द्वय आ न उपता परि त्यु ।



हम इन्द्रके प्यारे भक्त है। हम युद्धमें और यज्ञमें भी इन्द्रकी सदा स्तुति करते हैं। इसके पहिले भी हम इन्द्रकी स्तुति कर चुके हैं। भविष्यत् कालमें भी हम उनकी स्तुति करेंगे। इस लिये मरुत्-देवोंका स्वामी-इन्द्र-सबसे पहिले हम प्रसन्न होवे। १०

हे मरुत्-देव, माननीय मान्दार्थने आपकी स्तुति की है और आपसे प्रार्थना भी की है। इस लिये उत्साह दिलाने और बढ़ानेवाली शक्ति आप हमें अर्पण कीजिये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा मन स्थिर होगा। ११ (५)

### सूक्त १६८.

॥ ऋषि-भगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

हे मरुत्-देव, हर एक यज्ञमें हम जैसे आपके भक्त आपकी उपासना बड़े उत्साहसे करते हैं आपभी हमारी उपासना की और बड़े प्रेमसे ध्यान देते हैं। सब जगत्का कल्याण करनेके लिये और हमपर कृपा करनेके लिये हम आपकी पवित्र स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतिके कारणही आपके मनका झुकाव हमारी ओर होवे। १

मरुत्-देवोंका जन्म आपही आप होता है। सबको डरानेवाले मरुत्-देव पर्वतकी तरह निजके बलपर निर्भर रहते हैं। प्रकाश फैलाकर मनका उत्साह बढ़ानेके लिये मरुत्-देव प्रकट होते हैं। पराक्रमी मरुत्-देव महासागरके प्रचण्ड तरङ्गोंकी तरह असंख्य है। और वे धेनुकी तरह पूजा करने योग्य है। २

जिस तरह रसीली और पुष्टि देनेवाली सोमलताका पिया हुआ रस हृदयको आनन्द दिलाता है और उसमें रहता है उसी तरह मरुत्-देव भी भक्तोंके अन्तःकरणको आनन्द दिलाकर उसमें रहते हैं। सुन्दर लीके बाहुकी तरह आपके कन्धेपर फूलोंकी माला दिखाई देती है। आपके एक हाथमें ढाल और दूसरे हाथमें तखवार रहती है। ३

१० इत्स्य प्रेशा वय समये ( यज्ञे वा ) अद्य, श्व ( तदुत्तर च ) वय ( त ) वोचेमहि । पुरा । वय । ( त । न मरि च ( लु-व त ), अनु दून् च ( इत परमपि स्तोष्यामहे ) तत् ऋभुक्षा नरा ( मध्ये ) न अनुष्यात् )

११ हे मरुत एष व रतोम द्य गी मान्यस्य कारोः मान्दार्थस्य ( तत् ) तन्वे इषा आ यासीष्ट, वयाम् नु जीरदानु इजनम् विशाम ।

( हे मरुत ) यज्ञादज्ञा समना तनुर्वणि ( यो भक्तः सः ) व ( अस्ति ), वः देवया उ वियविय ( त ) दविन्वे, ( तस्मात् ) रोदस्यो मदे सुविताय, अवसेच सुवृक्तिनि व अर्वाच ववृत्याम् ।

२ मरुता, एतय ये ( मरुत ते ) वत्राम न ( रियरा ) द्य, रवश्च ( वितरणाय ) अभिजायन्त । ( एते )

३ न नना उरुम न महद्वियाम, गाव न आमा वन्द्यास ।

४ वृत्तः इव नो जाम् सुतास न पीताम न हत्सु ( समुद्रसति तद्वत् ) ये दुनसः ( हन्सु ) आस्रते, एषा ननेत्तु ( नरा ) रानि वि ररमे, हनेषु सादिश इतिश्व म दवे ।

मरुत्-देवोंके अश्व रथको आपही आप जोत लेते है। वे मरुत्-देव अपने रथमे बैठकर आकाशसे मजेमे भूलोकमे आये हुआ है। हे मरुत्-देव, आपही अपने घोडोंको जाबुकसे दवाइये। मरुत्-देव जन्मसे ही निष्कलंक और बलवान् है; आपके हाथमे चमकनेवाला भाला भी है। इसलिये आप (पहाड जैसे) अचल वस्तुको भी दिला (चलायमान्कर) सकते है। और आप उसका वस्तुका नाश भी करते है। ४

हे मरुत्-देव, चमकनेवाली विजली ही आपका भाला है। जिस तरह बोलते समय जिह्वाके सामर्थ्यसे औठ हिलते है उसी तरह आपको हिलानेवाला और आपको प्रेरणा करनेवाला कौन है?। सब लोगोको ताजा करनेका और बल देनेका सामर्थ्य आपकेही पास है। जिस तरह सूर्यके नाना प्रकारके किरण सब स्थानोमे संचार करते है उसी तरह जब आप अन्तरिक्षसे बाहर निकलते है तब सब स्थानोमे आप भी सञ्चार करते है। ५ (६)

हे मरुत्-देव, जिस स्थानसे आप भूलोकपर आये है उस रजोलोकका उत्पत्तिस्थान और निवासस्थान कहा है? जब मेघरूप शत्रुओंके गणको आप विजली (अशनी) के झपटेसे उडा देती है तब देदीप्यमान अन्तरिक्षरूपी समुद्रके परे आप जोरसे चले जाते ह। ६

जिस तरह आपकी कृपासे प्राप्त हुआ विजय बल देनेवाला, स्वर्गको प्राप्त करनेवाला, उज्वल और आनन्द देनेवाला होता है उसी तरह आपने दिया हुआ दान भी बडे दानी मनुष्यकी दक्षिणा की तरह कल्याण करनेवाला, आकाशकी विजलीकी तरह वेगसे चलनेवाला, और सबको चकित करनेवाला होता है। ७

मरुत्-देव अपनी गर्जनारूपी शब्दोसे मानो अपने जयकी घोषणा करते है। दूसरी ओर रथचक्रके घांसनेसे मेघरूपी समुद्रमे भी खलवली मची है। मरुत्-देव पृथिवीके ऊपर अमृतकी वृष्टि करते है। उस समय चमकती हुई विजली हंसती हुई दिखाई देती है। ८

४ (येपां) स्वयुक्ता (अथा) दिव आ वृथा अव ययु, हे अमर्त्या (तान्) कशयात्मना (मनाक्) जोदत, (एतं) अरेणव, तुविजाता\* भ्राजदृष्टय मरुत दृढहानि चित् अचुन्नुयु ।

५ हे ऋष्टिविभुत, मरुत, हन्वेव जिह्वया, को नु अत व त्मना रेजति ? इपा यामनिन । (युय) अन्दच्युत, अहन्व एतश न पुरप्रेपा ।

६ हे मरुत् यस्मिन् (रजसि) आयय, अस्य महो रजस\* पर कस्वित् अवर (चापि) क । यद् सहितमपि अद्रिणा विधुरेव च्यवचय, (तद्) लेपम् अर्णवम् च वि पतय ।

७ व अमवती, स्वर्वती लेपा विपाका साति न, हे मरुत व शतिः (अपि) भद्रा, पृणत. दक्षिणा न दृशुन्नभी, अशुंचय (च) जज्ञती ।

८ ५६ (नरत) अत्रिया वाच उदीरयन्ति (पर एतेपा) पविभ्य सिधवः प्रतिष्टोभन्ति । यदि मरुत पृत्तम् प्रप्यन्ति विद्युत् (अपि) पृथिव्या अव स्मयन्त ।

भयंकर लड़ाई करनेके लिये पृथिमाताने वेगवान् और उज्वल मरुत् गयोको बनाया वे बड़े लड़नेवाले हैं, इस तरह वे अपना पराक्रम प्रकट करते हैं । इसी कारण प्राणियों जातिके हलचलमें प्रबन्ध दिखाई देने लगा ।

हे मरुत्—देव माननीय मन्दार्यने आपहीके लिये यह प्रार्थना की । इस लिये आप हमें उम्माह बढ़ानेवाला सामर्थ्य अर्पण कीजिये । उस सामर्थ्यके आधारपर हम जीवित रहेंगे और हमारी इच्छा सफल होगी ।

### सूक्त १६९.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र ॥

हे इन्द्र, कोई भी मनुष्य चाहे जितना बड़ा हो, कोई भी मनुष्य चाहे जितना राजवान् हो, उसके हमलेसे हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं । हे सकलदेव—प्रभो, आप बड़े जनी हैं । सबसे प्यारा जो आनन्द वह आपहीके पास है । आप वह आनन्द हमें प्रदान कीजिये ।

हे इन्द्र, यह बात विदित होती है कि मनुष्यजातिके शत्रुओंका नाश करनेवाले, सब लोगोंका मार्ग दिगानेवाले और ज्ञानवान् देवोंपर आप अपनी आज्ञा चलाते हैं । युद्ध करके स्वर्ग—लोकसे प्रकाश लानेके लिये मरुत्—देवोंकी सेना बड़े वेगसे आगे चल रही है ।

हे इन्द्र, हमारी रक्षा करनेके लिये आप अपने हाथमें अपना हाथियार रखते हैं । मरुत्—देवोंने भी हमारी रक्षा करनेके लिये अपना सब सामर्थ्य प्रकट किया है । जिस तरह अग्नि जलनेवाली लकड़ीको घेरता है अथवा जलका प्रवाह जिस तरह किसी टापूको घेर लेता है उसी तरह इन्द्र और मरुत्—देवोंने हमारे लिये सब सुखोंको अपने हाथमें ले रखा है ।

१ मरुते रागव पृथिमाताना मरुता लेप अनीकम् असूत । सप्तरास ते अश्वम् अजनयन्त, आत इत् ( जना ) दीपरा स्वाम् पयपश्यन् ।

१० हे मरुत एष व स्तोम इव च गी मान्वस्यमारो मादार्यस्य, ( तद् ) तन्वे, इषा आयामीष्ट, तान् इष,—जोरदानं वृजनं विदाम ।

११ इदं वनं महं चिन् महं चिन् त्वजमा त्वम् एतान् वरुता असि, सः मरुता वेव चिक्विन्वान् तव । न वनश्च हि ।

१२ इदं मन्त्रा नि पित्र विश्वदृष्टी विदनानामश्च ते ( देवास ) अयुन्नन्त ( इव, यत ) दासमागा पृनुति स्वर्गान्स्व प्रवन्स्य मातो ( अयुन्नन्त ) ।

१३ देवो न ते दृष्टिं जन्ते अन्यत, मरुत ( अपि ) मनेमि जश्च तुनन्ति । शुशुभान् जग्नि चिन् दि । १४ नोवे, ( नोवे ) नान् इषिन प्रयानि दमति ।

हे इन्द्र जिस तरह प्रभावशाली गोरूपी धन आप हमें देते हैं उसी तरह दिव्य ऐश्वर्य भी हमें आनन्दसे प्रदान कीजिये। आपकी स्तुति हम अच्छी तरह करत हे। किन्तु जिस स्तुतिसे आप प्रसन्न हुए उसी स्तुतिसे वायुभी प्रसन्न होवे। जिस तरह वायुका हृदय सुगन्धिसे भर जाता है उसी तरह हमारा हृदय भी भक्तिसे भर जाता है। ४

हे इन्द्र, पवित्र हृदयके भक्तोंका कल्याण करनेवाला, और सम्पत्ति बढ़ानेवाला दिव्य ऐश्वर्य आपहीके हाथमे है। आपके मित्र देदीप्यमान् मरुत्-देव आपके भक्तोंके सामने जाकर उनका सन्मान करते हैं, व हम पर सदा कृपा करे। ५ (८)

हे इन्द्र, मरुत्-देव कृपारूपी प्रसादकी वर्षा करनेवाले और बड़े पराक्रमी है। मरुत्-देवोंको आपभी सहायता दीजिये और अपना पराक्रम दिखाइये। जिस तरह राजाकी सेना रणभूमिमे तैयार रहती है उसी तरह मरुत्-देवोंके बलवान किरणरूपी हिरनोकी भुजा यद्वा सदा खडा रहा है। ६

भयंकर और वेगवान् मरुत्-देव बड़े जोरसे आ रहे है। सुनिये, उनका आवाज बड़े जोरसे सुनाई दे रहा है। जिस तरह पापी देनदार (कर्जदार)का नाश होता है उसी तरह मरुत्-देव प्रेम करवाले मित्रका जो द्वेष करता है उस दुष्ट मनुष्यका नाश करते है। ७

हे इन्द्र, मरुत्-देवोंके साथ आप यहा आइये। आप हमे (माननीय पुरुषोंको) ऐसा दान दीजिये जिससे ज्ञानरूप प्रकाश सब दूर फैले और हमारे सब दुःख मिट जाय। हे देवाधिदेव इन्द्र, पूजा करने योग्य सब देव भी आपकी स्तुति करते है। आप हमपर ऐसी कृपा कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और बढे। ८ (६)

४ हे इन्द्र त्वं तु न आजिष्ठया दक्षिण्या रातिमिव त रदि दा., लं स्तुतश्च (ताभिः), या वे चरन्त (ता) मध्व वायो स्तन न (भक्तान्) वाजैः पीपयन्त।

५ हे इन्द्र, कस्य चित् ऋतायो प्रणेताः तोशतमाः राय त्वे (एव), (तद्) ये (भक्तानां) पुरा गातूयन्तीव स्म, ते देवा. मरुत न सु मृदयन्तु।

६ हे इन्द्र, मीढ्वुप, मह वृत् च प्रतीप्र याहि, प्रार्थिवे सद्ने यतस्व। अथ यत् तीर्थे अर्थ. पौर्यानि न, एषा पृथुवुभ्रास. एता तस्थु।

७ घोराणा, अयासा, आयताम् मरुताम् उपद्रि प्रति शृण्वे ये (ते) पृतनायन्तम् मर्त्यम्, ऋणवानम् न, जमै. सर्वे। पतयन्त।

८ हे इन्द्र, त्वम् मरुद्रि (आगत्य) मातेभ्य, विश्वजन्या, गो अयाः शुरुध. रद। हे देव त्वं स्तवानभिः देवै स्तवते, (तद्) इषम्, जीरदातुम् वृजनम् निशाम।

अष्ट० २ अध्या० ४ व० १० ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७०

सूक्त १७०.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

( जो वस्तु मिलनेकी हम इच्छा करते हैं वह वस्तु ) आज भी नहीं मिलती और कल भी मिलनेवाली नहीं है । इस लिये इसवानका विश्वास हम नहीं करते कि भविष्यत् कालमें वह वस्तु मिलेगी अथवा नहीं । जब कोई मनुष्य किसी दूसरेके प्रसन्न करनेकी इच्छा करता है तब उसकी इच्छा सफल नहीं होती । १

हे इन्द्र, हमारा नाश करनेकी आप इच्छा क्यों करते हैं । मरुत्-देव आपके भाई हैं । उनपर आप प्रेम कीजिये, आर युद्धमें हमारा नाश मत कीजिये । २

हे भाई, अगस्त्य, आप हमारा मित्र कहलाये जाते हैं, किन्तु आप हमें हवि अर्पण नहीं करते । हम आपको अच्छी तरह समझते हैं । आप हमें कुछ भी देनेकी इच्छा नहीं करते हैं । ३

आप कुछ मत कीजिये । देखिये, अब हम वेदी तैयार करते हैं । अग्निको प्रज्वलित करते हैं । अमरत्वको चैतन्य दिलानेवाले यज्ञको अब हम तुमारे लिये यथाविधि करते हैं । ४

सब प्रकारकी इच्छा सफल करनेवाले इन्द्र, सब अच्छे अच्छे लाभोके आपही स्वामी हैं । हे इन्द्र, सब मित्रोंमें आप श्रेष्ठ हैं । आप अकेलही सबसे उदार हैं । इसलिये मरुत्-देवोंके साथ आप प्रेमसे बात कीजिये । ठीक ठीक समयपर आकर हमने दिये हुए हवियोंका आप स्वीकार कीजिये । ५

---

१ न नूनम् अरित, नो श्र, ( तत ) यद् अद्रुत तद् को वेद । अन्यस्य चित्तम् अभि धचरेण्यम्, उत ( च ) अर्पणम् विनश्यति ।

२ हे इन्द्र न हि जिघामसि १ मरुत् तव व्रातर, तेभि सायुया ऋषेभ्यः, समरण न मा शभी ।

३ हे व्रात अगस्त्य ( न ) सखा मन् अन्मान् ( एव ) किम् अति मन्यसे १ ( वय ) ते मग् यथा ( तथ ) ( व ) अन्नन्म इत् न दिममि ।

नादत्, ) वेदिम् ( ऋषिभ्यः ) अर वृष्कन्तु, अग्नि पुरः समिन्वताम् । तत्र अमुतस्य ( अपि ) एतस्य ) ते यज्ञ तनवान हे ।

४ ननुने च इम्ना दक्षिणे, हे मित्रपते, प्रेष्ठ त्व मित्राणा ( चापि दक्षिणे ) । हे इन्द्र त्व मरुद्भिः स वदस्व, न दवापि वस्तुषा प्र ज्ञानम् ।

सूक्त १७१.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

मैं आपको, हे मरुत्-देव, बार बार नमस्कार करता हूँ। मैं आपहीके पास आया हूँ। भक्तोंके लिये शीघ्रतासे आप दौड़ते चले आते हैं। आपके गुणोंका वर्णन करके हम आपकी कृपा चाहते हैं। हे मरुत्-देव, हमारी विनतीकी ओर ध्यान दीजिये और क्रोध छोड़ दीजिये। आप अपने अश्वोंको भी रथसे अलग कीजिये। क्योंकि आप हमपर प्रसन्न हुए हैं। १

हे मरुत्-देव, यह स्तोत्र हम आपहीका है जो हमने बड़ी नम्रतासे गाया है। आपके स्तोत्रको यथाविधि बड़ी नम्रतासे गाते हैं। आप भी उस स्तोत्रका स्वीकार कीजिये। उस स्तोत्रका स्वाद लेनेके लिये आप सभी भक्तिसे इधर आइये। क्योंकि आप सदा अपने भक्तोंकी उन्नति ही करते हैं। २

हम मरुत्-देवोंका यथाविधि स्तवन करते हैं। इस लिये वे हमपर-सदा कृपा करें। सब लोगोंका कल्याण करनेवाले इन्द्रकी भी हम स्तुति करते हैं। इस लिये इन्द्र भी हमपर प्रसन्न रहे। हम जय प्राप्त करनेकी सदा इच्छा करते हैं। हमारी रक्षा करनेके लिये आपके सुन्दर भाले सदा तैयार रहे। ३

हे मरुत्-देव, भयकर इन्द्रसे मैं डरता हूँ। उनके पाससे मैं दूर चला जाता हूँ। आपके लिये हाँवरूपी अन्न मैंने तैयार रखे थे। किन्तु हविरूपी अन्नको मैंने दूर लौटा दिया। इस लिये हमें क्षमा कीजिये। ४

१ (हे मरुत् अय) अह एना नमसा व एमि, तुराणा (युष्माकम्) सुमति भिक्षे। हे मरुतः देवाभि-रराणता, हेळ नि धत्, अश्वान् वि मुचष्वम्।

२ हे मरुत् एष नमश्चान् स्तोम. व (एव), स. हदा तष्ट, हे देवाः (स) धायि । (युय) जुषाणाः र्मन् नमसा उप आयात, यूयम् हि नमस्त इत् वृथास' स्थ ।

३ स्तुतास मरुत न मृळ्यन्तु, उत शभविष्ट. मघवा (च) स्तुतः (सन् मृष्यतु), हे मरुतः (अस्माक) जिगीषा, विश्वा अहानि, (सुनिहिताना) व (ऋषीना) कोम्या वनानि उर्ध्वा णन्तु ।

४ हे मरुत् अस्मान् तविपात् इद्वान् अह भिया रेजमान ईपमाण. (च अपैमि)। देवा युष्मभ्य निशितानि आसन्। तानि आरे चकृम, (तद्) नः मृळ्यत ।

हे इन्द्र, जब सनातन उषा अपने सामर्थ्यसे प्रकाशित होती है तब आपहीकी कृपासे उस भद्रोप्यमान् उषा-देवीका दर्शन मान-पुत्रोंको हुआ। इच्छाको सफल करनेवाले हे (पराक्रमी) इन्द्र, आप बड़े पुराण-गुरुप है। धैर्य और बल देनेवाले आपही है। आप बड़े उग्र है। इस लिये भयंकर मरुत्-देवीको साथ लेकर आप हमारी ओर आइये और हमें यश प्राप्त होवे।

५

हे इन्द्र, आप बलवान् और पराक्रमी मरुत्-देवीकी रक्षा कीजिये। आप मरुत्-देवीपर क्रोध मन कीजिये और क्रोधको छोड़ दीजिये। सब जगत् समजता है कि आप बुद्धिमान् मरुत्-देवीके विजयी अधिपति है। आपहीकी सहारसे हमारा उत्साह सफल होवे और आपकी कृपा हमपर सदा बनी रहे।

६ (११)

सूक्त १७२.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

हे दानशील मरुत्-देव, आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आवे। सापकी तरह चञ्चल निरगणके मरुत्-देव, आपके सामर्थ्यके कारणही आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आये।

१

हे दानशील मरुत्-देव, शत्रुओंके शरीरमें दुखनेवाला और नाश करनेवाला आपका शत्रु हमें दूर रहे। जिस अशानि पत्थरसे आप मारते है वह भी हमसे दूर रहे।

२

हे दानशील मरुत्-देव, तृणस्कन्दके लोगोको आप चारों ओरसे घेर लीजिये और इनकी काट डालिये। हमें यश प्राप्त होवे और हम जीवित रहें। हमारी उन्नति भी होवे।

३ (१२)

५ श्वतीना (उपना) श्वस ऋषिषु, येन (ता) उषा मानयः चित्तप-त दे वृषभ, ४ (त्व) चित्रि नदीश च (तद्) उग्र. (त्व) उपेभि मरुद्रि न श्रव वाः

६ हे इन्द्र, त्व महीयम मरुत् पादि, मरुद्रि जववातेद्वेष्ट भव, (तै.) सुप्रक्षेतेभि धार्षद दवान (तर) नीरदासु वृजत विदाम।

७ मरुत्पत्र न प्रान चित्र अस्तु, हे अहिमानव जन्त, (स याम) उती चिर- (भारु)।

८ हे मरुत्पत्र मरुत्, सा (द्विपत्सु) मरुती ना व शद परि (अस्तु), (अपिच) यन् अथ । 'तोप' १० - २ (-स्तु)।

९ हे उदना, तुनाददस विद परि वृक्तु, जीवसे न ऊर्वात् क्त।

सूक्त १७३.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपको सन्तुष्ट करनेके लिये ( उद्गाता ) आकाशमे चारो ओर फैलनेवाला गान गायेगा । स्वर्गके प्रकाशकी तरह चारो ओर इधर उधर फैलनेवाला अपूर्व स्तोत्र भी हम जोरसे गायेगे । आप अपने अमूर्त स्वरूपसे दर्भके आसनपर यद्वा बैठते हैं । तेजोरूप धेनु भी जिनको कोई भी सता नहीं सकता-आपकी सेवामे तैयार रहती है । १

पराक्रमी पुरोहित, पराक्रमी आचार्योंके साथ आपकी उपासना करते हैं, और आपको ताजा, गरम गरम हविरन्न अर्पण करते हैं क्योंकि भूखे सिंहकी तरह आप उसका बड़े उत्साहसे स्वीकार करे । हे सबसे श्रेष्ठ-देव, यज्ञ होता, माननीय यजमान और उसके स्त्रीके साथ बड़े आनन्दसे आपको सन्तुष्ट करनेके लिये आपकी स्तुति करता है । २

हे इन्द्र, यह आचार्य ( पुरोहित ) अग्निके बड़े बड़े तीन स्थानोंको प्रदक्षिणा करके शरदतुमे उत्पन्न होनेवाले संपत्ती साथ लेकर पृथिवीपर आता है । इसी ऋतुमे अश्व द्विनाहिनाते हुए मार्गसे चलते हैं । बैल भी डकारते हुए चलते हैं । दिव्यवाचा, भी दूतीकी तरह पृथ्वी और आकाशके बीचमे सदा घबरावती हुई दिखाई देती है । ३

इन्द्र जिन वस्तुओंको चाहता है उन वस्तुओंको हम आपको अर्पण करेंगे । इन्द्रके लिये भक्तजोग प्रतिभाशाली स्तोत्रोंको गाते हैं । तेजस्वी इन्द्र उन वस्तुओंका और स्तोत्रोंका प्रेमसे स्वीकार करे । नास्त्यकी तरह वह भक्तके आधीन रहता है । भक्तोंके लिये, इन्द्र, रथपर बैठा चञ्चा तैयार है । ४

१ हे इन्द्र यथा ते ( तथा ) तभन्व साम ( उद्गाता ) गायत, ( वधच ) तत् स्ववत् वावृधान च ( शस ) चर्चाम् । एव वद्विष सन्न नम् दिव्य ( त्वा ) अदच्वा गाव येनवथ आ विवासान् ।

२ वृषा ( ऋवञ्च ) इर्धम ( त्वाम् ) म्वेदुहव्यै यत् ( त्व ) अश्व मृग न ( तानि ) अतिशुगुयांत ( तथा ) अचत् । ते पुन, नदद्यु शेता, यजत्र मर्त्यश्च मियुना ( त्वाम् ) मनाम् प्र भरते ।

३ ( इन्द्र, यज्ञाय ते अयम् ) होता ( अग्ने ) मिना सन्न परि यन् नक्षत्र, ( स ) शरद गर्भे पृथिव्या आ गन्त । नयनान् अश्व क्रदत्, गौ द्यवन्, ( माध्यसिक्ता ) वाक् दूत न रोदसी अ त चरत् ।

४ अत्मे ( इन्द्र ) ता अपत्स्य ( एव दर्शीपि ) कर्म, देवयन्त ( अपि अस्मै ) चौलानि प्र भरते । ( तद् ) गन्तव्यं दद्र ( तानि ) शुजोदन्, ( स ) नास्त्येव सुगम्य रपेष्ठश्च ।



इन्द्रकी स्तुति करना चाहिये। आप बड़े सत्यवादी है, आप बड़े शूर है; आप बड़े उग्र हैं, भक्तोंके लिये आप रथपर बैठे हुए हैं। सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले आपही है। चाहे जैसा बलवान् मनु हो, आप उससे श्रेष्ठ है। पृथ्वीको चारों ओरसे घेरनेवाले अन्धकारका नाश आपही कर सकते हैं। ५ (१३)

विश्वमे जितने शूर पुरुष है उनसे सचमुच आप बहुत श्रेष्ठ हैं। अन्तरिक्ष बहुत विलीयी है। तद्यपि इन्द्रके कमरबंदके लिये भी वह पूरा नहीं पड़ता। पराक्रमी इन्द्रने आकाश-रूपमे पृथिवीको व्याप्त किया है और आपने नक्षत्रोंको अपने सिरपर अलंकारके तौरपर धारण किया है। ६

हे पराक्रमी इन्द्र, सब सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले आपही है। आप अच्छे नेता भी हैं। ज्ञानवान् इन्द्रको यज्ञमे हवि अर्पण करनेके लिये सब भक्तजन बड़े प्रेमसे एकत्रित होते हैं और आपको प्रसन्न करते हैं। युद्धमे भक्तलोग बड़े नम्रतासे इन्द्रकी सहायता भी चाहते हैं। ७

जिम तरह वर्षा कीये हुए दिव्य उदकोकी वागाँँ भूलोकमे आकर बड़े आनन्दसे समुद्रमे जाकर मिलती हैं उसी तरह हमने अर्पण किये हुए सोमरसके प्रवाह बड़े आनन्दसे आपकी ओर चले जाते हैं। चाहे ज्ञानी लोग हो अथवा साधारण लोगहो, सब लोगोपर आप हार्दिक प्रेम करते हैं। इस लिये यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि सब लोगोकी स्तुति आपकी ओर होइती है। ८

पराक्रमी पुन्योहा अभय वचन मिलना, मानो, एक उत्तम मित्र मिलनेकासा है। इस तरह उत्तम मित्र और सहायता केवल आपहीकी कृपासे मिलती है। इन्द्र-देव चञ्चल मनकी तरह सब स्थानोंमे मञ्चार करता है। किन्तु इन्द्र, हमारे किये हुए कर्म और गाये हुए स्तोत्रोंको नफल करे। इन्द्र निश्चिन्त बुद्धिसे हमारी उपासनाकी ओर सदा ध्यान देवे। ९

५ यो ह सत्वा, यः शूर मघना यः श्रेष्ठः । (यश्च) वृषण्वान् प्रतीच चित् योधीयान्, ववृषप- तमन- चित् विदन्ता च, तसु इन्द्रम् स्तुहि ।

६ यत् (इन्द्र) महिना (विश्वेभ्य) नृन्व्य प्र कृष्ट अस्ति इत्या, अस्मैच ऋष्ये रोदसी अर न । (अयम्) ६२ स्वना वात् वृजनम् न भूम सम् विश्वे, याम् ओपश मिव मर्ति ।

शूर मना उग्राम् प्रपयि तम च त्वा ममन्वु परितसवर्थ, (एते) ये राजोपम क्षोणी (ते त्वा) चित् नरे वात्र अनुमदन्ति ।

इते राजो देवी (भुवि प्रागल्व) मनुदे आमु मदन्ति, एव हि मघना ते शम् (भवन्ति) । यदि चित् जगत् (चित्) जिना वेपि, (तद किं चित्रम् यदि) विश्वा गौ ते जोष्या अनु भूत् ।

७ तम मनी न, एन मना सुपुत्राय न्वनिष्ठय (तथा) उग्राम् । (अपिच य. मन) न सुर इद्र । (अन इ) इन्द्र उग्रो च नृपमन न वदते तथा यथा अमन् (तथा नृयान्) ।

बड़े बड़े पुरुषोंकी और द्वेष न करनेवाले साधु-सज्जन लोगोंकी प्रार्थनाको और इन्द्र सदा ध्यान देवे। वज्र धारणकरनेवाले इन्द्र सदा हमारा कल्याण करे। नगरका अच्छी तरह प्रदन्ध करनेवाले राजाको प्रसन्न करनेकी और उनका सन्मान करनेकी जिस तरह प्रजा इच्छा करती है उसी तरह इन्द्रके हार्दिक प्रेमकी इच्छा करनेवाले भक्तलोक भी यज्ञ-यागसे उनको प्रसन्न करते हैं।

१० (१४)

कई स्थानोंमें इन्द्रका सन्तुष्ट करनक लिय यज्ञयाग चल रहे हैं। कई स्थानोंमें चञ्चल और भ्रष्ट मनुष्य बिना उद्देशके इधर उधर घूमता हुआ दिखाई देता है। जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलवा प्रवाह घरकासा आनन्द देता है उसी तरह यज्ञ-याग करनेवाले मनुष्यको इन्द्र आनन्दित करता है। चिन्ता करनेवाले मनुष्यको दूरके मार्गपर चलनेसे जिस तरह दुःख होता है उसी तरह भ्रष्ट मनुष्यका, इन्द्र-देव तिरस्कार करता है।

११

हे इन्द्र, ऐसे युद्धके समय हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हे पराक्रमी इन्द्र, आपके चारों ओर सब देव बैठे हुए हैं, आपको हविर्भाग देनेके लिये यहा बिलकुल तैयार हैं। आप सबसे श्रेष्ठ-देव हैं, आप सब लोगोंको इच्छा पूरी करनेवाले ह। हवींको अर्पण करनेवाले भक्तजोग अपनी तोतली भाषासे आपके और मरुतु-देवोंके गुणोंका वर्णन करते हैं। आप उसका आनन्दसे स्वीकार कीजिये।

१२

हे इन्द्र, हम आपको यह स्तोत्र अर्पण करते हैं। हे हरिदश्व इन्द्र, हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमें अच्छा मार्ग दिखलाइये। हे देव, जिस मार्गसे हमारा कल्याण होगा वही मार्ग हमें दिखलाइय। उस मार्गसे जानेसे आपका सहारा हमें मिलेगा, हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा उत्साह बढ़ेगा।

१३(१५)

१० नरा विष्पर्धस च शसै न (अयम्) वज्रहस्त इन्द्र अस्माक असत् पूर्पतिम् सुशिष्टौ मित्रयुवः न, (एते इन्द्रस्य) नभ्य युव (तम्) यत्रै उप शिक्षन्ति।

११ (क्वचित्) कश्चित् यज्ञ इन्द्र ऋन्धन् हि स्म, (क्वचित्) मनसा जुहुराण. चित् परियन् (दृश्यते)। तौषे अच्छ तातपाणम् ओको न (प्रथम कर्म), सिध्र दीर्घोष्वा आकृणोति (एतादृश अपरम् कर्म)।

१२ हे देवै (वृत्) इन्द्र, अत्र पृत्तु मो पु न (त्याक्षी), ते अवया अस्ति स्म हि। हे शुध्मिन् यस्य मे हविष्मत यव्या गो (ते) मह मीन्द्रुप चित् मरतश्च वन्दते (ता जुपस्व)।

१३ हे इन्द्र, अस्मै एष स्तोमः तुभ्य अस्ति, एतेन हे हरिव. नः गातु विदः। हे देव सुविताय न. आ वरुत्सा (येन) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम.

सूक्त १७४.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, जिनमे देव है उन सबके आप राजा है, हमारी पराक्रमी सेनाकी आप रक्षा कीजिये । हे परमात्मन्, आप हमारी भी रक्षा कीजिये । आप साधु लोगोमे भी बड़े श्रेष्ठ है । आप बड़े उदार है, और आप हमारी रक्षा करनेवाले है । आप सत्यस्वरूप मन्पत्ति देनेवाले और धैर्य बढ़ानेवाले है । १

हे इन्द्र, हमे गाली देनेवाले दुष्ट लोगोका आपने नाश कर डाला । उसी समय उनके निवास स्थानोकाभी-शागद् नामक सात किलाओका भी आपने नाश कर डाला । हे पवित्र इन्द्र, बड़े बड़े जलके प्रवाहोको-जिनमे भयंकर लहर उबलती है आपने बहाया । युवा पुरुकुत्स आपका भक्त है । उसके शत्रुको आपने उसके अधीन कराया । २

हे इन्द्र, जगत्के शत्रुओकी सनाके नेता बड़े शूर है । उन्होने गोल आकाशको व्याप्त किया है इस लिये आप उन्हे बहासे निकाल दीजिये । हमारे घरमे जो अग्निहोत्र है उसका नाश न होये । क्योंकि वह शान्ति फल देनेवाला है । सिंहकी तरह जागृत रहकर हमारे अग्निहोत्र और उपासनाकी आप रक्षा कीजिये । ३

हे इन्द्र, आपका वज्रके केवल आवाजसे और तेजस्विताके कारणही सब जगत्के शत्रुओका एकही स्थानमे नाश हुआ । शत्रुओका नाश होनेके कारण आपका तेज बहुत बढ़ गया है । देखिये, इन्द्रने शत्रुओके साथ युद्ध किया और दिव्य उदकके प्रवाह बन्धनस लाडकर बहा दिये । रके हुए प्रकाशरूपी धेनुओको भी इन्द्रने मुक्त किया । इन्द्र अपने सशर सवार हुए और भक्तोको दिव्य सामर्थ्य प्राप्त कराया । ४

१ हे इन्द्र, ये च देवा (तेषां) त्वं राजा, हे असुर रक्ष (नः) त्वम् नृन्, अस्मोश्च पाहि । त्वं सत्यति मन्पत्ति, नः तदन्ना त्वम् मन्य वमवान सहोदा (असि) ।

२ हे इन्द्र, बहू नृणाञ्च विश (त्वम्) दनः (तदेव एतेषां) शागदी, शर्म (नाम) सप्त पुर (त्वम्) अन्वय, २ । अप ऋषोः, यूने पुरुकुत्साय (अथ) वृत्र रथीः ।

३ इन्द्र (सना द्विजना सेना) दाम् (अश्रुवन्), हे पुरुद्वित धेनि च (धौः) उता ता ) शूरपत्नी इत (नः) अग्नि, तद्वया । दमे अग्निम्, अपामि च (दोषा) कर्तो विदो न रक्ष ।

४ हे इन्द्र, ते परमवस्य मय (एव) ते (द्विप तत्र) प्रशस्तये मस्मिन् योनौ शेषन् नु । वद् (स) इन्द्रोः शर्म (अथ) अवनृजन्, निष्ठन् दगे (त्वम्) भक्तार्थे ) श्वता वाजान् मृष्ट ।

हे इन्द्र, कुत्स नामके भक्तपर आपकी बड़ी कृपा है; इस लिये सीधे मार्गसे चलनेवाले और एकसे दौड़नेवाले वायुके अश्वोको आप उसकी ओर ले आइये। उषाका उदय होते समय सूर्य अपने एक चक्रके रथको हमारी ओर ले आवे। वज्र धारण करनेवाला इन्द्र पापी शत्रु प्रोपर चढ़ाई करें। ५ (१६)

हे हरिदश्व इन्द्र, यह बात सबको विदित ही है कि सज्जन लोगोंको प्रेरणा करनेवाले आपही है। आपके भक्तलोगोको सतानेवाले और दानधर्म न करनेवाले दुष्ट लोगोका आपहीने नाश किया। हे इन्द्र, किसीका अधिकार न माननेवाले दुष्ट लोगोका जब आपने नाश किया तब सब प्राणियोको शीघ्रही विदित हुआ कि आप उनकी रक्षा करनेवाले हैं। ६

हे इन्द्र, काव्यकी रचना करनेवाले ज्ञानवान् कवियोने आपका ठीक ठीक वर्णन किया है कि आप दुष्ट लोगोका नाश करते हैं। ( वे मर जाकर पृथिवीपर सो जाते हैं। ) दयाशोल परमेश्वरने अपने उदारतासे पृथिवीकी शोभा बढ़ायी। आपने रयांडगणमे युद्ध किया और कुयवाचका नाश कर डाला। ७

हे इन्द्र, आपके प्राचीन कालके पराक्रमोका नश कवियोने बड़े प्रेमसे वर्णन किया है। आपने पापी दुष्ट लोगोका नाश कर डाला; इस लिये युद्ध होनेकी संभावना बहुत कम है। ईश्वरकी भक्ति न करनेवाले दुष्ट लोगोके निवासस्थानोका आपने नाश कर डाला; और ईश्वरकी निन्दा करनेवाले दुष्ट लोगोका भी आपने नाश किया। ८

हे इन्द्र, जब आप गर्जना करते हैं तब सब जगत् डरके मारे कांपने लगता है। धुनि नामके राक्षसने दिव्य उदक-धाराओको रोक दिया था; किन्तु आपने उसका नाश करके उन उदक-धाराओको बन्धनसे छुड़ा लिया। उसीके कारण नदीके प्रचण्ड प्रवाह बहने लगे। हे पराक्रमी इन्द्र, आप आकाशरूप समुद्रके परे सहज रीतिसे चले जा सकते हैं। इस लिये तुर्देश और यदु नामके भक्तोको आप अपने साथ समुद्रके परे ल जाइये। ९

५ हे इन्द्र, यस्मिन् (त्वम्) चाकन् (तम्) कुत्स, वातस्य स्यूमन्यू ऋत्रा अथा वह। (स) सूर्यश्चक अभीके प्रवृत्तात्, वज्रवाहु स्पृध अभि यासिपत्।

६ हे इन्द्र, हे हरिव, (त्वम्) चोदप्रवृद्ध मित्रेरून् अदाशन् जघन्वान्। अपत्य वहमाना ये (अरातय) त्वया शर्ता, (ते) आयो अयमणम् (त्वाम्) सचा प्र पश्यन्।

७ हे इन्द्र, अर्कसातौ (त्वाम्) कवि रपत् (यद् त्वम्) दासाय क्षाम् उपभर्हणीम् कः। (सत्वम्) गधवा तिष्ठ (भुव) दानुचित्रा करत्, दुशेणे च मृधि कुयवान् नि श्रेत्।

८ हे इन्द्र ता ते सना नव्या (अपि) आ अगु, अविरणाय (त्वम्) पूर्वीः नभ सहः अदेवी (तेषा, च) पुर न भिद भिनत्, अदेवस्य हीयो वध (अपि) ननम।

९ हे इन्द्र त्वम धुनि, धुनिमती अप, सवन्ती सीरा न ऋणोः। हे शूर यत् समुद्र प्र अतिपर्वि तुर्देश वदु च स्वस्ति पारय।

अष्ट० २ अध्या० ४ व० १७,१८ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७५

हे इन्द्र, आप हमारा कल्याण कीजिये। निरपराधि मनुष्यको आप नहीं सताते। सब मनुष्योंकी आप बड़े प्रेमसे रक्षा करते हैं। इस लिये हमारे सब शत्रुओंका आप नाश कीजिये। उसके कारण हमारी इच्छा सफल होगी और हमारी उन्नति होगी। १० (१७)

सूक्त १७५.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र ॥

हे हर्यश्च इन्द्र, आप आनन्दित हूजिये। यह आनन्द देनेवाला आनन्दरूपी सोमरस मानो, आपका प्रत्यक्ष तेजही विदित होता है। यज्ञ-पात्रसे सोमरसको आप पीते हैं। आनन्द देनेवाला, ओजस्वी, और असंख्य ज्योंको प्राप्त करनेवाला बलवान् सोमरस, आप जैसे बलवान् पुरुषके लिये स्वीकार करने योग्य है। १

हे इन्द्र, आनन्द बढ़ानेवाला, वीर्यवान्, उत्कृष्ट और उग्र सोमरस हमारी इच्छा सफल करनेवाला है। शत्रुओंको जीतनेवाला अमर सोमरस आपकी ओर पहुँचे। २

हे इन्द्र, आप सचमुच बड़े दानी और पराक्रमी पुरुष हैं। मैं जैसे दीन मनुष्यकी इच्छा पूरी करनेवाले आपही हैं। आपही शत्रुओंको जीतनेवाले हैं। अधार्मिक दस्युओंको (भट्टीके) बरतानकी तरह आप तपायिये। ३

१० हे इन्द्र त्वम् विश्वेभ्य अस्नाकम् स्या, अवृकस्तम (त्वम्) नरा नृपाता (अग्नि) । स (त्वम्) विश्वाना न स्पृमा महोमा (देव) इय जीरदासु वृजनम् विद्याम्

१ हे इन्द्रि मन्त्रि, मन्त्र नद ते मह उव पात्रत्य (त्वया) अपायि, (अयम्) इदु वाजी, सहव-  
म वृमा (नोम) ते वृष्ण (समुचित एव) ।

२ हे इन्द्र, न मन्त्र, वृमा नद वरेष्य, महवान्, साननि पृतनापाठ, अमर्त्यः (सोम.) ते आगन्तु ।

३ हे इन्द्र त्वमहि मन्त्रि, इन्द्र, (तद) मनुष्य (मम मनो) रथम् चोदय, । सहावान् (त्व) अनन्तम्  
इन्द्रम् (इन्द्रम्) पात्र न शोचिषा नोप ।

हे सर्वज्ञ इन्द्र, आप जगत्के शासन करनेवाले हैं। आपने अपने ईश्वरी सामर्थ्यसे सूर्यके रथका एक चक्र निकाल डाला। (शुष्णके) मृत्युको और कुत्सको वायुरूप अश्वोंसे शुष्णकी ओर ले जायिये। ४

सचमुच आपका आनन्द बहुतही ओजस्वी है। आपका कर्तृत्व बहुतही अपूर्व है। आप शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अपने पराक्रमसे आप सब लोगोको आनन्द देते हैं। सर्वव्यापी सामर्थ्य आप देनेवाले हैं। इस लिये सब लौक आपकी स्तुति करते हैं। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके सब भक्तोंको आपके पराक्रमसे आनन्द हुआ। उसी तरह प्राचीन समयके 'निविद्' स्तोत्रसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूँ। इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाले इन्द्र, हमारी उन्नति होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ६ (१८)

### सूक्त १७६.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

हे आनन्द देनेवाले सोमरस, हमें सुख प्राप्त करनेके लिये आप इन्द्रको आनन्दित कीजिये। आप भी बड़े पराक्रमी हैं। इस लिये वीर पुरुषोंके शरीरमें आप प्रवेश कीजिये। (हे इन्द्र,) जब क्रोधसे आप शत्रुओंपर चढ़ाई करते हैं तब एक भी शत्रु आपके सामने खड़ा नहीं रहता। १

४ हे कवे (इन्द्र) ईशान (त्वम्) ओजस्ता मूर्त्यं चक्र मुपाय, वातस्य अश्वै, कुत्सम् वध च शुष्णाय वह।

५ ते मदः शुष्मिन्तम हि उत क्रतु शुन्तितम । (ते) वृत्रघ्ना वरिवोविदा (मदेन) अश्वसातम मसीष्टाः ।

६ हे इन्द्र यथा पूर्वैभ्यो जरितृभ्यः (त्वम्) तृष्यते आपः न मयइव बभूथ, (तद्) त्वा ताम्निविद अनु जोदधीनि, (तस्मात्) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम ।

१ हे इन्द्रो, न वरय दृष्ट्ये इन्द्र मत्सि, (त्वदि)। वृषा (तद् तम् वीरं) आ विश, (हे इन्द्र) ऋषायनाण इन्वसि (परच) गत्म् अन्ति न विन्दसि ।

हे इन्द्र, आप प्राणिजातिके अकेले प्रभु हैं। इस लिये आप ऐसा कीजिये जिससे मेरा मन आपकी स्तुति करनेमें मग्न हो जावे। बेलके जातनेके अनुसार जिस तरह अनाज बोया जाता है उसी तरह आपकी इच्छाके अनुसार प्राणिजातिका कर्मबीज बोया जाता है। २

पाच जातिके लोक जिस धनकी इच्छा करते हैं वह धन आपहीके हाथमें है। हमारे शत्रुओंको आप डूण्डकर निकालो और जिस तरह विजली किसी वस्तुका नाश करती है उसी तरह हमारे शत्रुओंका आप नाश कीजिये। ३

जो मनुष्य आपको सोम अर्पण करता है किन्तु आपकी भक्ति नहीं करता, जो मनुष्य आपको आनन्द नहीं देता और जिस मनुष्यका पता भी नहीं लगता, भक्ति न करनेवाले उन लोगोंका आप किसी युक्तिसे नाश कीजिये। उन युक्तियोंको हमें आप विदित कीजिये। मैं आपका भक्त हूँ, इस लिये मैं विश्वास करता हूँ कि आप सब बातें मुझे विदित करेंगे। ४

इन्द्रकी कीर्ति दोनों लोकमें फैली हुई है। इन्द्रका स्तोत्र सब जगह गाया जाता है। सोमरसन इन्द्रको सहायता दी। मनोहर कान्तिका सोमरस इन्द्रको अर्पण किया गया। जिस युद्धमें योद्धाओंके सामर्थ्यकी परीक्षा ली जाती है ऐसे युद्धमें भी पराक्रमी वीरोंकी आप रक्षा करते हैं। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यास मनुष्यको जल मिलनेसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके भक्तोंको आपकी कृपा प्राप्त होनेसे आनन्द हुआ। पुराने निविद् स्तोत्रसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूँ। इस लिये हमारी इच्छा सफल कीजिये और आपकी कृपासे हमारा आनन्द बढ़े। ६ (१६)

२ चर्धनीनाम् य एक (एव प्रभु) तरिम्न् (इद्रे) गिर आ वेशय, यम् अनु स्ववा (क्रम) उष्यते, आ अव चट्पन् न।

३ इत्य दृष्टको पच क्षितीना विश्वानि वसु, (सत्व) य अस्मन्नक् (त) स्पाशयस्व, दिव्या अशनि स तम् (च) जहि।

४ अनुवन्तम्, योन ते मय त (सम) दृणाश (पाप्मान) जटि, अस्य वेदन अरमभ्य ददि, (एतद्) चिन् जोहते।

५ इन्द्रेण (नरय) अक्षु मानुषक अनन् (तनर) अव, हे इन्द्रय इदो (त्वम्) आजी य च जिवन् प्र आव।

६ हे इन्द्र त्वं इन्द्रो जग्मुन्म (त्वम्) दृष्टते आप. न, मयश्च प्रभुय। (अत) त्वतान् निविदम् - उ जे इन्द्रि, (तद्) स जंरदानु इजनम् दिव्याम्।

सूक्त १७७.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपने सब जगत् व्याप्त किया है। आप लोगोकी इच्छा पूरी करनेवाले हैं। आप सब लोगोके स्वामी हैं। असंख्य लोग आपको स्तुति करते हैं। यथाविधि मैंने आपका स्तवन किया है। इस लिये आप अपने युवा अश्वोको रथको जोतिये; मेरी विनती सुननेके लिये भूलोकमें आप मेरे पास आइये और आपका उत्तम प्रसाद मुझे अर्पण कीजिये। १

हे इन्द्र, आपके युवा अश्व आप जैसे वीर्यशाली और प्रसिद्ध पुरुषके रथको जोतनेके योग्य है। भक्त लोगोकी प्रार्थनाको सुनतेही आपके युवा अश्व स्वयं रथको जोत लेते हैं। इस लिये, हे इन्द्र, आप अपने युवा अश्वोपर सवार होकर हमारी ओर भूलोकमें आइये। हमने सोमरस तैयार रखा है। इस लिये हम आपको बड़ी नम्रतासे दुलाते हैं। २

हे इन्द्र, मानो, आप इष्टसिद्धिकी वर्षा करनेवाले हैं। भक्तके मनोरथ पूरी करनेवाले इन्द्र, आप ऐसे रथपर आरूढ हूजिये जिससे हमारी सिद्धि होवे। आपके लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा है। उसमें अच्छे अच्छे त्वादिष्ट पदार्थ डाल दिये गये हैं। हे श्रेष्ठ पुरुष, अपने युवा अश्वोको जोतकर आप हमारी ओर भूलोकमें आइये। ३

यहां यज्ञ गुरु हुआ है, जिसको सब देव मानते हैं। यहां मेघ पशु बन्धा हुआ खड़ा है। हे इन्द्र, आपके लिये प्रार्थना-स्तोत्र चल रहे हैं। इधर सोमरस रखा हुआ है और दर्भास्तन भी बिछा हुआ है। हे सामर्थ्यवान् इन्द्र, आप हमारी ओर जरूर आइये। हमारे सोमरसका स्वीकार कीजिये, थोड़ी देर आरामसे लेट जाइये और अपने अश्वोको भी रथसे छोड देकर विश्रान्ति दीजिये। ४

१ त्वम् इन्द्र चर्षणिप्रा जनाना वृषभः, कृष्टीना राजा, पुरुहूत (शक्ति), लुतः (चत्वम्) वृषणा हरी युक्त्वा प्रवत्यन् अवसा (सह) नद्रिक् अर्वाङ् उप आ याहि।

२ हे इन्द्र, ते ये वृषणा वृषभास्त अत्या वृपरधातः, ब्रह्म युजः (च)। तान् आतिष्ठ, तेभिः अर्वाङ् आयाति हे इन्द्र त्वा सोमे सुते हवानहे।

३ वृषा (त्वम्) ते वृषण रथं आ तिष्ठ, सोम सुत परिषिक्त्वा मधूनि। क्षितीना वृषभ, वृषभ्या हरिभ्यः (रथ) युक्त्वा, प्रवता नद्रिक् उप याहि।

४ जय देव्या दत्, जय निमेषः इमा ब्रह्माणि, हे इन्द्र भवं सोम। (इन्द्र) वहिः त्तीर्णम् तु, शक्र प्र याहि (सोम) पिब निमेष (च) इह हरी विसुच।



अष्ट० २ अध्या० ४ व० २०,२१ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २३ सू० १७८

हे इन्द्र, हमने यथाविव आपकी स्तुति की है । इस लिये आप माननीय और श्रेष्ठ ऋषियोंके प्रार्थना-तोत्रोंकी ओर भूलोकमें आइये । प्रातःकालमें हम आपकी स्तुति करते हैं । इस लिये हमपर आप कृपा रखिये और आपकी कृपासे हमारी इच्छा सफल होवे । हमें केवल आपहीका आधार है । उससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और बढ़े ।

५ (२०)

### सूक्त १७८.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आप अपने भक्तोंकी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देकर उनकी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं । आप बड़े दयाशील हैं । इस लिये हम आपकी प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे उच्च मनार्थोंका नाश मत कीजिये । आपके भक्तलोगोंका आपके विषयमें जो काम है वह काम वे ठीक समयपर आपकी कृपासे करे । क्योंकि आप विश्वात्मा-विश्वव्यापी-हैं । १

दैन्यों भगिनीयोंने ( दिन और रात ) हमारे लिये जो जो काम किया है उसकी पूर्ति, हे जगन्-पति इन्द्र, आप कीजिये । पवित्र इच्छाओंको उत्पन्न करनेवाले दिव्य जल इन्द्रको जाकर मिलते हैं । वह इन्द्र-जो हमपर प्रेम करता है-हमारा उत्साह बढ़ावे और हमारी आयुस्की वृद्धि करे ।

२

पराक्रमी इन्द्र और उसकी वीर्यशाली सेनाका युद्धमें सदा विजय होता है । इन्द्र प्रार्थना करनेवाले भक्तोंकी पुकार सदा सुनता है । हवि अर्पण करनेवाले भक्तके पास इन्द्र अपना रथ ले जाता है । जब इन्द्र चाहता है तब वह चाहे जिस मनुष्यके द्वारा दिव्य ( वेद ) वाणीका उच्चारण कराता है ।

३

५ सुवृत्त इन्द्र अगस्त्यः मान्यस्य कारो ब्रह्माणि उपधो याति, ( तत्र ) अवसा ( दोषा ) वर्तते ( त्वा ) अन्त ( अर्गट ) विद्याम्, द्य जीरदानु वृत्तम् च विद्याम् ।

१ हे इन्द्र इन्द्रा जस्तिन्व उती वनूय सा वद्द श्रुष्टि ते अरित ( तद् ) नो मह्यन्तम् काम मा जाधरु, ते ( च ) विद्या आप ते परि अद्याम् ।

नु वदता येनो न ( जयें ) इषवत्त, ता गजा इद्र न ध आ इभत् । सुनुमा चित्त आप अर्से । ( म ) न नरथा वदथ गमत् ।

३ इन्द्र इन्द्रा इन्द्रा सुवेत्ता न इन्द्राद्य भोग्ये हव श्रोता । दाशुषः उपके रथ प्रार्ता, यदि च ता सुत्ता न न ( म ) गिर उद्यन्ता ।

इन्द्र स्वयं सामर्थ्यका अलंकार है। जब इन्द्र अपने भक्तोंकी स्तुति सुनता है तब वह अपनी सेनाके साथ अपने प्रिय भक्तोंकी ओर चला जाता है। जब घमासान युद्ध चलता है तब भी यजमानकी सत्य स्तोत्र-वाणी इन्द्रके अपूर्व गुणोंका वर्णन करती है। ४

हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र, आपहीके बलके कारण घमण्डी और पापी शत्रुओंको हम सहज रीतिसे जीत सकते हैं। हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं। आपही हमारी उन्नति करते हैं। आपहीके आधारसे हमारे मनोरथ शीघ्रतासे सफल होते हैं और हमारा उत्साह बढ़ जाता है। ५ (२१)

### सूक्त १७९.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-रति ॥

मैं बहुत वर्षोंसे लगातार रातदिन कष्ट उठाता हूँ। दिनपरदिन बुढ़ापा पार आ जाता है। बुढ़ापेमें शरीरका प्रत्येक अवयव ढीला पड़ जाता है और शरीरका मोह नष्ट होता है। इस अवस्थामे क्या पुरुष अपनी स्त्रीके साथ समागमसुखका अनुभव न लेवे ? १

देखिये। प्राचीन समयमें जो सत्य बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे और प्रत्यक्ष देवोंके साथ सच्ची बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे वे स्त्री अपने जन्मतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर नहीं सके। इस लिये यह बात उचितही है कि स्त्री भी अपने पतिके साथ समागमसुखका अनुभव ले लेवे। २

४ एव (अय) इद्र पृक्षः प्रखादः, नृभिः मित्रिणः अभिभूतः। विवाचि समर्थे (भपि) यजमानः स्वसत्राकरः शत (अस्य) इषः स्तवते।

५ हे मघवन् वयं त्वया महत मन्यमानान् शत्रून् अभिव्याम, त्व (नः) ज्ञाता त्वसु नः वृधे भुः (येन) इष जीरदानु वृजन विद्याम।

१ पूर्वा शरद अह शश्रमाणा, दोषा वस्तोः उपसः तरस्यन्तीः (एव); जरिमा (च) तनूना श्रिय मिनाति, (एव सत्यपि) वृषण स्वपत्नी सजगम्युः नु (किम्)।

२ येचित् हि पूर्वे ऋतसापः आसन् (येच) देवेभिः साक ऋतानि अवदन्, ते चित् अव असुः (ऋतस्य) अन्तम् नहि आपुः (अत) पत्नीः वृषभिः स जगम्युः नु।

इस तरह मत समझना कि ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेके कष्ट हमने मुफ्त उठाये। क्योंकि देव स्वयं हमारी रक्षा करने हैं। देवोंकी कृपासे हमने अपने शत्रुओंको जीत लिया है। (इससे अधिक हम क्या चाहते हैं?) यदि तुम और हम एक मतसे संसारसुखका अनुभव लेंगे तो हम सहज रीतिसे उससे सैंकड़ो लाभ उठावेंगे और सुगमतासे संसारकी कठिना-ओंको मेलेंगे। ३

जब महानदीका जल रोका जाना है तब उस नदीको बाढ आ जाती है। जिस तरह उस बाढको कोड़े रोक नहीं सकता उसी तरह मैं अपने इच्छान्ते देवा नहीं सकता। मैं लोपागुद्राके सम्बन्धमें इतना मोहित हो रहा हूँ कि मेरा वीर्य, बुद्धि, और धैर्य भी सब भ्रष्ट हो गये हैं। लोपागुद्रा अथवा है किन्तु उसने मेरे वज्रका हरण किया है। ४

जिस सोमनत्त्वको हम अपने शरीरमें इकट्ठे करते हैं उसको सामने खड़े रहकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि जो पाप मैंने किया होगा उसके लिये आप क्षमा कीजिये। क्योंकि मनुष्य प्राणीही ऐसा है जिसके मनमें सैंकड़ो अच्छे और बुरे विचार उत्पन्न होते हैं। ५

जिस तरह जमान खोदनेसे कष्ट होते हैं उसी तरह तपश्चर्या करनेसे अगस्त्य ऋषिको कष्ट उठाने पड़े। नाश न होनेवाले बल और सन्तानकी इच्छा अगस्त्य ऋषिको थी। जब अगस्त्य ऋषिसे सामर्थ्य प्राप्त हुआ तब आपने दोनों पक्षोंकी उन्नति की। उस समय ईश्वरके सत्य प्रार्थनाके फल ही देव लोकमें आपको मिला। ६ (२२) (२३)

३ न नृषा श्रान्तम् यद् (न) देवा अवन्ति, विश्वा स्पृथ इत् अभ्यन्नवाव (च), यद् सम्यन्ना मिथुण (०।१।१५) जनि अजाव, (तद्) अत्र शतनीयम् आजिम् जयाव इत्।

४ इत्त नदस्य दाम ना आ अगत्, इत् अमुत् कुतश्चित् (अपि) आजात्, (उय) लोपागुद्रा गंग (स्त्वपि) अत्र इयम् ना निरिणाति, श्वसन्तच वयति।

५ सन् तु अमु रीतम् (अत) अतिन् (वर्तमान) सोमम् उप श्रुवे यत् कीन्त जग चान (म); १६।१।१५। इत्त इत्तुदाम।

६ अगस्त्य ऋषि स्वनित्रे (स्व तपसा) गन्तमान, अपत्य, प्रजा, बल (च) इच्छमान, उ...। १६।१।१५। देवो (च) नाश अजिम् जगाम।

## अनुवाक २४.

सूक्त १८०.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विन ॥

हे अश्वीदेव, जब आपका रथ अन्तरिक्षरूपी रजोमय समुद्रके आसपास इधर उधर सञ्चार करता है तब भी आपके अध सीधे और सरल मार्गसे ही चलते हैं। आपके सुवर्णमय चक्रके धुरासे अमृन्के निन्दु इधर उधर उड़ते हैं। आप भी मधुर रस प्राशन करके उपाक साथ इधर आते हैं। १

शीघ्रतासे दौड़नेवाले, लोगोका लाभ करनेवाले, पवित्र और वेगवान् सूर्यके पहिले अश्विदेव उषाके साथ आते हैं। जब आप आते हैं तब भक्तलोग इस उद्देश्यसे आपकी स्तुति करते हैं कि आपकी भनिगी उषा आपको अपने साथ ले आवे और हमे दिव्य सामर्थ्य और उल्लाङ्का लाभ द्योवे। २

दिव्य गन्तुके अपक और प्रकाशमय स्तनमे आपने परिपक और उत्कृष्ट अमृततत्व रखा है। हे सत्यत्वरूप अश्वीदेव, जिस तरह अरण्यके बीचमे टेढे मार्गसे चलनेवाला वायु पवित्र होता है उसी तरह पवित्र हृदयसे मैं ( जो आपका भक्त हूँ ) आपकी सेवा करता हूँ। ३

हे पराक्रमी अश्वीदेव अत्रिऋषिके लिये आपने जलके प्रवाहकी तरह तोत्र उष्णताको ठण्डा और मधुर कर दिया। इसी लिये हे अश्वीदेव, आपके लिये पशु-यज्ञ किया जाता है और मधुर रस हमारी ओर रथके चक्रकी तरह दौड़ता चला आता है। ४

१ हे ( अश्विनौ ) यद् युवोः रथः रजासि अर्णोसि परि दीयत् ( तदपि ) वाम् अश्वाः सुयमासः, वाम् हिरण्यया पवचञ्च ( पीयूष ) प्रपायन्, ( हे अश्विनौ ) मध्वः पिवन्ता उपसतः सचेथे ।

२ यद् युवम् अत्यस्य, विपत्नन नर्यस्य प्रयज्यो ( सूर्यस्य ) अव नक्षथः, ( तदा ) हे विध्वगुती, हे मधुपौ ( स्तोता ) इँटे यद् वाम् स्वसा वाजाय, इषे च ( वाम् ) भराति ।

३ युवम् ( दिव्यायाः ) गोः आनायाम् उक्षिवायाम् ( वक्षणाया ) पक्व पूर्व्यं च पयः यत् अद्यत्तम् । हे ऋतस्पू वनिन अन्तः व्हार ( वातः ) न शुचि हविष्मान् वाम् यजते ।

४ युवम् ढ एषे अत्रये, धर्म अप ओदो न मधुमन्तम् अत्रणीतम् । तत् हे नरौ, अश्विनौ वान् पश्व इष्टिः, ( अतः ) नच रत्या नन्म इव ( न ) प्रतिचन्ति ।

अष्ट० २ अध्या० ४ व० २३, २४ ] ऋग्वेद [ मण्ड० १ अनु० २४ सू० १८०

हे अद्भुत कर्म करनेवाले अर्थादेव, जिस तरह बड़े हुए तुग्रपुत्रने आपको मोहित किया उसी तरह आपको धोकी आहुति देकर मैं आपका मन मोहित करता हूँ और आपका आर्दीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ। आपके यशने आकाश और पृथिवीको व्याप्त किया है। हे पूजनीय देव, जो पापके ढेर लगे हुए थे उनका आपने विलकुल नाश कर डाला। ५

हे उदार अर्थादेव, जब भक्तोंकी ओर जानेके लिये आप अपने अर्थोंको जोतते हैं तब आपके प्रभावसे आपके भक्त बुद्धिमान् होते हैं। बुद्धिमान् भक्त आपको सन्तुष्ट करके वायुकी तरह चारों ओर सञ्चार करते हैं। सत्कर्म करनेवाला जो भक्त है उसका यश बढ़ानेके लिये आप उसको पवित्र सामर्थ्य अर्पण करते हैं। ६

हम आपकी स्तुति करनेवाले सधे भक्त हैं। हम आपके गुणोंका वर्णन करते हैं। धनी मनुष्य यदि धर्मको माननेवाला न हो और कञ्जूस हो तो हम उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते। हे निष्कलक और वीर्यवान् अर्थादेव, सदा ईश्वरका चिन्तन करनेवाले भक्तोंकी आप रक्षा करते हैं। ७

हे अर्थादेव, सन पुरुषोंमें अगस्त्य ऋषि बड़े श्रेष्ठ हैं। ज्ञानरूपी जलका प्रचण्ड प्रवाह प्राप्त होनेके लिये सबसे श्रेष्ठ अगस्त्यऋषि भी प्रत्येक दिन प्रातःकालको आपको जगाते हैं और 'काराधुनी' नामके सुन्दर वायसे आपकी मनोहर स्तुति गाते हैं। इस तरह वे आपकी प्रार्थना सदा करते रहते हैं। ८

५ हे दसा, जित्रिः तौम्यो न, (अह) वा दानाय, गोः ओदेन च आवृत्तीय। आप. दोणी च वाम माहिना सचते, हे यज्ञत्रा, अहसः अक्षु वाम् (पुरा) जूणः (एव)।

६ हे सुदानु चद् नियुत नि युवेवे (तँदेव) स्वधाभि (भक्तहृदि) पुरधिम् सजय\* । (तत) सूरि (स.) वात. न वेपन् (वाम्) प्रेषच (स) सुनत न (अस्य) महे वाजम् आद दे ।

७ वम वाम् जरितार सत्या चित् हि, विप-यामहे, पणि वि हितवान् । अवा चित् हि स्म हे जगिन्धौ वृन्तो जदिनौ (त) अति देवम् पाय. हि स्म ।

८ हे अर्धिनो विन्द्रय (ज्ञानस्य) प्रत्रवणम्य सातो, नरा नृपु प्रदास्त. जगस्त्य. काराधुनीव (मनुष्यैः) चरते (सधे) युवा चित् हि अनुधन् चित्तन् स ।

जगह सञ्चार करनेवाले हे अश्वीदेव, आपका रथ स्वर्गमें भी जा सकता है । आप रथमें बैठकर चाहे उधर जाते है । किन्तु जब आप हमारी ओर आते है तब किसी मनुष्यका रूप धारण करके होता बनकर आते है । इस लिये हमारे यजमानको आप बुद्धिरूपी उत्तम अश्व अर्पण कीजिये । हे नासत्य, हम भी आपके ऐश्वर्यके भागी होंगे । ६

हे अश्वीदेव, आपके रथचक्र कभी नहीं टूटता है । आपका रथनक्षत्र लोकके चारो ओर-सञ्चार कस्ता है । ऐसे-आपके यशस्वी रथको हमारे कल्याणके लिये हम स्तोत्रोके द्वारा बुलाते है । इस तरह इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाला और हमारा उत्साह बढ़ानेवाला आपका सहारा हमें प्राप्त होगा । १० (२४)

सूक्त १८१.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विन ॥

हे अश्वीदेव, आप बड़े दयाशालि है । सात्विक सम्पत्ति देनेवाले और सात्विक प्रेम करनेवाले आपही है । स्वर्गके जलका अंश-आप कब लावेगे ? हे दिव्य सम्पत्ति देनेवाले अश्वीदेव, इस यज्ञके द्वारा-हम-आपके गुणोकी प्रशंसा करते है । १

आपके रथके पवित्र और दिव्य अश्व अमृतका प्राशन करनेवाले वायुकी तरह बलवान्, मनका तरह वेगवान्, वीर्यवान्, हृष्टपुष्ट, और निजके तेजसे प्रकाशित होनेवाले है । वे अश्व आपको हमारी ओर बड़ी शीघ्रतासे ले आवे । २

जिस तरह ढालू जमीनपरसे जलका प्रवाह बड़े वेगसे बहता है उसी तरह आपका रथ बड़े जोरसे चलता है । रथ हाकनेवालेका जो स्थान उस रथपर बना हुआ है वह भी बड़ा चौड़ा है । हमारा कल्याण करनेके लिये वह रथ हमारी ओर आवे । ध्यान और चिन्तन करनेयोग्य हे अश्वीदेव, मन सबसे चञ्चल है, किन्तु आपका पवित्र रथ मनसे भी अधिक चञ्चल है । आपका रथ बड़े ठाठसे सबके आगे चलता है । ३

९ हे स्पन्द्रा, यत् रथस्य माहिना प्रवहेये, ( तदा ) ( कश्चित् ) मनुष्य होता न ( अस्मान् ) प्र याथः । उतवा हे नासत्या ( न ) सूरिभ्य ( प्रज्ञामय ) सु अद्वयम् धत्तम् ( येन वयमपि ) रथिषाच स्याम ।

१० हे अश्विनौ वाम् तम्-नव्य-अरिष्टनेमि दाम् परि इयान रथ वयम् अय ( न ) सुविताय अस्तोमै- हुवेम, ( येन ) इष जीरदानुम् वृजन च विश्याम ।

१ प्रेष्टौ, इषा रथिणा च अश्वर्यन्तौ युवान् यत् अपाम उत निनीथ ( तत् ) कत् उ ? हे वसुधित्ती हे । जनाना अवितारौ, अयम् यज्ञ वाम् प्रशस्तिम् अकृत ।

२ वाम् अश्वस शुक्य पयस्पा. वातरहसः, दिव्यास, अत्या, मनोजुव, वृषण वीतपृष्ठा स्वराज. ( अश्व ) र अश्विना युवान् आ वहतु ।

३ ( अयम् ) प्रवतान् अवनि न, वाम् रथ सुप्रवन्धुर ( न ) सुविताय आ गम्या. । हे रजातारौ, हे पिप्थौ व ( रथ ) अट्पूर्व, वृष्ण मनस ( अपि ) जवीयाथ ।

इस यज्ञमें प्रकट होनेवाले अश्वदेव, आपके गुणोंका वर्णन सब लोग बारबार करते हैं। आपकी मूर्ति निकलकं और कीर्ति पवित्र है। इस लिये आपका स्तोत्र सब लोक गाते हैं। इसमें यह विद्विन होता है कि आप दोनोंमेंसे एक हमारे यशका नेता है और दूसरा घुनोक्तका भाग्यवान् पुत्र है।

४

उड़े वेगसे नीचे ढोड़नेवाला और उच्च उच्च शिखरका आपका सुवर्णमय रथ, आपकी इच्छासे आपके भक्तोंकी ओर आवे। हे अश्वदेव, आप दोनोंमेंसे एककी स्तुति करनेसे भी स्तोत्रोंको नामार्थ्य प्राप्त होता है। रथके अश्व हृष्टपुष्ट हो जाते हैं और अपने हिनहिनानेसे अन्तरिक्षको व्याप्त करते हैं।

५ (२५)

शरद्वृत्तमें धान्यरूपी सम्पत्ति आपके रथमें रखी जाती है। आपका रथ भी उत्साह देनेवाले अमृतके चिन्दुओंकी वर्षा करता है और इधर उधर सञ्चार करता है। जब हम आप दोनोंमेंसे एककी स्तुति करते हैं तब हमें सामर्थ्य प्राप्त होता है, बड़ी बड़ी नदीयोंको बाढ़ आती है और जलके प्रवाह हमारी ओर बहते हैं।

६

सबको नियमक अनुसार चलानेवाले अश्वदेव, आपकी पुरानी स्तुतिका प्रवाह बढ़े जोरसे भेरे मुहसे बाहर निकलता है। उस स्तुतिसे आप सन्तुष्ट हूजिये और हमपर कृपा कीजिये क्योंकि मैं आपका भक्त हूँ। जब आप सञ्चार करते हैं और विश्रान्ति लेते हैं तब भी मेरी ओर ध्यान दीजिये।

७

४ इह दृष्टं जाताः ( यत् ) अवावशीताम् ( तद् ) अरेपसा तग्ना, स्वैः नामभिः ( च ) वाम् अन्य ( न ) सुनेखस्व जिधु मूरि ( भवति ) अन्यथ दिव सुभगः पुत्रः ( इति ) ऊहे।

५ वाम् निचेद, कृष्ट, पिशागल्प ( रथ वाम् ) वशा अनु ( न ) सदनानि प्र गम्याः । हे अश्विना, वाम् ) अन्यथ राज्ञ इती पंपवन्त, मभ्रा ( च तौ ) घोषं रजासि वि ( आप्यायतः ) ।

६ वाम् ( रथ ) शरद्वान् न वृषम निष्पाद् ( च ), मन्व इष्णन् पूर्वीः इयः प्र चरति । ( वाम् ) अन्यथ वै वृषं ( न ) पंपवन्त, ( ता ) उर्वा वैपन्ती नय नः आ अगुः ।

७ हे वेत्ता अश्विना, त्रेधा वान्हे अरती स्वविरा ( च ) वाम् गो असनि । ( अस्याम् ) उपस्तुती ( उच्यते ) न वाम् अवन्त, अमन् अयाम् ( च ) मे ह्य गृधुनम् ।

यज्ञगृहमे तीन दर्भासन रखे जाते हैं। वहा आपके उज्वल और तेजोमयरूपकी स्तुति की जाती है। उस समय भक्तोंके हृदयमे आपके लिये प्रेम उत्पन्न होता है। हे वीर पुरुष, जब आप हमारे मनोरथ पूर्ण करते है तब आप ज्ञानरसकी वर्षा करते है और मनुष्योंकी इच्छा सफल करके उनका ऐश्वर्य बढ़ाते हैं।

हे अश्वीदेव, पुषादेवके समान आप भी सब लोगोंकी रक्षा करते हैं। ज्ञानवान् भक्त आपको हवि अर्पण करते है और वे जिस तरह अग्नि और उपाकी स्तुति करते है उस तरह वे आपकी भी स्तुति करते है। सब प्रेमसे मैं आपकी स्तुति और प्रार्थना करता हूँ। इस लिये आप ऐसी कृपा हमपर कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह बढ़े। ६

### सूक्त १८२.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—अश्विन ॥

देखिये, अश्वीदेवके आनका चिन्ह दिखाई देने लगा; चलो, आगे चलो । देखिये यहां पराक्रमी पुरुषोका रथ खडा है । हे ज्ञानवान् भक्तलोग, अश्वीदेवको सन्तुष्ट कीजिये । सद्बुद्धि देनेवाले आपही है । मनुष्य जातिको दयारूपी सम्पत्ति देनेका सामर्थ्य आपके पास है । आप ध्यान करने योग्य हैं । शुलोकसे वे प्रकट होते हैं । केवल पुण्यवान् पुरुष आपके पवित्र सत्वका अनुभव ले सकते है । १

हे अश्वीदेव, (पराक्रममे) इन्द्र और आप एकसे ही है । आप चिन्तन करने योग्य है । मरुतोंकी तरह आप शत्रुओंका नाश करनेवाले और अपूर्व काम करनेवाले है । आप रथपर आरूढ होते हैं । हे अश्वीदेव, अमृत—रससे भरे हुए रथमे बैठकर हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंकी ओर आप चले जाते हैं । २

८ उत त्रिवर्हिपि सदने वाम् रुशत. वप्सस. स्या गी (प्रयतान्) वृत् पिव्वते । हे वृषणा, (अयम्) वाम् वृषा (वरद) मेघ गो सेके न मनुष दशस्यन् (तान्) पीपाय ।

९ हे अश्विना युवान् एषव, अग्नि उपाम् न पुरन्धि हविष्मान् (वाम्) जरते । यत् (अहम्) वरिवशः गृणान. वाम् हुव (तद्) इषम् जीरदानु वृजनम् वियाम ।

१ (पश्यत यत्) इद (अश्विनो वयुनम् (पुरतः) अभूत्, ओ पु भूपत, (अय) वृषण्वान् रथ, ह ननीपिण (ऋत्विज एतान्) मदत । (इमावपि) धिय जिन्वा विष्ण्या, विस्पलावसू, दिव. नपाता, सुकृते नुचित्रता (च) ।

२ (यवान्) इद्रतमा, धिष्या हि, (युवाम् च) मरुतमा दसा, दसिष्ठा, रथ्या रधीतमा, पूर्णं रथ मन्व आजितम् पश्ये, तेन च हे अश्विना दाश्रासन् उप याथ. ।



हे सामर्थ्यवान् देव, आप क्या करते हैं ? आप क्यों ठेरे हुए हैं ? यहाँके लोक देवोंको दृष्टि अर्पण करनेके बदले अपने बमपडमे मग्न हुए हैं । इस लिये उनको छोड़ देना चाहिये । धर्मघट्ट और दुष्ट लोगोंकी आयुको घटाकर देवोंके गुणोंका वर्णन करनेवाले भक्त लोगोंको ज्ञानार्थी प्रकारा आप अर्पण करें । ३

( नञ्जन लोगोंका ) गाली देनेवाले लोगोंका आप नारा कीजिये । सत्यरूपोंके शत्रुओंका ना आप नारा कीजिये । हे अर्थादेव, आप सब बातें जानते ही हैं । ( हमारी ओरसे प्रार्थना करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ) । स्तुति करनेवाले लोगोंकी प्रार्थना सफल होवे । हे सन्धस्वरूप अर्थादेव, आप दोनों मेरे स्तोत्रोंको सफल करें । ४

नृपुत्रोंके लिये आपने महासमुद्रमे एक आनन्द देनेवाली और सजीव नौका—जिसके पंख धेनुयार की । आप उड़नेमे बड़े कुशल है । ईश्वरकी ओर ध्यान लगानेवाले भक्तोंके साथ आप अपने उम नावसे उड़ककी उखलनेवाली लहरोंके ऊपर समुद्रके परे उड़ गये । ५

नृपुत्र जब महानगरमें फँका गया था तब वह गाढ़े अतन्त अन्धेरेमे डुब गया था । अर्थादेश निजकी प्रेरणाने समुद्रमे उन चार नावोंको चलाते थे । समुद्रमे उन चार नावोंका बहुतही उपयोग होना है । वे ( नाव ) समुद्रके परे उसको ले जाते हैं । ६

३ हे देवा जत्र चिर हृषुव., क्रिम् आसाये, (अय) जन. यः कथित् अहविः महीयते (च) (तद्) अति रुनिष्टम्, पने असु जरतम, वचस्यवे विप्राय (मे) ज्योतिः कृणुतम् ।

४ रावत शुन अनित जभवतन्, हतम् मृध, हे अक्षिना, (ए) तानि विदधुः । जरितु वान वा रनिष्टम् इत्तम्, हे नासदा (युवाम्) उमा मम दासम् अचतम् ।

५ डुवन नौध्याय सिन्धुषु, आनन्दन्तम् पश्चिमम् एवम् (एकम्) क्रम् चरुषु । येन वृषतनी (युवाम्) शोदस देवेषु देवेषु ननदा (नञ्जेन सद् च) निरुह्युः ।

६ अ. स्वतः अत्रविद् नौध्याम् नकारनये तजसि च प्रविष्टम् नदम्य जृषा अक्षिध्याम् इविताः चतस्रः नाव उडुवपन्ति (चतस्र) ।

जिस तरह जलमे डुबे हुए मनुष्यको वृक्षका आधार मिलता है उसी तरह घबरे हुए तुम्हारे पुत्रको समुद्रमे आपहीका (मानो बज्रवान वृक्षका) आधार मिला; मानो नीचे गिरते हुए पथुको उडनेके लिये पंख प्राप्त हुए। हे अश्वीदेव, आपने तुम्हारे पुत्रकी रक्षा की। इस लिये आपकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई है। ७

वीर्यशाली सत्यस्वरूप अश्वीदेव, मानपुत्रोंने आपकी जो स्तुति की है वह आपको प्रिय होवे। जब हम आपको सोम अर्पण करते है तब आपकी कृपासे हमारी इच्छा शीघ्रतासे सरल होवे और हमारा उत्साह बढ़े। ८ (२८)

### सूक्त १८३.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विन ॥

हे वीर्यशाली अश्वीदेव, आप अपना रथ जोतकर तैयार कीजिये। आपका रथ मनसे भी अधिक वेगवान है। उसमे बैठनेके लिये तीन स्थान हैं और उसके तीन चक्र हैं। जिस तरह पक्षी अपने पखोसे उडता है उसी तरह आप भी अपने रथमे-जिसके तीन नत्वरूपों चक्र होते हैं-बैठकर अपने भक्तोंके घर चले जाते है। १

जब आप अपनी दयाका सामर्थ्य दिखलानेके लिये रथमे बैठकर आते हैं तब आपका रथ बड़ी शीघ्रतासे और सीधे मार्गसे पृथिवीकी ओर आता है। जिस तरह आप आकाश-कन्या-उषाके साथ चले जाते हैं उसी तरह हमारी सुन्दर स्तुति भी आपके साथ शीघ्रतासे दौड़े। २

७ यम् नाधित तौम्य पर्यपस्वजत् (स) अर्णस मध्ये निष्ठित वृक्ष कस्वित्? (येन) पत्नो मृगाय आरभे पर्णा इव (अश्ववत्), हे अश्विना (एवम् युवाम् स्व) श्रोमताय (एन) कम् उत ऊरधु ।

८ हे नरा नास्तया यद मानासः वाम् उच्यम् अवोचन् तत् वाम् अनुस्यात् । अथ अस्मात् सोमो न सदस, इपम् जीरदानुम् वृजनम् विद्याम् ।

१ हे वृषणा मनस य जवीवान् य. त्रिवन्धुरः त्रिचक्रश्च (२५.) त युग्जाथाम् । येन त्रिवातुना (रथेन) वि पर्णै न, (युवाम्) पतय, सुकृत दुरोणम् च उपयाथ ।

२ यत् कृतम् ता (युवाम्) पृथे अनुतिष्ठत (तत् स) रथ (अपि) अभिक्षाम् थन सुवत् वर्तते । (यथा युवाम्) वपुष्या दिव दुहित्रा उपसा सन्धे (तथा) इयम् गी (व) वपु सचताम् ।

भक्तोंने अर्पण किये हुए हवियोंसे भरा हुआ आपका रथ आपकी आज्ञाके अनुसार सीधे मार्गसे चलता है । उसी रथमें आप बैठिये । हे शूर-सत्यस्वरूप अश्वीदेव, उपर्युक्त ग्यमें बैठकर आप अपने भक्तों और उनके पुत्रों और पौत्रोंको जागृत करके उनको बुद्धि अर्पण करनेके लिये उनके घर चले जाते हैं । ३

हे अश्वीदेव, आपका ( क्रोधरूप ) भेड़ियां और भेड़ी दोनों हमारा नाश न करे । आप हमारा त्याग मत कीजिये । हमें छोड़कर दूसरी जगह मत जाइये । देखिये, आपके लिये वहा हविर्भाग रखा हुआ है । हे महापराक्रमी अश्वीदेव, मधुर सोमरससे भरे हुए वरदान भी आपके सामने रखे हुए है । ४

हे अद्भुत पराक्रम करनेवाले अश्वीदेव, गोतमऋषि, पुरुमिळह, और अत्रिऋषि भी आपकी कृपा प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करते हैं और आपकी स्तुति करते हैं । हे नासत्य, जिस तरह नियमके अनुसार चलनेवाला मनुष्य अपनी इच्छा सफल करनेके लिये सीधे मार्गसे चलता है उसी-तरह आप भी मेरी इच्छा सफल करनेके लिये सगल मार्गसे मेरी और आइये । ५

अब हम ( अज्ञानरूपी ) अन्धकारके परे पहुंचे हैं । इस लिये, हे अश्वीदेव, हमने जो आपके गुणोंका वर्णन किया है वह हम आपहीको अर्पण करते हैं । जिस मार्गसे देव चलते हैं उसी मार्गसे आप हमारी ओर आइये । हमारी इच्छा शीघ्रतासे सफल करके आप हमारा उत्साह बढ़ावे । ६ (२६) (४)

३ यो ( इयम् ) वाम् रथः हविष्मान् व्रतानि अनुवर्तते ( तम् ) सुवृतम् आ तिष्ठतम् । हे नरा नामान् देव ( नक्षत्र ) वतिः, त्वने तनयायच दप यव्यं याय ।

४ वाम् ( क्रोध ) वृद्ध ( अस्मान् ) मा, वृद्धी ( अवकृपा अपि ) मा वा दधयीति, मा परिवृक्तम् उत ना जति धरन् । अय वा भागः निश्चित इयम् गीः, हे दत्तौ दमे वाम् मधूनाम् निधय ।

५ हे दत्ता, गोतम पुष्पिऋह अत्रिश्च हविष्मान् युवाम् अवसे दवते । यन्ता ऋजुयेव दिशाम् दिश न हे नःवत्वा, मे त्वम् उप आवातम् ।

६ वाम् नक्षत्र वृद्ध वाम् अन्तरिक्ष, हे अश्विना, ( अयम् ) स्तोमो ( पि ) वाम् प्रति अवापि । ( तः )

७ यो निश्चित इयम् गीः, ( नि ) इयम् नीरदानु इज्जनन् विद्याम् ।

॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

## हिंदीमें एक नया ग्रंथ

डेमी  
अष्टपत्री

# ] हिंदी-ज्ञानेश्वरी [

पृष्ठ संख्या  
लगभग ७००

यह पुस्तक प्रसिद्ध महाराष्ट्र संत श्रीज्ञानेश्वर महाराज कृत श्रीमद्भगवद्गीता की भावार्थ दीपिका नामक व्याख्याका सरल हिंदी अनुवाद है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजकी गीताव्याख्या एक प्रासादक ग्रंथ है। तथा वह श्रीमद्भगवद्गीताकी अत्यंत श्रेष्ठ व्याख्याओंमें गिनी जाती है। इसमें श्रीज्ञानेश्वर महाराजने वह श्रीमद्भगवद्गीताका अर्थ अद्वैत तथा भक्तिपर किया है। अद्वैत वेदात और भक्तिका सामान्यतः विरोध समझा जाता है। परंतु श्रीज्ञानेश्वर महाराजने उनका समन्वय कर बताया है। श्रीज्ञानेश्वर महाराज अद्वैत भक्तिके आचार्य माने जाते हैं। यह ग्रंथ पुरानी मरहटी भाषा में लिखा है जिसे समझना भी आजकल कठिन होगया है। बंबई यूनिवर्सिटीमें मरहटीकी एम. ए. परीक्षाके लिये यह ग्रंथ नियुक्त किया जाता है। हिंदीप्रेमियोंके हितार्थ तथा हिंदी भाषाको सेवाके उद्देश्यसे इस ग्रंथका अनुवाद श्रीयुत रघुनाथ माधव भगाड़े मुनसिफ जी. ए. द्विगनघाट ने सरल भाषामें किया है। अनुवाद शुद्ध है। मूल ग्रंथकी सुरसताकी तिलप्रायभी हानि नहीं हुई है। हिंदीमें यह ग्रंथ अपूर्व है। तुरत मंगवाकर देखिये। प्रतिया बहुत थोड़ी छपरही है। मूल्य-२८ पारवरी १९१३ तक मंगवाने वालोंके लिये ३ रु० उसके अनंतर ४ रु० डांकव्यय अतिरिक्त।

मेनेजर.

अनंत वैभव छापखाना

वर्धा, ( मध्यप्रात )

## अंग्रेजी प्रवेश.

अंग्रेजी प्रवेश अथवा संभाषणकी रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका नमूना। मास्टरोके लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक। इसमें संभाषण रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका ढंग अच्छी तरह दिखानी देकर दिखलाया गया है।

जनार्दन विनायक ओक एम. ए.

तलेगाव — दाभाडे.

जि. पुना.

आजकल बजारमें जो भद्दा नेत्र विकता है उसमें सिरमें दर्द होता है। ऐसा तेल  
कुत्त पैसा क्यों खर्च करते हो ? यदि आप तेल लेना चाहते हो तो

**उत्तम चीजोंसे बनाया हुआ और जगत्प्रसिद्ध**

**कामिनिया ऑइल ( रजिस्टर्ड )**

खरिदो। इससे बाल चमकते हैं और काले होते हैं, सिर थंडा होता है और त  
रहता है। चांगे और सुगन्धि आती है यह तेल अच्छी अच्छी चीजोंसे बनाया होने

**मैसूरकी प्रदर्शनीमें सोनेका तगमा**

और इत्ताहावाद प्रदर्शनीमें सर्टिफिकेट ऑफ मेरिटस इसको मिले है। इसके वि  
नेनको सेकंडो प्रोमोपत्र भी मिल चुके हैं। इसका थोडासा नमूना भी नीचे दिया

ची गाम्पा, अंडव्होकेट, मैसूर- कृपा करके कामिनिया आइल की ६ बोतल  
में नेत्र दीजिये। कुछ दिन पहिले भेजे हुए बोतलोंकी औरतोने बडी तारीफ की है

मुफती अवदुलवादुदखां, ट्रान्सलेटर ज्युडिशियल कमिशनर्स कोर्ट पेशावा  
आपमें मगाडे हूड कामिनिया आइल की बोतलका मैने उपयोग किया और मै  
कट सकता है कि अगर और हमरे नेजोंकी अपेक्षा यह तेल मुझे बहुत पसन्द  
करेंगे। पी० पी० से ६ गालन और भेज दीजिये।

**इस बातपरभी यदि सन्देह हो तो स्वयं अनुभव लीजिये अ  
न्योहारके दिनकी मजा लुटिये।**

एक गालन ( शीशी ) की० १ रु०	}	३ शीशी की० २-१०
पी० पी० खर्च ४ आने		वही. पी० खर्च ७ आने.

**उत्तम सुवासिक इत्तर.**

**कामिनिया डेझी ( रजिस्टर्ड )**

भारत का - ... ..

... ..

### ... ..

... ..

... ..

### ... ..

... ..

... ..

### ... ..

... ..

... ..

... ..

### ... ..

... ..

### ... ..

... ..

... ..